भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षकी पुण्य स्मृतिमें

भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ

[चतुर्थ भाग]

राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्र

भारतीय ज्ञानपीठके संयोजन,
सम्पादन एवं निर्देशनके अन्तर्गत

लेखक
बलभद्र जैन

प्रकाशक
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षकी पुण्य स्मृतिमें

भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ

[चतुर्थ भाग]

राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्र

भारतीय ज्ञानपीठके संयोजन,
सम्पादन एवं निर्देशनके अन्तर्गत

लेखक
बलभद्र जैन

प्रकाशक
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

भारतके दिगम्बर जैनतीर्थं

भाग–४

(राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्र)

लेखक : बलभद्र जैन

सम्पादक-नियोजक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशक :
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

प्रथम संस्करण : १९७८

मूल्य : तीस रुपये

© Bharatavarshiya Digamber Jain Tirthakshetra
Committee, Hirabaug, Bombay–4

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००५

ग्रन्थ-प्राप्ति स्थान :
● भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, हीराबाग, बम्बई–४
● भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली–११०००१

आमुख

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीको इस बातका बहुत हर्ष है कि उसने भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षके उपलक्ष्यमें 'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थको पाँच या छह भागोंमें प्रकाशित करनेकी जिस योजनाका समारम्भ किया था उसका अब यह चतुर्थ भाग भी प्रकाशित होकर आपके हाथों पहुँच रहा है। इसका सम्बन्ध राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रके जैन तीर्थोंसे है। पूर्व प्रकाशित इसके तीन भागोंमें क्रमशः उत्तरप्रदेश (दिल्ली तथा पोदनपुर-तक्षशिला सहित), बिहार-बंगाल-उड़ीसा और मध्यप्रदेशके तीर्थोंका उनके पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, स्थापत्य एवं कला आदिके सन्दर्भमें विस्तृत विवेचन किया गया है।

वास्तवमें हमारी पीढ़ी का यह परम सौभाग्य है कि हमें भगवान् महावीरके निर्वाणके ढाई हजारवें वर्षकी परिसमाप्तिके इस महान् पर्वको मनानेका अवसर प्राप्त हुआ। हमारी सद्-आस्थाको आधार देनेवाले, हमारे जीवनको कल्याणमय बनानेवाले, हमारी धार्मिक परम्पराकी अहिंसामूलक संस्कृतिकी ज्योतिको प्रकाशमान रखनेवाले, जन-जनका कल्याण करनेवाले हमारे तीर्थंकर ही हैं। जन्म-मरणके भवसागरसे उबारकर अक्षय सुखके तीरपर ले जानेवाले हमारे तीर्थंकर प्रत्येक युगमें 'तीर्थ'का प्रवर्तन करते हैं अर्थात् मोक्षका मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थंकरोंकी इस महिमाको अपने हृदयमें बसाये रखने और अपने श्रद्धानको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमने उन सभी विशेष स्थानोंको 'तीर्थ' कहा जहाँ-जहाँ तीर्थंकरोंके जन्म आदि 'कल्याणक' हुए; जहाँ से केवली भगवान्, महान् आचार्य और साधु 'सिद्ध' हुए और जहाँ के 'अतिशय' ने श्रद्धालुओंको अधिक श्रद्धायुक्त बनाया, उन्हें धर्म-प्रभावनाके चमत्कारोंसे साक्षात्कार कराया। ऐसे पावन स्थानोंमें-से कुछ हैं जो ऐतिहासिक कालके पूर्वसे ही पूजे जाते हैं और जिनका वर्णन पुराण-कथाओंकी परम्परासे पुष्ट हुआ है। अन्य तीर्थोंके साथ इतिहासकी कोटिमें आनेवाले तथ्य जुड़ते चले गये हैं और मनुष्यकी कलाने उन्हें अलंकृत किया है। स्थापत्य और मूर्तिकलाने एवं विविध शिल्पकारोंने इन स्थानोंके महत्त्वको बढ़ाया है। अनादि-अनन्त प्रकृतिका मनोरम रूप और वैभव तो प्रायः सभी तीर्थोंपर विद्यमान है।

ऐसे सभी तीर्थ-स्थानोंकी वन्दनाका प्रबन्ध और तीर्थोंकी सुरक्षाका दायित्व समाजकी जो संस्था अखिल भारतीय स्तरपर वहन करती है, उसे गौरवकी अपेक्षा अपनी सीमाओंका ध्यान अधिक रहता है, और यही ऐसी संस्थाओंके लिए शुभ होता है, यह ज्ञान उन्हें सक्रिय रखता है।

इस समय तीर्थक्षेत्र कमेटीके सामने इन पवित्र स्थानोंकी सुरक्षा, पुनरुद्धार और नव-निर्माणकी दिशामें एक बड़ा और व्यापक कार्यक्रम है। इसे पूरा करनेके लिए हमारे प्रत्येक भाई-बहनको यथासामर्थ्य योगदान करनेकी अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह प्रेरणा मूर्त रूप ले और यात्री भाई-बहनोंको तीर्थ-वन्दनाका पूरा सुफल, आनन्द और ज्ञान प्राप्त हो, तीर्थक्षेत्र कमेटीका इस ग्रन्थमालाके प्रकाशनमें यह दृष्टिकोण रहा है।

ग्रन्थ प्रकाशनकी इस परिकल्पनाको पग-पगपर साधनेका सर्वाधिक श्रेय श्रावक-शिरोमणि, दानवीर स्व. साहू शान्तिप्रसादजीको है जिनके सभापतित्व कालमें इस ग्रन्थकी सामग्रीके संकलन और लेखनका कार्य प्रारम्भ हुआ था। इसके प्रथम तीन भागोंका प्रकाशन भी उनके निर्देशनमें ही हुआ है। ग्रन्थके प्रस्तुत भाग ४

तथा आगेके भागों की, जिनका सम्बन्ध दक्षिण भारतके दिगम्बर जैन तीर्थोंसे है, परिकल्पना भी उनके निर्देशनमें तैयार कर ली गयी थी। आज वह हमारे बीच नहीं हैं। उनका आकस्मिक निधन देशके लिए और विशेषकर हमारी समाजके लिए एक वज्रपात है। हमारे बीच होकर जब वे बड़ी-बड़ी योजनाओंको भी सहज रूप देकर साधन जुटा देते थे तो हममें कार्य करनेकी दुगुनी क्षमता आ जाती थी। सामाजिक जीवनके अनेक पक्षोंसे वह व्यक्तिगत रूपसे सम्पृक्त थे और सबको साथ लेकर चलना उनके नेतृत्वका बहुत बड़ा गुण था। भगवान् महावीरके पचीससौ-वें निर्वाण महोत्सवपर देशमें जो जागृति आयी, जैनधर्म-दर्शनका अभूतपूर्व प्रचार हुआ, एकताकी जो नींव रखी गयी वह हमारी इस पीढ़ीके लिए गौरवकी बात है। आज श्री साहूजीके प्रति अपने हृदयकी सम्पूर्ण श्रद्धा अर्पित करते समय हम उनके अभावमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं। फिर भी, उनके दिये हुए दायित्वोंका निभाना, उनके बताये हुए मार्गपर चलना हमारा कर्तव्य है।

हमारा पूरा प्रयत्न है कि दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंसे सम्बन्धित दोनों भाग भी जल्दी प्रकाशमें आयें।

तीर्थक्षेत्र कमेटी और भारतीय ज्ञानपीठके संयुक्त तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थकी सामग्रीका संकलन, लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन हुआ है, हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनमें जिन-जिन महानुभावोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सभीका तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे आभारी हूँ।

लालचन्द हीराचन्द
सभापति
भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

दिनांक १५ जनवरी, १९७८

प्रस्तुति

'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थमालाका यह चौथा प्रसून है। पहले प्रसूनोंकी ही भाँति यह भी भगवान् महावीरके पचीससौवें निर्वाण-महोत्सव वर्षकी पुण्य स्मृतिमें समर्पित है। ग्रन्थमालाकी प्रकाशन योजनाके पूर्ण होनेमें इसके अभी दो भाग और शेष रह जाते हैं जिनका सम्बन्ध दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंसे है। सर्वेक्षण, सामग्री-संकलन, लेखन एवं सम्पादनका कार्य चल रहा है। प्रयास यही है कि ये भाग भी आपके हाथोंमें यथाशीघ्र पहुँचें।

जैसा कि अब तक प्रकाशित इन चार भागोंके अवलोकनसे स्पष्ट होगा, तीर्थोंके परिचयात्मक वर्णनमें पौराणिक, ऐतिहासिक और स्थापत्य एवं कलापरक सामग्रीका संयोजन बहुत ही परिश्रम और सूझ-बूझसे किया गया है। ग्रन्थ-लेखक पं. बलभद्रजीको इस कार्यमें व्यापक अनुभव है, लगन तो है ही। सामग्रीको सर्वांगीण बनानेकी दिशामें जो भी सम्भव था—कमेटीके साधन, ज्ञानपीठका निर्देशन एवं स्व. श्री साहू शान्तिप्रसादजीका मार्गदर्शन और प्रेरणा पण्डितजीको उपलब्ध रही है। भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे सामग्री-का न केवल सम्पादकीय नियमन हुआ है अपितु सारे मानचित्रोंका निर्माण प्रथम बार कराया गया है। तीर्थक्षेत्र कमेटीने यात्राओंके नियोजन, सामग्री-संकलन, सम्पादन, लेखन तथा फोटोग्राफ्स प्राप्त करानेमें पर्याप्त धन व्यय किया है। इस सारी सामग्रीपर और इसके संयोजन-प्रकाशनपर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीका सम्पूर्ण अधिकार है।

सामग्री-संकलन, लेखनकार्य और मुद्रण-प्रकाशनपर यद्यपि अधिक धनराशि व्यय हुई है फिर भी तीर्थक्षेत्र कमेटीने इस ग्रन्थमालाको सर्वसुलभ बनानेकी दृष्टिसे केवल लागत मूल्यके आधारपर दाम रखनेका निर्णय किया है। भारतीय ज्ञानपीठका व्यवस्था सम्बन्धी जो व्यय हुआ है और जो साधन-सुविधाएँ इस कार्यके लिए उपलब्ध की गयी हैं, उनका समावेश इस व्यय राशिमें नहीं किया गया है।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा नियोजित की गयी पण्डित बलभद्रजीकी यात्राओंके अवसरपर तीर्थोंके मन्त्रियों और प्रबन्धकों तथा तीर्थोंसे सम्बन्धित अन्य सज्जनोंसे जो लेखन-सामग्री या सूचनाएँ उपलब्ध हुई तथा जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए हम अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

पग-पगपर जिनका मार्गदर्शन प्राप्त था, क्षण-क्षण जो हमें उत्साहसे भरते थे, जिनकी छत्रछायामें हम निःशंक अपनी योजनाओंकी पूर्तिमें आगे बढ़ते जाते थे आज उन श्रावक-शिरोमणि साहू शान्तिप्रसादजीकी अनुपस्थितिमें इस योजनाको पूरा करनेका कठिन मार्ग हम कैसे तय कर पायेंगे, यह सोचकर चिन्ता होती है। किन्तु, वह हमें जो आत्मविश्वास दे गये हैं वही हमारा पाथेय है। श्री साहूजीकी स्मृतिमें उनके प्रति हमारी श्रद्धांजलि अर्पित है।

हमारा विश्वास है कि यह प्रकाशन पर्याप्त उपयोगी, सुन्दर, ज्ञानवर्धक और तीर्थ-वन्दनाके लिए प्रेरणादायक माना जायेगा।

पूरा प्रयत्न करनेपर भी त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। अतः इस ग्रन्थके सम्बन्धमें सुझावों और संशोधनोंका हम स्वागत करेंगे।

लक्ष्मीचन्द्र जैन,
मन्त्री,
भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली–११०००१
दिनांक १० जनवरी, १९७८

जयन्तीलाल एल. परिख
महामन्त्री
भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

विषयानुक्रम

पृष्ठ

जैन दृष्टिसे राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र — १–२१

राजस्थानके दिगम्बर जैन तीर्थ — २३–१३६

श्रीमहावीरजी २२, चमत्कारजी २७, चाँदखेड़ी ३१, झालरापाटन ३४, जयपुर ३८, पद्मपुरा ४८, अजमेर ५२, बघेरा ५५, नरैना ५९, मौजमाबाद ६१, केशोरायपाटन ६२, बिजौलिया ६८, चंवलेश्वर पार्श्वनाथ ८५, चित्तौड़ ८७, बमोतर (श्री शान्तिनाथजी) ९९, अन्देश्वर पार्श्वनाथ १०१, नागफणी पार्श्वनाथ १०३, ऋषभदेव (केशरियाजी) १०६, आबू १२७, तिजारा १३३।

गुजरातके दिगम्बर जैन तीर्थ — १३७–२०१

तारंगा १३७, गिरनार १४४, सोनगढ़ १६७, शत्रुंजय १७१, घोघा १७६, पावागढ़ १७८, महुवा (विघ्नहर पार्श्वनाथ) १८५, सूरत १८९, अंकलेश्वर १९५, सजोद १९८, अमीझरो पार्श्वनाथ २००।

महाराष्ट्रके दिगम्बर जैन तीर्थ — २०३–३३०

गजपन्था और अंजनेरी २०३, मांगीतुंगी २०८, चाँदवड़ गुफा मन्दिर २१७, बोरीवली (बम्बई) २१८, दहीगाँव २२०, कुण्डल (कलिकुण्ड पार्श्वनाथ) २२३, बाहुबली २२७, कोल्हापुर २३३, कुन्थलगिरि २३७, धाराशिवकी गुफाएँ २४५, तेर २५१, साबरगाँव २५५, कासार आष्टा २५७, एलौराकी गुफाएँ २५९, दौलताबादका किला २७१, औरंगाबादकी गुफाएँ २७३, पैठण २७४, नवागढ़ २७९, जिन्तूर २८१, शिरड शहापुर २८५, असेगाँव २८८, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (सिरपुर) २८८, कारंजा ३०३, बाढौणा रामनाथ ३०९, भातकुली ३१०, रामटेक ३११, मुक्तागिरि ३१९।

परिशिष्ट–१ — ३३१–३४४

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रके दिगम्बर जैन तीर्थ : संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग ३३३।

□

प्राक्कथन

तीर्थ

तीर्थ-मान्यता

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायमें तीर्थोंका प्रचलन है। हर सम्प्रदायके अपने तीर्थ हैं, जो उनके किसी महापुरुष एवं उनकी किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके स्मारक होते हैं। प्रत्येक धर्मके अनुयायी अपने तीर्थोंकी यात्रा और वन्दनाके लिए बड़े भक्ति-भावसे जाते हैं और आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। तीर्थ-स्थान पवित्रता, शान्ति और कल्याणके धाम माने जाते हैं। जैन धर्ममें भी तीर्थ-क्षेत्रका विशेष महत्त्व रहा है। जैन धर्मके अनुयायी प्रति वर्ष बड़े श्रद्धा-भावपूर्वक अपने तीर्थोंकी यात्रा करते हैं। उनका विश्वास है कि तीर्थ-यात्रासे पुण्य-संचय होता है और परम्परासे यह मुक्ति-लाभका कारण होती है। अपने इसी विश्वासके कारण वृद्ध जन और महिलाएँ भी सम्मेद शिखर, राजगृही, मांगीतुंगी, गिरनार-जैसे दुरूह पर्वतीय क्षेत्रोंपर भी भगवान्‌का नाम स्मरण करते हुए चढ़ जाते हैं। बिना आस्था और निष्ठाके क्या कोई वृद्धजन ऐसे पर्वतपर आरोहण कर सकता है?

तीर्थकी परिभाषा

तीर्थ शब्द तॄ धातुसे निष्पन्न हुआ है। व्याकरणकी दृष्टिसे इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'तीर्यन्ते अनेन अस्मिन् वा।' 'तॄ प्लवन-तरणयोः' (भ्वा. प. से.) 'पातॄतुदि'—(उ. २।७) इति थक्। अर्थात् तॄ धातुके साथ थक् प्रत्यय लगाकर तीर्थ शब्दकी निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ है—जिसके द्वारा अथवा जिसके आधारसे तरा जाये। कोषके अनुसार तीर्थ शब्द अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यथा—

> निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ।
>
> —अमरकोष, तृ. काण्ड, श्लोक ८६
>
> तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च।
> अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥
>
> —मेदिनी

इस प्रकार कोषकारोंके मतानुसार तीर्थ शब्द जलावतरण, आगम, ऋषि, जुष्ट, जल, गुरु, क्षेत्र, उपाय, स्त्री-रज, अवतार, पात्र, उपाध्याय और मन्त्री इन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है।

जैन शास्त्रोंमें भी तीर्थ शब्दका प्रयोग अनेक अर्थोंमें किया गया है। यथा—

> संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।
> चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा॥
>
> —जिनसेनकृत आदिपुराण ४।८

अर्थात् जो इस अपार संसार-समुद्रसे पार करे उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र भगवान्‌का चरित्र ही हो सकता है। अतः उसके कथन करनेको तीर्थाख्यान कहते हैं।

यहाँ जिनेन्द्र भगवान्‌के चरित्रको तीर्थ कहा गया है।

आचार्य समन्तभद्रने भगवान् जिनेन्द्रदेवके शासनको सर्वोदय तीर्थ बताया है—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥
—युक्त्यनुशासन ६२

अर्थात् "आपका यह तीर्थ सर्वोदय (सबका कल्याण करनेवाला) है। जिसमें सामान्य-विशेष, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक, अस्ति-नास्ति रूप सभी धर्म गौण-मुख्य रूपसे रहते हैं, ये सभी धर्म परस्पर सापेक्ष हैं, अन्यथा द्रव्यमें कोई धर्म या गुण रह नहीं पायेगा। तथा यह सभीकी आपत्तियोंको दूर करनेवाला है और किसी मिथ्यापवादसे इसका खण्डन नहीं हो सकता। अतः आपका यह तीर्थ सर्वोदय-तीर्थ कहलाता है।"

यह तीर्थ परमागम रूप है, जिसे धर्म भी कहा जा सकता है।

बृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें भगवान् मल्लिनाथकी स्तुति करते हुए आचार्य समन्तभद्रने उनके तीर्थको जन्म-मरण रूप समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंके लिए प्रमुख तरण-पथ (पार होनेका उपाय) बताया है—

तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽगम् ॥१०९

पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम (भाग ८, पृ. ९१) में तीर्थंकरको धर्म-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें श्रेयान्सकुमारको दान-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें (२।३९) मोक्षप्राप्तिके उपायभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रको तीर्थ बताया है।

आवश्यक नियुक्तिमें चातुर्वर्ण अर्थात् मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध संघ अथवा चतुर्वर्णको तीर्थ माना है। इनमें भी गणधरों और उनमें भी मुख्य गणधरको मुख्य तीर्थ माना है और मुख्य गणधर ही तीर्थंकरोंके सूत्र रूप उपदेशको विस्तार देकर भव्यजनोंको समझाते हैं, जिससे वे अपना कल्याण करते हैं। कल्पसूत्रमें इसका समर्थन किया गया है।

तीर्थ और क्षेत्र-मंगल

कुछ प्राचीन जैनाचार्योंने तीर्थके स्थानपर 'क्षेत्र-मंगल' शब्दका प्रयोग किया है। षट्खण्डागम (प्रथम खण्ड, पृ. २८) में क्षेत्र-मंगलके सम्बन्धमें इस प्रकार विवरण दिया गया है—

तत्र क्षेत्रमंगलं गुणपरिणतासन—परिनिष्क्रमण—केवलज्ञानोत्पत्ति-परिनिर्वाणक्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्—ऊर्जयन्त-चम्पा-पावानगरादिः। अर्धाष्टारत्न्यादि-पञ्चविंशत्युत्तरपञ्च-धनुःशतप्रमाणशरीरस्थितकैवल्याद्यवष्टब्धाकाशदेशा वा, लोकमात्रात्मप्रदेशैर्लोकपूरणापूरितविश्वलोकप्रदेशा वा।

अर्थात् गुण-परिणत-आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँपर योगासन, वीरासन इत्यादि अनेक आसनोंसे तदनुकूल अनेक प्रकारके योगाभ्यास, जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र आदिको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। इसके उदाहरण ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पा, पावा आदि नगर क्षेत्र हैं। अथवा साढ़े तीन हाथसे लेकर पाँच सौ पचीस धनुष तकके शरीरमें स्थित और केवलज्ञानादिसे व्याप्त आकाश प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। अथवा लोक प्रमाण आत्म-प्रदेशोंसे लोकपूरणसमुद्घात दशामें व्याप्त किये गये समस्त लोकके प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं।

बिलकुल इसी आशयकी ४ गाथाएँ आचार्य यतिवृषभने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थमें (प्रथम अधिकार गाथा २१-२४) निबद्ध की हैं और उन्होंने कल्याणक क्षेत्रोंको क्षेत्र-मंगलकी संज्ञा दी है।

गोम्मटसारमें बताया है—

क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनाम्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थ शब्दके आशयमें ही क्षेत्र-मंगल शब्दका प्रयोग मिलता है। यदि अन्तर है तो इतना कि तीर्थ शब्द व्यापक है। तीर्थ शब्दसे उन सबका व्यवहार होता है, जो पार करनेमें

साधन हैं। इन साधनोंमें एक साधन तीर्थ-भूमियाँ भी हैं। इन तीर्थ-भूमियोंको ही क्षेत्र-मंगल शब्दसे व्यवहृत किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि तीर्थ शब्दका आशय व्यापक और क्षेत्र-मंगल शब्दका अर्थ व्याप्य है। तीर्थ शब्दके साथ यदि भूमि या क्षेत्र शब्द और जोड़ दिया जाये तो उससे वही अर्थ निकलेगा जो क्षेत्र-मंगल शब्दसे अभिप्रेत है।

तीर्थोंकी संरचनाका कारण

तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र-मंगलके अर्थमें बहुप्रचलित एवं रूढ़ है। तीर्थ-क्षेत्र न कहकर केवल तीर्थ शब्द कहा जाये तो उससे भी प्रायः तीर्थ-क्षेत्र या तीर्थ-स्थानका आशय लिया जाता है। जिन स्थानोंपर तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण, केवलज्ञान और निर्वाणकल्याणकोंमें-से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी मुनिको केवलज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो, वह स्थान उन वीतराग महर्षियोंके संसर्गसे पवित्र हो जाता है। इसलिए वह पूज्य भी बन जाता है। वादीभसिंह सूरिने क्षत्रचूड़ामणि (६।४-५) में इस बातको बड़े ही बुद्धिगम्य तरीकेसे बताया है। वे कहते हैं—

> पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ॥
> सद्भिरध्युषिता धात्री संपूज्येति किमद्भुतम् ।
> कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥

अर्थात् महापुरुषोंके संसर्गसे स्थान भी पवित्र हो जाते हैं। फिर जहाँ महापुरुष रह रहे हों वह भूमि पूज्य होगी ही, इसमें आश्चर्यको क्या बात है। जैसे रस अथवा पारसके स्पर्श मात्रसे लोहा सोना बन जाता है।

मूलतः पृथ्वी पूज्य या अपूज्य नहीं होती। उसमें पूज्यता महापुरुषोंके संसर्गके कारण आती है। पूज्य तो वस्तुतः महापुरुषोंके गुण होते हैं किन्तु वे गुण (आत्मा) जिस शरीरमें रहते हैं, वह शरीर भी पूज्य बन जाता है। संसार उस शरीरकी पूजा करके ही गुणोंकी पूजा करता है। महापुरुषके शरीरकी पूजा भक्तका शरीर करता है और महापुरुषके आत्मामें रहनेवाले गुणोंकी पूजा भक्तकी आत्मा अथवा उसका अन्तःकरण करता है। इसी प्रकार महापुरुष, वीतराग तीर्थंकर अथवा मुनिराज जिस भूमिखण्डपर रहे, वह भूमिखण्ड भी पूज्य बन गया। वस्तुतः पूज्य तो वे वीतराग तीर्थंकर या मुनिराज हैं। किन्तु वे वीतराग जिस भूमिखण्डपर रहे, उस भूमिखण्डकी भी पूजा होने लगती है। उस भूमिखण्डकी पूजा भक्तका शरीर करता है, उस महापुरुषकी कथा-वार्ता, स्तुति-स्तोत्र और गुण-संकीर्तन भक्तकी वाणी करती है और उन गुणोंका अनुचिन्तन भक्तकी आत्मा करती है। क्योंकि गुण आत्मामें रहते हैं, उनका ध्यान, अनुचिन्तन और अनुभव आत्मामें ही किया जा सकता है।

वीतराग तीर्थंकरों और महर्षियोंने संयम, समाधि, तपस्या और ध्यानके द्वारा जन्म-जरा-मरणसे मुक्त होनेकी साधना की और संसारके प्राणियोंको संसारके दुःखोंसे मुक्त होनेका उपाय बताया। जिस मिथ्या-मार्गपर चलकर प्राणी अनादि कालसे नाना प्रकारके भौतिक और आत्मिक दुःख उठा रहे हैं, उस मिथ्या-मार्गको ही इन दुःखोंका एकमात्र कारण बताकर प्राणियोंको सम्यक् मार्ग बताया। अतः वे महापुरुष संसारके प्राणियोंके अकारण बन्धु हैं, उपकारक हैं। इसीलिए उन्हें मोक्षमार्गका नेता माना जाता है। उनके उपकारोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और उस भूमि-खण्डपर घटित घटनाकी सतत स्मृति बनाये रखने और इस सबके माध्यमसे उन वीतराग देवों और गुरुओंके गुणोंका अनुभव करनेके लिए उस भूमिपर उन महापुरुषका कोई स्मारक बना देते हैं। संसारकी सम्पूर्ण तीर्थभूमियों या तीर्थ-क्षेत्रोंकी संरचनामें भक्तोंकी महापुरुषोंके प्रति यह कृतज्ञताकी भावना ही मूल कारण है।

तीर्थोंके भेद

दिगम्बर जैन परम्परामें संस्कृत निर्वाण-भक्ति और प्राकृत निर्वाण-काण्ड प्रचलित हैं। अनुश्रुतिके अनुसार ऐसा मानते हैं कि प्राकृत निर्वाण-काण्ड (भक्ति) आचार्य कुन्दकुन्दकी रचना है। तथा संस्कृत निर्वाण-भक्ति आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित कही जाती है। इस अनुश्रुतिका आधार सम्भवतः क्रियाकलापके टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्य हैं। उन्होंने लिखा है कि संस्कृत भक्तिपाठ पादपूज्य स्वामी विरचित है। प्राकृत निर्वाण-भक्तिके दो खण्ड हैं—एक निर्वाण-काण्ड और दूसरा निर्वाणेतर-काण्ड। निर्वाण-काण्डमें १९ निर्वाण-क्षेत्रोंका विवरण प्रस्तुत करके शेष मुनियोंके जो निर्वाण क्षेत्र हैं उनके नामोल्लेख न करके सबकी वन्दना की गयी है। निर्वाणेतर काण्डमें कुछ कल्याणक स्थान और अतिशय क्षेत्र दिये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत निर्वाण-भक्तिमें तीर्थभूमियोंको इस भेद कल्पनासे ही दिगम्बर समाजमें तीन प्रकारके तीर्थ-क्षेत्र प्रचलित हो गये—सिद्ध क्षेत्र (निर्वाण क्षेत्र), कल्याणक क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र।

संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें प्रारम्भके बीस श्लोकोंमें भगवान् वर्धमानका स्तोत्र है। उसके पश्चात् बारह पद्योंमें २५ निर्वाण क्षेत्रोंका वर्णन है। वास्तवमें यह भक्तिपाठ एक नहीं है। प्रारम्भमें बीस श्लोकोंमें जो वर्धमान स्तोत्र है वह स्वतन्त्र स्तोत्र है। उसका निर्वाण भक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह इसके पढ़नेसे ही स्पष्ट हो जाता है। द्वितीय पद्यमें स्तुतिकार सन्मतिका पाँच कल्याणकोंके द्वारा स्तवन करनेकी प्रतिज्ञा करता है और बीसवें श्लोकमें इस स्तोत्रके पाठका फल बताता है। यहाँ यह स्तोत्र समाप्त हो जाता है। फिर इक्कीसवें पद्यमें अर्हन्तों और गणधरोंकी निर्वाण-भूमियोंकी स्तुति करनेकी प्रतिज्ञा करता है और बत्तीसवें श्लोकमें उनका समापन करता है। जो भी हो, संस्कृत निर्वाण-भक्तिके रचयिताने प्राकृत निर्वाण-भक्तिकारकी तरह तीर्थ-क्षेत्रोंके भेद नहीं किये। सम्भवतः उन्हें यह अभिप्रेत भी नहीं था। उनका उद्देश्य तो निर्वाण-क्षेत्रोंकी स्तुति करना था।

इन दो भक्तिपाठोंके अतिरिक्त तीर्थक्षेत्रोंसे सम्बन्धित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ दिगम्बर परम्परामें उपलब्ध नहीं है। जो हैं, वे प्रायः १६वीं, १७वीं शताब्दीके बादके हैं।

किन्तु दिगम्बर समाजमें उक्त तीन ही प्रकारके तीर्थक्षेत्रोंकी मान्यताका प्रचलन रहा है—(१) निर्वाण क्षेत्र, (२) कल्याणक क्षेत्र और (३) अतिशय क्षेत्र।

निर्वाण क्षेत्र—ये वे क्षेत्र कहलाते हैं, जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं तपस्वी मुनिराजका निर्वाण हुआ हो। संसारमें शास्त्रोंका उपदेश, व्रत-चारित्र, तप आदि सभी कुछ निर्वाण-प्राप्तिके लिए है। यही चरम और परम पुरुषार्थ है। अतः जिस स्थानपर निर्वाण होता है, उस स्थानपर इन्द्र और देव पूजाको आते हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा निर्वाण क्षेत्रोंका महत्त्व अधिक होता है। इसलिए निर्वाण-क्षेत्र के प्रति भक्त जनताकी श्रद्धा अधिक रहती है। जहाँ तीर्थंकरोंका निर्वाण होता है, उस स्थानपर सौधर्म इन्द्र चिह्न लगा देता है। उसी स्थानपर भक्त लोग उन तीर्थंकर भगवान्के चरण-चिह्न स्थापित कर देते हैं। आचार्य समन्तभद्रने स्वयम्भू-स्तोत्रमें भगवान् नेमिनाथकी स्तुति करते हुए बताया है कि ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वतपर इन्द्रने भगवान् नेमिनाथके चरण-चिह्न उत्कीर्ण किये।

तीर्थंकरोंके निर्वाण-क्षेत्र कुल पाँच हैं—कैलास, चम्पा, पावा, ऊर्जयन्त और सम्मेदशिखर। पूर्वके चार क्षेत्रोंपर क्रमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए। शेष बीस तीर्थंकरोंने सम्मेद-शिखरसे मुक्ति प्राप्त की। इन पाँच निर्वाण-क्षेत्रोंके अतिरिक्त अन्य मुनियोंकी निर्वाणभूमियाँ हैं, जिनमें-से कुछके नाम निर्वाण-भक्तिमें दिये हुए हैं।

कल्याणक क्षेत्र—ये वे क्षेत्र हैं, जहाँ किसी तीर्थंकरका गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण (दीक्षा) और केवलज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे मिथिलापुरी, भद्रिकापुरी, हस्तिनापुर आदि।

अतिशय क्षेत्र—जहाँ किसी मन्दिरमें या मूर्तिमें कोई चमत्कार दिखाई दे, तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है। जैसे श्री महावीरजी, देवगढ़, हुम्मच आदि। जो निर्वाण-क्षेत्र अथवा कल्याणक-क्षेत्र नहीं हैं, वे सभी अतिशय-क्षेत्र कहे जाते हैं।

तीर्थोंका माहात्म्य

संसारमें प्रत्येक स्थान समान हैं, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका प्रभाव हर स्थानको दूसरे स्थानसे पृथक् कर देता है। द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिवर्तन हम नित्य देखते हैं। इससे भी अधिक व्यक्तिके भावों और विचारोंका चारों ओरके वातावरणपर प्रभाव पड़ता है। जिनके आत्मामें विशुद्ध या शुभ भावोंकी स्फुरणा होती है, उनमें-से शुभ तरंगें निकलकर आसपासके सम्पूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लेती हैं। उस वातावरणमें शुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है। ये तरंगें कितने वातावरणको घेरती हैं, इसके लिए यही कहा जा सकता है कि उन भावोंमें, उस व्यक्तिशुचिता आदिमें जितनी प्रबलता और वेग होगा, उतने वातावरणमें वे तरंगें फैल जाती हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्तिके विचारोंमें जितनी कषाय और विषयोंकी लालसा होगी, उतने परिमाणमें, वह अपनी शक्ति द्वारा सारे वातावरणको दूषित कर देता है। इतना ही नहीं, वह शरीर भी पुद्गल-परमाणु और उसके चारों ओरके वातावरणके कारण दूषित हो जाता है। उसके अशुद्ध विचारों और अशुद्ध शरीरसे अशुद्ध परमाणुओंकी तरंगें निकलती रहती हैं, जिससे वहाँके वातावरणमें फैलकर वे परमाणु दूसरेके विचारोंको भी प्रभावित करते हैं।

प्रायः सर्वस्वत्यागी और आत्मकल्याणके मार्गके राही एकान्त शान्तिकी इच्छासे वनोंमें, गिरि-कन्दराओंमें, सुरम्य नदी-तटोंपर आत्मध्यान लगाया करते थे। ऐसे तपस्वी-जनोंके शुभ परमाणु उस सारे वातावरणमें फैलकर उसे पवित्र कर देते थे। वहाँ जाति-विरोधी जीव आते तो न जाने उनके मनका भय और संहारकी भावना कहाँ तिरोहित हो जाती। वे उस तपस्वी मुनिकी पुण्य भावनाकी स्निग्ध छायामें परस्पर किलोल करते और निर्भय विहार करते थे।

इसी आशयको भगवज्जिनसेनने आदिपुराण २।३-२६ में व्यक्त किया है। मगध नरेश श्रेणिक गौतम गणधरकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"आपका यह मनोहर तपोवन, जो कि विपुलाचल पर्वतके चारों ओर विद्यमान है, प्रकट हुए दयावनके समान मेरे मनको आनन्दित कर रहा है। इस ओर ये हथिनियाँ सिंहके बच्चेको अपना दूध पिला रही हैं और ये हाथीके बच्चे स्वेच्छासे सिंहनीके स्तनोंका पान कर रहे हैं।"

इस प्रकारका चमत्कार तो तपस्वी और ऋद्धिधारी वीतराग मुनियोंकी तपोभूमिमें भी देखनेको मिलता है। जो उस तपोभूमिमें जाता है, वह संसारकी आकुलता-व्याकुलताओंसे कितना ही प्रभावित क्यों न हो, मुनिजनोंकी तपोभूमिमें जाते ही उसे निराकुल शान्तिका अनुभव होने लगता है और वह जबतक उस तपोभूमिमें ठहरता है, संसारकी चिन्ताओं और आधि-व्याधियोंसे मुक्त रहता है।

जब तपस्वी और ऋद्धिधारी मुनियोंका इतना प्रभाव होता है तो तीन लोकके स्वामी तीर्थंकर भगवान्के प्रभावका तो कहना ही क्या है। उनका प्रभाव तो अचिन्त्य है, अलौकिक है। तीर्थंकर प्रकृति सम्पूर्ण पुण्य प्रकृतियोंमें सर्वाधिक प्रभावशाली होती है और उसके कारण अन्य प्रकृतियोंका अनुभाग सुखरूप परिणत हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी पुण्य वर्गणाएँ इतनी तेजस्वी और बलवती होती हैं कि तीर्थंकर जब माताके गर्भमें आते हैं, उससे छह माह पूर्वसे ही वे देवों और इन्द्रोंको तीर्थंकरके चरणोंका विनम्र सेवक बना देती हैं। इन्द्र छह माह पूर्व ही कुबेरको आज्ञा देता है—"भगवान् त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभुका छह माह पश्चात् गर्भावतरण होनेवाला है। उनके स्वागतकी तैयारी करो। त्रिलोकीनाथके उपयुक्त निवास स्थान बनाओ। उनके आगमनके उपलक्ष्यमें अभीसे उनके जन्म पर्यन्त रत्न और स्वर्णकी वर्षा करो, जिससे उनके नगरमें कोई निर्धन न रहे।"

ऐसे वे तीर्थंकर भगवान् जिस नगरमें जन्म लेते हैं, वह नगर उनकी चरण-धूलिसे पवित्र हो जाता है। जहाँ वे दीक्षा लेते हैं, उस स्थानका कण-कण उनके विराग रंजित कठोर तप और आत्मसाधनासे शुचिताको प्राप्त हो जाता है। जिस स्थानपर उन्हें केवलज्ञान होता है, वहीं देव समवसरणकी रचना करते हैं, जहाँ भगवान्की दिव्य ध्वनि प्रकट होकर धर्मचक्रका प्रवर्तन होता है और अनेक भव्य जीव संयम ग्रहण करके आत्म-कल्याण करते हैं, वहाँ तो कल्याणका आकाशचुम्बी मानस्तम्भ ही गड़ जाता है, जो संसारके प्राणियोंको आमन्त्रण देता है—'आओ और अपना कल्याण करो।' इसी प्रकार जहाँ तीर्थंकर देव शेष अघातिया कर्मोंका विनाश करके निरंजन परमात्म दशाको प्राप्त होते हैं, वह तो शान्ति और कल्याणका ऐसा अजस्र स्रोत बन जाता है, जहाँ भक्ति-भावसे जानेवालोंको अवश्य शान्ति मिलती है और अवश्य ही उनका कल्याण होता है। निर्वाण ही तो परम पुरुषार्थ है, जिसके कारण अन्य कल्याणकोंका भी मूल्य और महत्त्व है।

यह माहात्म्य अन्य मुनियोंके निर्वाण-स्थानका भी है। यह माहात्म्य उस स्थानका नहीं है, किन्तु उन तीर्थंकर प्रभुका है या उन निष्काम तपस्वी मुनिराजोंका है, जिनके अन्तरमें आत्यन्तिक शुद्धि प्रकट हुई, जिनकी आत्मा जन्म-मरणसे मुक्त होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो चुकी है। इसीलिए तो आचार्य शुभचन्द्रने ज्ञानार्णवमें कहा है—

सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे पुराणपुरुषाश्रिते।
कल्याणकलिते पुण्ये ध्यानसिद्धिः प्रजायते॥

सिद्धक्षेत्र महान् तीर्थ होते हैं। यहाँपर महापुरुषका निर्वाण हुआ है। यह क्षेत्र कल्याणदायक है तथा पुण्यवर्द्धक होता है। यहाँ आकर यदि ध्यान किया जाये तो ध्यानकी सिद्धि हो जाती है। जिसको ध्यान-सिद्धि हो गयी, उसे आत्म-सिद्धि होनेमें विलम्ब नहीं लगता।

तीर्थ-भूमियोंका माहात्म्य वस्तुतः यही है कि वहाँ जानेपर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर उस महापुरुषकी भक्तिसे आत्मकल्याणकी ओर होती है। घरपर मनुष्यको नाना प्रकारकी सांसारिक चिन्ताएँ और आकुलताएँ रहती हैं। उसे घरपर आत्मकल्याणके लिए निराकुल अवकाश नहीं मिल पाता। तीर्थ-स्थान प्रशान्त स्थानोंपर होते हैं। प्रायः तो वे पर्वतोंपर या एकान्त वनोंमें नगरोंके कोलाहलसे दूर होते हैं। फिर वहाँके वातावरणमें भी प्रेरणाके बीज छितराये होते हैं। अतः मनुष्यका मन वहाँ शान्त, निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान्की भक्ति और आत्म-साधनामें लगता है। संक्षेपमें, तीर्थक्षेत्रोंका माहात्म्य इन शब्दोंमें कहा जा सकता है—

श्रीतीर्थपान्थरजसा विरजीभवन्ति तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नराः स्थिरसंपदः स्युः पूज्या भवन्ति जगदीशमथाश्रयन्तः॥

अहा! तीर्थभूमिके मार्गकी रज इतनी पवित्र होती है कि उसके आश्रयसे मनुष्य रजरहित अर्थात् कर्म मल रहित हो जाता है। तीर्थोंपर भ्रमण करनेसे अर्थात् यात्रा करनेसे संसारका भ्रमण छूट जाता है। तीर्थपर धन व्यय करनेसे अविनाशी सम्पदा मिलती है। और जो तीर्थपर जाकर भगवान्की शरण ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् भगवान्के मार्गको जीवनमें उतार लेते हैं, वे जगत्पूज्य हो जाते हैं।

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य यदि एक शब्दमें प्रकट किया जाये तो वह है आत्म-विशुद्धि। शरीरकी शुद्धि तैल-साबुन और अन्य प्रसाधनोंसे होती है। वाणीकी शुद्धि लवंग, इलायची, सौंफ आदिसे होती है, ऐसी लोक-मान्यता है। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि पवित्र नदियों, सागरों और भगवान्के नाम संकीर्तनसे सर्वांग विशुद्धि होती है। कुछ मानते हैं कि तीर्थ-क्षेत्रकी यात्रा करने मात्रसे पापोंका क्षय और पुण्यका संग्रह हो जाता है। किन्तु यह बहिर्दृष्टि है। बहिर्दृष्टि अर्थात् बाहरी साधनोंकी ओर उन्मुखता। किन्तु तीर्थ-यात्राका उद्देश्य

बाह्यशुद्धि नहीं है, वह हमारा साध्य नहीं है. न हमारा लक्ष्य ही बाह्यशुद्धि मात्र है। वह तो हम घरपर भी कर लेते हैं। तीर्थ-यात्राका ध्येय आत्म-शुद्धि है, आत्माकी ओर उन्मुखता, परसे निवृत्ति और आत्म-प्रवृत्ति हमारा ध्येय है। बाह्यशुद्धि तो केवल साधन है और वह भी एक सीमा तक। तीर्थ-यात्रा करने मात्रसे ही आत्म-शुद्धि नहीं हो जाती। तीर्थ-यात्रा तो आत्म-शुद्धिका एक साधन है। तीर्थपर जाकर वीतराग मुनियों और तीर्थंकरोंके पावन चरित्रका स्मरण करके हम उनकी उस साधनापर विचार करें, जिसके द्वारा उन्होंने शरीर-शुद्धिकी चिन्ता छोड़कर आत्माको कर्म-मलसे शुद्ध किया। यह विचार करके हम भी वैसी साधनाका संकल्प लें और उसकी ओर उन्मुख होकर वैसा प्रयत्न करें।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है कि जिसने तीर्थकी जितनी अधिक बार वन्दना की अथवा किसी स्तोत्रका जितना अधिक बार पाठ किया या भगवान्की पूजामें जितना अधिक समय लगाया, उतना अधिक धर्म किया। ऐसी धारणा पुण्य और धर्मको एक माननेकी परम्परासे पैदा हुई है। जिस क्रियाका आत्म-शुद्धि, आत्मोन्मुखतासे कोई नाता नहीं, वह क्रिया पुण्यदायक और पुण्यवर्द्धक हो सकती है, वह भी तब, जब मनमें शुभ भाव हों, शुभ राग हों।

पुण्य या शुभ राग साधन है, साध्य नहीं। पुण्य बाह्य साधन तो जुटा सकता है, आत्माकी विशुद्धि नहीं कर सकता। आत्माकी विशुद्धि आत्माके निज पुरुषार्थसे होगी और वह शुभ-अशुभ दोनों रागोंके निरोध-से होगी। तीर्थ-भूमियाँ हमारे लिए ऐसे साधन और अवसर प्रस्तुत करती हैं। वहाँ जाकर भक्त जन उस भूमिसे सम्बन्धित महापुरुषका स्मरण, स्तवन और पूजन करते हैं तथा उनके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अपनी आत्माकी ओर उन्मुख होते हैं। पुण्यकी प्रक्रिया सरल है, आत्म-शुद्धिकी प्रक्रिया समझनेमें भी कठिन है और करनेमें भी।

किन्तु एक बात स्मरण रखनेकी है। भक्त जन घाटेमें नहीं रहता। वह पाप और अशुभ संकल्प-विकल्पोंको छोड़कर तीर्थ-यात्राके शुभ भावोंमें लीन रहता है। वह अपना समय तीर्थ-वन्दना, भगवान्का पूजन, स्तुति आदिमें व्यतीत करता है। इससे वह पुण्य संचय करता है और पापोंसे बचता है। जब वह आत्माकी ओर उन्मुख होता है तो कर्मोंका क्षय करता है, आत्म-विशुद्धि करता है। अर्थात् स्वकी ओर उपयोग जाता है तो असंख्यात गुनी कर्म-निर्जरा करता है और पर (भगवान् आदि) की ओर उपयोग जाता है तो पुण्यानुबन्धी पुण्य संचय करता है। यही है तीर्थ-यात्राका उद्देश्य और तीर्थ-यात्राका वास्तविक लाभ।

तीर्थ-यात्रासे आत्म-शुद्धि होती है, इस सम्बन्धमें श्री चामुण्डराय 'चारित्रसार' में कहते हैं—

तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्ममलकलङ्कस्य स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरशुचित्वं, तत्साधनानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि। तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छु-चिव्यपदेशमर्हन्ति। (अशुचि अनुप्रेक्षा)

अर्थात् विशुद्ध ध्यानरूपी जलसे कर्म-मलको धोकर आत्मामें स्थित होनेको आत्माकी विशुद्धि कहते हैं। यह विशुद्धि अलौकिक होती है। आत्म-विशुद्धिके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, सम्यक्-तप और इनसे युक्त साधु और उनके स्थान निर्वाणभूमि आदि साधन हैं। ये सब आत्म-शुद्धि प्राप्त करनेके उपाय हैं। इसलिए इन्हें भी पवित्र कहते हैं।

गोम्मटसारमें आचार्य नेमिचन्द्रने कहा है—

"क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनां निष्क्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्।"

अर्थात् निष्क्रमण (दीक्षा) और केवल-ज्ञानके स्थान आत्मगुणोंकी प्राप्तिके साधन हैं।

तीर्थ-पूजा

वसुनन्दी श्रावकाचारमें क्षेत्र-पूजाके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है—

'जिणजम्मण णिक्खमणे णाणुप्पत्तीए तित्थतिण्हेसु ।
णिसिहीसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा' ॥४५२॥

अर्थात् जिन-भगवान्की जन्मकल्याणक भूमि, निष्क्रमण कल्याणक भूमि, केवलज्ञानोत्पत्ति स्थान, तीर्थचिह्न स्थान और निषीधिका अर्थात् निर्वाण-भूमियोंमें पूर्वोक्त विधानसे की हुई पूजा क्षेत्र-पूजा कहलाती है।

आचार्य गुणभद्र 'उत्तर-पुराण' में बतलाते हैं कि निर्वाण-कल्याणकका उत्सव मनानेके लिए इन्द्रादि-देव स्वर्गसे उसी समय आये और गन्ध, अक्षत आदिसे क्षेत्रकी पूजा की और पवित्र बनाया।

'कल्पान्निर्वाणकल्याणमन्वेत्यामरनायकाः ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य तत्क्षेत्रमपवित्रयन् ॥

—उत्तरपुराण ६६।६३

पाँच कल्याणकोंके समय इन्द्र और देव भगवान्की पूजा करते हैं। और भगवान्के निर्वाण-गमनके बाद इन कल्याणकोंके स्थान ही तीर्थ बन जाते हैं। वहाँ जाकर भक्त जन भगवान्के चरणचिह्न अथवा मूर्तिकी पूजा करते हैं तथा उस क्षेत्रकी पूजा करते हैं। यही तीर्थ-पूजा कहलाती है। वस्तुतः तीर्थ-पूजा भगवान्का स्मरण कराती है क्योंकि तीर्थ भी भगवान्के स्मारक हैं। अतः तीर्थ-पूजा प्रकारान्तरसे भगवान्की ही पूजा है।

तीर्थक्षेत्र और मूर्ति-पूजा

जैन धर्ममें मूर्ति-पूजाके उल्लेख प्राचीनतम कालसे पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरुषकी की जाती है। पूज्य पुरुष मौजूद न हों तो उसकी मूर्ति बनाकर उसके द्वारा पूज्य पुरुषकी पूजा की जाती है। तदाकार स्थापनाका आशय भी यही है। इसलिए इतिहासातीत कालसे जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्तियोंके निर्माण और उनकी पूजाके उल्लेखसे तो सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है। जैन धर्ममें मूर्तियोंके दो प्रकार बतलाये गये हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम। कृत्रिम प्रतिमाओंसे अकृत्रिम प्रतिमाओंकी संख्या असंख्य गुणी बतायी है। जिस प्रकार प्रतिमाएँ कृत्रिम और अकृत्रिम बतलायी हैं, उसी प्रकार चैत्यालय भी दो प्रकारके होते हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम।

ये चैत्यालय नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकरगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकारगिरि, अंजनगिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवनवासियोंके पाताललोकमें पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या ८५६९७४८१ बतलायी गयी है। इन अकृत्रिम चैत्यालयोंमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं। सौधर्मेन्द्रने युगके आदिमें अयोध्यामें पाँच मन्दिर बनाये और उनमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान कीं।

कृत्रिम प्रतिमाओंका जहाँ तक सम्बन्ध है, सर्वप्रथम भरत क्षेत्रके प्रथम चक्रवर्ती भरतने अयोध्या और कैलासमें मन्दिर बनवाकर उनमें स्वर्ण और रत्नोंकी मूर्तियाँ विराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त जहाँ-पर बाहुबली स्वामीने एक वर्ष तक अचल प्रतिमायोग धारण किया था, उस स्थानपर उन्हींके आकारकी अर्थात् पाँच सौ पचीस धनुषकी प्रतिमा निर्मित करायी। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि दूसरे तीर्थंकर अजितनाथके कालमें सगर चक्रवर्तीके पुत्रोंने तथा बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें मुनिराज बाली और प्रतिनारायण रावणने कैलास पर्वतपर इन बहत्तर जिनालयोंके तथा रामचन्द्र और सीताने बाहुबली स्वामीकी उक्त प्रतिमाके दर्शन और पूजा की थी।

पुरातात्त्विक दृष्टिसे जैन मूर्ति-कलाका इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुँचता है। सिन्धुघाटीकी खुदाईमें मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पासे जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें मस्तकहीन नग्न मूर्ति तथा सीलपर अंकित ऋषभ जिनकी मूर्ति जैन धर्मसे सम्बन्ध रखती हैं। अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओंने यह स्वीकार कर लिया है कि कायोत्सर्गासनमें आसीन योगी-प्रतिमा आद्य जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी प्रतिमा है।

भारतमें उपलब्ध जैन मूर्तियोंमें सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन मूर्ति तेरापुरके लयणोंमें स्थित पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ हैं। इनका निर्माण पौराणिक आख्यानोंके अनुसार कलिंगनरेश करकण्डुने कराया था, जो पार्श्वनाथ और महावीरके अन्तरालमें हुआ था। यह काल ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी होता है।

इसके बादकी मौर्यकालीन एक मस्तकहीन जिनमूर्ति पटनाके एक मुहल्ले लोहानीपुरसे मिली है। वहाँ एक जैन मन्दिरकी नींव भी मिली है। मूर्ति पटनाके संग्रहालयमें सुरक्षित है। वैसे इस मूर्तिका हड़प्पासे प्राप्त नग्नमूर्तिके साथ अद्भुत साम्य है।

ईसा पूर्व पहली-दूसरी शताब्दीके कलिंगनरेश खारवेलके हाथी-गुम्फा शिलालेखसे प्रमाणित है कि कलिंगमें सर्वमान्य एक 'कलिंग-जिन' की प्रतिमा थी, जिसे नन्दराज (महापद्मनन्द) ई. पूर्व. चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें कलिंगपर आक्रमण कर अपने साथ मगध ले गया था। और फिर जिसे खारवेल मगधपर आक्रमण करके वापस कलिंग ले आया था।

इसके पश्चात् कुषाण काल (ई. पू. प्रथम शताब्दी तथा ईसाकी प्रथम शताब्दी) की और इसके बादकी तो अनेक मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ़, पभोसा आदि स्थानोंपर मिली हैं।

तीर्थ और मूर्तियोंपर समयका प्रभाव

ये मूर्तियाँ केवल तीर्थक्षेत्रोंपर ही नहीं मिलतीं, नगरोंमें भी मिलती हैं। तीर्थंकरोंके कल्याणक-स्थानों और सामान्य केवलियोंके केवलज्ञान और निर्वाण-स्थानोंपर प्राचीन कालमें, ऐसा लगता है, उनकी मूर्तियाँ विराजमान नहीं होती थीं। तीर्थंकरोंके निर्वाण-स्थानको सौधर्मेन्द्र अपने वज्रदण्डसे चिह्नित कर देता था। उस स्थानपर भक्त लोग चरण-चिह्न बनवा देते थे। तीर्थंकरोंके पाँच निर्वाण-स्थान हैं। उनपर प्राचीन कालसे अबतक चरण-चिह्न ही बने हुए हैं और सब उन्हींकी पूजा करते हैं। शेष तीर्थ-स्थानोंपर प्राचीन कालमें चरण-चिह्न रहे। किन्तु वहाँ मूर्तियाँ कबसे विराजमान की जाने लगीं, यह कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि वर्तमानमें किसी भी तीर्थपर कोई मन्दिर और मूर्ति अधिक प्राचीन नहीं है। भारतीय इतिहासकी कुछ शताब्दियाँ जैनधर्म और जैन धर्मानुयायियोंके लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण रहीं, जबकि लाखों जैनोंको बलात् धर्म-परिवर्तन करना पड़ा, लाखोंको अपना मातृस्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ा और अपने अस्तित्वकी रक्षा और निवासके लिए नये स्थान खोजने पड़े। ऐसे ही कालमें अनेक तीर्थक्षेत्रोंसे जैनोंका सम्पर्क टूट गया। वे क्षेत्र विरोधियों के क्षेत्रमें होनेके कारण वहाँकी यात्रा बन्द हो गयी। अनेक मन्दिरोंको विरोधियोंने तोड़ डाला, अनेक मन्दिरोंपर जैनेतरोंने अधिकार कर लिया। ऐसे ही कालमें जैन लोग अपने कई तीर्थोंका वास्तविक स्थान ही भूल गये। फिर भी उन्होंने तीर्थ-भक्तिसे प्रेरित होकर उन तीर्थोंकी नये स्थानोंपर उन्हीं नामोंसे, स्थापना और संरचना कर ली। कुछ जैन तीर्थोंका नवनिर्माण पिछली कुछ शताब्दियोंमें ही किया गया है। उनके मूल स्थानोंकी खोज होना अभी शेष है।

तीर्थोंपर प्रायः चरणचिह्न ही रहते थे और उनके लिए एकाध मन्दिर बनाया जाता था। जब मन्दिरोंका महत्त्व बढ़ने लगा तो तीर्थोंपर भी अनेक मन्दिरोंका निर्माण होने लगा।

तीर्थोंपर तीर्थंकरोंकी जो मूर्तियाँ निर्मित होती थीं उनका अध्ययन करनेसे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि वे सभी नग्न वीतराग होती थीं। जितनी प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं, वे सभी नग्न हैं।

सम्भवतः मथुरामें सर्वप्रथम ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिन प्रतिमाओंके चरणोंके पास वस्त्र खण्ड मिलता है। कडोरा या लंगोटसे चिह्नित प्रतिमाओंके निर्माणका काल तो गुप्तोत्तर युग माना जाता है और उस समय भी इस प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण अपवाद ही माना जा सकता है।

जब निर्ग्रन्थ जैन संघमें-से फूटकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकला, तो उसे एक सम्प्रदायके रूपमें व्यवस्थित रूप लेनेमें ही काफी समय लग गया। इतिहासकी दृष्टिसे इसे ईसाकी छठी शताब्दी माना गया है। इसके भी पर्याप्त समयके बाद वीतराग तीर्थंकर मूर्तियोंपर वस्त्रके चिह्नका अंकन किया गया। धीरे-धीरे यह विकार बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच गया कि जिन-मूर्तियाँ वस्त्रालंकारोंसे आच्छादित होने लगीं और उनकी वीतरागता इस परिग्रहके आडम्बरमें दब गयी। किन्तु दिगम्बर परम्परामें भगवान् तीर्थंकरके वीतराग रूपकी रक्षा अबतक अक्षुण्ण रूपसे चली आ रही है।

तीर्थ-क्षेत्रोंमें प्राचीन कालसे स्तूप, आयागपट्ट, धर्मचक्र, अष्ट प्रातिहार्य युक्त तीर्थंकर मूर्तियोंका निर्माण होता था और वे जैन कलाके अप्रतिम अंग माने जाते थे। किन्तु ११वीं-१२वीं शताब्दियोंके बादसे तो प्रायः इनका निर्माण समाप्त-सा हो गया। इस बीसवीं शताब्दीमें आकर मूर्ति और मन्दिरोंका निर्माण संख्याकी दृष्टिसे तो बहुत हुआ है किन्तु अब तीर्थंकर-मूर्तियाँ एकाकी बनती हैं, उनमें न अष्ट प्रातिहार्यकी संयोजना होती है, न उनका कोई परिकर होता है। उनमें भावाभिव्यंजना और सौन्दर्यका अंकन सजीव होता है।

पूजाकी विधि और उसका क्रमिक-विकास

श्रावकके दैनिक आवश्यक कर्मोंमें आचार्य कुन्दकुन्दने प्राभृतमें तथा वरांगचरित और हरिवंश-पुराण-में दान, पूजा, तप और शील ये चार कर्म बतलाये हैं। भगवज्जिनसेनने इसको अधिक व्यापक बनाकर पूजा, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तपको श्रावकके आवश्यक कर्म बतलाये। सोमदेव और पद्मनन्दिने देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षडावश्यक कर्म बतलाये।

इन सभी आचार्योंने देव-पूजाको श्रावकका प्रथम आवश्यक कर्तव्य बताया है। परमात्मप्रकाश (१६८) में तो यहाँ तक कहा गया है कि "तूने न तो मुनिराजोंको दान ही किया, न जिन भगवान्‌की पूजा ही की, न पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया, तब तुझे मोक्षका लाभ कैसे होगा?" इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्‌की पूजा श्रावकको अवश्य करनी चाहिए। भगवान्‌की पूजा मोक्ष-प्राप्तिका एक उपाय है।

आदि-पुराण—पर्व ३८ में पूजाके चार भेद बताये हैं—नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पद्रुमपूजा और अष्टाह्निकपूजा। अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत ले जाकर जिनालयमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह (पूजा) कहलाता है। मन्दिर और मूर्तिका निर्माण करना, मुनियोंकी पूजा करना भी नित्यमह कहलाता है। मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की गयी पूजा चतुर्मुख पूजा कहलाती है। चक्रवर्ती द्वारा की जानेवाली पूजा कल्पद्रुम पूजा होती है। और अष्टाह्निकामें नन्दीश्वर द्वीपमें देवों द्वारा की जानेवाली पूजा अष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

पूजा अष्टद्रव्यसे की जाती है—जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल। इस प्रकारके उल्लेख प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थोंमें मिलते हैं। तिलोयपण्णत्ति (पंचम अधिकार, गाथा १०२ से १११) में नन्दीश्वर द्वीपमें अष्टाह्निकामें देवों द्वारा भक्तिपूर्वक की जानेवाली पूजाका वर्णन है। उसमें अष्टद्रव्योंका वर्णन आया है। धवला टीकामें भी ऐसा ही वर्णन है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व १७, श्लोक २५२) में भरत द्वारा तथा पर्व २३, श्लोक १०६ में इन्द्रों द्वारा भगवानकी पूजाके प्रसंगमें अष्टद्रव्यों-का वर्णन आया है।

पूजन विधिके प्रसंगमें समाजमें कुछ मान्यता-भेद है। अष्टद्रव्योंके नामोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। केवल मतभेद है सचित्त और अचित्त (प्रासुक) सामग्रीके बारेमें। एक वर्गकी मान्यता है कि अष्ट-द्रव्योंमें जो नाम हैं, पूजनमें वे ही वस्तु चढ़नी चाहिए। इसके विपरीत दूसरी मान्यता है कि सचित्त वस्तुमें जीव होते हैं, उनकी हिंसाकी सम्भावनासे बचनेके लिए प्रासुक वस्तुओंका ही व्यवहार उचित है।

मतभेदका दूसरा मुद्दा है—भगवान्पर केशर चर्चित करनेका। इसके पक्षमें तर्क यह दिया जाता है कि अष्टद्रव्योंमें दूसरा द्रव्य चन्दन या गन्ध है। उसका एक मात्र प्रयोजन है भगवान्पर गन्ध विलेपन करना। दूसरा पक्ष इस बातको भगवान् वीतराग प्रभुकी वीतरागताके विरुद्ध मानता है और गन्धलेपको परिग्रह स्वीकार करता है।

पूजनके सम्बन्धमें तीसरा विवाद इस बातको लेकर है कि पूजन बैठकर किया जाये या खड़े होकर।

चौथा विवादास्पद विषय है भगवान्का पंचामृताभिषेक अर्थात् घृत, दूध, दही, इक्षुरस और जल।

पाँचवाँ मान्यता-भेद है स्त्रियों द्वारा भगवान्का प्रक्षाल।

इन मान्यता-भेदोंके पक्ष-विपक्षमें पड़े बिना हमारा विनम्र मत है कि भगवान्का पूजन भगवान्के प्रति अपनी विनम्र भक्तिका प्रदर्शन है। यह कषायको कृश करने, मनको अशुभसे रोककर शुभमें प्रवृत्त करने और आत्म-शान्ति प्राप्त करनेका साधन है। साधनको साधन मानें, उसे साध्य न बना लें तो मान्यता-भेदका प्रभाव कम हो जाता है। शास्त्रोंको टटोलें तो इस या उस पक्षका समर्थन शास्त्रोंमें मिल जायेगा। जिस आचार्यने जिस पक्षको युक्तियुक्त समझा, उन्होंने अपने ग्रन्थमें वैसा ही कथन कर दिया। उन्हें न किसी पक्षका आग्रह था और न किसी दूसरे पक्षके प्रति द्वेष-भाव।

हमें लगता है, अपने पक्षके प्रति दुराग्रह और दूसरे पक्षके प्रति आक्रोश और द्वेष-बुद्धि, यह कषाय में-से उपजता है। इसमें सन्देह नहीं कि सचित्त फलों और नैवेद्य (मिष्टान्न आदि) का वर्णन तिलोयपण्णत्ति-में नन्दीश्वर द्वीपमें देवताओंके पूजन-प्रसंगमें मिलता है, अन्य शास्त्रोंमें भी मिलता है। किन्तु हमारी विनम्र मान्यतामें जब शुद्धाशुद्धि और हिंसा आदिका विशेष विवेक नहीं रहा, उस काल और क्षेत्रमें सुधारवादी प्रवृत्ति चली और इसपर बल दिया गया कि जो भी वस्तु भगवान्के आगे अर्पण की जाये, वह शुद्ध हो, प्रासुक हो, सूखी हो, जिसमें हिंसाकी सम्भावनासे बचा जा सके। यही बात गन्ध-विलेपन और पंचामृता-भिषेकके सम्बन्धमें है।

धर्म और पुण्य-कार्यको कषायका साधन न बनावें। मनकी चंचलता, मनके संकल्प-विकल्पसे दूर होकर आप भगवान्के गुणोंके संकीर्तन-चिन्तन और अनुभवमें अपने आपको जिस उपायसे, जिस विधिसे केन्द्रित करें वही विधि आपके लिए उपादेय है। दूसरा व्यक्ति क्या करता है, क्या विधि अपनाता है, और उस विधिमें क्या त्रुटि है, आप इसपर अपने उपयोगको केन्द्रित न करके यह आत्म-निरीक्षण करें कि मेरा मन भगवान्के गुणोंमें आत्मसात् क्यों नहीं हुआ, मेरी कहाँ त्रुटि रह गयी, तब फिर क्या मतभेद मन-भेद बन सकते हैं? तीन सौ तिरेसठ विरोधी मतोंके विविध रंगी फूलोंसे स्याद्वादका सुन्दर गुलदस्ता बनानेवाला जैन धर्म एक ही वीतराग जिनेन्द्र भगवान्के भक्तोंकी विविध प्रकारकी पूजन-विधियोंके प्रति अनुदार और असहिष्णु बनकर उनकी मीमांसा करता फिरेगा? और क्या जिनेन्द्र प्रभुका कोई भक्त कषायको कृश करनेकी भावनासे जिनेन्द्र प्रभुके समक्ष यह दावा लेकर जायेगा कि जिस विधिसे मैं प्रभुकी पूजा करता हूँ, वही विधि सबके लिए उपादेय है? नहीं, बिलकुल नहीं। हमारे अज्ञान और कुज्ञानमें-से दम्भ घूरता है और दम्भ अर्थात् मदमें-से स्वके प्रति राग और परके प्रति द्वेष निपजता है। यह सम्यक् मार्ग नहीं है, यह मिथ्या-मार्ग है।

तीर्थ-यात्राका समय

यों तो तीर्थ-यात्रा कभी भी की जा सकती है। जब भी यात्रा की जाये, पुण्य-संचय ही होगा। किन्तु अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर यात्रा करना अधिक उपयोगी रहता है। द्रव्यकी सुविधा होनेपर यात्रा करना अधिक फलदायक होता है। यदि यात्राके लिए द्रव्यकी अनुकूलता न हो, द्रव्यका कष्ट हो और यात्राके निमित्त कर्ज लिया जाये तो उससे यात्रामें निश्चिन्तता नहीं आ पाती, संकल्प-विकल्प बने रहते हैं। किस या किन क्षेत्रोंकी यात्रा करनी है, वे क्षेत्र पर्वतपर स्थित हैं, जंगलमें हैं, शहरमें हैं अथवा सुदूर देहाती अंचलमें हैं। वहाँ जानेके लिए रेल, बस, नाव, रिक्शा-ताँगा या पैदल किस प्रकारकी यातायातकी सुविधा है, यह जानकारी यात्रा करनेसे पूर्व कर लेना आवश्यक है। इसके साथ-साथ कालकी अनुकूलता भी आवश्यक है। जैसे सम्मेदशिखरकी यात्रा तीव्र ग्रीष्म ऋतुमें अथवा वर्षा ऋतुमें करनेसे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। उत्तराखण्डके तीर्थोंके लिए वर्षा ऋतु अथवा सर्दीकी ऋतु अनुकूल नहीं है। उसके लिए ग्रीष्म ऋतु ही उपयुक्त है। कई तीर्थोंपर नदियोंमें बाढ़ आनेपर यात्रा नहीं हो सकती। कुछ तीर्थोंको छोड़कर उदाहरणतः उत्तराखण्डके तीर्थ—शेष तीर्थोंकी यात्राका सर्वोत्तम अनुकूल समय अक्टूबरसे लेकर मार्च तकका है। इसमें मौसम प्रायः साफ रहता है, बाढ़ आदिका प्रकोप समाप्त हो चुकता है, ठण्डे दिन होते हैं। गर्मीकी बाधा नहीं रहती। शरीरमें स्फूर्ति रहती है। यह मौसम पर्वतीय और मैदानी, शहरी और देहाती सभी प्रकारके तीर्थोंकी यात्राके लिए अनुकूल है। भावोंकी अनुकूलता यह है कि यात्रापर जानेके पश्चात् अपने भावोंको भगवान्की भक्ति-पूजा, स्तुति, स्तोत्र, जाप, कीर्तन, धर्म-चर्चा, स्वाध्याय और आत्मध्यानमें लगाना चाहिए। अन्य सांसारिक कथाएँ, राजनीतिक चर्चाएँ नहीं करनी चाहिए।

तीर्थ-यात्राका अधिकार

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य, जैसा कि हम निवेदन कर आये हैं, पापोंसे मुक्ति और आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना है। जो भी व्यक्ति इन उद्देश्योंसे तीर्थ-यात्रा करना चाहता है, वह कर सकता है। उसके लिए मुख्य शर्त है जिनेन्द्र प्रभुके प्रति भक्ति। जो प्रदर्शनके लिए ही तीर्थोंपर जाना चाहते हैं, उनके लिए अधिकारका प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु जो विनय और भक्तिके साथ, वहाँके नियमोंका आदर करते हुए तीर्थ-वन्दनाको जाना चाहें, वे वहाँ जा सकते हैं। तीर्थ-यात्रा अधिकारका प्रश्न न होकर कर्तव्यका प्रश्न है। जो कर्तव्यको अपना अधिकार मानते हैं, उनके लिए अधिकारका कोई प्रश्न नहीं उठता। किन्तु जो अधिकारको ही अपना कर्तव्य बना लेते हैं, उनका उद्देश्य तीर्थ-वन्दना नहीं होता, बल्कि उस तीर्थकी व्यवस्थापर अपना अधिकार करना होता है। तीर्थ तीर्थंकरों या केवलियोंके स्मारक हैं। उनकी उपदेश-सभामें सब जाते थे—मनुष्य, देव, पशु-पक्षी तक। उनके पावन स्मारकस्वरूप तीर्थोंमें सब जायें, मनुष्य मात्र जायें, सभी तीर्थ-व्यवस्थापकोंकी यह हार्दिक कामना होती है। किन्तु उनकी इस सदिच्छाका दुरुपयोग करके कुछ लोग उस तीर्थपर ही अधिकार जताने लगें तो यह प्रश्न यात्राका न रहकर व्यवस्थाके स्वामित्वका बन जाता है। जहाँ प्राणीके कल्याण और विश्व-मैत्रीका घोष उठा था, वहाँ यदि कषायके निर्घोष गूँजने लगें तो फिर तीर्थोंकी पावनता कैसे बनी रह सकती है और तीर्थोंके वातावरणमें-से पावनताका वह स्वर मन्द पड़ जाये तो तीर्थोंका माहात्म्य और उनका अतिशय कैसे बना रह सकता है। आज तीर्थोंपर वैसा अतिशय नहीं दीख पड़ता, जैसा मध्यकाल तक था। और उनके जिम्मेदार हैं वे लोग, जो योजनानुसार आये दिन तीर्थक्षेत्रोंके उन्मुक्त वीतराग वातावरणमें कषायका विषैला धुआँ छोड़कर वहाँ घुटन पैदा किया करते हैं।

प्राचीन कालमें तीर्थ-यात्रा

प्राचीन कालमें तीर्थ-यात्रा कैसे होती थी, इसके लिए कुछ उल्लेख शास्त्रोंमें मिलते हैं अथवा उनके यात्रा-विवरण उपलब्ध होते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि पूर्वकालमें यात्रा-संघ निकलते थे। संघका एक संचा-

लक होता था, जो संघका व्यय उठाता था। संघमें विविध वाहन होते थे—हाथी, घोड़े, रथ, गाड़ी आदि। संघके साथ मुनि भी जाते थे। उस समय यात्रामें कई-कई माह लग जाते थे। महाराज अरविन्द जब मुनि बन गये और जब वे एक बार एक संघके साथ सम्मेद-शिखरकी यात्राके लिए जा रहे थे, अचानक एक जंगली हाथी आक्रमणके उद्देश्यसे उनपर आ झपटा। अरविन्द अवधि-ज्ञानी थे। उन्होंने जाना कि यह तो मेरे मन्त्री मरुभूतिका जीव है। अतः उन्होंने उस हाथीको सम्बोधित करके उपदेश दिया। हाथीने अणुव्रत धारण कर लिये और प्रासुक जल और सूखे पत्तोंपर निर्वाह करने लगा। वही जीव बादमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर बना। इस प्रकारका कथन पौराणिक साहित्यमें मिलता है।

भैया भगवतीदास कृत 'अर्गलपुर जिन-वन्दना' नामक स्तोत्र है। उससे ज्ञात होता है कि रामपुरके श्रावकोंके साथ भैया भगवतीदास यात्रा करते हुए अर्गलपुर (आगरा) आये थे। उन्होंने अपने स्तोत्रमें आगराके तत्कालीन जैन मन्दिरोंका परिचय दिया है। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय जैन समाजमें कितना अधिक साधर्मी वात्सल्य था। तब यात्रा संघके लोग किसी मन्दिरमें दर्शनार्थ जाते थे तो उस मुहल्लेके जैन बन्धु संघके लोगोंको देखकर बड़े प्रसन्न होते थे और उनका भोजन, पानसे सत्कार करते थे। दुख है कि वर्तमानमें साधर्मी वात्सल्य नहीं रहा और न यात्रा-संघोंके स्वागत-सत्कारका ही वह रूप रहा।

यात्रा संघोंके अनेक उल्लेख विभिन्न ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों आदिमें भी मिलते हैं।

तीर्थ-यात्रा कैसे करें ?

वर्तमानमें यातायातके साधनोंकी बहुलता और सुलभताके कारण यात्रा करना पहले-जैसा न तो कष्ट-साध्य रहा है और न अधिक समय-साध्य। यात्रा-संघोंमें यात्रा करनेके पक्ष-विपक्षमें तर्क दिये जा सकते हैं। किन्तु एकाकीकी अपेक्षा यात्रा-संघोंके साथ यात्रा करनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि अनेक परिचित साथियोंके साथ यात्राके कष्ट कम अनुभव होते हैं, समय पूजन, दर्शन, शास्त्र-चर्चा आदिमें निकल जाता है; व्यय भी कम पड़ता है। रेलकी अपेक्षा मोटर-बसों द्वारा यात्रा करनेमें कुछ सुविधा रहती है।

जब यात्रा करनेका निश्चय कर लें तो उसी समयसे अपना मन भगवान्की भक्तिमें लगाना चाहिए और जिस समय घरसे रवाना हों, उसी समयसे घर-गृहस्थीका मोह छोड़ देना चाहिए, व्यापारकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिए तथा अन्य सांसारिक प्रपंचोंसे मुक्त हो जाना चाहिए।

यात्रामें सामान यथासम्भव कम ही रखना चाहिए किन्तु आवश्यक वस्तुएँ नहीं छोड़नी चाहिए। उदाहरणके रूपमें यदि सर्दीमें यात्रा करनी हो तो ओढ़ने-बिछानेके रुईवाले कपड़े (गद्दा और रजाई) तथा पहननेके गर्म कपड़े अवश्य अपने साथमें रखने चाहिए। विशेषतः गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तोंके यात्रियोंको उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशोंके तीर्थोंकी यात्रा करते समय इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। कपड़ोंके अलावा स्टोव, आवश्यक बरतन और कुछ दिनोंके लिए दाल, मसाला, आटा आदि भी साथमें ले जाना चाहिए।

मैदानी इलाकोंके तीर्थोंकी यात्रा किसी भी मौसममें की जा सकती है। जिन दिनों अधिक गर्मी पड़ती और वर्षा होती है, उन्हें बचाना चाहिए—जिससे असुविधा अधिक न हो।

तीर्थक्षेत्रपर पहुँचनेपर यह ध्यान रखना चाहिए कि तीर्थक्षेत्र पवित्र होते हैं। उनकी पवित्रताको किसी प्रकार आन्तरिक और बाह्य रूपसे क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। ज्ञानार्णवमें आचार्य शुभचन्द्रने कहा है—

"जनसंसर्गवाक्चित्तपरिस्पन्दमनोभ्रमाः। उत्तरोत्तरबीजानि ज्ञानिजनमतस्त्यजेत् ॥"

अर्थात् अधिक मनुष्योंका जहाँ संसर्ग होता है, वहाँ मन और वाणीमें चंचलता आ जाती है और मनमें विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। यही सारे अनर्थोंकी जड़ है। अतः ज्ञानी पुरुषोंको अधिक जन-संसर्ग छोड़ देना चाहिए।

यदि शास्त्र-प्रवचन, तत्त्व-चर्चा, प्रभु-पूजन, कीर्तन, सामायिक प्रतिक्रमण या विधान-प्रतिष्ठोत्सव आदि धार्मिक प्रसंग हों तो जन-संसर्ग अनर्थका कारण नहीं है, क्योंकि वहाँ सभीका एक ही उद्देश्य होता है और वह है—धर्म-साधना। किन्तु जहाँ जनसमूहका उद्देश्य धर्म-साधना न होकर सांसारिक प्रयोजन हो, वहाँ जन-संसर्ग संसार-परम्पराका ही कारण होता है।

तीर्थ-क्षेत्रोंपर जो जनसमूह एकत्रित होता है, उसका उद्देश्य धर्म-साधन होता है। यदि उस समूहमें कुछ तत्त्व ऐसे हों जो सांसारिक चर्चाओं और अशुभ रागवर्द्धक कार्योंमें रस लेते हों तो तीर्थोंपर जाकर ऐसे तत्त्वोंके सम्पर्कसे यथासम्भव बचनेका प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने चित्तकी शान्ति और शुद्धि बढ़ानेका ही उपाय करना चाहिए। यही आन्तरिक शुद्धि कहलाती है।

बाह्य शुचिताका प्रयोजन बाहरी शुद्धि है। तीर्थक्षेत्रोंपर जाकर गन्दगी नहीं करनी चाहिए। मल-मूत्र यथास्थान ही करना चाहिए। बच्चोंको भी यथास्थान ही बैठाना चाहिए। दीवालोंपर अश्लील वाक्य नहीं लिखने चाहिए। कूड़ा, राख यथास्थान डालना चाहिए। रसोई यथास्थान करनी चाहिए। सारांश यह है कि तीर्थपर बाहरी सफाईका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

स्त्रियोंको एक बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए। मासिक-धर्मके समय उन्हें मन्दिर, धर्म-सभा, शास्त्र-प्रवचन, प्रतिष्ठा-मण्डप आदिमें नहीं जाना चाहिए। कई बार इससे बड़े अनर्थ और उपद्रव हो जाते हैं।

जब तीर्थ-क्षेत्रके दर्शनके लिए जायें, तब स्वच्छ धुला हुआ (सफेद या केशरिया) धोती-दुपट्टा पहनकर और सामग्री लेकर जाना चाहिए। जहाँ तक हो, पूजनकी सामग्री घरसे ले जाना चाहिए। यदि मन्दिर-की सामग्री लें तो उसकी न्यौछावर अवश्य दे देनी चाहिए। जहाँसे मन्दिरका शिखर या मन्दिर दिखाई देने लगे, वहींसे 'दृष्टाष्टक' अथवा कोई स्तोत्र बोलते जाना चाहिए। क्षेत्रके ऊपर यात्रा करते समय या तो स्तोत्र पढ़ते जाना चाहिए अथवा अन्य लोगोंके साथ धर्म-वार्ता और धर्म-चर्चा करते जाना चाहिए।

क्षेत्रपर और मन्दिरमें विनयका पूरा ध्यान रखना चाहिए। सामग्री यथास्थान सावधानीपूर्वक चढ़ानी चाहिए। उसे जमीनमें, पैरोंमें नहीं गिरानी चाहिए। गन्धोदक भूमिपर न गिरे, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। गन्धोदक कटि भागसे नीचे नहीं लगाना चाहिए। पूजनके समय सिरको ढकना और केशरका तिलक लगाना आवश्यक है।

जिस तीर्थपर जायें और जिस मूर्तिके दर्शन करें, उसके बारेमें पहले जानकारी कर लेना जरूरी है। इससे दर्शनोंमें मन लगता है और मनमें प्रेरणा और उल्लास जागृत होता है।

तीर्थ-यात्राके समय चमड़ेकी कोई वस्तु नहीं ले जानी चाहिए। जैसे—सूटकेस, बिस्तरबन्द, जूते, बैल्ट, घड़ीका फीता, पर्स आदि।

अन्तमें एक निवेदन और है। भगवान्के समक्ष जाकर कोई मनौती नहीं मनानी चाहिए, कोई कामना लेकर नहीं जाना चाहिए। निष्काम भक्ति सभी संकटोंको दूर करती है। स्मरण रखना चाहिए कि भगवान्से सांसारिक प्रयोजनके लिए कामना भक्ति नहीं, निदान होता है। भक्ति निष्काम होती है, निदान सकाम होता है। निदान मिथ्यात्व कहलाता है और मिथ्यात्व संसार और दुखका मूल है।

विषापहार स्तोत्रमें कवि धनंजयने भगवान्के समक्ष कामना प्रकट करनेवालोंकी आँखोंमें उँगली डालकर उन्हें जगाते हुए कितने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात् कश्छायया याचितयात्मलाभः॥

अर्थात् हे देव ! स्तुति कर चुकनेपर मैं आपसे कोई वरदान नहीं माँगता। माँगूं क्या, आप तो वीतराग हैं। और माँगूं भी क्यों ? कोई समझदार व्यक्ति छायावाले पेड़के नीचे बैठकर पेड़से छाया थोड़े ही माँगता है। वह तो स्वयं बिना माँगे ही मिल जाती है। ऐसे ही भगवान्की शरणमें जाकर उनसे किसी बातकी कामना क्या करना। वहाँ जाकर सभी कामनाओंकी पूर्ति स्वतः हो जाती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भाग ४ की संयोजना

प्रस्तुत ग्रन्थ 'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थमालाका चतुर्थ भाग है। इसमें राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र इन तीन प्रान्तोंके दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र सम्मिलित हैं। तीर्थ ग्रन्थमालाके अन्य भागोंके समान इस भागमें प्रान्तोंको जनपदोंमें विभाजित नहीं किया गया अपितु इन तीन प्रदेशोंके आधार पर ही तीर्थोंका परिचय दिया गया है।

आदिपुराणमें जिन ५२ जनपदोंका वर्णन किया गया है, उनमें-से वर्तमान तीन प्रान्तोंमें निम्नलिखित जनपद सम्मिलित थे—

अश्मक, आनर्त, कच्छ, विदर्भ, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, सौवीर और अपरान्तक।

इन जनपदोंका परिचय इसी ग्रन्थमें अन्यत्र दिया गया है। इन जनपदोंमें वर्तमान तीनों प्रान्तोंका सम्पूर्ण भूभाग नहीं आता तथा कुछ जनपद ऐसे भी हैं जिनकी सीमाएँ उपर्युक्त तीनों प्रान्तोंसे बढ़कर अन्य प्रान्तोंमें चली जाती हैं। इन सब कारणोंसे यही उचित समझा गया कि इस भागमें तीर्थक्षेत्रोंका विभाजन जनपदोंके आधारपर न करके प्रान्तोंके आधारपर किया जाय। इसी प्रकार इस भागमें जनपदोंके नक्शे न देकर तीनों प्रान्तोंके अलग-अलग नक्शे दिये गये हैं तथा तीनों प्रान्तोंका एक बड़ा नक्शा भी दिया गया है। इन नक्शोंमें जैन तीर्थोंको लाल वर्णमें दिखाया गया है। तीनों प्रान्तोंके संयुक्त बड़े नक्शेमें यात्रियोंकी सुविधाके लिए तीरके चिह्न भी दिये गये हैं। इन चिह्नोंसे यह समझनेमें सहायता मिल सकेगी कि यात्रा किस क्रमसे करनी चाहिए। ग्रन्थके अन्तमें एक परिशिष्ट भी दिया गया है—राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रके जैन तीर्थ, उनका संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग।

अन्तमें प्रत्येक तीर्थक्षेत्रके मुख्य मन्दिरों, मूलनायक अथवा पुरातात्त्विक और कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण मूर्तियों, मानस्तम्भों, शिखरों, गुहामन्दिरों, शिलालेखों और शासन देवताओंके चित्र दिये गये हैं।

क्षमा-याचना

यहाँ मैं अपनी एक भूलके लिए पाठकोंसे क्षमा-याचना करता हूँ। मुक्तागिरि क्षेत्र वस्तुतः मध्यप्रदेशमें अवस्थित है। यह सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश और महाराष्ट्रकी सीमापर स्थित है। यद्यपि इसका जिला बैतूल (मध्यप्रदेश) है, किन्तु इसके पोस्टल पतेमें जिला अमरावती (महाराष्ट्र) लिखा जाता है। मुझे इसीके कारण भ्रम हो गया और इसे मध्यप्रदेशमें नहीं दे पाया। अब इसे महाराष्ट्रमें देना पड़ रहा है। अपनी इस असावधानी और अज्ञानताके लिए मुझे वस्तुतः खेद है। आशा है, सहृदय पाठक मेरी इस भूलको इसी रूपमें लेंगे और मुझे क्षमा करेंगे।

आभार-प्रदर्शन

सर्व प्रथम मैं स्वनाम धन्य स्व० साहू श्री शान्तिप्रसादजी की स्मृतिमें श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ जिन्होंने मुझे यह ग्रन्थ लिखनेके लिए प्रेरित और नियोजित किया था। और जिनके मार्गदर्शनमें इस तीर्थ-ग्रन्थके चार भाग तैयार करनेमें सफल हो सका। उनके इस मार्गदर्शन और सान्निध्यको मैं अपना परम

सौभाग्य मानता हूँ। मैं भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बईको धन्यवाद देता हूँ जिसने इन ग्रन्थों-का समस्त व्यय-भार वहन किया। भारतीय ज्ञानपीठके सुयोग्य मन्त्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजीकी कृपा और स्नेहको नहीं भुला सकता, जिन्होंने मुझे हर प्रकारकी सुविधा प्रदान की। वे मेरे बड़े भाईके समान हैं और मेरे प्रति उनका व्यवहार सदा इसी रूपमें रहा है। मैं उनकी प्रशासनिक कुशलता, साहित्यिक प्रतिभा और व्यावहारिक निपुणताका सदा कायल रहा हूँ।

अपने मित्र डा. गुलाबचन्द्रजीके प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने मुझे हर प्रकारका सहयोग दिया और ग्रन्थ-सम्पादन, सम्बन्धित चित्रोंका चुनाव, मानचित्र तैयार कराने आदि बातोंसे लेकर ग्रन्थके प्रकाशन तक सम्पूर्ण व्यवस्थामें रुचि ली।

भारतकी समस्त जैन पत्र-पत्रिकाओंमें विशेषकर अनेकान्तमें समय-समयपर तीर्थक्षेत्र आदिसे सम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्री प्रकाशित होती रही है। प्रस्तुत ग्रन्थके लेखनमें उनसे बहुत सहायता मिली है। अतः उनके लेखकोंके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है।

अन्तमें, मैं उन सभी सज्जनोंका हृदयसे आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थके निर्माणमें किसी रूपमें भी सुविधा या सहयोग प्रदान किया। समयाभावके कारण कुछ तीर्थस्थानोंपर स्वयं जाकर सर्वेक्षण कार्य नहीं किया जा सका। किन्तु वहाँके प्रबन्धक तथा सम्बन्धित सज्जनोंसे समय रहते सामग्री प्राप्त होनेसे उसका उपयोग कर लिया गया। उन सभी तीर्थ प्रबन्धकों और सज्जनोंके प्रति भी मैं बहुत आभारी हूँ।

—पं. बलभद्र जैन

जैन दृष्टिसे

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र

जैन दृष्टिसे राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र

राजस्थान

यह प्रदेश इतिहासमें अपने शौर्यके लिए प्रसिद्ध रहा है। मुस्लिम कालमें यहाँके रणबाँकुरे वीरोंने मातृभूमिकी रक्षा और स्वतन्त्रताके लिए मुस्लिम आक्रान्ताओंसे निरन्तर लोहा लिया और अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। जब भी मुस्लिम आक्रान्ताओंने उनके राज्यपर आक्रमण किया, वहाँके सभी राजपूत केशरिया बाना धारण करके और ढाल-तलवार लेकर रणभूमिमें कूद पड़े। यद्यपि मुस्लिम सैनिकोंकी विशाल संख्याके सामने उनकी संख्या नगण्य रही, किन्तु अपने जीते जी उन्होंने कभी शत्रुको टिकने नहीं दिया। राजपूत रमणियाँ भी कभी पीछे नहीं रहीं। राजपूत पत्नियाँ रणभूमिमें जाते हुए अपने पतिदेवके भालपर केशरका तिलक करती थीं, उनकी आरती उतारती थीं और युद्ध-विजयकी कामना करती हुईं अपने पतियोंसे अपेक्षा करती थीं कि वे शत्रुका वार सदा छातीपर ही झेलें, पीठपर नहीं और जब लौटें तो विजय लेकर; युद्धमें पीठ दिखाकर प्राण लेकर वे न आवें, बल्कि युद्ध-भूमिमें ही अपने प्राण होम दें। इतिहासमें ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं, जब पतिदेव अपनी नवविवाहित पत्नीके व्यामोहमें युद्ध-भूमिमें जाते समय कातर हो उठे तो उनकी वीर पत्नीने अपने सिर तलवारसे काटते हुए कहा कि अब आप युद्धमें निश्चिन्ततासे लड़ सकेंगे। ऐसे दृष्टान्तोंकी भी कमी नहीं है, जब पति युद्धसे पलायन करके श्रान्त-क्लान्त और क्षत-विक्षत दशामें इस आशासे लौटा कि अपनी पत्नीके सुखद अंकमें अपनी क्लान्ति दूर कर सकेगा, किन्तु उसकी वीर पत्नीने घरका द्वार नहीं खोला और पतिको युद्धभूमिमें विजय या मृत्युके लिए वापस लौटनेको बाध्य कर दिया। जब राजपूत बालाएँ यह अनुभव करती थीं कि युद्धमें विजय पाना असम्भव हो गया है तो वे शृंगार करके एक स्थानपर एकत्रित हो जाती थीं और विशाल चिता जलाकर अपने शीलकी रक्षाके लिए उसमें आत्माहुति कर देती थीं। यह जौहर व्रत कहलाता था।

प्राचीन कालमें राजस्थान अनेक छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त था। सभी राज्य स्वतन्त्र थे। उनमें परस्पर ऐक्य और सद्भाव का अभाव था। उनमें जितना शौर्य, साहस और मातृभूमिके प्रति भक्ति थी, उसकी समानता इतिहासमें मिलना कठिन है। किन्तु अपने संकुचित स्वार्थ, अनैक्य और राजनीतिक दूरदृष्टिके अभावके कारण वे मुस्लिम आक्रान्ताओंको कभी स्थायी पराजय नहीं दे सके। दूसरी ओर, मुस्लिम आक्रान्ताओंकी नीति राजपूतोंके वंश-निर्मूलन और धर्म-नाशकी रही। जिस राज्यको वे जीतते थे, उस राज्यके अधिकांश वीर युद्धमें मारे जाते थे या युद्धबन्दी बना लिये जाते थे जिन्हें बलात् इस्लाम कबूल करनेपर बाध्य किया जाता था। विजित नगरकी राजपूत स्त्रियाँ स्वेच्छासे जौहर करके अग्निज्वालामें भस्म हो जाती थीं। जो सुन्दर युवतियाँ शेष रह जाती थीं, उन्हें विजयी सेना लूट लेती थी। नगरके प्रमुख मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस कर दिया जाता था अथवा मूर्तियाँ नष्ट करके मन्दिरोंको मसजिद के रूपमें परिवर्तित कर दिया जाता था।

राजस्थानमें यादव, चाहमान (चौहान), परमार, गुहिल, सीसौदिया, झाला आदि अनेक राजपूत राजवंशोंने राज्य किया है, किन्तु इनमें कोई जैन नरेश नहीं था। किन्तु उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, जयपुर, भरतपुर आदि राज्योंमें प्रधान अमात्य, सेनापति एवं कोषाध्यक्ष पदोंपर प्रायः जैन ही नियुक्त किये जाते थे। सम्भवतः इसका कारण जैनोंकी नीतिकुशलता, चारित्रिक दृढ़ता, वीरता, और ईमानदारी था। एक अन्य भी कारण रहा होगा। जैन प्रायः सम्पन्न होते थे। राज्यको धनकी आवश्यकता पड़नेपर वे धन जुटा सकते थे। मातृभूमिकी रक्षाका प्रश्न आनेपर वे मातृभूमिके लिए अपना सर्वस्व समर्पण करनेमें कभी संकोच नहीं करते थे। जब महाराणा प्रताप राज्य गँवाकर जंगलोंमें एकाकी निराश भटक रहे थे, उस समय उनके सेनापति और कोषाध्यक्ष भामाशाहने अपने जीवन-भरकी संचित पूँजी लाकर महाराणाके चरणोंमें रख दी थी। वह पूँजी नगण्य नहीं थी, बल्कि इतनी थी, जिससे २५००० सैनिकोंकी विशाल सेना १२ वर्ष तक युद्ध कर सकती थी। इसी धनके बलपर महाराणा प्रतापने सेना संग्रह करके युद्ध लड़ा और चित्तौड़को छोड़कर शेष सम्पूर्ण राज्य मुक्त करा लिया। इतिहासमें मातृभूमिके लिए दिये गये ऐसे विशाल दानका उदाहरण दूसरा नहीं मिलता।

राजस्थानमें कोई सिद्धक्षेत्र नहीं है और न कोई कल्याणक क्षेत्र ही है। अतिशय क्षेत्रोंकी संख्या भी कुल १६-१७ है। कलातीर्थोंमें एक ओर श्वेताम्बर जैनों द्वारा निर्मित आबूके संगमरमरके और राणकपुर एवं कुम्भारियाके देशी पाषाणके कलापूर्ण मन्दिर हैं तो दूसरी ओर दिगम्बर जैन जीजा और उसके पुत्र पुण्यसिंह द्वारा निर्मित चित्तौड़का चन्द्रप्रभ जिनालय और उसका कीर्तिस्तम्भ है जो अपनी उत्कृष्ट कला और शानदार स्थापत्यके लिए जगद्विख्यात है। इस प्रदेशके चित्रकूट (चित्तौड़) नगरमें आचार्य एलसे वीरसेनने आठवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन किया था।

इस प्रदेशमें जैनोंकी संख्या विशाल है। यहांके निवासी अपनी व्यावसायिक और औद्योगिक विचक्षणताके लिए संसार-भरमें प्रसिद्ध हैं। भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें इनके व्यापार और उद्योग-प्रतिष्ठानोंका जाल फैला हुआ है।

गुजरात

इस प्रदेशको बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथके गिरनारमें दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणक मनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। गिरनारमें धर्म-चक्र-प्रवर्तन करके भगवान्ने इस सम्पूर्ण प्रदेशमें विहार किया था और उनकी कल्याणी वाणीके द्वारा अनेक भव्य जीवोंने अपना कल्याण किया था।

गिरनारके अतिरिक्त इस प्रदेशमें तारंगा, शत्रुंजय और पावागढ़ सिद्धक्षेत्र भी हैं। अतिशय क्षेत्रोंकी संख्या अधिक नहीं है। यहां अतिशय क्षेत्र केवल ४ हैं। आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलिने आचार्य धरसेनसे सिद्धान्त शास्त्रोंका ज्ञान ग्रहण करके सर्वप्रथम चातुर्मास अंकलेश्वरमें किया था और यहीं रहकर उन्होंने श्रुतको निबद्ध करनेकी योजना बनायी थी।

गुजरातका मध्यकालीन इतिहास अनहिलपाटनके चालुक्यवंशी नरेशोंके शौर्य, कलाप्रेम और मन्दिर-निर्माण-जैसे उच्चादर्शोंसे अनुप्राणित है, वहीं उनके धर्मोन्मादसे कलंकित भी रहा है। गूर्जर चालुक्य नरेश भीमने लगभग सन् १०३१ में आबूको परमार धांधुकसे छीनकर प्राग्वाटवंशी विमलको वहांका प्रशासक नियुक्त किया, जिसने १८ करोड़ रुपये व्यय करके वहाँ संसारप्रसिद्ध आदिनाथ मन्दिरका निर्माण किया। जयसिंह सिद्धराजके दरबारमें प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र

रहते थे। सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालके दरबारमें भी वे बहुत काल तक रहे थे। उनके ही प्रभावसे कुमारपालने जैनधर्म अंगीकार कर लिया और अपने गुरुके आदेशानुसार अनेक स्थानोंपर श्वेताम्बर मन्दिरोंका निर्माण और जीर्णोद्धार कराया। उसने अपने राज्यमें जीव-हिंसा और द्यूतपर प्रतिबन्ध लगा दिया। जयसिंहने सौराष्ट्रके शासक नवघन—जो दिगम्बर जैन था—को गिरफ्तार करके उसके स्थानपर सज्जन महताको प्रशासक नियुक्त किया। इसने भी गिरनारमें अत्यन्त कलापूर्ण जैन मन्दिर बनवाया। भीम द्वितीयने अपने मौसा धवलको व्याघ्रपल्ली ग्राम बख्शीशमें दिया था। उसके पौत्र लवण प्रसादने ढोलकामें अपनी राजधानी बनायी। प्राग्वाटवंशी वस्तुपाल और तेजपाल दोनों भाई उसके अमात्य थे। उन्होंने साढ़े बारह करोड़ रुपये व्यय करके आबूमें नेमिनाथ मन्दिरका निर्माण किया। उनका बनवाया हुआ एक मन्दिर गिरनारमें भी है।

किन्तु इसी कालमें कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालने अनेक जैनोंका बध किया, अनेक जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस किया। वह जैनोंका इतना विद्वेषी था कि उसने प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य रामचन्द्रकी भी हत्या कर दी थी।

इन निर्मम कृत्योंको एक ओर रखकर यदि विचार करें तो लगता है, ये गुर्जरनरेश—चाहे वे शैव हों या जैन—जैनोंके प्रति अत्यधिक उदार थे और उनके शासन-कालमें अनेक जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ और विपुल साहित्य-सृजन हुआ।

महाराष्ट्र

इस प्रदेशमें किसी तीर्थंकरका एक भी कल्याणक नहीं हुआ, किन्तु तीर्थंकरोंका यहाँ विहार अवश्य होता रहा है। कुण्डल, तेर आदि स्थानोंपर तो यह अनुश्रुति अबतक प्रचलित है कि यहाँ भगवान् महावीरका समवसरण आया था। यहाँ ऐसे क्षेत्र भी हैं जहाँ प्राचीन कालमें मुनिजन तपस्या किया करते थे और जहाँ उन्होंने घोर तप द्वारा कर्मोंका विनाश करके निर्वाण प्राप्त किया था। ऐसे निर्वाणक्षेत्रोंका नाम है—गजपंथा, मांगीतुंगी, कुन्थलगिरि। इस प्रदेशमें अतिशयक्षेत्र और गुहामन्दिर तो अनेक हैं। ऐलौरा, धाराशिव-जैसी प्रसिद्ध गुफाएँ यहीं हैं।

इस प्रदेशसे कई महान् जैनाचार्योंका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। आचार्य वीरसेनके विद्यागुरु ऐलाचार्यका विहार ऐलौरा गुफाओंवाले पर्वत और उसके निकटस्थ शूलिभंजनमें बहुत काल तक हुआ। उन्हींके नामपर इस पर्वतका नाम एलापुर पड़ गया। उस कालमें शूलिभंजन राष्ट्रकूट नरेशोंकी उपराजधानी था। आचार्य जिनसेनने यहाँ और वाटग्राममें रहकर अपने गुरुवर्य आचार्य वीरसेनके स्वर्गवास हो जानेपर जयधवला टीकाके अवशिष्ट भागपर चालीस हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखी थी। उसे शक संवत् ७५९ में कोल्हापुरके नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिरमें बैठकर समाप्त किया, ऐसी भी अनुश्रुति है। शूलिभंजनमें राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (ध्रुवगोविन्द जगत्तुंग) का बाल्यकाल व्यतीत हुआ। उसने आचार्य जिनसेनसे जैन सिद्धान्तका ज्ञान प्राप्त किया और उन्हींसे जैनधर्मकी दीक्षा ली। अकोला जिलेमें बाड़ेगाँव नामक एक ग्राम है। यहाँ कुछ वर्ष पूर्व सैकड़ों प्राचीन स्वर्ण मुद्राएँ उत्खननमें प्राप्त हुई थीं। प्राचीन कालमें इस ग्रामका नाम वटग्राम था। आचार्य वीरसेन अपने गुरु ऐलाचार्यसे सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन करके चित्रकूटसे इसी ग्राममें पधारे थे और आनतेन्द्र द्वारा बनवाये हुए जिनालयमें ठहरे थे। यहींपर उन्हें बप्पदेवकी व्याख्या प्रज्ञप्ति नामकी टीका प्राप्त हुई थी। इस टीकाके अध्ययनसे उन्होंने यह अनुभव किया कि इसमें सिद्धान्तके अनेक विषयोंका विवेचन स्खलित है। अतएव एक बृहत् टीकाके निर्माणकी आवश्यकता है। ऐसा विचार कर उन्होंने धवला और जयधवला टीका लिखीं।

इस प्रदेशकी धाराशिवकी जैन गुफाओंका निर्माण साहित्यिक साक्ष्योंके अनुसार ईसा पूर्व सातवीं शताब्दीमें करकण्डु नरेशने कराया था और पार्श्वनाथ भगवान्की प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा की थी। अचलपुर नरेश ऐल श्रीपालने १०वीं शताब्दीमें ऐलौरामें जैन गुफाओंका निर्माण कराया था। इसके अतिरिक्त उसने पवली, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ सिरपुर, वाशिम, मुक्तागिरि आदि अनेक स्थानोंपर जिनालय बनवाये थे। यादववंशी जैन नरेश भिल्लमने देवगिरि (दौलताबाद) नगरकी स्थापना की, वहाँ एक सुदृढ़ दुर्गका निर्माण कराया और वहीं अपनी राजधानी स्थापित की। इस दुर्गमें उसने एक विशाल जिनालयका निर्माण कराया जो मुस्लिम कालमें मसजिद बना दिया गया और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् भारतमाता मन्दिर बना दिया गया। इस जैन मन्दिरकी अनेक मूर्तियाँ अब भी दुर्गमें विद्यमान हैं। अकोला जिलेके नरनालामें प्राचीन दुर्ग है। अकोला डिस्ट्रिक्ट गजेटियरके अनुसार इसका निर्माण किसी जैन नरेशने कराया था।

इस प्रदेशमें राष्ट्रकूट, चालुक्य, शिलाहार, यादव, ऐल आदि वंशोंने शासन किया। इनमें अनेक राजा जैन धर्मानुयायी थे। प्रायः सभी नरेश जैनधर्मके प्रति सहिष्णु एवं उदार थे। कई राजाओंने जैन न होनेपर भी जैन मन्दिर बनवाये एवं जैन मन्दिरों और भट्टारकोंको भूमिदान किया। शिलाहारवंशके गण्डरादित्यने जैन मन्दिर बनवाया था तथा उसके लिए भूमि भी दी थी। शिलाहारवंशके विजयादित्यके दो शिलालेख कोल्हापुरके पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मानस्तम्भ मन्दिर गंगावेशमें रखे हैं। उनसे ज्ञात होता है कि इस राजाने दो जैन मन्दिरोंके लिए गाँव दानमें दिये थे। कदम्बवंशी नरेश मयूरवर्माने अम्बिका देवीके मन्दिरके लिए जैनाचार्य श्रीपालके शिष्य गुणदेवको एक ग्राम दान किया। भट्टारकोंको तो अनेक राजाओं और बादशाहोंने भूमि और ग्राम भेंट किये। इससे उन राजाओं और बादशाहोंपर उन भट्टारकोंका कितना प्रभाव था, इसका पता चलता है।

महाराष्ट्र प्रदेशमें सदासे जैनोंका प्रभाव रहा है। इस प्रदेशने जैन समाजको अनेक जैन-आचार्य और मुनि दिये हैं। इस प्रदेशके अनेक स्थानोंपर भट्टारकोंके पीठ रहे हैं।

जैन मन्दिरोंपर जैनेतरोंका अधिकार

यों तो प्रायः सभी प्रान्तोंमें अनेक दिगम्बर जैन मन्दिरोंपर हिन्दुओं, मुसलमानों और श्वेताम्बरोंने अधिकार कर लिया है और उन्हें परिवर्तित करके अपने धर्मकी मूर्तियाँ उनमें विराजमान कर दी हैं, अनेक मन्दिरोंको मसजिद बना दिया है, अनेक जैन मूर्तियोंपर सिन्दूर पोतकर उन्हें खैरमाई या खैरदय्याके नामसे पूजा जाता है, किन्तु उपर्युक्त राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र इन तीन प्रान्तोंमें परिवर्तित दिगम्बर जैन मन्दिरोंकी संख्या भी नगण्य नहीं है। जयपुर और आमेरमें अनेक दिगम्बर जैन मन्दिर हिन्दुओंके अधिकारमें हैं। उनके शिखरों और प्रवेश द्वारोंपर अब भी जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। कोल्हापुरका महालक्ष्मी मन्दिर मूलतः जैनोंका अम्बादेवी मन्दिर था। अब भी छतों आदिमें जैन मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वहाँके त्रिकूट चैत्यालयमें पार्श्वनाथके स्थानपर भैरव विराजमान हैं। वहाँके दीपाधारों और सदर (पालकी रखनेका स्थान) पर हिन्दुओंका अधिकार है। गिरनारके अम्बादेवी मन्दिरको हिन्दुओंने बलात् हथिया लिया है। पंढरपुरका बिठौवा मन्दिर मूलतः नेमिनाथ मन्दिर था। हिन्दुओंने नेमिनाथको ही बिठौवा बना दिया है। दौलताबाद दुर्गका जैन मन्दिर मसजिद बना दिया गया था, अब वह भारतमाता मन्दिर बन गया है। जिन्तूरमें अनेक मन्दिरोंको मुस्लिम आक्रान्ताओंने नष्ट कर दिया या मसजिद बना दिया। इसी प्रकार श्वेताम्बरोंने गिरनार, शत्रुंजय,

अमीझरो पार्श्वनाथ, भद्रावती, माणिक्य स्वामी आदिके कई मन्दिरोंपर अधिकार कर लिया है तथा वे अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, ऋषभदेव केशरियानाथके प्रसिद्ध दिगम्बर जैन मन्दिरोंपर अपना स्वामित्व जताते हैं।

राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्रके प्राचीन जनपद

भगवज्जिनसेनके 'आदिपुराण'के अनुसार भगवान् ऋषभदेवकी आज्ञासे सौधर्मेन्द्रने भारतको ५२ जनपदोंमें विभाजित किया था। उनके नाम इस प्रकार हैं—

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, बाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय।

इन जनपदोंमें निम्नलिखित जनपद राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्रमें हैं—

अश्मक, आनर्त, कच्छ, विदर्भ, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, सौवीर और अपरान्तक।

अश्मक—गोदावरी और माहिष्मतीके मध्यमें यह नर्मदा तटपर अवस्थित था। इसे अलक या मूलक भी कहते थे। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठण) थी। यह विदर्भकी राजधानी[२] थी। अश्मक महाराष्ट्रको [३]कहते थे। अश्मक महाभारतका [४]अश्वक था। बौद्ध ग्रन्थोंमें इसका नाम अस्सक आया है।

आनर्त—गुजरात और मालवाका भाग। इसकी राजधानी कुशस्थली[५] (आधुनिक द्वारका) थी। उत्तरी गुजरातकी राजधानी आनर्तपुर[६] थी। पश्चात् इसका नाम आनन्दपुर[७] हो गया जो वर्तमानमें बड़नगर कहलाता है। बड़नगर उत्तर गुजरातमें सिद्धपुरसे दक्षिण-पूर्वमें ११२ कि. मी. है। लेकिन वर्तमानमें आनन्दपुर नामक एक स्थान है जो बलभीसे उत्तर-पश्चिममें ८० कि. मी. है। प्राचीन कालमें इसे ही [८]आनर्तपुर कहते थे। यहाँ ह्वेन्त्सांग भी आया था। आनन्दपुर या बड़नगरको नगर भी कहते थे और यह गुजराजके नागर ब्राह्मणोंका मूलस्थान था। गुजरात नरेश ध्रुवसेनकी यह राजधानी थी। उसके दरबारमें सन् ४११ में कल्पसूत्रके रचयिता भद्रबाहु स्वामी रहते थे। कुमारपालने इसके चारों ओर मजबूत कोट बनवाया था।

---

१. History of Bawari, Spence Hardy's Manual of Budhism Suttampatta and Parayanavagga.

२. दण्डीकृत दशकुमार चरित, हर्षचरित।

३. कौटिल्य अर्थशास्त्रके टीकाकार भट्टस्वामी।

४. भीष्मपर्व, अध्याय ९।

५. श्रीमद्भागवत अ. १०।

६. स्कन्द पुराण, नागरखण्ड, अध्याय ६५।

७. Bombay Gazetteer, Vol 1, Part 1, page 6, note 2.

८. सन् ६४९ और ६५१ के आलिनाके दो ताम्रपत्र।

कच्छ—इसे मरुकच्छ भी कहते थे। यह वर्तमान कच्छ ही था।

विदर्भ—बरार और खानदेश। पहले इसका कुछ भाग मध्य प्रदेशमें था और कुछ भाग निजाम स्टेटमें था। यह रुक्मिणीके पिता भीष्मकका प्रदेश था। इसके मुख्य नगर कुण्डिननगर और भोजकपुरा थे। पुराणोंमें उल्लिखित भोज विदर्भमें रहते थे। प्राचीन कालमें विदर्भमें वर्तमान भोपाल और विदिशा जिलोंसे नर्मदा तकका भाग सम्मिलित[२] था।

करहाट—सतारा जिलेमें कोल्हापुरसे उत्तरमें ६४ कि. मी. कराड़ स्थान। यह शिलाहार राजाओंकी राजधानी था। करहाटक काराष्ट्र देशकी राजधानी[३] था। यहाँ स्वामी समन्तभद्र अपनी दिग्विजय यात्रामें आये थे और बादमें यहाँके विद्वानोंको परास्त किया था।

महाराष्ट्र—मराठा देश, जो गोदावरी और कृष्णा नदीके मध्यमें फैला हुआ है। बुद्धके समय इसे अश्मक या अस्सक भी कहते थे। अशोकने यहाँ महाधम्मरक्षितको बौद्धधर्मके प्रचारके लिए भेजा था। इसकी प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठान थी। यह आन्ध्रभृत्योंकी राजधानी थी जो सातवाहन या शालिवाहन कहलाते थे। आन्ध्रभृत्योंके पश्चात् क्षत्रपोंने (कुछ भागपर सन् २१८ से २३२ तक), फिर आभीरोंने (सन् ३९९ तक), पश्चात् राष्ट्रकूटोंने इस प्रदेशपर शासन किया। ये राष्ट्रिक भी कहलाते थे। इन्हींके नामपर महाराष्ट्रिक, फिर महाराष्ट्र कहलाने लगा। इनका शासन-काल तीसरीसे छठी शताब्दी तक रहा। फिर चालुक्योंने (छठी शताब्दीसे ७५३ तक) शासन किया। इन्हें हटाकर राष्ट्रकूटोंने पुनः इसपर अधिकार कर लिया। इस वंशके गोविन्द तृतीयके पुत्र अमोघवर्षने पैठणसे राजधानी हटाकर मान्यखेटको अपनी राजधानी बनाया। पश्चात् यहाँ चालुक्यों (सन् ९७३-११६२), कलचुरियों (सन् ११६२ से ११९२), यादवों (११९२ से १३१८) का आधिपत्य रहा। इसके पश्चात् मुसलमानों और अंगरेजोंने यहाँ शासन किया। यादव-वंशके रामचन्द्र नरेशका मन्त्री हेमाद्रि था, जिसे हेमाड़पन्त भी कहते थे जिसने अनेक मन्दिर बनवाये, उसने मन्दिर-निर्माणकी एक विशेष शैली प्रचलित की। इस शैलीमें बने मन्दिर हेमाड़-पन्थी मन्दिर कहलाते हैं।

सुराष्ट्र—सिन्धसे भड़ौंच तकका प्रदेश। इसमें गुजरात, कच्छ और काठियावाड़ सम्मिलित थे। इसकी राजधानी बलभी[४] थी। गुप्तकालमें इसकी राजधानी वनस्थली (वर्तमान बन्थली) रही।

आभीर—नर्मदाके मुहानेके निकट गुजरातका दक्षिण-पूर्वी भाग आभीर कहलाता था। ब्रह्माण्ड पुराणके अनुसार आभीर देशमें सिन्धु नदी बहती थी। महाभारत (सभापर्व अ. ३१) के अनुसार आभीर लोग समुद्र तटपर और सरस्वतीके किनारे (सोमनाथके निकटवाली नदी) रहते थे। सर हैनरी ईलियटके अनुसार भारतके पश्चिमी समुद्र तटपर ताप्तीसे देवगढ़ तकका भाग आभीर कहलाता था। डब्ल्यू. एच. शाफके मतानुसार गुजरातका दक्षिणी भाग, जिसमें सूरत सम्मिलित है, आभीर था। तारातन्त्रकी मान्यतानुसार कोंकणसे दक्षिणकी ओर ताप्ती नदीके पश्चिमी तटवर्ती भागको आभीर कहा जाता था।

सौवीर—कनिंघम गुजरातके ईडर जिलेको सौवीर मानते हैं। डॉ. राइस डेविड काठिया-वाड़के उत्तरमें कच्छकी खाड़ीके किनारे इसे मानते हैं।

---

१. बृहत्संहिता, अ. १४।

२. Cunningham's Bhilsa Topes, page 363.

३. स्कन्दपुराण, सह्याद्रि खण्ड।

४. *दशकुमारचरित, अ. ६।*

अपरान्तक—उत्तरी कोंकण प्रदेशको अपरान्तक कहते थे। इसकी राजधानी सर्पारक (वर्तमान सपारा) थी। भारतका पश्चिमी समुद्री तट[2] अपरान्तक कहलाता था। रघुवंशके अनुसार यह सह्य (पश्चिमी घाट) और समुद्रका मध्यवर्ती प्रदेश था। यह माही नदीसे गोआ[3] तक फैला हुआ था।

राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्रमें जैनतीर्थ

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्त संयुक्त रूपसे तीर्थक्षेत्रोंकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध हैं। इन प्रान्तोंके तीर्थक्षेत्र उत्तर प्रदेश, बिहार-बंगाल-उड़ीसा और मध्यप्रदेशके तीर्थक्षेत्रोंकी अपेक्षा संख्याकी दृष्टिसे तो अधिक हैं ही, पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे भी अत्यधिक सम्पन्न हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें दिये गये तीर्थ-परिचयकी दृष्टिसे राजस्थानमें १६, गुजरातमें १० और महाराष्ट्रमें २६ इस प्रकार कुल ५२ तीर्थ हैं। इन तीर्थक्षेत्रोंको हम सुविधाके लिए ४ भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—(१) सिद्धक्षेत्र, (२) अतिशयक्षेत्र, (३) कला-तीर्थ और (४) भट्टारक पीठ-स्थान। यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि यहाँ भट्टारक पीठ-स्थानोंके पृथक् उल्लेख करनेका विशेष कारण है क्योंकि इन प्रान्तोंमें भट्टारकोंकी विभिन्न परम्पराओंके पीठ अनेक स्थानोंपर थे। अनेक स्थानोंपर इन भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर और मूर्तियाँ अब भी उपलब्ध होती हैं।

सिद्धक्षेत्र

सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र उन स्थानोंको कहा जाता है, जहाँ किसी तीर्थंकर या मुनिको निर्वाण प्राप्त हुआ हो। इन तीनों प्रान्तोंमें सिद्धक्षेत्रोंकी कुल संख्या ७ है। इनके नाम इस प्रकार हैं—गिरनार, तारंगा, शत्रुंजय, पावागढ़, गजपंथ, मांगीतुंगी और कुन्थलगिरि। इनमें-से प्रारम्भके ४ क्षेत्र गुजरात प्रान्तमें और शेष ३ क्षेत्र महाराष्ट्र प्रान्तमें हैं। इन सबमें गिरनारका सर्वाधिक महत्त्व है क्योंकि वहाँ बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान् मुक्त हुए थे। शेष स्थानोंसे मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ था।

गिरनार—यहाँ भगवान् नेमिनाथके तीन कल्याणक हुए थे—दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणक। भगवान्‌की प्रथम दिव्यध्वनि यहीं खिरी थी, यहीं उनका प्रथम और अन्तिम समवसरण लगा तथा यहींपर उन्होंने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया। वे अनेक बार यहाँ पधारे और उनकी कल्याणमयी देशनासे अनेक भव्य जीवोंका कल्याण हुआ। इनके अतिरिक्त यहाँसे प्रद्युम्नकुमार, शम्बुकुमार, अनिरुद्धकुमार, वरदत्त आदि बहत्तर करोड़ सात सौ मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की थी। यहाँ अम्बादेवीका विख्यात मन्दिर था। इस देवीके अतिशयोंकी बड़ी ख्याति थी। यह देवी नेमिनाथ तीर्थंकरकी सेविका और शासन देवी कहलाती है। आचार्य धरसेन यहाँकी चन्द्रगुफामें तपस्या करते थे। यहींपर उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्तको सम्पूर्ण श्रुतज्ञान दिया था, जो उन्हें परम्परागत आचार्य-परम्परासे प्राप्त हुआ था। ताम्रलेख और शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि यहाँ ई. पूर्व ११४० में भगवान् नेमिनाथके मन्दिर बन गये थे तथा मौर्यकालमें भी यहाँ नेमिनाथ-जिनालयका निर्माण हुआ था।

---

१. R. G. Bhandarkar.

२. भगवानलाल इन्द्रजी

३. Bombay Gazette, Vol. 1, Part 1, p. 36, note 8.

२

तारंगा—यहाँसे वरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनियोंने निर्वाण प्राप्त किया था।

शत्रुंजय—यहींपर दुर्योधनके भागिनेय कुमुंधरने तपस्यारत पाँचों पाण्डवोंपर अपने मातृ-कुलके विनाशका प्रतिशोध लेनेके लिए भयानक उपसर्ग किये। उस शठने उन निस्पृह योगियोंके विभिन्न अंगोंमें तप्त लोहेके आभूषण पहनाकर घोर यातना देनेका प्रयत्न किया। उन योगियोंके शरीर दग्ध हो गये, किन्तु उन आत्मनिष्ठ मुनियोंने शुक्लध्यान द्वारा कर्मोंको दग्ध कर दिया। अपने उत्कृष्ट ध्यान द्वारा युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनने कर्मोंका पूर्ण नाश करके मुक्ति प्राप्त की। इनके अतिरिक्त यहाँसे द्रविड़ देशके राजा और आठ करोड़ मुनियोंने भी सिद्ध-पद प्राप्त किया था।

पावागढ़—रामचन्द्रजीके पुत्र लवणांकुश और मदनांकुशने मुनि अवस्थामें यहाँ आकर घोर तप द्वारा कर्म-मल नष्ट करके मुक्ति-लाभ किया था। यहाँसे लाट नरेश और पाँच करोड़ मुनियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ।

गजपन्थ—बलभद्र ९ होते हैं। उनमें ७ बलभद्रोंने यहाँसे निर्वाण प्राप्त किया था। उनके नाम हैं—१ सुदर्शन, २ नन्दि, ३ नन्दिमित्र, ४ सुप्रभ, ५ सुधर्म, ६ अचल और ७ विजय। इनके अतिरिक्त ८ करोड़ मुनियोंको भी यहाँसे मुक्ति प्राप्त हुई थी।

मांगीतुंगी—श्रीरामचन्द्रजी, हनुमान्, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील, महानील आदि ९९ करोड़ मुनियोंने यहाँसे मुक्ति प्राप्त की।

कुन्थलगिरि—यहाँ मुनि कुलभूषण और मुनि देशभूषण तपस्या करते थे। अपने वनवास-कालमें रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण सहित यहाँ पधारे। उन दिनों एक असुर इन मुनियोंपर घोर उपसर्ग कर रहा था। नगरवासी उसके भयसे त्रस्त थे और रात्रि होनेसे पूर्व वे नगरको छोड़कर अन्यत्र भाग जाते थे। रामचन्द्र और लक्ष्मणने उस पर्वतपर जाकर असुरको भगाया और मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। तभी उन मुनियोंको केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देवोंने आकर गन्धकुटीकी रचना की। कुछ काल पश्चात् उन दोनों मुनियोंको यहींसे निर्वाण प्राप्त हुआ।

इन सिद्धक्षेत्रोंमें गजपन्थकी वास्तविक स्थितिके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंने सन्देह प्रकट किया है। उनका तर्क है कि वर्तमान स्थानपर इस क्षेत्रकी स्थापना लगभग ८०-९० वर्ष पूर्व की गयी थी। यहाँ कोई ऐसा पुरातात्त्विक प्रमाण नहीं मिला, जिसके आधारपर माना जा सके कि वस्तुतः गजपन्थ क्षेत्र यहींपर था।

इन विद्वानोंके प्रति हमारे हृदयमें आदरभाव है। किन्तु उनका ध्यान हम यहाँकी उन गुफाओंकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं जिन्हें चामरलैनी कहा जाता है। यद्यपि सौन्दर्यप्रिय भक्तोंने इन ऊबड़-खाबड़ गुफाओंको पलस्तर आदि द्वारा सुरुचिपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया है और यहाँकी प्राचीन मूर्तियोंके ऊपर लेप चढ़ाकर उनके सौन्दर्यसे निखार दिया है, किन्तु पलस्तर और लेपने गुफा और मूर्तियोंकी कला और प्राचीनताको ढक दिया है। इससे वे आधुनिक लगने लगी हैं। वस्तुतः चामरलैनी गुफाओंका इतिहास ईस्वी सन्से भी पूर्वका है। इनका निर्माण मैसूरके चामराजने कराया था और उनमें जैन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी। ये चामराज पौराणिक साक्ष्यके आधारपर ईसा पूर्व ९०० के बताये जाते हैं। पुरातत्त्ववेत्ता सम्भवतः इन गुफाओंका यह काल स्वीकार न करें, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि ये गुफाएँ प्राचीन हैं। इस क्षेत्रसे लगभग १० मील दूर पाण्डव गुफाएँ हैं। अंजनेरीमें भी गुफाएँ और भग्न जिनालय हैं। इन गुफाओंमें प्रतिमाएँ भी हैं। ये ११–१२वीं शताब्दीकी मानी गयी हैं। हमारा अनुमान है कि चामरलैनी गुफाएँ भी इसी काल की या इससे कुछ पूर्वकी होंगी। यहाँकी कई मूर्तियोंका भी काल यही अनुमानित होता है।

'भगवती आराधना' में भी गजपन्थको नासिकके निकट माना है। वर्तमान गजपन्थ क्षेत्र भी नासिकके निकट, नासिकसे ६ कि. मी. है।

इन प्रमाणोंसे गजपन्थ क्षेत्रकी वर्तमान स्थिति असन्दिग्ध बन जाती है।

अतिशय क्षेत्र

उक्त तीनों प्रान्तोंमें अतिशय क्षेत्रोंकी संख्या पर्याप्त है। इन क्षेत्रोंके सम्बन्धमें किंवदन्तियाँ अत्यन्त रोचक हैं। कुछ किंवदन्तियाँ तो एकाधिक क्षेत्रोंके बारेमें मिलती-जुलती हैं। यथा किसी टीलेपर गायका दूध झरना और वहाँसे उत्खननमें मूर्ति प्रकट होना—जैसे श्री महावीरजी, भातकुली। बावड़ीमें अपनी आवश्यकताके बर्तनोंकी सूची लिखकर कागज डालना और बावड़ीमें बर्तन आ जाना। यथा मदनपुर (उत्तर प्रदेश) और तेर। सरकण्डेकी गाड़ीपर भगवान्की विशाल मूर्ति ले जाना और पीछे मुड़कर देखनेपर मूर्तिका वहीं अचल हो जाना, जैसे चाँदखेड़ी, नागफणी पार्श्वनाथ और अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ।

किंवदन्तियोंकी यह समानता सम्भवतः संयोगवश है। इन क्षेत्रोंके चमत्कारोंमें भी समानता है, जैसे मनौती पूरी हो जाना, मन्दिरसे रात्रिको नृत्य-गानकी ध्वनि आना, सिंह आदि हिंस्र जीवोंसे भरे जंगलमें रात्रिमें पशुके अकेले रह जानेपर मनौती द्वारा प्रातः सकुशल वापस लौट आना। ऐसे अद्भुत चमत्कारोंके कारण ही ये स्थान अतिशय क्षेत्र कहलाते हैं। भातकुली क्षेत्र-पर तो और भी विस्मयकारक चमत्कार देखा-सुना जाता है। कहते हैं कि भगवान्के अभिषेकके लिए जो दूध आता है, उसमें यदि कोई ग्वाला जल मिला देता है तो उस ग्वालेके पशुके थनसे दूधके स्थानपर रक्त निकलने लगता है। रक्त तभी बन्द होता है, जब वह ग्वाला भगवान्के चरणोंमें जाकर अपने कृत्यका पश्चात्ताप करे और भविष्यके लिए प्रतिज्ञा करे। इन सब किंवदन्तियोंमें कहाँ तक सचाई है यह विचारणीय है। कुछ किंवदन्तियाँ तो सत्यसे बहुत ही दूर हुई लगती हैं। उन तक हमारी सहज आस्था नहीं पहुँच पाती।

उपर्युक्त प्रान्तोंके अतिशय क्षेत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—

—ऋषभदेवके केशरियाजी, नागफणी पार्श्वनाथ, अन्देश्वर पार्श्वनाथ, बमोतर शान्तिनाथ, बिजौलिया, केशोराय पाटन, पद्मपुरा, श्रीमहावीरजी, चमत्कारजी, चाँदखेड़ी, झालरापाटन, तिजारा।

—घोघा, महुआ, अंकलेश्वर, सजोद।

—दहीगाँव, कुण्डल, बाहुबली, तेर, सावरगाँव, कासार आष्टा, पैठण, नवागढ़, जिन्तूर, शिरडशहापुर, असेगाँव, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, वाढोणा रामनाथ, भातकुली, रामटेक।

कलातीर्थ

इन प्रान्तोंमें कई स्थान ऐसे हैं जो अपने शिल्प, स्थापत्य और कलाके कारण विख्यात हैं। जैसे चित्तौड़का कीर्तिस्तम्भ अपनी अनुपम रचना-शैली, सूक्ष्म एवं कलापूर्ण शिल्प और अपनी उत्तुंगताके कारण भारतीय शिल्पमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। संसारके किसी स्तम्भमें सूक्ष्म कलाकी दृष्टिसे इसकी तुलना एवं स्पर्द्धा करनेकी क्षमता नहीं है। भारतीय कलाविदोंकी मान्यतानुसार चित्तौड़ दुर्गमें स्थित जयस्तम्भके निर्माणकी कल्पनाके मूलमें यह कीर्तिस्तम्भ ही था। जयस्तम्भ कीर्तिस्तम्भके लगभग दो शताब्दी पश्चात् निर्मित हुआ। किन्तु कलाकी दृष्टिसे वह भी इसकी समता नहीं कर सकता। कीर्तिस्तम्भ वस्तुतः एकाकी नहीं है, बल्कि वह अपने सम्मुख

खड़े हुए जैन मन्दिरका मानस्तम्भ रूप है। इसलिए इस परिसरमें फैले हुए समूचे परिवेशमें इसका मूल्यांकन करना होगा। कहना होगा, यह विकसित स्थापत्य और शिल्प कलाका प्रतिनिधित्व करनेवाला सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है।

इन प्रान्तोंमें अनेक स्थानोंपर गुहा-मन्दिर और गुफाएँ हैं। पर्वतोंको तोड़कर छाती चीर-कर बनायी गयी इन गुफाओं और उनमें उत्कीर्ण विविध मूर्तियोंमें कलाकारोंने अपनी सम्पूर्ण योग्यतासे कलाको उजागर किया है। ऐसे स्थानोंमें धाराशिव, ऐलौरा, औरंगाबाद, चाँदबड़, अंजनेरीको सम्मिलित किया जा सकता है। इन सभी स्थानों पर गुहा-मन्दिर बने हुए हैं और सभी किसी न किसी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। काल-क्रमकी दृष्टिसे धाराशिवकी गुफाएँ इनमें सर्वाधिक प्राचीन प्रतीत होती हैं। वर्तमान पुरातात्त्विक मान्यतानुसार इनका निर्माण-काल ईसाकी ७–८वीं शताब्दी है। सम्भवतः ऐलौराकी जैन गुफाएँ इनके कुछ काल पश्चात्की हैं, किन्तु वे अपनी कलात्मक संरचनाके कारण विश्वकी कलाकृतियोंमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुकी हैं। शेष जैन कलातीर्थ सम्भवतः इनके पश्चात्कालीन हैं और ऐलौराके समान कलाके समुन्नत रूपका प्रतिनिधित्व नहीं कर सके हैं। किन्तु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इन कलातीर्थोंकी भी अपनी-अपनी पृथक् विशेषताएँ हैं।

भट्टारक-पीठ-स्थान

इन प्रदेशोंमें निम्नलिखित स्थानोंपर भट्टारक-पीठ या उनके शाखा-पीठ थे—

नागौर, श्रीमहावीरजी, ऋषभदेव, अजमेर, जयपुर, भानपुर, ईडर, सूरत, अंकलेश्वर, सोजित्रा, कोल्हापुर, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ सिरपुर और कारंजा।

इन स्थानोंमें-से अब केवल ऋषभदेव और कोल्हापुरमें ही भट्टारक-पीठ हैं, यहाँ भट्टारक रहते हैं। शेष स्थानोंपर वर्तमानमें कोई भट्टारक नहीं हैं। नागौरमें भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति और श्रीमहावीरजीमें भट्टारक चन्द्रभूषण अन्तिम भट्टारक हुए, जिनका स्वर्गवास कुछ वर्षों पूर्व हुआ था और उनके पीठपर फिर कोई भट्टारक नहीं बना। इनमें कुछ स्थानोंपर पहले एकाधिक भट्टारक रहा करते थे। जैसे ऋषभदेवके केशरियानाथ मन्दिरमें काष्ठासंघ और मूलसंघके भट्टारकोंके पीठ बने हुए हैं। इन पीठोंपर दोनों परम्पराओंके भट्टारक रहते और उपदेश दिया करते थे। अंकले-श्वरमें महावीर मन्दिर और आदिनाथ मन्दिर काष्ठासंघके हैं, चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर मूल संघका है और नेमिनाथ मन्दिर नवग्रह संघका है। इन संघोंके भट्टारक कभी-कभी यहाँ आकर ठहरते थे। कोल्हापुरमें लक्ष्मीसेन और जिनसेन इन दो भट्टारकोंकी गद्दियाँ और मठ हैं। दोनों पीठोंके भट्टारक यहाँ रहते हैं। भट्टारक लक्ष्मीसेनका एक उपपीठ रायबागमें और भट्टारक जिनसेनका एक उपपीठ नांदणीमें हैं। दोनों भट्टारक कभी-कभी अपने उपपीठोंपर भी जाकर रहते हैं। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथमें देवेन्द्रकीर्ति स्वामी कारंजा, भट्टारक वीरसेन और भट्टारक विशालकीर्तिके पीठ अब भी बने हुए हैं। पहले यहाँ भट्टारक रहा करते थे। इनमें देवेन्द्रकीर्ति मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके भट्टारक थे। ये कारंजाके बलात्कारगण मन्दिरमें पीठाधीश्वर थे। इनका स्वर्गवास शिरडशहापुरमें हुआ था। इनके बाद इस पीठपर कोई भट्टारक नहीं बना। भट्टारक वीरसेन सेनगणके भट्टारक थे। उनका भट्टारक-पीठ कारंजाके सेनगण मन्दिरमें था। संवत् १९९५में आपका स्वर्गवास हो गया। आप ही इस पीठके अन्तिम भट्टारक थे।

जैन कला एवं पुरातत्त्व

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रमें जैनकला और पुरातत्त्वकी विपुल सामग्री है। इन प्रान्तोंमें भी अपेक्षाकृत पुरातन सामग्रीका परिमाण विशाल है। यह सामग्री पर्वतों और नगरोंमें या उनके पास फैली हुई है। इसका मूल्यांकन सावधि काल-क्रम और जैन शिल्पकी विविध विधाओंके परिप्रेक्ष्यमें किया जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे हम प्राग्गुप्त काल, मध्यकाल और उत्तरकालके रूपमें काल-विभाजन कर सकते हैं। प्राग्गुप्तकालमें गुप्तकालसे पूर्ववर्ती काल लिया गया है। मध्यकालसे ईसाकी सातवींसे बारहवीं शताब्दी तकका काल अभिप्रेत है। और उत्तरकालमें बारहवीं शताब्दीका पश्चाद्वर्तीकाल लिया गया है। इसी प्रकार सुविधाके लिए जैन शिल्पकी विभिन्न विधाओंको हम पाँच भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—(१) तीर्थंकर मूर्तियाँ, (२) शासन देवताओंकी मूर्तियाँ, (३) देवायतन, (४) गुहामन्दिर और (५) अभिलेख।

तीर्थंकर-मूर्तियाँ—इन प्रान्तोंमें तीर्थंकर-मूर्तियाँ तीन आसनोंमें मिलती हैं—खड्गासन, पद्मासन और अर्धपद्मासन।

दोनों पैरोंका चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओंको नीचे लटकाकर नासिकाग्र अर्धोन्मीलित दृष्टि रखकर खड़े होना खड्गासन कहलाता है। इसे कायोत्सर्गासन भी कहते हैं। यह जिनमुद्रा कहलाती है।

प्रचलित मान्यतानुसार दोनों पाँवोंके टखने ऊपरकी ओर करके अर्थात् दोनों पाँवोंको

---

१. प्रभाचन्द्रकृत क्रियाकलाप।

२. गुल्फोत्तान-कराङ्गुष्ठरेखारोमालिनासिकाः।
समदृष्टिः समाः कुर्यान्नातिस्तब्धो न वामनः॥ बोधपाहुड़ टीका, ५१।

किन्तु प्रभाचन्द्रकृत क्रियाकलाप और आशाधरकृत अनगारधर्मामृत (अध्याय ८) में इन आसनोंका रूप भिन्न प्रकारसे दिया है। इनके अनुसार दोनों जंघाओंसे दोनों पैरोंके संश्लेषको पद्मासन कहते हैं। अर्थात् दायें गोड़के नीचे बायें पैरको रखना और बाँयें गोड़के नीचे दाहिने पैरको रखना। बायें गोड़के ऊपर दाहिने गोड़को रखना पर्यंकासन है। दोनों ऊरुओं (जाँघों) के ऊपर दोनों पैरोंको रखना वीरासन कहलाता है। सम्बन्धित सन्दर्भ इस भाँति है—

'पद्मासनं श्रितौ पादौ जङ्घायामुत्तराधरे।
ते पर्यङ्कासनं न्यस्तावूर्वोर्वीरासनं क्रमौ॥प्रभाचन्द्र, क्रियाकलाप
जङ्घाया जङ्घयाश्लिष्टे मध्यभागे प्रकीर्तितम्।
पद्मासनं सुखाधायि सुसाध्यं सकलैर्जनैः॥
बुधैरुपर्यधोभागे जङ्घयोरुभयोरपि।
समस्तयोः कृते ज्ञेयं पर्यङ्कासनमासनम्॥
ऊर्वोरुपरि निक्षेपे पादयोर्विहिते सति।
वीरासनं चिरं कर्तुं शक्यं धीरैर्न कातरैः॥
जङ्घाया मध्यभागे तु संश्लेषो यत्र जङ्घया।
पद्मासनमिति प्रोक्तं तदासनविचक्षणैः॥
स्याज्जङ्घयोरधोभागे पादोपरि कृते सति।
पर्यङ्को नाभिगोत्तानदक्षिणोत्तरपाणिकः॥
वामोऽङ्घ्रिर्दक्षिणोरूर्ध्वं वामोरुपरि दक्षिणः।
क्रियते यत्र तद्वीरोचितं वीरासनं स्मृतम्॥ अनगार धर्मामृत ८।७९-८३।

जंघाओं पर रखकर उनके ऊपर दोनों हाथोंको ऊपर-नीचे रखे अर्थात् बायें हाथकी हथेलीपर दायें हाथकी हथेली रखे, ताकि हाथके दोनों अँगूठे दोनों टखनोंके ऊपर आ जायें। पेट, छातीकी रोमावली और नासिका एक सीधमें रहें। न अधिक अकड़कर और न अधिक झुककर बैठे। इसे सुखासन या पद्मासन कहते हैं। यह योगमुद्रा कहलाती है।

इसी प्रकार बायीं जंघाके ऊपर दायें पैरको रखकर पूर्ववत् दोनों हथेलियोंको एक दूसरेके ऊपर रखकर नासाग्र अर्धोन्मीलित दृष्टि रखना अर्धपद्मासन कहलाता है। यह भी योगमुद्रा कहलाती है।

इन प्रान्तोंमें जितनी तीर्थंकर-मूर्तियाँ मिलती हैं, वे सभी इन्हीं तीन आसनों और दो मुद्राओंमें मिलती हैं। किन्तु खड्गासनकी अपेक्षा पद्मासन मूर्तियोंकी संख्या अत्यधिक है। जिस प्रकार मध्यप्रदेशके अतिशय क्षेत्रोंपर खड्गासन मूर्तियोंकी संख्या अधिक रही है, उसी प्रकार इस प्रान्तके तीर्थोंपर पद्मासन प्रतिमाओंका अधिक प्रचलन रहा है। अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ धाराशिव, ऐलौरा, जिन्तूर और अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (सिरपुर) में प्राप्त होती हैं। खड्गासन मूर्तियोंमें बोरिवली (बम्बई) में इन तीनों प्रान्तोंमें सर्वाधिक अवगाहनावाली प्रतिमा भगवान् आदिनाथकी है जो ३१ फीटकी है। इसके अतिरिक्त यहींपर भरत और बाहुबलीकी २९-२९ फीट, कोल्हापुरमें आदिनाथकी २८ फीट, श्रीमहावीरजीमें शान्तिनाथकी २३ फीट, बाहुबलीमें बाहुबली स्वामीकी २८ फीट, कुन्थलगिरिमें बाहुबलीकी १८ फीट, झालरापाटनमें शान्तिनाथकी १२ फीट, ऐलौरामें पार्श्वनाथ और बाहुबलीको कई मूर्तियां १२ फीट उत्तुंग हैं।

पद्मासन मूर्तियोंमें सबसे बड़ी अवगाहनावाली मूर्ति भगवान् पार्श्वनाथकी है जो १६ फीट ऊँची है। यह मूर्ति ऐलौरा पर्वतके ऊपर पार्श्वनाथ मन्दिरमें विराजमान है।

इन प्रदेशोंमें तीर्थंकर-मूर्तियोंमें वैविध्यके दर्शन होते हैं। यहाँ त्रिमूर्तिका (जिन्हें महाराष्ट्रमें रत्नत्रय मूर्ति कहनेका प्रचलन है), सर्वतोभद्रिका, चैत्य, चौबीसी पट्ट अनेक स्थानोंमें मिलते हैं। मूर्तियोंमें आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरकी प्रतिमाओंकी संख्या सर्वाधिक है। आदिनाथकी जटायुक्त प्रतिमाएँ कई स्थानोंपर मिलती हैं, किन्तु अन्य कई तीर्थंकरोंकी भी जटायुक्त प्रतिमाएँ मिली हैं। पार्श्वनाथकी सात, नौ, ग्यारह, तेरह और सहस्रफणावलियुक्त प्रतिमाएँ भी हैं। ऐलौरामें सम्बरदेवकृत उपसर्गवाली और केवलज्ञान प्राप्तिके पश्चात् देव-देवियों द्वारा मोद प्रकट करनेवाली प्रतिमाएँ भी कई विद्यमान हैं। यहाँ पार्श्वनाथ- प्रतिमाओंके अनेक नाम रख लिये गये हैं; जैसे विघ्नहर पार्श्वनाथ, विघ्नेश्वर पार्श्वनाथ, अन्देश्वर पार्श्वनाथ, चंवलेश्वर पार्श्वनाथ, नागफणी पार्श्वनाथ, कलिकुण्ड पार्श्वनाथ, झरी पार्श्वनाथ, गिरी पार्श्वनाथ, अमीझरो पार्श्वनाथ, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ आदि। भातकुलीमें आदिनाथ मूर्तिमें अद्भुत विशेषता दिखाई पड़ती है। इस मूर्तिके हाथ और पैरोंकी अँगुलियाँ परस्पर संश्लिष्ट न होकर मनुष्योंके समान पृथक्-पृथक् हैं तथा इसके नाखून बढ़े हुए हैं। जिन्तूरमें एक मन्दिरमें पार्श्वनाथकी एक मूर्ति ऐसी है, जिसके ऊपर बाहुबलीके समान लताएँ चढ़ी हुई हैं और उनके सिरके ऊपर सर्पफणावली है। यह मूर्ति भगवान्की ध्यानावस्थाको प्रकट करती है। सिरपुरकी पार्श्वनाथ मूर्ति तो निश्चय ही अद्भुत है क्योंकि वह ३ फीट ८ इंच ऊँची और २ फीट ८ इंच चौड़ी होने और भारी सप्त फणावली युक्त होनेपर निराधार (एक कोणपर किंचित् आधार पाकर) अन्तरिक्षमें भूमिसे २-३ अंगुल ऊपर ठहरी हुई है। इसी प्रकार जिन्तूरमें पार्श्वनाथकी ५ फीट १० इंच ऊँची और ४ फीट ५ इंच चौड़ी नौ फणवाली एक भारी मूर्ति केवल २-३ इंच चौड़े चौकोर पाषाण-खण्डपर टिकी हुई है। कई प्रतिमाएँ ऐसी भी बतायी जाती हैं जो बालू और गारेकी बनी हुई हैं; जैसे

कारंजामें भूगर्भसे प्राप्त जटामण्डित सुपार्श्वनाथ प्रतिमा बालुकामय है। पैठणके मुनिसुव्रतनाथ भी बालू निर्मित बताये जाते हैं। धाराशिवकी पार्श्वनाथ-मूर्ति गारे-मिट्टीकी बनी हुई है।

ऐतिहासिक कालक्रमकी दृष्टिसे अभिलिखित मूर्तियोंमें इन प्रदेशोंमें प्राचीनतम मूर्ति केशोरायपाटनमें उपलब्ध होती है। इस मूर्तिके ऊपर लांछन नहीं है किन्तु मूर्ति-लेख है जिसके अनुसार इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् ६६४ है। यहींपर कई अन्य मूर्तियाँ भी हैं जो अपनी रचना शैलीसे इसके समकालीन लगती हैं। यहाँकी मूलनायक मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमाको कुछ लोग २००० वर्ष प्राचीन बताते हैं। जिनके हृदयमें इस प्रतिमाके प्रति भक्तिका अतिरेक है, वे तो इसे रामचन्द्रकालीन बताते हैं। किन्तु इसे ईसाकी प्रथम-द्वितीय शताब्दी या इसके उत्तरकाल की ही माना जा सकता है। इसके लिए ठोस साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। प्राकृत निर्वाण काण्डमें इसका उल्लेख मिलता है।

धाराशिव गुफाओंकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा जैन साहित्यके आधारपर महावीर स्वामीसे पूर्वकालीन करकण्डु नरेशने की थी। पुरातत्त्ववेत्ता इनका काल ७-८वीं शताब्दी मानते हैं। इसी प्रकार ऐलौरा और औरंगाबाद गुफाओंकी अनेक मूर्तियोंका निर्माण भी इसी कालमें हुआ था। तेरकी मूर्तियाँ धाराशिवकी मूर्तियोंके लगभग समकालीन मानी जाती हैं। चाँदवड़ गुहा-मूर्तियोंका काल कुछ पश्चाद्वर्ती प्रतीत होता है। गजपन्थ क्षेत्रकी गुहा-मूर्तियाँ इनके लगभग समकालीन लगती हैं। चाँदवड़ और गजपन्थ न केवल निकटवर्ती हैं, इनकी मूर्तियोंकी रचना-शैलीमें भी अत्यधिक साम्य है।

मांगीतुंगीकी पर्वतस्थ गुहा-मूर्तियाँ कालकी दृष्टिसे सबसे प्राचीन लगती हैं। इन्हें ईसाकी प्रथम शताब्दी या इससे भी कुछ पूर्वका माना जा सकता है। उदयगिरि-खण्डगिरिकी मूर्तियोंसे यहाँकी मूर्तियोंमें शैली, अभिव्यंजना आदि किसी दृष्टिसे साम्य नहीं है, उनके पाषाणोंमें भी मौलिक अन्तर है। उदयगिरि-खण्डगिरिकी मूर्तियोंका पाषाण ठोस है, जबकि मांगीतुंगीकी मूर्तियाँ रवादार बुरबुरे पाषाण की हैं जिससे ये खिर-खिरकर अपरूप हो गयी हैं। अतः दोनों स्थानोंकी मूर्तियोंमें समानता ढूँढ़ना व्यर्थ होगा। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि मांगीतुंगीमें मूर्तियोंका निर्माण उस कालमें हुआ था, जब इस प्रदेशमें मूर्ति-कलाका विकास नहीं हुआ था। अतः इस प्रदेशमें मूर्ति-कलाके प्रारम्भिक कालमें मांगीतुंगीमें मूर्तियोंका निर्माण किया गया। इसीलिए गजपन्थ, अंजनेरी, चाँदवड़, ऐलौरा आदिको पश्चात्कालीन मूर्तियोंमें मांगीतुंगीकी अपेक्षा अधिक सुघड़ता, अधिक समानुपातिकता और अधिक निखार पाते हैं।

नौवीं शताब्दीसे १२वीं शताब्दी तक की मूर्तियाँ

निम्नलिखित स्थानोंपर इस कालकी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं—

कुण्डल—पार्श्वनाथकी एक मूर्ति पर संवत् ९६४ अंकित है। लेपके कारण यहाँकी कई मूर्तियोंके लेख दब गये हैं। किन्तु वे भी इसी कालकी लगती हैं।

अंजनेरी—यहाँ १२वीं शताब्दीका शिलालेख प्राप्त हुआ है। यहाँ कई मूर्तियाँ इसी कालकी हैं।

कोल्हापुर—मानस्तम्भ दिगम्बर जैन मन्दिर गंगावेशमें मानस्तम्भ और मूर्तियाँ १२वीं शताब्दी की हैं।

सिरपुर—पवली और अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मन्दिर में १०वीं शताब्दीकी अनेक मूर्तियाँ हैं।

मुक्तागिरि—मन्दिर नं. ७, १०, १५, १८, २६, ४५, ४६, ४८ की अनेक मूर्तियाँ ९वीं से ११वीं शताब्दी तक की हैं। मन्दिर नं० ७ में नेमिनाथकी मूर्तिके पादपीठ पर संवत् ९०४ अंकित है। मन्दिर नं० १० ऐल श्रीपाल नरेश द्वारा बनवाया गया था। अतः इसकी मूर्तियाँ निश्चित रूपसे १०वीं शताब्दी की हैं। शेष उपरिलिखित मन्दिरोंमें इसके आसपासकी मूर्तियाँ विद्यमान हैं। कुछ मूर्तियाँ खण्डित दशामें इकट्ठी रखी हुई हैं जो प्रायः १०वींसे १२वीं शताब्दी तककी प्रतीत होती हैं।

आबू—कुन्थुनाथ दिगम्बर जैन मन्दिरका निर्माण श्वेताम्बर मन्दिरोंके साथ हुआ था, ऐसा कहा जाता है।

बिजौलिया—यहाँकी मूर्तियाँ संवत् १२२६ की हैं।

अजमेर—बड़ा धड़ा मन्दिरमें ढाई दिनके झोंपड़ेसे उत्खननमें प्राप्त ८४ मूर्तियाँ रखी हैं, जिनमेंसे अनेक पर संवत् ११५० और १२३० अंकित हैं। इसी प्रकार छोटा धड़ा मन्दिरमें आदिनाथ मूर्ति भी इसी कालकी लगती है।

जयपुर—महावीर मन्दिर कालाडेरामें संवत् ११४८ की महावीर-मूर्ति है। सांगानेरमें एक मूर्ति संवत् ११८९ की है। आमेरमें नेमिनाथ-मूर्ति और बाहरकी नसियामें कई मूर्तियाँ १२वीं शताब्दी की हैं।

चाँदखेड़ी—शेरगढ़से लायी हुई तीन मूर्तियाँ रखी हैं जो ११-१२वीं शताब्दी की हैं। एक मूर्ति संवत् ११४६ की है।

झालरापाटन—नसियामें संवत् १२२६ की एक मूर्ति है। अन्य कई मूर्तियाँ भी इसी काल की हैं।

तारंगा—नेमिनाथ, मल्लिनाथ तथा अन्य कई मूर्तियाँ संवत् ११९२ की हैं। दो खड्गासन मूर्तियाँ संवत् १२०३ की हैं।

पावागढ़—यहाँ सम्भवनाथ और अजितनाथकी संवत् १२४५ की दो मूर्तियाँ हैं।

सूरत—पार्श्वनाथ की संवत् ११६० और १२३५ की दो मूर्तियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थान हैं, जहाँ जैन पुरातत्त्व भग्नावशेषरूपमें पड़ा है, या जहाँ प्राचीन जैन प्रतिमाएँ हैं। पातूरमें राष्ट्रकूटकालीन एक जैन तीर्थंकर मूर्ति है जिसे सिन्दूर पोतकर देवी-मूर्ति बना दिया गया है। वाशींटाकलीमें १२वीं शताब्दीकी एक जैन मूर्ति निकली थी जो अब नागपुर संग्रहालयमें है। राजनापुर—जो राष्ट्रकूट कालमें अचलपुरके बाद उपराजधानी थी—यहाँ सन् १९२६ में जैन मन्दिरके भग्नावशेषोंके नीचेसे २७ दिगम्बर जैन मूर्तियाँ निकली थीं जो नागपुर संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। ये मूर्तियाँ ७वीं, ९वीं और १२वीं शताब्दी की हैं। इनका शिल्प एवं कला अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की हैं। इन्हें जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, फ्रांस, इटली और दिल्ली की कला प्रदर्शनियोंमें भेजा जा चुका है। इसी प्रकार महाराष्ट्र प्रदेशके बोरगाँव (मंजू), अकोट, महान, पिंजर, मंगरुल, मानोरा, किन्हीराजा आदिमें भी अति प्राचीन जैन मूर्तिया हैं।

उत्तरकालमें जैन मूर्तियाँ—

उत्तर कालकी १३-१४वीं शताब्दियोंकी तीर्थंकर-मूर्तियाँ निम्नलिखित स्थानोंपर उपलब्ध होती हैं—

केशोरायपाटन (संवत् १३२१–१३५०–१४१९), चमत्कार जी (संवत् १३९०), सूरत (संवत् १३७६-१३८०), ऐलौरा (संवत् ११५६), औरंगाबादके सवाई दिगम्बर जैन मन्दिर (संवत् १२७२-१३४५), जिन्तूर (हिजरी सन् ६३१ अर्थात् ईस्वी सन् १२३३से पूर्वकी अनेक

मूर्तियाँ) कारंजा-काष्ठासंघी मन्दिर (संवत् १२७२ की अनेक मूर्तियाँ), बाढौणा रामनाथ (संवत् १४५७), भातकुली (शक संवत् ११५३ अर्थात् सन् १२३१), सिरपुर-पवली (संवत् १४५७)।

इसके पश्चात्कालकी मूर्तियाँ तो सभी क्षेत्रोंपर मिलती हैं। संवत् १५४८ को जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ प्रायः सभी क्षेत्रोंपर मिलती हैं।

ऊपर अबतक जिन मूर्तियोंका काल-निर्धारण किया गया है, वे सभी पाषाण की हैं। इन प्रान्तोंमें धातु-मूर्तियाँ विशेष प्राचीन उपलब्ध नहीं होतीं।

शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ

तीनों प्रान्तोंमें शासन-देवताओं अर्थात् तीर्थंकरोंके सेवक यक्ष-यक्षियोंकी संख्या विशाल है। प्रायः अधिकांश तीर्थक्षेत्रोंपर इनकी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। यक्षोंमें सर्वाधिक मूर्तियाँ गोमेद, धरणेन्द्र और मातंग यक्षोंको मिलती हैं। कहीं-कहीं गोमुख यक्षकी मूर्ति भी मिलती है। यक्षियोंमें अम्बिका, पद्मावती, ज्वालामालिनी, चक्रेश्वरी और सिद्धायिकाकी मूर्तियाँ अत्यधिक संख्यामें मिलती हैं। इनमें भी अम्बिका और पद्मावतीकी मूर्तियोंकी संख्या विशाल है। यक्ष प्रायः द्विभुजी ही मिलते हैं, किन्तु यक्षियोंमें षोडशभुजी, द्वादशभुजी और चतुर्भुजी मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। बाहुबली क्षेत्रपर १६ भुजी ज्वालामालिनी, चतुर्भुजी पद्मावती है। ऐलौरामें द्वादशभुजी यक्षी मूर्ति है। कुण्डल, कोल्हापुर, जिन्तूर, श्रीमहावीरजी, चाँदखेड़ी, पावागढ़में चतुर्भुजी देवी-मूर्तियाँ हैं। चतुर्भुजी देवियोंकी मूर्तियाँ पाषाण और धातु दोनों प्रकारकी मिलती हैं। ऐलौराकी यक्ष-यक्षी-मूर्तियोंकी अपनी कुछ पृथक् विशेषताएँ हैं। यहाँकी मूर्तियोंका आकार विशाल है; यक्ष अलंकारोंके अतिरिक्त यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं। गोमेदकी अनेक मूर्तियाँ यहाँ ऐसी है, जिनके सिरके ऊपर काफी विशाल आम्रगुच्छक है। अम्बिकाकी मूर्तियोंमें भी सिरके ऊपर या हाथमें आम्रस्तवक है और बालक भी हैं। प्रायः देवियोंके शीर्ष भागपर तीर्थंकर-मूर्ति होती है, किन्तु ऐलौरा यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ स्वतन्त्र हैं, उनके साथ तीर्थंकर-मूर्ति नहीं है। इन मूर्तियोंकी अलंकरण-सज्जा, सुघड़ता और सौन्दर्यकी ओर शिल्पीने विशेष ध्यान रखा है। खजुराहोकी यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियोंको छोड़कर सुन्दरता और सुघड़तामें ऐलौराकी इन मूर्तियोंकी समानता अन्य किसी स्थानकी यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ सम्भवतः नहीं कर सकतीं।

इन यक्ष-यक्षी मूर्तियोंके अतिरिक्त सरस्वतीकी मूर्तियाँ भी मिलती हैं, यद्यपि उनकी संख्या अल्प है। धाराशिव गुफाओंमें सरस्वतीकी श्यामवर्ण प्रतिमा है। यह अर्ध पद्मासनमें है। देवी कन्धेके सहारे वीणा रखे हुए है। उसे दायें हाथसे बजा रही है। उसका बायाँ हाथ वरद मुद्रामें है। राजनापुरसे प्राप्त एक सरस्वती-मूर्ति नागपुर संग्रहालयमें सुरक्षित है। देवी ललितासनसे विराजमान है। उसके वाहन हंसकी चोंचमें सात मणियोंकी माला लटक रही है जो सप्त तत्त्वोंकी प्रतीक है। हंसवाहिनी सरस्वतीकी एक मनोज्ञ पाषाण-मूर्ति बोरगाँव (मंजू) में है।

ऐलौराकी गुफा नं. ३० व गुहा-मन्दिरकी बाह्य भित्तियोंपर एक ओर द्वादशभुजी इन्द्र नृत्य मुद्रामें प्रदर्शित है। इन्द्र अलंकार धारण किये हुए है। उसकी भुजाओंपर देवियाँ नृत्य कर रही हैं। कुछ देव वाद्य बजा रहे हैं। भित्तिके दूसरे पार्श्वमें इन्द्र चतुर्भुजी है। वह भी नृत्य मुद्रामें उत्कीर्ण है। यहीं द्वारके दोनों पार्श्वोंमें द्वारपाल विशाल आकारमें बने हुए हैं, जिनके हाथमें भयानक गदा है।

कालक्रमकी दृष्टिसे इन प्रदेशोंमें शासन-देवताओंकी सर्वाधिक प्राचीन मूर्तियाँ धाराशिव

और ऐलौरा गुफाओंमें ही मिलती हैं, जिनका काल ईसाकी ७-८वीं शताब्दी है। अन्य स्थानोंकी मूर्तियाँ इसके बादकी हैं।

जिनायतन

इन प्रान्तोंमें प्राचीन जिनालय अत्यल्प हैं। अधिकांशत: प्राचीन कालके जिनालय नष्ट हो गये या धर्मोन्मादने नष्ट कर दिये। फिर भी जो बचे हुए हैं, उनका जीर्णोद्धार किया जा चुका है। ऐसे जिनालयोंकी संख्या तो उँगलियोंपर गिनी जा सकती है जो अपने मूलरूपमें अबतक सुरक्षित हैं। केशोरायपाटनका शिखर अबतक सुरक्षित खड़ा है, यद्यपि इसके आधे भागका जीर्णोद्धार किया जा चुका है। किन्तु जितना अपने मूलरूपको सुरक्षित रख सका है उसका काल ईसाकी ७-८वीं शताब्दी है और यह सम्भवत: इन तीनों प्रदेशोंमें सर्वाधिक प्राचीन है। पावागढ़में पर्वत-पर कुछ जिनालय भस्मावशेष रूपमें बिखरे पड़े हैं किन्तु एक अब भी उपेक्षित और भग्नप्राय दशामें तालाबके तटपर खड़ा हुआ है। उसकी जंघाओं, शुकनासिका, आमलक और शिखरपर शासन-देवताओं और तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसकी समानता काल और कलाकी दृष्टिसे मध्यप्रदेशके ऊन, ग्यारसपुर, मालादे और बज्रमठके प्राचीन जिनालयोंसे की जा सकती है। तारंगाका जैन मन्दिर भी चालुक्य कालका प्रतीत होता है। उसकी भी शुकनासिका और शिखर-पर नानाविध मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं और छोटा होते हुए भी सम्राट् कुमारपाल द्वारा निर्मित श्वेताम्बर जिनालयके साथ कलामें होड़ करता प्रतीत होता है। बिजौलियाका पार्श्वनाथ मन्दिर शिलालेखके अनुसार १२वीं शताब्दीका है और ८०० वर्षोंके काल और धर्मोन्मादके क्रूर प्रहारोंके मध्य अभी तक सुरक्षित है। घोघाके जिनालय भी सम्भवत: १२-१३वीं शताब्दीके हैं। चित्तौड़गढ़ और आबूके जैनमन्दिर इसके कुछ बादके हैं। अंजनेरीमें एक जैन मन्दिर किसी प्रकार अपनी जीर्ण दशामें अबतक खड़ा हुआ है। इसमें १२वीं शताब्दीका एक शिलालेख भी है। कोल्हापुरका पार्श्वनाथ मानस्तम्भ जैन मन्दिर गंगावेश लगभग १००० वर्ष प्राचीन है। इसमें शक संवत् १०६५ का एक शिलालेख भी है। नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर मंगलवार पेठका निर्माण महालक्ष्मी मन्दिरके समकालीन है। यह भी कहा जाता है कि भगवज्जिन सेनाचार्यने षट्खण्डागमके लेखनकी समाप्ति इसी मन्दिरमें बैठकर की थी। षट्खण्डागमकी समाप्ति शक संवत् ७५९ (ई. सन् ८३७) में हुई थी। यदि यह सिद्ध हो जाता है कि षट्खण्डागमका अन्तिम भाग उक्त मन्दिरमें लिखकर ग्रन्थ सम्पूर्ण किया गया तो इस मन्दिरका काल ईसाकी नौवीं शताब्दी सुनिश्चित हो जाता है। तेरके मन्दिरमें कोई शिलालेख या अन्य ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, जिससे मन्दिरके निर्माण-कालपर प्रकाश पड़ सके। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि यह कमसे कम १०वीं शताब्दी या उससे कुछ पूर्वका ही होना चाहिए। जिन्तूरका नगर मन्दिर और सिरपुरके दोनों मन्दिर भी १०वीं शताब्दीके हैं, यद्यपि सिरपुरके मन्दिरोंमें जीर्णोद्धार हो चुका है। वार्शीटाकलीमें एक हेमाड़पन्थी मन्दिर है। इसमें ११वीं शताब्दीका एक शिलालेख भी है। मन्दिरमें भगवान् महावीरके जीवन सम्बन्धी घटनाएँ अंकित हैं। इस मन्दिरकी बाह्य भित्तिपर डेढ़ फुट ऊँची खड्गासन जैन मूर्ति उत्कीर्ण है। यह मन्दिर अब भग्नावशेषरूपमें खड़ा है।

जिनालयोंकी एक विधा तलप्रकोष्ठ या भोंयरा भी है। दहीगाँव, पैठण, औरंगाबाद, जिन्तूर, सिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ), कारंजा, मुक्तागिरि, केशोरायपाटन, चाँदखेड़ी, महुआ, अंकलेश्वर और सजोदमें तलप्रकोष्ठ बने हुए हैं, जहाँ तीर्थंकर-मूर्तियाँ विराजमान हैं।

नन्दीश्वर जिनालय भी जिनायतनका एक रूप है। कई स्थानोंपर इनकी रचनाएँ की गयी हैं, जैसे बाहुबली, अजमेर, श्रीमहावीरजी। यहाँ नन्दीश्वर द्वीपके ५२ जिनालय लघु रूपमें बनाये

गये हैं। नन्दीश्वर जिनालयके ५२ जिनालय पीतल या पाषाणस्तम्भोंमें बनानेकी भी प्रथा है। ऐसे नन्दीश्वर जिनालय कुन्थलगिरि, ऋषभदेव, चाँदखेड़ी, तारंगा और महुआमें मिलते हैं। पावागढ़में पीतलका ४ फीट १० इंच ऊँचा जिनालय है जो संवत् १५३७ का है।

सहस्रकूट जिनालयमें भगवान्‌की १००८ मूर्तियाँ होती हैं। यह पाषाण और धातु दोनोंमें ही मिलती हैं। घोघामें संवत् १५६१ का धातुका एक सहस्रकूट है। दहीगाँवमें संवत् १६६५ का है। कोल्हापुरमें पीतलका शिखराकार सहस्रकूट जिनालय है। पैठणमें भी एक जिनालय है। औरंगाबादमें एक सहस्रकूट जिनालय है। यह पीतलका है। इसमें ६९×४ मूर्तियाँ हैं। किन्तु इसे सहस्रकूट जिनालयकी संज्ञा देना उपयुक्त नहीं लगता। जिन्तूरमें पीतलके दो सहस्रकूट जिनालय संवत् १५४१ के हैं। इनमें एक लोकाकार है, दूसरा शिखराकार है। ये दोनों ही पाँच फीटके लगभग ऊँचे हैं। इनमें १००० + २४ मूर्तियाँ हैं। सम्भवतः १००० मूर्तियाँ सहस्रकूट जिनालयकी प्रतीक हैं और २४ मूर्तियाँ तीर्थंकरोंकी प्रतीक हैं। करंजाके बलात्कारगण मन्दिरमें पीतलके दो सहस्रकूट चैत्यालय हैं। एकमें १००८ मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जबकि दूसरेमें १७२८ मूर्तियाँ हैं। १७२८ मूर्तियोंका क्या उद्देश्य हो सकता है, यह ज्ञात नहीं हो पाया।

जिनायतनकी रचना-शैलीमें मानस्तम्भ भी जिनालयका एक भाग माना गया है। अजमेर, जयपुर, श्रीमहावीरजी, गजपन्थ, दहीगाँव, बाहुबली, कारंजा, सावरगाँव, पैठण, मुक्तागिरि, तारंगा, गिरनार, सोनगढ़, शत्रुंजय, सूरतमें विशाल मानस्तम्भ बने हुए हैं।

गुहामन्दिर—इन प्रान्तोंमें निम्नलिखित स्थानोंपर गुहा-मन्दिर बने हुए हैं—

धाराशिव, ऐलौरा, मांगीतुंगी, गजपन्थ, अंजनेरी, जिन्तूर, तारंगा, गिरनार, कुण्डल, औरंगाबाद, चाँदवड़।

इनमें धाराशिव और ऐलौराके गुहामन्दिर निश्चित रूपसे ७–८वीं शताब्दीके स्वीकृत किये गये हैं। मांगीतुंगीके गुहामन्दिरोंका पुरातात्त्विक दृष्टिसे अभी तक काल-निर्धारण नहीं किया गया, किन्तु अपनी संरचना-शैलीसे ये ईसापूर्व या ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियोंके लगते हैं। अंजनेरी और गजपन्थके गुहामन्दिर प्रायः ८–९वीं शताब्दीके अनुमानित किये जाते हैं। चाँदवड़-के गुहामन्दिर भी लगभग इसी कालके प्रतीत होते हैं। जिन्तूरकी चन्द्रगुहाका उल्लेख प्राकृत भक्तिपाठोंमें आता है। प्राकृत भक्तिपाठ कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत बताये जाते हैं। अतः इनका निर्माण-काल ईसाकी प्रथम-द्वितीय शताब्दी हो सकता है। औरंगाबादकी निपटनिरंजन गुहाओंका काल पुरातत्त्ववेत्ताओंने ७–८वीं शताब्दी निर्धारित किया है। ये गुहामन्दिर बौद्ध और जैनोंके संयुक्त मन्दिर हैं। इनमें दोनों धर्मोंकी मूर्तियाँ हैं। गिरनारकी राजुल गुफाका समय ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियाँ अथवा इससे कुछ पूर्वका हो सकता है। तारंगाकी गुफा कोटिशिला और सिद्धशिलापर पायी जानेवालीं संवत् ११९२ की मूर्तियोंसे इसी कालकी अनुमानित की जाती हैं। कुण्डलकी गुफाएँ दसवीं शताब्दी की हैं। कलिकुण्ड पार्श्वनाथ मन्दिरमें एक मूर्तिपर संवत् ९६४का लेख उत्कीर्ण है। अतः यह धारणा स्वाभाविक है कि पर्वतकी गुफाएँ इसी कालमें निर्मित हुई होंगी। इस प्रकार ये गुहामन्दिर ईसाकी प्रथम शताब्दीसे १२वीं शताब्दीके मध्यके निर्मित हैं।

इन गुफाओंमें कई गुफाएँ तो प्राकृतिक लगती हैं, जिन्हें बादमें छैनी-हथौड़ोंकी सहायतासे साधारण सँवारा गया लगता है। जैसे गिरनारकी राजुल गुफा। माँगीतुंगी और गजपन्थकी गुफाएँ चूना-सीमेण्टकी सहायतासे अभी सँवार दी गयी हैं। अतः उनका मौलिक रूप दब गया है, जिससे उनके सम्बन्धमें निश्चित धारणा नहीं बनायी जा सकती। माँगीतुंगी पर्वतमें इन गुहा-

मन्दिरोंसे लगभग ३ मील दूर धरातलसे १००० फीट ऊपर अभी एक प्राकृतिक गुफा बनी हुई है, जिसका रहस्य आज तक अनावृत बना हुआ है। इसे देखते हुए यह सम्भावना की जा सकती है कि इन गुहामन्दिरोंकी गुफाओंमें सब नहीं तो कुछ अवश्य प्राकृतिक होंगी। यही बात गजपन्थकी गुफाओंके लिए भी कही जा सकती है।

इन गुफाओंमें आकार, विशालता और सुघड़ताकी दृष्टिसे धाराशिव और ऐलौराकी गुफाएँ सबसे बाजी मार ले जाती हैं। कलाकी दृष्टिसे ऐलौराकी इन्द्रसभा गुफा, जगन्नाथ गुफा और छोटा कैलाश गुफाएँ बेजोड़ हैं। इनके स्तम्भ अलंकृत हैं। कई स्तम्भों पर तीर्थंकरों और साधुओं-की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। कई स्तम्भोंपर सरस लोकजीवनका अंकन किया गया है। कहीं कोई मुग्धा त्रिभंग मुद्रामें खड़ी हुई है; कहीं संगीत-समाज जुटा हुआ है, नर्तकी चपल गतिसे नृत्य कर रही है, कोई वाद्य और संगीतमें मग्न है। कहीं कोई सुरसुन्दरी अकेली ही नृत्यमें लीन है। इन दृश्योंमें अल्हड़ यौवन छलकता दिखाई पड़ता है। शिल्पीने उनके सौन्दर्य और यौवनको सँवारनेमें अपनी कलाका, अपने नैपुण्य और कल्पनाका पूरा उपयोग किया है।

ऐलौरा और मांगीतुंगीकी गुफाओंमें कला और आकार-प्रकारमें तो कोई समानता नहीं है किन्तु एक बातमें समानता अवश्य है। दोनों ही स्थानोंपर तीर्थंकर और शासन-देवताओंकी मूर्तियोंके साथ साधु-मूर्तियोंका अंकन किया गया है। बल्कि इस दृष्टिसे मांगीतुंगीकी गुफाएँ अत्यधिक समृद्ध हैं। यहाँ साधु-मूर्तियोंकी संख्या सैकड़ों है, जबकि ऐलौरामें शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ अधिक हैं। अन्य स्थानोंकी गुफाओंमें केवल तीर्थंकर-मूर्तियाँ ही हैं, उनमें शासन-देवताओं-की मूर्तियाँ बहुत कम हैं।

धाराशिव और ऐलौराकी गुफाएँ लगभग समकालीन मानी जाती हैं। धाराशिवमें स्तम्भों आदिमें कोई अलंकरण नहीं है, मूर्तियोंकी संख्या भी अल्प है, वहाँ मूर्तियाँ भी मुख्यतः पार्श्वनाथ-की हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि धाराशिवकी मूर्तियाँ ऐलौराकी मूर्तियोंकी अपेक्षा अधिक सजीव, भव्य और सुडौल हैं। धाराशिवकी सभी पार्श्वनाथ मूर्तियाँ अर्धपद्मासनमें स्थित हैं, आकार-प्रकारमें विशाल हैं, उनके अंग-प्रत्यंगमें अधिक सुघड़ता है और उनकी भावाभिव्यंजना अधिक प्रभावक है। धाराशिवकी गुफाओंके निर्माणका मुख्य उद्देश्य पूजा और साधुओंके ध्यानके लिए एकान्त सुविधापूर्ण स्थान निर्मित करना था, जबकि ऐलौराकी गुफाओंका निर्माण कला-यतनोंके रूपमें किया गया था। इस दृष्टिसे दोनों ही स्थान अपने उद्देश्योंमें सफल रहे हैं।

अभिलेख

अभिलेखोंके अनेक प्रकार हैं—शिलालेख, ताम्रपत्र, मूर्ति-लेख। इन प्रान्तोंमें कुण्डलको छोड़कर कहीं ताम्रलेख उपलब्ध नहीं हुए। कुण्डलमें दसलाढ़ नामक एक व्यक्तिको धरमें तीन ताम्रपट प्राप्त हुए थे। प्रथम ताम्रपट राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय द्वारा दिये दानसे सम्बन्धित है। द्वितीय ताम्रपट पुलकेशी परन्तु विजयादित्यके दानपत्रके सम्बन्धमें है तथा तृतीय दानपत्र शक संवत् १२१० में कदम्बवंशी मयूरवर्मा द्वारा जैनाचार्य श्रीपालके शिष्य गुणपालको जैन मन्दिरके लिए दिये गये एक ग्रामके दानके सम्बन्धमें है। ये ताम्रपट ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

मूर्ति-लेख तो प्रायः सभी क्षेत्रोंपर मिलते हैं। प्राचीन मूर्तियोंपर प्रायः लेख नहीं मिलते। कुछ अतिशय क्षेत्रोंपर ऐसी मूलनायक और अतिशयसम्पन्न प्रतिमाएँ हैं जिनपर कोई लेख नहीं

हैं। अतः उन्हें भक्त लोग चतुर्थकालीन अर्थात् ईसा पूर्व छठी-सातवीं या उससे पूर्वकी मानते हैं। यद्यपि यह मान्यता केवल उनकी अतिशय भक्तिका प्रमाण है। पुरातत्त्ववेत्ता मूर्तियोंका काल-निर्धारण मूर्तियोंके पाषाण और उनकी रचना-शैलीके आधारपर करते हैं और वही प्रामाणिक माना जाता है। जैसे केशोरायपाटन, पैठण, धाराशिव, घोघा आदि स्थानोंपर कई मूर्तियोंको भक्तजन चतुर्थकालीन मानते हैं किन्तु पुरातत्त्ववेत्ता इसे स्वीकार नहीं करते। मूर्ति-लेखोंमें इन प्रान्तोंमें सर्वाधिक प्राचीन लेख केशोरायपाटनकी एक मूर्तिपर अंकित है। वह है संवत् ६६४। इससे प्राचीन कोई मूर्ति-लेख इन प्रान्तोंमें उपलब्ध नहीं हुआ। इसके पश्चात् मुक्तागिरिका मन्दिर नं. ७ का संवत् ९०४ और कुण्डलका संवत् ९६४ का मूर्ति-लेख है। किन्तु इन मूर्ति-लेखोंसे यह नहीं समझा जा सकता कि इनसे प्राचीन मूर्तियां इन प्रान्तोंमें नहीं हैं।

इन प्रान्तोंमें शिलालेखोंकी संख्या अधिक नहीं है। इनमें बिजौलिया और कोल्हापुरके शिलालेख सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बिजौलियामें कई शिलालेख हैं। एक लेख १९ फीट ३ इंच लम्बी और ५ फीट ४ इंच चौड़ी शिलापर है। इसमें कुल ४२ पंक्तियाँ हैं। यह चपटी चट्टान पहाड़की जमीनके तलपर प्राकृतिक उभरी हुई है। इसी प्रकारकी एक शिला है जो १० फीट ६ इंच लम्बी और ३ फीट ६ इंच चौड़ी है। इसमें ३० पंक्तियाँ हैं। उसपर लेख उत्कीर्ण हैं। यहीं एक अनगढ़ ३ फीट ८ इंच चौड़ी और १ फीट ३ इंच ऊँची शिला—जिसे पत्थरका ठोक कहना चाहिए—पर १० पंक्तियोंका लेख उत्कीर्ण है। इस क्षेत्रके मन्दिरमें दो चैत्यस्तम्भ बने हुए हैं। इनमें-से एक ५ फीट ६ इंच और दूसरा ७ फीट ६ इंच ऊँचा है। इन दोनोंपर क्रमशः २४ और ४० पंक्तियोंके लेख हैं। मन्दिरकी दीवाल और फर्शपर भी लघुलेख उत्कीर्ण हैं। बड़ी शिलापर संवत् १२२६ में इस मन्दिरके निर्माता श्रेष्ठी लोलार्कने चाहमाननरेश सोमेश्वरके राज्यकालमें मन्दिरके निर्माण और उसकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें एक लेख उत्कीर्ण कराया था। दूसरी शिलापर 'उन्नत शिखर पुराण' नामक काव्यग्रन्थ उत्कीर्ण है। चैत्यस्तम्भोंपर संवत् १४६५ और १४८३ के लेख अंकित हैं।

कोल्हापुरमें पार्श्वनाथ मानस्तम्भ दिगम्बर जैन मन्दिर गंगावेशमें दो शिलालेख रखे हुए हैं। इनमें-से एक ३ फीट ६ इंच ऊँची और २ फीट ५ इंच चौड़ी पाषाण शिलापर उत्कीर्ण है। इसमें ३१ पंक्तियां हैं। दूसरा शिलालेख ३ फीट १ इंच लम्बे-चौड़े पाषाण-फलकपर उत्कीर्ण है। इनमें शक संवत् १०६५ और १०७३ में शिलाहारनरेशों द्वारा जैन मन्दिरोंको दिये गये दानका उल्लेख है।

चाँदखेड़ीमें एक स्तम्भपर संवत् १७४६ का लेख उत्कीर्ण है।

इनके अतिरिक्त वार्शीटाकलीके हेमाड़पन्थी जैन मन्दिरमें ११वीं शताब्दीका एक शिलालेख है। राजनापुरमें संवत् ११४० का एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है। अंजनेरीके एक जैन मन्दिरमें १२वीं शताब्दीका शिलालेख है।

□

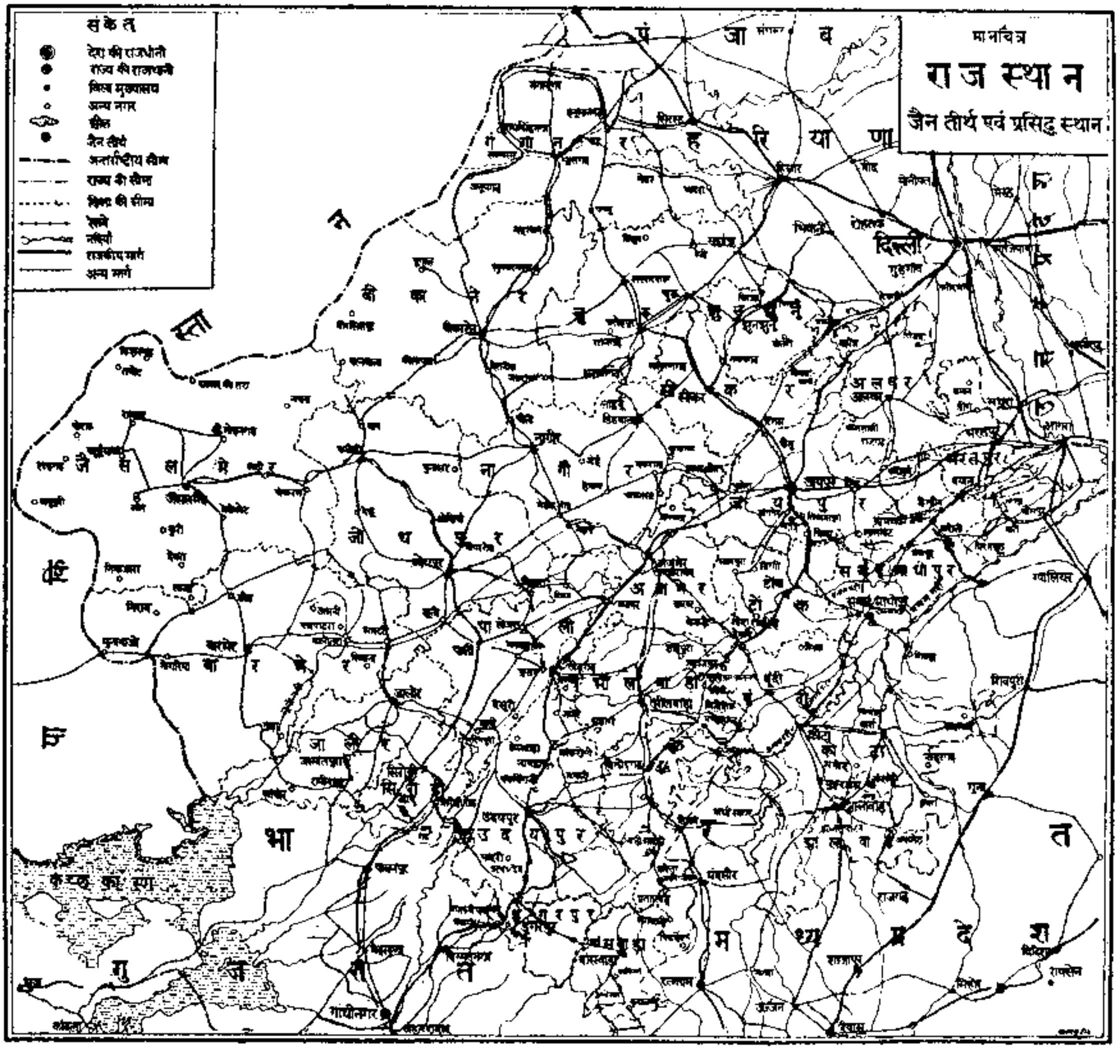

* भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

* इस मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

© भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७७

* समुद्रमें भारतका जलप्रदेश उपयुक्त आधार रेखासे मापे गये बारह समुद्री मीलकी दूरी तक है।

राजस्थान प्रदेश

श्रीमहावीरजी
चमत्कारजी
चाँदखेड़ी
झालरापाटन
जयपुर
पद्मपुरा
अजमेर
बघेरा
नरैना
मौजमाबाद
केशोरायपाटन
बिजौलिया
चम्बलेश्वर पार्श्वनाथ
चित्तौड़
बमोतर (श्री शान्तिनाथजी)
अन्देश्वर पार्श्वनाथ
नागफणी पार्श्वनाथ
ऋषभदेव (केशरियाजी)
आबू
तिजारा

श्रीमहावीरजी

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, राजस्थान प्रान्तके सवाई माधोपुर जिलेमें अवस्थित है। पश्चिमी रेलवेकी दिल्ली-बम्बई मुख्य लाइनपर भरतपुर और गंगापुर रेलवे स्टेशनोंके बीच 'श्रीमहावीरजी' नामका रेलवे स्टेशन है जहां फ्रन्टियर मेल सहित प्रायः सब ही गाड़ियां ठहरती हैं। रेलवे स्टेशनसे मन्दिर तक जाने-आने हेतु क्षेत्रको ओरसे निःशुल्क बस सेवा उपलब्ध है। रेलवे स्टेशनसे मन्दिर ६ किलो मीटर दूर है जहां तक पक्की सड़क बनी हुई है। क्षेत्रके पूर्वकी ओर श्री-चरणोंको पखारती हुई गम्भीर नदी बहती है। इसपर पुल बना हुआ है जिससे प्रत्येक ऋतुमें यातायातकी सुविधा हो गयी है। यह स्थान सड़क मार्गसे जयपुरसे १७५ किलो मीटर एवं आगरासे १७० किलो मीटर है और राजपथ संख्या ११ के महुवा ग्रामसे ५५ किलो मीटरकी दूरीपर स्थित है। यहां नल, बिजली, पोस्ट ऑफिस, तार घर, टेलीफोन, बैंक (बैंक ऑफ बड़ौदा) आदि सभी प्रकारकी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

इतिहास

मन्दिर चांदनपुर गांवके अति निकट है। इस क्षेत्रपर भगवान् महावीरकी जिस मूर्तिके अतिशयकी ख्याति है, भूगर्भसे उसकी प्राप्तिके सम्बन्धमें अद्भुत किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है कि एक ग्वाले की, जो जातिसे चमार था, गाय जंगलसे चरकर जब घर लौटती तो उसके स्तन दूधसे खाली मिलते। एक दिन ग्वालेने जब गायका पीछा किया तो उसको यह देखकर विस्मय हुआ कि एक टीलेपर गाय खड़ी है और उसके स्तनोंसे स्वतः दूध झर रहा है। दूसरे दिन गायको उसने उस टीलेपर जानेसे रोकना चाहा पर गाय रुकी नहीं। दूधका झरना वह रोक कैसे सकता था। उसके लिए यह एक अनबूझ पहेली बन गयी। उसके मनमें अनेक विकल्प उठने लगे। कहीं गायको कोई रोग तो नहीं लग गया, यह ऊपरी हवाका तो प्रकोप नहीं है, कहीं किसीने कोई आसेव तो नहीं कर दिया।

अनेक आशंकाओंके मध्य विकल्पोंके ताने-बाने बुनते हुए उसे उस स्थानको खोदकर देखनेका विचार आया और फावड़ा लेकर खोदने लगा। उसे आवाज सुनाई दी—'जरा सावधानीसे खोद।' आवाज सुनकर वह सावधान हो गया और फावड़ा धीरे-धीरे चलाने लगा। तभी फावड़ा किसी कठोर वस्तुसे टकराया। वह धीरे-धीरे मिट्टी हटाने लगा। मिट्टी हटाते-हटाते उसे मूर्तिका सिर दिखाई दिया। सिर दीखते ही उसका उत्साह दूना हो गया। वह मूर्तिके चारों ओरकी मिट्टी हटानेमें जुट पड़ा। अब तो पूरी मूर्ति दिखाई देने लगी। उसने सावधानीसे मूर्ति बाहर निकालकर रखी और उसके सामने खड़ा होकर एकटक निहारता रहा। विचित्र कौतूहल था। बार-बार वह देखता था अपनी इस उपलब्धिकी ओर जो अनायास रूपसे उसको अपनी ओर खींच रही थी। आनन्दविभोर हो गया, नेत्र भर गये। सहज सरलतासे प्लावित अश्रुधारासे सभी कल्मष तिरोहित हो चले, भक्तिका स्रोत बह निकला। भूगर्भसे भगवान् प्रकट हुए हैं यह बात चारों ओर फैल गयी। दूर-दूरसे दर्शनार्थी खिचकर आने लगे। मेला जुटने लगा। जो भी आता मन्त्रमुग्ध-सा हो भक्तिकी गहनतामें डूब जाता। अतीव शान्तिकी देनहारी इस मनोहारी प्रतिमाके अतिशयोंकी चर्चा सर्वत्र फैलने लगी।

बसवा ग्राम (जयपुर)के निवासी दिगम्बर जैन खण्डेलवाल श्री अमरचन्दजी विलाला भी दर्शनार्थ आये। भगवान्‌के दर्शनोंसे उन्हें बड़ी शान्ति अनुभव हुई। उनकी भावना हुई कि जिनालय बनाकर भगवान्‌को विराजमान किया जाये। मन्दिरका निर्माण हुआ। भगवान्‌की इस मनोहारी प्रतिमाको उसमें विराजमान करनेका समय आया, पर मूर्ति अचल हो गयी। अपने स्थानसे नहीं हट सकी। तभी उस ग्वाले (चमार) का सहयोग चाहा गया और प्रतिमा समारोह-पूर्वक श्री मन्दिरमें लाकर विराजमान कर दी गयी।

अतिशयोंसे आकर्षित होकर अनेक व्यक्ति मनोकामनाएँ लेकर आने लगे। उन व्यक्तियोंसे मनोकामना पूर्ण होनेके समाचार परिचित जनों तक पहुँचते रहे। इस प्रकार थोड़े ही कालमें चाँदनपुरवाले महावीरके अतिशयका यश-सौरभ चारों दिशाओंमें फैल गया। यात्रियोंकी संख्या निरन्तर बढ़ती गयी। यात्रियोंकी सुविधाके लिए धर्म-प्रेमी दिगम्बर जैन बन्धुओंने वहाँ धर्मशालाएँ बनवायीं और मन्दिरमें भी धीरे-धीरे परिवर्तन-परिवर्धन होते गये।

इस क्षेत्रका प्रादुर्भाव कौन-से संवत्‌में हुआ, यह अभी तक ठीक ज्ञात नहीं हो सका है परन्तु राजकीय रेकार्डसे जो जानकारी मिलती है उसके अनुसार विक्रम संवत् १७७१ से पूर्व भी यह मन्दिर विद्यमान था। इसकी सेवा-पूजार्थ राज्यसे नकद सहायता मिलती थी। संवत् १८३९ में जयपुर राज्यके तत्कालीन नरेशोंने तो एक गाँव ही श्री जीको भेंट कर दिया था। इन तथ्योंके आधारपर अनुमानतः क्षेत्रका प्रादुर्भाव व मन्दिरका निर्माण विक्रम की १६वीं-१७वीं शताब्दीमें हुआ होगा।

यह स्थान आमेर गद्दीके मूलसंघ आम्नायके दिगम्बर जैन भट्टारकोंका केन्द्र रहा है। इन दि. जैन भट्टारकोंका तत्कालीन बादशाहों व राजाओंपर पर्याप्त प्रभाव था और उससे प्रभावित होकर ही इन भट्टारकोंको उस समयके सम्मानके प्रतीक चँवर, मोरछल आदि ताजीमें दी गयी थी। इस क्षेत्रका प्रबन्ध प्रारम्भसे ही जयपुरके दिगम्बर जैन समाज, उनकी पंचायतों व भट्टारकों द्वारा होता रहा है। इन भट्टारकोंकी नियुक्ति जयपुरकी जैन पंचायतें करती थीं।

सन् १९१८ में भट्टारक महेन्द्र-कीर्तिजीके निधनके पश्चात् जयपुर की दिगम्बर जैन पंचायतोंने पूर्व प्रथानुसार भट्टारक चन्द्रकीर्तिजीकी नियुक्ति की। सन् १९२३ में जब गाँवके जमींदारोंने हाँसिल देनेमें आनाकानी की तो जयपुर दिगम्बर जैन पंचोंकी प्रार्थनापर तत्कालीन राज्यके कोर्ट ऑफ बार्ड्स विभाग द्वारा यहाँका प्रबन्ध किया गया और पंचायत की तरफसे भी एक मोतमिद बराबर मुकर्रर रहा। सन् १९३० में जयपुरकी दिगम्बर पंचायतने एक रुक्का पेश किया कि कोर्ट ऑफ बार्ड्सका इन्तजाम हटा लिया जावे। जयपुर राज्य सरकार (महकमा खास) ने यह तजबीज किया कि पहले सरावगी पंचोंके रुक्केपर ही कोर्ट ऑफ़ बार्ड्सका प्रबन्ध किया गया था, अब पंच इस प्रबन्धको रखना नहीं चाहते हैं अतः कोर्ट ऑफ बार्ड्सका प्रबन्ध हटा लिया जावे और चार्ज पंचोंको सँभला दिया जावे। तब से यह कमेटी क्षेत्रका बाकायदा प्रबन्ध कर रही है। राजस्थान सार्वजनीन प्रन्यास अधिनियमके अन्तर्गत इसका नियमानुसार १९६६ में रजिस्ट्रेशन करा लिया गया है।

इस क्षेत्रपर जो कुछ वैभव दीख पड़ता है, वह सारे भारतके दिगम्बर जैन बन्धुओंकी श्रद्धाका फल है। प्रबन्धकारिणी कमेटीके कार्यकालमें क्षेत्रका बहुत विकास हुआ है। क्षेत्रपर जलकी व्यवस्थाके लिए इंजिन फिट हुआ। पाइप लाइन पड़ी, एक लाख गैलनकी क्षमतावाली दो टंकी बनी, प्रकाशके लिए शक्तिशाली जनरेटर लगाकर बिजलीके खम्भे और तार डाले गये। स्टेशनसे क्षेत्र तक पक्की सड़क बनवायी गयी। स्टेशनको आधुनिक सुविधाओंसे सम्पन्न करवाया गया। नदीपर पुल बना जिससे बारहों महीने यात्राकी सुविधा हो गयी। यात्रियोंके ठहरनेके

लिए कटलेके अतिरिक्त छह धर्मशालाएँ बनीं। सड़कके दोनों ओर कटलेके दरवाजे तक दुकानें बन गयी हैं। क्षेत्रके आसपासकी भूमिको समतल किया गया और वहाँके ग्रामवासियोंको योजनाबद्ध तरीकेसे बसाया गया। स्टेशनके सामने यात्रियोंकी सुविधाके लिए धर्मशाला बनायी गयी। पार्क, औषधालय, वाचनालय, स्कूल आदि सभी प्रकारकी सुविधाएँ जुटायी गयी हैं। इस प्रकार सभी आधुनिक सुविधाओंसे सुसज्जित शान्त व सुरम्य लघु नगरीय व भक्ति-स्थलका योजनाबद्ध विकास किया जा रहा है। इसके साथ ही दूसरा उल्लेखनीय कार्य है अनुसन्धानका। इस विभाग द्वारा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, तमिल आदि भाषाओंके प्राचीन साहित्यके अनुसन्धान तथा राजस्थानके मन्दिरोंके शास्त्र-भण्डारोंकी सूचियोंका प्रकाशन किया गया है।

इतिहासके आलोकमें

भगवान् महावीरकी मूँगा वर्णकी जो प्रतिमा एक टीलेसे निकली, वह यहीं किसी प्राचीन मन्दिरमें विराजमान थी और किन्हीं कारणोंसे मन्दिर नष्ट होनेपर वह दब गयी थी अथवा किसी दूरस्थ मन्दिरमें थी और मुस्लिम कालमें नष्ट होनेके भयसे वह यहाँ लाकर छिपा दी गयी, ऐसे अनेक विकल्प मनमें उठते हैं किन्तु जिज्ञासाका समाधान हो सकने योग्य ठोस अथवा पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रमाण अभी तक अप्राप्य हैं। इसलिए आधिकारिक रूपसे इस मूर्तिके सम्बन्धमें विस्तार-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस मूर्तिकी शिल्पयोजना और रचना शैली गुप्तोत्तर कालकी प्रतीत होती है। मूर्ति ठोस ग्रेनाइटकी न होकर रवादार बलुए पाषाणकी है। इसलिए वह काफी घिस चुकी है। यह पाषाण ग्रेनाइटके मुकाबले अल्पायु होता है फिर वर्षों तक यह क्षारवाली मिट्टीके नीचे दबी रही है इसलिए इसकी सुरक्षाकी ओर ध्यान देनेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

इस स्थानके दोनों ओर दो प्रसिद्धि सत्ता केन्द्र थे। एक ओर बयाना (शान्तिपुर) का विजय मन्दारगढ़ तथा दूसरी ओर ताहनगढ़। ताहनगढ़ बयानासे दक्षिणमें १४ मील, हिन्डोनसे पूर्वमें १५ मील और करौलीसे २४ मील था। श्रीमहावीरजीका इलाका इन दोनों प्रसिद्ध नगरोंके मध्य था और इधरसे उधर आने-जानेका यही मार्ग था। मुस्लिम सेनाओंका आवागमन इस मार्ग-पर सदा ही बना रहता था इसलिए इन दोनों नगरों और विख्यात दुर्गोंपर घटनेवाली घटनाओंका इस स्थान और मूर्तिपर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। हमारा अनुमान है कि महावीर स्वामीकी मूर्ति कालान्तरसे अथवा इन परिस्थितियोंमें टीलेमें दब गयी अथवा दबा दी गयी।

क्षेत्र दर्शन

श्री महावीरजी क्षेत्रकी यात्राके लिए जानेवाले नरनारियोंने के मनमें एक अद्भुत स्फुरणा, उमंग और पुण्य भावना उत्पन्न होती है। वे जब स्टेशनसे चलते हैं तो दृष्टि मन्दिरकी ओर ही लगी रहती है। रात्रिके समय तो मन्दिरके उन्नत तीन शिखरोंकी रोशनी मीलों दूरसे ही दिखाई देने लगती है तथा दिनमें धर्म-ध्वजा फहराती हुई दिखाई देती है। देखते ही मनमें हर्षकी अद्भुत तरंगें उठने लगती हैं।

क्षेत्रपर पहुँचते ही कटलेके विशाल उत्तरमुखी सिंह द्वारसे प्रवेश करते हैं। इसके ऊपर नगाड़खाना है। मध्यमें मन्दिर है और उसके चारों ओर दो मंजिली धर्मशाला बनी हुई है। यही कटला कहलाता है। बायीं ओर साधारण ऊँचा चबूतरा है। यह मन्दिरके मुख्य द्वारके सामने बना हुआ है। इसके ऊपर मानस्तम्भ बना हुआ है। मन्दिरके मुख्य द्वार पर संगमरमरकी तीन क्षत्रियाँ सुशोभित हैं। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचते हैं। दोनों ओर संगमरमरकी खुली छत है।

सामने मन्दिरका प्रवेश द्वार मिलता है। इसमें प्रवेश करनेपर मन्दिरका चौक आता है। महामण्डपमें प्रवेश करनेके लिए सात द्वार बने हुए हैं। पाँचके ऊपर खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हैं। सामने ही बड़ी वेदीमें जो तीन दरकी है, कत्थई वर्णके भगवान् महावीरकी मूर्ति विराजमान है। इसके बायीं ओर श्याम और दायीं ओर भूरे वर्णकी तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। कत्थई वर्णकी मुख्य प्रतिमा क्षेत्रकी मूलनायक प्रतिमासे मिलती-जुलती है।

इस वेदीके बायीं ओर मुड़नेपर एक वेदीमें श्वेत वर्ण पद्मासन महावीर प्रतिमा है। पाद पीठपर सिंह लांछन है। यह वेदी एक ही दरकी है।

यहाँ दो सीढ़ी चढ़कर गर्भगृह आता है। गर्भगृहके बाह्य तोरणपर लगभग ६ इंचकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। द्वारके दोनों पक्षोंपर दण्डधर बने हुए हैं और उनके ऊपर खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। गर्भगृहमें प्रथम वेदी तीन दरकी है जिसमें पाषाण एवं धातुकी अनेक प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इससे आगेकी वेदीमें भगवान् शान्तिनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना ३ फुट है। पादपीठपर हिरणका लांछन बना हुआ है।

आगे बढ़नेपर मुख्य वेदी मिलती है जो ३ दरकी है। इसके मध्यमें भूगर्भसे मिली हुई भगवान् महावीरकी अतिशयसम्पन्न प्रतिमा विराजमान है। यह मूँगा वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसकी बायीं ओर हलके लाल रंगकी और दायीं ओर श्वेत चित्तीदार प्रतिमा विराजमान है। इस मूर्तिके आगे घीके दीपक जलाये जाते हैं। लोग छत्र चढ़ाते हैं। यहीं मनौती मनाते हैं।

मूलनायकके परिक्रमा-पथसे आगे बढ़कर एक दरकी वेदी है जिसपर श्वेत पाषाणकी भगवान् महावीरकी प्रतिमा विराजमान है। उसके दोनों ओर अन्य तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

आगे भगवान् कुन्थुनाथकी मूर्ति विराजमान है। इसकी चरण चौकीपर बकरेका लांछन बना हुआ है। इसके दोनों ओर एक-एक पाषाणकी मूर्ति है। दोनों ही प्रतिमाएँ प्राचीन हैं। इनके आगे कई छोटी-छोटी धातु प्रतिमाएँ हैं।

यहाँ द्वारसे निकलते ही बाहरकी ओर पहली जैसी ही पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा, द्वारपाल और उनके ऊपरकी ओर खड्गासन प्रतिमा बनी है। उसके दोनों ओर अति-प्राचीन कत्थई वर्णकी खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। उनके नीचेकी ओर चँवरधारी यक्षी बनी हुई हैं।

बाहरवाली बड़ी वेदीके एक ओरकी वेदीमें पद्मावतीकी प्रतिमा विराजमान है तथा दूसरी ओर क्षेत्रपाल विराजमान हैं। भक्त जनतामें इस क्षेत्रपालकी बहुत मान्यता है। लोगोंका विश्वास है कि महावीर स्वामीजीकी प्रतिमा और महावीरजी क्षेत्रपर जो अतिशय है वह इन्हीं क्षेत्रपालका है। इस विश्वासके कारण मनौती माननेवाले बहुत-से स्त्री-पुरुष इनके आगे धूप-बत्ती जलाते हैं।

मन्दिरके बाहर परिक्रमा-पथ है। कोई तीन परिक्रमा लगाता है और कई भक्त १०८ परिक्रमा भी लगाते हैं। परिक्रमा-पथपर दीवालमें मकराना पाषाणपर अत्यन्त कलात्मक १६ पौराणिक दृश्योंका अंकन कराया गया है। ये दृश्य बहुत सुन्दर लगते हैं। मन्दिरके ऊपर तीन विशाल शिखर बने हुए हैं। मन्दिरके नीचे एक ओर सीढ़ियोंके बगलसे श्रीमहावीरजी दिगम्बर जैन क्षेत्रका कार्यालय है। दूसरी ओर मन्दिरके बायीं ओर क्षेत्रकी ओरसे संचालित सरस्वती-भवन है। मन्दिरके नीचेके भागमें भाण्डागार, पूजन प्रक्षाल हेतु स्नानघर और पूजन-सामग्री धोनेकी व्यवस्था है।

कटलेके दक्षिण-मुखी पिछले फाटकको मोरी दरवाजा कहते हैं। मोरी दरवाजेके सामने पूर्वमें नदी तक सुन्दर उद्यान बना हुआ है। इसमें भगवान् महावीर निर्वाणोत्सव वर्षमें ३३ फुट ऊँचा कीर्तिस्तम्भ मकरानेका निर्माण किया जा रहा है। पूर्वकी ओर एक छतरीमें चरण-चिह्न बने हुए हैं। कहा जाता है कि भगवान् महावीरकी मूर्ति यहीं टीलेसे उत्खनन द्वारा निकली थी जहाँ अब चरण-चिह्न स्थापित हैं। जिस ग्वालेने यह मूर्ति निकाली थी, उसीके वंशधर इन चरणोंमें चढ़ाये हुए चढ़ावे सामग्री आदिको लेते हैं।

कटलेके बाहर पश्चिमकी ओर क्षेत्रकी ओरसे संचालित औषधालय है। इस औषधालयके पश्चिममें एलोपैथिक डिस्पेन्सरी है।

कटलेके बाहर बाजार है जहाँ आवश्यकताकी हर एक वस्तु मिलती है। बाजारकी दुकानोंपर आवासीय कमरे बने हुए हैं। मन्दिरके मुख्य द्वारके बगलमें पोस्ट-ऑफिस और तारघर है। क्षेत्रपर टेलीफोनकी भी सुविधा है। यहाँ एक छोटा-सा पार्क भी है। क्षेत्रपर निम्न धर्मशालाएँ अवस्थित हैं।

१. धर्मशाला नम्बर तीन।
२. दि. जैन जैसवालान धर्मशाला।
३. सेठ बधीचन्दजीकी धर्मशाला।
४. रेवाडीवालोंकी धर्मशाला।
५. सेठ बनजीलालजी ठोलिया जयपुरवालोंकी धर्मशाला।
६. देहलीवाले लाला सन्तलालजी गोधाकी धर्मशाला।

क्षेत्रपर कटला एवं अन्य धर्मशालाओंमें आधुनिक सुविधायुक्त कमरे हैं। इन धर्मशालाओं और कटलेमें लगभग पाँच हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ

क्षेत्रपर अन्य कई सेवाभावी संस्थाएँ हैं। १. मन्दिरके पश्चिम की ओर लगभग एक फर्लांग दूर कृष्णाबाई द्वारा संचालित महिला विद्यालय है जिसमें एक विशाल मन्दिर है। २. मन्दिरसे पूर्वकी ओर नदीकी तरफ आदर्श महिला विद्यालय है। इसमें हाई स्कूल तककी शिक्षा दी जाती है। क्षेत्र और समाजके सहयोगसे आश्रमका विशाल भवन निर्मित हो चुका है। वर्तमानमें इसमें ५०० बालिकाएँ अध्ययन करती हैं। इस संस्थाकी इस जिलेकी प्रमुख संस्थाओंमें गिनती है। इसकी संचालिका ब्र. कमलाबाईजी हैं। ३. शान्ति वीरनगर—यह नदीके दूसरी ओर पूर्वी किनारेपर स्थित है। इसकी स्थापना स्व० आचार्य शिवसागरजीकी प्रेरणासे आचार्य शान्तिसागरजी और आचार्य वीरसागरजीके नामपर की गयी है। यहाँ अट्ठाईस फीट ऊँची शान्तिनाथ स्वामीकी विशाल मूर्तिके अतिरिक्त २४ तीर्थंकरों और उनके शासन देवताओंकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। मन्दिरके समक्ष मानस्तम्भ बना हुआ है। मन्दिरके एक ओर शान्ति वीर जैन गुरुकुल है। इसमें छोटे बालकोंके निवास और शिक्षणकी व्यवस्था है। इसके सामने ही क्षेत्रसे सम्बन्धित कीर्ति आश्रम है जहाँ एक चैत्यालय है जिसकी स्थापना ब्र० कीर्तिलालजीने करायी थी।

स्टेशन श्रीमहावीरजीपर धर्मशालामें क्षेत्रकी ओरसे प्राइमरी स्कूल चल रहा है। क्षेत्रपर राज्य सरकारकी ओरसे सेकेण्डरी हाईस्कूल है। इस प्रकार बालक-बालिकाओंके लिए इस तीर्थ-स्थानपर शिक्षाके लिए समुचित व्यवस्था है।

ब्र. कृष्णाबाईके आश्रमके दक्षिणकी ओर क्षेत्र की ओरसे नेत्र चिकित्सालयके विशाल भवनका निर्माण कार्य चल रहा है। पूरा बन जानेपर इस जिलेका यह प्रमुख नेत्र चिकित्सालय होगा।

मेला

भगवान् महावीरकी जयन्तीके अवसरपर प्रति वर्ष क्षेत्रपर चैत्र शुक्ला ११ से वैशाख कृष्णा २ तक विशाल मेला भरता है। वैशाख कृष्णा १ को कटलेसे भगवान् महावीरकी रथयात्राका जुलूस निकलता है और नदीपर जाकर कलशाभिषेक होता है। इस अवसरपर दिगम्बर जैन यात्रियोंके अतिरिक्त मीणा, गूजर, जाटव आदि भी बहुत बड़ी संख्यामें भगवान्के दर्शनार्थ एकत्रित होते हैं। इस मेलेमें प्रायः ढाई-तीन लाख व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं।

भगवान् महावीरके निर्वाणोत्सव (दीपावली) पर हजारोंकी संख्यामें दिगम्बर जैन यात्री निर्वाण लाडू चढ़ाने इस तीर्थपर एकत्रित होते हैं।

यह क्षेत्र भगवान् महावीर स्वामीकी सातिशय प्रतिमाके निकलनेके पश्चात् प्रकाश और प्रसिद्धिमें आया है। यहांके मन्दिर व धर्मशालाओंका निर्माण दिगम्बर जैन समाजने कराया है। मन्दिर व मूर्तियां दिगम्बर जैन आम्नायकी हैं। पूजन, रथयात्रा, अभिषेक, लाडू व अन्य सभी उत्सव आदि दिगम्बर मान्यताके अनुसार होती है। इस क्षेत्रकी धार्मिक परम्परा एवं रीति-रिवाज तथा व्यवस्था एवं आधिपत्यमें दिगम्बर समाजके अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदाय व मान्यताका प्रभाव, हस्तक्षेप अथवा अधिकार नहीं है। दिगम्बर जैन मतावलम्बियोंका वीतरागी साधना व भक्तिका प्रमुख केन्द्र होते हुए भी यहाँपर श्रद्धा व अतिशयोंसे आकृष्ट होकर सभी जाति, वर्ग वा सम्प्रदायके लोग बिना भेदभावके भगवान् महावीरके दर्शन करने आते हैं। इस प्रकार यह क्षेत्र अतिशयके कारण सबका श्रद्धास्थल बना हुआ है। क्षेत्र-स्थापना कालसे ही यहांकी व्यवस्था दिगम्बर जैन भट्टारकों और भूतपूर्व जयपुर राज्यकी राजधानी जयपुरकी दिगम्बर जैन समाजकी पंचायतों द्वारा होता आया है। वर्तमानमें प्रबन्ध कारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी यहांकी व्यवस्था व प्रबन्ध करती है। क्षेत्रके मन्त्री कार्यालयका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर अतिशयक्षेत्र श्रीमहावीरजी,
महावीर भवन
सवाई मानसिंह हाइवे, जयपुर

चमत्कारजी

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चमत्कारजी आलनपुर राजस्थानके सवाई माधोपुर जिलेमें सवाई माधोपुर नगरसे पश्चिमकी ओर रेलवे स्टेशन (सवाई माधोपुर) और नगरके मध्यमें ५ कि. मी. दूर अवस्थित है। सवाई माधोपुर स्टेशनसे नगरकी ओर जानेवाली सड़कसे थोड़ा हटकर अतिशय क्षेत्र चमत्कारजीका विशाल मन्दिर अवस्थित है। इस क्षेत्रका पोस्ट ऑफिस आलनपुर है और समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पश्चिमी रेलवेका सवाई माधोपुर है।

अतिशय क्षेत्रका इतिहास और किंवदन्तियाँ

इस क्षेत्रकी मूलनायक प्रतिमाके सम्बन्धमें यह अनुश्रुति प्रचलित है कि विक्रम सं. १८८९ की भाद्रपद कृष्णा १ को आलनपुरके नाथ सम्प्रदायके एक जोगीको स्वप्न हुआ, "कल खेतमें जहाँ तेरा चलता हुआ हल रुका था, वह चलेगा नहीं; वहाँ खोदनेपर भगवान् प्रकट होंगे।" प्रात:काल उठनेपर वह अपने स्वप्नके सम्बन्धमें विचार करके बड़ा विस्मित हुआ। उसने इस स्वप्नकी चर्चा अपनी स्त्री और पुत्रोंसे की। निश्चय हुआ कि स्वप्नकी सत्यताकी जाँच की जाये। फलत: सब लोग खेतपर पहुँचे और जहाँ हल रुका हुआ था, उस स्थानकी खुदाई प्रारम्भ की। कुछ समय पश्चात् ही काँचकी कोई वस्तु दिखाई दी। तब धीरे-धीरे उसके चारों ओरसे मिट्टी हटाकर उसे निकाला। देखा कि वह तो स्फटिककी भगवान्‌की प्रतिमा है।

भगवान्‌की प्रतिमाके निकलनेपर जोगी और उसके परिवारके सभी लोग अत्यन्त हर्षित हुए। जोगीने भगवान्‌को एक ऊँचे स्थानपर रखा। तभी आकाशसे केशर-वर्षा हुई और जय-जयकारकी ध्वनि हुई।

भगवान् भूगर्भसे प्रकट हुए हैं, यह समाचार विद्युत्-वेगसे निकटवर्ती नगरीमें फैल गया। समाचार सुनते ही सहस्रोंकी संख्यामें जैनाजैन यहाँ आकर भगवान्‌के दर्शन करने लगे। जैनोंने देखा कि मूर्तिके नीचे वृषभका चिह्न अंकित है। उन्होंने कहा—यह मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी है। तब सबने भगवान् ऋषभदेवके जयकारोंसे आकाश गुंजा दिया। तब प्रतिमाको उठाकर उस स्थानपर लाये जहाँ क्षेत्रका मन्दिर है। वहाँ उच्चासनपर प्रतिमाको विराजमान करके जैनोंने भक्तिभावपूर्वक अष्ट द्रव्यसे पूजा की।

तदनन्तर सभी समागत जैनोंने विचार-विमर्श किया कि इस मूर्तिको कहाँ विराजमान किया जाये। विभिन्न स्थानोंसे आये हुए सज्जन उसे अपने-अपने यहाँ ले जानेकी बात करने लगे। अन्तमें निश्चय हुआ कि यह प्रतिमा सवाई माधोपुरमें विराजमान होनी चाहिए। निश्चयानुसार दूसरे दिन रथमें प्रतिमाको विराजमान करके सवाई माधोपुर ले जानेका आयोजन किया गया, किन्तु आश्चर्यकी बात हुई कि रथ चलानेपर टससे मस नहीं हुआ, वह अचल हो गया।

बेचारा जोगी दु:खसे व्याकुल था। ये लोग भगवान्‌को बलात् अन्यत्र लिये जा रहे थे। जबसे उसने भगवान्‌को अन्यत्र ले जानेकी बात सुनी, तभीसे उसकी आँखें सावन-भादों बन रही थीं, वह लम्बी-लम्बी सांसें लेता हुआ केवल भगवान्‌को ही निहारे जा रहा था।

जब रथ प्रयत्न करनेपर भी नहीं चला तो सब लोग बड़े निराश हुए। रात्रिमें सबने वहाँ विश्राम किया। सब निद्राका आनन्द ले रहे थे, किन्तु जोगीकी आँखोंमें नींद कहाँ। मनमें एक ही बात अनेक रूप धारण करके आ रही थी—"भगवान्! क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? अगर तुम्हें जाना ही था तो फिर मुझे दर्शन ही क्यों दिये?"

रात्रिके अन्तिम प्रहरमें जोगीको नींद आ गयी। उसने स्वप्नमें देखा, कोई उससे कह रहा है—"भगवान् कहीं नहीं जायेंगे, यहीं रहेंगे और उनका मन्दिर यहीं बनेगा, भगवान्‌का रथ यहाँसे कभी नहीं चलेगा।"

प्रात:काल होनेपर जोगीने अपने स्वप्नकी चर्चा की। उधर पुन: प्रयत्न करनेपर भी जब रथ नहीं चल सका, तब जैनोंने यही उचित समझा कि यहींपर वेदीका निर्माण करके भगवान्‌को विराजमान कर दिया जाये, फिर यहींपर मन्दिरका निर्माण कराया जाये। जहाँ मूर्ति निकली थी, वहाँ छतरी बनानेका निर्णय किया गया। निर्णयानुसार वेदी, मन्दिर और छतरीका निर्माण कराया गया।

जबसे यह प्रतिमा भूगर्भसे निकली है, तबसे अनेक चमत्कार होते रहे हैं। अतः इस क्षेत्रका नाम ही चमत्कारजी पड़ गया।

यहाँ अनेक जैनाजैन व्यक्ति मनोकामनाएँ लेकर आते हैं। कुछ व्यक्तियोंने अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण होनेपर छतरी आदिका भी निर्माण कराया है जो अबतक यहाँ विद्यमान हैं।

निजामत सवाई माधोपुरमें नसीरुद्दीन नामक एक नाजिम थे। उन्हें किसी गम्भीर अभियोगमें राज्यने पदच्युत कर दिया। बहुत प्रयत्न करनेपर भी उन्हें बहाल नहीं किया गया। तभी किसीने उनको भगवान् ऋषभदेवके चमत्कारोंकी बात बतायी। वे भगवान्के दर्शनके लिए आये और हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"भगवन् ! यदि मैं अपने पदपर पुनः बहाल हो जाऊँ तो मैं मन्दिरके द्वारपर एक छतरी बनवाऊँगा।" इस प्रकार मनौती मनाकर वे चले तो मार्गमें ही उन्हें सूचना मिली कि सरकारने उनकी पद-च्युतिका आदेश वापस ले लिया है और वे पुनः अपने पदपर बहाल कर दिये गये हैं। यह समाचार मिलते ही वे पुनः मन्दिरमें वापस आये और बड़ी भक्तिसे भगवान्के दर्शन किये। उन्होंने अपने वचनानुसार लाल पाषाणकी छतरीका निर्माण कराया, जो मन्दिरके बाहर अबतक विद्यमान है।

उनके कुछ समय पश्चात् सफरुद्दीन नामक नाजिम आये। वे सदा रुग्ण रहते थे। उन्होंने सभी प्रकारके उपचार कराये, किन्तु उनका रोग दूर नहीं हो सका। उन्हें किसीने ऋषभदेव भगवान्के चमत्कारकी बात बतायी। वे भी भगवान्के दर्शनोंके लिए आये। उन्होंने मनौती मनायी—"प्रभु ! यदि मैं रोग-मुक्त हो जाऊँ तो मैं चारों कोनोंपर चार छतरियोंका निर्माण कराऊँगा।" कुछ ही दिनोंमें पूर्णतः स्वस्थ हो गये। तब उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मन्दिरके चारों ओर चारों कोनोंपर चार छतरियोंका निर्माण कराया। वे भी अबतक विद्यमान हैं।

क्षेत्र-दर्शन

यह क्षेत्र एक गलीमें है। यह स्टेशनसे शहरको जानेवाली सड़कसे थोड़ा हटकर है। मुख्य फाटकमें प्रवेश करनेपर क्षेत्रके दर्शन होते हैं। चारों ओर कटला बना हुआ है, जिसमें यात्रियोंके ठहरनेके लिए कमरे बने हुए हैं। भीतरी मैदानके मध्यमें शिखरबन्द जिनालय है। जिनालयमें कुल दो वेदियाँ हैं। बाहर पटे हुए प्रांगणमें तीन दरकी वेदी है। यह वेदी प्राचीन है। इसमें मूलनायक भगवान् पद्मप्रभकी १ फुट ३ इंच ऊँची कत्थई वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका प्रतिष्ठा संवत् १५४६ है। बायीं ओर संवत् १५४२ में प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभ भगवान्की भूरे वर्णकी ११ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है तथा दायीं ओर १० इंच ऊँचे एक पाषाण फलकमें पंचबालयतिकी प्रतिमा है। उससे आगे २ फीट २ इंच ऊँचे फलकमें एक खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। हाथोंसे नीचे इन्द्र करबद्ध मुद्रामें खड़े हैं। प्रतिमाका वर्ण मटमैला है। मूलनायकके आगे दो श्वेत पाषाण प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त ७ धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनमें एक चौबीसी है तथा ५ इंच ऊँची एक देवी-प्रतिमा है। यह वेदी मन्दिरके निर्माणके समय ही बनी थी।

मुख्य वेदीके पीछेकी वेदीमें भूगर्भसे उत्खनन द्वारा प्राप्त आदिनाथ भगवान्की ६ इंच ऊँची स्फटिक प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाकी चरण-चौकीपर वृषभ लांछन बना हुआ है। लेख नहीं है। इसी प्रतिमाके चमत्कारोंके कारण यह क्षेत्र चमत्कारजी कहलाता है।

बायीं ओर २ फीट उन्नत कृष्णवर्णवाले पार्श्वनाथ भगवान्की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२९० चैत सुदी १३ गुरुवारको बलात्कारगणके भट्टारक कुमुदकीर्ति देवने करायी थी।

दायीं ओर १ फुट ९ इंच उन्नत और संवत् १८२६ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिने संवत् १८२६ में सवाई माधोपुरमें करायी थी।

इनके अतिरिक्त १ पाषाणकी तथा ७ धातुकी प्रतिमाएँ वेदीमें विराजमान हैं।

इस मन्दिरके उत्तरकी ओर कुछ फर्लांगपर छतरी बनी है और उसमें चरण-चिह्न बने हुए हैं। आदिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा इसी स्थान पर भूगर्भसे प्राप्त हुई थी। उसीकी स्मृतिमें इस छतरीका निर्माण किया गया था। दक्षिणकी ओर कुछ दूरीपर पण्डितजीकी नसिया है, जिसमें नेमिनाथ भगवान्‌की मूलनायक प्रतिमा विराजमान है।

धर्मशाला

मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला बनी है, जिसमें ४१ कमरे हैं। यात्रियोंके लिए नल और बिजलीकी सुविधा है। एक धर्मशाला फाटकके सामने है किन्तु वह अभी बनी नहीं है। टूटी-फूटी दशामें पड़ी है।

वार्षिकोत्सव : मेले

यहाँ वर्षमें पाँच मेले होते हैं—(१) आश्विन सुदी १५ और कार्तिक कृष्णा १। यह उत्सव दक्षिणकी ओर सड़कके किनारे बने हुए चबूतरेपर होता है। (२) चैत्र कृष्णा ९ को भगवान् आदिनाथका जन्म-कल्याणक मनाया जाता है। यह उत्सव मन्दिरके पश्चिमकी ओर १ फर्लांगपर एक उद्यानमें बनी हुई पाण्डुक शिलापर मनाया जाता है। (३) वैशाख कृष्णा २। (४) चम्पापुरी-का मेला जो श्रावणमें भरता है। (५) वार्षिक उत्सव भाद्रपद कृष्णा २, जिस दिन भूगर्भसे आदिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा निकली थी।

व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था दिगम्बर जैन समाज सवाई माधोपुर द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध कारिणी कमेटी द्वारा होती है।

नगरके मन्दिर

सवाई माधोपुर प्राचीन नगर है। इसके चारों ओर पक्का कोट बना हुआ है। नगरमें सात दिगम्बर जैन मन्दिर हैं : (१) तेरहपन्थी मन्दिर (२) दीवानजीका मन्दिर—इसमें पाँच सौ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। (३) पंचायती मन्दिर (४) साँवलाजीका मन्दिर—इस मन्दिरमें मूलनायक प्रतिमा साँवले वर्णकी है। इसलिए मन्दिरका नाम भी साँवलाजीका मन्दिर पड़ गया है। (५) भूसावड़ी मन्दिर, (६) दिगम्बर जैन नशिया और (७) मूँदामी मन्दिर। इनके अतिरिक्त दो चैत्यालय हैं। इन सभी मन्दिरोंमें नौ सौसे अधिक प्रतिमाएँ हैं।

निकटवर्ती क्षेत्र

इस क्षेत्रके आसपासमें श्रीमहावीरजी और पद्मपुरीजी प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। दोनों क्षेत्रोंके लिए ट्रेनसे सीधा मार्ग है। इस क्षेत्रसे ६-७ मील दूर सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक रणथम्भौरका किला है। इस किलेमें प्राचीन जैन मन्दिर बना हुआ है। उसमें एक मूर्ति विक्रम संवत् १० की बतायी जाती है। इससे एक कोस आगे शेरपुर है। यहाँ भी जैन मन्दिर है। इसमें मूलनायक पार्श्वनाथ स्वामी-की प्रतिमा विक्रम संवत् १५ की बतायी जाती है। यह भी अतिशय क्षेत्र है। यहाँके अतिशयोंके सम्बन्धमें भी अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इससे ४-५ मील आगे किला खण्डार है। यहाँ

पहाड़पर एक प्राचीन जैन मन्दिर बना हुआ है। वहाँ पहाड़की चट्टानोंमें चार प्रतिमाएँ उकेरी हुई हैं। ये खड्गासन और पद्मासन दोनों ही आसनोंमें हैं। इनकी अवगाहना पाँच फुट है। ये प्रतिमाएँ विक्रम संवत् १२ से ३० तककी बतायी जाती हैं। क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र मन्दिर चमत्कारजी
आलनपुर (जिला सवाई माधोपुर), राजस्थान।

चाँदखेड़ी

अवस्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी झालावाड़ जिलेके खानपुर कस्बेसे तीन फर्लांग दूर रूपली नदीके तटपर अवस्थित है। क्षेत्रपर पहुँचनेके लिए बम्बई-देहली लाइनपर पश्चिमी रेलवेके झालावाड़ रोड, रामगंजमण्डी, कोटासे, बीना-कोटा ब्रांच लाइनपर अटरू व बारां तथा इन्दौरसे जयपुर और कोटा जानेवाले बस मार्गपर स्थित झालावाड़ जा सकते हैं। झालावाड़से बसें हर समय उपलब्ध होती हैं। यह क्षेत्र झालावाड़-बारां सड़कपर स्थित खानपुरसे केवल तीन फर्लांग दूर है। क्षेत्रसे अटरू स्टेशन ३५ कि. मी. और झालावाड़ रोड स्टेशन ६२ कि. मी. है। सभी ओरसे खानपुर उतरना पड़ता है।

क्षेत्रका इतिहास

इस क्षेत्रका निर्माण मुगल सम्राट् औरंगजेबके शासन कालमें सन् १७४६ में खीचीवाड़ा मण्डलके चौहानवंशी महाराजा किशोरसिंह कोटाके दीवान शाह किशनदास बघेरवाल सांगोद (जिला कोटा) ने कराया है।

इसके सम्बन्धमें एक अनुश्रुति परम्परासे प्रसिद्ध है कि शाह किशनदास खानपुरमें मवेशी मेलेमें आये हुए थे। उन्हें रात्रिमें स्वप्न हुआ कि बारहपाटी, जो खानपुर और शेरगढ़के बीचमें खानपुरसे ९ कि. मी. दूर है, के पाड़ाखोहके भूगर्भमें कई सातिशय प्रतिमाएँ दबी पड़ी हैं। जब वे नींदसे जागे तो कुछ साथियोंको लेकर उस स्थानपर पहुँचे और निर्दिष्ट स्थानपर खुदाई करायी। फलतः वहाँ भगवान् आदिनाथ, भगवान् महावीरकी तथा अन्य कई दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। सम्भवतः प्राचीन कालमें यहाँ कोई विशाल जैन मन्दिर रहा होगा। प्रतिमाओं-के दर्शन करके लोगोंने भक्तिभावसे उन्हें नमन किया। कहते हैं, भगवान् आदिनाथकी प्रतिमाको उठानेके लिए सभी लोगोंने बड़े-बड़े प्रयत्न किये, किन्तु वे उठानेमें सफल नहीं हो सके और रात हो गयी। तब रात्रिमें शाह किशनदासको स्वप्न हुआ, "भगवान्‌को तुम अकेले उठाओ और सरकण्डेकी गाड़ीमें ले जाओ किन्तु पीछेकी ओर मुड़कर मत देखना।"

प्रातःकाल होते ही शाहने सामायिक, पूजन-पाठ आदि कर स्वप्नानुसार उस विशालकाय प्रतिमाको सरकण्डेकी गाड़ीमें रखा। उनके आश्चर्यका ठिकाना न था कि बीसियों मनुष्यों द्वारा उठाये जानेपर भी जो प्रतिमा न उठ सकी, वह इतनी सरलतासे कैसे उठ गयी।

शाहका विचार इस प्रतिमाको सांगोद या कोटा ले जानेका था। जब प्रतिमाको लिये हुए गाड़ी रूपली नदीमें उतरी तो उनके मनमें सन्देह जागृत हुआ कि प्रतिमा कहीं रास्तेमें ही तो नहीं गिर पड़ी। अतः उस संशयात्माने पीछे मुड़कर जो देखा तो प्रतिमा वहीं अचल हो गयी।

कई जोड़ी बैल जोतकर उसे ले जानेका प्रयत्न किया, किन्तु सब प्रयत्न विफल रहे। तब उस बुद्धिमान् श्रेष्ठीने नदीको दूसरी ओर मोड़कर उसी स्थानपर सन् १७५२ में मन्दिरका निर्माण कराना प्रारम्भ किया। निर्माण-कार्य चार वर्षमें (सन् १७४६) में पूर्ण हुआ। उसी वर्ष माघ सुदी ६ को विशाल समारोहके साथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। जिसमें हजारों यात्रियोंने भाग लिया। यह प्रतिष्ठा आमेर पीठके भट्टारक जगत्कीर्तिने करायी थी।

अतिशय क्षेत्र

भगवान् आदिनाथकी उक्त प्रतिमाके चमत्कारों और अतिशयोंकी ख्याति सुदूर देशोंमें भी व्याप्त है। प्रतिमा अत्यन्त कलापूर्ण, समचतुरस्रसंस्थानयुक्त और भव्य है। ऐसी भुवनमोहन प्रतिमा कम ही हैं। इसके दर्शन करने मात्रसे हृदयमें अपूर्व शान्ति एवं आह्लादका अनुभव होता है। प्रतिमाकी प्रशान्त मुद्रा, उसका लावण्य और उसका कला-सौष्ठव ही उसका सबसे बड़ा अतिशय है। यहाँके लोगोंका कहना है कि यदा-कदा रात्रिमें देवगण भी इस मन्दिरमें आते हैं और वे अत्यन्त मधुर ध्वनिमें नृत्य, वाद्य और गानके साथ भगवान्‌की स्तुति-भक्ति किया करते हैं।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रके मुख्य प्रवेश-द्वारमें प्रवेश करनेपर एक विशाल अहाता मिलता है। उसके मध्यमें संगमरमरका समवसरण मन्दिर है जो अभी निर्माणाधीन है। इसके बाद दायीं ओर एक द्वारसे दूसरे अहातेमें जाते हैं। इसमें चारों ओर धर्मशाला बनी हुई है। द्वारके बायीं ओर क्षेत्रका कार्यालय है। अहातेके प्रांगणके मध्यमें जिनालय बना हुआ है। मन्दिरके चारों कोनोंपर ऊपर छतरियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरके समुन्नत शिखर कलशमण्डित हैं। मन्दिरके द्वार-मण्डपमें एक स्तम्भ है। इसमें चारों दिशाओंमें तीर्थंकर-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मध्यमें तीन ओर १ फुट ६ इंच ऊँचा और इतना ही चौड़ा शिलालेख है। इसमें मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ कुन्दकुन्दाचार्यान्वयके भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति, तत्-शिष्य भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति, तत्-शिष्य भट्टारक जगत्कीर्ति द्वारा संवत् १७४६ में माघ शुक्ला ६ सोमवारको चाँदखेड़ीमें बिम्ब-प्रतिष्ठा करानेका उल्लेख किया गया है।

द्वारमें प्रवेश करनेपर मन्दिरका अन्तःभाग मिलता है। इसमें पाँच वेदियाँ और एक गन्धकुटी बनी हुई है। इन वेदियोंमें कुल १३ तीर्थंकर-मूर्तियाँ और १ साधु-मूर्ति है। गन्धकुटीमें कृष्णवर्णके सुपार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। ये वेदियाँ एवं गन्धकुटी बरामदोंमें बनी हुई हैं।

यहाँ गर्भगृहमें तीन वेदियाँ हैं। प्रथम वेदीमें ५ पाषाण-मूर्तियाँ, ४ इंच ऊँचा एक पाषाण-चैत्य जिसमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ हैं तथा ३ धातु-मूर्तियाँ हैं। द्वितीय वेदीमें बाहुबली स्वामीकी ५ फीट समुन्नत खड्गासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त ३ पाषाण की तथा १ धातु की मूर्ति है। तृतीय वेदी में ८ मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये सभी वेदियाँ और गन्धकुटी नवनिर्मित हैं।

इस गर्भगृहके निकट एक सोपान-मार्ग बना हुआ है जो तल-प्रकोष्ठको जाता है। इस प्रकोष्ठमें उतरनेपर बायीं ओरकी दीवालमें २ फीट ६ इंच समुन्नत एक शिलाफलकमें चतुर्भुजी देवी उत्कीर्ण है। इसके दोनों दाहिने हाथोंमें क्रमशः माला और अंकुश हैं तथा बायें हाथोंमें त्रिशूल और दण्ड हैं। इसके शिरोभागपर तीर्थंकर प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें आसीन है। देवीका वाहन खण्डित है।

सामनेकी दीवालपर २ फीट ४ इंच ऊँचे फलकमें चतुर्भुजी अम्बिका बनी हुई है। दायें हाथोंमें एकमें अंकुश है तथा दूसरा वरद मुद्रामें है। बायें हाथोंमें एकमें कमल है तथा दूसरे हाथसे गोदमें पुत्रको लिये हुए है। यह देवी हाथोंमें कंकण, चूड़ियाँ; भुजाओंमें भुजबन्द; गलेमें मंगल सूत्र, हार और मौक्तिक माला; कानोंमें कुण्डल और सिरपर पगड़ीनुमा मुकुट धारण किये हुए हैं। इसके शीर्ष भागपर तीर्थंकर मूर्ति नहीं है।

बायीं ओर गर्भगृहमें ८ फीट ४ इंच ऊँचे और ७ फीट ३ इंच चौड़े शिलाफलकमें २ फीट ९ इंच ऊँची खड्गासन तीर्थंकर-प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त इस फलकमें ५५ तीर्थंकर-प्रतिमाएँ दोनों ध्यानासनोंमें बनी हुई हैं। इसके परिकरमें गज, माला लिये हुए देव, चमरेन्द्र, व्याल और दोनों ओर यक्ष-दम्पती हैं। इस मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल संवत् ११४६ पौष सुदी ६ चरण चौकीपर अंकित है। यह मूर्ति भगवान् महावीरकी कही जाती है। मूर्ति अत्यन्त कलापूर्ण और मनोज्ञ है।

इस मन्दिरके मुख्य गर्भगृहमें वेदीपर मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी हलके लाल पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके वक्षपर श्रीवत्स है। हाथों और पैरोंपर पद्म बने हुए हैं। इसके पादपीठपर लेख उत्कीर्ण है जो ३ फीट १ इंच लम्बा है तथा जिसमें ८ पंक्तियाँ हैं। इस लेखके अनुसार संवत् १७४६ माघ सुदी ६ सोमवारको मूलसंघके भट्टारक जगत्कीर्ति द्वारा खीचीवाड़ा देशमें चाँदखेड़ीमें श्री किशोरसिंहके राज्यमें बघेरवालवंशी भूपति और जौलादेके पुत्र संगही किशनदासने बिम्ब प्रतिष्ठा करायी।

यह प्रतिमा ६ फीट ३ इंच ऊँची और ५ फीट ५ इंच चौड़ी है। भगवान् ऋषभदेवकी इस प्रतिमाके मुखपर शान्ति, विराग और करुणाकी निर्मल भाव-प्रवणता झलकती है। प्रतिमाके दर्शन करते ही मनमें अपूर्व वीतरागता और शान्तिके भाव प्रस्फुटित हो उठते हैं।

इस प्रतिमाका निर्माण-काल अज्ञात है। कुछ लोग इसका निर्माण-काल संवत् ५१२ मानते हैं किन्तु इसका आधार क्या है, यह ज्ञात नहीं हो सका। प्रतिमापर जो लेख अंकित है, वह तो भूगर्भसे उत्खनन द्वारा निकलनेपर प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका काल है। वह प्रतिमाका निर्माणकाल नहीं है। प्रतिमा इस कालसे कहीं प्राचीन है। इस प्रतिमाके साथ ही बारहपाटीके भूगर्भसे उपर्युक्त भगवान् महावीरकी प्रतिमा भी प्रकट हुई थी। उसका प्रतिष्ठाकाल संवत् ११४६ है। विश्वास किया जाता है कि बारहपाटीमें एक या एकाधिक जैन मन्दिर थे। उनके भग्नावशेष अबतक वहाँ पहाड़ीपर बिखरे पड़े हैं। उन्हीं भग्नावशेषोंमें ऋषभदेव और महावीरकी उक्त दोनों प्रतिमाएँ निकली थीं। अतः आश्चर्य नहीं कि दोनों समकालीन हों। यदि संवत् ५१२ वाली मान्यताके समर्थनमें कोई प्रामाणिक और पुष्ट आधार मिल सके तो उसे स्वीकार करनेमें किसीको कोई आपत्ति नहीं होगी।

इस वेदीपर एक पाषाण-फलकमें तीन तीर्थंकर-मूर्तियाँ एक दूसरेके ऊपर बनी हुई हैं। ऊपर शिखर बना हुआ है।

एक अन्य शिलाफलक में, जो ६ फीट ५ इंच ऊँचा और ४ फीट चौड़ा है, मध्यमें भगवान् पार्श्वनाथ पद्मासन मुद्रामें आसीन हैं। उनके उभय पार्श्वोंमें दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार यह चतुर्विंशति मूर्ति-फलक है। इसके शीर्ष भागमें शिखर बना हुआ है।

बायीं ओर एक फलकमें एक पद्मासन और उसके उभय पार्श्वोंमें दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। ऊपर शिखर बना है।

बायीं ओर दीवाल वेदीमें भगवान् सम्भवनाथ विराजमान हैं। इसी प्रकार दायीं ओरकी दीवाल वेदीमें ४ मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये सभी मूर्तियाँ संवत् १७४६ में प्रतिष्ठित हुई हैं। यहीं १ फुट ९ इंच ऊँचा शिखराकार नन्दीश्वर जिनालय भी है।

तल-प्रकोष्ठके सभामण्डपमें एक स्तम्भमें चारों दिशाओंमें ५२-५२ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह बावन-जिनालय-स्तम्भ कहलाता है। ऐसा बावन-जिनालय-स्तम्भ अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता जिसमें २०८ मूर्तियाँ हों, किन्तु प्रतीकात्मक रूपमें उसे बावन-जिनालयकी संज्ञा प्रदान कर दी गयी है।

तल प्रकोष्ठका यह भाग उतना ही बड़ा है, जितना मन्दिरका ऊपरी भाग। इसकी भित्तियाँ ८ फीट चौड़ी हैं। सम्भवतः नदीके कारण मन्दिर इतना सुदृढ़ और मजबूत बनाया गया था।

मन्दिरके प्रवेश-द्वारके सामने एक बरामदेमें शेरगढ़के जैन मन्दिरसे लायी हुई तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ रखी हुई हैं। अनुमानतः ये ११-१२वीं शताब्दीकी होंगी। मूर्तियाँ सुडौल और भावपूर्ण हैं।

मन्दिरके अहातेसे संलग्न क्षेत्रके बगीचेमें दो छतरियाँ बनी हुई हैं। इनमें-से एक छतरीका निर्माण सिरोंज पट्टके भट्टारक भुवनेन्द्रकीर्तिने संवत् १८६० में तथा दूसरीका निर्माण भट्टारक राजेन्द्रकीर्तिने संवत् १८८३ में कराया था।

धर्मशाला

क्षेत्रपर विशाल धर्मशाला बनी हुई है। इसमें ७० कमरे हैं। यहाँ कुआँ, हैण्डपम्प, बिजली और गद्दे-तकियोंकी सुविधा उपलब्ध है।

मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ५ से ९ तक मेला होता है। क्षेत्रपर उल्लेख योग्य मेले संवत् १९७४ और २०१० में हुए थे। दोनों ही बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ हुई थीं।

व्यवस्था

वार्षिक मेलेके अवसरपर प्रबन्धकारिणी समितिका निर्वाचन होता है। यही समिति क्षेत्रकी सम्पूर्ण व्यवस्था और उसकी गतिविधियोंका नियमन करती है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी
पो०, खानपुर (जिला झालावाड़)
राजस्थान

झालरापाटन

मार्ग और अवस्थिति

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र झालरापाटनमें अवस्थित है। झालरापाटन एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र है। यह पश्चिम रेलवेकी दिल्ली-बम्बई मेन लाइनपर झालावाड़ रोडसे २८ कि. मी. दूर है। स्टेशनसे नगर तक पक्की सड़क है और नियमित बस सर्विस है। कोटा,

अजमेर, जयपुर, इन्दौर आदि शहरोंके साथ इसका सड़क द्वारा सम्पर्क है। शहरोंमें उपलब्ध सभी आधुनिक सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। यह झालावाड़ जिलेका हेडक्वार्टर है।

अतिशय क्षेत्र

यहाँ भगवान् शान्तिनाथका एक विशाल मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिरमें मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी १२ फुट ऊँची अत्यन्त सौम्य खड्गासन प्रतिमा है। इसके दर्शन मात्रसे मनमें अपूर्व शान्तिका उद्रेक होने लगता है। अनेक भक्तजन इनके समक्ष अपनी व्यथाका निवेदन करते हैं और कहा जाता है कि भक्तिभावपूर्वक की गयी उनकी प्रार्थनासे कामना पूर्ण हो जाती है।

इस मन्दिरके बाहर बने हुए तीन ओर बरामदोंमें १५ वेदियाँ हैं।

प्राचीन कालमें यहाँ भगवान् शान्तिनाथका एक प्रसिद्ध मन्दिर था, जिसका निर्माण सन् १०४६ में शाह पापा हूमड़ने कराया था और उसकी प्रतिष्ठा भावदेव सूरिने की थी। सात-सलाकी पहाड़ीपर स्थित स्तम्भके सन् ११०९ ई. के शिलालेखमें श्रेष्ठी पापाकी मृत्युका वर्णन मिलता है। सम्भवतः ये श्रेष्ठी पापा और शान्तिनाथ मन्दिरके निर्माता पापा एक ही व्यक्ति हैं। सन् १११३ के शिलालेखमें श्रेष्ठी साढिलकी मृत्युका उल्लेख मिलता है। सम्भवतः श्रेष्ठी पापा और श्रेष्ठी साढिलके मध्य पारिवारिक सम्बन्ध था। प्राचीन कालमें इस मन्दिरकी बहुत ख्याति थी। अनेक श्रावक और मुनिजन इसके दर्शनोंके लिए आते रहते थे। सन् १०४७ के एक शिलालेखमें एक यात्रीके नामका उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त मन्दिरके स्थानपर ही वर्तमान मन्दिरका निर्माण हुआ है, ऐसा लगता है। मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति प्राचीन मन्दिरकी ही मूर्ति है और इसकी प्रतिष्ठा सन् ११०३ में हुई थी, ऐसा विश्वास किया जाता है। इसका मूर्ति-लेख पढ़ा नहीं जा सका है।

मन्दिरके द्वारपर दो विशाल श्वेत वर्ण हाथी बने हुए हैं। इतने विशाल पाषाण-गज अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आये। यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थोंका एक विशाल शास्त्र-भण्डार भी है। इसमें अनेक अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध शास्त्र विद्यमान हैं। यहाँ एक प्राचीन जल घड़ी है। उसीके अनुसार यहाँ घण्टे बजाये जाते हैं। पूर्वाह्ण, मध्याह्न, सन्ध्या और अर्धरात्रिको प्राचीन कालकी रीतिके अनुसार मन्दिरमें नौबत बजती है।

मन्दिरकी कुछ प्राचीन प्रतिमाओंके मूर्ति-लेख इस प्रकार हैं—

१–संवत् १४९० वर्षे माघ वदि १२ गुरौ भट्टारक श्री सकलकीर्ति हूमड़ दोशी मेघा श्रेष्ठी अर्चति।

२–संवत् १४९२ वर्षे वैशाख वदी १ सोमे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री सकलकीर्ति हूमड़ ज्ञातीय

३–संवत् १५०४ वर्षे फागुन सुदो ११ श्री मूलसंघे भट्टारक श्री सकलकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्ति देवा हूमड़ ज्ञातीय श्रेष्ठि खेता लाखू तयोः पुत्राः

४–संवत् १५३५ पौष बदी १३ बुधे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री सकलकीर्ति भट्टारक श्री भुवन-कीर्ति भट्टारक श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् हूमड़ श्रेष्ठि पचा भार्या भाऊ सुत आसा भा० कडू सुत कान्हा भार्या कुंदेरी भ्रातृ धना भार्या बइहनूँ एते चतुर्विंशतिकां नित्यं प्रणमंति

५–पार्श्वनाथ प्रतिमा—संवत् १६२० वैशाख सुदी ९ बुधे श्री मूलसंघे बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे सकलकीर्ति देवास्तत्पट्टे

श्री भुवनकीर्ति देवास्तत्पट्टे श्री ज्ञानभूषण देवास्तत्पट्टे श्री विजयकीर्ति देवास्तत्पट्टे सुमतिकीर्ति गुरूपदेशात् (इसके पश्चात् प्रतिष्ठाकारकके परिवारके नाम दिये गये हैं) नित्यं प्रणमंति ।

उपर्युक्त सभी भट्टारक बलात्कारगणकी ईडर शाखाके थे ।

नसियाँ—झालावाड़ और झालरापाटनके मध्य सड़कके किनारे नसियांजी है। इसमें बायीं ओरकी वेदीमें हलके लाल वर्णकी पार्श्वनाथ भगवान्‌की प्रतिमा विराजमान है। इसका आकार २ फोट ८ इंच है। यह प्रतिमा एक शिलाफलकमें है। प्रतिमाके ऊपर सप्त फणावलि सुशोभित है। परिकरमें छत्र, गज, मालाधारी देव और चमरेन्द्र हैं। मूर्तिके दोनों पार्श्वोंमें ७ पद्मासन तथा छत्रके ऊपर ८ खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। पद्मासन प्रतिमाओंके नीचे धरणेन्द्र और पद्मावती हैं। मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल संवत् १२२६ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार है।

दायीं वेदी ३ दरकी है। वेदीके आगे चबूतरा बना हुआ है। यह पूजाके प्रयोजनके लिए है। मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथको १ फुट ९ इंच अवगाहनाकी और संवत् १५४५ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त इस वेदीमें संवत् १६६१ और १६६९ की ७ मूर्तियां हैं।

नसियांके चारों ओर विशाल कम्पाउण्ड और बरामदे बने हुए हैं। मन्दिरके बाहर तीन निषद्या या छतरियाँ बनी हुई हैं। उनमें-से एकपर माघ सुदी ३ संवत् १०६६ अंकित है। उस दिन आचार्यश्री भावदेवके शिष्य श्रीमन्तदेवका निधन हुआ था। आचार्य महोदयका एक चित्र भी मिला है। वह अध्ययन मुद्राका है। सामने थूणीपर शास्त्र रखा हुआ है। दूसरी छतरीमें संवत् ११८० में आचार्य देवेन्द्रका उल्लेख है। एक छतरी कुमुदचन्द्राचार्यकी आम्नायके भट्टारक कुमारदेवको है, जो संवत् १२८९ के मूलनक्षत्रमें गुरुवारको स्वर्गवासी हुए थे। सात-सलाकी पहाड़ीके स्तम्भका १००९ ई. का शिलालेख नेमिदेवाचार्य बलदेवाचार्यका उल्लेख करता है। इसी स्तम्भपर १२४२ ई. के शिलालेखमें मूलसंघ और देवसंघका उल्लेख है।

छतरियोंके निकट एक पक्की बावड़ी बनी हुई है। बावड़ीके चारों ओर पक्के घाट और बरामदे हैं।

स्थापनाका इतिहास

झालरापाटनके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती है कि यहाँ प्राचीन कालमें १०८ मन्दिर थे, जिनकी घण्टियाँ बजा करती थीं। अतः इस नगरका नाम झालरापाटन पड़ गया। झालरापाटन-का अर्थ है घण्टियोंकी झालरोंका नगर। कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं झालाका नगर। शान्तिनाथका मन्दिर इन्हीं १०८ मन्दिरोंमें-से था। इस नगरका प्राचीन नाम चन्द्रावती था और इसके बीचमें-से चन्द्रभागा नदी बहती थी।

इस नगरकी स्थापनाके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियां और लोकगीत प्रचलित हैं। एक लोकगीतमें इस नगरका संस्थापक राजा हूण बताया है। कुछ लोग मालवाके परमारनरेश चन्द्रसेनकी पुत्रीको इस नगरकी संस्थापिका मानते हैं, यात्रा करते हुए इस स्थानपर आकर जिसके पुत्र उत्पन्न हुआ था। कई लोग इस बारेमें एक बड़ी रोचक कहानी कहते हैं कि जस्सू नामक एक बढ़ई काम करके अपने घर जा रहा था। उसने रास्तेमें जैसे ही कुल्हाड़ी रखी, वह सोनेकी हो गयी। इस तरह उसे पारस पत्थर मिल गया। उसकी सहायतासे उसने एक नगरीका निर्माण किया, जिसका नाम चन्द्रावती रखा। एक तालाबका नाम तो अब तक 'जस्सू ओरका तालाब' कहलाता है। एक किंवदन्ती यह भी है कि वनवासके दिनोंमें पाण्डव यहाँ आये

थे। शान्तिका स्थान देखकर भीमने यहाँ तपस्या की। शत्रुओंने उसे डिगानेके कई प्रयत्न किये। अन्तमें एक देवता रीछ बनकर उसे डराने आया। किन्तु भीमने कसकर एक तीर मारा। रीछ तो झाड़ियोंमें घुस गया, किन्तु जहाँ तीर गिरा, वहाँसे एक जल-धारा फूट निकली, जिसका नाम चन्द्रभागा पड़ गया।

नगरका संस्थापक कोई भी क्यों न हो, किन्तु यह निश्चित है कि मालवनरेश उदयादित्य-का पौत्र जस्सू वर्मा ही जस्सू बढ़ई हो गया है। यहाँके एक शिलालेखमें उसके नामका उल्लेख भी आया है।[1]

हिन्दू तीर्थ

चन्द्रभागा नदीके तटपर अनेक हिन्दू मन्दिर अवस्थित हैं। कुछ मन्दिरोंके अवशेष भी बिखरे पड़े हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मन्दिर शीतलेश्वर महादेवका है। इस मन्दिरका विध्वंस किसी मुस्लिम आक्रान्ताने कर दिया था, किन्तु बादमें इसकी मरम्मत कर दी गयी। इस मन्दिरके सम्बन्धमें मि. फर्ग्युसनने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि यह सबसे प्राचीन और कला-पूर्ण मन्दिर है। भारतके प्रसिद्ध कलात्मक निदर्शनोंमें यह एक उत्तम नमूना है। इस मन्दिरके एक स्तम्भपर आठवीं शताब्दीका एक लेख भी है, जिसमें इस मन्दिरमें राजा शंकरके दर्शनार्थ आनेका उल्लेख किया गया है। शंकरगण मौर्यनरेश दुर्गगणका सम्भवतः उत्तराधिकारी था।

नोसुकका पुत्र मंचुक भी नौवीं सदीमें इस स्थानको पूजाके लिए आया था।[2] शीतलेश्वर महादेव तथा उसके लगभग समकालीन कालिका मन्दिरके स्तम्भोंपर ऐसे शिलालेख मिलते हैं, जिसमें ७-८वीं शताब्दीसे १२वीं शताब्दी तक यहाँ आये हुए विशिष्ट यात्रियोंके उल्लेख हैं। इनसे सिद्ध होता है कि यह स्थान काफी प्राचीन है।

ये सभी मन्दिर एक अहातेके अन्दर बने हुए हैं और भारत सरकारके पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं।

वस्तुतः चन्द्रावती (झालरापाटन) जैनधर्म, शैवधर्म और वैष्णव धर्मका एक सुप्रसिद्ध केन्द्र था। सभी धर्मवाले इसे अपना तीर्थस्थान मानते आये हैं।

सरस्वती भवन

नगरमें श्री शान्तिनाथ जैन प्राथमिक विद्यालय, श्री शान्तिनाथ जैन औषधालय, शृंगार-बाई जैन प्रसूति गृह आदि कई सार्वजनिक संस्थाएँ हैं। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय श्री ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन है। इसकी स्थापना ऐलक पन्नालालजीने संवत् १९७२ में की थी। इसके पश्चात् उन्होंने इसकी एक शाखा सुखानन्द जैन धर्मशाला बम्बईमें स्थापित की। बादमें सेठ चम्पालाल रामस्वरूपकी नसियाँ व्यावरमें इसकी एक अन्य शाखा स्थापित की। इस वर्ष ज्येष्ठ वदी ५ संवत् २०३३ में उज्जैनमें इसकी शाखा खोली गयी है। यहाँ बम्बई शाखाके शास्त्र लाये गये हैं। तीनों स्थानोंपर हस्तलिखित और मुद्रित शास्त्रोंकी कुल संख्या १५००० है।

धर्मशाला

नगरमें एक लक्ष्मणलाल दिगम्बर जैन धर्मशाला है, जहाँ नल और बिजलीकी सुविधा है।

---

१. Annual Report Rajputana Museum Ajmer, 1912-13, p.2.

२. Progress Report Archeological Survey of Western India, 1905-6.

मेला

यहाँ कोई वार्षिक मेला नहीं होता।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—
मन्त्री, श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
झालरापाटन (जिला झालावाड़) राजस्थान

जयपुर

महत्त्व

राजस्थानकी राजधानी जयपुर गुलाबी नगरके नामसे सारे देशमें प्रसिद्ध है। इस नगरकी नींव महाराज सवाई जयसिंहजीने १८ नवम्बर सन् १९२७ में डाली थी। यह शहर राव किरपारामजी सरावगीके परामर्शपर बसाया गया था। वे उस समय औरंगजेबके दिल्ली दरबारमें वकील थे। महाराज जयसिंहजीने औरंगजेबसे सवाईकी पदवी प्राप्त की थी। इस शहरका निर्माण योजनानुसार व्यवस्थित ढंगसे किया गया था। योजना-निर्माणका कार्य विद्याधर नामक एक महान् शिल्पीको सौंपा गया था। उसकी योजनाके अनुसार इस नगरकी रचना चौपड़के रूपमें की गयी। सभी बाजार एक सिरेसे दूसरे सिरे तक सीधे चले गये हैं। इसी तरह गलियाँ और रास्ते भी सीधे चले गये हैं। शहरके चारों ओर शहरपनाह (चहारदीवारी) बनायी गयी जिसमें ऊँची-ऊँची बुर्जें और बीचमें ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बनाये गये। इस परकोटेके अन्दर लम्बाई दो मील और चौड़ाई एक मील है। अब तो परकोटेके बाहर दूर-दूर तक शहरका विस्तार हो गया है। सन् १९७१ की जनगणनाके अनुसार इस नगरकी आबादी लगभग ६,५०,००० तथा जैनोंकी संख्या २७००० है।

इस नगरके संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह बहुत बड़े गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। उन्होंने जयपुर और दिल्लीमें सूर्य-घटिका और वेधशालाएँ बनवायी थीं जो अब भी विद्यमान हैं। इस नगरके मुख्य बाजार काफी चौड़े हैं। मकानों और दुकानोंकी संरचना योजनानुसार हुई है। ये मकान और दुकानें गुलाबी रंगसे पुती हुई हैं। सब एक रंग और रूपके देखनेमें बड़े आकर्षक प्रतीत होते हैं। यहाँके मुख्य रास्ते भी चौड़े हैं। यहाँका जौहरी बाजार ४० गज चौड़ा है। प्रत्येक चौपड़ काफी खुली हुई है। जब सर मिर्जा इस्माइलखाँ यहाँके प्रधानमन्त्री थे (स्वतन्त्रतासे पहले), उस समय इस नगरको अत्यधिक आकर्षक बनानेका प्रयत्न किया गया था।

इस नगरमें प्रारम्भसे ही जैनोंका प्राबल्य रहा है। यहाँके दीवान तथा अन्य उच्च सरकारी पदोंपर जैन रहते आये हैं। यह क्रम सन् १९४७ तक बराबर चलता रहा। इसीलिए कुछ लोग विनोदमें इसे जैनपुर भी कह देते थे। इससे पूर्व आमेर राजधानी थी।

जयपुर जैनोंका प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। यहाँकी समाजमें धार्मिक रुचि सदासे रही है। अपने जमानेमें यहाँकी स्वाध्याय-गोष्ठी प्रसिद्ध थी और उसका सम्बन्ध आगरा तथा मुलतानकी स्वाध्याय गोष्ठियोंके साथ था। इन गोष्ठियोंमें चर्चा या स्वाध्यायके समय जो शंकाएँ उठती थीं और जिनका समाधान आपसमें नहीं हो पाता था, वे शंकाएँ दूसरी गोष्ठियोंके पास भेज दी जाती थीं। जिन दिनों जयपुरमें आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी विराजमान थे, उन दिनों उनके पास मुलतान आदिसे बराबर शंकाएँ आती रहती थीं और वे उनका समाधान भेजा करते थे।

पं. टोडरमलजी अपने युगके सर्वश्रेष्ठ और सुलझे हुए विद्वान् थे। उन्होंने कई सिद्धान्त ग्रन्थोंकी हिन्दी टीका और वचनिका लिखकर तथा मोक्षमार्गप्रकाश ग्रन्थ लिखकर हिन्दी जगत्के लिए जैन सिद्धान्तका बोध सुगम कर दिया। इनके अतिरिक्त यहाँ पं. दौलतरामजी, पं. जयचन्दजी, पं. मन्नालालजी, पं. सदासुखजी, संघी पन्नालालजी, शाह दीपचन्दजी आदिने संस्कृत-प्राकृतके अनेक ग्रन्थोंकी टीकाएँ कीं। इस प्रकार यहाँके विद्वानोंका साहित्यिक योगदान अविस्मरणीय है।

जयपुरमें कोई मन्दिर अठारहवीं शताब्दीसे पूर्वका नहीं है। इससे पूर्व जयपुर नामक कोई नगर ही नहीं था। किन्तु मन्दिरोंमें इससे पूर्वकी प्रतिमाएँ अवश्य मिलती हैं। जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित संवत् १५४८ की प्रतिमाएँ कई मन्दिरोंमें हैं। किन्तु इससे प्राचीन प्रतिमा सम्भवतः निगोतियोंके मन्दिरमें है। यहाँ पार्श्वनाथकी एक प्रतिमा संवत् ११७१ की है। एक प्रतिमा पानदरीबाके अठारह महाराज मन्दिरमें है जो संवत् १३२० की है। यह भूगर्भसे निकली थी। वैदोंके मन्दिरमें संवत् १४०० की एक मूर्ति विराजमान है। बूचरोंके मन्दिर (चाकसूका चौक) में भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी प्रतिमापर संवत् ११७ उत्कीर्ण है। किन्तु यह सही प्रतीत नहीं होता। मूर्तिकी रचना-शैलीसे यह १७-१८वीं शताब्दीकी लगती है।

जयपुरके मन्दिरोंमें जो प्रतिमाएँ विराजमान हैं, वे प्रायः यहींके अथवा आसपासके बिम्ब प्रतिष्ठोत्सवोंमें प्रतिष्ठित हुई थीं। जयपुरके निकट फागो नगरमें संवत् १८५१ में एक प्रतिष्ठोत्सव हुआ था। इस उत्सवमें अजमेर, ग्वालियर और दिल्लीके भी भट्टारक सम्मिलित हुए थे। इसी प्रकार एक प्रतिष्ठा महोत्सव बाड़ीग्राममें माघ शुक्ला ५ गुरुवार संवत् १८८३ में सम्पन्न हुआ था। इस उत्सवके करानेवाले छाबड़ा गोत्री दीवान बालचन्द्रजीके सुपुत्र संघवी रामचन्द्रजी और दीवान अमरचन्द्रजी थे।

जैन धर्मशालाएँ

जयपुरमें ठहरनेके लिए निम्नलिखित जैन धर्मशालाएँ हैं—

घीवालोंके रास्तेमें ठोलियोंकी धर्मशाला। रामगंज बाजार माणक चौक थानेके पास बक्शीजोकी धर्मशाला। अजमेरी रोडपर मलजी छोगालालजीकी धर्मशाला। लालजी साँडके रास्तेमें दीवानजीकी धर्मशाला, दीवान अमरचन्दजीके मन्दिरके सामने।

प्रमुख जैन संस्थाएँ

जयपुरमें प्रमुख जैन संस्थाएँ इस प्रकार हैं—

दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज—यह मनिहारोंके रास्तेमें अवस्थित है। इसकी स्थापना वि. सं. १९४२ में हुई थी। इसमें जैन धर्म, साहित्य और आयुर्वेद विषयकी आचार्य परीक्षा तक उच्च शिक्षाकी व्यवस्था है। इंगलिशमें हाई स्कूल तक तथा कलकत्ताकी न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ आदिकी परीक्षाकी व्यवस्था है।

दिगम्बर जैन महावीर हाई स्कूल—यह ठोल्योंकी धर्मशालाके सामने है। इसी हाई स्कूलके निकट दिगम्बर जैन पद्मावती कन्या पाठशाला है। इसमें विदुषी और सरस्वती तक शिक्षा दी जाती है। श्री महावीर दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय—यह मोदीखाना चौकड़ीमें चोरुकोंके रास्तेमें है। इसमें भी विदुषी, सरस्वतीके अतिरिक्त न्यायतीर्थ तक की शिक्षा दी जाती है। जैनदर्शन विद्यालय और ज्ञानविद्यालयके नाम भी उल्लेखनीय हैं।

श्री महावीरजी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्रका मन्त्री कार्यालय सवाई मानसिंह हाईवेमें महावीर भवनमें अवस्थित है। यहींपर उसका साहित्य शोध संस्थान है। बापूनगरमें पं. टोडरमलजीकी स्मृतिमें सेठ पूरणचन्द गोदिका द्वारा संस्थापित 'टोडरमल स्मारक भवन' है। सेठी कालोनीमें विशाल सन्मति पुस्तकालय है जिसे मोतीलालजीने स्थापित किया था।

जयपुरके जैन दीवान

जयपुर राज्यमें अनेक व्यक्ति दीवान हुए हैं, उनमें नानू गोधा, रावकृपाराम, संघी झूथाराम, रामचन्द्र छावड़ा, अमरचन्द्र, बालचन्द्र, रतनचन्द्र, रामचन्द्र आदि सभी दीवान जैन थे। ये जैन दीवान कुशल प्रशासक, चतुर राजनीतिज्ञ और कर्तव्यपरायण थे। साथ ही वे देशभक्त और धर्मनिष्ठ भी थे। इनके सम्बन्धमें अधिक विवरण उपलब्ध नहीं होता है। जो कुछ विवरण मिलता है, वह प्रायः ग्रन्थ प्रशस्तियों अथवा उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियों और मन्दिरोंके आधारपर। उनका साधारण परिचय इस प्रकार है—

साहू नानूलाल गोधा—ये आमेरके तत्कालीन नरेश महाराजा मानसिंहके प्रथम प्रधान अमात्य थे। इनके पिता इसी नगरके निवासी श्री स्वरूपचन्दजी गोधा थे। वे बड़े धर्मनिष्ठ, उदार और गुणज्ञ थे। श्री नानूलाल भी अपने पिताके समान धर्मात्मा और उदार दानी थे। आपके अनुरोधसे मूलसंघ सरस्वतीगच्छके भट्टारक आदिभूषणके शिष्य ज्ञानकीर्तिने यशोधर-चरित नामक संस्कृत काव्यकी रचना की। आपने मौजमाबादमें एक विशाल और कलापूर्ण जिनमन्दिरका निर्माण करके ज्येष्ठ कृष्णा ३ सोमवार विक्रम संवत् १६६४ (सन् १६०७) को पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव किया। इस उत्सवमें सहस्रोंकी संख्यामें जैनाजैन सम्मिलित हुए। इस मन्दिरके ऊपर तीन शिखर हैं। मन्दिरके आगे विशाल चौक है। मन्दिरका प्रवेश-द्वार अत्यन्त कलापूर्ण है। श्वेत और लाल पाषाणोंपर अद्भुत कलाकृतियाँ अंकित की गयी हैं। देव-देवियाँ विभिन्न मुद्राओंमें दिखाये गये हैं। एक दृश्यमें वीणापाणि सरस्वती खड़ी है। उसका वाहन हंस मोती चुग रहा है। लाल और श्वेत पाषाणोंमें अंकित यह कला राजस्थानी कलाका एक नमूना कही जा सकती है।

इस मन्दिरमें दो भोंयरे हैं। एक भोंयरेमें संवत् १६६४ में प्रतिष्ठित जिन मूर्तियाँ विराजमान हैं तथा दूसरे भोंयरेमें भगवान् आदिनाथकी विशाल पद्मासन मूर्ति है जो संवत् १४०० की है। यहाँ एक छतरी भी बनी हुई है। इसका निर्माण चौधरी नन्दलालके पुत्र जोधराजने कराया था।

यशोधर-चरितकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि नानूलालने तीर्थराज सम्मेदशिखरके ऊपर बीस तीर्थंकरोंके मन्दिर बनवाये थे। प्रशस्तिमें बताया गया है—

"राजाधिराजोऽत्र तथा विभाति श्रीमानसिंहोऽजितवैरिवर्गः।
अनेकराजेन्द्रविनम्यपादः स्वदानसंतर्पितविश्वलोकः ॥
तस्यैव राज्ञो स महानमात्यो नानू सुनामा विदितो धरित्र्याम्।
सम्मेदशृंगे च जिनेन्द्रगेहान्यष्टापदे वादिमचक्रधारी ॥
योऽकारयद्यत्र च तीर्थनाथाः सिद्धिगता विंशतिमानयुक्ता।"

इस प्रशस्तिसे प्रकट है कि नानू मानसिंहके महामात्य थे और उन्होंने सम्मेद गिरिपर निर्वाण-लाभ करनेवाले चौबीस तीर्थंकरोंके जिनालय उसी प्रकार बनवाये, जिस प्रकार प्रथम चक्रवर्ती भरतने अष्टापदके ऊपर जिनभवन बनवाये थे।

संघी झूथाराम—आप बड़े प्रतिभाशाली, उदारदानी और प्रबन्धपटु व्यक्ति थे। जैनधर्ममें आपकी गहरी निष्ठा थी। मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा और जीर्णोद्धार करानेमें आपकी विशेष रुचि थी। आपकी प्रशासनिक योग्यताके कारण चोरी, रिश्वत—जैसे अनैतिक कार्य करनेका साहस किसीको नहीं होता था। इन गुणोंके कारण जनतामें आपका बड़ा आदर भी था और आतंक भी। उस समय सेनाका सारा कार्य इनके बड़े भाई संघी हुकुमचन्दके सुपुर्द था।

इन दिनों रियासतोंमें अंग्रेज अपने पैर जमा रहे थे। रियासतोंमें रेजीडेण्ट पौलिटिकल एजेण्ट आदि पदोंपर अंग्रेजोंकी नियुक्तियाँ हो चुकी थीं। किन्तु जयपुर रियासतके कार्योंमें अंग्रेजोंका हस्तक्षेप झूथारामको पसन्द नहीं था। वे गुलामीकी जंजीरोंको मजबूत करनेवाली अंग्रेजी चालों-को भी पसन्द नहीं करते थे, बल्कि उनका विरोध करते थे। अंग्रेज अधिकारी इस विद्रोहको कैसे सहन करते। उन्होंने झूथारामके विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ जागीरदारों और बड़े लोगोंको लालच देकर अपनी ओर मिला लिया और उन्हें प्रधानामात्य पदसे हटानेका प्रयत्न करने लगे। षड्यन्त्र भयानक था। जयपुर महाराजकी हत्या २३ फरवरी १८३५ को करवा दी गयी और इसका सम्पूर्ण दोष झूथारामके सिर मढ़ दिया गया। पोलिटिकल एजेण्टने कलकत्ता से फौरन आदेश मँगाकर उन्हें प्रधानामात्य पदसे पृथक् करके पहले एक महलमें और फिर दौसामें नजरबन्द कर दिया।

जयपुरके पौलिटिकल एजेण्ट मि. आल्व्सने जो रिपोर्ट कलकत्ता भेजी, उसमें उसने लिखा था कि अँगरेजोंका आना जयपुरकी जनताको बहुत अच्छा लगा है। किन्तु जनता महाराजकी हत्या और उनके लोकप्रिय दीवानजीको नजरबन्दीसे अत्यन्त क्षुब्ध हो उठी है। अँगरेजोंने 'जयपुर ट्रायल' नामक जो पुस्तक छापी थी, उसके अनुसार एक दिन दिनांक ४ जून १८३५ को दिन-दहाड़े महलके सामने आल्व्सको हजारों लोगोंने घेर लिया। किन्तु वह किसी प्रकार बच गया। इस घटनाको षड्यन्त्रका नाम देकर उसकी जिम्मेदारी भी झूथाराम और उनके भाई संघी हुकमचन्द्रके सिर थोप दी गयी। फिर दो मुकदमे चलाये गये। एक संघी झूथाराम, उनके भाई संघी हुकमचन्द्र और पुत्र फतहलालपर। दूसरा दीवान अमरचन्द्र आदिपर। दीवान अमरचन्द्र संघी हुकमचन्द्रके समधी थे। दीवान अमरचन्द्रपर हत्याका इलजाम लगाया गया और उन्हें शूलीपर लटका दिया गया। संघी झूथाराम आदिपर षड्यन्त्र करने, विद्रोह भड़काने और आल्व्सपर आक्रमण करवानेका जुर्म लगाया गया और दोनों भाइयोंको आजन्म कारावासका दण्ड दिया गया। उन्हें चुनारगढ़ (उत्तरप्रदेश) के किलेमें कैद कर दिया गया तथा उनके परिवारवालोंको २४ घण्टेमें जयपुर छोड़नेका आदेश दिया गया।

दीवान अमरचन्द्र—आप बड़े धर्मात्मा और दयालु प्रकृतिके थे। जब ये दीवान पदपर आसीन थे, उस समयकी दो घटनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनकी दयालुता, दृढ़ धर्मनिष्ठा और निर्भयतापर प्रकाश पड़ता है। एक बार लोगोंके कहनेसे जयपुर महाराजने चिड़ियाघरके बबर शेरके भोजनकी व्यवस्थाका भार दीवानजीको सौंप दिया। दीवानजीके समक्ष धर्मसंकट आ गया। शेरका आहार मांस है, किन्तु दीवानजी मांसकी व्यवस्था कर नहीं सकते थे। किन्तु दीवानजी कर्तव्यपरायण थे। वे सिंहका आहार थालोंमें लेकर चले। पिंजड़ेका द्वार खुलवाया। शेर भूखा था, जोरोंसे दहाड़ा। दीवानजी कर्तव्यपर प्राण देनेके लिए तैयार थे। वे थाल लेकर निर्भय होकर आगे बढ़े। थाल जमीनपर रखा और बोले—"वनराज! तुझे भोजन चाहिए तो ये जलेबियाँ रखी हैं, तुझे मांस चाहिए तो मैं खड़ा हूँ। मैं मांस दे नहीं सकता, यह मेरे धर्मका प्रश्न है। मांस तेरे लिए जरूरी नहीं; इन जलेबियोंसे भी पेट भर सकता है। अब तुझे चुनाव करना है—मैं या

जलेबी।" सम्भवतः वनराज दीवानजीके हृदयकी भाषाको समझ गया और दूसरे ही क्षण सिंह जलेबी खा रहा था। जीवनमें पहली बार सिंहने जलेबियाँ खायीं और जीवनमें पहली बार दर्शकोंने सिंहको जलेबियाँ खाते देखा। अविश्वसनीय किन्तु सत्य। हृदयकी भाषा पशु भी समझते हैं।

एक दूसरी घटना और—दीवानजीसे द्वेष रखनेवाले मुसाहिबोंने महाराजके फिर कान भरे। फलतः महाराज शिकार खेलनेके लिए जाने लगे तो दीवानजीको भी साथ ले लिया। जंगलमें हिरणोंका एक झुण्ड देखा तो महाराजने अपना घोड़ा उनके पीछे डाल दिया। आगे-आगे भयविह्वल हिरण, उनके पीछे महाराजका घोड़ा और महाराजके पीछे दीवान अमरचन्द्रका घोड़ा। दीवानजी सोचते जा रहे थे, "क्या बिगाड़ा है इन निरीह मूक पशुओंने मनुष्यका जो इन्हें जब-तब मारता फिरता है और कैसा अविवेकी है यह मनुष्य जो इन निर्बल पशुओंको मारकर अपनी वीरताका दर्प करता है। ये बेचारे भागकर कहाँ जायेंगे। जब राजा ही इनके प्राण लेनेको आतुर है तो ये अपने प्राण कैसे बचायेंगे?

अकस्मात् उनके अन्तर्भाव वाणी बनकर फूट पड़े—"हिरणो! मैं कहता हूँ, जहाँ हो वहीं रुक जाओ। जब रक्षक ही भक्षक हो जाये तो बचकर कहाँ जाओगे।" वाणी नहीं निकली मानो कोई सम्मोहन मन्त्र निकला हो। हिरण जहाँ थे, वहीं खड़े रह गये। दीवानजी आगे बढ़े, विनत किन्तु करुणाविह्वल स्वरमें बोले—"महाराज! ये खड़े हैं आपके सामने, जितने चाहिए, ले लें।" महाराज कभी दीवानजीको देखते, कभी हिरणोंको। जो कुछ देखा, वैसा तो जीवनमें कभी नहीं देखा था। अद्भुत था, अपूर्व था। महाराजके हृदयसे एक हिलोर-सी उठी, बोले—"दीवानजी! तुमने मेरी आँखें खोल दीं। आजसे शिकारका त्याग करता हूँ।"

ऐसे थे अमरचन्द्र दीवान। उनके बनवाये हुए कई मन्दिर जयपुरमें अब भी विद्यमान हैं।

उल्लेखनीय जैनमन्दिर

यों तो जयपुरमें लगभग १८७ चैत्यालय एवं जैनमन्दिर हैं, किन्तु कुछ मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं; जैसे—

महावीर मन्दिर कालाडेरा—यहाँ भगवान् महावीरकी लाल वर्णकी खड्गासन मूर्ति है, जो संवत् ११४८ में प्रतिष्ठित हुई थी। इस मूर्तिके चमत्कारोंकी अनेक कहानियाँ नगरमें प्रचलित हैं। कहा जाता है कि भक्तजनोंकी मनोकामनाएँ यहाँ पूरी हो जाती हैं। इस ख्यातिके कारण यहाँ प्रचुर संख्यामें दर्शनार्थी आते हैं।

सिरमौरियोंका मन्दिर—यह मन्दिर छतोंमें हुई कलापूर्ण रचनाके कारण प्रसिद्ध है।

बधीचन्दजीका मन्दिर—इस मन्दिरमें स्वर्णकी कलाकारी दर्शनीय है। इसका गुम्बज अत्यन्त कलापूर्ण है। इसी मन्दिरमें बैठकर महापण्डित टोडरमलजी शास्त्र-रचना किया करते थे।

दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर—पं. टोडरमल इस मन्दिरमें शास्त्र-प्रवचन किया करते थे।

संघीजीका मन्दिर—इस मन्दिरमें सन् १०८४ की एक चतुर्मुखी मूर्ति है तथा ११–१२वीं शताब्दीकी अन्य भी कई मूर्तियाँ हैं।

साँवलाजीका मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्णकी भव्य प्रतिमा है। यह अत्यन्त अतिशय सम्पन्न है।

सांगानेर और आमेरके मन्दिरोंमें भी कई मूर्तियाँ ११-१२वीं शताब्दीकी हैं।

इन मन्दिरोंके अतिरिक्त उल्लेखनीय मन्दिरोंमें पाटोदीका मन्दिर, लश्करका मन्दिर, बड़े दीवानजी का मन्दिर, छोटे दीवानजीका मन्दिर, दारोगाजीका मन्दिर, ठोल्योंका मन्दिर और चौबीस महाराजका मन्दिर सम्मिलित है।

वर्तमानमें खानियामें राणाओंकी नशियाके पास पहाड़के ऊपर चूलगिरि पार्श्वनाथ मन्दिर तो तीर्थक्षेत्र ही बन चुका है। इसके दर्शनोंके लिए प्रतिदिन नगरके और बाहरके अनेक व्यक्ति जाते हैं। पहाड़पर जानेके लिए पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरके पृष्ठ भागमें कच्ची सड़क भी बन गयी है। इसपर ट्रक और कार सुविधापूर्वक चल सकती हैं। इस पुण्य क्षेत्रकी स्थापना और मन्दिरोंके निर्माणमें आचार्यरत्न श्री देशभूषणजीकी प्रेरणा ही मुख्य कारण थी। सन् १९६३ में यह कार्य आरम्भ हुआ था और सन् १९६४ में पार्श्वनाथ तथा अन्य मूर्तियोंकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। इस अल्पकालमें विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ, सीढ़ियाँ बनीं, सड़क बनी, बिजली लगी, पाइप लाइन डाली गयी, राणाओंकी नशियोंके कुएँमें मोटर फिट की गयी। मन्दिरमें अनेक टोंकें और वेदियाँ बनीं। मन्दिरमें दो चौक हैं, जिनके फर्श मकरानेके बने हुए हैं।

यहाँ मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण ७ फीट ३ इंच अवगाहनावाली खड्गासन मूर्ति है। उसके आगे पद्मावती देवी विराजमान हैं। ये प्रांगणके मध्य बनी एक वेदीमें विराजमान हैं। इनके आगे दो मन्दरियोंमें दायीं ओर नेमिनाथ और बायीं ओर महावीरकी मूर्तियाँ विराजमान हैं।

इनके चारों ओर २४ तीर्थंकरोंकी २४ टोंकें बनी हुई हैं। इस मन्दिरके पृष्ठभागमें भूगर्भमें भगवान् महावीरकी २ फीट ६ इंच उन्नत पद्मासन मूर्ति विराजमान है तथा इसके प्रांगणमें १७ फीट ऊँची महावीर स्वामीकी खड्गासन मूर्ति है।

मन्दिरके चारों ओर दूर तक पर्वतमाला छितरायी हुई है, जिसके कारण यहाँका दृश्य अत्यन्त मनोरम लगता है। यात्रियों एवं त्यागियोंके ठहरनेके लिए यहाँ धर्मशाला बन गयी है। यह स्थान नगरके कोलाहलसे दूर एकान्तमें है और ध्यान-साधनाके लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

जयपुरके भट्टारक

बलात्कारगणकी उत्तर शाखाके भट्टारक पद्मनन्दिके एक शिष्य भट्टारक शुभचन्द्रका संवत् १४५० में पट्टाभिषेक हुआ था। उन्होंने दिल्लीमें स्वतन्त्र भट्टारक पीठकी स्थापना की। इनके पदपर संवत् १५०७में जिनचन्द्र अभिषिक्त हुए। मुड़ासाके शाह जीवराज पापड़ीवालने इनके द्वारा संवत् १५४८ में सैकड़ों मूर्तियोंको प्रतिष्ठा करायी थी। इनके एक शिष्य रत्नकीर्तिने नागौरमें भट्टारक पीठ स्थापित किया। इनका पट्टाभिषेक संवत् १५८१ में हुआ था। भट्टारक जिनचन्द्रके पश्चात् प्रभाचन्द्र दिल्लीकी भट्टारक पीठपर आसीन हुए। इन तीनों भट्टारकोंका राजा और प्रजा-पर बड़ा प्रभाव था। इन्होंने अपनी विद्वत्ता एवं तन्त्र-मन्त्रकी शक्तिसे जैनधर्मकी बड़ी प्रभावना की। इनके कालमें अनेक मन्दिरोंका निर्माण हुआ, अनेक ग्रन्थोंका निर्माण और प्रतिलिपि हुई। भट्टारक प्रभाचन्द्रके एक शिष्य मण्डलाचार्य धर्मचन्द्रने संवत् १५८१ में चित्तौड़में भट्टारक पीठकी स्थापना की। चित्तौड़पर मुगलोंके निरन्तर आक्रमण होते रहते थे। अतः भट्टारक धर्मचन्द्रके शिष्य ललितकीर्तिने भट्टारक पीठ चित्तौड़से आमेरमें स्थानान्तरित कर दिया। मुख्य पीठपर भट्टारक प्रभाचन्द्रके पश्चात् चन्द्रकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति और नरेन्द्रकीर्ति हुए। नरेन्द्रकीर्ति अत्यन्त प्रभावशाली थे। किन्तु इनके समयमें प्रतिष्ठा, विधानादिमें व्याप्त धर्मविरुद्ध क्रियाकाण्डों और आडम्बरोंके विरुद्ध समाजके एक वर्गमें असन्तोष व्याप्त हो रहा था। फलतः तेरहपन्थके नामसे

सुधारवादी आन्दोलनने जोर पकड़ा। सांगानेरमें अमरा भौंसा अपार वैभव और सम्पत्तिके स्वामी थे। भट्टारकोंके विरोधी होनेसे उनके कारण तेरहपन्थ आन्दोलन शक्तिशाली हो गया। अमरा भौंसाका पुत्र जोधराम वैभवसम्पन्न होनेके साथ-साथ विद्वान् भी था। उसने संस्कृत और हिन्दीमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। उसने भी इस आन्दोलनका समर्थन किया।

भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिके बाद क्रमशः भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (संवत् १७२२), भट्टारक जगत्-कीर्ति (संवत् १७३३), भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति (संवत् १७७०), भट्टारक महेन्द्रकीर्ति (संवत् १७९०) और भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति (संवत् १८१५) पट्टाधीश हुए। १८वीं शताब्दीके अन्तिम और १९वीं शताब्दीके प्रथम चरणमें देशमें जयपुर, आगरा, मुलतान आदि अनेक स्थानोंपर मन्दिरोंमें अध्यात्म शैलीके नामसे स्वाध्याय गोष्ठियाँ चलती थीं। इस कालमें जयपुरमें प्रसिद्ध विद्वान् पं. टोडरमलजी, कविवर दौलतरामजी, पण्डित जयचन्द छाबड़ा, पण्डित गुमानीरामजी भावसा, पण्डित सदासुखजी कासलीवाल आदि अनेक विद्वान् हुए, जिन्होंने जैन वाङ्मयकी महान् सेवा की। ये सभी भट्टारक सम्प्रदायमें आयी हुई विकृतियों और आडम्बरोंके कट्टर विरोधी थे। जयपुर राज्यके तत्कालीन दीवान रतनचन्द्र, दीवान बालचन्द्र, भाई रायमल्ल आदि समाजमान्य और प्रभावशाली व्यक्तियोंका भी इस आन्दोलनको पूरा समर्थन प्राप्त था। इस आन्दोलनने समाजके प्रबुद्ध और विचारक वर्गकी सहज ही सहानुभूति प्राप्त कर ली। ये अध्यात्म शैलियाँ ही तेरहपन्थकी गोष्ठियोंमें परिवर्तित हो गयीं। समाजपर इस आन्दोलनका गहरा प्रभाव पड़ा, विशेषतः उत्तर भारतकी जैन समाजके चिन्तन और पूजा-पाठपर इसने गहरी छाप अंकित कर दी।

अब यह केवल आन्दोलन ही नहीं था, बल्कि इस विचारधाराने एक सम्प्रदायका रूप ले लिया था। पं. टोडरमलजी-जैसे विद्वानोंके सहयोगने इस सम्प्रदायकी विचार-पद्धतिको अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावक बना दिया था। इसी परिप्रेक्ष्यमें जयपुरके तेरहपन्थी समाजने संवत् १८२१ में जयपुरमें 'इन्द्रध्वजपूजा महोत्सव' का आयोजन किया। इस आयोजनमें दीवान रतनचन्द्र और दीवान बालचन्द्रका सम्पूर्ण सहयोग था। जयपुर नरेशने इस आयोजनको सफल बनानेके लिए सभी राजकीय सुविधाएँ दी थीं। इस उत्सवमें देशके सभी भागोंसे साधर्मीजन हजारोंकी संख्यामें सम्मिलित हुए थे। लगता है, यह आयोजन समाजपर तेरहपन्थ सम्प्रदायका प्रभाव अंकित करने-के लिए किया गया था।

दूसरी ओर समाजमें परम्परावादी विचारधाराका, जिसे बीसपन्थ कहा जाता था—प्रभाव भी कुछ कम नहीं था। भट्टारक इस विचारधाराके पोषक और प्रतिनिधि थे। तत्कालीन परिस्थितियोंका अध्ययन करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि तेरहपन्थ सम्प्रदायको चुनौतीको बीसपन्थ सम्प्रदायने उस समय स्वीकार कर लिया था। इसीलिए भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्तिका पट्टा-भिषेक संवत् १८१५ में जयपुरमें ही किया गया। इनके पश्चात् सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पीठपर आसीन हुए और उनका पट्टाभिषेक भी संवत् १८२२ में जयपुरमें ही किया गया। इतना ही नहीं, भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिने भट्टारक पीठ भी जयपुरमें स्थानान्तरित कर दिया। विद्वानोंका उत्तर विद्वानोंने दिया और उत्सवका उत्तर उत्सव द्वारा दिया गया। भट्टारक परम्पराके कट्टर समर्थक पण्डित बखतराम शाहने पण्डित टोडरमलजीकी विचारधाराका खण्डन किया। उन्होंने 'मिथ्यात्व खण्डन' एवं 'बुद्धिविलास' नामक ग्रन्थोंमें तेरहपन्थकी विचारधाराको कड़ी आलोचना की। इसी प्रकार भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिके नेतृत्वमें संवत् १८२६ में सवाई माधोपुरमें पंचकल्याणक प्रतिष्ठाका विशाल समारोह किया गया। प्रतिष्ठाकारक नन्दलाल संगहीने इस समारोहमें लाखों रुपये व्यय

करके और राजस्थानके प्रत्येक मन्दिरमें अपनी ओरसे मूर्तियाँ पहुँचाकर बीसपन्थ और भट्टारकी प्रतिष्ठा एवं प्रभावकी पुनः प्रतिष्ठा की। दोनों सम्प्रदायोंकी यह स्पर्धा उभरकर जयपुरके सामाजिक संगठनमें भी परिलक्षित हुई। बीसपन्थ सम्प्रदायने जयपुरके पाटौदी मन्दिर और चाकसूके मन्दिरमें अपनी पंचायतें स्थापित कीं तो तेरहपन्थी सम्प्रदायने भी बड़ा मन्दिर और बधीचन्दजीके मन्दिरमें अपनी पंचायतोंकी स्थापना की।

यह कितने आश्चर्यकी बात है कि जयपुरमें परम्परवादी और सुधारवादी विचारधाराओं-में विभक्त जैन समाज परस्परमें उस कालमें संघर्षरत थी, जिस समय वहाँकी सम्पूर्ण जैन समाज-पर भयानक संकट आया हुआ था। उस समय जयपुरके शासक अपनी ही समस्याओंमें उलझे हुए थे। सवाई ईश्वरीसिंहको (संवत् १८००-१८०७) सात वर्षके अल्पकालिक शासनमें मराठों और मुगलोंके निरन्तर आक्रमणोंसे घबड़ाकर आत्महत्या करनी पड़ी। तत्पश्चात् सवाई माधोसिंह (संवत् १८०७से १८२५)का अधिकांश समय मराठोंसे लड़नेमें ही व्यतीत हुआ। इसका लाभ वहाँके कुछ साम्प्रदायिक तत्त्वोंने उठाया। इनका सरगना श्याम तिवाड़ी नामक एक व्यक्ति था, जिसने संवत् १८१८ में उक्त नरेशको किसी प्रकार प्रभावित कर लिया। फलतः नरेशने उसे सभी धर्मगुरुओंका प्रधान बना दिया और उसे प्रशासकीय अधिकार भी दे दिये। अधिकार प्राप्त होते ही तिवाड़ीने अपना नकाब उतार फेंका और ईर्ष्या और द्वेषसे प्रेरित होकर जैनोंके विरुद्ध अनेक आदेश निकाले। उन आदेशोंपर नरेशकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। इन आदेशोंके द्वारा उसने जैन मन्दिरोंमें पूजा-पाठपर प्रतिबन्ध लगा दिया; जैनोंको रात्रि-भोजनके लिए बाध्य किया जाने लगा; जैन मन्दिरोंको तोड़ा जाने लगा; अनेक जैन मन्दिरोंको शिव मन्दिरमें परिवर्तित किया जाने लगा। आमेर और जयपुरमें ऐसे अनेक जैन मन्दिर हैं, जिनको उसके कोपका भाजन बनना पड़ा है। जब इन अत्याचारोंके विरुद्ध जैनोंने आवाज बुलन्द की और राज्यकी स्थितिको खतरा पैदा होने-की सम्भावना प्रबल हो उठी, तब महाराजाने श्याम तिवाड़ीसे अधिकार छीनकर उसे जयपुर नगरसे निकाल दिया।

इससे जयपुरमें कुछ समयके लिए शान्ति हो गयी, किन्तु वहाँके असामाजिक तत्त्व अवसर-की प्रतीक्षा करते रहे। संवत् १८२१ में जयपुरमें जैनोंने इन्द्रध्वज विधानका महान् आयोजन किया। इसमें हजारों व्यक्ति बाहरसे आये थे। ऐसा उत्सव जयपुर नगरमें पहले कभी नहीं हुआ था। इससे उन साम्प्रदायिक तत्त्वोंने खिसियाकर कुछ समय पश्चात् जैनोंपर एक शिव-मूर्ति तोड़नेका आरोप लगाया और महाराजाको भी प्रभावित कर लिया। जिस समय राजाकी नाकके नीचे जैनोंके मन्दिर और मूर्तियाँ तोड़ी जाती रहीं, उस समय उस राजाको न्यायकी सुधि नहीं आयी, किन्तु शिवलिंग तोड़नेके मिथ्या आरोपकी जाँच किये बिना उसने उसपर विश्वास कर लिया और वह अकस्मात् ही इतना न्यायप्रिय हो उठा कि उसने अनेक जैनोंको गिरफ्तार कर लिया और जैन समाजके महान् नेता और मूर्धन्य विद्वान् महापण्डित टोडरमलजीको मृत्युदण्ड दे दिया। इससे भी अधिक क्रूरता और अधमता उसने उस समय दिखायी, जब उसने उनकी लाशको गन्दगीके ढेरपर फिकवा दिया। रियासती दमन और गुलामीमें पिसती हुई जैन समाज आतंक और भयके मारे एक शब्द तक इसके विरोधमें नहीं बोल सकी। इससे राज्यमें मौतकी-सी शान्ति हो गयी।

संवत् १८२६ में ऐसे ही तत्त्वोंने एक बार फिर अपना सिर उठाया। उस समय जयपुरकी गद्दीपर सवाई माधोसिंहका पाँच वर्षीय पुत्र सवाई पृथ्वीसिंह आसीन था। राज्यसत्तापर इस समय वस्तुतः इन असामाजिक तत्त्वोंका ही प्रभाव था। अवसर पाते ही इन्होंने जैन मन्दिरोंको लूटना और जैन मूर्तियोंको तोड़ना चालू कर दिया। राज्यमें गुण्डोंको बन आयी। इनकी ये

कार्यवाहियाँ जयपुर नगर तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण जयपुर राज्यमें फैल गयीं। जयपुर, आमेर, सवाई माधोपुर, खण्डार आदि स्थानोंके जैन मन्दिर इस समय लूटे गये और अनेक जैन मूर्तियाँ तोड़ी गयीं। इन काण्डोंके प्रत्यक्षदर्शी कविवर बखतराम शाहने अपनी 'बुद्धिविलास' और कविवर थानसिंहने 'सुबुद्धि प्रकाश'में इन घटनाओंकी चर्चा की है। इन रचनाओंसे यह भी पता चलता है कि इन दुष्काण्डोंकी पुनरावृत्तिसे त्रस्त होकर अनेक जैन जयपुर नगरको छोड़कर अन्यत्र चले गये। अपने-अपने स्वार्थोंको दृष्टिमें रखकर इन काण्डोंके पश्चात् जयपुरके उक्त नरेशोंने शान्ति तो स्थापित की, किन्तु जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस करनेवाले किसी व्यक्तिको कोई सजा नहीं दी गयी। जिन जैन मन्दिरोंपर इन्होंने बलात् अधिकार कर लिया था, उन मन्दिरोंको भी जैनोंको वापस नहीं दिलाया गया। इससे इस दुष्कार्यमें इन नरेशोंका हाथ होनेसे इनकार नहीं किया जा सकता।

यहाँ ऐसे संकट कालमें भी जैन समाजमें ऐक्य और सद्भावकी स्थापना नहीं हो सकी और उस समय भी तेरहपन्थ और बीसपन्थके रूपमें स्पर्द्धा और द्वेषको भयानक अग्निको विवेकशील लोग हवा देते रहे, एक दूसरेको नीचा दिखानेमें ही लगे रहे। महापण्डित टोडरमलकी हत्याका कोई विरोध न होना इसका प्रमाण है।

आमेर और जयपुर दोनों ही भट्टारकोंके केन्द्र रहे हैं। पहले भट्टारकोंकी गद्दी आमेरमें थी। लेकिन जयपुरमें राजधानी बननेके पश्चात् भट्टारक गद्दी जयपुरमें स्थानान्तरित कर दी गयी। भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति (संवत् १८१५), भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (संवत् १८२२), भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति (संवत् १८४२), भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति (संवत् १८८०), भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति (संवत् १८८३), भट्टारक महेन्द्रकीर्ति (संवत् १९३९) एवं भट्टारक चन्द्रकीर्ति (संवत् १९७५) सभीका जयपुरमें ही पट्टाभिषेक हुआ। अन्तिम दो भट्टारकोंको छोड़कर शेष भट्टारकोंका अपने समयमें बड़ा प्रभाव था। जयपुरमें संवत् १८६१ में जो विशाल प्रतिष्ठा हुई थी, उसमें भट्टारक सुखेन्द्रकीर्तिका प्रमुख हाथ था। आमेरमें समृद्ध शास्त्र भण्डारकी स्थापना इन्हीं भट्टारकोंकी देन है।

जयपुरके जैन विद्वान्

जयपुर राज्यकी राजधानी आमेर थी। आमेर नरेशोंमें महाराज मानसिंहकी ख्याति भारतीय इतिहासमें एक महान् वीरके रूपमें हुई है। वे सम्राट् अकबरके प्रधान सेनापति थे और अकबरकी पटरानी जोधाबाईके सहोदर भ्राता थे। अकबरके साम्राज्य-विस्तारमें इनका महत्त्व-पूर्ण योगदान था। इन्होंने बड़े-बड़े युद्धोंका सफलतापूर्वक संचालन किया था और उनमें विजय-लाभ किया था। सवाई जयसिंहने सन् १७२५ में 'जय निवास' नामक महल बनवाया और सन् १७२७ में उसके चारों ओर योजनानुसार एक नवीन नगरका निर्माण कराया। यही नगर जयपुरके नामसे विख्यात हुआ। यद्यपि इस नगरके निर्माणको केवल ढाई सौ वर्ष हुए हैं, किन्तु जयपुर नरेश कलारसिक एवं विद्याप्रेमी रहे। इसलिए जयपुर नगरमें अनेक कलाविद् और विद्वान् हुए और उन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा जयपुरकी ख्यातिमें चार चाँद लगा दिये। सरस्वतीकी साधनामें जैनोंका भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ढाई सौ वर्षकी इस अल्प अवधिमें अनेक जैन विद्वानोंने विविध विषयोंमें साहित्य सृजन करके हिन्दी साहित्यके कोषको अत्यन्त समृद्ध किया। जैन वाङ्मयके क्षेत्रमें इन विद्वानोंका जितना ऊँचा स्थान है, उतना ही हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें भी है। इन्होंने अपने साहित्यमें गद्य और पद्य दोनों ही विद्याओंको अपनाया है।

पं. टोडरमलजी—इन विद्वानोंमें पण्डित टोडरमलजो सर्वाधिक लोकप्रिय और सम्मानास्पद विद्वान् हुए हैं। इन्होंने तत्कालीन समाजमें पूजापाठ और प्रतिष्ठाओंमें व्याप्त मिथ्यारूढ़ियों और बाह्याडम्बरों एवं केवल व्यवहारवादी दृष्टिकोणके विरुद्ध जनमानसमें चेतना जागृत की। इन्होंने एकांगी व्यवहार मार्गसे जनताकी रुचि हटाकर व्यवहार और निश्चयके आर्षसम्मत मार्गकी समन्वयपरक दृष्टि प्रदान की। इन्होंने गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार-जैसे दुरूह सिद्धान्त ग्रन्थोंकी सुबोध टीकाएँ कीं। इनका 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ग्रन्थ तो स्वाध्यायप्रेमियोंका सर्वप्रिय ग्रन्थ रहा है।

पण्डित दौलतराम काशलीवाल—ये एक लोकप्रिय कवि और विद्वान् थे। इन्होंने आदि-पुराण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण आदि अनेक ग्रन्थोंकी टीका करके जन-जनके लिए उनका स्वाध्याय सुगम बना दिया। उन्होंने अनेक मौलिक ग्रन्थोंकी भी रचना की। उनके १८ ग्रन्थ अब तक प्रकाशमें आ चुके हैं। ये जैनोंके सर्वप्रिय साहित्यकार थे। अध्यात्म बारहखड़ी इनकी अद्भुत रचना है।

कविवर बखतराम शाह—ये मूलतः चाकसूके निवासी थे, किन्तु बादमें जयपुरमें आ बसे थे। ये बीसपन्थ और भट्टारकोंके समर्थक थे। इन्होंने 'मिथ्यात्व खण्डन' और 'बुद्धिविलास' नामक ग्रन्थोंमें यद्यपि तेरहपन्थ और पण्डित टोडरमलजीके विचारोंका खण्डन किया है, किन्तु इन ग्रन्थोंसे तत्कालीन समाज, राज्य व्यवस्था, जयपुर नगर-निर्माण आदिके इतिहासपर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

पण्डित जयचन्द छाबड़ा—ये जयपुरके निकटस्थ फागी नगरके रहनेवाले थे, किन्तु बादमें जयपुरमें स्थानान्तरित हो गये थे। इन्होंने १५ ग्रन्थोंकी रचना की। इनकी भाषा राजस्थानी (ढुंढारी) है। इन ग्रन्थोंमें अधिकांश वचनिकाएँ हैं। तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, द्रव्यसंग्रह, प्रमेयरत्नमाला आदि दुर्बोध ग्रन्थोंको इन्होंने अपनी वचनिकाओं द्वारा सुगम और सुबोध बना दिया है। जैन समाजमें आज तक इनके ग्रन्थोंको बड़ी रुचि और सम्मानके साथ पढ़ा जाता है।

थानसिंह—इनकी रचनाएँ 'थान विलास' और 'सुबुद्धि प्रकाश' में संग्रहीत हैं। महाराज माधोसिंहके कालमें हुए साम्प्रदायिक उपद्रवोंके सम्बन्धमें कविकी इन कृतियोंसे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

इनके अतिरिक्त अनेक शास्त्रोंके टीकाकार पं. सदासुख काशलीवाल, पं. गुमानीराम भावसा तथा कई भट्टारक हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओंसे जैन वाङ्मय और हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धि की।

इन विद्वानोंके अतिरिक्त अनेक विद्वान् आमेर और सांगानेरमें हुए। ये दोनों ही नगर जयपुरके अत्यन्त निकट हैं। सांगानेरके विद्वानोंमें खुशालचन्द काला, जोधराज, किशनसिंह तथा आमेरके विद्वानोंमें जोधचन्द काशलीवाल, नेमिचन्द, अजयराज पाटनी आदि मुख्य हैं। इन विद्वानोंकी अनेक रचनाएँ प्रकाशमें आ चुकी हैं।

पद्मपुरा

मार्ग और अवस्थिति

पद्मपुरा (बाड़ा) जयपुरसे ३३.३ कि. मी. दक्षिणकी ओर स्थित है। जयपुरसे टोंक जानेवाली सड़कपर शिवदासपुरा नामक एक स्थान है। वहाँसे पूर्वकी ओर श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पद्मपुरा ५ कि. मी. है। क्षेत्र तक सड़क पक्की है। रेलमार्ग द्वारा जयपुर-सवाई माधोपुर ब्रांच लाइनके शिवदासपुरा-पद्मपुरा स्टेशनसे यह क्षेत्र ६.२ कि. मि. है। स्टेशनसे क्षेत्र तक जानेके लिए बसकी व्यवस्था है। जयपुरमें घाटगेटसे क्षेत्रके लिए प्राइवेट बसें चलती हैं। ये खानिया, गोनेर होती हुई जाती हैं। इस मार्गसे क्षेत्र १५ मील है। भट्टारकजीकी नसियासे सरकारी बसें जाती हैं। वे सांगानेर, शिवदासपुरा होकर जाती हैं। इस मार्गसे क्षेत्र २० मील पड़ता है। पहले इस गाँवका नाम बाड़ा था जहाँ मूर्ति प्रकट हुई है। जहाँ नवीन विशाल मन्दिर है उसका नाम धर्मपुरा था। आज वह पद्मपुरा कहलाता है।

क्षेत्रका इतिहास

इस क्षेत्रका इतिहास विशेष प्राचीन नहीं है। केवल ३२ वर्षके अल्प समयमें इसका निकास और विकास हुआ है। क्षेत्र प्रकाशमें किस प्रकार आया, इसका एक रोचक इतिहास है। बाड़ा ग्राम एक छोटा-सा ग्राम था जिसमें ४०–५० किसानोंकी झोपड़ियाँ थीं। गाँववालोंको पानीका बड़ा कष्ट था। गाँवके ही जगन्नाथ नामक एक व्यक्तिके अन्दर भैंरोजीकी सवारी आती थी। एक दिन उस व्यक्तिके अन्दर भैंरोजीका अभिनिवेश हुआ। गाँववालोंका जमघट लगा हुआ था। लोग अपने सुख-दुखके बारेमें प्रश्न कर रहे थे और उस व्यक्तिके माध्यमसे भैंरोजी उत्तर दे रहे थे। तभी एक व्यक्तिने पूछा—"महाराज ! कभी हमारे इस बाड़ा ग्रामका भी भाग्य उदय होगा और पानीका संकट दूर होगा ?"

भैंरोजीने उत्तर दिया—"शीघ्र ही यहाँ एक बाबाकी मूर्ति निकलेगी। वह बड़ी चमत्कारी होगी। उसके कारण यह गाँव बदल जायेगा। यह नगर जैसा हो जायेगा और पानीका संकट भी दूर हो जायेगा।"

दिन बीतते गये और यह बात लोग भूल-से गये।

मूला जाट अपने पिताकी मृत्युके बाद अपनी माँके साथ अपने नानाके घर बाड़ामें बचपनमें ही आ गया था। वहीं नानाके घरमें वह बड़ा हुआ। एक दिन मामाने उससे कहा—"मूला ! तुम पासवाले रेवडमें अपने लिए मकान बना लो। माता और पुत्र दोनों मकानके काममें जुट गये। बेटा फावड़ेसे नींव खोदता और माता डलियामें मिट्टी भरकर बाहर डालती। उस दिन वि. सं. २००१ का वैशाख शुक्ला पंचमीका दिन था। वर्षाके आगमनसे पूर्व ही मकान बना लेनेकी जल्दी थी। माँ-बेटे दोनों अपने-अपने काममें जुटे हुए थे। एकाएक मूलाका फावड़ा एक श्वेत पाषाणसे टकराया। टकरानेसे अद्भुत प्रकारकी मधुर ध्वनि हुई। माँ-बेटे दोनोंको ही बड़ा विस्मय हुआ। किशोर मूलाने दौड़कर इस अद्भुत घटनाकी सूचना गाँववालोंको दी। अल्पकालमें ही गाँववाले वहाँ एकत्रित हुए। धीरे-धीरे सावधानीसे चारों ओरसे मिट्टी हटायी गयी और उसमें-से श्वेत पाषाणकी दिव्य मूर्ति प्रकट हुई। मूर्ति पद्मासन थी और पादपीठपर कमलका चिह्न बना हुआ था। मूर्तिको उसी चबूतरेपर विराजमान कर दिया, जिसपर भैंरोंजी और महादेवजीकी मूर्तियाँ विराजमान थीं।

मूर्ति निकलनेका समाचार चारों ओर बिजलीके समान तेजीसे फैल गया। चारों ओरसे स्त्री-पुरुष आने लगे। दिन-प्रतिदिन भक्त जनोंकी भीड़ बढ़ने लगी। एक दिन पड़ोसके ग्राम बल्लूपुरा निवासी श्री फूलचन्द जैन बाड़ा गाँवके पाससे निकले तो गाँवके एक व्यक्तिने उन्हें बताया कि हमारे यहाँ एक बाबाकी मूर्ति निकली है। उसमें बड़ा चमत्कार है। उसके कहनेसे फूलचन्दजी भी उस मूर्तिको देखने आये। मूर्तिको देखते ही वे बोले—"यह तो ,जैनियोंके पद्मप्रभु भगवान्‌की मूर्ति है। इसे जैन मन्दिरमें भेज दो।" गाँववालोंने यह स्वीकार नहीं किया। आखिर पड़ोसी गाँवोंके जैन लोग वहीं आकर सेवा-पूजा करने लगे। प्रति वर्ष गाँवमें कई गाय, भैसें रोगाक्रान्त हो मर जाती थीं, मूर्ति निकलनेके बाद एक भी जानवर नहीं मरा तथा इस वर्ष खेतीकी पैदावार इतनी अच्छी हुई जितनी कभी नहीं हुई। ग्रामवासियोंने इसे मूर्तिका चमत्कार माना और श्रद्धापूर्वक भक्ति करने लगे।

धीरे-धीरे मूर्तिकी ख्याति बढ़ने लगी। भक्त स्त्री-पुरुषोंकी संख्या भी बढ़ने लगी। लोग मनौतियाँ मनाने लगे। उनके कष्ट भी दूर होने लगे। दूर-दूरसे अनेक लोग भूत-व्यन्तरकी बाधा दूर कराने वहाँ पहुँचने लगे। और इस प्रकार इस स्थानने स्वतः ही एक अतिशय क्षेत्रका रूप ले लिया। प्रारम्भमें आसपासके गाँवोंके जैनोंने व्यवस्था की, पर जब यात्रियोंका आवागमन अधिक होने लगा तब इसका काम व्यवस्थित रूपसे चलानेके लिए जयपुरमें एक प्रबन्ध-कारिणी समितिका गठन किया गया। यहाँ आनेवाले यात्रियोंको ठहरानेके लिए एक कच्ची धर्मशालाका निर्माण किया गया, जो बादमें समाजके उदार सहयोगसे पक्की बना दी गयी। तत्पश्चात् पक्का कुआँ बनवाया गया। आज तीन कुओंमें इंजिन लगा हुआ है। और नलोंकी व्यवस्था है। धीरे-धीरे पक्की सड़क, पोस्ट ऑफिस, टेलीफोन और बिजलीकी व्यवस्था करायी गयी।

मन्दिरका निर्माण

प्रबन्ध समितिने निश्चय किया कि भगवान् पद्मप्रभकी इस मूर्तिको उसकी ख्यातिके अनुरूप विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विराजमान किया जाये। इस प्रकार मन्दिर-निर्माण करानेका जिन दिनों निर्णय किया गया, उन्हीं दिनों जयपुर राज्यके तत्कालीन मुख्य मन्त्री मिर्जा इस्माइल खाँ इस मूर्तिकी प्रशंसा सुनकर बाड़ा गाँवमें पधारे। उन्हें जब यह बात बतायी गयी कि कमेटीने यहाँ मन्दिर-निर्माणका निश्चय किया है तो वे बोले कि पद्मप्रभ भगवान्‌का इतना सुन्दर मन्दिर बनवाओ, जो राजस्थानमें ही नहीं, सारे भारतमें अपनी तरहका अकेला मन्दिर हो। उनकी प्रेरणा पाकर मन्दिर-निर्माणके कार्यमें गति आ गयी। जयपुरके वास्तुकला विशेषज्ञ एवं जयपुर राज्यके इमारत विभागके दारोगा (अधिकारी) श्री कस्तूरचन्दजी जैन लुहाडियाकी देखरेखमें उनके सुपुत्र प्रख्यात आर्चिटेक्ट श्री गुलाबचन्दजी लुहाडिया द्वारा मन्दिरका डिजाइन व नक्शा बनवाया, जो गोलाकार बड़ा सुन्दर है। उसका मॉडल बनवाया गया। मन्दिर-निर्माणके लिए जमीनकी आवश्यकता हुई। धर्मपुराके जागीरदार श्री मोहरीलालजी गोधा जैनने ३७ बीघा जमीन मन्दिर एवं यात्रियोंकी आवास व्यवस्थाके लिए भेंट की और शुभ मुहूर्तमें १४ दिसम्बर सन् १९४५ को अजमेर निवासी सरसेठ भागचन्दजी सोनी द्वारा शिलान्यास किया गया।

मन्दिरका नक्शा अत्यन्त सुन्दर था और मॉडल तो इतना कलापूर्ण था कि जो देखता, वही प्रशंसा करता था। वह प्रदर्शनियोंमें भी भेजा गया था और सर्वत्र उसने जनताकी प्रशंसा प्राप्त की। एक बार कमेटीके कुछ सदस्योंने मिर्जा इस्माइल साहबसे भेंट की और उन्हें मॉडल दिखाकर कार्य-प्रगतिका विवरण दिया तथा अपनी आर्थिक कठिनाई उनके समक्ष रखी। तब

मिर्जा साहबने उन्हें प्रोत्साहन देते हुए कहा—"तुम मन्दिर बनवाओ, रुपया माँगकर मैं लाऊँगा।" किन्तु कुछ दिनों बाद मिर्जा साहब हैदराबाद चले गये। आर्थिक प्रश्न बना ही रहा। क्षेत्र प्रबन्ध-समितिके पदाधिकारी एवं सदस्योंके शिष्ट-मण्डलने जयपुर प्रान्तके प्रत्येक ग्राममें घूमकर अर्थसंग्रह किया। आसाम प्रान्तसे भी धन लाये।

मन्दिरका निर्माण-कार्य प्रगति करता गया। जयपुर निवासी श्री मोहरीलाल गोधाने उक्त जमीनके अतिरिक्त और भी काश्तकी भूमि मन्दिरको खातेदारीके रूपमें भेंट दी। मूर्ति निकलनेके १८ वर्ष पश्चात् वि. सं. २०१९ में वैशाख शुक्ला ७ (१० मई १९६२) को विशाल समारोहके साथ वेदी प्रतिष्ठा हुई और भगवान् पद्मप्रभको चबूतरेसे लाकर नवीन मन्दिरमें विराजमान कर दिया गया। अभी तक मन्दिरका एक चरण—निज मन्दिरका कार्य पूरा हुआ है। निज मन्दिरका गुम्बज अत्यन्त कलात्मक और विशाल है। वह धरातलसे ८५ फुट ऊँचा है। निज मन्दिरमें भगवान् पद्मप्रभकी वेदीके अतिरिक्त ९ वेदियाँ और बन चुकी हैं। मन्दिरका निर्माण कार्य चालू है। योजना महत्त्वाकांक्षी है। कार्य विशाल है। उसमें प्रभूत धन और कालकी अपेक्षा है। मन्दिर गोलाकार बन रहा है। जितना बन चुका है, वह भी काफी सुन्दर है, जब योजनानुसार पूरा बन जायेगा तो वास्तवमें यह अपने ढंगका एक ही मन्दिर होगा।

जिस स्थानपर भगवान् भूगर्भसे प्रकट हुए थे, वहाँ संगमरमरकी छतरीका निर्माण करा दिया गया है और उसमें भगवान्के चरण-चिह्न भी विराजमान कर दिये हैं।

क्षेत्र-दर्शन

एक विशाल कटलेमें फाटकमें घुसकर सामने भव्य कलापूर्ण मन्दिरके दर्शन होते हैं। मन्दिर २०० × २०० फुट है तथा कटला १००० × १००० फुट है। मन्दिरका गुम्बज जमीनसे ८५ फुट ऊँचा है। योजनानुसार शिखर जब बनेगा तो वह जमीनसे करीब १२५ फुट ऊँचा होगा। निज मन्दिरके नीचेका भाग अर्थात् प्रथम मंजिलमें ठोस बना हुआ है। दूसरी मंजिलमें मन्दिर है। सोपान मार्गसे मन्दिरमें जाते हैं। गुम्बज स्तम्भोंपर आधारित है। मन्दिरमें गोलाकार हाल या सभामण्डप है। इसमें दस वेदियाँ बनी हुई हैं। पूर्वाभिमुख प्रवेश-द्वारके ठीक सामने पद्मप्रभ भगवान्की मकरानेकी मुख्य वेदी बनी हुई है। एक संगमरमरके बने हुए कमलासनपर २ फुट ४ इंच उत्तुंग श्वेतवर्ण भगवान् पद्मप्रभकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यही वह प्रतिमा है, जो मूलाने अपने मकानकी खुदाई करते समय भूगर्भसे निकाली थी और जिसके चमत्कारोंने असंख्य लोगोंको अपनी ओर आकर्षित किया है। मूलनायकके सामने पीतलकी आदिनाथ प्रतिमा विधिनायकके रूपमें विराजमान है।

यहाँसे दायीं ओर बढ़नेपर वेदी नं. २ में संवत् २४८० की प्रतिष्ठित २ फुट ८ इंच ऊँची भगवान् महावीरकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर चन्द्रप्रभ और दायीं ओर शान्तिनाथ हैं। इनके आगे पाषाणकी २ और धातुकी ५ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

वेदी नं० ३—भगवान् नेमिनाथकी श्वेत पाषाणकी ३ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिष्ठाकाल वीर नि. संवत् २४९५ है। सं. २४९५ में पद्मपुरा क्षेत्रपर विशाल पंच कल्याणक-प्रतिष्ठा हुई थी। इस संवत्की मूर्तियोंकी यहींपर प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।

वेदी नं. ४—४ फुट ४ इंच अवगाहनावाली ऋषभदेवकी श्याम वर्ण और संवत् २४९५ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा है।

वेदी नं. ५—इस वेदीमें हलके गुलाबी वर्णके पद्मप्रभ भगवान् पद्मासन मुद्रामें विराजमान हैं। इनकी अवगाहना ४ फुट ५ इंच है। इनकी प्रतिष्ठा संवत् २४९२ में हुई थी।

वेदी नं. ६—यहाँ ८ फुट ३ इंच अवगाहनाके श्वेत वर्ण बाहुबली स्वामी कायोत्सर्गासनमें ध्यानारूढ़ हैं। उनके मुखपर विरागरंजित मुस्कानसे ऐसा प्रतीत होता है मानो बाहुबली षट्खण्ड पृथ्वीकी विजय करके भी भरतके व्यवहारसे इसके प्रति विरक्त हो उठे हों, साथ ही वे उन व्यक्तियोंके मोह-मायापर भी हँस रहे हों जो जगत्के वैभवको नश्वर जानकर भी उसके लिए ही सम्पूर्ण आयोजन करते रहते हैं। उनके चरणोंके निकटसे निकलकर उनकी टाँगों और भुजाओंको घेरनेवाली माधवी लताएँ उस कामजेता कामदेवकी अविचल ध्यान-निष्ठाको प्रकट कर रही हैं। इस मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा संवत् २४९५ में हुई थी।

वेदी नं. ७—श्वेत वर्ण शान्तिनाथ ४ फुट ३ इंच अवगाहनामें पद्मासन मुद्रामें विराजमान हैं। इनकी प्रतिष्ठा संवत् २४९५ में हुई थी।

वेदी नं. ८—महावीर भगवान्‌की ४ फुट १ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन मूर्ति संवत् २४९५ में प्रतिष्ठित होकर यहाँ विराजमान की गयी।

वेदी नं. ९—श्याम वर्ण, पद्मासन मुद्रा, सप्तफण मण्डित, ३ फुट ३ इंच अवगाहना और संवत् २४९५ में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति इस वेदीमें विराजमान है।

वेदी नं. १०—इस वेदीमें भगवान् महावीरकी ढाई फुट ऊँची श्वेत पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। बायीं ओर आदिनाथ और दायीं ओर चन्द्रप्रभ हैं। आगेकी पंक्तिमें महावीर और उनके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथ और पद्मप्रभ हैं। इसके अतिरिक्त ६ धातु प्रतिमाएँ भी हैं।

बाड़ा ग्राममें जहाँ भगवान् पद्मप्रभ प्रकट हुए थे, संगमरमरकी छत्री बनी हुई है। उसमें भगवान्‌के चरण-चिह्न विराजमान हैं। इनकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला ३ संवत् २००३ को हुई थी। यहाँ नैऋत्य कोणमें एक गुमटीके नीचे अखण्ड दीपक जलता है। इसके निकट ही वह चबूतरा है, जहाँ १८ वर्ष तक भगवान् पद्मप्रभकी मूर्ति विराजमान रही। इस समय यहाँ एक काष्ठासनपर भगवान् पद्मप्रभकी वीर सं. २४७७ में प्रतिष्ठित १ फुट २ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसके आगे टीनका एक मण्डप बना हुआ है।

धर्मशाला

यहाँपर पहले कच्ची धर्मशाला बनायी गयी थी। वह यात्रियोंकी आवश्यकताके अनुरूप नहीं थी। अतः उसके स्थानपर पक्की धर्मशाला बनायी गयी। इसमें कुल ५२ कमरे हैं जिनमें-से ४५ कमरोंमें बिजली, पंखे लगे हुए हैं। मन्दिरके चारों ओर कटला बन रहा है। इसमें महावीरजी क्षेत्रके समान चारों ओर विशाल धर्मशाला रहेगी। इसमें ६० कमरे बन चुके हैं। शेष कमरे भी जल्दी बन जायेंगे। यहाँ यात्रियोंकी सुविधाके लिए आवश्यकतानुसार गद्दे, रजाइयों और बर्तन आदिकी व्यवस्था है। रेलवे स्टेशनपर एक छोटी धर्मशाला और प्याऊ बनी हुई है।

औषधालय तथा अन्य सुविधाएँ

क्षेत्रकी ओरसे यात्रियोंकी सुविधाके लिए एक आयुर्वेदिक औषधालय चलाया जा रहा है। यात्रियोंके अतिरिक्त गाँवोंके हजारों व्यक्ति इस औषधालयसे लाभ उठाते हैं। महावीरके २५००वें निर्वाण वर्षमें औषधालयके लिए विशाल भवनका निर्माण हुआ है। यहाँ जनोपयोगी कार्य भी काफी होते रहते हैं। कई बार निःशुल्क नेत्र चिकित्सा यहाँ आयोजित हुई जिससे सैकड़ों लोगोंको नेत्र-ज्योति प्राप्त हुई है।

जलकी व्यवस्थाके लिए मन्दिरके निकट एक टंकीका निर्माण किया गया है जिससे नल द्वारा जल-वितरण व्यवस्था सुचारु रूपसे चलती रहे। हाल ही में ३ किलो मीटर दूर गोनेर ग्रामसे पाइप लाइन बिछाकर मोठे पेय जलकी व्यवस्था क्षेत्रके प्रयत्नोंसे सरकार द्वारा की गयी है।

मेला

यहाँ वैशाख शुक्ला ५ को एक मेला भरता है, जिस दिन यहाँ मूर्ति निकली थी। क्षेत्रपर दूसरा मेला फागुन कृष्णा ४ को होता है। यह पद्मप्रभ भगवान्का मोक्ष-कल्याणक दिवस है। किन्तु क्षेत्रका मुख्य वार्षिक मेला आसौजमें दशहरेके अवकाशमें होता है। इस अवसरपर यहाँ रथ-यात्रा निकलती है।

क्षेत्रपर एक स्मरणीय मेला ४ से ८ फरवरी सन् १९६९ को हुआ था। इस अवसर पर पंच कल्याणक-प्रतिष्ठा हुई थी जिसमें लगभग एक लाख जन-समुदाय एकत्रित हुआ था।

प्रबन्ध

क्षेत्रका प्रबन्ध चुनी हुई प्रबन्ध समिति द्वारा होता है जिसका विधानानुसार चुनाव होता है। संस्था सरकार द्वारा रजिस्टर्ड है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है :—

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पदमपुरा
पो. बाड़ा-पद्मपुरा, जिला जयपुर (राजस्थान)

अजमेर

इतिहास

इतिहास-ग्रन्थोंसे पता चलता है कि मध्ययुगमें राजस्थानमें चाहमान राजपूतोंने शाकम्भरी (सांभर), रणस्तम्भपुर (रणथम्भौर), नाडौल और जावालीपुरा (जालौर) में अपने राज्य स्थापित करके सत्ताकी राजनीतिमें प्रभावपूर्ण अधिकार जमा लिया था। इनमें शाकम्भरीके चाहमानोंका प्रभाव बारहवीं शताब्दीमें प्रबल वेगसे बढ़ा। इससे पूर्व वे छोटे-मोटे राजाओंमें गिने जाते थे। जब पृथ्वीराज प्रथमके पुत्र अजयराजने शाकम्भरीकी राजसत्ता सम्हाली, तब उसके मनमें सम्राट् बननेकी महत्त्वाकांक्षा जागृत हुई। उस समय उसके चारों ओर प्रबल शक्तिशाली राज्य थे। दिल्लीमें तोमरोंका शासन था। मालवामें परमारोंका आधिपत्य था। गुजरात चौलुक्योंके अधिकार-में था। कन्नौजपर गाहड़वालोंकी ध्वजा लहरा रही थी। मध्यप्रदेशके बहुभागपर कलचुरियोंका अधिकार था। इस परिस्थितिमें भी अजयराजने उज्जैनपर आक्रमण कर दिया और परमार नरेश नरवर्मनके सेनापति सुल्हणको पकड़ लिया। युद्धोंमें उसने चाचिग, सिन्धुल और यशोराज आदि कई राजाओंको मार डाला। इस प्रकार उसने अल्पकालमें ही अपने राज्यकी सीमाएँ चारों ओर बढ़ा लीं। उसे युद्धोंमें जो निरन्तर विजय प्राप्त हुई थी, इस हर्षके उपलक्ष्यमें उसने अजयमेरु नामक एक नगरकी स्थापना की। यह अजयमेरु ही बादमें अजमेर कहा जाने लगा।

इसी वंशमें आगे चलकर पृथ्वीराज तृतीय हुआ। उसके पिता सोमेश्वरकी जब मृत्यु हुई, तब वह छोटा था। उस समय राज्यकी देखभाल उसकी माता कर्पूरदेवी करती थी जो

कलचुरि वंशकी राजकुमारी थी। उस समय उसके राज्यमें ढिल्लिका (दिल्ली), आशिका (हांसी), पल्लिका (पाली), जावालिपुर (जालौर), नाडौल, बिजौली आदि सम्मिलित थे। इस कालमें अजयमेरुकी जनसंख्या बहुत बढ़ गयी थी। सुदूर देशोंके व्यापारी वहाँ आकर बसने लगे थे। नगरका व्यापार और समृद्धि निरन्तर बढ़ती जा रही थी। पृथ्वीराज सन् ११७८ में राजगद्दीपर बैठा। सन् ११९२ में गजनीके बादशाह शहाबुद्दीन गोरीके साथ युद्ध करते हुए पृथ्वीराज बन्दी बना लिया गया। पश्चात् पृथ्वीराजका वध कर दिया गया। मुहम्मद गोरीने कई दिन तक अजमेरको लूटा, वहाँके सभी मन्दिरोंको नष्ट कर दिया और उनके स्थानपर मसजिदें बना लीं। मुहम्मद गोरीने दिल्लीपर भी अधिकार कर लिया और कुतुबुद्दीन ऐबकको वहाँका प्रशासक नियुक्त करके वह गजनी लौट गया।

कुछ समय पश्चात् पृथ्वीराजके भाई हरिराजने अजमेर और रणथम्भौरपर पुनः अधिकार कर लिया, किन्तु कुतुबुद्दीनने समाचार पाते ही विशाल सेनाके साथ अजमेरपर आक्रमण कर दिया। हरिराज उन दिनों सुरा और सुन्दरियोंमें डूबा रहता था। वह प्रतिरोध नहीं कर सका और किलेमें छिप गया। जब शत्रुसेनाका दबाव अधिक बढ़ा तो उसने अपने परिवारके साथ आत्महत्या कर ली। इस प्रकार सन् ११९३ में अजमेरपर कुतुबुद्दीनका पुनः अधिकार हो गया और चाहमानोंके शासनका सदाके लिए अन्त हो गया।

कुतुबुद्दीनने दिल्लीपर अधिकार करके वहाँके २७ मन्दिरोंको (प्रायः जैन मन्दिरोंको) नष्ट करके उनकी सामग्रीसे कुव्वतुल इस्लाम नामक मसजिद बनायी, जो आजकल भग्नदशामें कुतुब-मीनारके बगलमें खड़ी है और जिसमें अब भी जैन मूर्तियाँ और जैन चिह्नोंसे अलंकृत स्तम्भ और छत्रोंके पटल देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार उसने अजमेरमें जैनोंके 'ढाई दिनका झोंपड़ा' नामक विख्यात मन्दिरका विध्वंस करके उसके स्थानपर मसजिदका निर्माण किया। यह सन् १२०० में पूरी हो पायी। कई विद्वान् यद्यपि इस झोंपड़ेको वैष्णव मन्दिर मानते हैं, किन्तु वस्तुतः मूल रूपसे यह जैन मन्दिर था।

इसके कुछ समय बाद अजमेरकी मेहर जातिने चालुक्योंसे मिलकर राजपूतानासे मुस्लिम आक्रान्ताओंको भगानेका संयुक्त प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल रहे और अजमेरके ऊपर एकके पश्चात् दूसरे मुस्लिम आक्रान्ताका अधिकार होता रहा। अजमेरकी भौगोलिक स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्पूर्ण राजपूतानाका राजनीतिक नियन्त्रण यहाँ बैठकर सुविधापूर्वक किया जा सकता है। इसीलिए प्रत्येक मुस्लिम शासकने उसके ऊपर अधिकार जमानेका प्रयत्न किया और उसके विनाशकारी परिणाम इसे भुगतने पड़े। मुसलमान शासकोंके पश्चात् अँगरेजोंने भी इसका राजनीतिक महत्त्व समझा। यहाँ एजेण्ट टू दी गवर्नर जनरल रहते रहे। उनका शीतकालीन कार्यालय भी यहाँ रहा करता था।

भट्टारक पीठ

अजमेरमें भट्टारकोंकी गद्दी थी। यहाँ बलात्कारगणकी उत्तरशाखा और नागौर शाखाके कई भट्टारकोंका पीठ रहा है। ग्रन्थ प्रशस्तियोंमें इनके गणगच्छादिका परिचय इस भाँति दिया गया है—मूलसंघ नन्द्याम्नाय बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ कुन्दकुन्दाचार्यान्वय। बलात्कारगण-की उत्तरशाखाकी पट्टावलियोंमें अजमेर पीठसे सम्बन्धित भट्टारकोंमें वसन्तकीर्तिका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। ये माघ शुक्ला ५ संवत् १२६४ को पट्टारूढ़ हुए। ये बघेरवाल जातिके थे। ये कुल १ वर्ष ४ मास २२ दिन पट्टारूढ़ रहे। षट्प्राभृत ग्रन्थकी टीकाके अनुसार मुनियोंको अवांछनीय

व्यक्तियोंके उपद्रवोंसे बचानेके लिए चर्याके समय वस्त्र धारण करनेका अपवाद मार्ग इन्होंने ही बताया था।

इनके बाद विशालकीर्ति (संवत् १२६६), शुभकीर्ति, धर्मचन्द्र (संवत् १२७१), रत्नकीर्ति (संवत् १२९६) ये सभी अजमेरमें रहे। भट्टारक प्रभाचन्द्र (संवत् १३१०) दिल्लीमें रहे। वे ब्राह्मण जातिके थे और अजमेरके निवासी थे।

बलात्कारगणकी नागौर शाखाके भट्टारक भुवनकीर्ति (संवत् १५८६) छावड़ा गोत्रके थे और अजमेर निवासी थे। भट्टारक धर्मकीर्ति (संवत् १५९०) अजमेरके सेठी वंशके थे। भट्टारक अनन्तकीर्ति (संवत् १७७३) अजमेरके पाटनी गोत्रके थे। भट्टारक विजयकीर्ति संवत् १८०२ में अजमेरमें पट्टारूढ़ हुए।

अजमेर नगरमें भट्टारक नेमिचन्द्रकी शिष्या सबीरा बाईने वसुनन्दि श्रावकाचारकी प्रति करायी थी। उसकी प्रशस्तिमें भट्टारक नेमिचन्द्र तककी भट्टारक परम्परा इस प्रकार दी हुई है—भट्टारक पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्ति। ये सब उत्तरोत्तर पट्टाधिकारी होते रहे। चन्द्रकीर्तिकी आम्नायमें भुवनकीर्ति (संवत् १५४६), धर्मकीर्ति (सं. १५९०), विशालकीर्ति (संवत् १६०१), लिखिमीचन्द्र (संवत् १६११), सहस्रकीर्ति (संवत् १६३१) और नेमिचन्द्र (सं. १६५०) हुए।

भट्टारक नेमिचन्द्रके पश्चात् सूरतसे प्रकाशित गौतमचरित्रकी प्रशस्तिके अनुसार यशःकीर्ति, भानुकीर्ति, श्रीभूषण, धर्मचन्द्र हुए। तत्पश्चात् इस शाखामें देवेन्द्रकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति, विद्यानन्द, महेन्द्रकीर्ति, अनन्तकीर्ति, भवनभूषण और विजयकीर्ति भट्टारक हुए।

अजमेरसे लगभग ५ कि. मी. दूर आंतेड़में इनमें-से कुछ भट्टारकों और उनके शिष्योंकी छतरियां, चबूतरे और चरण बने हुए हैं। इनके ऊपर उत्कीर्ण अभिलेखोंसे इन भट्टारकोंकी स्वर्गारोहण तिथिका परिचय मिलता है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहां कई छतरियों और चबूतरोंपर चरण या लेख नहीं हैं। वे सम्भवतः नष्ट हो गये। जिनके संवत् पढ़े जा सके, उनकी सूची इस प्रकार है—

भ. रत्नकीर्ति (सं. १५७२), भ. अनन्तकीर्ति (सं. १७६०), भ. रत्नकीर्ति (सं. १७६६), भ. विशालकीर्ति (सं. १७८२), भ. देवेन्द्रकीर्ति (सं. १८१०), भ. राजकीर्ति (सं. १८१०), भ. विजयकीर्ति (सं. १८११), भ. सुरेन्द्रभूषण (सं. १८१३), भ. भुवनकीर्ति (सं. १८९२), भ. रत्नभूषण (सं. १९९२), भ. ललितकीर्ति (सं. १९९२)।

प्रमुख मन्दिर

यहांके जैन मन्दिरोंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और दर्शनीय सेठजीकी नशिया है। यह सिद्धकूट चैत्यालय नशिया कहलाती है। यह मन्दिर लाल वर्णका है। इसमें मूलनायक भगवान् आदिनाथ-की प्रतिमा है। इसका निर्माण सन् १८६५ में सेठ मूलचन्द सोनीने कराया था। इसमें ८०×४० फुटके एक कक्षके आधे भागमें तेरह द्वीपकी रचना है जिसमें मुख्यतया ढाई द्वीपका विस्तारसे अंकन किया गया है। आठवें द्वीपमें नदीश्वरकी रचना अंकित है। शेष आधे भागमें भगवान् ऋषभदेवकी जन्मनगरी अयोध्यापुरीकी भव्य रचना है। तेरह द्वीपकी रचनामें केन्द्रमें सुमेरु पर्वत है। उसके चारों ओर जम्बूद्वीप, उसको वेष्टित किये हुए लवणोदधि, उसके चारों ओर धातकी खण्ड, कालोदधि, पुष्करार्ध द्वीप एक दूसरेको घेरे हुए हैं। अयोध्यानगरीकी रचनामें मध्यमें नाभिरायका प्रासाद है एवं अगल-बगलमें पिता व माताके महत्त्व हैं। उसके चारों ओर सामन्तों

और नागरिकोंके भवन बने हुए हैं। अयोध्याके दक्षिण भागमें पुरिमताल (प्रयाग) तथा वटवृक्ष प्रदर्शित हैं, जिसके नीचे भगवान् ऋषभदेव ध्यानमग्न हैं। इसके पूर्व भागमें भगवान्‌के सम्मुख नृत्यमुद्रामें नीलांजना देवी प्रदर्शित हैं। अयोध्याके चारों ओर भगवान्‌के जन्म कल्याणककी शोभा-यात्राका भव्य दृश्य है। इस विशाल कक्षमें पौराणिक चित्रांकन और दीवालों एवं छतोंमें कांचकी पच्चीकारीका काम दर्शकको बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इस भव्य दृश्यको देखनेके लिए प्रतिदिन सैकड़ों दर्शक आते हैं। मन्दिरके स्वर्णमण्डित कलश एवं मन्दिरके सामने बना हुआ उत्तुंग मानस्तम्भ अजमेर नगरके किसी भी ऊँचे भवन या पहाड़ीसे सुगमतासे दिखाई देता है।

छोटा धड़ा नशियामें आदिनाथ भगवान्‌की एक श्यामवर्ण प्रतिमा है। यह पद्मासन मुद्रामें है। इसकी चरण-चौकीपर लेख नहीं है। किन्तु शैलीसे यह ११-१२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है।

बड़ा धड़ा मन्दिरमें ८४ पाषाण प्रतिमाएँ हैं। ये 'ढाई दिनके झोंपड़े'की खुदाईमें प्राप्त हुई थीं। इनमें कई प्रतिमाओंके पादपीठपर संवत् ११५० और १२३० उत्कीर्ण है। इन प्रतिमाओंमें अधिकांश प्रतिमाएँ भी इसी कालकी प्रतीत होती हैं।

श्री महापूत जिनालयमें समवसरणकी रचना दर्शनीय है। रचना इतनी भव्य है कि कई स्थानोंपर समवसरणकी रचनामें इसका अनुकरण किया गया। यह मन्दिर सेठ जुहारमलजी मूलचन्दजीने सन् १८५५ में निर्माण कराया था।

इन सबको मिलाकर नगरमें कुल २१ जिनालय हैं।

दर्शनीय स्थल

अजमेर भारतके दर्शनीय नगरोंमें है। यह एक घाटीमें बसा हुआ है और इसके चारों ओर पहाड़ियाँ हैं। चौहानवंशी अर्णोराज द्वारा सन् ११३५ में बनवाया हुआ ८ मीलकी परिधिवाला आनासागर तथा सन् १८९२ में बना हुआ फाय सागर पर्यटकोंको विशेषतः आकर्षित करते हैं। आनासागरके सौन्दर्यसे प्रभावित होकर मुगल बादशाह जहाँगीरने यहाँ एक शाहीबाग बनवाया और इस झीलके किनारे महल बनवाये। इसके बाद सम्राट् शाहजहाँने यहाँ १२४० फीट लम्बा कटहरा तथा संगमरमरकी पाँच बारहदरियाँ बनवाकर इस स्थानको अत्यधिक सुन्दरता प्रदान की। इस नगरको ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीकी दरगाहने मुसलमानोंका पवित्र तीर्थ बना दिया है। इस नगरके निकट पुष्कर हिन्दुओंका महान् तीर्थ भी है। यहाँका 'अढाई दिनका झोंपड़ा' तो वस्तुतः भारतीय शिल्पकलाका अनुपम उदाहरण माना जाता है जो स्पष्टतः जैनकलासे प्रभावित है।

बघेरा

मार्ग और अवस्थिति

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बघेरा केकड़ी (अजमेर) से १७.३ कि. मी. दूर पूर्वमें है। अजमेरसे यह दक्षिणमें ९७.३ कि. मी. है। यह एक छोटा-सा गाँव है, जिसकी कुल जनसंख्या ४५०० है। इस गाँवमें आनेका साधन कार या बस है, किन्तु वर्षा कालमें यहाँ बसें प्रायः नहीं आतीं। यह ग्राम यद्यपि छोटा-सा है, किन्तु यहाँ कला और पुरातत्त्वकी मूल्यवान्

सामग्री होनेसे यह पुरातत्त्वविदों, इतिहासकारों और अनुसन्धाताओंका एक आकर्षण केन्द्र बन गया है।

पुरातत्त्व

बघेरा ग्रामका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है, यह तो ज्ञात नहीं हो सका। किन्तु पुरातत्त्वकी दृष्टिसे इसका विशेष महत्त्व है। यहाँ समय-समयपर प्राचीन मूर्तियाँ भूगर्भसे निकाली जाती रहती हैं। यहाँ अब तक जितनी भी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, वे प्रायः ११वीं से १३वीं शताब्दी तककी हैं और अधिकांश मूर्तियाँ जैन तीर्थंकरोंकी हैं। ये मूर्तियाँ ८-९ इंचसे लेकर ७-८ फुट तक ऊँची हैं। प्रायः सभी जैन मूर्तियाँ पद्मासन मुद्रामें मिली हैं, किन्तु कुछ मूर्तियाँ कायोत्सर्गासनमें भी हैं। मूर्तियाँ प्रायः पाषाणकी हैं, किन्तु कुछ धातु प्रतिमाएँ भी मिली हैं जो पाषाण मूर्तियोंके समान ही प्राचीन हैं।

यहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं—(१) श्री शान्तिनाथ मन्दिर और (२) श्री आदिनाथ मन्दिर। भूगर्भसे निकाली गयी जैन मूर्तियाँ इन्हीं मन्दिरोंमें विराजमान कर दी गयी हैं। इन दोनों मन्दिरोंमें-से शान्तिनाथ मन्दिर अतिशय क्षेत्र कहलाता है और यहाँ जैन-अजैन लोग मनौती मनाने आते रहते हैं।

शान्तिनाथ मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथकी है जो लगभग ८-९ फुट अवगाहनाकी है। यह मूर्ति भूगर्भसे निकली थी, ऐसा कहा जाता है। इस प्रतिमाके लेखसे प्रतीत होता है कि यह लाट-बागड़ साधु संघमें (साधु दुर्लभसेन कृत) पदसिद्धिके विचारकर्ता श्री पद्मसेन गुरुके द्वारा किसी श्रावकने संवत् १२५४ में प्रतिष्ठित करायी थी।

इस मन्दिरका निर्माण किसने कराया था यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। हाँ, बिजौलियाके शिलालेखसे व्याघ्रेरक (बघेरा) में जैन मन्दिर-निर्माण करनेका जो उल्लेख आया है वह इसी मन्दिरके सम्बन्धमें प्रतीत होता है। बिजौलियाके शिलालेखमें तत्सम्बन्धी उल्लेख इस प्रकार है—

"श्रीमालशैलप्रवरावचूलः प (पू) र्व्वोतर सत्वगुरुः सुवृत्त (त्तः)।
प्राग्वाटवंशोऽस्ति व (ब) भूव तस्मिन्मुक्तोपमो वैश्रवणाभिधानः ॥३१॥
तडागपत्तने येन कारितं जिनमन्दिरं (रम्)।
(तीर्त्वा) भ्रान्त्वा यस (श) स्तत्वमेकत्रस्थिरतां गतां (तम्) ॥३२॥
योऽचीकरच्चन्द्रसु (शु) रि (चि) प्रभाणि व्याघ्रेरकादौ जिनमंदिराणि।
कीर्तिद्रुमारामसमृद्धिहेतोर्विभांति कंदा इव यान्यमंदाः ॥३३॥"

अर्थ—श्रीमाल पर्वतके उन्नत शिखरके समान अक्षय सामर्थ्यवान् और सदाचारपरायण यह प्राग्वाट (पोरवाड़) वंश है। उसमें मोतीके समान वैश्रवण हुआ। वैश्रवणने तडागपत्तनमें जिनमन्दिर बनवाया जो घूम-फिरकर एक स्थानपर स्थित हुए यशके समान लगता था। उसने व्याघ्रेरक (बघेरा) आदि स्थानोंपर चन्द्रमाके समान धवल जिनमन्दिर बनवाये थे। ये मन्दिर कीर्तिरूपी वृक्षोंके उद्यानको बढ़ानेवाले निर्दोष तनोंके समान सुशोभित हैं।

बिजौलिया के इस शिलालेखके अनुसार श्रेष्ठी लोलकने बिजौलियाके पार्श्वनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा संवत् १२२६ में फाल्गुन कृष्णा ३ गुरुवारको करायी थी। इसी शिलालेखकी सूचनानुसार श्रेष्ठी लोलकके पूर्वज वैश्रवणने व्याघ्रेरकमें जिनालय निर्मित कराया था। लोलक श्रेष्ठी उक्त शिलालेखमें दी हुई वंशावलीके अनुसार वैश्रवणसे आठवीं पीढ़ीमें हुआ था। औसतन एक पीढ़ीके

लिए २५ वर्ष भी रखे जायें तो उसके अनुसार लोलक वैश्रवणसे लगभग २०० वर्ष पश्चात् हुआ। इस हिसाबसे बघेराका शान्तिनाथ मन्दिर, यदि वह वस्तुत: वैश्रवणके द्वारा बनवाया हुआ है तो ईसाकी १०वीं शताब्दीमें निर्मित हुआ मानना चाहिए।

एक खेतमें पार्श्वनाथकी मूर्ति प्राप्त हुई थी। यह अत्यन्त मनोज्ञ एवं सौम्य है। इसपर कोई लेख नहीं है, किन्तु रचना शैलीसे यह मध्यकालकी प्रतीत होती है।

यहाँ भूगर्भसे एक बारमें सर्वाधिक मूर्तियाँ २४ एवं २५ जुलाई १९७२ को प्राप्त हुई थीं। इस दिन प्राप्त हुई मूर्तियोंकी कुल संख्या २४ थी। घटना इस प्रकार बतायी जाती है—

बघेरा ग्रामके रैगड़पाड़ा मुहल्लेमें रामदेवजीका एक मन्दिर बना हुआ है। ग्रामवासी इस मन्दिरके सामने पड़े हुए भूभागपर एक धर्मशाला बनाना चाहते थे। २४ जुलाईको धर्मशालाकी नींव खोदी जा रही थी। इस काममें सभी ग्रामवासियोंका सहयोग था। लगभग पाँच फुट गहरी नींव खोदी जा चुकी थी। अपराह्नका समय था। रामनाथ रैगड़ नींवकी खुदाई कर रहा था। खुदाई करते हुए एक काली चमकीली चीज दिखाई दी। उसने खुदाई बन्द कर दी और धीरे-धीरे मिट्टी हटाना आरम्भ किया। कुछ प्रयत्नके बाद वहाँ दो श्याम वर्ण मूर्तियाँ निकलीं। इन दोनों मूर्तियोंको रामदेवजीके मन्दिरके बाहर रख दिया गया। सूर्यास्तका समय था। अतः उस दिन काम बन्द कर दिया गया।

दूसरे दिन २५ जुलाई को नाथू मालीने नींवको खुदाईका कार्य प्रारम्भ किया। पहले दिन जो मूर्तियाँ निकली थीं, उनके कारण उसके मनमें कुछ कौतूहल भी था और आशा भी थी। वह बड़े उत्साहसे खुदाईके काममें जुट पड़ा। उसका उत्साह चरम सीमापर पहुँच गया। तब उसे खोदते हुए श्याम वर्ण मूर्ति दिखाई दी। उसने सावधानीपूर्वक मिट्टी हटानी प्रारम्भ की और एकके बाद एक इस प्रकार २२ मूर्तियाँ निकलीं। सबसे आश्चर्यकी बात यह थी कि ये मूर्तियाँ करीनेसे एकके ऊपर एक रखी हुई थीं तथा बीच-बीचमें मिट्टीकी परत लगी हुई थी। इससे लगता है कि ये मूर्तियाँ जानबूझकर इस प्रकार व्यवस्थित ढंगसे रखी गयी होंगी। सम्भवत: धर्मोन्मत्त मुस्लिम आततायियोंसे सुरक्षित रखनेके लिए मूर्तियाँ मन्दिरमें-से निकालकर यहाँ रखी गयी होंगी। इससे यह आशंका निरस्त हो जाती है कि मन्दिर ध्वस्त होनेपर ये मूर्तियाँ यहाँ दब गयी होंगी।

इन मूर्तियोंमें पाँच श्याम पाषाणकी हैं तथा शेष सभी श्वेत पाषाणकी हैं। ये मूर्तियाँ पद्मासनमें हैं, केवल २-३ मूर्तियाँ कायोत्सर्गासनमें हैं। इनकी अवगाहना ८ इंचसे लेकर ढाई फुट तककी है।

मूर्तियोंके मिलनेका समाचार गाँवके अतिरिक्त आसपासके दूसरे गाँवोंमें भी पहुँच गया। ग्रामवासियोंके झुण्डके झुण्ड उन्हें देखनेके लिए आने लगे। जैन लोग भी आये। उन्होंने देखते ही ये जैन मूर्तियाँ पहचान लीं। किन्तु इनके मिलनेमें बाधा आयी रैगड़ लोगोंकी ओरसे। इन लोगोंका गाँवमें बहुमत है। वे इन मूर्तियोंको जैनोंको सौंप देनेके लिए पहले तो सहमत नहीं हुए किन्तु गाँवके ठाकुर एवं अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके प्रयत्नोंसे अन्ततः वे सहमत हो गये और मूर्तियाँ जैनोंके सुपुर्द कर दीं। जैनोंने बघेरा तथा निकटवर्ती गाँवोंके लोगोंको जाति और सम्प्रदाय-के भेदभावके बिना निमन्त्रण दिया और गाजे-बाजेके साथ इन मूर्तियोंको एक जुलूसके रूपमें श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र तक ले गये। वहाँ शुद्धिविधानपूर्वक मूर्तियोंको वेदीमें विराजमान कर दिया। इस उत्सवमें सभी जाति और सम्प्रदायके लोग सम्मिलित हुए। सब लोग बड़े प्रसन्न थे और इस उत्सवको अपना उत्सव मानकर गौरवका अनुभव कर रहे थे।

ये सभी मूर्तियाँ १२वीं शताब्दीकी है। कला और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे इनका विशेष महत्त्व है।

बघेरा ग्रामके बाहर पार्श्वनाथ टेकरी है, जहाँ शिलाओंमें उत्कीर्ण पार्श्वनाथ मूर्तियाँ हैं। ये प्राय: ५-६ फुट ऊँची हैं। पहाड़ीके ऊपर कई गुफाएँ और निषद्याएँ हैं। इनके सामने एक प्राचीन नन्दीश्वर जिनालय है। कुछ अन्ध श्रद्धालुओंने पहाड़ी और निषद्यामें कई जैन मूर्तियोंको सिन्दूरसे रँगकर विरूप कर दिया है। इससे इन मूर्तियोंकी कलागत विशेषताएँ और पुरातात्त्विक महत्त्व धूमिल पड़ गया है।

गाँवके बाहर अजमेरके भट्टारक श्री रत्नभूषणजीके शिष्य हरसुखजी, तत् शिष्य पं. सर्वसुख-के वि. सं. १९५६ के चरण बने हुए हैं।

उत्खननमें प्राप्त इन प्राचीन मूर्तियोंको देखनेसे ऐसा लगता है कि प्राचीन कालमें बघेरा कोई महत्त्वपूर्ण स्थान था और जैनधर्मका केन्द्र था। यहाँ तालाबके किनारे 'सूर बाराह' की एक मूर्ति खुदाईमें निकली थी। इससे लगता है कि यहाँ प्राचीन कालमें हिन्दू मन्दिर भी थे।

कुछ मूर्तिलेख

प्राय: सभी मूर्तियोंपर अभिलेख उत्कीर्ण हैं। ये अभिलेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हैं। इनसे मूर्तिका प्रतिष्ठाकाल, प्रतिष्ठाकारक आदिके सम्बन्धमें आवश्यक जानकारी मिलती है। यहाँ कुछ मूर्तिलेखोंका भाव दिया जा रहा है—

१—ऋषभनाथकी प्रतिमा। सं. १२१३। माथुर संघमें साधु सेहिल पुत्र राजश्रीके पुत्र शुभचन्द्र, महीचन्द्र और गुणचन्द्रपाल श्री ऋषभनाथको प्रणाम करते हैं।

२—संवत् १२-९ यशोदेव भार्या—सुभद्राके पुत्र श्री ल्हालने कर्मक्षयके लिए प्रतिष्ठा करायी।

३—संवत् ११-५ दिकषु सुत सल्जुने प्रतिष्ठा करायी।

४—शान्तिनाथ प्रतिमा। श्री लाटवागड़ साधु संघमें (साधु दुर्लभसेन कृत) पदसिद्धिके विचारकर्ता श्री पद्मसेन गुरुके द्वारा...श्रावकने संवत् १२५४ में....प्रतिष्ठा करायी।

५—संवत् ११९७ वैशाख वदी १२ को देउ गुर्वाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित

६—संवत् १२-१ ऋषभदेव भगवान्

७—संवत् १२३१ रावण सुत द्रेहडिकी माता पद्मिनीके निमित्त शान्तिनाथकी प्रतिष्ठा कराई...

८—संवत् १२४५ वैशाख सुदी ७, माथुर संघमें आचार्य श्री महसेन शिष्य आचार्य ब्रह्मदेव श्रीऋषभदेवको प्रणाम करता है।

९—संवत् ११८९ नेमिनाथ चैत्र...

१०—संवत् १२१५ वैशाख सुदी ७ माथुर संघके आचार्य महसेन शिष्य आचार्य ब्रह्मदेव श्री ऋषभदेवको प्रणाम करता है।

११—संवत् १२०३ पाणिभ सुत वील्हा वीरनाथको नमस्कार करता है।

१२—पार्श्वनाथ प्रतिमा मनोपभूप प्रतिष्ठा

१३—संवत् १२४५ आषाढ़ सुदी २ शनिवारके दिन साधु रावण सुत भरत वीरनाथको प्रणाम करता है।

१४—संवत् १२३१ चैत्र सुदी १० वील्हा वादिल पुण्यापुण्य श्राविकाने अम्बिकाको प्रतिष्ठा... श्री धर्मघोष सूरि शिष्य पण्डित हरिभद्र गणीने...

१५—संवत् १२५० आषाढ़ वदी १३ सोवनीका पुत्र काहड़ प्रणाम करता है।
१६—सिल्हुकने अम्बिका विराजमान करायी।
१७—धातुकी प्रतिमा है और संवत् ११५९ का लेख है।
१८—संवत् १६३४ भट्टारक सुमतिकीर्तिके उपदेशसे....
क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
बघेरा, पो. केकड़ी (अजमेर)
राजस्थान

नरैना

नरैना (नरायना) कोई तीर्थक्षेत्र नहीं है। न तो यह सिद्धक्षेत्र है और न ही कल्याणक या अतिशय क्षेत्र। किन्तु यहाँपर जो पुरातात्त्विक सामग्री, जिनमें अनेक भव्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, को देखते हुए इसे तीर्थकी संज्ञा दे देना अनुचित नहीं है।

मार्ग और अवस्थिति

नरैना रेलवे स्टेशन पश्चिम रेलवेके फुलेरा रेलवे जंक्शनसे दक्षिणकी ओर ११ किलोमीटरकी दूरीपर है। यह आगरा-अजमेर रोडपर स्थित दुघूसे उत्तरकी ओर १४ किलोमीटर साँभर जानेवाले रोडपर अवस्थित है। प्राचीन समयमें यह प्रसिद्ध नगर रहा है। ११-१२वीं शताब्दीमें यह बहुत समृद्ध अवस्थामें था। व्यापारकी दृष्टिसे भी इस नगरकी ख्याति थी। भारतके कोने-कोनेसे तथा विदेशों तकसे इसका व्यापारिक सम्बन्ध था।

इतिहास

नरैनाको कब और किसने बसाया यह पता नहीं चल सका। ऐतिहासिक तथ्योंके आधारपर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सन् १००९ में महमूद गजनवीने नरैनापर आक्रमण किया था। उस समय नरैनापर साँभरके दुर्लभराजके पुत्र गोविन्दराज द्वितीयका शासन था। महमूदसे वह बड़ा बहादुरीसे लड़ा था, पर हार गया था। सुलतानने यहाँके मन्दिर, मूर्तियोंको तोड़ा और लूटपाट की थी।

चौहानवंशके शासनकालमें (बारहवींसे पन्द्रहवीं शताब्दी तक) जैनधर्मको पल्लवित होनेका यथेष्ट अवसर मिला। अजमेर तथा दिल्लीके चौहान राज्योंमें ही क्या, आगराके समीपवर्ती चन्द्रवाड़के चौहानवंशी राजाओंके राज्य-कालमें भी जैनधर्मकी विशेष प्रभावना हुई। उसी कालमें नरायना भी जैनधर्मका एक बड़ा केन्द्र बन गया था। बारहवीं शताब्दीके लेखक सिद्धसेन सूरिने अपने सकलतीर्थ स्तोत्रमें नरैनाको जैनियोंका प्रसिद्ध तीर्थ बताया है। जैन साधु भी यहाँ बहुलतासे रहा करते थे।

सन् ११७० ईसवी के बिजौलियाके शिलालेखके अनुसार प्राग्वाट (पोरवाल जैन) जातिके लोलकके पुरखे पुन्यराशिने नरैनामें वर्धमान स्वामीका जैन मन्दिर बनवाया था और ईस्वी सन् १०७९ के यहींके एक शिलालेखके अनुसार प्राग्वाट जातिके ही मथन नामक व्यक्तिने मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी थी।

सन् ११७२ में पृथ्वीराज तृतीयने यहाँ अपना एक सैनिक कैम्प डाला था जो राजा कुम्भाके समय (सन् १४३३–६८) तक बना रहा। सन् ११९२ में मोहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज तृतीयको हरानेके पश्चात् नरैनापर दिल्लीके सुलतानोंका कब्जा हो गया। उन्होंने अपनी धर्मान्धतामें अनेक हिन्दू और जैन मन्दिरोंका विनाश किया।

नरैनामें वर्धमान स्वामीका जो कलात्मक मन्दिर सन् ११७० में बना था, लगता है, सन् ११९२ या इसके आस-पासमें ही मुसलमान सुलतानों द्वारा यह धराशायी कर दिया गया था। खुदाईके समय जमीनमें प्राप्त मूर्तियोंकी स्थितिको देखकर कहा जा सकता है कि नरैनाकी जैन समाजने मुसलिम आक्रमणके पहले ही मन्दिरकी मूर्तियोंको उसके समीप ही १०-१२ फुट गड्ढा खोदकर उसमें बड़ी व्यवस्थित और सावधानीके साथ गाड़ दिया था। मूलनायक वर्धमान स्वामीकी प्रतिमा इतनी अधिक भारी थी कि उसे मन्दिरसे नहीं हटाया जा सका। उसके अतिरिक्त और भी दो-चार प्रतिमाएँ उस समय मन्दिरमें ही रह गयीं। मन्दिरके साथ ही इन ऊपर रह गयी मूर्तियोंको भी आक्रमणकारियोंने तोड़-फोड़ डाला।

वि. संवत् १९५४ की माघ सुदी ५ को नरैनाके प्रसिद्ध सेठ शाह अजीतमलजी लुहाडियाको स्वप्नमें कुछ मूर्तियाँ जमीनमें गड़ी हुई होनेका आभास हुआ। तदनुसार उस स्थानपर खुदाई करायी गयी। फलतः बहुत ही मनोज्ञ ११ प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। इनमें एक प्रतिमापर चन्द्रमाका चिह्न है, शेष बिना चिह्न की हैं।

जिस स्थानपर ये मूर्तियाँ निकली हैं उसके बिलकुल समीप ही भैंरुजीका एक मठ भी मौजूद है। अनुमान है कि इस मठके नीचे ही उक्त जैन मन्दिर ध्वस्त होकर दब गया होगा। मठ बिना नींवके ही पक्का बना हुआ है। मठके आसपास खुदाई करानेपर मन्दिरके भग्नावशेष—खण्डित मूर्तियाँ, तोरण, खम्भे आदि प्राप्त हुए थे।

खुदाईसे प्राप्त मूर्तियाँ

खुदाईसे प्राप्त मूर्तियोंमें-से एक मूर्ति चन्द्रप्रभ स्वामीकी है। यह ३ फुट ऊँची, पद्मासन मुद्रामें है। प्राप्त मूर्तियोंमें यह सबसे मनोज्ञ है। अन्य दो मूर्तियाँ सफेद पाषाणकी हैं और चन्द्रप्रभकी मूर्तिको अपेक्षा कुछ छोटी हैं। एक छोटी मूर्ति सरस्वतीकी भी प्राप्त हुई है। इसका वर्ण सफेद है। यह बहुत ही आकर्षक है। इसपर संवत् ११०२ का लेख है। एक चरण-पादुका युगल भी इस खुदाईमें प्राप्त हुआ है जिसपर संवत् १०८३ का लेख है। इनके अतिरिक्त खुदाईमें प्राप्त संगमरमरकी ६ तीर्थंकर प्रतिमाएँ और हैं। इनमें-से दो मूर्तियाँ लगभग ३ फुट अवगाहनाकी हैं। शेष अपेक्षाकृत छोटी हैं। सिंहवाहिनी देवियोंकी भी करीब २ फुट ऊँची मनोहारिणी मूर्तियाँ यहाँसे उपलब्ध हुई हैं।

उक्त मूर्तियोंके निकलनेके लगभग २५-३० वर्ष पश्चात् यहाँ और भी मूर्तियाँ निकलनेकी आशामें उसी स्थानके इर्द-गिर्द फिरसे बहुत सारी जमीनकी खुदाई की गयी। फलतः एक मूर्ति प्राप्त हुई। यह लगभग एक फुट ऊँची श्वेत-वर्ण पद्मासन मुद्रामें है और मनोज्ञ है। दिनांक ३-९-१९७४ को यहाँके एक टीलेसे भी खुदाईमें कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें श्वेत संगमरमरकी दो प्रतिमाएँ तथा एक चरण-पादुका है। प्रतिमाओंकी अवगाहना करीब पौने तीन फुटकी है, ये पद्मासन मुद्रामें हैं। इनका प्रतिष्ठाकाल १४वीं शताब्दी है। ये सभी मूर्तियाँ यहाँके दिगम्बर जैन बड़े मन्दिरमें विराजमान कर दी गयी हैं। पार्श्वनाथकी एक श्वेत संगमरमरकी मूर्ति, जिसकी अवगाहना लगभग ५ फुट है, भी इस बड़े मन्दिरमें विराजमान है। इसपर संवत्

१००९ का आलेख है। यह प्रतिमा खड्गासन है। हमें बताया गया कि यह प्रतिमा भी कहीं अन्यत्र जमीनसे निकालकर यहाँ विराजमान की गयी थी।

अन्य विवरण

सन् १३८८ में फिरोज तुगलकके पश्चात् मुसलमानोंका साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था। जिस समय फिरोज खाँ नागौरका शासक हुआ उस समय नरैना भी नागौरके ही अन्तर्गत था। सन् १४२० में मोकल मेवाड़का महाराणा हुआ। उसने फिरोजखाँ को हराकर समस्त सपादलक्ष (साँभर राज्य) को जीत लिया। अतः नरैना भी उस समय मोकलके अधिकारमें आ गया था। कुछ ही दिन बाद फिरोज खाँके भाई मुजरे खाँने मोकलको हराकर नरैनाको फिर अपने कब्जेमें ले लिया था। सन् १४३७ ईस्वीमें उसने किले तथा तालाबकी मरम्मत करायी और अपने नामपर तालाबका नाम रखा। वर्तमानमें इस तालाबको गौरीशंकर तालाब कहते हैं।

मुजरे खाँने यहाँके मन्दिरोंको तोड़कर तालाबके किनारे एक जामामसजिद और उसके समीप ही एक त्रिपोलियाका निर्माण कराया। इन दोनों इमारतोंमें जो मैटेरियल लगाया गया वह यहाँके कलापूर्ण जैन और हिन्दुओंके ध्वस्त मन्दिरोंका है।

सन् १४३९ के रणकपुरके शिलालेखसे विदित होता है कि बादमें नरैनाको राणा कुम्भाने जीत लिया था। अकबरके राज्यकाल (सन् १५५६-१६०६) में यह नगर अजमेर राज्यके अधीन हो गया था। अकबर स्वयं नरैना आया था।

मुगलोंके समयमें नरैनापर कच्छाओंका राज्य रहा। आमेरके राजा पृथ्वीराजके पुत्र जगमलने तेजसिंह और हमीरदेवको हराकर जोबनेर और नरैना जीत लिया था। फलस्वरूप अकबरने उसे १०००) रुपयेका इनाम दिया था। जगमल राजा मानसिंहके साथ राणा प्रतापके विरोधमें लड़ने गया था। जगमलके दो पुत्र थे—खंगार और रामचन्द्र। खंगारसे खंगारोत वंश प्रचलित हुआ जिसने जोबनेर और नरैनापर राज्य किया। रामचन्द्रने जम्मू राज्यकी स्थापना की। इसीलिए वह कश्मीरके राजाओंका पुरखा कहलाता है। पश्चात् सन् १७२६ में नरैना जयपुर राज्यकी अमलदारीमें आ गया था।

सन् १६९१ में ईडरके भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्तिजी और चाकसूके भट्टारक जगत्कीर्तिजी एक समय साथ-साथ यहाँ आये थे, उस उपलक्ष्यमें नरैना जैन समाजने बहुत बड़ा उत्सव मनाया था। नरैनामें ही नयनरुचिने भक्तामरस्तोत्रवृत्तिकी प्रति तैयार करायी थी।

मौजमाबाद

नरैनाकी तरह मौजमाबाद भी राजस्थानके प्राचीन नगरोंमें-से एक है। नरैनाके पास ही दुधूसे यह दक्षिण-पूर्वमें लगभग ११ किलोमीटर है। विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें इस नगरका वैभव अपनी चरम सीमापर था। मुगल सम्राट् अकबर और जयपुरके शासक दोनों ही इस नगरसे आकृष्ट थे।

साहित्य एवं कलाकी दृष्टिसे भी इस नगरका अपना महत्त्व रहा है। जयपुर और अजमेरके मध्य साहित्य-निर्माण और उसके प्रचारके लिए यह राजस्थानमें उस समय प्रमुख केन्द्र रहा आया। अनेक जैन कवियोंने यहाँ जन्म लिया। विक्रम संवत् १६६० में यहाँ हिन्दीके जैनकवि छीतरमल ठोलिया हुए जिन्होंने होली कथाको चौपाईमें छन्दोबद्ध किया।

यह नगर उस समय आमेरके महाराजा मानसिंह प्रथमके शासनमें था। छीतरमल

ठोलियाके समयसे ही इसी नगरके एक अन्य सज्जन श्री स्वरूपचन्द्रके पुत्र साहू नानूलाल गोधाके आग्रहसे मूलसंघ सरस्वतीगच्छ भट्टारक वादिभूषणके शिष्य आचार्य ज्ञानकीर्तिने संस्कृतमें यशोधर-चरित काव्यकी रचना की थी। श्री नानूलाल गोधा उस समय महाराजा मानसिंहके प्रधान अमात्य थे। विक्रम संवत् १६६४ (सन् १६०७) मिति ज्येष्ठ कृष्णा ३ सोमवारका दिन इस नगरके लिए स्वर्ण दिन था। इस दिन यहाँ दिगम्बर जैन मन्दिरका निर्माण होनेके बाद एक विशाल मेलेका आयोजन किया गया था। उस समय यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठाकारक स्वयं श्री नानूलाल गोधा थे। सारा उत्सव राजकीय स्तरपर आयोजित हुआ। इस अवसरपर भगवान् आदिनाथकी मूर्ति सहित और भी अनेकों जैन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई थी। तबसे मौजमाबादके इस मन्दिरकी सारे राजस्थानमें प्रसिद्धि बढ़ती गयी और दूर-दूरके प्रान्तोंसे दर्शनार्थी यहाँ आने लगे।

दिगम्बर जैन मन्दिरके ऊपर जो तीन शिखर हैं, वे दूरसे ही जनसाधारणको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। मन्दिरके प्रवेश-द्वारका भाग अत्यन्त कलापूर्ण है। इसपर श्वेत तथा लाल पाषाणपर अद्भुत कलाकृतियोंको उकेरा गया है। देवियोंकी साज-सज्जा और नृत्य करते हुए उनकी भाव-भंगिमाएँ दर्शनीय हैं। एक कलाकृतिमें सरस्वती हंसको मोती चुगा रही है।

मन्दिरके प्रवेश-द्वारके आगे एक विशाल चौक है।

इस मन्दिरमें भूमिगत दो बहरे (भोंयरे) भी हैं। इनमें तीर्थंकरोंकी भव्य एवं कलापूर्ण मूर्तियाँ विराजमान हैं। सभी मूर्तियाँ विक्रम संवत् १६६४ में प्रतिष्ठित की गयी थीं। एक बहरेमें भगवान् आदिनाथकी एक विशाल एवं भव्य पद्मासन मूर्ति है।

यहाँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दीकी हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियोंका एक विशाल भण्डार भी है।

केशोरायपाटन

मार्ग और अवस्थिति

श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र केशवरायपाटन बूँदी जिलेमें चम्बल नदीके उत्तरी तटपर अवस्थित है। यह बूँदीसे ४३ कि. मी., कोटासे १४ कि. मी. और केशवरायपाटन स्टेशनसे ३ कि. मी. दूर है। सब स्थानोंसे बसें मिलती हैं। कोटासे आनेपर चम्बलके दक्षिणी तटपर उतरना पड़ता है। वहाँसे नाव द्वारा नदी पार करके पहुँच सकते हैं।

तीर्थकी प्राचीनता

अत्यन्त प्राचीन कालसे इस स्थानकी प्रसिद्धि एक तीर्थक्षेत्रके रूपमें रही है। प्राकृत निर्वाणकाण्डमें इसका उल्लेख अतिशय क्षेत्रके रूपमें किया गया है—

'अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि।'

अर्थात् आशारम्य पट्टन (नगर) में मुनिसुव्रतनाथ भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ।

मुनि उदयकीर्ति विरचित अपभ्रंश निर्वाण-भक्तिमें भी इसी आशयका एक पद्य मिलता है–

'मुणिसुव्वउ जिणु तह आसरम्मि।'

इन उल्लेखोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आशारम्य नगरमें मुनिसुव्रतनाथ भगवान्‌की एक मूर्ति थी, जिसके चमत्कारोंकी ख्याति दूर-दूर तक थी।

यतिवर मदनकीर्तिने शासन-चतुस्त्रिंशिकामें मुनिसुव्रतनाथकी इस मूर्तिकी स्थापनाका एक सांकेतिक इतिहास भी दिया है, जिससे इस मूर्तिके अकल्प्य चमत्कारपर प्रकाश पड़ता है। यतिवरने बताया है कि एक बार नदीसे एक शिला आश्रम (नगर) में लायी गयी। इस शिलाको लेकर ब्राह्मणों और जैनोंमें विवाद हो गया। ब्राह्मण उस शिलापर अपने देवोंकी स्थापना करना चाहते थे और जैन भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी मूर्ति स्थापित करना चाहते थे। तब देवोंने ब्राह्मणोंको ऐसा करनेसे रोका, उन्होंने शिलापर भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी मूर्ति विराजमान की एवं आकाशमें जय-जयकार किया। पश्चात् ब्राह्मणोंने उस मूर्तिको वहाँसे हटाना चाहा, किन्तु वह हट नहीं सकी। यतिवरकी वह कारिका इस प्रकार है—

"पूर्वं याश्रममाजगाम सरितां नाथात्तु दिव्या शिला,
तस्यां देवगणान् द्विजस्य दधतस्तस्थौ जिनेशः स्थिरम्।
कोपात् विप्रजनावरोधनकरैः देवैः प्रपूज्याम्बरे,
दध्रे यो मुनिसुव्रतः स जयतात् दिग्वाससां शासनम्॥"

उपर्युक्त सभी उल्लेखोंके प्रकाशमें एक बात तो स्पष्ट है कि मुनिसुव्रतनाथकी एक अतिशय-सम्पन्न प्रतिमा निर्वाणकाण्ड (प्राकृत) के रचयिताके कालमें विद्यमान थी। विद्वानोंकी धारणा है कि प्राकृत भाषाकी भक्तियोंकी रचना आचार्य कुन्दकुन्दने की है। यदि यह धारणा सत्य है, तब तो इस क्षेत्रकी मान्यता ईसाकी प्रथम शताब्दी तक जा पहुँचती है। कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि प्राकृत निर्वाणकाण्डमें कुछ गाथाएँ बादमें मिलायी गयी हैं, विशेषतः अतिशय क्षेत्रों और कल्याणक क्षेत्रों सम्बन्धी। उन विद्वानोंके मतानुसार यह मिलावट ईसाकी ९-१०वीं शताब्दीमें की गयी। इन विद्वानोंकी इस मान्यताको सही माना जाये तो इस क्षेत्रकी मान्यता ९-१०वीं शताब्दीसे पूर्वमें थी। इसके पश्चात् यतिवर मदनकीर्तिने इस क्षेत्रका उल्लेख किया है। यतिवर तेरहवीं शताब्दीके विद्वान् हैं। यतिवरके पश्चात् उदयकीर्तिने क्षेत्रका उल्लेख किया है। इन तीनों सन्दर्भोंमें दो सन्दर्भों—प्राकृत निर्वाण-भक्ति और अपभ्रंश निर्वाण-भक्तिमें नगरका नाम आशारम्य पट्टन दिया है और शासनचतुस्त्रिंशिकामें केवल आश्रम नाम दिया है। किन्तु तीनों ही सन्दर्भोंमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी वन्दना या प्रशंसा की गयी है। अतः यह सुनिश्चित है कि आशारम्य या आश्रम नामक स्थानमें मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्रका अतिशय जगत्प्रसिद्ध था।

आश्रमपट्टन कहाँ है ?

शोध-खोजके परिणामस्वरूप विद्वान् इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि वर्तमान केशोरायपाटन ही प्राचीन आश्रमपट्टन है। केशोरायपाटन नामक नगर राजस्थानके बूँदी जिलेमें चम्बलके तटपर अवस्थित है। चम्बल नदी ही बूँदी और कोटा जिलोंकी विभाजक रेखा बनाती है। नगरका नाम केशवराय—विष्णुके विग्रहके कारण केशोरायपाटन पड़ा है। केशोरायके मन्दिरका निर्माण सन् १६०१ में हाड़ानरेश महाराव शत्रुसालने कराया था। तबसे नगरका नाम बदलकर केशवराय-पाटन हो गया। इससे पूर्व इसका नाम पट्टन था। उससे भी पूर्व राणा हम्मीरके समय तक इस नगरका नाम आश्रमपत्तन था। प्राचीन साहित्यमें चम्बलके तटपर आश्रमपत्तन नामके एक हिन्दू तीर्थके सम्बन्धमें उल्लेख मिलते हैं। यहाँ मृत्युंजय महादेवका विख्यात देवालय था। यहाँ माघ मासमें शिवरात्रिके दिन मेला लगता था। हम्मीरके समयमें इसे ही जम्बुपथ सार्थवाही कहते थे, अकबरके कालमें यह स्थान जम्बुमार्ग कहलाने लगा और आजकल जम्बु-पथ कहलाता है। अब भी यहाँ दो शिवलिंग विद्यमान हैं। हिन्दू जनता इसे अपना तीर्थक्षेत्र मानती है।

नयचन्द्र सूरिके 'हम्मीर महाकाव्य' में चर्मण्वती नदीके किनारे आश्रमपत्तनके जम्बूपथ सार्थवाही शिवका वर्णन मिलता है। उसका सम्बन्धित अंश इस प्रकार है।

दत्वेति शिक्षां शुभबद्धसख्यां, गेहे च देहे च निरीहचित्तः।
जैत्रप्रभुः स्वात्महितं चिकीर्षन्, श्री आश्रमं पत्तनमन्वचालीत् ॥१०६॥
शिवापि जम्बूपथसार्थवाही, विराजते यत्र शिवः स्वयंभूः।
यो ध्यातमात्रोऽप्युरुभक्तिभाजां, दत्ते न किं भुक्तिमिवाशु मुक्तिम् ॥१०७॥
मज्जच्छचीदृग्युगलीकुवेल-विष्वग्गलत्कज्जलमेचकाम्बु।
चर्मण्वती यत्र सरिद् वहन्ती, पुण्यश्रियो वेणुरिवावभाति ॥१०८॥

इसमें बताया है कि रणथम्भौरके राजा हम्मीरके पिता जैत्रसिंह अपने पुत्रको राज्य सौंपकर आश्रमपत्तनके लिए चल दिये। उनकी इच्छा आत्महित करनेकी थी। वे देह और गेहसे विरक्त हो गये। आश्रमपत्तनमें जम्बूपथ सार्थवाही शिवजी विराजते हैं। भक्ति द्वारा वे भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करते हैं। वहाँ चर्मण्वती नदी बहती है।

इसी प्रकार अकबरकालीन गौड़कवि चन्द्रशेखर विरचित 'सुर्जनचरित' में चर्मण्वती नदीके किनारेपर अवस्थित जम्बूमार्गके मृत्युंजय महादेवका वर्णन है। किन्तु इसमें आश्रमपत्तनका उल्लेख न करके उसके स्थानपर पट्टनका उल्लेख मिलता है और उसे पुटभेदनकी संज्ञा प्रदान की है। पुटभेदनका अर्थ है जल और स्थल मार्गोंसे व्यापार करनेवाला नदी-तटपर अवस्थित नगर। हम्मीर महाकाव्यमें आश्रम-पट्टन नाम दिया गया है। पट्टनका अर्थ है बन्दरगाह, चाहे वह समुद्र-तटपर हो या नदी-तटपर। आश्रम पट्टन भी था और पुटभेदन भी।

सुर्जनचरितसे यह भी ज्ञात होता है कि रणथम्भौर और आश्रमपत्तनके बीचमें पल्ली, तिलद्रोणी नदी, पारियात्र गिरि स्थित बिल्वेश्वर महादेव और षट्पुर आदि स्थान थे। ये स्थान अब भी मौजूद हैं। हाँ, किसी-किसी नाममें साधारण-सा परिवर्तन हो गया है। जैसे, तिलद्रोणी तिलजुंनी कहलाता है। पल्ली बिल्वेश्वर महादेवसे अढ़ाई मील दूर है। इसे पालाई भी कहते हैं। षट्पुर आजकल खड़वड़ कहा जाता है। बिल्वेश्वर महादेवका मन्दिर भी इस पर्वतपर है। शिवरात्रिको यहाँ मेला भी भरता है।

इन साहित्यिक साक्ष्योंके आधारपर विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि केशोराय-पाटन ही वस्तुतः आश्रम (आशारम्य) पत्तन है। प्राकृत निर्वाणकाण्ड, अपभ्रंश निर्वाण-काण्ड और शासन-चतुस्त्रिंशिकामें आश्रमपत्तन या आशारम्यपत्तनके जिन भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी मूर्तिके अतिशयोंका वर्णन किया गया है, वह मूर्ति भी अब तक विद्यमान है। इसी आश्रमपत्तन नगरके मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरके चैत्यालयमें बैठकर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेवने सोम नामक राजश्रेष्ठीके निमित्तसे लघु-द्रव्यसंग्रह और बृहद्-द्रव्यसंग्रहकी रचना की थी। बृहद्-द्रव्यसंग्रहके वृत्तिकार ब्रह्मदेवने अपनी टीकाके उत्थानिका वाक्यमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है। वे उत्थानिका-वाक्य इस प्रकार हैं—

'अथ मालवदेशे धारानामनगाधिपति राजा भोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्तिसंबन्धिनः श्रीपालमहामण्डलेश्वरस्य संबन्धिन्याश्रमनाम-नगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरचैत्यालये...भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद् विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन व्याख्यावृत्तिः प्रारभ्यते।'

इस उत्थानिका-वाक्यसे कई बातोंपर प्रकाश पड़ता है। यथा (१) आश्रमनगरमें मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरका चैत्यालय था। (२) इसी चैत्यालयमें बैठकर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेवने अनेक नियोगाधिकारी राजश्रेष्ठी सोमके निमित्तसे पहले २६ गाथात्मक लघुद्रव्यसंग्रहकी रचना की और पश्चात् विशेष तत्त्वके परिज्ञानके लिए उन्होंने बृहद्-द्रव्यसंग्रहकी रचना की। (३) उस कालमें धारानरेश महाराज भोजके सम्बन्धी श्रीपाल आश्रमनगरके महामण्डलेश्वर पदपर आसीन होकर शासन कर रहे थे।

इतिहास-ग्रन्थोंसे विदित होता है कि चर्मण्वती नदीके दोनों ओरकी भूमि चिरकाल तक परमार साम्राज्यके अन्तर्गत रही है। महाराज भोजके लघुभ्राता उदयादित्यके समयका एक शिलालेख शेरगढ़ (कोटा जिला) में मिला है। इसका प्राचीन नाम कोशवर्धन दुर्ग था। महाराज भोजके दौर्बल्यके दिनोंमें भी उनका शासन चम्बल नदीके दोनों ओर रहा था।

उपर्युक्त प्रमाणोंके आधारपर वर्तमान केशोरायपाटन ही प्राचीन आश्रमपत्तन सिद्ध होता है। उसी नगरका नाम आशारम्यनगर, आश्रमनगर आदि था। प्राचीनकालमें इस नगरका नाम रन्तिदेव-पत्तन था क्योंकि इस नगरको चन्द्रवंशी राजा हस्तिके चचेरे भाई राजा रन्तिदेवने बसाया था। यह महेश्वरका राजा था।

अतिशय

भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमाके चमत्कारोंको लेकर अनेक किंवदन्तियाँ जनतामें प्रचलित हैं। कहा जाता है कि मुहम्मद गोरी राजस्थान-विजयके सिलसिलेमें यहाँपर भी पहुँचा। उसने क्षेत्रपर आक्रमण कर दिया और मुख्य मूर्ति तोड़नेकी आज्ञा दे दी। फलतः सैनिकोंने मुनिसुव्रतनाथकी मूर्तिपर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन प्रयास करनेपर भी मूर्तिका कुछ नहीं बिगड़ा। तब उसे टाँकियोंसे काटनेका प्रयत्न किया गया। जब पैरके अँगूठेको काटा गया तो उसमें-से दूधकी धारा इतने प्रबल वेगसे बह निकली कि आक्रमणकारी वहाँ ठहर नहीं सके और भाग गये। हथौड़ोंकी चोटके निशान मूर्तिपर अब तक बने हुए हैं।

इस मूर्तिका एक और चमत्कार सुननेमें आता है। वहाँके कुछ प्रत्यक्षदर्शी लोगोंका कहना है कि लगभग ६० वर्ष पहले इस नगरमें भयंकर रूपसे प्लेग फैली। इसमें नगरके कुछ लोग भी मर गये। तब भयभीत होकर सब नगरवासी नगर छोड़कर जंगलोंमें भाग गये। कुछ श्रद्धालु जैन लोग भी जब यहाँसे भागे तो वे भागनेसे पूर्व भगवान् मुनिसुव्रतनाथके दर्शनोंके लिए गये और भगवान्के सामने जोत जला गये। ३-४ माह बाद महामारी शान्त हुई। लोग जंगलोंसे अपने घरोंको लौटने लगे। जब जैन लोग लौटे और भगवान्के दर्शनोंके लिए गये तो उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि जोत उस समय तक जल रही थी।

क्षेत्र दर्शन

श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्रका मन्दिर चम्बलके तटपर तटसे ४० फीट ऊँची चोटीपर बना हुआ है। बाढ़ आदिसे सुरक्षाके लिए चम्बल तटपर उत्तर और पश्चिमकी ओर मजबूत दीवार बनी हुई है। किन्तु चम्बलका प्रवाह बहुत तेज है और वर्षाकालमें जब वह उफनकर बहती है तो उसका रूप अत्यन्त रौद्र और भयानक हो उठता है। वह तट-बन्धों और तटवर्ती भवनोंको काटती हुई बहा ले जाती है। चम्बलके क्रोधके इसी उफानमें उत्तरवर्ती सुदृढ़ दीवार भी जीर्णकाय हो गयी है। वह चम्बलसे अधिक दिनों तक जूझ सकेगी, इसमें सन्देह है और

इस रक्षाभित्तिके ढह जानेपर मन्दिर कितने दिनोंतक चम्बलका मुकाबिला कर सकेगा ? अतः जैन समाजको इस सम्भावित परिस्थितिके प्रतिकारका उपाय अभी कर लेना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा।

मन्दिरका मुख्य प्रवेशद्वार उत्तराभिमुखी है। यद्यपि मन्दिर विशाल भूखण्डमें बना हुआ है, किन्तु वह योजनाबद्ध रीतिसे नहीं बनाया गया, अतः उसका बहुत बड़ा भाग, विशेषतः मन्दिरके बाह्य भागका अधिकांश, उपयोगयोग्य नहीं है। सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि मन्दिर जिस ऊँचे टीलेपर बनाया गया था, वह समतल न होकर ऊँचा-नीचा था।

मन्दिरके बाह्य भागमें दो कमरे और दालान हैं। इसमें दो चौक भी हैं। भीतरके चौकमें मन्दिरका प्रवेशद्वार है। मन्दिरके ऊपरी भागमें तथा भूगर्भगृहमें वेदियाँ बनी हुई हैं। ऊपरकी वेदियोंका विवरण इस प्रकार है :

वेदी नं. १—तीर्थंकर नेमिनाथकी श्याम पाषाणकी १ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति विराजमान है। चरण-चौकीपर लेख और लांछन नहीं है। बायीं ओर ८ इंच ऊँची श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। लांछन नहीं है। इसके पीठासनके ऊपर इस प्रकार लेख अंकित है—'संवत् ६६४ ज्येष्ठ वदि ३'। दायीं ओर भगवान् पुष्पदन्तकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिष्ठाकाल संवत् १५४८ है। यह जीवराज पापड़ीवाल द्वारा मुड़ासामें प्रतिष्ठित है। इससे आगे भगवान् महावीरकी संवत् २०३२में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। १० इंचका भूरे वर्णका एक नन्दीश्वर जिनालय है। इसमें चारों दिशाओंमें १३-१३ प्रतिमाएं हैं। यह वेदी तीन दरकी है तथा प्राचीन है।

वेदी नं. २—यह वेदी सहनमें मध्यमें बनी हुई है। वेदी तीन दरकी मार्बलकी है। मूलनायक महावीरकी १ फुट ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन मूर्ति है। बायीं ओर संवत् १५८१ में प्रतिष्ठित और ११ इंच ऊँची श्वेतवर्ण चन्द्रप्रभकी पद्मासन मूर्ति है। दायीं ओर धातुकी दो प्रतिमाएँ हैं।

वेदी नं. ३—वेदी तीन दरकी है। वेदीके आगे चबूतरा है। कत्थई वर्णकी पार्श्वनाथ मूर्ति १ फुट अवगाहनामें पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। मूर्तिके सिरके ऊपर सप्तफण-मण्डप है। बायीं ओर संवत् १८२६ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण नेमिनाथ और दायीं ओर संवत् १५४९ में प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त ५ छोटी-छोटी श्यामवर्ण प्रतिमाएँ हैं। ये प्रतिमाएँ ७-८वीं शताब्दीकी अनुमानित की जाती हैं। एक भूरे वर्णके शिलाफलकमें, जो ७ इंच × ६ इंच आकारका है, एक पद्मासन मूर्ति है। उसके सिरके ऊपर छत्र हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें आकाशचारी देव हैं। मूर्तिके दोनों ओर चमरेन्द्र हैं तथा आसनके सिंहोंके दोनों ओर यक्ष-यक्षी हैं। मूर्तिके ऊपर लेख और लांछन नहीं है। यह मूर्ति लगभग ७-८वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। संवत् १४१९ में प्रतिष्ठित भूरे वर्णकी एक फुट ऊँची एक पद्मासन प्रतिमा भी है।

वेदी नं. ४—एक लघु वेदीमें आदिनाथकी कत्थई वर्णकी एक १० इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा है।

वेदी नं. ५—इस वेदीपर संवत् १७४६ में प्रतिष्ठित और एक फुट ऊँची पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है तथा उसके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त २१ धातु प्रतिमाएँ भी हैं।

भूगर्भकी प्रतिमाओंका विवरण

इन वेदियोंके पास ही नीचे भूगर्भगृहमें जानेका सोपान-मार्ग बना हुआ है। इसके ऊपर एक कलापूर्ण गुम्बजयुक्त छतरी (मण्डप) तनी हुई है। इसमें ८ स्तम्भ लगे हुए हैं। मुसलमानोंके

आक्रमणमें गुम्बजमें नीचेका भाग क्षतिग्रस्त हो गया है किन्तु ऊपरके भागको कोई क्षति नहीं पहुँची। इसे देखनेसे यह मण्डप गुप्त-कालका प्रतीत होता है। पुरातत्त्ववेत्ताओंकी भी इससे सहमति है। कुछ लोग तो इसे कुषाण-काल या उससे भी प्राचीन कालका मानते हैं। कुछ लोग इस भोंयरेको तिलस्मी भोंयरा कहते हैं।

सोपान-मार्गसे उतरनेपर दायीं ओर भित्तिमें २ फुट २ इंचके शिलाफलकमें एक पद्मासन मूर्ति है। सिरके पृष्ठ भागमें भामण्डल है। इसके अलावा कुछ और मूर्तियाँ हैं। १ फुट १० इंचके एक अन्य शिलाफलकमें श्यामवर्णकी एक खड्गासन प्रतिमा बनी हुई है। इसके दोनों पार्श्वोंमें शार्दूल और चमरवाहक हैं।

आगे बढ़नेपर सामने एक भित्ति-वेदीमें २ फुट ६ इंचके शिलाफलकमें लाल वर्णकी पार्श्व-नाथ प्रतिमा है। इसके दोनों ओर श्यामवर्णके फलकमें स्तम्भोंमें एक पद्मासन और एक खड्गासन मूर्ति है।

यहाँसे भोंयरा मुड़ता है। सामने एक शिलाफलकमें ४ फुट ५ इंच ऊँची मुनिसुव्रतनाथकी सलेटी वर्णकी पद्मासन मूर्ति है। सिरके दोनों ओर मालाधारी देव और शार्दूल बने हुए हैं। नीचे चरण-चौकीपर दोनों ओर कच्छप लांछन बने हुए हैं।

यहाँसे भोंयरा पुनः मुड़ता है। द्वारके भीतर प्रवेश करनेपर भोंयरा मण्डपका रूप धारण कर लेता है। यह १६ स्तम्भोंपर आधारित है। बायीं ओर एक चबूतरेनुमा वेदीपर ४ मूर्तियाँ विराजमान हैं। एक श्वेत शिलाफलकमें मूलनायक पद्मप्रभकी खड्गासन मूर्ति है। परिकरमें छत्र, उसके ऊपर हाथ जोड़े हुए देव और देवियाँ, इधर-उधर गज, छत्रके दोनों ओर मालाधारी देव-युगल, उनसे नीचे खड्गासन प्रतिमा, उससे नीचे देवी हाथोंमें मोरछल लिये हुए तथा भगवान्के चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं।

इस वेदीसे २–४ कदम बढ़नेपर सामने मुनिसुव्रतनाथ की ४ फुट ५ इंच ऊँची कृष्ण वर्णकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह एक शिलाफलकमें है। सिरके पीछे भामण्डल बना हुआ है, सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। उससे भी ऊपरी भागमें दुन्दुभि, उसके दोनों ओर माला लिये हुए देव हैं। अधोभागमें भगवान्के सेवक वरुण यक्ष और बहुरूपिणी यक्षिणी हैं। इस मूर्तिके ऊपर ओपदार पालिश है जो इसे मौर्य और कुशाण कालके मध्यवर्ती कालकी सिद्ध करती है। मूर्तिकी नाक, हाथका अँगूठा और पैरका अँगूठा कुछ क्षतिग्रस्त हैं। मूर्तिपर जगह-जगह छोटे गड्ढे पड़े हुए हैं। जब मुस्लिम आततायियोंने मूर्तिको तोड़नेके प्रयत्न किये थे, उस समय उन्होंने हथौड़ोंका प्रयोग किया था। ये गड्ढे आदि उन्हीं चोटोंके निशान हैं। यह मूर्ति अत्यन्त अतिशयसम्पन्न है।

इसके आगे बायीं ओर १ फुट १० इंच ऊँची श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसपर कोई लेख या लांछन नहीं है। दायीं ओर १ फुट ९ इंच अवगाहनाकी आदिनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसपर लेख नहीं है। इनके अतिरिक्त यहाँ तीन मूर्तियाँ और हैं। इनकी अवगाहना क्रमशः २ फुट १० इंच, १ फुट ८ इंच और ३ इंच है। इनका प्रतिष्ठा संवत् क्रमशः १३२१, १३५० और १३२१ है।

भूगर्भगृहसे निकलने पर प्रांगणमें क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

धर्मशाला

यहाँ धर्मशालामें ११ कमरे हैं। नल और बिजलीकी व्यवस्था है। निकट ही चम्बल नदी बहती है।

मेला

यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला पूर्णमासीसे अगहन वदी ५ तक मेला होता है। इसी अवसर पर केशोराय मन्दिरका भी मेला होता है। प्रतिवर्ष वैशाख वदी १० को जैन मेला करनेका प्रयास जारी है। संवत् २०१६ में यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठाका विशाल समारोह हुआ था।

व्यवस्था

नगरमें दिगम्बर जैनोंके केवल ४-५ घर हैं। यहाँकी व्यवस्था दिगम्बर जैन पंचायत-की ओरसे सेठ मोहनलालजी और उनके परिवारवाले करते हैं।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
पो० केशोरायपाटन (बूँदी) राजस्थान

बिजौलिया

मार्ग और अवस्थिति

राजस्थान प्रदेशके भीलवाड़ा जिलेमें उपरमाल परगनेके निकट श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बिजौलिया अवस्थित है। यहाँ पहुँचनेके लिए तीन मार्ग हैं—(१) कोटासे बूँदी होते हुए यह स्थान ८५ कि. मी. तथा बूँदी रोडसे १० कि. मी. है, पक्की सड़क है। मोटर सुगमतासे पहुँच सकती है। यह मार्ग सबसे सुगम है। (२) भीलवाड़ासे माण्डलगढ़ होते हुए यह क्षेत्र लगभग ८५ कि. मी. है। माण्डलगढ़से क्षेत्र ३७ कि. मी. है। (३) नीमच कैण्टसे सिंगौली होकर लगभग १०० कि. मी. है। किन्तु सिंगौलीसे लगभग २२ कि. मी. कच्चा मार्ग है। ऊँट या घोड़े द्वारा यहाँ पहुँच सकते हैं।

बिजौलिया, उदयपुरसे पूर्वमें २२४ कि. मी. और कोटासे पश्चिममें ८५ कि. मी. है और चित्तौड़से उत्तर-पूर्वमें ११२ कि. मी. दूर है। बिजौलिया ग्राम प्राचीन है। ग्रामके चारों ओर चहारदीवारी बनी हुई है। चहारदीवारीसे दक्षिण-पूर्वमें १ मील दूर यह क्षेत्र है।

बिजौलियाका इतिहास

शिलालेखोंमें इस स्थानके कई प्राचीन नाम मिलते हैं, जैसे विन्ध्यवल्ली, विजयवल्ली, अहेचपुर, मोराकुरा, विन्ध्यावली आदि। सम्भवतः विजयवल्लीका अपभ्रंश होकर विजहल्या और उससे फिर बिजौल्या बन गया। किन्तु ये नगर ठीक उसी स्थानपर नहीं थे जहाँ वर्तमान बिजौलिया है। मोराकुरा वर्तमान नगरसे दक्षिण-पूर्वमें पौन मील दूर बसा हुआ था। अहेचपुर कहाँ था, यह निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं होता।

बिजौलिया सुन्दर नगर है। परकोटेके कारण यह एक छोटा-मोटा किला-जैसा प्रतीत होता है। यह विन्ध्याचल पर्वतमालाकी उपरमाल पर्वत शृंखलाकी दक्षिण-पश्चिमी ढलानपर बसा हुआ है।

ज्ञात होता है, इस नगरकी स्थापना हूण जातिके किसी राजाने की थी। स्थानीय अनुश्रुति-के अनुसार इस नगरके संस्थापक राजाका नाम औन या हूण था। इन हूणोंको चौहानों या गहलोतोंने पराजित करके यहाँसे उखाड़ फेंका। इनके बाद यहाँका शासन-सूत्र 'राव' या 'रावल'

नरेशोंके हाथोंमें आ गया। ये उज्जैन या धारके परमारवंशी नरेशोंके वंशधर थे। जब दिल्लीके सुलतान मुहम्मद तुगलकने मालवापर अधिकार कर लिया, उस समय ये परमार इधर-उधर चले गये। उनमें-से कुछ अजमेर और कुछ दक्षिण भारतकी ओर चले गये। बिजौलियाके शासक 'राव' भी परमार थे और ये मूलतः आगरा-बयानाके मध्यमें स्थित जगनेरके रहनेवाले थे। जगनेरके राव अशोक परमार सम्भवतः मुसलमानोंके आक्रमणके फलस्वरूप सन् १६१० के आस-पास उदयपुरमें जब राणा अमरसिंह सीसोदिया शासन कर रहे थे, यहाँ आये। राणा अमरसिंहका विवाह राव अशोक की पुत्रीसे हो गया। राणाने प्रसन्न होकर रावको बिजौलियाका प्रदेश दे दिया। तबसे यहाँपर सन् १९४८ में रियासतोंके एकीकरण तक ये ही परमार राव नरेश शासन करते रहे।

क्षेत्रका इतिहास

यहाँ उपलब्ध शिलालेखोंमें क्षेत्रका जो इतिहास दिया गया है, वह इस प्रकार है—

एक बार श्रेष्ठी लोलार्क कार्यवश विन्ध्यवल्ली (बिजौलिया) आया। एक दिन वह रातमें शय्यापर सो रहा था। उसने सामने एक श्रेष्ठ पुरुषको खड़ा हुआ देखा। लोलार्कने उससे पूछा—तुम कौन हो, यहाँ क्यों आये हो, कहाँसे आये हो? उस पुरुषने उत्तर दिया—"मैं नागेन्द्र हूँ। मैं पाताल लोकसे तुम्हें उपदेश देने आया हूँ कि यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ स्वयं आवेंगे।" प्रातःकाल उठनेपर सेठने उस अद्भुत स्वप्नके बारेमें सोचा और वातादि विकारोंके कारण इस प्रकारके निरर्थक स्वप्न आते हैं, यह विचार करके उसने स्वप्नकी उपेक्षा कर दी।

सेठके तीन पत्नियाँ थीं—ललिता, कमलश्री और लक्ष्मी। दूसरे दिन ललिताको स्वप्नमें उस दिव्य पुरुषने कहा—"भद्रे! सुनो! मैं धरणेन्द्र हूँ। प्रभु पार्श्वनाथ यहाँ आकर दर्शन देंगे।" ललिता बोली—"नागेन्द्र! मेरे पति पार्श्वनाथ स्वामीको निकालेंगे, उनका मन्दिर बनवायेंगे और समारोहके साथ उनकी पूजा रचायेंगे। किन्तु आप मेरे पतिसे यह बात कह दो।" धरणेन्द्र पुनः लोलार्कके पास गये और उससे कहने लगे—"भद्र! प्रभु पार्श्वनाथ यहाँ रेवती तीरपर आ गये हैं। इन्हें तुम निकालो, धर्मका अर्जन करो, जिनालय बनवाओ, जिससे लक्ष्मी, वंश, यश, पुत्र-पौत्र, सन्तान-सुखमें वृद्धि होगी। यहाँके भीम नामक वनमें भगवान्का वास है। तीनों लोकोंके प्राणियोंको ज्ञान देनेवाले पार्श्वनाथ जिनेश्वर अत्र यहाँ वास करेंगे।"

प्रातःकाल उठनेपर लोलार्कने स्वप्नपर पुनः विचार किया। निर्दिष्ट स्थानपर स्वयं ही खोदा, त्यों ही कुण्डसे अकृत्रिम स्वयंभूत भामण्डल युक्त अत्यन्त शोभनीय पार्श्वप्रभुके दर्शन हुए।

लोलार्कके पिता सीयकको जब यह समाचार मिला तो वह भी प्रमुदित मनसे यहाँ आया। उसके आनेपर कुण्डमें-से पद्मावती, क्षेत्रपाल, अम्बिका, ज्वालामालिनी और धरणेन्द्रकी मूर्तियाँ निकलीं।

तब लोलार्कने अपने गुरु श्री जिनचन्द्र सूरिके परामर्शसे यहाँ पार्श्वनाथ स्वामीका विशाल जिनायतन बनवाया और इस तीर्थकी स्थापना की।

शिलालेखके अनुसार लोलार्क श्रेष्ठीने यह मन्दिर सप्त आयतनयुक्त बनवाया। इस मन्दिरकी चौहद्दी इस प्रकार थी—पूर्वमें रेवती नदी और देवपुर, दक्षिणमें मठस्थान, उत्तरमें कुण्ड और दक्षिणोत्तरमें नाना वृक्षोंसे भूषित वाटिका।

इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १२२६ फाल्गुन कृष्णा ३ गुरुवार, हस्त नक्षत्र,

धृति योग तथा तैतिल करणमें हुई। इस मन्दिरके मुख्य शिल्पीका नाम सूत्रधार हरसिंगका पौत्र, पाल्हणका पुत्र आहड़ था।

यह प्रदेश अपनी समृद्धिके कारण आक्रान्ताओंका आकर्षण-केन्द्र रहा है। इसीलिए सुरक्षाकी दृष्टिसे इस नगरके चारों ओर बहुत ऊँचा परकोटा बनाया गया। इसमें दो ही द्वार हैं। इस परकोटेके कारण यह नगर सदियोंसे सुरक्षित रहा है। इस परकोटेमें प्राचीन मन्दिरोंकी सामग्री काममें लायी गयी है। यहाँ यह किंवदन्ती प्रचलित है कि पहले बिजौलियामें १०८ विशाल मन्दिर थे। धर्मान्ध मूर्तिभंजकोंने इन मन्दिरोंको तोड़ दिया। उन टूटे हुए मन्दिरोंके पाषाण आदिसे ही यह परकोटा बनाया गया है। अब भी प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष यहाँ चारों ओर बिखरे पड़े हैं। नगरके बाहर दक्षिण-पूर्वमें लगभग २ फर्लांगपर मन्दाकिनी कुण्डके बायें तट पर, नीची भूमिपर तीन प्राचीन शिव मन्दिर खड़े हैं, जिनके नाम हैं—हजारेश्वर, महाकालेश्वर और उण्डेजलेश्वर। हजारेश्वरमें शिवलिंगके ऊपर सैकड़ों लिंग खुदे हुए हैं। इसलिए इसे सहस्रलिंगका मन्दिर भी कहते हैं। मन्दिरोंकी कला और शिल्प-वैभव दर्शनीय है। ये मन्दिर और शिखर खजुराहोके मन्दिरोंकी कलासे प्रभावित और उसके अनुवर्ती प्रतीत होते हैं। दोनों स्थानोंकी कलामें सादृश्यके साथ अन्तर भी स्पष्ट है। खजुराहोके मन्दिरोंके समान ये मन्दिर भी आमूलचूल खुदे हुए हैं किन्तु खजुराहोके मन्दिरोंमें देव, देवी, मिथुन, मानव आदिकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, किन्तु यहाँके इन मन्दिरोंमें खजुराहोके मन्दिरोंकी तरह मानव-मूर्तियाँ न होकर केवल बेल-बूटे ही बने हुए हैं।

इन मन्दिरोंके निर्माण-कालपर प्रकाश डालनेवाले प्रमाण अथवा कोई शिलालेख उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु इन मन्दिरोंके निकट स्थित मन्दाकिनी कुण्डकी दीवालपर १६ पंक्तियोंका एक शिलालेख उत्कीर्ण है जो ८ फुट लम्बा और ३ फुट चौड़ा है। इसमें विभिन्न प्रसंगोंमें कुछ तिथियोंका उल्लेख आया है। जैसे संवत्–१३३२, १३५२, १३७६, १३८६ (इस संवत्का उल्लेख तीन बार आया है।) यह सम्भावना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है कि कुण्डका निर्माण मन्दिरोंके निर्माणके पश्चात् किया गया हो। दूसरी सम्भावना यह भी है कि ये मन्दिर किन्हीं प्राचीन मन्दिरोंके कलात्मक अवशेषोंसे निर्मित किये गये हों। इस सम्भावनाका कारण यह है कि इन मन्दिरोंके ढांचेमें कुछ चित्रित पाषाण और स्तम्भके भाग लगे हुए हैं, जो ढांचेकी बनावटसे मेल नहीं खाते। प्रसिद्ध विद्वान् श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इन मन्दिरोंको सं. १२२६ से पूर्वका मानते हैं क्योंकि जैन शिलालेखमें महाकाल आदि कई मन्दिरोंका उल्लेख आया है।

नगरके दक्षिण-पूर्वमें दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ क्षेत्र है। यह क्षेत्र सुदृढ़ परकोटेसे घिरा हुआ है। इसके चारों कोनोंपर दुहरी गुम्बददार चार देवरियाँ या छोटे मन्दिर बने हुए हैं तथा मध्यमें एक मन्दिर बना हुआ है। यही पार्श्वनाथ मन्दिर कहलाता है। परकोटेका मुख पश्चिमकी ओर है तथा मन्दिर पूर्वाभिमुख है।

यह मन्दिर पंचायतन है। मन्दिरके चारों कोनोंपर चार देवरियाँ बनी हुई हैं तथा मध्यमें मन्दिर बना हुआ है। गर्भगृह या निजगृह ७ फुट २ इंच लम्बा, ७ फुट १ इंच चौड़ा और ६ फुट ७ इंच ऊँचा है। वेदीपर मध्यमें ६ फुट ४ इंच ऊँची पाषाणकी एक शिखराकृति है। शिखरमें एक द्वाराकृति बनी हुई है। इसके रिक्त स्थानपर मूलनायक प्रतिमा विराजमान रही होगी, किन्तु इस समय यह स्थान रिक्त है। इसकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी रही होगी, ऐसा विश्वास किया जाता है। यह प्रतिमा आजकल यहाँ नहीं है। शिलालेखमें धरणेन्द्र द्वारा स्वप्नमें जिस प्रतिमाका संकेत किया गया है तथा लोलार्क श्रेष्ठीने जिसे निकालकर प्रतिष्ठित किया था,

लगता है, वह प्रतिमा शिखराकृतिकी मूलनायक प्रतिमासे भिन्न थी, क्योंकि शिलालेखमें पार्श्वनाथ प्रतिमाका उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। उसमें शिखराकृतिका कोई उल्लेख नहीं किया। इस प्रकार पार्श्वनाथकी दो प्रतिमाएँ होनी चाहिए, किन्तु उनमें-से वर्तमानमें एक भी प्रतिमा नहीं है। इतना ही नहीं, मूलनायक पार्श्वनाथके अतिरिक्त वेदीपर अन्य प्रतिमाएँ भी रही होंगी जबकि इस समय शिखराकृतिके अतिरिक्त और कोई भी प्राचीन प्रतिमा वहाँ नहीं है। यदि ये खण्डित की गयी होतीं, तो खण्डित प्रतिमाएँ भी मिलनी चाहिए थीं। यह विचारणीय है। दर्शकको यह देखकर भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि वेदीपर कोई मूलनायक प्रतिमा नहीं है। तब इसे पार्श्वनाथ मन्दिर किस आधारपर कहा जाता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन कालमें यहाँ पार्श्वनाथ प्रतिमा थी, इसीलिए इस मन्दिरको पार्श्वनाथ मन्दिर कहा जाता था, इसीलिए अब भी, जबकि पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा नहीं है इस मन्दिरको पार्श्वनाथ मन्दिर कहा जाता है।

शिखरकी द्वाराकृतिपर चौबीस तीर्थंकर मूर्तियाँ तथा मध्यमें पार्श्वनाथ मूर्ति उत्कीर्ण है। मध्य-मूर्तिके ऊपर छत्रत्रयी तथा गजलक्ष्मी है। छत्रोंके ऊपर पद्मावती देवी हाथ जोड़े हुए बैठी हैं। उसके सर्पफणके ऊपर मध्य कोष्ठकमें तथा कोण कोष्ठकोंमें पार्श्वनाथ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। गजलक्ष्मीके दोनों कोनोंपर देवयुगल माला लिये हुए खड़े हैं। कोनेकी पार्श्वनाथ प्रतिमाओंसे नीचे दोनों ओर अलग-अलग कोष्ठकोंमें सात-सात देवी मूर्तियाँ हैं। दोनों ओर इन्द्र खड़े हैं। इन्द्र दायें हाथमें चमर तथा बाँयें हाथमें बिजौरा फल लिये हुए हैं। इनके अतिरिक्त दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। इनके पार्श्वमें बायीं ओर पद्मावती और धरणेन्द्र तथा दायीं ओर अम्बिका और गोमेद यक्ष खड़े हैं। अम्बिकाकी गोदमें एक बालक है तथा दायीं ओर एक बालक आम्रगुच्छक लिये खड़ा है। गोमेद यक्ष हाथ जोड़े खड़ा है। मुख्य शिखरके ऊपर कोनोंपर दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ है।

शिखर-मन्दिरके दोनों ओर २ फुट १ इंच ऊँची कृष्ण वर्ण और संवत् २०३१ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं। गर्भगृहकी दीवारोंपर मुनियों और भट्टारकोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। किन्तु टाइल्स लगाकर उन्हें ढक दिया गया है।

गर्भगृहके प्रवेश द्वारपर बायीं ओर यह लेख उत्कीर्ण है—'साधु महीधर पुत्र मेवारथो प्रणमति नित्यं संवत् १२२६ वैशाख वदी ११।' इसके ऊपर भी एक लेख है जो अस्पष्ट है।

गर्भगृहके सामने फर्शपर एक पाषाणपर 'सोपान' शब्द अंकित है। विश्वास किया जाता है कि इस स्थानपर भूगर्भ गृहके लिए सोपान-पथ बना हुआ है। यह भी सम्भावना व्यक्त की जाती है कि भूगर्भ-गृहमें वेदीकी सभी प्राचीन प्रतिमाएँ सुरक्षित रखी हुई हैं। मुस्लिम कालमें सुरक्षाकी आशंका होनेपर सुरक्षाकी दृष्टिसे ये प्रतिमाएँ भूगर्भमें पहुँचा दी गयी होंगी। सभामण्डपमें एक ओर वे छह देवी-मूर्तियाँ रखी हुई हैं जो रेवती कुण्डसे निकली थीं और जिनका उल्लेख शिलालेखमें किया गया है।

चारों कोनोंकी देवरियाँ खाली हैं। उनमें कोई मूर्ति नहीं है। उत्तर-पश्चिमकी देवरीके निकट मानभद्रकी ५ फुट ८ इंच ऊँची मूर्ति है। ये क्षेत्रके रक्षक क्षेत्रपाल हैं।

मन्दिरके सामने मण्डपमें दो चतुरस्र स्तम्भ हैं। ये दोनों निषधिकाएँ हैं। दायीं ओरका स्तम्भ ७ फुट ६ इंच ऊँचा है। ऊपरके भागमें चारों दिशाओंमें चार तीर्थंकरोंकी खड्गासन मूर्तियाँ विराजमान हैं—चन्द्रप्रभ, नेमिनाथ, वर्द्धमान और पार्श्वनाथ। पार्श्वनाथकी मूर्तिके नीचे दो मुनियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उनके मध्यमें शास्त्रकी चौकी (रिहल) भी बनी हुई है।

इस स्तम्भपर भट्टारक पद्मनन्दिदेव और भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवका नाम अंकित है। दोनोंके मध्यमें दो कमण्डलु बने हुए हैं और इनके नीचे उनके चरण बने हुए हैं। शेष तीनों ओर ३ खड्गासन मुनियोंकी मूर्तियां बनी हुई हैं। उनके चरण भी बने हुए हैं। चरणोंके नीचे संस्कृतमें एक लेख उत्कीर्ण है किन्तु इसका कुछ भाग जमीनके अन्दर दबा हुआ है। यह लेख संवत् १४८३ फाल्गुन शुक्ला ३ गुरुवारका है। इसमें मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण कुन्दकुन्दान्वयके भट्टारक श्री वसन्तकीर्तिदेव, विशालकीर्तिदेव, दमनकीर्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दि और शुभचन्द्रदेवके नाम दिये गये हैं। यह निषधिका आर्यिका आगमश्रीकी स्मृतिमें बनायी गयी है।

दूसरा स्तम्भ जमीनसे ५ फुट ६ इंच ऊँचा है। इसमें पार्श्वनाथ, वर्द्धमान, नेमिनाथ और सम्भवनाथकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन तीर्थंकर मूर्तियोंके नीचे मुनियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। यह निषधिका भट्टारक शुभचन्द्रके शिष्य हेमकीर्तिकी है। इसपर भी लेख अंकित है जो संवत् १४६५ फाल्गुन शुक्ला २ बुधवारका है।

निषधिका मण्डपके समीप नौचौकी मण्डप बना हुआ है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई ३६ × २५ फुट है। इसमें १६ स्तम्भ हैं। इसका निर्माण मन्दिरके बाद हुआ जान पड़ता है। इसके दक्षिण-पूर्वमें एक वापिका और उद्यान है तथा उत्तर दिशामें एक वापिका और रेवती कुण्ड है। इस कुण्डकी लम्बाई-चौड़ाई ६० × ६० फुट तथा गहराई २१ फुट है। यहींसे देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ निकली थीं। इस कुण्डके सम्बन्धमें शिलालेखमें लिखा है कि रेवती कुण्डके जलसे जो स्त्री स्नान करती है, वह पतिके सुख, पुत्र तथा स्थिर लक्ष्मीको प्राप्त करती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र जो भी रेवती कुण्डमें स्नान करता है, वह उत्तम गतिको जाता है। धन-धान्य, भूमि, प्रताप, धैर्य, प्रमुखता, बुद्धि, राजसम्मान तथा विशाल लक्ष्मीको पाता है।

कुण्डके उत्तरकी ओर दीवारके निकट एक महुआ वृक्षके नीचे एक बड़ी शिलापर लेख अंकित है। इसमें ४२ पंक्तियां हैं। यह १९ फुट ३ इंच लम्बा और ५ फुट ४ इंच चौड़ा है। यह लेख चाहमान (चौहान) सोमेश्वरके राज्यकालमें वि. सं. १२२६ में श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा तथा दानादिकी स्मृतिके लिए स्वयं सेठ लोलार्कने उत्कीर्ण कराया था। इसके आगे एक शिलापर १० पंक्तियोंका एक लेख है। यह ३ फुट ८ इंच लम्बा तथा १ फुट ३ इंच चौड़ा है। उपवनके पृष्ठभागमें अचल रेवा नदी है। इस नदीके निकट ही एक अन्य शिलालेख है, जिसमें ३० पंक्तियाँ हैं तथा इसके पृष्ठ भागमें भी २-३ पंक्तियाँ हैं किन्तु वे अस्पष्ट हैं। इस शिलालेखमें 'उन्नत शिखर पुराण' नामक एक दिगम्बर जैन काव्य ग्रन्थ अंकित है। यह अभी तक अप्रकाशित और अपठित है। बिजौलियाके निकट भिन्न-भिन्न आकृतिकी चपटी प्राकृतिक चट्टानें अनेक स्थानोंपर निकली हुई हैं। इन्हीं चट्टानोंमें-से दोपर लेख और पुराण उत्कीर्ण कराये गये हैं। यहाँ नगरमें दो शिखरबद्ध मन्दिर हैं—बड़ा मन्दिर और नया मन्दिर।

अतिशय

एक बार सन् १८५८ में अँगरेज यहाँ आये। मन्दिरके चारों ओर कोट और शिलालेख देखकर उन्होंने समझा कि यहाँ अपार द्रव्य मिलेगा। इसलिए उन्होंने शिलालेखके आसपास बारूदकी सुरंग लगा दी। तभी न जाने कहाँसे मधुमक्खी और भौंरोंके झुण्ड निकल पड़े और लोगोंसे चिपट गये। बेचारे सभी अपने प्राण बचाकर भागे। तभी एक और चमत्कार हुआ। सुरंगसे दूधकी धार निकलने लगी।

इस अतिशयकी यह कथा परम्परासे लोगोंमें प्रचलित है और यह वहाँके लोक-गीतोंमें सुनाई पड़ती है।

संवत् १९५८ में एक और विस्मयकारक चमत्कार हुआ। ऐसा कहा जाता है कि उस समय क्षेत्रमें मूलनायक प्रतिमाको न देखकर लोगोंके मनमें नाना प्रकारकी शंकाएँ थीं। तब एक सम्भावना यह भी प्रकट की गयी कि भूगर्भमें कोई गुप्त भवन हो और प्रतिमा वहाँ विराजमान हो। यह बात यहाँके राजा कृष्णसिंहको ज्ञात हुई। उन्होंने आदेश दिया कि भूमि खुदवाकर उस गुप्त स्थानसे प्रतिमा निकलवाओ। समस्त पंच और अन्य लोग जैन मन्दिरमें पहुँचे। वहाँ मन्दिरमें एक पाषाणपर 'सोपान' शब्द लिखा हुआ देखा। उन्होंने उस पाषाणको उखड़वाया और वहाँकी भूमिको खुदवाने लगे। किन्तु भूमि नहीं खुदी। तभी अकस्मात् एक भयंकर श्वेत नाग दक्षिण द्वारसे आया और जिस स्थानपर मजदूर जमीन खोद रहे थे, वहाँ आकर बैठ गया और फुंकारने लगा। सब लोग भयभीत होकर चले गये।

इस क्षेत्रके चमत्कारोंकी ऐसी अनेक कथाएँ इस प्रदेशमें बहुप्रचलित हैं। अनेक लोग भक्तिभावसे यहाँ मनौती मनाने आते हैं।

शिलालेख

प्रथम शिलालेख

(१) सिद्धम् ॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥ चिद्रूपं सहजोदितं निरवधि ज्ञानैकनिष्ठार्पितं। नित्योन्मीलितमुल्लसत्परकलं स्यात्कारविस्फारितं (तम्) [।] सुव्यक्तं परमाद्भुतं शिवसुखानन्दास्पदं शास्व (श्व) तं। नौमि स्तौमि जपामि यामि शरणं तज्ज्योतिरात्मो [स्थि] तं (तम्) ॥ १ ॥ नास्तं गतः कुग्रहसंग्रहो न। नो तीव्र तेजा······ ···

(२) ⏑ ⏑ — ⏑ — [व] : । — — ⏑ — नैव सुदुष्टदेहोऽपूर्व्वो रवि स्तात्समुदेवृषो वः ॥ २ ॥ [स] भूयाच्छ्रीशांतिः शुभविभवभंगीभवभृतां। विभोर्यस्याभाति स्फुरितनखरोचिः करयुगं (गम्)। विनम्राणामेषामखिलकृतिनां मंगलमयीं। स्थिरीकर्त्तुं लक्ष्मीमुपरचितरज्जु व्रजमिव ॥३॥ नाशा (सा) स्वा (श्वा) सेन येन प्रबलबलभृता पूरितः पांचजन्यः

(३) — — —⏑ — —वरदलमलि [नो पाद] पद्माग्रदेशैः। हस्तांगुष्ठेन शांर्ग (शार्ङ्ग) घ (ध) नुरतुलव (ब) लं कृष्टमारोप्य विष्णो। रंगुल्यां दोलितोयं हल भृदवनितं तस्य नेमेस्तनोमि ॥ ४ ॥ प्रांशुप्रकारकांता त्रिदश परिवृढव्यूह (रु) रुद्धावकाशां। वाचालां केतुकोटि [क्व] णदनणुमणीकिंकिणीभिः समंतात्। यस्य व्याख्यानभूमि महह किमिदमित्याकुलाः कौतुकेन प्रेक्षंते प्राणभाजः

(४) [स भु] [वि] विजयतां तीर्थकृत्पार्श्वं (र्श्व) नाथः ॥ ५ ॥ वर्द्धतां वर्द्धमानस्य वर्द्धमान महोदयः। वर्द्धतां वर्द्धमानस्य वर्द्धमान [मह] ोदयः ॥ ६ ॥ सारदां सारदां स्तौमि सारदानविसारदां (दाम्)। भारतीं भारतीं भक्तभुक्ति मुक्ति विशारदां (दाम्) ॥ ७ ॥ निःप्रत्यूहमुपास्महे जिनपतीनन्यानपि स्वामिनः। श्रीनाभेय पुरस्सरान् पर कृपापीयूषपाथोनिधीन्। ये ज्ज्यो (ज्यो) तिः प'भाग भाज—

(५) न तया मुक्तात्मतामा [श्रि] ताः श्रीमन्मुक्ति नितंवि (बि) नीस्तनतटे हारश्रियं वि (बि) भ्रति ॥८॥ भव्यानां हृदयाभिरामवसतिः सद्धर्म्मं [म] [र्म्मं] स्थितिः कर्म्मोन्मूलनसंगतिः सु (शु) भततिः निर्व्वा (र्व्वा) धवो (बो) धोद्धतिः [।] जीवानामुपकारकारणरतिः

१०

श्रेयः श्रियां संसृतिः देयान्मेभवसंभृतिः शिव [म] ति जैने चतुर्व्विंस (श) तिः ॥ ९ ॥ श्री चाहमानक्षितिराजवंशः पौर्व्वोप्यपूर्वो नि (न) जडावनद्धः । भिन्नो न चां—

(६) [गो] [न च] रंध्रयुक्तो नो निः फलः सारयुतो नतो नो ॥१०॥ लावण्यनिर्म्मल-महोज्व (ज्ज्व) लितांगयष्टिरच्छोच्छलच्छुचि पयः परिधान धा [त्री] [। उत्तुं] ग पर्व्वतपयोधर-भारभुग्ना शाकंभ [रा] जनि जनीव ततोपि विष्णोः ॥ ११ ॥ विप्रः श्रीवत्सगोत्रेभूदहिच्छ [त्र] पुरे पुरा । सामंतोनंतसामन्तः पूर्ण्णतल्ले (ल्लो) नृपस्ततः ॥१२॥ तस्माच्छ्रीजयराज विग्रहनृपौ श्रीचन्द्रगोपेन्द्रकौ तस्मादु [ल्लं] भगूवकौ शशि—

(७) नृपो गूवाक सच्चंदनौ [।] श्री मद्वप्पयराज विंध्यनृपती श्रीसिंहराव्वि (ड्वि) ग्रहौ । श्रीमद्दुर्लभ गुंदुवाक्पतिनृपाः श्रीवीर्यरामोऽनुजः ॥१३॥ [चामुंड] ो ऽवनिपे (पो) ऽति (थ) श्च राणकवरः श्रीसिंघटो दूसलस्तद्भ्राताथ ततोपि वीसलनृपः श्री राजदेवी प्रियः [।] पृथ्वीराजनृपोथ तत्तनुभू (भ) वो रासल्लदेवीविभुस्तत्पुत्रो जयदेव इत्यवनिपः सोमल्लदेवीपतिः ॥ १४ ॥ हत्वा चच्चिगसिंधलाभिधयसो (शो) राजादि वीरत्रयं ।

(८) क्षिप्रं क्रूरकृतांतवक्त्रकुहरे श्रीमार्ग्गदुर्ह्रौ (र्ह्रा) न्वितं (तम्) । श्रीमत्सो (ल्ल) ण दण्डनायकवरः संग्रामरंगांगणे जीवंने (वन्ने) व नियंत्रितः करभके येन ‿ — — [क्षि] सात् ॥ १५ ॥ अर्ण्णोराजोस्य सूनुदधृतहृदय हरिः सत्ववांशि (वाञ्छि) ष्ट सीमो गांभीर्य्यौदार्यव (व) र्यः समभवद [चि] रालब्ध (ल्लब्ध) मध्यो न दीनः । तच्चित्रं जं न (यन्न) जाद्य (ड्य) स्थितिरवृत महापंकहेतुर्न्न मध्या न श्रीमुक्तो न दोषाकररचितरतिर्न्न द्विजह्वाधिसेव्यः ॥ १६ ॥ यद्राज्यं ।

(९) यद्राज्यं कुशवारणं प्रतिकृतं राजांकुशेन स्वयं । येनात्रैव नु चित्रमेतत्पुनर्म्मन्यामहे तं प्रति । तच्चित्रं प्रतिभासते सुकृतिना निर्व्वाणनारायणन्यक्काराचरणेन भंगकरणं श्रीदेवराजं प्रति ॥१७॥ कुवलय विकासकर्ता विग्रहराजोजनि (नी) [स्तु (ति)] नो चित्रं (त्रम्) तत्तनयस्तच्चित्रं य [न्न] जडक्षीण सकलंकः ॥ १८ ॥ भादानत्वं चक्रे भादानपतेः परस्य भादानः [।] यस्य दधत्करवालः करतलाकलितः ।

(१०) करतलाकलितः ॥१९॥ कृतांतपथ सज्जोभूत्सज्जनो सज्जनो भुवः । वैकुतं कुतंपालोगा [धत] वै कुं [त] पालकः ॥२०॥ जावालिपुरं ज्वाला [पु] रं कृता पल्लिकापि पल्लीव । न द्व (ड्वि) लतुल्यं रोषान्नद्दू (ड्डू) लं येन सौ (शौ) र्येण ॥२१॥ प्रतोल्यां च बलभ्यां च येन विश्रामितं यशः । ढिल्लिकाग्रहणश्रंत माशिकालाभ लंभितं (तम्) ॥२२॥ तज्ज्येष्ठ भ्रातृपुत्रोऽभूत्पृथ्वीराजः पृथूपमः । तस्मादर्ज्जितहेमांगो हेमपर्व्वतदानतः ॥२३॥ अतिधर्म्मरतेना—

(११) पि पार्श्वनाथ स्वयंभुवे । दत्तं मोराझरी ग्रामं भुक्तिमुक्तिश्च हेतुना ॥१४॥ स्वर्णादि-दाननिवहैर्दशभिर्म्महद्भिस्तोलानरैर्न्नगरदानचयैश्च विप्राः । येनार्च्चिताश्चतुरभूपतिवस्तुपालमा-क्रम्य चारुमनसिद्धिकरी गृहीतः ॥२५॥ सोमेश्वराल्लब्ध्व (ब्ध) राज्यस्ततः सोमेस्व (श्व) रो नृपः [।] सोमेस्व (श्व) र नतो यस्माज्जनः सोमेस्व (श्व) रो भवत् ॥२६॥ प्रतापलंकेस्व (श्व) र इत्यभिख्यां यः प्रासवान् प्रौढ़ पृथु प्रतापः [।] यस्याभिमुख्ये वरवैरिमुख्याः केचिन्मृता केचिदभिद्रुताश्च ॥२७॥ येन श्री—

(१२) पार्श्वनाथाय रेवातीरे स्वयंभुवे । सा (शा) सने रेवणाग्रामं दत्तं स्वर्ग्गाय कांक्षया ॥२८॥छ॥ अथ कारापक वंशानुक्रमः ॥ तीर्थे श्रीनेमिनाथश्च राज्ये नारायणस्य च । अंभोधिमथ-नाद्देव व (ब) लिभिर्व्वं (र्ब्वं) लशालिभिः ॥२९॥ निर्ग्गतः प्रवरो वंशोर्द्दे (दे) व वृंदैः समाश्रितः । श्रीमालपत्तने स्थाने स्थापितः शतमन्युना ॥३०॥ श्रीमालशैलप्रवरावचूलः प (पू) र्व्वोत्तरसत्वगुरुः

सुवृत (त्तः)। प्राग्वाट वंशोऽस्ति ब(ब)भूव तस्मिन्मुक्तोपमो वैश्रवणाभिधानः ॥३१॥ तडागपत्तने येन कारितं।

(१३) जिनमंदिरं (रम्)। [तीर्त्वा] भ्रांत्वा यस (श) स्तत्वमेकत्र स्थिरतां गतां (तम्) ॥३२॥ योऽच्चीकरच्चंद्रसु (शु) रि (चि) प्रभाणि व्याघ्रेरकादौ जिनमंदिराणि। कीर्तिद्रुमारामसमृद्धि-हेतोर्विभांतिकंदाइव यान्यमंदा: ॥३३॥ कल्लोलमांसलितकीर्ति शुद्धा (धा) समुद्रः। सद्ध (द्बु) द्धिवं (बं) धुरवधूघु (ध) रणे ध [री (रे) शः।] [भू] [त] पोकार करण प्रगुणांतरात्मा श्री चच्चुल-स्वतनयः [⏑ ⏑ —] पदेऽभूत् ॥३४॥ शुभंकरस्तस्य सुतोजनिष्ट शिष्टैर्म्महिष्ठैः परिकीर्त्यकीर्त्तिः॥ (।) श्रीजासटोसूत तदगजन्मा यदंग जन्मा खलु पुण्यरासि (शि) ॥:॥३५॥ मंदिरं वर्द्ध—

(१४) मानस्य श्रीनाराणकसंस्थितं (तम्) भाति यत्कारितंस्वीयपुण्यस्कंधमिवोज्व (ज्ज्व) लं (लम्) ॥३६॥ चत्वारश्चतुराचाराः पुत्राः पात्रं शुभश्रियः। अमुष्यामुष्यधर्म्मणोर्व्व (व) भूबुर्भर्ज्जि (र्य्यं) योर्द्वयोः ॥३७॥ एकस्यां द्वावजायेतां श्रीमदाम्वटपद्मटौ। अपरस्यां [सु] [तौ जातौ] [श्री मल्ल] क्षमटदेसलौ ॥३८॥ पाकाणां नखरे बोरवेश्मकारणपाटवं (वम्)। प्रकटितं स्वीयवित्तेन घा (धा) नु(तु) नेव महीतलं (लम्) ॥३९॥ पुत्रौ पवित्रौ गुणरत्नपात्रौ विशुद्धगात्रौ समसी (शी) ल सत्यौ (त्यौ) [।] व (ब) भूवतुर्ल्लक्ष्मटकस्य जैत्रौ मुनींदुरामेंद्रभिद्धौ (धौ) प्रस (श) स्तौ (स्तौ) ॥४०॥

(१५) षट्वं (ट्खं) डागमबद्ध सौहृदभराःषड्जीवरक्षेश्वराः षट्भे (ड्भे) देंद्रियवस्य (श्य) तापरिकराःषट्कर्म्मक्ल- (क्लृ) प्तादराः [।] षट्षं (ट्खं) डावनिकीर्तिपालनपराः ष (षा) ट् गु (ड् गु) ण्यचिंताकराः षट्टू (ड्‌दू) ष्ट्यंबु (बु) ज भास्करा [:] समभवः षट्‌दे (ड् दे) शलस्यांगजाः ॥४१॥ श्रेष्ठी (ष्ठी) दुद्यकनाथकः प्रथमकः श्री मोसलो वीगडिर्द्वैवस्पर्शं इतोपि सीयक-वरः श्रीराहको नामतः एते तु क्रमतो जिनक्रमयुगांभोजैकभृंगोपमा मान्या राजशतैर्व्वदान्यमतयोः राजंति जंवू बू) त्सवाः ॥४२॥ हर्म्यं श्री वर्द्धमानस्याजयमेरोर्व्विभूषणं (णम्) [।] कारितं यैम्महाभागैर्व्वि—

(१६) मानमिव नाकिनां (नाम्) ॥४३॥ तेषामंतः श्रियः पात्रं [सीय] कः श्रेष्टि (ष्ठि) भूषणं (णम्)। मंडलकर महादुर्गं भूषयामास भूतिना ॥४४॥ यो न्यायांकुरसेचनैकजलदः कीर्त्ति (र्त्ते) न्निधानं परं। सौजन्यांबु (बु) जिनोविकासनरविः पापाद्रि भेदे पविः [।] कारुण्यामृत वारिधे-र्व्विलसने राकाश [सं] (शां) को [प] मो नित्यं साधुजनोपकारकरणव्यापार व (ब) द्धादरः ॥४५॥ येनाकारि जितारिनेमि भवनं देवाद्रिश्रृंगोद्धरं चंचत्कांचनचारुदंडकलसश्रेणीप्रभाभास्वरं (रम्)। खेलत्खेचर सुन्दरीश्रमभरं भंजद्ध्वजोद्धोजनैर्द्धत्तेष्टापदशैलसृं (शृं) गजिनभृत्प्रोद्दामसद्मश्रियं (यम्) ॥४६॥ श्री सीयकस्यभार्ये द्वे।

(१७) सौ नागश्रीमामटाभिधे (धे)। आद्यायास्तुत्र (त्र) यः पुत्रा द्वितीयायाःसुतद्वयं (यम्) ॥४७॥ पंचाचारपरायणात्ममतयः। पंचांग मंत्रोज्व (ज्ज्व) लाः। पंचज्ञानविचारणा सुचतुराः। पंचेंद्रियार्थोज्जयाः। श्रीमत्पंचगुरुप्रणाममनसः पंचाणुशुद्धव्रताः। पंचैते तनयाः गृह [ी तवि] नयाः श्रीसीयकश्रेष्ठिनः ॥४८॥ आद्य [:] श्रीनागदेवोऽभूल्लोलाकश्चोज्व (ज्ज्व) लस्तथा। महीधरो देवधरो द्वावेतान्य मातृजौ ॥४९॥ उज्व (ज्ज्व) लस्यांग जन्मानौ श्रीम [द्दु] र्ल्लभलक्ष्मणौ। अभूतां भुवनोद्भासियसो (शो) दुर्ल्लभ लक्ष्मणौ ॥५०॥ गांभीर्यं जलधेःस्थिरत्व मचलात्तेज—

(१८) स्विता (तां) भास्वतः। सौम्यं चंद्रमसःसु (शु) चित्वममरश्रो (स्रो) तस्विनीतः परं (रम्) [।] एकैकं परिगृह्य विस्व (श्व) विदि [तो] यो वेधसा सादरं मन्ये वी (बी) ज कृते कृतः सुकृतिना सः लोल्लकश्रेष्टि (ष्ठि) नः ॥५१॥ अथागमन्मं [दिरमे] षकीर्त्तेः श्री वि [ध्यव] ल्लीं धनधान्यब (व) ल्लीं (ल्लीम्)। तत्रालु [लोचेद्यभि] [तल्प सुप्तः] कंचिन्नरेसं (शं)

पुरतः स्थितं सः ॥५२॥ उवाच कस्त्वं किमिहाभ्युपेतः कुतः स तं प्राह फणीस्व (श्व) रोहं (हम्)। पातालमूलात्तव देशनाय [श्री] पार्श्वनाथ स्वयमेष्यतीह ॥५३॥ प्रातस्तेन समुत्थाय न कं (किं) चन व्रिवेचितं (तम्) । स्वप्नस्यांतम्मनोभावा यतो वातादि दूषिताः ॥५४॥ लोला—

(१९) क [स्य] प्रियास्तिश्री (स्रो) व (ब) भूवुर्म्मनसः प्रियाः॥ (।) ललिता कमल-श्रीश्च लक्ष्मी ल्लक्ष्मी सनामयः ॥५५॥ ततः स भक्तां ललितां व (ब) भाषे गत्वा प्रियां तस्य निसि (शि) प्रसुप्तां (प्ताम्) [।] शृणुष्वभद्रे धरणोहमेहि श्री [पार्श्वनाथं] [खलु द] र्शयामि ॥५६॥ तया स चोक्तो [म] ⏑ — ⏑ — — — — ⏑ य [त्व (त्वं) न्न (न) हि] सत्यमेतत् । श्री पार्श्वनाथस्य समु द्धृतिं स प्रासादमर्च्चां च करिष्यतीह ॥५७॥ गत्वा पुनर्ल्लोलिक मेवमूचे भो भक्त शक्तानुगतातिरक्त । देवे धने धर्म्मविधौ जिनोष्टौ श्रीरेवतीतीरमिहाप पार्श्वः ॥५८॥ समुद्धरेनं कुर (रु) धर्म्मकार्यं त्वं कारय श्रीजिनचै—

(२०) त्य गेहं । येनाप्स्यसि श्रीकुलकीर्तिपुत्रपौत्रोरुसंतानसुखादिवृद्धि (द्धिम्) ॥५९॥ त [दे] [तद्धी] माख्यं व (ब) न मिह निवासो जिनपतेस्त एते ग्रावाणाः (णः) शठकमठमुक्ता गगनतः। सधा (दा) रा [मः] [शश्वत्स] दुपचयतः कुंडसरित (तो) स्तदत्रैतत् स्थानं ⏑ ⏑ ⏑ [नि] गमं प्राय परमं (मम्) ॥६०॥ अत्रास्त्युत्तम मुत्तमादि (द्रि) सिष (शिख) रं सार्द्धं (धि) ष्ठ मंचोच्छ्रितं। तीर्थं श्रीवरलाइकात्र परमं देवोति मुक्ता भिधः। सत्यश्चात्र घटेस्व (श्व) रः सुरनतो देवः कुमारे स्व (श्व) रः सौभाग्येस्व (श्व) रदक्षिणेस्व (श्व) र सुरो मार्क्कं-डरिच्छे स्व (श्व) रौ ॥६१॥ सत्योंबरेस्व (श्व) रो देवो ब्रह्ममह्मे स्व (श्व) रा वपि । कुटि–

(२१) लेशः कर्क्क रेशो यत्रास्ति कपिलेस्व (श्व) रः ॥६२॥ महानाल महाका [लभ] रथेस्व (श्व) रसंज्ञकाः। श्री त्रिपुष्करतां प्राप्ता [: संति] त्रिभुवनार्च्चिताः ॥६३॥ क (की) र्त्तिनाथं (थ) च (श्च) [के] [दारः]........................मिस्वामिनः [।] संगमीसः (मेशः) पुटीस (श) श्च मुखेस्व (श्व) र [वटे] स्व (श्व) राः । [।६४॥ नित्यप्रमोदितो देवो सिद्धेस्व (श्व) र गया (ये) वु (श्व) राः [।] गंगाभेद श्च] सोमी (मे) शः गङ्ग (ङ्गा) नाथ त्रिपुरांतकाः ॥ ६४ (६५) ॥ संस्नात्री कोटिलिगानां यत्रास्ति कुटिला ना (न) दी। स्वर्ण्णजालेस्व (श्व) रो देवः समं कपिल धारयाः ॥ ६५ (६६) ॥ नाल्प मृत्युर्न्न वा रोगा न दुर्भिक्षमवर्षणं (णम्)। यत्रदेव-प्रभावेन कलि—

(२२) पंक प्रधर्षणं (णम्) ॥६६ (६७) ॥ षण्मासे जायते यत्र शिवलिगं स्वयंभुवं (वम्) । तत्र कोटीस्व (श्व) रे तीर्थे का श्लाघा क्रियते मया ॥ ६७ (६८) ॥ इत्येवं ज ⏑ — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — — — ⏑ —, — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — : कृत्वावतारक्रियां (याम्) । कर्त्ता पार्श्वजिनेस्व (श्व) रोत्र कृपया सोथाद्य वासः पतेः शक्के र्थे (र्व्वे) क्रियिक [:] श्रियस्त्रिभुवनप्राणि प्रबोधं प्रभुः ॥ ६८ (६९) ॥ इत्याकर्ण्य वचो विभाव्य मनसा तस्योरगस्वामिनः स प्रातः प्रतिवु (बु) ध्य पार्स्व (र्श्वं) मभितः क्षोणीं विदार्य क्षणात् तावत्तत्र विभुं ददर्श सहसा निः-प्राकृताकारिणं कुंडाभ्यर्ण्णत एव धाम दधतं स्वायंभुवं श्रीश्रितं (तम्) ॥६९ (७०) ॥

(२३) नाशी (सी) यत्र जिनेन्द्रपादनमनं नो धर्म्मकर्म्मार्ज्जनं [न] [स्नानं] न विलेपनं न च तपो ध्यानं न दानार्च्चनं (नम्) नो वा सन्मुनिदर्शनं [न] [⏑ ⏑ — — —⏑ — — ⏑ —] [यत्रेतन्निखिलं बभूव सदनं] — — ⏑ — — ⏑ — [॥७० (७१)] ॥ तत्कुंड मध्यादथ निर्ज्जगाम श्रीसीयकस्यागमनेन पश्चा। श्री क्षेत्रपालस्तदथांबि (बि) का च [श्री ज्वा] लिनी श्रीधरणोरगेंद्रः ॥ ७१ (७२) ॥ यदावतारमकार्षीदत्र पार्श्वजिनेस्व (श्व) रः [।] तदा नागह्रदे

यक्षगिरिस्तंव: [ब:] प्रपात सः ॥ ७२ (७३) ॥ यक्षोपि दत्तवान् स्वप्नं लक्ष्मण: ब्र (ब्र) ह्मचारिण: । तत्राहमपि यास्यामि यत्र पार्श्वविभुर्म्मम ॥७३ (७४) ॥ रेवतीकुंड—

(२४) नीरेण या नारी स्नानमाचरेत् [।] सा पुत्रं भर्तृ सौभाग्यं [ल] क्ष्मी च] लभते स्थिरं (रम्) ॥७४ (७५) ॥ ब्राह्मण: क्षत्रियो वापि [वै] श्यो वा शूद्र एव वा । रेव] ती स्नान-कर्त्ता-[य:] स प्राप्नोत्युत्तमां गतीं (तिम्) ॥७५ (७६)॥ ध [नं] धा [नं (न्यं) ध [रां धाम धैर्यं धौरेयतां धियं—(यम्) । धराधिपति सन्मानं लक्ष्मीं चाप्नोति पुष्कलां (लाम्) ॥ ७६ (७७) ॥ तीर्थाश्चर्यमिदं जनेन विदितं यद्गीयते सांप्रतं कुसृ (ष्ठ) प्रेतपिशाचकुज्वररुजाहीनांगगंडापहं [हम्] । संन्यासं च चकार निर्गतभयं घूकसृगालीद्वयं काकी नाकमवाप देवकलया किं-किं न संपद्यते ॥७७॥ [७८] श्लाघ्यं जन्म कृतं धनं च सफलं नीता प्रसिद्धि मतिः ।

(२५) सद्धर्म्मोपि च दर्शितस्तनुरुहस्वप्नोप्पित [:] सत्यता (ताम्) । — — —रदृष्टि-दूषितमना: सदृ (दृ) ष्टिमार्गे कृतो जै [ने] — ‿ ‿ — ‿ — [सुकृति] ना श्री लोलक-श्रेष्ठिन: ॥ ७८ (७९ ॥ किं मेरोः शृङ्गमेतत् किमुतहिमगिरेः कूटकोटिप्रकांडं किं वा कैलासकूटं किमथ सुरपते स्वर्व्विमानं विमानं (नम्) [।] इत्थं यत्तर्क्यते स्म प्रतिदिनममरैम (मं) त्र्यराजो-त्करैर्व्वा मन्ये श्री लोलकस्य त्रिभुवन भरणादुच्छ्रितं कीर्तिपुञ्जं (जम् ॥७९ ८०) ॥ पवनधुतपत (ता) कापाणितो भव्य मुख्याम् पटुपटहनिनादादा ह्वयत्येष जैनः । कलिकलुषमथोच्चैर्दू रमुत्सार-येद्वात्रिभुवन वि—

(२६) [भु] [ला] भान्नृत्यतीवालयोयं (यम्) ॥८० (८१)॥ [काश्चि [त्स्था] नक माधरंति दधते काश्चिच्च गीतोत्सवं काश्चिद्वि (द्वि) भ्रति तालवं (कं) स (सु) ललितं कुर्व्वंति नृत्यं च काः । काश्चिद्वाद्यमुपानयंति निभृतं । वीणास्वरं काश्चन यत्रोच्चैर्ध्वज किंकिणीयुवतयः केषां मुदे नाभवन् ॥८१ (८२)॥ यः सद्वृत्तयुतः सुदीप्तिकलितश्त्रासादिदोषोज्झितश्चिताख्यातपदार्थदान-चतुरश्चिंतामणेः सोदरः । सोभूच्छ्रीजिनचन्द्रसूरि सुगुरुस्तत्पादपंकेरुहे यो भृङ्गायत एव लोलक-वरस्तीर्थं चकारैष सः ॥ ८२ (८३) ॥ रेवत्याः सरितस्तटे तरुवरा यत्राह्वयंते भृशं ॥

(२७) शाखावा (बा) हुलतोत्करैर्न्न [रसु] रान्पुं-ं स्कोकिलानां रुतैः । मत्पुष्पोच्चयपत्र-सत्फलचयैरानि [र्म्म] [लै] र्व्वारिभिर्भो भोभ्यर्च्चयता भिषकयत वा श्रीपार्श्वनाथं विभुं (भुम्) ॥८३ (८४) ॥ यावत्पुष्करतीर्थसैकतकुलं यावच्च गंगाजलं यावत्तारक चन्द्रभास्करकर(रा) यावच्च दिक्कुंजराः । यावच्छ्रीजिनचन्द्रशासन मदं यावन्म- [हें] द्रं पदं तावत्तिव्य (ष्ठ) तु द्यः प्रशस्ति सस्ति सहितं जैनं स्थिरं मन्दिरं (रम्) ॥८४(८५)॥ पूर्व्वतो रेवतीसिंधुद्देवस्यापि पुरं तथा । दक्षिणस्यां मठस्थानमुदीच्यां कुण्डमुत्तमं [मम्] ॥ ८५ (८६) ॥ दक्षिणोत्तरतो वाटी नाना वृक्षैर-लंकृता । कारितं ।

(२८) लोलिकेनैतत् सप्तायतन संयुतं (तम्) ॥ ८६ (८७) ॥ श्री मन्मां (न्मा) [थु] रसि (सं) घेभूद्गुणभद्रेण महामुनि [:] कृता प्रस (श) स्तिरेषाश्च (च) कवि [कं] ठ [वि] भूषणा (णम्) ॥८७(८८॥ नैगमान्वय कायस्थ छीतगस्य च सूनुना । लिखिता केस (श) वेनेदं (यं) मुक्ता-फलमिव (वो) ज्ज्र (ज्ज्व) ला ॥८८(८९)॥ हरसिग सूत्रधाराय तत्पुत्रो पाल्हणो भुवि । तदंगजेमाहू-डेनापि निर्म्मापित जिनमंदिरं (रम्) ॥ ८९ (९०) ॥ नानिग: (ग) पुत्र गोविंद पाल्लणसुतदेल्हणौ । उत्कीर्ण्णाप्रस (श) स्तिरेषा च कीर्तिस्तंभं (भः) प्रतिष्ठितं ( ) ॥ ९० (९१) ॥ प्रसिद्धि मगमद्देवः काले विक्रमभास्वतः । षड्विं (ड्विं) स (श) द्वादशशते फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥९१ (९२) ॥

(२९) [तृ] तीयायां तिथौ वारे गुरु (रौ) स्ता (ता) रे च हस्तके । धृतिनामनि योगे च करणे तैतिले तथा ॥ ९ [२] (९३) ॥ [सं] वत् १२२६ फाल्गुन वदि ३ [।] कांवारेवणाग्राम-

योरतंराले गुहिल पुं (पु) त्र रा० दाधरमहं घणसी (सि) हाभ्यां दत्त (त्ता) क्षेत्र डोहली १ [। खर्दुवराग्राम वास्तव्य-गौड सोनिगवासुदेवाभ्यांदत्त (त्ता) डोहलिका १ [।] आंतरी प्रतिगणके रायताग्रामीय महं (ह) त्तमलींब्रडिपोपलिभ्यां दत्त (त्ता) क्षेत्र डोहलिका १ [।] बडौवा ग्रामवास्तव्य पारिग्रही आल्हणेन दत्त (त्ता) क्षेत्र डोहलिका [।] लघुवीझोलीग्रामसंगुहिलपुत्र रा० व्याहरूमहं (ह) त्तममाहवा—

(३०) [भ्यां द] त्त (त्ता) क्षे [त्र] डोहलिका १ [।] व (ब) हुभिर्व्वसुद्धा (धा) भुक्ता राजभिर्भरतादय (दिभिः) । यस्य यस्य [य] दा भूमी तस्य तस्य तदा फलं (लम्) ॥छ॥[1]

दूसरा शिलालेख

दायीं ओरके मानस्तम्भपर उत्कीर्ण द्वितीय शिलालेख इस भाँति है—

श्री गुरुभ्यो नमः। श्रीमत्परमगंभीरं स्याद्वादमोघलांछनं। जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनं ॥१॥ श्रीबलात्कारगणे । सरस्वतीगच्छे श्री महि (मूल) संघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीवसंतकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीविशालकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीदमनकीर्ति देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीधर्मचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीरत्नकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवाः कस्य तीर्थंकरस्येव महिमाभुवनातिगः। रत्नकीर्तियतिस्तुत्यः स न केषाम्······॥१॥ अहंकार स्फारो भवदमित वे······विबुधोलसत्त्वलांतश्रेणी क्षपण निधनोक्ति द्युतिचुरः। अधीती जैनेन्द्रे जनि रजनिनाथ प्रतिनिधिः प्रभाचन्द्रः सांद्रोदयशमिततायव्यतिकराः ॥२॥ श्रीमत्प्रभाचन्द्र मुनीन्द्र पट्टे लब्ध प्रतिष्ठा प्रतिभागरिष्ठः विशुद्धसिद्धांतरहस्यरत्न रत्नाकरो नंदतु पद्मनंदि ॥३॥ पद्मनंदि मुने पट्टे शुभचन्द्रो यतीश्वरः। तर्कादिक विद्यासु [पदं] धारोस्ति साम्प्रतं ॥४॥ पट्टे श्री यति पद्मनंदि विदुषश्च चारित्रचूडामणिः सप्रास्या···कैरव कुलं तुष्टि परां नीतिवान् । वाणी लब्ध···वः प्रसादमहिमा श्रीमच्छुभे दुर्गुणी मिथ्याध्वांत विनाशनैक सुकरः सः···च चिन्तामणिः ॥···॥ आर्या वाई लोकसिरी, विनयसिरि तस्याः शिक्षणो वाई चारित्रसिरि । वाई चारित्रकी शिक्षणी वाई आगमसिरि वाईश्चरि·········तस्या इयं निषेधिका आचन्द्र तारकाक्षयं ॥ संवत् १४८३ वर्षे फाल्गुन सुदि ३ गुरौ। निषेधिका जैन आर्या वाई आगम श्री शुभमस्तु ।

तीसरा शिलालेख

बायीं ओरके मानस्तम्भपर उत्कीर्ण शिलालेख इस भाँति है—

ॐ अर्हद्भ्यो नमः। स्वायंभुवं चिदानन्दं स्वभावे शाश्वतोदयम् । धामध्वस्ततमस्तोम ममेयं महिम स्तुमः ॥१॥ ध्रौव्योपेतमपि व्ययोदययुतं स्वात्म क्रम······लोक व्यापि परं यदेकमपि चानेकं च सूक्ष्मं महत् । श्री चन्दामृतपूर पूर्णमपि यच्छून्यं स्वसंवेदनम् । ज्ञानादगम्यमगम्यमप्यभिमत प्राप्त्यै स्तुवे ब्रह्मतात् ॥२॥ त्वमर्क सोमोवृत [भूत] लेस्मिन् घनान मूर्तिः किमु विश्वरूपः। स्रष्टा विशिष्टार्थं विभेद दक्षः स पार्श्वनाथस्तनुतां श्रियं वः ॥३॥ श्रीपार्श्वनाथ क्रियतां श्रियं वो जगत्त्रयी नन्दितपादपद्मः । विलोकिता येन पदार्थ सार्थः निजेन सज्ञानविलोचनेन ॥४॥ सद्वृत्ताः खलु यत्र लोकमहिता मुक्ता भवन्ति श्रियोः रत्नानामपि भद्रये सुकृतिनो यं सर्वदोपासते । सद्धर्मामृतपूर पुष्टसुमनस्याद्वादचन्द्रोदयाः कांक्षी सोन्नसनातनो विजयते श्रीमूलसंघोदधिः ॥५॥ श्रीगौतमस्यादि

[1] १. एपिग्राफिका इंडिका भाग २६, पृ० १०२ ।

गणीश वंशे श्री कुन्दकुन्दो हि मुनिर्बभूव। पदेष्वेनकेषु गतेषु तस्माच्छ्री धर्मचन्द्रो गणिषु प्रसिद्धः ॥६॥ भवोद्भवपरिश्रम प्रशमकेलि कौतूहली। सुधारस समः सदा जयति यद्वचः प्रक्रमः स मे मुनिमतल्लिका············

विकच मल्लिकाजित्वर, प्रसृत्वर यशोभरो भवतु रत्नकीर्तिर्मुदे ॥७॥ प्रसर्प्यद्वैद्यन्ति प्रशमनपटुः सौगतशिरः करोटीकुट्टाककषितखरचार्वानिकरः। अहंकारः स्मेरः स्मरदमन दीक्षापरिकरः। प्रभाचन्द्रो जीयाज्जिनपतिमताम्भोनिधिविधुः ॥८॥ श्रीपद्मनन्दिविद्वन् विख्याता त्रिभुवनेऽपि कीर्तिस्ते। हारति हीरति हसति हरोत्तंस मनुहरति ॥९॥ एके तर्कवितर्ककर्कशधियः केचित्परं सादसा अन्ये लक्षण लक्षणा परम्·········धौरेय सारः परे। सर्वग्रन्थरहस्यधौतधिषणो विज्ञानवाचस्पतिः, क्षोणीमण्डल मण्डनं भवति ही श्रीपद्मन्दिर्गुरुः ॥१०॥ श्री मत्प्रभेन्दुपट्टेस्मिन्पद्मनन्दो यतीश्वरः। तत्पट्टाम्बुधि सेवीव शुभचन्द्रो विराजते ॥११॥ गम्भीरध्वनि सुन्दरे समकरे चारित्र्यलक्ष्म्याकरे कारुण्यामृत दैवते गुणगणश्रेणी मणि दुस्तरे। स·········तमुल्लसत्·········मविला कुले सागरे; पट्टे श्रीमुनि पद्मनंदि······प्रभेन्दुर्गणी। ॥१२॥ महाव्रतैः योऽत्र विभूषितोऽपि संसक्तचेताः समितौ गरिष्ठः। तथा हि कीर्त्या समलिंगकश्च श्रीहेमकीर्तिरभवद्यतीन्द्रः ॥१३॥ शिष्योऽयं शुभचन्द्रस्य हेमकीर्तिर्महान्सुधीः येन वाक्यामृते नापि पोषिता भव्यपादपाः ॥१४॥ नि·········धिकेय ········· सकला ···········विशुद्धा श्री हेमकीर्तियतिनः सुसिद्धः आस्तां च तावज्जगतो तलेऽस्मिन् यावत् ··· स्थिरौ···चन्द्रदिवाकरौ च ॥१५॥

सं० १४६५ वर्षे फाल्गुन सुदि २ बुधौ

शिलालेखों का अध्ययन

ये शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये लेख प्रतिष्ठापकोंने स्वयं उत्कीर्ण कराये हैं, इसलिए प्रामाणिकताकी दृष्टिसे भी इनका बहुत महत्त्व है। इन शिलालेखोंसे तीन बातोंपर प्रकाश पड़ता है। (१) क्षेत्रकी प्रतिष्ठा चौहान (चाहमान) वंशी सोमेश्वरके राज्यकालमें हुई थी, अतः चौहान नरेशोंकी वंशावली दी गयी है। (२) क्षेत्रकी स्थापना, प्रतिष्ठाकारक, प्रतिष्ठाचार्य, प्रशस्ति अथवा शिलालेखके रचयिता, मुख्य शिल्पी तथा जिनकी निषधिका है, उनका परिचय आदि प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री दी गयी है। (३) प्रतिष्ठाचार्य भट्टारकोंकी परम्परा दी गयी है।

चौहान वंशावली—इस शिलालेखमें चौहान वंशावली इस प्रकार दी गयी है—

१. चाहमान
२. विष्णु (वासुदेव)
३. सामन्तदेव—अहिच्छत्रपुरमें श्रीवत्सगोत्रमें उत्पन्न
४. पूर्णतल्ल
५. जयराज
६. विग्रहराज
७. चन्द्र
८. गोपेन्द्रक
९. दुर्लभ
१०. गूवक
११. शशिराज (चन्द्रराज)

१२. गूवाक
१३. चन्दन
१४. वप्पयराज
१५. विन्ध्यराज
१६. सिंहराज
१७. विग्रहराज
१८. दुर्लभ (द्वितीय)
१९. गुण्डु (गोविन्दराज)
२०. वाक्पति
२१. वीर्यराय (वाक्पतिके अनुज)
२२. चामुण्डराय
२३. सिंघट
२४. दूसल
२५. बीसलराज (पत्नी राजदेवी)
२६. पृथ्वीराज (इनकी पत्नीका नाम रासल्लदेवी था)
२७. जयदेव (बीसलराजके पुत्र) (इनकी रानीका नाम सोमल्लदेवी था)
२८. अर्णोराज
२९. विग्रहराज
३०. पृथ्वीराज (द्वितीय) (विग्रहराजके बड़े भाईके पुत्र)
३१. सोमेश्वर

शिलालेखमें दी हुई इस वंशावलीकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है, क्योंकि इसमें दिये हुए नाम शेखावाटीके हर्षनाथके मन्दिरमें लगी हुई विक्रम सं. १०३० की चौहान राजा सिंहराजके पुत्र विग्रहराजके समयकी प्रशस्ति, किनसरिया (जोधपुर जिलेमें) से मिले हुए सांभरके चौहान राजा दुर्लभराजके समयके विक्रम सं. १०५६ के शिलालेख तथा 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्यमें मिलनेवाले नामोंसे ठीक मिल जाते हैं।

इस शिलालेखसे इन राजाओंके सम्बन्धमें कुछ और भी नये तथ्य प्रकाशमें आये हैं। स्वयंभूत पार्श्वनाथ मन्दिरको भुक्ति और मुक्तिके लिए पृथ्वीराज (द्वितीय) ने मोराझरी नामक गाँव दानमें दिया था।

इसके अतिरिक्त इस शिलालेखसे इन राजाओंकी कुछ महत्त्वपूर्ण सैनिक विजयोंपर भी प्रकाश पड़ता है। जैसे—

— महाराज जयदेवने श्रीमार्ग, दुर्द, चंचिग, सिंघल और यशोराज जैसे वीरोंको स्वर्ग पहुँचाया। संग्राम क्षेत्रमें सोल्लण नामक प्रधान दण्डनायक आँख दिखाने मात्रसे ऊँटपर बैठा हुआ निश्चेष्ट हो गया।

—जयदेवके पुत्र अर्णोराज अत्यन्त वीर, गम्भीर, धीर, उदार और ओजस्वी थे। इन्होंने कुश, (कन्नौज), बारण (बुलन्दशहर) के राजाओं और निर्वाण नारायण (नरवर्मन) जैसे बलवान राजाओं तक का तिरस्कार किया था।

—अर्णोराजका पुत्र विग्रहराज अत्यन्त दयालु था, किन्तु युद्धक्षेत्रमें हाथमें तलवार पकड़ने पर यह अत्यन्त क्रूर हो जाता था और शत्रुओंके लिए कालरूप बन जाता था। इसने सज्जन

नामक नरेश, कुन्त (जालौर) नरेशको बुरी तरह परास्त किया था। कुन्तकी राजधानी जाबालिपुरमें आग लगाकर उसे नष्ट कर दिया। पाली और नट्टल नामक नगरोंका विनाश किया। आशिका (हांसी) की विजय करके ढिल्ली (दिल्ली) पर अधिकार कर लिया।

—विग्रहराजके बड़े भाईका पुत्र पृथ्वीराज (द्वितीय) था। उसने स्वर्ण आदि दस प्रकार-की बहुमूल्य वस्तुओंके तुलादानसे ब्राह्मणोंका सत्कार किया था। इसने वस्तुपाल नरेशपर आक्रमण करके 'मनसिद्धि' नामक प्रसिद्ध हाथी छीन लिया था।

—पृथ्वीराजका पुत्र सोमेश्वर प्रबल प्रतापके कारण 'प्रताप लंकेश्वर' नामसे विख्यात हुआ था। इसके सामने पड़नेपर शत्रुओंकी दो ही गति होती थी—या तो वे युद्ध-भूमिसे भाग जाते थे। यदि वे वहाँ ठहरते थे तो मारे जाते थे।

मूर्ति-निर्माणका इतिहास और प्रतिष्ठाकारककी वंशावली

इस शिलालेखसे स्वयंभूत पार्श्वनाथ भगवान्‌की मूर्तिके प्रतिष्ठाकारक प्राग्वाट वंशी लोलार्क श्रेष्ठीके पूर्वजोंके धार्मिक कार्य, मूर्ति निर्माता, शिल्पकार, शिलालेख रचयिता, शिलालेखको उत्कीर्ण करनेवाले शिल्पी आदिके सम्बन्धमें विस्तृत परिचय प्राप्त होता है।

इसके अनुसार लोलार्क श्रेष्ठीके पूर्वज वैश्रवणने तडागपत्तनमें जिनमन्दिर बनवाया। व्याघ्रेरक (बघेरा) में भी इनका बनवाया हुआ जिन-मन्दिर है। इनके विष्णु और चंचुल नामक दो पुत्र हुए। चंचुलसे शुभंकर, शुभंकरसे जासुट, जासुटसे पुण्यराशि हुए। इनका बनवाया हुआ नारायण क्षेत्रका वर्द्धमान जिन-मन्दिर इनकी पुण्यराशिको बढ़ानेमें सहायक हुआ। इनकी दो पत्नियोंसे चार पुत्र हुए—आम्बट, पद्मट, लक्ष्मट और देसल। इन्होंने पाकोंके नरवरमें भगवान् महावीरका जिनालय बनवाया। लक्ष्मटके दो पुत्र हुए—मुनीन्दु और रामेन्दु। देसलके छह पुत्र हुए—दुद्वनाथ, मोसल, विशदि, देवस्पर्श, सीयक और राहक। इन भाइयोंने अजयमेरु (अजमेर) में वर्द्धमान मन्दिरका निर्माण कराया। इनमेंसे सीयकने माण्डलगढ़ दुर्गकी साज-सज्जा करायी तथा स्वर्णदण्ड और स्वर्णकलशोंसे सुशोभित श्रीनेमिनाथ मन्दिर बनवाया।

सीयकके दो पत्नियाँ थीं—नागश्री और मामटा। पहलीसे तीन और दूसरीसे दो पुत्र हुए—नागदेव, लोलार्क, उज्जल, महीधर और देवधर। इनमेंसे लोलकने स्वयंभूत पार्श्वनाथ मन्दिरका निर्माण कराया। इसके अतिरिक्त इस श्रेष्ठीने यहाँ सात और मन्दिर बनवाये थे। इनके टूट जानेपर पाँच मन्दिर नये बनाये गये हैं[1], जिन्हें पंचायतन मन्दिर कहा जाता है।

पार्श्वनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा भट्टारक जिनचन्द्रके तत्त्वावधानमें की गयी थी। प्रस्तुत शिलालेखकी रचना माथुर संघके गुणभद्र नामक महामुनिने की। इस शिलालेखको नैगम कायस्थ छीतिगके पुत्र केशवने लिखा। मन्दिरके शिल्पीका नाम आहड़ था जो सूत्रधार हरसिगका पौत्र और पाल्हणका पुत्र था। नानिगके पुत्र गोविन्द तथा पाल्हणके पुत्र देल्हणने इस शिलालेखको उत्कीर्ण किया।

इस मन्दिर और मूर्तिकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १२२६ फाल्गुन कृष्णा ३ गुरुवारको हुई थी।

इस क्षेत्रको विभिन्न व्यक्तियोंने जो दान दिये, उनका भी विवरण इस शिलालेखमें मिलता है। उसके अनुसार काँवा (कामा) और रेवत (रंधोलपुरा) के बीचकी कृषि-भूमि गुहिल पुत्र रावल दाघर मह. धर्णसिहने प्रदान की। खंडुवर (खाड़ीपुर) ग्रामवासी सोनि तथा वासुदेव गोडने

१. श्रीगौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूतानाका इतिहास, भाग १, पृ. ३६२

कृषि-भूमि दी। वांतरी (उपरमाल) परगनाके रायना ग्रामके महतो लोवंडि पोपलि, बड़ौर (बड़ौवा) ग्रामवासी पारिग्रही आल्हण, और लघु बीझोली (छोटी बिजौली) के गुहिल पुत्र रावल व्याहक महतो माहवने क्षेत्रको कृषि-भूमि प्रदान की।

शिलालेखोंमें उल्लिखित भट्टारक

इस क्षेत्रपर उपलब्ध शिलालेखोंमें, जो निषधिका स्तम्भोंमें उत्कीर्ण हैं, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ, मूलसंघ, कुन्दकुन्दाचार्यान्वयके भट्टारकोंकी परम्परा दी गयी है, वह इस प्रकार है—

१. वसन्तकीर्ति	(संवत् १२६४)
२, विशालकीर्ति	(संवत् १२६६)
३. दमन कीर्ति	
४. धर्मचन्द्र	(संवत् १२७१-१२९६)
५. रत्नकीर्ति	(संवत् १२९६ से १३१०)
६. प्रभाचन्द्र	(संवत् १३१० से १३८४)
७. पद्मनन्दि	(संवत् १३८५ से १४५०)
८. शुभचन्द्र	(संवत् १४५० से १५०७)
९. हेमकीर्ति	

इनमें प्रथम भट्टारक वसन्तकीर्तिने दिगम्बर मुनियों पर म्लेच्छों आदि द्वारा उपसर्ग होते देखकर चर्याके समय नग्नताको ढँकने और चर्यासे लौटनेपर आच्छादन छोड़कर पुनः दिगम्बरत्व धारण करनेका उपदेश दिया था, और उसे मुनियोंके लिए अपवाद वेष बताया था। जैसा कि षट्प्राभृत टीकामें समुल्लेख है—

"कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वोपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति तेन मण्डपदुर्गे श्री वसन्तकीर्तिना चर्यादिवेलायां तट्टीसादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचन्तीत्युपदेशः कृतः संयमिनां इत्यपवादवेषः।"

बलात्कारगण मन्दिर अंजनगाँवकी हस्तलिखित पट्टावलीमें इन भट्टारकके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

"संवत् १२६४ माह सुदि ५ वसन्तकीर्तिजी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष २० पट्ट वर्ष १ मास ४ दिवस २२ अन्तर दिवस ८ सर्व वर्ष ३३ मास ५ बघेरवाल जाति पट्ट अजमेर।"

इस सूचनाके अनुसार भट्टारक वसन्तकीर्ति संवत् १२६४ में पट्टाधिरूढ़ हुए और वे केवल १ वर्ष ४ माह २२ दिन ही पट्टाधिपति रहे। किन्तु उस कालमें कुछ दिगम्बर मुनियोंने उनका उपदेश स्वीकार किया, इससे प्रतीत होता है कि उस युगमें वे अत्यन्त प्रभावशाली थे।

इनकी परम्परामें प्रायः सभी भट्टारक बड़े प्रभावशाली हुए। शुभकीर्ति भट्टारकको किसी मुसलमान बादशाहने नमस्कार किया था। भट्टारक प्रभाचन्द्र सं. १३१० पौष शुक्ला १५ को भट्टारक पदपर प्रतिष्ठित हुए। ये जातिसे ब्राह्मण थे। इनसे दिल्लीमें मुहम्मद शाह बहुत प्रसन्न था।

भट्टारक पद्मनन्दिके तीन शिष्य हुए, जिन्होंने तीन भट्टारक परम्पराएँ चलायीं-भट्टारक शुभचन्द्रने बलात्कार गणकी दिल्ली-जयपुर शाखाकी स्थापना की। इनका पट्टाभिषेक संवत् १४५० माघ शुक्ला ५ को हुआ। ईडर शाखाका प्रारम्भ भट्टारक सकलकीर्तिसे हुआ। तथा, भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने सूरत शाखा चलायी।

क्षेत्रपर उपसर्ग

इस मन्दिर तथा अन्य चार देवरियोंका निर्माण श्रेष्ठी लोलार्कने कराया था ! इस बातकी पुष्टि यहाँके शिलालेखसे होती है। इस मन्दिरपर स्वामित्व सदासे दिगम्बर जैन समाजका रहा है। सम्पूर्ण क्षेत्रपर अन्य किसी धर्म या सम्प्रदायसे सम्बन्धित कोई मूर्ति या तत्सम्बन्धी लेख नहीं है। इतना होनेपर भी कभी-कभी कुछ असामाजिक और कलहप्रिय तत्त्व निराधार और तर्कहीन उपद्रव खड़ा कर देते हैं। क्षेत्रपर इस प्रकारके दो उपद्रव कुछ वर्षोंके भीतर हो चुके हैं। प्रायः दिगम्बर जैन क्षेत्रोंपर श्वेताम्बर-दिगम्बर समाजमें झगड़े चलते रहते हैं। दिगम्बर जैन समाज में जिस क्षेत्रकी मान्यता अधिक होती है, उसके ऊपर श्वेताम्बर जैन समाज अपना अधिकार जताने लगती है, भले ही श्वेताम्बर समाजमें उस क्षेत्रकी मान्यता हो या न हो। किन्तु इस क्षेत्रपर जैनेतर समाजके एक वर्गने ऐसे उपद्रव किये, जिसकी मिसाल अन्यत्र कम मिलेगी।

पहला उपद्रव संवत् १९८५ में हुआ। इस वर्गने आरोप लगाया कि जैनोंने इस क्षेत्रपर महादेवजीकी मूर्ति उखाड़ फेंकी है और हमारे देवताका अपमान किया है। इस निराधार और मिथ्या आरोपमें इस वर्गने फौजदारी मुकदमा चलाया और जैन समाजके अनेक प्रमुख और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको इसमें अभियुक्त बनाया। किन्तु असत्यके पैर नहीं होते। अदालतमें जाकर यह असत्य आरोप नहीं चल पाया और निराधार होनेसे खारिज हो गया।

अपनी असफलतासे यह वर्ग क्षुब्ध हो उठा और अवसरकी तलाशमें रहा। संवत् २०११में श्री भंवरलाल हीरालालजी सेठियाकी भावना पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक एक विशाल मूर्तिकी स्थापना करानेकी हुई। स्थानीय समाजने निकटवर्ती सभी स्थानोंके जैन समाजसे परामर्श करके पंचकल्याणक प्रतिष्ठाकी अनुमोदना कर दी तथा जैनेतर समाजसे इस धार्मिक कार्यमें सहयोग देनेका अनुरोध किया। पहले तो हिन्दू समाजके सम्मानित और सभ्य लोगोंने सहयोग देना प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया, किन्तु बादमें उपर्युक्त असामाजिक तत्त्वोंके दबावमें आकर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इतना ही नहीं, उन तत्त्वोंने अदालतसे स्टे आर्डर लेकर मूर्ति विराजमान करनेके विरुद्ध निषेधाज्ञा प्राप्त कर ली और दूसरी ओर जैन समाजसे असहयोग करने-का ऐसा आन्दोलन किया जिसका उद्देश्य अल्पसंख्यक जैन समाजको उसके नागरिक और धार्मिक अधिकारोंसे वंचित करके उसके धर्मायतनोंपर अधिकार करना था। इन तत्त्वोंने घरेलू कामगरों और ग्राहकोंपर कानून विरुद्ध हथकण्डे अपनाकर अनुचित दबाव डाला। फलतः हिन्दू ग्राहकोंने जैनोंकी दुकानोंसे सामान लेना छोड़ दिया, घरेलू काम करनेवालोंने कामकाज बन्द कर दिया, पानी भरनेवालोंने जैनोंका पानी भरना छोड़ दिया, ढोर चरानेवालोंने जैनोंके ढोर चराना बन्द कर दिया। इसी प्रकार नाई, धोबी, दर्जी, चमार आदिने इस वर्गके अनुचित दबावमें आकर जैनोंके साथ असहयोग करना शुरू कर दिया। इस वर्गने हिन्दू जनतामें धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिकताका भयानक विष फैला दिया। जब स्थानीय हिन्दू जनताका नेतृत्व इस वर्गके हाथ-में आ गया तो इसने अबोध और निरीह हिन्दू जनतामें गलत अफवाहें फैलाकर और उसमें धार्मिक उत्तेजना भरके उसे मनमाने ढंगसे लूटा। इस असामाजिक वर्गका मुख्य उद्देश्य यही था। दूसरी ओर न्यायालयमें केस चलता रहा। मुकदमा क्रमशः सिविल, सैशन और हाईकोर्ट तक चला और सब जगह इस कलहप्रिय वर्गने मुँहकी खायी। नीरक्षीर-विवेकशील न्यायालयके जजोंने सत्यको उजागर करके जैनोंके पक्षमें निर्णय दिये। इन निर्णयोंसे यह सिद्ध हो गया कि जैन समाज अत्यन्त शान्तिप्रिय, सहिष्णु और न्यायनीतिपरायण समाज है। इन उपद्रवोंने यह भी प्रमाणित

कर दिया कि जैन समाज एक जीवित और संगठित समाज है जो अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिए सतत जागरूक है और धर्म-रक्षाके लिए बड़ेसे बड़ा बलिदान देनेमें भी संकोच नहीं करती। मान्य जजोंके निर्णयोंसे सामान्य हिन्दू जनताने इन असामाजिक स्वार्थी तत्त्वोंके वास्तविक रूप और उद्देश्यको पहचान लिया तथा भविष्यमें इन लोगोंसे सावधान रहनेका संकल्प कर लिया।

स्मरण रहे, इस नगरकी कुल आबादी ६००० है, जिसमें जैनोंकी कुल जनसंख्या ५०० है।

धर्मशाला

नगरमें दो जैन धर्मशालाएँ हैं—जैन भवन और जैन पंचायती नौहरा। इनमें कुल ९ कमरे हैं। इनमें नल, कुआं और बिजलीकी व्यवस्था है।

मेला

शिलालेखकी श्लोक संख्या ६० में यह उल्लेख है कि यही वह भीमवन है जहां जिनराज-का वास है, ये ही वे शिलाएँ हैं जिन्हें कमठने आकाशमें फेंका था तथा यही वह कुण्ड और सरिता है जहां (पार्श्वनाथ) परमसिद्धिको प्राप्त हुए थे।

इस उल्लेखसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहींपर पार्श्वनाथ भगवान्के ऊपर कमठासुरने भयंकर उपसर्ग किये थे और यहीं पार्श्वनाथको केवलज्ञान हुआ था। अभी यह निर्णय होना शेष है कि माथुर संघके भट्टारक गुणभद्रने इस स्थानको पार्श्वनाथ भगवान्की केवलज्ञान कल्याणक भूमि किस आधारपर शिलालेखमें माना है। क्योंकि शास्त्रीय साक्ष्यों और परम्परासे अहिच्छत्रको पार्श्वनाथका केवलज्ञान कल्याणक स्थान माना जाता है। उक्त शिलालेखकी इस मान्यताका समर्थन जबतक अन्य प्रामाणिक स्रोतोंसे नहीं हो जाता, तबतक इसे स्वीकार करनेमें संकोच होना स्वाभाविक है।

स्थानीय समाजने तो शिलालेखकी इस मान्यताको प्रमाणित सत्य मान लिया है। इसलिए क्षेत्रका वार्षिक मेला चैत्र कृष्णा ४ को किया जाता है, जिस दिन पार्श्वनाथ भगवान्को केवलज्ञान हुआ था।

सन् १९५५ में नगरमें पंचकल्याणक प्रतिष्ठाका विशाल समारोहपूर्वक मेला हुआ था। इस अवसरपर सुदूर और निकटवर्ती प्रान्तोंसे लगभग २५००० दर्शनार्थी आये थे। यह प्रतिष्ठा समारोह मुकदमेमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् किया गया था।

सन् १९६९ में यहांपर आचार्य धर्मसागरजी महाराजका चातुर्मास हुआ था। उस समय कार्तिकी अष्टाह्निकामें यहाँ सिद्धचक्र विधान हुआ था।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था एक निर्वाचित समिति करती है, जिसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र कमेटी' है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र कमेटी,
बिजौलिया (जिला भिलवाड़ा) राजस्थान

चंवलेश्वर पार्श्वनाथ

अवस्थिति और मार्ग

श्री चंवलेश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र राजस्थान प्रदेशके भीलवाड़ा जिलेमें भीलवाड़ासे ४५ कि. मी. पूर्वको ओर है। भीलवाड़ासे पारौली तक पक्की सड़क है, बसें जाती हैं। वहाँसे लगभग ६ कि. मी. कच्चा मार्ग है, बैलगाड़ी मिलती है। दूसरा मार्ग अजमेरसे खण्डवा जानेवाली पश्चिमी रेलवे लाइनपर विजयनगर है। वहाँसे ४२ कि. मी. शाहपुरा है। पक्की सड़क है। बसें चलती हैं। शाहपुरासे बैलगाड़ीका रास्ता है। सवारी मिलती है। तीसरा मार्ग देवली कैण्टसे जहाजपुर होते हुए बस द्वारा पारौली पहुँचनेका है। वहाँसे क्षेत्र तक बैलगाड़ी द्वारा पहुँच सकते हैं।

यहाँ अरावली पर्वत शृंखलाने प्रकृतिकी अनिन्द्य सुषमाका अक्षय कोष लुटाया है। इन पर्वत मालाओंके चरणोंको मेवाड़की विश्रुत बनास नदी पखारती है। इन्हीं पर्वतमालाओंके मध्य कालोघाटी अवस्थित है। इसीके एक पहाड़पर चंवलेश्वर क्षेत्र विद्यमान है।

अतिशय क्षेत्रका इतिहास

कहा जाता है, इन्हीं पर्वतोंके मध्यमें प्राचीनकालमें 'दरिबा' नामक एक नगर था जो धन-धान्यसे सम्पन्न और व्यापारके कारण अत्यन्त समृद्ध था। इस नगरमें शाह श्यामा सेठ रहते थे। उनके पुत्रका नाम था सेठ नथमल शाह। एक ग्वाला इनकी गायको चराने ले जाता था। कुछ दिनोंसे गाय दूध नहीं देती थी। जब चरकर आती तो उसके स्तन खाली मिलते। सेठने ग्वालेसे इसका कारण पूछा, किन्तु वह जवाब नहीं दे सका। तब ग्वालेने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं इस बातका पता लगाऊँगा।

दूसरे दिन ग्वालेने सेठकी गायपर बराबर नजर रखी। जब गोधूलि वेलामें गायोंके वापस होनेका समय हुआ तो ग्वालेने देखा कि सेठजीकी गाय स्वतः ही पहाड़की चूलपर जा रही है और एक स्थानपर खड़ी होनेपर उसका दूध स्वयं झर रहा है। सारा दूध झरनेपर गाय वापस आकर स्वतः ही गायोंके झुण्डमें मिल गयी है।

ग्वालेने अपनी आँखों देखा सारा वृत्तान्त सेठजीको सुना दिया। सेठजी सोचने लगे—"गायका दूध स्वतः ही क्यों झरता है और वह भी एक निश्चित स्थानपर!" इसका कोई समाधान उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। वे इसी विषयपर विचार करते-करते सो गये। रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उन्हें स्वप्न आया। कोई देव पुरुष उनसे कह रहा था—"जहाँ गायका दूध झरता है, उस स्थानपर भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति है। उसे तुम निकालो और जिनालय बनवाकर उसमें प्रतिष्ठा करो।"

प्रातः जागनेपर सेठजी स्वप्नका स्मरण करके बड़े प्रसन्न हुए। इस दैवी प्रेरणासे वे अपने आपको भाग्यशाली मानने लगे। उन्होंने सामायिक किया, नित्यक्रियासे निवृत्त होकर स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किये और कुछ व्यक्तियोंको साथ लेकर स्वप्नमें निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचे। उन्होंने नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़कर जमीन खोदना प्रारम्भ किया। कुछ समय पश्चात् उन्हें मूर्तिका एक भाग दिखाई दिया। तब धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक मिट्टी हटायी गयी, मूर्तिको बाहर निकाला। देखा कि मूर्ति सचमें भगवान् पार्श्वनाथकी है जो बलुआई पाषाणकी सलेटी वर्णकी पद्मासन

मुद्रामें दो फुट अवगाहनाकी है। इस मनोज्ञ मूर्तिके दर्शन करते ही उपस्थित सभी व्यक्तियोंका रोम-रोम हर्षित हो गया। सबने भगवान्‌का अभिषेक-स्तवन-पूजन किया।

मूर्तिका समाचार चारों ओर फैल गया। भगवान्‌का दर्शन करनेके लिए वहाँ दूर-दूरसे लोग आने लगे। तब सेठजीने मन्दिर-निर्माणका संकल्प किया और उसे बनवाना प्रारम्भ कर दिया। मन्दिरका निर्माण उसी स्थानपर किया गया, जहाँसे मूर्ति प्रकट हुई थी। कुछ ही समयमें शिखरबन्द मन्दिर बनकर तैयार हो गया। सेठजीने वैशाख शुक्ला १० विक्रम संवत् १००७ को पंचकल्याणकपूर्वक भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। इस उत्सवमें साधर्मी जन हजारों-की संख्यामें पधारे थे। ऐसा भी ज्ञात होता है कि सेठ नथमलजी की सेवाओं और जनकल्याण-कारी कार्योंसे प्रसन्न होकर मेवाड़ नरेशने उन्हें 'राजभद्र' की उपाधि प्रदान की थी। यही उपाधि बादमें राजभद्रा कहलाने लगी। सेठजी राजमान्य थे, यह तो ज्ञात होता है किन्तु उन्हें यह राजमान्यता मन्दिर-प्रतिष्ठाके पश्चात् प्राप्त हुई अथवा उससे पूर्वमें थी, यह ज्ञात करनेका कोई साधन नहीं है।

इस मन्दिरका नाम पहले चूलेश्वर रहा है, ऐसा पुराने लेखोंसे पता चलता है। बादमें चूलेश्वरसे चंवलेश्वर कैसे बन गया, इस बातका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया। सम्भवतः चूलेश्वरसे ही बिगड़ते-बिगड़ते चंवलेश्वर बन गया।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्र छोटी-सी पहाड़ीपर है। इसके ऊपर जानेके तीन दिशाओंसे मार्ग हैं। पूर्वकी ओर २५६ पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उसके बाद एक छतरी बनी हुई है जो यात्रियोंके विश्रामके लिए बनायी गयी प्रतीत होती है। इसके बाद दो फर्लांगका कच्चा मार्ग है। रास्तेमें एक पक्का तिवारा पड़ता है। इसमें पानीका एक कुण्ड है, जिसमें बारहों महीने जल भरा रहता है। भगवान्‌के अभिषेकके लिए यहींसे जल ले जाया जाता है। इस स्थानको 'तिवारा खान' कहते हैं। कच्चे रास्तेको पार करके पुनः ११० पक्की सीढ़ियाँ हैं।

मन्दिरका शिखर बहुत दूरसे दिखाई पड़ता है। उसके आकर्षणसे खिचा हुआ भक्त यात्री थकानका अनुभव नहीं करता। सीढ़ियाँ चढ़नेपर समतल भूमि मिलती है, जिसपर मन्दिरका परकोटा बना हुआ है। परकोटेके अन्दर प्रवेश करनेपर मैदान आता है। उसके मध्यमें मन्दिर बना हुआ है। मन्दिरके द्वारके ऊपरी भागमें पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है, जिसे देखते ही अनुभव हो जाता है कि वह जैनमन्दिर है। मन्दिरमें प्रवेश करनेपर छोटा चौक मिलता है। इसमें मकान बने हुए हैं। पश्चिमकी ओर एक छतरी बनी हुई है, जिसमें पाषाणके चरणयुगल विराज-मान हैं। बादमें मण्डप मिलता है। फिर मोहन-गृह मिलता है। मोहन-गृहके प्रवेश-द्वारके सिरदल-पर तीन तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्यमें पद्मासन और उसके दोनों ओर खड्गासन। वेदी एक ही है। उसपर मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ विराजमान हैं। इनके दायीं ओर भव्य चौबीसी है। वेदीके चारों ओर परिक्रमा-पथ है।

मन्दिरके निकट ही मसजिद है और उसके पास ही महादेवजीकी छतरी है। लगता है, मसजिदका निर्माण मन्दिर-निर्माताने आततायियोंसे सुरक्षाकी दृष्टिसे कराया था। किन्तु तथा-कथित महादेव छतरी पहले केवल छतरी ही थी, शिवपिण्डी बहुत आधुनिक है और छतरी खाली देखकर उसमें यह रख दी गयी है। सुविधाके लिए इसे फिर महादेवकी छतरी कहने लगे। मन्दिरके पीछे छोटी-सी धर्मशाला है।

पहाड़के नीचे तलहटीमें एक मन्दिर है। उसमें भगवान् पार्श्वनाथकी विशाल अवगाहना-वाली खण्डित प्रतिमा विराजमान है। यहींपर नवनिर्मित जैन धर्मशाला है।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था एक निर्वाचित प्रबन्धकारिणी समिति करती है। यह समिति पंजीकृत है।

वार्षिक-मेला

इस क्षेत्रपर प्रतिवर्ष पौष वदी ९ और १० को मेला भरता है।

चित्तौड़

चित्तौड़का किला

चित्तौड़का विश्वविख्यात किला ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। मेवाड़के सीसौदियावंशी राणाओंकी राजधानीके रूपमें इसने शताब्दियों तक ख्याति प्राप्त की है। जब यह राजधानी था, तब यहांके महल और बाजारोंकी श्रीसमृद्धि और शोभा देखने योग्य थी, किन्तु अब तो लगभग चार शताब्दियोंसे यह उजड़ गया है और किलेके भीतर एक छोटा-सा गाँव रह गया है।

यह किला राजस्थानके दक्षिण-पूर्वी पठारी भागमें अरावली पर्वतके दक्षिण-पूर्वमें स्थित है। समुद्र-तलसे यह १८१० फुट ऊँची पहाड़ीपर स्थित है। यह उत्तर-दक्षिणमें साढ़े तीन मील लम्बा और आधा मील चौड़ा है। यह ६९० एकड़ भूमिपर बना हुआ है। इसके ऊपर चढ़नेके लिए घूमती लहराती एक सड़क जाती है। इसपर सात द्वार बने हुए हैं। इनमें-से एकको तो मात्र चौकी अवशिष्ट है। दक्षिण-पूर्वकी ओरसे चढ़नेपर पहले पाडन पोल आता है। फिर जीर्ण-शीर्ण भैरो या फूटा पोल मिलता है। इसके बाद क्रमशः हनुमान् पोल, गणेश पोल, जोड़ला पोल, लक्ष्मण पोल, राम पोल और बड़ी पोल मिलते हैं। रामपोलके सामने एक कमरा है जो पाषाण-स्तम्भोंपर बना हुआ है। आजकल यह पहरेदारों, रक्षकोंके उपयोगमें आता है। एक स्तम्भके शीर्ष भागमें विक्रम सं. १५३८ का एक शिलालेख अंकित है। इस लेखमें किसी विशिष्ट जैनकी यात्राका उल्लेख है। इस कमरेके ऊपर दोनों ओर छतरी बनी हुई हैं। इससे आगे बढ़नेपर बायें दक्षिणकी ओर जानेवाली सड़क मिलती है। जरा आगे बढ़नेपर पत्तासिहका चबूतरा है। उससे दक्षिणकी ओर कुछ मुड़नेपर एक छोटा हिन्दू मन्दिर है। उसके निकट विख्यात जैन कीर्तिस्तम्भ गर्वसे मस्तक उठाये खड़ा है।

जैन कीर्तिस्तम्भ

स्थानीय जनता इसे छोटा कीर्तम कहती है। यह ७५॥ फुट ऊँचा है। नीचे इसका व्यास ३१ फुट है तथा ऊपर जाकर यह १५ फुट रह गया है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टाडको इस स्तम्भके अधोभागमें शिलालेखका एक खण्डित भाग प्राप्त हुआ था, जिसके अनुसार यह प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथको अर्पित किया गया था। शिलालेखमें इसका काल विक्रम सं. ९५२ वैशाख सुदी पूर्णमासी गुरुवार दिया है। हमारी मान्यता है कि यह शिलालेख किसी अन्य मन्दिरका होगा जो मन्दिरके नष्ट होनेपर यहाँ रख दिया गया होगा।

यह सात मंजिला है एवं शिल्पकलाका अनुपम उदाहरण है। इसके चारों कोनेपर तीर्थंकर आदिनाथकी दिगम्बर मूर्तियाँ खड्गासन ध्यान मुद्रामें ५ फुट अवगाहनाकी स्थित हैं। इसके बाह्य भागमें जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। पाषाणोंके अलंकरण पारम्परिक हैं, जो उस कालमें हिन्दू और जैन दोनोंके स्थापत्यमें व्यवहृत होते थे। इनका शिल्प सौन्दर्य पश्चात्कालीन जयस्तम्भसे कहीं उत्कृष्ट है।[1] इसकी चोकीपर चढ़नेके लिए ६९ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मि. गैरिकको ऊपरी मंजिलमें एक पंक्तिका शिलालेख मिला था, जिसकी लिपिसे ज्ञात होता है कि यह स्तम्भ जयस्तम्भकी अपेक्षा काफी प्राचीन है। इस कीर्तिस्तम्भके ऊपरकी छत्री बिजली गिरनेसे टूट गयी थी, जिससे इस स्तम्भको भी हानि पहुँची थी। परन्तु उदयपुरनरेश महाराणा फतहसिंहजीने अनुमानतः ८० हजार रुपये लगाकर पुनः वैसी ही छत्री बनवा दी और स्तम्भको भी मरम्मत करा दी।

कीर्तिस्तम्भका निर्माता और निर्माण-काल

इस कीर्तिस्तम्भके निर्माता और उसके निर्माण-कालके सम्बन्धमें कुछ ऐसे असन्दिग्ध प्रमाण प्राप्त हुए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि इस स्तम्भका निर्माता साहू नायकका पुत्र साहू जीजा था। यह बघेरवाल जातिका एक देदीप्यमान रत्न था। साहू नायककी धर्मपत्नी नागश्रीसे छह पुत्र हुए थे—हाल्ल, जीजू, न्योट्टल, असम, श्रीकुमार और स्थिर। इनमें द्वितीय पुत्र जीजू बड़ा जैनधर्म-परायण था। उसकी रुचि जीव-दया, जिनालयोंके निर्माण और जीर्णोद्धार-जैसे कामोंमें अधिक थी। उसीने तीर्थक्षेत्रोंकी यात्राके पश्चात् इस कीर्तिस्तम्भका निर्माण कराया। उसकी धार्मिक रुचिका प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि इस कीर्तिस्तम्भके अतिरिक्त उसने चित्रकूट (चित्तौड़) में भगवान् चन्द्रप्रभका विशाल शिखरबद्ध जिनालय बनवाया; तलहटी, खोहर, सांचोर, बूढ़ा डोंगर आदि स्थानोंपर भी जैन मन्दिर बनवाये। जीजूका पुत्र पुण्यसिंह हुआ। यह महाराणा हमीरका समकालीन था।

शोध-खोजके परिणामस्वरूप कुछ ऐसे प्राचीन लेख और शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, जिनसे इस कीर्ति-स्तम्भके निर्माता जीजूके सम्बन्धमें विशेष ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश पड़ता है। एक लेख[2] इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री संवत् १५४१ वर्षे शाके १४९१ प्रवर्तमाने कोधीता संवत्सरे उत्तरगणे मासे शुक्ल पक्षे ६ दिने शुक्रवासरे स्वातिनक्षत्रे योगे २ करणे मिथुनलग्ने श्री वराटदेशे कारंजानगरे श्री सुपार्श्वनाथ चैत्यालये श्री मूलसंघे सेनगणे पुष्करगच्छे श्रीमन् वृद्धसेनगणधराचार्य पारंपर्याद्‌गत श्री देववीर महावादवादीश्वर रायवादीर्यंकी महासकल विद्वज्जन सार्वभौम साभिमान वादीभ-सिंहाभिनव त्रैविद्य सोमसेन भट्टारकाणामुपदेशात् श्रीबघेरवाल ज्ञाति खमउराडगोत्रे अष्टोत्तरशत महोत्तुंग शिखर प्रासाद समुद्धरणे धीरः त्रिलोकश्रीजिनमहाबिबोद्धारक अष्टोत्तरशत श्रीजिनमहा-प्रतिष्ठाकारक अष्टादशस्थाने अष्टादशकोटिश्रुतभंडारसंस्थापक सपादलक्षवन्दीमोक्षकारक मेदपाट-देशे चित्रकूटनगरे श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्रचैत्यालयस्याग्रे निजभुजोपार्जितवित्तवलेन श्रीकीर्तिस्तम्भ-आरोपक साह जिजा सुत साह पूर्नसिंहस्य—साह देउ तस्य भार्याबूहलुकाइ तयोः पुत्राः चत्वारः तेषु प्रथम पुत्र साह लखमण भार्या वाई जसमाई सुत संघवी इसराज भार्या हाराई द्वितीय पुत्र सा. भीम तृतीय पुत्र संघवी वीकू भार्या संघविणि गोराई चतुर्थ पुत्र–मदे भार्या पदमाई तयोः सुताः

१. Report of a tour in the Panjab and Rajputana, by H. B. W, Garrick, Vol. XXIII, page 117.

२. नाँदगाव जैन मन्दिरमें स्थित मूर्तिका लेख।

सं. पूनसी सा. धर्मसी सा. देदसी चैत्यालयोद्धरणधोरेण निज भुजोपार्जितवित्तानुसारेण महायात्रा प्रतिष्ठा तीर्थक्षेत्र—

उपर्युक्त लेख अधूरा है, किन्तु इससे कीर्तिस्तम्भके निर्माताका परिचय, उसकी वंशावली, उसके धार्मिक कृत्यों आदिपर प्रकाश पड़ता है। इसमें बताया है कि बघेरवाल जातिके, खमडवाड गोत्रके साह जीजाने १०८ शिखरबद्ध विशाल जिनालयोंका जीर्णोद्धार कराया, अनेक जिन बिम्ब प्रतिष्ठित कराये, १०८ बिम्ब प्रतिष्ठाएँ करायीं; १८ स्थानोंमें १८ कोटि श्रुतभण्डारोंकी स्थापना करायी। एक कोटिकी क्या संख्या मानी जाय यह विचारणीय है।

जैनकीर्तिस्तम्भ और जीजासे सम्बन्धित तीन शिलालेखोंकी प्रतिलिपियाँ उदयपुर संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। एक शिलालेख, जो सम्भवतः किसी मन्दिरमें लगा हुआ था; वर्तमानमें चित्तौड़में गुसाईंजीके चबूतरेपर स्थित समाधिपर लग रहा है। यह खण्डित है और काफी घिस गया है। यह शिलालेख इस प्रकार पढ़ा गया है—

"सूनुस्तस्य तु दीनाको वाच्छीभार्यासमन्वितः।
अधः सू (क) रोति पूजार्थे पुरंदर स (श) चीरुचम् ॥२१॥
नायाख्यः सूनुरस्यासीत् नायका (को) धर्मकर्मणि।
अथवा न·······कर्मसु सद्धं (वं) दा ॥२२॥
विशालकच्छ केतुच्छच्छायाछलध्वजव्रजे:।
निजप्रासादसौधाग्रनृत्यतुंगकरैरिव ॥२३॥
तत्र यः कारयामास.................।
मन्दिरं सुन्दरं रम्यकाम्यं सम्यक्त्ववे (चे) तसाम् ॥२४॥
स्वःसोपानोपदेशं दृढयति जिनः श्रीपदोत्कंठितानां—
सोपानैर्मंडपोऽपि प्रकटयति ह.........विवाहः।
उच्चैः प्रासादचंचत्कनकमयमहाकुंभशुंभद्ध्वजाग्रे-
रारूढा नृत्यतीव प्रभुपदजयिनी मानसी सिद्धिरस्य ॥२५॥
नागश्रीसंगतोदेन..........जडागनयः।
कालकूटान्वयोन्याथी यो वृषांकः कलौ युगे ॥२६॥
हाल्लजिजुस्तथा न्योट्टलसमभिधः श्रीकुमारस्थिराख्यः
षष्ठः श्रीए...पि विजयिनश्चक्रवर्तीश्रियस्तम्।
तेषां या (यो) जिजुनामाजनि जनिहननप्राणपोरागमार्ग्यः
प्रज्ञातिश्रीत्रिवर्गप्रभुरभवदसौ जैन [धर्माभिलम्बी] ॥२७॥
यश्चन्द्रप्रभमुच्चकूटघटनं श्रीचित्रकूटे नटत्-
कोत्रत्पल्लव तालवीजनमरुप्रध्वस्तसूर्याश्रमे।
श्रीचैत्ये तलहट्टिका समघटी श्रीसादमीध्या..........
.... वि जिनेश्वरस्य सदनं श्रीखोट्टरे सत्पुरे ॥२८॥
बूढाडोगरकेभधाच सुमिरौ जाने समारभ्य तन्-
मानस्तंभमहादिमं .. मिदं निर्वर्त्य... सत्यं स य
सुमंगलाय जयिने श्रीपूर्णसिंहाय वै
गीर्वाणोदयिनीश्च यं समगम धर्मानुरागोल्वणः ॥३०॥

पुण्यसिंहोऽपि धर्मधुराधवलबृंहणः ।
जितारिः पितृसद्भारदत्तस्कंधो जयत्यसौ ॥३१॥
किंचिदारोपितस्कंधोभ्यासयोगाद्दिने दिने ।
विषमेधिवलो भूयो धवलः शवलोचनः ॥३२॥
अन्वमागतसद्धर्मभारधोरेमविक्रमः ।
अकिणांकष्टथुस्कंधः पुण्यसिंहो महाद्भुतम् ॥३३॥
यत्पुण्यं निटले भाति भारलीचक्रमंडले ।
यत्कीर्तिस्त्रिजगत्सौधे धर्मलक्ष्मीर्मलांबुजे ॥३४॥
अपूर्वोऽयं धनी कश्चिद् यच्छन्नपि यदृच्छया ।
वर्द्धयत्यनिशं स्वं स्वं परं सत्पुण्यसंचयः ॥३५॥
उररीकृतनिर्वाहनिव सौम्येव संपदः ।
स्थिराश्रयपदं भेजुस्तेजोक्रमित्तविग्रहाः ॥३६॥
पुण्यसिंहो जयत्येष दानिनां जनकुंजरः ।
यत्कीर्तिकामिनीनेत्रे कज्जलं भुवनांवरम् ॥३७॥
किं मेरुः कनकप्रभः किमु हरिर्गीर्वाण....प्रियः
किं सोमः संकलं चकार....पुण्योदयात् ।
पेयं धर्मधुराधरा (रो) विजयते श्रीपूर्णसिंहः कलौ ॥३८॥
किं मेरुः किं नमेरुः किमुत सुरगुरुः किं हरिः किं मुरारिः
किं रुद्रः किं समुद्रः किमुत च विलसच्चंद्रिकाचंद्रचंद्रः ।
उन्नत्या स्वेष्टदत्त्या विमलतरधिया सद्धि भूत्या विमत्या
गोनीत्या रत्नभृत्या सकलतनुतया पूर्णसिंहः पृथिव्याम् ॥३९॥
ध्येयस्तस्य विशालकीर्तिमुनिपः सारस्वतश्रीलता-
कंदोद्भेदघनायमामवघनः स्याद्वादविद्यापतिः ।
वर्गत्यासवर्गचोविलोमविलसद्दंभोलिदीर्यत्यस्व
क्षोणीच्चत्समयास्तपोनिधिसावासीद्धरित्रीतले ॥४०॥
कतार्काकाछं (र्कं) श्यं कृसित परवादिद्विषमदं
क्व निः श्रीमत्प्रेमप्रचुररसनिस्यंदिकविता ।
उपन्यासप्राप्ते क्व च विहितवर्गव्यजनिता
मनोगम्यं रम्यं श्रुतमिह यदीयं विलसितम् ॥४१॥
योगानंगत्रिनेत्रस्त्रिभुवनरचनानूतनेपि त्रिनेत्रो
मीमांसावाग्निरोधप्रकटनदिनकृत्, सांख्यमत्तेभसिंहः ।
उद्यद्बोद्धाहिदर्पस्फुरदजगरुडः प्रौढयाधीरुशैल-
श्रेणीसंपातशंपाकलितवरवचोवर्णिनी वल्लभो यः ॥४२॥
तत्पुत्रः शुभकीर्तिरूर्जिततपोनुष्ठाननिष्ठापतिः
श्री संसारविकारकारणगुणस्तृप्यन्मनोदेवतः ।
प्रारब्धाय पदप्रयाणकलसत्पंचाक्षरोच्चारण-
पुल्यत्कीकृत निर्भवे हिमकक्रुक्षब्धत्समाध्याब्धिकः ॥४३॥

सिद्धांतोदधिवीचिवद्धनस्त्रद्वंद्रोयितंद्रोघुना
विख्यातोस्ति समग्रशुद्धचरितः श्रीधर्मव....यतिः ।
तत्कीर्तिः किल धीरवार्द्धिनृपतिश्रीनारसिंहादिह
स्वीकृत्य प्रकटीचकार सततं हमीरवीरोप्यसौ ॥४४॥
तच्चरणकमलमधुपे मानस्तंभप्रतिष्ठया मानम् ।
प्रकटीचकार भुवने धनिकः श्रीपूर्णसिंहोत्र ॥४५॥

यह शिलालेख अधूरा है, प्रारम्भके २० श्लोक नहीं हैं तथा बीच-बीचमें कुछ श्लोक अधूरे हैं, श्लोक संख्या २९ है ही नहीं श्लोक संख्या ३८ में एक चरण नहीं है। यह सब होनेपर भी इस लेखके महत्त्व और इसकी उपयोगितासे इनकार नहीं किया जा सकता। इस शिलालेखके उपलब्ध भागमें कीर्तिस्तम्भके निर्माता जीजु या जोजा अथवा जीजाक (इनके ये तीन नाम मिलते हैं) के पितामहसे इनका वंश-गौरव प्रकट किया गया है। जीजाके पितामह दिनाक थे, उनकी स्त्रीका नाम वाछी था। उन दोनोंके नायक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसने अनेक शिखरबद्ध जिनालयोंका निर्माण कराया। इसकी स्त्रीका नाम नागश्री था। इसके छह पुत्र हुए—हाल्ल, जीजु, न्योहल, असम, श्रीकुमार और स्थिर। इनमें जीजु बहुत धर्मात्मा था। इसने चित्रकूट (चित्तौड़) में चन्द्रप्रभ भगवान्का विशाल जिनालय बनवाया। और भी कई स्थानोंपर जिनालय बनवाये। इस सबके अतिरिक्त उसने इस मानस्तम्भ (कीर्तिस्तम्भ) के निर्माणका प्रारम्भ करके इसको पूरा करनेकी जिम्मेदारी अपने पुत्र पूर्णसिंहके ऊपर सौंपकर समाधिमरण धारण कर स्वर्गवासी हुए। पूर्णसिंहका अपरनाम पुण्यसिंह भी था। जिम्मेदारी आनेके पश्चात् पूर्णसिंहको अनेक प्रतिकूल परिस्थितियोंका भी सामना करना पड़ा किन्तु उसने पिताके इस अधूरे स्वप्नको पूर्ण किया।

पुण्यसिंह (पूर्णसिंह) के धर्मगुरुका नाम भट्टारक विशालकीर्ति था। वे कुन्दकुन्दान्वय और सरस्वतीगच्छके थे। वे स्याद्वादविद्यापति कहलाते थे। वे वादी, उपन्यासके कर्ता और परवादियोंका गर्व दलन करनेवाले थे। वे षड् दर्शनोंके पारगामी विद्वान् थे। इनके शिष्य भट्टारक शुभकीर्ति हुए। ये तपोनुष्ठानमें रत रहते थे। उनके समाधिमरणके पश्चात् उनकी गादीपर धर्मचन्द्र आसीन हुए। ये प्रकाण्ड विद्वान् थे। हमीर नरेश इनसे बड़े प्रभावित थे। मानस्तम्भ पूर्ण होनेपर पुण्यसिंहने भट्टारक धर्मचन्द्रसे प्रतिष्ठा करायी।

इस शिलालेखसे यह तो स्पष्ट नहीं होता कि जीजा और पुण्यसिंह कहाँके निवासी थे, किन्तु इससे कुछ महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है।

(१) जीजाने मानस्तम्भ (कीर्तिस्तम्भ नाम न देकर लेखमें इसे मानस्तम्भ कहा गया है) को बनवाना प्रारम्भ किया था, किन्तु उसे पूर्ण नहीं करा सका और उसकी मृत्यु हो गयी। स्तम्भका निर्माण-कार्य जीजाके पुत्र पुण्यसिंहने पूर्ण कराया।

(२) इस स्तम्भकी प्रतिष्ठा भट्टारक धर्मचन्द्रने करायी। ये भट्टारक मूलसंघ बलात्कारगण, जिसका अपर नाम सरस्वतीगच्छ है, परम्पराके थे।

(३) यह स्तम्भ सम्भवतः प्रारम्भमें कीर्तिस्तम्भ नहीं कहलाता था, इसका निर्माण मानस्तम्भके रूपमें किया गया था। हमारी मान्यता है कि जीजा द्वारा चित्रकूटपर बनाये गये जिस चन्द्रप्रभ जिनालयका उल्लेख उक्त लेखमें मिलता है, उसी जिनालयके सामने यह मानस्तम्भ निर्मित कराया गया होगा।

भट्टारक धर्मचन्द्रकी गुरु-परम्पराके सम्बन्धमें कुछ मूर्ति-लेखों और शिलालेखोंसे प्रकाश पड़ता है। चित्तौड़में प्राप्त एक खण्डित लेखमें, जो विक्रम सं. १३५७ (ई. सं. १३००) का है, इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—

"मूलसंघ–नन्दिसंघ—बलात्कारगणमें कुन्दकुन्दकी आचार्य परम्परामें केशवचन्द्र (जो तीन विधाओंमें विशारद थे तथा उनके एक सौ एक शिष्य थे), देवचन्द्र, अभयकीर्ति, वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति और धर्मचन्द्र हुए। इस लेखमें पुण्यसिहका भी नाम आया है। लेखमें कुल २५ पंक्तियाँ हैं तथा २९ श्लोक हैं"[1]।

देवगढ़के मन्दिर नं. १४ के एक स्तम्भ लेखमें मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यान्वयके केशवचन्द्र, अभयकीर्ति तथा वसन्तकीर्तिके नाम अंकित हैं।

चित्तौड़के उपर्युक्त लेखमें विशालकीर्ति, शुभकीर्ति और धर्मचन्द्रका उल्लेख है।

भट्टारक धर्मचन्द्रकी प्रशंसामें एक लेखमें निम्नलिखित श्लोक उपलब्ध होता है—

"श्री धर्मचन्द्रोऽजनि तस्य पट्टे हमीरभूपालसमर्चनीयः।
सैद्धान्तिकः संयमसिन्धुचन्द्रः प्रख्यातमाहात्म्यकृतावतारः" ॥ २४[2] ॥

अंजनगाँवके बलात्कारगण मन्दिरमें एक हस्तलिखित पदावली है, जिसमें भट्टारक धर्मचन्द्रकी आयु-गणना, उनका समय और जाति आदिका विवरण दिया गया है। इससे न केवल भट्टारक धर्मचन्द्रके काल-निर्णयमें सहायता मिलती है, अपितु चित्तौड़के कीर्ति-स्तम्भकी प्रतिष्ठाका भी काल-निर्णय किया जा सकता है क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा इन्हीं भट्टारकजीने करायी थी। पदावलीका पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १२७१ श्रावण सुदि १५ धर्मचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष २५ दिवस ५ अन्तर दिवस ८ सर्व वर्ष ६५ दिवस १२ जाति हूँबड़ पट्ट अजमेर।"

भट्टारक धर्मचन्द्रके सम्बन्धमें इतना स्पष्ट विवरण अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आया। विक्रम सं. १२७१ (ई. सं. १२१४) में वे पट्टपर आसीन हुए और २५ वर्ष तक पट्टपर रहे अर्थात् वे सं. १२७१ से १२९६ (ई. सं. १२१४ से १२३९) तक भट्टारक पदपर रहे। कीर्तिस्तम्भकी प्रतिष्ठा उन्होंने इसी अवधिमें करायी थी। अतः कीर्ति-स्तम्भका निर्माण-काल निश्चित तिथि ज्ञात न होनेपर भी ईसाकी तेरहवीं शताब्दी निश्चित होता है।

एक दूसरा शिलालेख भी उदयपुर संग्रहालयमें सुरक्षित है। उसका कुछ भाग खण्डित है। उसका मूल पाठ इस प्रकार पढ़ा गया है—

"...तिसायनसुधा संद्रावमंद्रोदयः ॥१॥
दुर्वार प्रतिपक्षशक्तिविभवन्यग्भावभंगोद्गत-
स्वव्यापारमनारतं यदवृ................पद
स्वाद्याकाररसानुरक्ति खचितं क्षोभभ्रमावर्तितं
चित्तक्षेत्रनियंत्रितं महदणुख्यात्यंकितं विघ्नित
त्यागादि.......तत्
कौटस्थ्यं प्रतिपद्य वंदय सदामुद्धि परां बिभ्रता ॥४॥

१. Annual Report of Indian Epigraphy—1956-57, P. 51, Ins. No. B 108.

२. जैन सिद्धान्तभास्कर, भाग १, कि. ४, पृ. ५३।

प्रत्येकार्पितसप्तभंग्युपहितैर्धर्मैरनन्तैर्विधि-
...तद्रूपविद्रूपशश्वदनेहसा नवनवीभावं स्वसात्कुर्वता ।
भावान्निर्विशतः पराकृततृषो द्वेष्यानशेषा-
....मचल स्वच्छप्रभंगे स्फुरन्
दूरं स्वैरमसंकरव्यतिकरं तिर्यङ्नलेतोर्ध्वताम् ॥७॥
आकारैर्वियुतं युतं च....
...स्वमहसि स्वार्थप्रकाशात्मके
मज्जंतो निरुपाख्यमोघचिदचिन्मोक्षार्तितीर्थंक्षिपः ।
कृत्वा नाद्य......
....स्थितिकृते स्वर्गापवर्गात्तये ।
यः प्राज्ञैरनुमीयते सुकृतिना जीजेन निर्मापित
स्तंभः सै ......
........सुभालोकैर्न कैरंच्यते ॥

वघेरवाल जातीय साः नायसुतजीजाकेन स्तंभः कारापितः ॥ शुभं भवतु ।"

इस शिलालेखमें यद्यपि 'अनुमीयते' पद दिया है अर्थात् यह स्तम्भ पुण्यात्मा जीजाने बनवाया, ऐसा विद्वान् अनुमान लगाते हैं। किन्तु शिलालेखको उत्कीर्ण करानेवाले सज्जनने अन्तिम पंक्तिमें अपना अभिमत दिया है कि बघेरवाल जातीय नायके पुत्र जीजाकने इस स्तम्भका निर्माण कराया, यद्यपि यह शिलालेख जीजाकके पश्चात्वर्ती कालमें उत्कीर्ण कराया गया, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु जब भी यह उत्कीर्ण कराया गया हो, उस कालमें भी सबकी परम्परागत धारणा यही थी कि इस स्तम्भका निर्माण करानेवाला जीजा ही था।

एक तीसरा शिलालेख है जिसमें संघ सहित जीजाकी तीर्थ-यात्रा समाप्त कर लौटनेका वर्णन है। इस शिलालेखमें प्रारम्भमें आचार्य पूज्यपादकी संस्कृत निर्वाणभक्तिके अन्तिम १२ पद्य देकर अन्तमें निम्नलिखित पाठ दिया है—

"तेन सुवानन्तजिने (श्वरा) णां मुनिगणानां च (निर्वाण) स्थानानि निवृत्यै (वा) पांतु संघं जीजान्वितं सदा ॥"

अर्थात् अनन्त तीर्थंकरों और मुनियोंकी निर्वाण भूमियाँ यात्रा करके लौटे हुए जीजा सहित संघकी रक्षा करें।

यह शिलालेख निश्चय ही उस समय उत्कीर्ण कराया गया होगा, जब जीजा यात्रा संघके साथ तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा समाप्त करके यहाँ सानन्द वापस लौटा होगा।

उपर्युक्त शिलालेखोंसे यह तो स्पष्ट ही है कि चित्तौड़का कीर्तिस्तम्भ निश्चित रूपसे बघेरवाल जातिके नायकके पुत्र जीजाने बनवाना प्रारम्भ किया था। उसके पुत्र पुण्यसिंह अथवा पूर्णसिंहने उसका निर्माण-कार्य पूरा कराया और उसकी प्रतिष्ठा करायी। इन लेखोंसे यह भी सिद्ध होता है कि जीजा और उसका पुत्र अत्यन्त वैभवसम्पन्न और राजमान्य व्यक्ति थे।

कीर्तिस्तम्भके सम्बन्धमें भ्रान्त धारणाएँ

चित्तौड़के कीर्तिस्तम्भके निर्माता और निर्माण-कालके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंने अवश्य ही भिन्न विचार प्रकट किये हैं। इस प्रकारके कुछ मतोंको यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त प्रतीत होता है, जिससे उचित निर्णयपर पहुँचनेमें सहायता मिल सके।

"……जैन कीर्तिस्तम्भ आता है जिसको दिगम्बर सम्प्रदायके बघेरवाल महाजन सा. नायके पुत्र जीजाने वि. सं. की चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें बनवाया था। यह कीर्तिस्तम्भ आदिनाथका स्मारक है। इसके चारों भागोंपर आदिनाथकी एक-एक विशाल दिगम्बर (नग्न) जैन मूर्ति खड़ी है और बाकीके भागपर अनेक छोटी जैन मूर्तियाँ खुदी हुई हैं।"

—श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्यका इतिहास

श्री ओझाजीने विक्रमकी चौदहवीं सदीके उत्तरार्धमें इस स्तम्भका निर्माण स्वीकार किया है, जो विचारणीय है क्योंकि भट्टारक परम्परा, पट्टावलियों, शिलालेखों और मूर्तिलेखोंके आधारपर यह सिद्ध होता है कि जिन भट्टारक धर्मचन्द्रने पुण्यसिंहके आग्रहसे कीर्तिस्तम्भकी प्रतिष्ठा करायी थी, उनका भट्टारकीय काल वि. सं. १२७१ से १२९६ तक है। अतः प्रतिष्ठा इसी बीच करायी होगी। इसलिए विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीकी बजाय तेरहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध इसका निर्माण-काल मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

"कीर्तिस्तम्भको सं. ९५२ में बघेरवाल जातिके जीजा या जीजकने बनवाया था।"

—बा. कामताप्रसाद

"इसे बघेरवाल जीजाने सं. ११०० के लगभग बनवाया था।"

—ब्र. शीतलप्रसादजी, मध्यभारत व राजपूतानेके जैन स्मारक, पृ. १३३–४१

चारित्ररत्नगणिकी चित्रकूटीय महावीर मन्दिरकी प्रशस्तिमें राजा कुमारपालको इसका निर्माता बताया है।

"जे कीर्तिस्तम्भ ऊपर जणाव्यो छे ते कीर्तिस्तम्भ प्राग्वंश (पोरवाड़) संघवी कुमारपाले आप्रासादनी दक्षिणे बंधाव्यो हतो।"

—श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ. ४५५

"चित्तौड़ना किल्लां मां बे ऊँचा कीर्तिस्तंभो छे जो पैकीनो एक भ० महावीर स्वामीना कंपाउंड मां जैन कीर्तिस्तम्भ छे जे समये श्वेताम्बर अने दिगंबरना प्रतिमा भेदो पड्या हता ते समय नो एटले वि. सं. ८९५ पहेला नो ए जैन श्वेताम्बर कीर्तिस्तम्भ छे। उल्लट राजा जैनधर्म प्रेमी हतो। तेना समय मां भ० महावीर स्वामी नुं मन्दिर अने कीर्तिस्तंभ ननो हसे। आ कीर्तिस्तंभ नो शिल्प स्थापत्य अने प्रतिमा विधान ते समयने अनुरूप छे।"

—जैन सत्य प्रकाश, वर्ष ७, अंक १-२-३, मुनि ज्ञानविजयजी

इस प्रकार इस कीर्तिस्तम्भके सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। इसका कारण यह रहा है कि इन विद्वानोंके समक्ष इससे सम्बन्धित पर्याप्त सामग्रीका अभाव रहा है। किन्तु जबसे चित्तौड़के उपर्युक्त शिलालेखों तथा अन्य प्रामाणिक सामग्रीका प्रकाशन हुआ है, तबसे यह स्वीकार कर लिया गया है कि चित्तौड़का कीर्तिस्तम्भ बघेरवाल जातीय दिगम्बर जैनधर्मानुयायी जीजाने निर्माण कराया और उसके पुत्र पुण्यसिंहने उसे पूर्ण करके प्रतिष्ठा करायी।

बा. कामताप्रसादजीने कीर्तिस्तम्भको बघेरवाल जातिके जीजा द्वारा बनवाया हुआ तो स्वीकार किया है किन्तु उसका समय उन्होंने जो संवत् ९५२ दिया है, वह कर्नल टाडकी रिपोर्टके आधारपर दिया है। कर्नल टाडको कीर्तिस्तम्भके अधोभागमें संवत् ९५२ का एक शिलालेख उपलब्ध हुआ था, जिसमें इस स्तम्भको आदिनाथ मन्दिर माना है, जब कि वस्तुतः यह मन्दिर नहीं, मानस्तम्भ था। इससे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि टाड साहबको प्राप्त शिलालेख मूलतः कीर्तिस्तम्भका नहीं था, किन्तु किसी अन्य आदिनाथ मन्दिरका रहा होगा। वह मन्दिर संवत् ९५२ में यहाँ होगा।

ब्र. शीतलप्रसादजीने कीर्ति-स्तम्भका निर्माण-काल संवत् ११०० बताया है, किन्तु उनकी इस मान्यताका क्या आधार रहा है, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं हो पाया।

कई श्वेताम्बर विद्वानोंने चित्रकूटीय महावीर मन्दिरकी प्रशस्तिके आधारपर कीर्तिस्तम्भके निर्माताका नाम 'राजा कुमारपाल' अथवा संघवी कुमारपाल लिखा है। इन विद्वानोंने भ्रमवश अथवा पाठका अर्थ ठीक ढंगसे न समझनेके कारण इस प्रकार लिख दिया है। प्रशस्तिका मूल पाठ इस प्रकार है—

"उच्चैर्मण्डपपंक्ति-देव-कुलिका विस्तीर्णमाणश्रियं
कीर्तिस्तम्भसमीपवर्तिनममुं श्रीचित्रकूटाचले।
प्राक्षादसृजतः प्रसादमसमं श्री मोकलार्वीपतेः
आदेशाद् गुणराजसाधुरमित स्वच्चेदषासीन्मुदा ॥८६॥

× × ×

प्राग्वंशस्य ललाममण्डपगिरि शोभानमश्रेष्ठिकः
प्रष्ठः प्रत्यहष्टधाजिनपतेः पूजा सृजन् द्वादश।
संघाधीश कुमारपाल सुकृती कैलाशलक्ष्मीहृतो
दक्षः दक्षिणतोऽस्य सोदरमिव प्रासादमादीघषत् ॥९५॥"

इन श्लोकोंमें बताया है कि मोकल राजाके आदेशसे गुणराजने चित्रकूट पर्वतपर कीर्ति-स्तम्भके समीप मण्डपों और देवकुलिकाओंसे युक्त जिनप्रासाद (जिनालय) का निर्माण कराया।

इस जिनालयके दक्षिणमें प्राग्वाट (पोरवाड़) वंशके संघपति कुमारपालने भगवान् चन्द्रप्रभकी द्वादश पूजा विधान करके जिनप्रासाद बनवाया।

प्रशस्तिके इन श्लोकोंमें कहीं भी संघाधीश (संघपति) कुमारपाल द्वारा कीर्तिस्तम्भके निर्माणकी चर्चा नहीं है और न कहीं कुमारपालको संघवी ही बतलाया है। ये दोनों भूलें संस्कृत-का ज्ञान न होनेके कारण हुई लगती हैं।

इसी प्रकार मुनि ज्ञानविजयजीकी मान्यता, 'विक्रम सं. ८९५ पहेला नो ए जैन श्वेताम्बर कीर्तिस्तम्भ छे' न केवल भ्रममूलक है, अपितु पूर्वाग्रह और कल्पनापर आधारित है। इस मान्यता-का कोई ऐतिहासिक अथवा पुरातात्त्विक आधार नहीं है। स्वयं श्वेताम्बर लेखकोंने इस कीर्ति-स्तम्भको दिगम्बर पूना (पुण्यसिंह) द्वारा बनवाया हुआ माना है। संवत् १५६६ के पूर्व रचित जयहेमकृत चित्तौड़ चैत्यपरिपाटीमें लिखा है—

"हुंवड़ पूना तणी घूआ तेणि ए मति मंडाअ।
कीरतिथंभ कराविं जात मा हरी सूखडीअ।
सात भुँहि सोहामणीइ विंव सहस दोइ देखि।
पंखी पाछा सचरिआ ए वंदी वीर विशेष ॥१८॥"

इसी प्रकार संवत् १५७३ में गयंदि रचित चित्तौड़ चैत्य परिपाटीमें इस स्तम्भके सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख है—

"पासइ हुंवड पूनानी सुता दे वात कहइ इक ताता तात रे।
सूखडी नइ धन वेगि करावीउ रे कीरतिथंभ विख्यात रे।
चउपरि चोखो चिहु परि कोरणी रे ऊँचउ अति विस्तार रे।
चडता जे भुंइ सात सोह मणी रे विंव सहसदोइ सार नर ॥

ढाल—हवइ दिगंवर देहरइ रे तिहां जे नवसइ विंव।
भामंडल पूठइ भलउ रे छत्रत्रय पडिविंव।
अवियां पूजइ प्रभु पास एतु पूरइ मनकी आस।
चर्चो चंदन केवडइ रे गोरी गावइ रास। भावियां पू० ॥"

इन दोनों रचनाओंमें-से पहली रचनामें बताया है कि हूमड़ पूनाने कीर्तिस्तम्भ बनवाया। वह सातों भुवनोंमें विख्यात था और उसमें दो हजार जिनबिम्ब थे। तथा दूसरी रचनामें बताया है—हूमड़ पूनाकी पुत्रीने अपने पितासे कहा—"आप इस विख्यात कीर्तिस्तम्भको पूरा करा दीजिए। इससे धनकी बेल सूखेगी नहीं। इसे अत्यन्त कलात्मक और ऊँचा बनवाइए, जिससे इसकी सातों भुवनोंमें कीर्ति हो। इसमें दो सहस्र बिम्ब विराजमान कराइए।"

वहाँ पार्श्वप्रभुका एक दिगम्बर जिनमन्दिर था, जिसमें ९०० जिनबिम्ब थे। भामण्डल, तीन छत्र भगवान्‌के ऊपर सुशोभित थे। भव्यजन पार्श्वप्रभुकी पूजा करते हैं। चन्दन, केवड़ा चरचते हैं। ये प्रभु मनकी आशा पूरी करते हैं।

इन श्वेताम्बर मुनियों द्वारा विरचित रचनाओंसे भी सिद्ध है कि कीर्तिस्तम्भ दिगम्बर शिल्प है, उसको पुण्यसिंहने अपनी पुत्रीके कहनेसे पूरा कराया था। उस स्तम्भमें २००० जिनबिम्ब थे। वहाँ एक पार्श्वनाथ दिगम्बर मन्दिर था, जिसमें ९०० जिनबिम्ब विराजमान थे।

जैनधर्मका केन्द्र

इस पार्श्वनाथ जैनमन्दिरके सम्बन्धमें इतना ही ज्ञात हो सका है कि यह जिनदास शाहका बनवाया हुआ था। गोम्मटसार टीकाकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि इस टीकाके कर्ता भट्टारक नेमिचन्द्र लाला ब्रह्मचारीके आग्रहवश गुजरातसे आकर चित्रकूटमें इसी पार्श्वनाथ मन्दिरमें ठहरे थे। यह टीका वीर नि. सं. २१७७ (ई. स. १६५१) में समाप्त हुई थी। भट्टारक नेमिचन्द्र उससे पूर्व ही उक्त मन्दिरमें गये होंगे। इससे प्रतीत होता है कि उक्त मन्दिर बहुत विख्यात था और वह १७वीं शताब्दीमें भी विद्यमान था।

इस मन्दिरके अतिरिक्त चित्तौड़में उस समय शिलालेखमें उल्लिखित आदिनाथ मन्दिरका अस्तित्व सिद्ध होता है। किन्तु इन मन्दिरोंके अतिरिक्त कोई अन्य दिगम्बर जैनमन्दिर था या नहीं, यह ज्ञात नहीं होता। जो भी हो, पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर और कीर्तिस्तम्भकी ख्यातिसे ही प्रतीत होता है कि चित्तौड़में जैनोंका बहुत प्रभाव था तथा यह स्थान जैनधर्मका प्रभावशाली केन्द्र था।

दुर्ग-दर्शन

चित्तौड़के दुर्गके सम्बन्धमें विख्यात है—'गढ़ तो चित्तौड़ गढ़ और सब गढ़ैया हैं'। इस गढ़का निर्माण चित्रांगद मौर्यने कराया था। उसके नामपर ही इस स्थानका नाम चित्रकूट पड़ गया। उसीका अपभ्रंश होकर चित्तौड़ बन गया। यह ५वीं शताब्दीसे १६वीं शताब्दी पर्यन्त गुहिलोत तथा मेवाड़के सिसौदिया नरेशोंकी राजधानी रहा। यह गढ़ शिल्प और स्थापत्य कलाका अनूठा उदाहरण है। यह अपने देशकी स्वाधीनताके लिए प्राणोंका उत्सर्ग करनेवाले वीरों और अपने शीलकी रक्षाके लिए धधकती हुई अग्नि-ज्वालाओंमें हँसते-हँसते कूद पड़नेवाली वीर ललनाओंका अमर समाधि-मन्दिर है।

चित्तौड़गढ़पर प्रथम आक्रमण सन् १३०३ में हुआ। यह आक्रमण अलाउद्दीन खिलजीने चित्तौड़के शासक रावल रतनसिंहकी अत्यन्त सुन्दरी रानी पद्मिनीको प्राप्त करनेकी आशामें किया

था। वह पद्मिनीको तो प्राप्त नहीं कर सका, अलबत्ता उसने चित्तौड़पर अवश्य अधिकार कर लिया। अमीर खुसरोके ग्रन्थ 'तारीख-ए-अलाई' की सूचनानुसार अलाउद्दीनने किला फतह करनेके बाद तीस हजार हिन्दुओंको कत्ल करवा दिया। रानी पद्मिनीने अन्य अनेक स्त्रियोंके साथ जौहर किया। यह चित्तौड़का प्रथम शाका कहलाता है।

सन् १५३२ में गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने राणा विक्रमादित्यके शासनकालमें चित्तौड़पर आक्रमण किया। विक्रमादित्यके अशोभनीय व्यवहारके कारण मेवाड़के सरदार उससे अप्रसन्न रहते थे। अतः राजमाता कर्मवतीने उसे बूँदी भेज दिया। सरदारोंने देओलियाके रावत बाघसिंहको राज्यचिह्न धारण कराकर युद्धकाल तक महाराणाका प्रतिनिधि नियुक्त किया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। इस युद्धमें सुलतानको विजय मिली। राजमाता कर्मवतीने १३ हजार वीरांगनाओंके साथ जौहर किया। बाघसिंह आदि अनेक सरदार मारे गये।

इस युद्धके समयमें ही महारानी कर्मवतीने मुगल सम्राट् हुमायूँको राखी भेजकर सहायताकी प्रार्थना की थी। हुमायूँको चित्तौड़ पहुँचनेमें कुछ विलम्ब हो गया। चित्तौड़पर बहादुरशाहका अधिकार हो गया। जब हुमायूँ यहाँ पहुँचा तो बहादुरशाह भयभीत होकर किला छोड़कर भाग गया। यह चित्तौड़का दूसरा शाका कहलाता है।

सन् १५६७ में मुगल बादशाह अकबरने चित्तौड़के ऊपर आक्रमण किया। महाराणा उदयसिंह बदनौरके राठौड़ जयमल और केलवाके सिसौदिया फत्ताको युद्धका नायक बनाकर सैन्य संग्रह करनेके लिए पहाड़ोंमें चले गये। दोनों नायकोंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की। दुर्गपर अकबरका अधिकार हो गया। यह चित्तौड़का तीसरा शाका कहलाता है। इस युद्धके पश्चात् ही राणा उदयसिंहने एक नवीन नगर उदयपुरकी नींव डाली और उसे ही मेवाड़ राज्यकी नयी राजधानी बनाया।

इसके पश्चात् महाराणा प्रतापने अपनी मातृभूमिकी रक्षाके लिए निरन्तर युद्ध किये। फलतः उन्होंने चित्तौड़को छोड़कर सम्पूर्ण मेवाड़को मुगल दासतासे मुक्त करानेमें सफलता प्राप्त की।

दुर्ग चित्तौड़ शहरके निकट ही है। दुर्गमें दर्शनीय स्थल दिखानेके लिए ताँगे मिल जाते हैं तथा दुर्गमें गाइड भी मिलते हैं।

दुर्गका प्रथम प्रवेशद्वार पाडन पोल है। इस द्वारमें प्रवेश करनेसे पूर्व ही बायीं ओर रावत बाघसिंहका स्मारक (चबूतरा) बना हुआ है। द्वितीय पोल भैरों पोलको पार करते ही सड़कके दाहिनी ओर चार खम्भोंवाली छोटी छतरी जयमलके सम्बन्धी कल्लाका स्मारक है तथा छह खम्भोंवाली बड़ी छतरी १६ वर्षीय राठौड़ जयमलका स्मारक है। इसके बाद क्रमशः हनुमान पोल, गणेश पोल, जोरला पोल, लक्ष्मण पोल और राम पोल मिलते हैं। यहाँसे दक्षिणकी ओर जानेवाले मार्गपर सिसौदिया फत्ताका स्मारक है। थोड़ा आगे बढ़नेपर बनवीरकी बनायी हुई दीवार है। यह राणा सांगाके भाई पृथ्वीराजका दासीपुत्र था। इसने महाराणा विक्रमादित्यको मारकर चित्तौड़की गद्दी हथिया ली थी। इसने कुमार उदयसिंहको भी मारनेका प्रयत्न किया था किन्तु पन्ना धायने अपने पुत्रको उदयसिंहके वस्त्र पहनाकर बनवीरके क्रोधका शिकार बना दिया और उदयसिंहकी रक्षा की। यहीं नौलखा भण्डार है। कहा जाता है, यहाँ पहले राज्य-कोष रहता था। उक्त दीवारके पूर्वी भागमें तोपखाना और संग्रहालय बना हुआ है।

बनवीरकी दीवारके मध्यमें जैन मन्दिर बने हुए हैं जो राजपूत व जैन स्थापत्य कलाके उत्कृष्ट नमूने हैं। यहाँ प्राप्त एक शिलालेखके अनुसार इनका निर्माण महाराणा कुम्भाके कोषाध्यक्ष और शाह कोलाके पुत्र बेलकाने सन् १४४८ में कराया था और जिनसागर सूरि द्वारा इस मन्दिरमें

शान्तिनाथ भगवान्‌की प्रतिष्ठा करायी थी। यह मन्दिर पांच फीट ऊँचे प्रासाद पीठपर वर्गाकार बना हुआ है। प्रवेशद्वार उत्तर और पश्चिम दिशामें हैं। इनके सिरदलपर तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति बनी हुई है। दक्षिण और पूर्व दिशामें गवाक्ष बने हुए हैं। इस मन्दिरमें गर्भगृह और खेलामण्डप अथवा सभामण्डप है। वर्तमान वेदी सूनी है। इसके बगलमें भी एक मन्दिर है। इसमें खुला गर्भगृह और आगे ऊँची चौकीका मण्डप है। इस मन्दिरमें भी कोई मूर्ति नहीं है। इनकी बाह्य भित्तियोंपर जैन तीर्थंकरों और उनके शासन देवताओंकी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

कुछ लोग इस मन्दिरको शृंगार चँवरी कहते हैं। उनका कहना है कि महाराणा कुम्भाकी राजकुमारीके विवाहकी चँवरी (विवाह मण्डप) यही वेदी है। ऐसे लोग जैन मन्दिरों और उनकी वेदी-रचनाके सम्बन्धमें जानकारी न होनेके कारण ऐसी भूल करते हैं। उपलब्ध शिलालेखों और मन्दिरके प्रवेशद्वारके ऊपर एवं भित्तियोंपर बनी तीर्थंकर-मूर्तियोंसे इसके जैन मन्दिर होनेमें कोई सन्देह नहीं है।

बनवीरकी दीवारके दक्षिणमें महाराणा कुम्भाके महल हैं। कहते हैं, इनके तहखानेसे एक सुरंग गोमुख तक जाती है। इनके निकट ही कंवरपदाके खण्डहर हैं। यहीं उदयसिंहका जन्म, पन्ना धाय द्वारा अपने पुत्रका बलिदान, महाराणा विक्रमादित्य द्वारा मीराबाईको विष-पान कराना आदि घटनाएँ हुई थीं।

कुम्भामहलका प्रवेश-द्वार 'बड़ी पोल' या 'त्रिपोलिया' कहलाता है। इस पोलके सामने महाराणा फतहसिंह द्वारा नवनिर्मित दो मंजिला भव्य महल है। इसमें सरकारी संग्रहालय है। इसके पश्चिममें मोतीबाजारके खण्डहर हैं। फतहप्रकाश महलके दक्षिण-पश्चिममें एक भव्य श्वेताम्बर मन्दिर है जो २७ देवरियोंके कारण 'सतबीस देवरा'के नामसे प्रसिद्ध है। यह ११वीं शताब्दीका बताया जाता है।

यहाँसे एक छोटी सड़क दक्षिण-पश्चिमकी ओर विजयस्तम्भके लिए जाती है। इसी सड़क-पर महाराणा कुम्भा द्वारा निर्मित कुम्भश्यामका मन्दिर है। इस मन्दिरके अहातेमें मीराँ मन्दिर है जहाँ मीराबाई मुरली बजाते हुए कृष्णके सामने भक्तिमें लीन दिखाई गयी है। इस मन्दिरके सामने मीराँके गुरु रैदासकी छत्री बनी हुई है। इन मन्दिरोंसे आगे १० फीट ऊँची चौकीपर १२२ फीट ऊँचा नौ मंजिलका विजयस्तम्भ बना हुआ है। इसमें ऊपर जानेके लिए १५७ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके आन्तरिक और बाह्य भागमें पौराणिक देव-देवियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इस स्तम्भका निर्माण महाराणा कुम्भाने माँडूके सुलतान महमूद खिलजीके ऊपर अपनी विजयके उपलक्ष्यमें सन् १४४० से १४४८ में कराया था। इसके निकट एक समतल स्थल है जो यहाँके महाराणाओंका श्मशानस्थल था तथा यहींपर कर्मवती आदि रानियों और राजपूत-ललनाओंने जलती हुई चिताओंमें जौहर व्रत किया था।

इसके निकट ही गोमुख कुण्ड है। इसमें एक चट्टानमें बने गोमुखसे पहाड़ी स्रोत द्वारा निरन्तर जल गिरता रहता है। इसके उत्तरी किनारेपर पार्श्वनाथ जैन मन्दिर है। यह छोटा-सा मन्दिर श्वेताम्बरोंका है। इसमें एक चैत्य है। कुम्भा महलसे इस मन्दिर तक सुरंग आती है।

गोमुख कुण्डके दक्षिणमें जयमल और फत्ताके भग्न महल खड़े हैं। इन महलोंके दक्षिणमें और सड़कके पश्चिमी किनारेपर कालिका मन्दिर है। यह ८-९वीं शताब्दीका बताया जाता है। इसके दक्षिण-पश्चिममें नौगजा पीरकी कब्र बनी हुई है। यह ९ गज लम्बी है। यहाँसे सड़क द्वारा कुछ आगे बढ़नेपर पद्मिनी महल मिलते हैं। एक छोटा महल तालाबके बीचमें बना हुआ है। इसके सामने बने हुए महलके एक कमरेमें बड़े-बड़े दर्पण लगे हुए हैं। कहते हैं, जल महलमें

पद्मिनो खड़ी हो गयी थी तथा अलाउद्दीन खिलजीने दर्पणवाले कमरेमें खड़े होकर महारानीका प्रतिबिम्ब देखा था।

इसके निकट चित्रांग तालाब, इसके पूर्वकी ओर सड़कके किनारे राजटीला, यहाँसे सड़क उत्तरकी ओर सूरजपोल होती हुई कीर्तिस्तम्भको जाती है। इस मार्गपर पश्चिमकी ओर गोरा-बादलके मकानोंके खण्डहर मिलते हैं। सूरजपोलसे उत्तरकी ओर जानेवाली सड़कपर जैन कीर्तिस्तम्भ खड़ा है। यह सात मंजिलका ७५ फोट ऊँचा है। इसमें ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके सामने महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर बना हुआ है। कीर्तिस्तम्भ इस मन्दिरका मानस्तम्भ कहलाता है। सम्भवतः यह मन्दिर पहले चन्द्रप्रभ मन्दिर कहलाता था, जिसका निर्माण साह जीजाने किया था। मुस्लिम कालमें मूर्ति शायद खण्डित कर दी गयी। फिर शान्ति-कालमें यहाँ महावीर स्वामीकी मूर्ति विराजमान कर दी गयी। यह मन्दिर अत्यन्त कलापूर्ण है। बाह्य भित्तियोंपर जैन देवताओं, तीर्थंकरों और लोकजीवनसे सम्बन्धित दृश्योंकी मूर्तियोंका सूक्ष्म अंकन किया गया है। यह मन्दिर, कीर्तिस्तम्भ और बनवीरको दीवारके निकटस्थ मन्दिर पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं।

यहाँसे एक सड़क पश्चिमकी ओर सतवीस देवरा होती हुई नगरकी ओर जाती है। मार्ग वही है जिससे आये थे।

धर्मशाला

नगरमें एक दिगम्बर जैन मन्दिर और दो चैत्यालय हैं। मन्दिरमें कई मूर्तियाँ प्राचीन हैं। यहाँ दिगम्बर जैनोंकी संख्या नगण्य है। नगरमें कोई दिगम्बर जैन धर्मशाला नहीं है। ठहरनेके लिए स्टेशनके निकट पर्यटक विश्राम-गृह, सरकारी सराय और श्वेताम्बर जैन धर्मशाला है। अन्य धर्मशालाएँ और लाज भी हैं।

मार्ग

चित्तौड़ पश्चिमी रेलवेकी अजमेर-खण्डवा शाखापर अजमेरसे १८९ कि. मी., नीमचसे ५३ कि. मी., रतलामसे ३७५ कि. मी. है। उदयपुरसे रेलमार्ग द्वारा ११७ कि. मी. है। दिल्लीसे उदयपुर जानेवाले रेलमार्ग द्वारा यह ६३० कि. मी. है। सड़कसे भी इसका सभी बड़े स्थानोंसे सम्बन्ध है। यह प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र है।

बमोतर (श्री शान्तिनाथजी)

अवस्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शान्तिनाथ, राजस्थान प्रदेशके चित्तौड़गढ़ जिलेमें प्रतापगढ़-के उत्तरमें प्रतापगढ़-छोटी सादड़ी-चित्तौड़गढ़ सड़कपर ५ कि. मी. दूर बमोतर गांवमें अवस्थित है। यहाँ जानेके लिए मन्दसौर स्टेशनपर उतरना पड़ता है। मन्दसौरसे प्रतापगढ़ तक ३२ कि. मी. पक्की सड़क है। प्रतापगढ़से क्षेत्र तकका मार्ग पक्का है। क्षेत्र सड़कसे लगभग १०० गज दूर है।

अतिशय

वि. संवत् १९०२ में भगवान् शान्तिनाथकी ५ फुट उत्तुंग अति मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान की गयी। इस प्रतिमाकी स्थापनाके बाद इस मन्दिरको अतिशय क्षेत्र माना जाने लगा। अतिशय क्षेत्रके रूपमें इसकी मान्यता निरन्तर बढ़ती गयी। जैनोंके अतिरिक्त आसपासकी ग्रामीण और भील जनतामें भी इस क्षेत्रकी बहुमान्यता है। फलतः प्रतिवर्ष यहाँ हजारों जैनेतर भी दर्शनार्थ आते हैं। इनका विश्वास है कि भगवान् शान्तिनाथकी मान्यतासे उनके सभी मनोवांछित कार्य पूरे हो जाते हैं। साधारण जनता ही नहीं, यहाँके राजा और जागीरदार भी इस प्रतिमाके बड़े भक्त रहे हैं। मनोकामनाएँ पूर्ण होनेपर वे यहाँ भेंटें भी देते रहे हैं। महाराज रघुनाथसिंहजीके महाराजकुमार मानसिंहजीने इस मन्दिरके लिए जागीर दी थी। इसी प्रकार उनके सुपुत्र अन्तिम महाराज रामसिंहजीने पुत्रजन्मकी मान्यता पूरी होनेके उपलक्ष्यमें विक्रम सं. १९०५ में अपने आदेश संख्या २३२८ दिनांक ७-३-३४ द्वारा प्रतापगढ़ रियासतकी सीमामें एक वर्षमें दो बार अर्थात् फाल्गुन शुक्ला ८ और १४ को किसी जीवकी हिंसा न करनेका आदेश जारी किया था, जिसका पालन अब तक होता चला आ रहा है।

इसी मूर्तिके चामत्कारिक प्रभावोंके कारण मन्दिरका नाम भी श्री शान्तिनाथ मन्दिर हो गया है। मूर्तिके चमत्कारोंके सम्बन्धमें जनतामें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

कहा जाता है कि विक्रम सं. १९९० में जब मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया गया था, मन्दिरका द्वार बहुत छोटा था। उसमें-से प्रतिमा अन्दर नहीं जा सकती थी। प्रतिमाको अन्दर वेदीमें विराजमान करना था। सब लोग इस समस्याके कारण चिन्तित थे। तब रात्रिमें प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक हेमचन्द्रजीको स्वप्न हुआ, "मैं आज रात्रिको स्वयं अपने स्थानपर आरूढ़ हो जाऊँगा, तुम केवल अपना हाथ ही लगा देना।" प्रातःकाल लोगोंने देखा कि प्रतिमा अपने उद्दिष्ट स्थानपर विराजमान हो गयी।

इसी प्रकार एक दूसरी किंवदन्ती है कि बमोतर गाँवसे ५ कि. मी. दूर बमोतर गाँवके जागीरदार आसोज सुदी ८ अर्थात् होमाष्टमीको शान्तिनाथ मन्दिरसे २ फर्लांगपर स्थित खम्बा देवीके मन्दिरमें प्रतिवर्ष २०-२५ बकरोंकी बलि दिया करते थे। उन्हें शान्तिनाथकी दुहाई देकर बलिसे रोका गया, किन्तु ठाकुर साहब नहीं माने। उन्होंने ज्यों ही तलवार उठायी कि हाथ तलवारसे चिपक गये। जब उन्हें शपथ दिलाकर शान्तिनाथका गन्धोदक पिलाया गया, तब उनके हाथ तलवारसे पृथक् हुए।

क्षेत्रपर जीर्णोद्धार कार्य

क्षेत्रका जीर्णोद्धार सर्वप्रथम विक्रम सं. १९६० में हरजीत टेकेवाले दिगम्बर जैन प्रतापगढ़-ने कराया था। इसके पश्चात् संवत् १९९० में संघपति सेठ घासीलाल पूनमचन्दजीने प्रतिष्ठा करायी। इस महोत्सवमें लगभग एक लाख व्यक्ति बाहरसे पधारे थे। इस प्रतिष्ठा-समारोहकी सर्वाधिक उल्लेखनीय घटना चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराजका संघसहित यहाँ पधारना था। आचार्य महाराज बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें सर्वाधिक प्रभावशाली दिगम्बर जैनाचार्य थे।

क्षेत्र-दर्शन

मन्दिरमें गर्भगृह और दो खेला मण्डप हैं। गर्भगृहमें चबूतरेनुमा वेदीपर भगवान् अजितनाथकी मूलनायक मूर्ति विराजमान है। यह २ फुट ७ इंच ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन है।

इसकी प्रतिष्ठा संवत् १७१२ में हुई थी। मूर्तिकी नाक कुछ खण्डित है। यह एक शिलाफलकके फ्रेममें विराजमान है। शिलाफलक ४ फुट ८ इंच ऊँचा है। मूर्तिके सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। उसके दोनों पार्श्वोंमें गज और मालाधारी देव हैं। शेष सारे फलकपर खड्गासन और पद्मासन ५७ मूर्तियाँ हैं। फलक खण्डित हैं। लगता है, कुछ मूर्तियाँ खण्डित हो गयी हैं। सम्भवतः इस फलकपर ७२ मूर्तियाँ होंगी। फलक प्राचीन है और किसी अन्य मूर्तिका लगता है।

इसके आगे बायीं ओर संवत् १८२८ की ११ इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मप्रभ भगवान्‌की पद्मासन मूर्ति है तथा दायीं ओर १ फुट ३ इंच ऊँची चन्द्रप्रभकी संवत् १६५९ में प्रतिष्ठित कृष्णवर्णकी पद्मासन मूर्ति है। इनके अतिरिक्त ८ धातु मूर्तियाँ भी हैं।

गर्भगृहके आगे खेला मण्डपमें १ फुट ४ इंच ऊँचे चबूतरेपर शान्तिनाथकी ५ फुट ऊँची और ४ फुट २ इंच चौड़ी कृष्णवर्ण पद्मासन भव्य मूर्ति है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९०२ फागुन कृष्णा ९ को हुई थी। इसकी दायीं भुजासे पेट तक तथा बायीं भुजापर निशान बने हुए हैं।

इसके आगे २ फुट ऊँचे चबूतरेपर वासुपूज्यकी संवत् १९२९ में प्रतिष्ठित और २ फुट ३ इंच ऊँची कृष्णवर्णवाली मूर्ति विराजमान है। बायीं ओरकी दीवारमें क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

इस खेला मण्डपके आगे एक खेला मण्डप और है जिसमें मध्यमें पूजाका चबूतरा बना हुआ है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर धर्मशाला है, जिसमें २३ कमरे हैं। प्रकाश के लिए बिजली है तथा जलके लिए कुआँ है।

मेला

यहाँ ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमाको वार्षिक मेला होता है।

व्यवस्था—क्षेत्रकी व्यवस्था बीसा नरसिंहपुरा पंचान प्रतापगढ़का एक ट्रस्ट करता है, जिसके प्रमुख श्री हरजीत टेकेवालोंके कुटुम्बीजनोंमें-से कोई व्यक्ति होते हैं।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मैनेजिंग ट्रस्टी, श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
बमोतर, पो. सिधपुरा (जिला चित्तौड़गढ़) राजस्थान।

अन्देश्वर पार्श्वनाथ

मार्ग और अवस्थिति

'श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अन्देश्वर पार्श्वनाथ' राजस्थान प्रदेशके बाँसवाड़ा जिलेकी कुशलगढ़ तहसीलमें है। समीपका रेलवे स्टेशन पश्चिमी रेलवेका उदयगढ़ है जो यहाँसे ५० कि. मी. है। यह क्षेत्र दाहोदसे उत्तरकी ओर ५० कि. मी., कुशलगढ़से पश्चिमकी ओर १५ कि. मी. तथा कलिंजरासे पूर्वकी ओर ८ कि. मी. दूर है। यह कुशलगढ़ और कलिंजराके मध्य है। नियमित बस सेवा है। बस मन्दिरके आगे ही रुकती है। इसका पोस्ट ऑफिस कुशलगढ़ है। यह क्षेत्र एक छोटी-सी पहाड़ीपर है। चारों ओर सघन वन है।

क्षेत्रका इतिहास

इस क्षेत्रके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, एक भील किसान एक बार अपने खेतमें हल चला रहा था। अकस्मात् उसका हल पत्थरसे टकराया। किसानने उस पत्थरको प्रयत्नपूर्वक निकाला। किन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह साधारण पाषाण नहीं है, बल्कि पाषाणके भगवान् हैं। भगवान्ने साक्षात् दर्शन दिये हैं, इस विश्वाससे वह भगवान्के सामने भक्तिसे नृत्य करने लगा। धीरे-धीरे यह समाचार उसके परिवार और जातिवालोंको भी मालूम हुआ। अबोध भक्तोंका वहाँ मेला लग गया। सबने भगवान्के ऊपर तेल-सिन्दूर पोतकर खूब भक्ति की। प्रतिदिन ये लोग इसी प्रकार भगवान्को भक्ति करके रिझाने लगे। भगवान्का थान भी एक खेजड़ेके वृक्षके नीचे बन गया।

एक दिन कलिंजराके श्री भीमचन्द महाजनको स्वप्न आया। दूसरे दिन महाजन यहाँ पहुँचा, दर्शन किये, अभिषेक किया। यह समाचार दिगम्बर जैन समाजको भी ज्ञात हुआ। जैन लोग यहाँ आये और छोटा-सा मन्दिर बनवाकर उसमें मूर्तिको विराजमान कर दिया। धीरे-धीरे अन्देश्वर पार्श्वनाथकी प्रसिद्धि सारे बागड़, मध्यप्रदेश और गुजरात प्रान्तमें फैल गयी। फलतः जनता अधिकाधिक संख्यामें आने लगी।

अतिशय

भगवान् पार्श्वनाथकी उपर्युक्त मूर्तिके अतिशयोंके सम्बन्धमें लोगोंमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, एक बार चोरोंने चाँदीके किवाड़ उतार लिये और उन्हें लेकर चल दिये। एक बार उन्होंने फिर प्रयत्न किया और अबकी बार तिजोड़ी खोलकर रुपये निकाल लिये। किन्तु इस बार वे जा नहीं सके, वे अन्धे हो गये और यहींपर पासके जंगलमें भटकते रहे। कहा नहीं जा सकता कि इन बातोंमें कहाँ तक सचाई है।

मूर्तिके अतिशयोंसे प्रभावित होकर अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति यहाँ मनोकामना लेकर आते हैं।

क्षेत्र-दर्शन

यह क्षेत्र पहाड़के ऊपर जंगलमें है। यहाँ कोई बस्ती नहीं है, केवल दो दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशाला हैं। दोनों ही मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिर कहलाते हैं। एक मन्दिर कुशलगढ़की श्री दिगम्बर जैन पंचायतने बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९६५ में हुई थी। भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण चामत्कारिक मूर्ति इसी मन्दिरमें विराजमान है। दूसरा मन्दिर कुशलगढ़-वासी श्री हीराचन्द महाजनने बनवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १९९२ में हुई थी। इसका निर्माण कार्य अब भी चल रहा है। इनमें पहला मन्दिर ही बड़ा-मन्दिर कहलाता है।

बड़े-मन्दिरमें गर्भगृह और सभा-मण्डप है। उसके आगे सहन है। मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी १ फुट ८ इंच ऊँची कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमाके ऊपर सप्त फणावली है। यह प्रतिमा एक शिलाफलकमें है। भगवान्के सिरके ऊपर तीन छत्र हैं। उनके ऊपर दुन्दुभिवादक हैं। उनके ऊपर भी पाँच पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इनके दोनों पार्श्वोंमें आकाशचारी देव और गज हैं। फणके पार्श्वोंमें मालाधारी गन्धर्व हैं। उनसे नीचे दोनों ओर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इस मूर्तिके ऊपर कोई लेख नहीं है। यह मूर्ति इसी स्थानपर निकली थी। कहते हैं, जब इस मूर्तिको बाहर मन्दिरमें विराजमान करनेके लिए ले जाना चाहा तो वह उठाये न उठी। तब उसी स्थानपर दूसरा मन्दिर बनाया गया।

यह मूर्ति अनुमानतः १२-१३वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। इस मूर्तिके अतिरिक्त वेदीपर पाषाणकी ८ और धातुकी ९ मूर्तियाँ और भी विराजमान हैं।

इस मन्दिरसे आगे सड़कके किनारे दूसरा मन्दिर है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी २ फुट ७ इंच अवगाहनावाली कृष्ण पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह ९ फणवाली है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९९२ में हुई थी। इसके अतिरिक्त वेदीपर ८ पाषाणकी और १० धातुकी मूर्तियाँ भी हैं।

दोनों ही मन्दिर शिखरबन्द हैं।

धर्मशाला

क्षेत्रपर दिगम्बर जैन धर्मशाला है। प्रकाशके लिए लालटेनोंकी व्यवस्था है। मन्दिरसे लगभग १०० गज दूर एक तालाबके निकट कुआँ है। जल-पूर्तिके लिए यही एकमात्र साधन है। क्षेत्र नागरिक कोलाहलसे दूर एकान्त और शान्त वातावरणमें अवस्थित है।

व्यवस्था

व्यवस्थाकी दृष्टिसे यह निर्णय किया गया कि अन्देश्वर कलिंजराके निकट है, परन्तु तत्कालीन कुशलगढ़ स्टेटमें होनेसे तथा बाँसवाड़ा-कुशलगढ़ स्टेटोंके बीच सीमा-विवाद होनेके कारण कलिंजराके मार्गसे सामान पहुँचाना कठिन था। अतः क्षेत्रकी व्यवस्थाका भार दिगम्बर जैन समाज कुशलगढ़को दिया गया।

वार्षिक-मेला

क्षेत्रका वार्षिक उत्सव कार्तिक पूर्णिमाको होता है। इसी दिन अन्देश्वर पार्श्वनाथ प्रकट हुए थे। घोडा भीमचन्दको स्वप्न दिया था। अतः तभीसे प्रथम ध्वजारोहण घोडा भीमचन्द एवं उनके वंशजों द्वारा ही किया जाता है जो अब तक कायम है।

पता —
मन्त्री, श्री अन्देश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
अन्देश्वर, पो. कलिंजरा (जिला बाँसवाड़ा) राजस्थान।

नागफणी पार्श्वनाथ

मार्ग और अवस्थिति

यह एक अतिशय क्षेत्र है। ऋषभदेवसे लगभग ४० कि. मी. दूर बीछीवाड़ा नगर है। नियमित बस सेवा है। बीछीवाड़ासे मैस्वो नदी तक १० कि. मी. लम्बी पहाड़ी सड़क है जो पत्थरोंके टुकड़े डालकर बनायी गयी है। बीछीवाड़ा होती हुई बस लगभग ६ कि. मी. तक जाती है। वहाँसे काफी चढ़ाई और उतराई है। अतः पैदल ही यात्रा की जा सकती है। मैस्वो नदीपर पहुँच कर, मौदर गाँवसे पूर्व ही नदीके किनारे बायीं ओर लगभग एक फलाँग चलकर पहाड़के ऊपर मन्दिर दिखाई देने लगता है। मन्दिर तक जानेके लिए लगभग ५० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। जहाँ सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं, वहाँ एक जलकुण्ड है। पहाड़के कई स्रोतोंसे जल निरन्तर आता रहता है और एक गोमुखीसे इस कुण्डमें गिरता रहता है। इसी कुण्डका जल पीने और

भगवान्‌के अभिषेकके काममें आता है। कहते हैं, कभी-कभी यहाँ सिंह आदि वन्य पशु भी जल पीने आ जाते हैं। यह स्थान राजस्थान प्रान्तके डूंगरपुर जिलेमें है। प्राचीनकालमें क्षेत्रके निकट बस्ती थी।

क्षेत्र-दर्शन

पहाड़ीके ऊपर मन्दिर बना हुआ है। मन्दिरमें गर्भगृह और उसके आगे खेला मण्डप है। मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। किन्तु पार्श्वनाथकी यह स्वतन्त्र प्रतिमा नहीं है, अपितु पार्श्वनाथके सेवक धरणेन्द्रके शीर्षपर पार्श्वनाथकी लघु प्रतिमा विराजमान है। यह काफी घिस गयी है जिससे प्रतीत होता है कि प्रतिमा काफी प्राचीन है। भगवान्‌के सिरपर सप्तफण-मण्डप बना हुआ है। इनमें तीन फण खण्डित हैं।

धरणेन्द्र ललितासनमें बैठे हुए हैं। उनके दायें हाथमें पुष्प है तथा बायाँ हाथ जंघापर रखा है। उनके हाथोंमें दस्तबन्द, भुजाओंमें भुजबन्द तथा गलेमें रत्नहार हैं। धोतीकी चुन्नटोंका अंकन बड़ा भव्य बन पड़ा है। बायें हाथके नीचे उत्तरीय लटका हुआ है।

इस प्रतिमाका वर्ण श्याम है। अवगाहना २ फुट २ इंच है। प्रतिमाकी चरण-चौकीके ऊपर कोई लेख नहीं है। मस्तकका पृष्ठभाग खण्डित है। यही प्रतिमा जनतामें नागफणी पार्श्वनाथके नामसे प्रसिद्ध है।

नागफणी पार्श्वनाथकी दायीं ओर मल्लिनाथकी कृष्णवर्ण वाली और १ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर पार्श्वनाथकी प्रतिमा है। यह कृष्ण वर्ण है, पद्मासन है और १ फुट ३ इंच उन्नत है। मल्लिनाथ प्रतिमाके पादपीठपर इस प्रकार लेख अंकित है—"श्री मूलसंघे १६३७ वर्षे वैशाख वदि ८ बुधे भट्टारक श्री गुणकीर्ति गुरूपदेशात्"।

वेदी पर धातुके पार्श्वनाथ और एक चौबीसी विराजमान है। गर्भगृहके द्वारपर पार्श्वनाथ भगवान्‌की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् २००८ ज्येष्ठ कृष्णा ५ को हुई थी। खेला मण्डपके तीन ओर छड़दार किवाड़ें लगी हुई हैं। यहाँका दृश्य बिलकुल तपोवन-जैसा लगता है। मण्डपके आगे दोनों ओर ऊँची पर्वतमालाएँ और हरे-भरे वृक्षोंकी कतारें हैं। पर्वतोंके मध्य चौरस भागमें मैस्वो नदी है। यह नदी बरसाती है। ग्रीष्म ऋतुमें यह सूखी पड़ी रहती है। यह स्थान बिलकुल निर्जन है। इसका निकटवर्ती मौदर गाँव यहाँसे प्रायः दो फर्लांग दूर है।

अतिशय

जैन एवं जैनेतर जनतामें एक अतिशय क्षेत्रके रूपमें इस क्षेत्रकी मान्यता है। भक्त जन मनोकामनाएँ लेकर यहाँ आते हैं। ग्रामवासियोंके पशु पहाड़पर चरने जाते हैं। कभी कोई पशु चरते-चरते दूर निकल जाता है और सन्ध्याको बहुत ढूँढ़नेपर भी जब नहीं मिलता तो पशुका मालिक नागफणी बाबाकी दुहाई देकर बोलता है—"बाबा! अगर मेरा जानवर सुबह घर आ जायेगा तो मैं तेरे ऊपर दूध चढाऊँगा।" कहते हैं, इस पहाड़पर सिंह दम्पती रहता है। किन्तु आज तक कभी भी सिंहने यहाँ किसी पशुका शिकार नहीं किया। यहाँके आदिवासियोंका यह दृढ़ विश्वास है कि नागफणी बाबाकी छत्रछायामें कभी भी उनकी कोई हानि नहीं हो सकती।

धर्मशाला

मन्दिरके दोनों पार्श्वोंमें धर्मशाला बनी हुई है। मन्दिरकी दायीं बाजूमें नीचे ऊपर हाल बने हुए हैं। बायें पार्श्वमें नीचे तीन कमरे और ऊपर एक और हाल बना हुआ है।

यात्रियोंके लिए गद्दे, रजाइयाँ और बर्तनोंकी सुविधा उपलब्ध है। जलकी सुविधा प्रकृतिने कर ही दी है।

प्रतिमाका इतिहास और किंवदन्ती

नागफणी पार्श्वनाथ प्रतिमाकी प्राप्तिके सम्बन्धमें एक अद्भुत किंवदन्ती प्रचलित है। कहते हैं, पहले यह प्रतिमा ऊपर पहाड़पर पेड़ोंके झुरमुटमें पड़ी हुई थी। एक महिला किसी कार्यवश पहाड़पर जा रही थी। जब वह इस प्रतिमाके निकटसे गुजरी तो अकस्मात् उसकी दृष्टि प्रतिमाके ऊपर पड़ी। भगवान्‌के दर्शन पाकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मनौती मनायी— "बाबा! अगर मेरी कामना पूर्ण हो जाये तो मैं प्रतिदिन तेरी सेवा-पूजा किया करूँगी।" जब इस भक्त महिलाकी कामना पूर्ण हो गयी तो वह अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रतिदिन वहाँ आकर भगवान्‌की सेवा-पूजा करने लगी। उसने अन्य लोगोंसे भी इस प्रतिमाके सम्बन्धमें चर्चा की। फलतः भक्तजनोंकी संख्या बढ़ने लगी। एक दिन उस भक्त महिलाने अपने भगवान्‌से कहा— "बाबा! मैं बूढ़ी औरत ठहरी। मुझमें हर रोज इतना ऊँचा चढ़कर आनेकी शक्ति नहीं है। तुम नीचे आ जाओ, वरना मैं कलसे नहीं आऊँगी।" भक्तके निश्छल हृदयकी पुकार थी यह। फलतः रात्रिमें देवने स्वप्नमें उसे उपाय बताया—"तू सरकण्डेकी गाड़ी बना और कच्चे सूतकी गुण्डी बना। तू मुझे गाड़ीपर रखकर ले जाना। लेकिन पीछे मुड़कर न देखना।"

वह वृद्धा स्वप्नमें बताये गये उपायका स्मरण कर बड़ी प्रसन्न हुई। प्रातःकाल होते ही उसने सरकण्डोंकी गाड़ी बनायी, कच्चे सूतसे उसे कसा और गाड़ी लेकर अपने भगवान्‌को लेने पहुँची। उसके मनमें खुशी समा नहीं पा रही थी कि आज भगवान् उसके घरपर पधारेंगे। उसने भगवान्‌की अगवानीके लिए बड़ी तैयारियाँ की थीं। उसने अपनी झोंपड़ीको सजाया-सँवारा था। गोबरसे उसे लीपा था। आज त्रिलोकीनाथ भगवान् अपनी इच्छासे उसकी झोंपड़ीमें आनेवाले थे। तीनों लोकोंमें कौन इतना भाग्यशाली होगा।

ऐसी हुमस लिये गाड़ी लेकर वह भगवान्‌के पास पहुँची। उसके शरीरपर पड़ी हुई झुर्रियोंमें आज उमंग, उत्साह और शक्तिकी अलौकिक विद्युत् प्रवाहित हो रही थी। उसके भाग्यसे स्पर्धा करनेकी क्षमता आज किसीमें नहीं थी। उसने जाकर अपने भगवान्‌के आगे हाथ जोड़े, साष्टांग नमस्कार किया और उठकर आदेशके स्वरमें बोली—"अब चलो भगवान्!" यों कहकर उसने भगवान्‌को उठाया। लगा कि भगवान् तो चलनेके लिए जैसे बड़े उत्सुक हों। उस वृद्धाका जरा-सा सहारा मिला कि भगवान् गाड़ीमें सवार हो गये। गाड़ी खींचती हुई भगवान्‌को ले चली। गाड़ी खींचनेमें उसे कोई जोर नहीं लगाना पड़ रहा था। गाड़ी ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तेपर ऐसे चली जा रही थी, मानो कोई चिकनी सीमेण्ट की सड़क हो।

गाड़ी एक झरनेके निकट आयी। वह पहाड़से उतर आयी थी। अब तक वह वृद्धा हर्ष और भक्तिसे विह्वल मानो बेसुध बनी चली आ रही थी। झरनेपर आकर उसके मनमें सन्देह जागा—'गाड़ी इतनी हलकी कैसे लग रही है। भगवान् तो बहुत भारी हैं, किन्तु गाड़ी तो भारी नहीं लगती। कहीं भगवान् रास्तेमें ही तो नहीं गिर गये।' उसने मुड़कर देखा। बड़ी प्रसन्न हुई कि भगवान् तो गाड़ीपर बैठे हैं। फिर उसी उमंगसे उसने गाड़ी खींची, किन्तु गाड़ी टससे मस नहीं हुई। भक्तिके जिस सम्बलके सहारे वह भगवान्‌को यहाँ तक लानेमें सफल हुई थी, सन्देह होते ही भक्तिका वह सम्बल हाथसे छूट गया था। आदिवासी गाजे-बाजे लेकर भगवान्‌की अगवानीके लिए वहाँ आये। उन सभीने मिलकर भगवान्‌को ले जानेके अनेक

उपाय किये, किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुए। वृद्धा अपनी भूलपर बहुत रोयी, किन्तु बादमें यह अनुभव कर उसने सन्तोष धारण किया कि भक्तिके प्रवाहमें यदि थोड़ा-सा भी सन्देहका अंश बना रहता है तो वह भक्ति फलदा नहीं होती। नागफणी पार्श्वनाथ तबसे उसी स्थानपर विराजमान हैं। तभीसे इनकी ख्याति दिनोंदिन बढ़ती गयी और उसने तीर्थक्षेत्रका रूप धारण कर लिया।

सरकारने मन्दिरके चारों ओर पहाड़पर १० बीघा जमीन मन्दिरको भेंटस्वरूप प्रदान की है।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रत्येक पूर्णिमाको मेला भरता है किन्तु यहाँ आषाढ़ी पूर्णिमाको बड़ा मेला भरता है। इस दिन कई हजार जैन और जैनेतर जनता यहाँ एकत्रित होती है।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्थाके लिए एक प्रबन्धक समिति बनी हुई है।

पता—यहाँका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री नागफणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
पो. मौदर, वाया–बीछीवाड़ा
(जिला डूंगरपुर) राजस्थान

ऋषभदेव (केशरियाजी)

मार्ग और अवस्थिति

श्री ऋषभदेवजी तीर्थ राजस्थान प्रदेशके उदयपुर जिलेमें उदयपुर शहरसे ६४ कि. मी. दूर खेरवाड़ा तहसीलमें कोयल नामक छोटी-सी नदीके किनारे अवस्थित है। ग्रामका नाम धुलेव है। इसकी जनसंख्या लगभग ५००० है। इस गांवके उत्तर और पश्चिममें नदी तथा दक्षिण भागमें पहाड़ी नाला है। यह गांव ऋषभदेवकी मूलनायक प्रतिमाके प्रकट होनेके पश्चात् बसा है, ऐसा लगता है। भगवान्‌के नामपर गाँवका नाम भी ऋषभदेव तथा केशर चढ़ानेकी प्रथाके कारण केशरियाजी प्रचलित है।

यहाँ पहुँचनेके लिए पश्चिमी रेलवेके उदयपुर स्टेशनपर उतरना पड़ता है। वहाँसे ऋषभदेवजी तक पक्की सड़क है तथा नियमित बस-सेवा है। दूसरा मार्ग डूँगरपुरसे ऋषभदेवका है। यह सड़क भी पक्की है। एक अन्य रास्ता अहमदाबाद-हिम्मतनगर-उदयपुर लाइनसे है। चौथा मार्ग उदयपुर-डूँगरपुर-हिम्मतनगर रेलवे लाइनका है। इस मार्गपर ऋषभदेव रोड स्टेशन ऋषभदेवसे लगभग १२ कि. मी. पड़ेगा।

यहाँ पोस्ट ऑफिस और टेलीग्राफ ऑफिस है। टेलीफोनकी भी सुविधा है। गाँवमें पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्टका ऑफिस है। पोस्टमें गाँवका नाम ऋषभदेव है। राज्य सरकारकी ओरसे हास्पिटल, हाईस्कूल तथा पुस्तकालय हैं।

अतिशय क्षेत्र

श्री ऋषभदेव (केशरियाजी) क्षेत्र अतिशय क्षेत्रके रूपमें विख्यात है। यहाँकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् ऋषभदेवकी है। प्रतिमा श्यामवर्णकी होनेसे भील लोग इसे कालाजी और कारिया बाबा कहते हैं। कुछ लोग धूलेवाधणी या 'केशरियालाल' भी कहते हैं। यह पाषाण-निर्मित पद्मासन प्रतिमा श्यामवर्ण साढ़े तीन फुट अवगाहनावाली है। यह समचतुरस्र संस्थानयुक्त और अत्यन्त चित्ताकर्षक है। इस प्रतिमाके नानाविध चमत्कारोंकी किंवदन्तियाँ जनतामें बहु-प्रचलित हैं। इसके चमत्कारोंसे आकर्षित होकर न केवल दिगम्बर जैन, अपितु श्वेताम्बर जैन, हिन्दू, भील आदि सभी लोग यहाँ आकर मनौती मनाते हैं। अनेक लोग यहाँ केशर चढ़ाते हैं, जिससे इस क्षेत्रका नाम 'केशरियाजी' पड़ गया है। सन्तान-प्राप्तिकी कामना लेकर आनेवाले कुछ भक्त तो सन्तान होनेपर उसके भारके बराबर केशर चढ़ाते हैं। कुछ लोग अपने बच्चोंको चाँदी, रुपये, घी, शक्कर, गुड़ आदिसे तौलकर ये वस्तुएँ भगवान्के चरणोंमें चढ़ाते हैं। भगवान्की यह सकाम भक्ति भी पुण्य-बन्धका कारण है। भगवान्की भक्तिसे मनमें शुभ भावोंका संचार होता है। निश्चय ही इससे पापका क्षय और पुण्यका संचय होता है। उस पुण्यके कारण मनोकामना पूर्ण होती है।

यहाँ कितने भक्त मनमें कामना लेकर आते हैं और कितनोंकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, यह बताना कठिन है। किन्तु सर्वसाधारणमें केशरिया भगवान्के प्रति जो अगाध आस्था और श्रद्धा है उससे ही लगता है कि केशरियानाथके चमत्कारोंका जनता अनुभव करती है, उनकी अचिन्त्य महिमाको हृदयसे स्वीकार करती है। उसकी श्रद्धा अनुभवसे उपजी है। इसीलिए शताब्दियोंका लम्बा काल भी उस श्रद्धाको कम नहीं कर सका है।

वहाँके चमत्कारोंको और कामना-पूर्तिके अनेक आख्यानोंको सुनाते हुए भक्तजनोंको आह्लादका अनुभव होता है। ऐसी ही एक बात वि. सं. १८६३ की है। होलकरका सेनापति सदाशिवराव गलियाकोट डूंगरपुर आदि गाँवोंको लूटता हुआ धुलेव आया। वह मन्दिरमें जा घुसा और वेदीके पास खड़े रहकर वह अभिमानपूर्वक भगवान्से बोला "जैनदेव ! ले मैं रुपया फेंक रहा हूँ। अगर तुझमें शक्ति है तो मेरा रुपया स्वीकार कर ले।" भगवान्को तो विनय और भक्तिसे प्रसन्न किया जा सकता है, अश्रद्धा और अहंकारके स्वर भगवान्का प्रसाद नहीं पा सकते। सदाशिवने अहंकारके जिस प्रबल वेगसे रुपया भगवान्की ओर फेंका था, वह रुपया उसी वेगसे लौटकर उसके मस्तकमें आकर लगा। मस्तकसे रक्त निकलने लगा। विवेकी पुरुषोंको संकेत ही पर्याप्त होता है किन्तु जिनकी अन्तरकी आँखें अविवेक, अश्रद्धा और अभिमानके मदसे उनींदी हो रही हैं, वे ठोकर खाकर भी सावधान नहीं हो पाते। मदान्ध सदाशिवकी आँखें इससे भी नहीं खुलीं। उसने सेनाको आज्ञा दी—"मन्दिरको लूट लो।" सेना मन्दिर लूटनेके लिए ज्यों ही बढ़ी, मन्दिरमें-से टिड्डीदलके समान भौंरे निकलकर उस सेनापर टूट पड़े। मूर्ख सदाशिव अपनी सेनाके साथ वहाँसे प्राण बचाकर भागा। वह हड़बड़ीमें बहुत-सा सामान भी छोड़ गया। उसके मनपर इतना आतंक छा गया कि उसने जीवनमें दुबारा फिर कभी इधर आनेका साहस नहीं किया। इस घटनाकी गूँज उस प्रदेशके लोकगीतोंमें भी सुनाई पड़ती है। एक लोकगीतकी पंक्ति इस प्रकार है—

'तोपखाना तो पड़ा रहा ने राव सदाशिव भाग गया।'

इससे मिलती-जुलती कई और भी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है, पहले यह प्रतिमा यहाँसे २० कोस दूर जंगलमें एक मन्दिरमें विराजमान थी। अलाउद्दीन खिलजी सोमनाथ-

के मन्दिरको तोड़कर लौटता हुआ यहाँ आया और इस मूर्तिको तोड़ना चाहा। किन्तु उसकी सारी फौज अन्धी हो गयी। बादशाहने पुनः प्रतिमापर आक्रमण करना चाहा। किन्तु रातमें पुजारीको स्वप्न आया। उसके अनुसार पुजारी कांवरमें इस मूर्तिको धुलेव गाँव ले आया और मन्दिर बनवाकर यहाँ विराजमान कर दिया।

इसी प्रकारकी एक दूसरी किंवदन्ती भी बहु प्रचलित है। महमूद गजनवीने अनेक मन्दिरों और मूर्तियोंको तोड़ा। भक्तजन इस मूर्तिकी सुरक्षाकी दृष्टिसे इसे कांवरमें रखकर खशादरी ले आये। किन्तु आश्चर्य कि मूर्ति वहाँसे अन्तर्धान हो गयी। पुजारी उसे ढूँढ़ता फिरा। महाजनकी गायें वहाँ जंगलमें चरने जाती थीं, उनमें-से एकाएक एक गायने दूध देना बन्द कर दिया। एक दिन नौकर गायके पीछे गया। देखा कि गाय एक झाड़ीमें गयी और एक प्रतिमापर उसका दूध झड़ने लगा। सब लोग इस चमत्कारको देखकर भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे। वहाँ झोपड़ी बनाकर पूजाकी व्यवस्था की गयी। कुछ समय पश्चात् वहाँ मन्दिरका निर्माण किया गया।

केशरियानाथके चमत्कारकी एक और घटना इस प्रकार प्रचलित है—जहाज समुद्रमें फँस गया। उसके बच सकनेकी आशाएँ क्षीण हो चुकी थीं। जहाजके यात्री मृत्युकी विभीषिकासे आतंकित थे। मृत्युके इस भँवरमें फँसकर उनमें-से कुछ भक्तोंने संकटमोचनहार केशरियानाथका ध्यान किया और प्रार्थना की—"प्रभो! तुम करुणासागर हो। जो तुम्हारी शरणमें जाता है, उसे तुम भवसागरसे पार कर देते हो। आपका नाम-स्मरण करनेसे हमारा यह जहाज सागरसे पार हो जाये तो इसमें आश्चर्य क्या है!" सबने आश्चर्यके साथ देखा कि फँसा हुआ जहाज लहरोंपर हौले-हौले उतरता हुआ तटपर जा लगा। भक्तजनोंकी करुण पुकार करुणासागर केशरियानाथने सुन ली थी। प्रतिदिन आरतीके बाद बोले जानेवाले एक स्तवनमें इस घटनाका उल्लेख रहता है। उस स्तवनकी प्रथम कड़ी इस प्रकार है—

'केशरियाजीने जहाजको लोग तिराये।
माने एही अचरज भारी आयो॥'

इस प्रकार केशरियाजीके चमत्कारोंके सम्बन्धमें न जाने कितनी किंवदन्तियाँ लोकमें प्रचलित हैं।

मूलनायक प्रतिमाका इतिहास

मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमाका निर्माण-काल और इतिहास अत्यन्त विवादास्पद है। 'इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया' में इसके सम्बन्धमें बताया है कि यह प्रतिमा तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें गुजरातसे यहाँ लायी गयी थी। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि गुजरातसे यह उज्जैन लायी गयी अथवा यह उज्जैनमें ही विराजमान थी और वहाँसे मुसलमानोंके आक्रमणके कारण यहाँ लायी गयी।

कुछ लोग इस प्रतिमाकी प्राप्तिका अद्भुत इतिहास बताते हैं। उनका कहना है कि जब श्री रामचन्द्रजी लंकासे अयोध्या आये, तब वे अपने साथ भगवान् ऋषभदेवकी इस प्रतिमाको भी लाये थे। बहुत समय पश्चात् अयोध्यासे यह उज्जैनमें, वहाँसे डूँगरपुर राज्यके अन्तर्गत बड़ौदा गाँवमें पहुँची। वहाँसे किसी दैवी चमत्कारसे या अन्य किसी प्रकार उस टीलेमें पहुँच गयी, जहाँ कि 'पगल्यां' (चरण) बने हुए हैं। वहाँसे ही यह प्रकट हुई।

उपर्युक्त मान्यताओंमें तथ्यांश कम और कल्पना अधिक है। किन्तु कुछ लोगोंकी यह कहानी इससे भी अधिक रोचक है कि तेरहवीं शताब्दीमें मुसलमानोंने आक्रमण करके मूर्ति खण्डित कर

दी थी। उस समय मन्दिरमें-से अगणित भौंरे निकले और आततायियोंपर आक्रमण कर दिया। फलतः आततायी मारे गये। बादमें पुजारीको स्वप्न हुआ कि सवा सौ मन लापसी बनाकर एक गढ़ेमें भर दो और प्रतिमाके खण्डित टुकड़ोंको यथास्थान जोड़कर प्रतिमा उसमें दबा दो। पुजारीने ऐसा ही किया। प्रतिमा न देखकर कुछ भक्तोंने उसके बारेमें पुजारीसे पूछताछ की। पुजारीने सारी घटित घटना सुना दी। भक्तोंने पुजारीसे प्रतिमाके दर्शन करानेका अत्यधिक आग्रह किया। अन्तमें पुजारीने बाध्य होकर सातवें दिन ही प्रतिमा निकाली। प्रतिमाके टुकड़े यद्यपि जुड़ चुके थे किन्तु दो दिन पूर्व निकालनेके कारण प्रतिमापर घावके चिह्न बने रह गये जो अब तक विद्यमान हैं।

जिस प्रकार इस मूर्तिको प्राप्तिका कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं होता, उसी प्रकार इस मूर्तिका निर्माण-काल भी विवादास्पद बना हुआ है। भक्त लोग उसको चतुर्थ कालकी मानते हैं। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि इस मूर्तिका निर्माण ईसवी पूर्व ६-७ शताब्दीमें हुआ होगा। अन्य कुछ लोगोंकी मान्यता है कि इस प्रतिमाका निर्माण आठवीं शताब्दीमें हुआ और उज्जैन संघके आचार्य (भट्टारक) विद्यानन्दिने, जिनका भट्टारक-काल सन् ७५१-७८३ है, इसकी प्रतिष्ठा करायी थी। इस मान्यताके समर्थनमें कुछ लोग इसी मन्दिरके खेला मण्डपमें लगे हुए संवत् १५७२ के शिलालेखको प्रमाणमें उपस्थित करते हैं। उस शिलालेखको अन्तिम पंक्तिमें निम्नलिखित पाठ मिलता है—'सहस टंका सी ८०० इटड़ी कथ्यः'। इस वाक्यांशका अर्थ कुछ लोग '८०० टंका (तत्कालीन प्रचलित मुद्रा) खर्च करके बनवाया' करते हैं; अन्य कुछ लोग अर्थ करते हैं कि संवत् ८०० में कच्ची ईंटोंका मन्दिर बनवाया गया।

मूर्तिके निर्माण-कालकी उपर्युक्त समस्त मान्यताएँ कल्पनामूलक हैं। किसी पुरातात्त्विक साक्ष्य या ऐतिहासिक आधारके बिना इन मान्यताओंका समर्थन जुटाना कठिन है। मूर्तिको चतुर्थ कालकी मानना तो तबतक सम्भव नहीं है, जबतक पुरातत्त्ववेत्ता इस मान्यताको अपना समर्थन प्रदान नहीं करते। हड़प्पाके शिरोहीन कबन्धको छोड़कर अन्य कोई ज्ञात मूर्ति अब तक ईसवी सन्से पूर्वकालकी उपलब्ध नहीं हो पायी और ये मूर्तियाँ या प्लेटें भी जैन योगी ऋषभदेवकी हैं, इसकी भी सर्वसम्मत स्वीकृति अब तक प्राप्त नहीं हुई। ज्ञात मूर्तियोंमें सर्वाधिक प्राचीन पटनाके लोहानीपुर मुहल्लेसे प्राप्त शिरोहीन कबन्ध है, जिसे मौर्यकालीन स्वीकार किया गया है और जिसे जैन तीर्थंकरकी कायोत्सर्गासन मूर्ति होनेकी सर्वसम्मत स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। भारतमें उपलब्ध पाषाण मूर्तियाँ—चाहे वे जैन, हिन्दू या बौद्ध किसी धर्मसे सम्बन्धित हों—मौर्योत्तरकालीन मानी जाती हैं। ऐसी दशामें केशरियानाथकी मूर्तिको चतुर्थकालीन मानना धार्मिक श्रद्धा और भावुकताका परिणाम है। इस मान्यताका मूलाधार मूर्तिपर किसी लांछन या लेखका अभाव है। भारतमें इस प्रकारकी लेख-लांछनहीन मूर्तियोंकी संख्या पर्याप्त है, जबकि उनका निर्माण-काल ईसवी सन्के पश्चात्कालका रहा है। उक्त मूर्तिकी रचना शैली और विकसित भावाभिव्यंजना और शिल्प विधानको देखकर उसे आठवीं या उसके आस-पासकी शताब्दीकी मानना युक्तसंगत प्रतीत होता है। भट्टारक विद्यानन्दि द्वारा प्रतिष्ठित किये जानेकी बात भी अयथार्थ नहीं जान पड़ती। किन्तु इसके लिए भी कुछ सबल प्रमाण खोजनेकी आवश्यकता है। खेला मण्डपके संवत् १५७२ के शिलालेखसे इस मान्यताको पुष्टि नहीं होती और न उसका अर्थ ही वह निकलता है।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेवकी यह दिगम्बर जिन प्रतिमा जिन मन्दिरमें विराजमान है। यह एक फुट ऊँचे धातुके आसनपर विराजमान है। इस चरण चौकीके मध्यमें दो बैलोंके मध्यमें देवी बनी हुई है जो सम्भवतः ऋषभदेवकी यक्षी चक्रेश्वरी है। इसके अतिरिक्त हाथी, सिंह, देव

आदि भी बने हुए हैं। इस चरण चौकीपर १६ स्वप्न अंकित हैं। उनके ऊपर ९ जिन प्रतिमाओंका भव्य अंकन है, जिन्हें नवदेवता कहा जाता है। इस धातु सिंहासनके दोनों भागोंमें ऊपर तेईस जिन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं, जिनमें दो कायोत्सर्गासनमें तथा शेष पद्मासनमें विराजमान हैं। मध्यमें मूलनायक ऋषभदेवकी प्रतिमा होनेसे और परिकरमें तेईस प्रतिमाएँ होनेसे स्वतः ही यह चौबीसी बन गयी है।

मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी कृष्ण पाषाणकी यह प्रतिमा साढ़े तीन फुट उत्तुंग है। इसके सिरके ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं, सिरके पृष्ठ भागमें भामण्डल है। भगवान्‌के दोनों ओर अखण्ड दीपकका स्निग्ध मधुर प्रकाश सदा विकीर्ण रहता है। यहाँका वातावरण नास्तिक व्यक्तिके मनमें भी भक्तिकी तरंगें पैदा कर देता है। भगवान् ऋषभदेव तो जगत्पूज्य, लोकनायक हैं, वे सबके हैं, सब उनके हैं। यह चमत्कार यहाँ आकर देखनेको मिलता है। यह कितने सुखद आश्चर्य की बात है कि यह प्रतिमा दिगम्बर जैन आम्नायकी है, मन्दिर दिगम्बर जैन आम्नायका है और दिगम्बर जैन भट्टारकोंका पीठ केन्द्र रहा है। किन्तु इस अद्‌भुत आश्चर्यजनक प्रतिमाके दर्शन करनेके लिए दिगम्बर जैनोंके अतिरिक्त श्वेताम्बर जैन, वैष्णव, शैव, भील, यहाँ तक कि सच्छूद्र भी बिना किसी बाधाके और समान रूपसे जाते हैं। कैसी अद्‌भुत महिमा है भगवान् केशरियानाथ की !

मन्दिरका इतिहास

केशरियानाथ अर्थात् ऋषभदेवका यह मन्दिर लाखों-करोड़ों भक्तोंकी श्रद्धाका केन्द्र है। किन्तु इस मन्दिरके निर्माणका इतिहास और काल क्या है, यह मूर्तिके इतिहासके समान अभी तक अनिर्णीत और विवादास्पद बना हुआ है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि इस मन्दिरका निर्माण वि. संवत् २ में हुआ था। उस समय वह कच्ची ईंटोंका बना हुआ था। आठवीं शताब्दीमें यह पारेवा पत्थरका बनाया गया। चौदहवीं शताब्दीमें इसका जीर्णोद्धार किया गया। इतिहासमें तथ्यों और उनके समर्थक प्रमाणोंकी आवश्यकता पड़ती है। प्रमाणहीन तथ्य स्वीकार्य नहीं माने जाते। जिन्होंने इस मन्दिरका निर्माण-काल वि. संवत् २ अर्थात् ईसा पूर्व ५५ माना है, उन्होंने यह कल्पना किस आधारपर की है, यह स्पष्ट नहीं हो पाया। इसके समर्थक प्रमाण भी अभी तक प्रकाशमें नहीं आ पाये। अतः जबतक इस प्रकारके प्रमाण उपलब्ध नहीं होते, तबतक उक्त मान्यताको प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आठवीं शताब्दीमें मन्दिरके निर्माणकी कल्पना कुछ युक्तियुक्त प्रतीत होती है। जिस मन्दिरका जीर्णोद्धार चौदहवीं शताब्दीमें हुआ हो, उसका निर्माण चार-पाँच शताब्दी पूर्व माना जाना कुछ ठीक लगता है। केशरियानाथकी मूर्तिका निर्माण-काल भी यही होना चाहिए, इस प्रकारके पूर्व अनुमानकी भी इससे सम्पुष्टि हो जाती है।

वर्तमान सम्पूर्ण मन्दिरकी संरचना एक ही कालमें नहीं हुई, बल्कि उसके भिन्न-भिन्न भागोंका निर्माण भिन्न-भिन्न कालोंमें हुआ था। इस बातका समर्थन मन्दिरमें उपलब्ध शिलालेखोंसे होता है। इन शिलालेखोंका अपना विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। इनसे संघ, गण, गच्छ, अन्वय, भट्टारक, प्रतिष्ठाता और प्रतिष्ठा-तिथि आदि अनेक महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है। इसलिए उपलब्ध सभी शिलालेखोंको यहाँ उद्‌धृत किया जा रहा है।

भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा जिस गर्भगृह (निज मन्दिर) में विराजमान है, उसके बाहर

खेला मण्डपकी दीवालोंमें आमने-सामने दो शिलालेख उत्कीर्ण हैं। उनमें बायीं ओरका लेख इस भाँति है—

शिलालेख नं. १

"श्री आदिनाथं प्रणम्य लोक आश्वासिता केचन वित कार्येन मोक्षमार्गे तमादिनाथं प्रणमादि नित्यमादित्य संवत् १४३१ वर्षे वैशाख सुदी अक्षयतिथौ बुध दिनाः गुरावद्देहा वापी कूप प्रसरि सरोवरालंकृत खेड़वाला पत्तने राज्य श्रीविजय राज्य पालयति सति उदयराज सेलमा श्रीमज्जिनेन्द्राराधनतत्पर पंचूली बागड़ प्रति यात्रा श्री काष्ठासंघे भट्टारक श्री धर्मकीर्ति गुरोपदेशेन वाये साध बीजासुत हरदास भार्या हारु तदपत्योः सं. पुंजा कोताभ्याम् श्री ऋषभेश्वर प्रासादस्य जीर्णोद्धार श्री नाभिराज वरवंश कृतावतार कल्पद्रुमा माह सेवनेषु ..."।

इसका आशय यह है कि संवत् १४३१ में वैशाख सुदी तृतीया (अक्षय तृतीया) बुधवारके दिन वापी-कूप-तड़ाग-सरोवरोंसे अलंकृत खेड़वाला नगरमें विजयराजके शासनकालमें काष्ठासंघके भट्टारक श्री धर्मकीर्ति गुरुके उपदेशसे शाह हरदास और उसकी भार्या हारुके पुत्र पुंजा और कोताने श्री ऋषभदेवके मन्दिरका जीर्णोद्धार किया।

इसी प्रकार खेला •मण्डपमें दायीं ओर जो शिलालेख उत्कीर्ण है, वह इस भाँति पढ़ा गया है—

शिलालेख नं. २

"लोका आश्वासिताः केचन····आदिनाथं प्रणमामि नित्यं विक्रमादित्य संवत् १५७२ वर्षे वैशाख सुदी ५ वार सोमे भट्टारक श्री यशकीर्ति राज्ये श्री कला भार्या सोनबाई बीजिराज इदा···· धुलीय ग्रामे श्री ऋषभनाथं प्रणम्य फड़िया कोहिया भार्या भरमी तस्य पुत्र हीसा भार्या हिलसदे तस्य पुत्र कान्हा देवरा रंगा भ्रात वेणदास भार्या लाछी भ्रात सावा भार्या पांची सुत नाथा नरपाल श्रीकाष्ठासंघे वाचन्याते काश्यप गोत्रे कडिया हीसा मंडपः नवचौकीयओ सनौ बड़पुत्तला सहस टंका सी ८०० इटड़ी कथ्यः श्री ऋषभजी श्री नाभिराज कुख पुजः।"

इस शिलालेखका आशय यह है कि विक्रम संवत् १५७२ वैशाख सुदी ५ सोमवारको भट्टारक श्री यशकीर्तिके राज्यमें घुलीय ग्राममें फड़िया कोहिया और उसकी भार्या भरमी, उनके पुत्र हीसा उसकी भार्या हिलसदे उनके पुत्र कान्हा देवरा टंगा भाई वेणदास उसकी भार्या लाछी भाई सावा उसकी भार्या पांची उसके पुत्र नाथा नरपाल काष्ठासंघी वाच ज्ञातिके काश्यप गोत्री फड़िया हीसाने सभामण्डप और नौचौकीका निर्माण एक हजार टंका (तत्कालीन मुद्रा) व्यय करके करवाया। (यहाँ '८०० इटड़ी कथ्य' इसका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाया)

इन शिलालेखोंसे प्रमाणित होता है कि वि. संवत् १४३१ में गर्भगृह और खेला मण्डप तथा वि. संवत् १५७२ में सभामण्डप और नौचौकी बने थे। दोनों शिलालेखोंसे यह भी सिद्ध होता है कि दोनों शिलालेखोंमें उल्लिखित निर्माण-कार्य काष्ठासंघी भट्टारकोंके उपदेशसे उनके अनुयायी भक्त दिगम्बर जैनोंने कराये। इसमें सन्देह करनेकी तनिक भी गुंजायश नहीं है कि ऋषभदेव मन्दिरका जीर्णोद्धार करानेवाले पुंजा और कोता दोनों भाई दिगम्बर जैन थे और उन्होंने यह पुण्य कार्य काष्ठासंघी भट्टारक धर्मकीर्तिके उपदेशसे कराया था। इसी प्रकार सभामण्डप और नौचौकीका निर्माण करनेवाले फड़िया हीसा काष्ठासंघके भट्टारक यशकीर्तिके शिष्य थे। वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे।

निज मन्दिरके चारों ओर ५२ जिनालय बने हुए हैं। चारों दिशाओंमें १३-१३ जिनालय बने हुए हैं। इन जिनालयोंमें प्रत्येक दिशामें एक-एक जिनालय शिखरबद्ध हैं और उनके आगे मण्डप बना हुआ है। इन चारों दिशाओंके चारों जिनालयोंमें मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन प्रतिमाओंके कन्धोंपर केश लहराते हुए दिखाये गये हैं। सभी ५२ जिनालयोंमें दिगम्बर वीतराग प्रतिमाएँ पद्मासनमें विराजमान हैं। जिनालयोंकी पश्चिम दिशाकी पंक्तिमें श्याम पाषाणका लगभग छह फुट ऊँचा एक पाषाण-स्तम्भ बना हुआ है, जिसके ऊपर १००८ दिगम्बर वीतराग जिन-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह सहस्रकूट चैत्यालय कहलाता है। ५२ जिनालयोंकी रचना नन्दीश्वर जिनालयोंकी प्रतीक है। यह दिगम्बर जैन मान्यतानुकूल है। सहस्रकूट चैत्यालयमें १००८ मूर्तियोंकी मान्यता भी दिगम्बर मान्यताके अनुकूल है क्योंकि श्वेताम्बर मान्यतानुसार सहस्रकूट चैत्यालयमें १०२४ मूर्तियाँ होती हैं। पूर्वकी ओर निज मन्दिरके सामने बीचोंबीच एक पाषाण-गज बना हुआ है। इसके ऊपर गुम्बज बना हुआ है। हाथीके दोनों ओर पाषाण-चरण बने हुए हैं। उनके नीचे चमरवाहक इन्द्र खड़े हैं। निज मन्दिरके सामने पूर्वके प्रवेश-मार्गके ऊपर भरत-बाहुबलीका संघर्ष और बाहुबलीका संन्यास प्रस्तरोंपर उत्कीर्ण किया हुआ है।

इन जिनालयोंका निर्माण निज मन्दिरके निर्माणके पश्चात् हुआ है। वह विभिन्न कालोंमें हुआ है। बावन जिनालयोंकी प्रतिमाओंके लेखसे ज्ञात होता है कि इनकी प्रतिष्ठा संवत् १६११ से संवत् १८६३ के मध्यमें हुई है। इनके प्रतिष्ठाता भी भिन्न-भिन्न व्यक्ति रहे हैं।

दक्षिण पंक्तिकी देवकुलिकाओंमें बड़े मन्दिरके द्वारके पासका शिलालेख इस प्रकार है—

शिलालेख नं. ३

"स्वस्ति श्री संवत् १७५३ वर्षे शाके १६१९ प्रवर्तमाने सर्वजिन नाम संवत्सरे मासोत्तमे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे १३ तिथौ शुक्रवासरे श्री काष्ठासंघे लाडबागड़गच्छे लोहाचार्यान्वये तदनुक्रमेण भट्टारक श्री प्रतापकीर्त्याम्नाये श्री काष्ठासंघे नदीतटगच्छे विद्यागणे भट्टारक श्री रामसेनान्वये तदनुक्रमेण भट्टारक श्री भीमसेन तत्पट्टे भट्टारक श्री चन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री राजकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन तत्पट्टे भट्टारक श्री ऐन्द्रभूषण तत्पट्टे कमल मधुकरायमान भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति विराजमाने प्रतिष्ठित बघेरवाल ज्ञातौ गोवाल गोत्रे संघवी श्री आल्हा भार्या कुड़ाई तयो: पुत्र भोज सा भार्या अम्बाई सिंघवी भीमा द्वियें भार्या पद्माई बीजी हरषाई तपो संघपति वापू भार्या जमवाई द्वितीय पुत्राद् भार्या पुतलाई तद्गच्छे वपुजी पसरवार संघपति भोजा द्वितीय भार्या पदाजी तन्मध्ये संघपति भोजा भार्या पद्माई तयो पुत्र चत्वारि, प्रथम मीमासा भार्या ग द्वितीय पुत्र आदु भार्या मगोमाई, तृतीय पुत्र प्रजनि भार्या सकाई तयो पुत्र सिंघवी तवनोसाह भार्या द्वि प्रथम मरुदेवी वीजी गोताई तीजी दुग चतुर्थ पुत्र सिंघवी सितल भार्या हीराई तयो पुत्र प्रथम पुत्र भोजा भार्या जीवाई द्वितीय पुत्र सिंघवी भोमा भार्या...प्रथम कालाई पुत्र सीतला द्वितीय भार्या देवकु: इत्यादि समस्त कुटुम्ब वर्ग संयुक्त श्री ऋषभदेव स्वाशासदिनि मण्डित प्रतिष्ठा महोछव कृत्वा श्री वृषभदेवस्य नित्यं प्रणमति श्रीरस्तु। शुभं भूयात् श्री....
अबप्रत्याग्र श्री धर्मप्रभा तत्सीक्ष्य विजयपुत्र लिखतिग श्रीवाल्य...."

दक्षिणके मुख्य मन्दिरके पास बायीं ओर प्रथम जिनालयमें भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा विराजमान है। उसकी चरण-चौकीका लेख इस प्रकार है—

शिलालेख नं. ४

"स्वस्ति श्री संवत् १७५६ वर्षे शाके १६५ (२) ९ प्रवर्तमाने सर्वजितनाम संवत्सरे मासोत्तममासे कृष्णपक्षे १३ तिथौ शक्रवासरे श्री काष्ठासंघे लाडबागड़ गच्छे लोहाचार्यान्वये तदनुक्रमेण भट्टारक श्री प्रतापकीर्ति आम्नाये श्री काष्ठासंघे नन्दीतट गच्छे विद्यागणे भट्टारक श्री रामसेनान्वये तदनुक्रमेण भट्टारक श्री श्रीभूषण...भट्टारक श्री इन्द्रभूषण तत्पट्टकमलमधुकराय-मान भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति विराजमाने प्रतिष्ठित बघेरवालज्ञाति गोवाल गोत्र संघवी श्री अल्हा भार्या कुढ़ाई...।"

इस जिनालयकी दीवालपर भी ऐसा ही लेख अंकित है।

पश्चिममें सहस्रकूट चैत्यालयके पास जिनालयमें भगवान् शान्तिनाथकी चरण-चौकीपर इस प्रकार लेख है—

शिलालेख नं. ५

"संवत् १७६६ ना चैत्र वदी ५ वार चन्द्रे श्रीमत् काष्ठासंघे नंदीतट गच्छे विद्यागणे भट्टारक श्रीरामसेनान्वये तदनुक्रमेण भट्टारक श्री राजकीर्ति तदनुक्रमेण भट्टारक श्री सुमतिकीर्ति तत् अनुक्रमेण हुंबर ज्ञातीय बुध गोत्र संघवी श्री रामजी भार्या सिद्धरदे धर्मार्थं श्री शान्तिनाथ बिम्बं आचार्य श्री प्रतापकीर्ति स्वहस्तेन प्रतिष्ठापितम् ॥श्री॥"

बावन जिनालयोंकी कुछ प्रतिमाओंको छोड़कर शेष सभी प्रतिमाओंपर मूर्तिलेख मिलते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि ये सभी प्रतिमाएँ दिगम्बराम्नायी भट्टारकोंके उपदेशसे अथवा उनके द्वारा उनके भक्तोंकी ओरसे प्रतिष्ठित की गयी हैं।

दक्षिणके जिनालयोंके मध्यमें मण्डप सहित जो मन्दिर है, उसके द्वारके निकट दीवारमें एक शिलालेख लगा हुआ है। उसका आशय इस प्रकार है—

'दिगम्बर काष्ठा संघके नन्दीतट गच्छ और विद्यागणके भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्तिके समयमें बघेरवाल जातिके गोवाल गोत्री संघवी आल्हाके सुपुत्र भोजके कुटुम्बियोंने यह मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित किया।

मन्दिरके चारों ओर बने हुए पक्के कोटका सिंहद्वार अत्यन्त विशाल है। उसके दोनों ओर छतरियाँ बनी हुई हैं। इस कोटका निर्माण मूल संघ, बलात्कारगणके कमलेश्वर गोत्री गान्धी विजयचन्द सागवाड़ा दिगम्बर जैनने वि. सं. १८६३ (ई. सन् १८०६) में कराया था। इस आशयका एक शिलालेख कोटमें लगा हुआ है।

मन्दिर मूलतः दिगम्बर आम्नायका है

मूल मन्दिर, बावन जिनालय, मूर्तियाँ, कोट और उसके द्वारके सम्बन्धमें अनेक शिलालेख और मूर्तिलेख यहाँ उपलब्ध होते हैं। यद्यपि इनसे मुख्य मन्दिरके निर्माण-कालपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, किन्तु एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि इस मन्दिरका जीर्णोद्धार वि. सं. १४३१ में काष्ठासंघी भट्टारक धर्मकीर्तिके उपदेशसे शाह हरदास और उसके पुत्र पुंजा तथा कोताने कराया था। खेला मण्डपके बाहरकी नौचौकी और सभा-मण्डप वि. सं. १५७२ में भट्टारक यशकीर्तिके समय काष्ठासंघी वाच जातीय काश्यप गोत्री फड़िया कोहिया और उसकी पत्नी भरभीके पुत्र होसाने बनवाया था। खेला मण्डपमें २३ दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। संवत् १४३१ और १५७२ के शिलालेखोंके नीचे सिंहासनपर विराजमान श्यामवर्णकी पंच बालयति अर्थात् पाँच

बालब्रह्मचारी तीर्थंकर—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरकी दिगम्बर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। पाँच तीर्थंकरोंकी ब्रह्मचारी दशामें दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त करनेकी परम्परा दिगम्बर समाजमें ही प्रचलित है। श्वेताम्बर समाज तो मल्लिनाथको स्त्री मानता है तथा पार्श्वनाथ एवं महावीरको विवाहित मानता है। बावन जिनालयोंकी संरचना दिगम्बर भट्टारकोंके उपदेशसे दिगम्बर धर्मानुयायी श्रावकोंने की थी, जैसा कि शिलालेखोंसे ज्ञात होता है। और यह रचना वस्तुतः नन्दीश्वर द्वीपकी प्रतीक है जैसी कि दिगम्बर मान्यता है। उनमें विराजमान सभी प्रतिमाएँ दिगम्बर वीतराग तीर्थंकरोंकी हैं। इनकी प्रतिष्ठा भी काष्ठासंघी या मूलसंघी भट्टारकोंके द्वारा अथवा उनके उपदेशसे दिगम्बर धर्मानुयायी श्रावकोंने करायी थी। यह बात मूर्तिलेखोंसे स्पष्ट हो जाती है। मन्दिरमें ही उत्तरी भागमें मूलसंघी भट्टारकोंकी तथा दक्षिणी भागमें काष्ठासंघी भट्टारकोंकी गद्दियाँ मन्दिरके निर्माण-कालसे अब तक हैं। पहले ये दोनों संघोंके भट्टारक ही मन्दिरकी सम्पूर्ण व्यवस्था करते थे। मन्दिरका कोट और सिंहद्वार भी दिगम्बर भट्टारकों और श्रावकोंने बनवाया था, जैसा कि शिला-लेखसे प्रमाणित होता है।

इन स्पष्ट प्रमाणोंके रहते हुए इसमें सन्देहको किंचिन्मात्र भी अवकाश नहीं रहता कि यह सम्पूर्ण मन्दिर दिगम्बर आम्नायका है और सदासे इस मन्दिरपर उसीका सम्पूर्ण स्वत्व रहा है। प्रसिद्ध इतिहासकार रा. ब. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और कर्नल टाडने भी इस मन्दिरको दिगम्बर आम्नायका माना है।

क्षेत्र-दर्शन

मन्दिरके चारों ओर पक्का कोट बना हुआ है। उसका प्रवेश-द्वार विशाल है। उसके दोनों ओर छतरियाँ बनी हुई हैं। उसके ऊपर नक्कारखाना बना है। उस द्वारमें प्रवेश करते ही बाहरी परिक्रमाका चौक है। वहाँपर दूसरा द्वार मिलता है। इसके दोनों ओर कृष्ण पाषाणका एक-एक हाथी बना हुआ है। ऊपरकी छतमें ८१ कोष्ठकका एक यन्त्र बना हुआ है। इन्हें किसी भी ओरसे जोड़नेपर योग ३६९ आता है। इस द्वारके दोनों ओर ताकोंमें ब्रह्मा और शिवकी मूर्तियाँ हैं। ये बादमें रखी गयी हैं। इस द्वारसे दस सीढ़ियाँ चढ़नेपर मन्दिरके बाहरी चौकमें पहुँचते हैं। वहाँसे तीन सीढ़ियाँ चढ़नेपर एक मण्डप मिलता है। इसमें नौ स्तम्भ हैं। इसलिए इसे नौ-चौकी कहते हैं। वहाँसे तीसरे द्वारमें प्रवेश करते हैं। तब खेला मण्डपमें पहुँचते हैं। इसी मण्डपमें होकर निज मन्दिरमें पहुँचते हैं। इसी गर्भगृहमें भगवान् ऋषभदेवकी विश्वविश्रुत प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृहके ऊपर ध्वजा दण्ड सहित विशाल शिखर बना हुआ है। इसके द्वारके सिरदलपर पार्श्वनाथकी मूर्ति है। खेला मण्डपमें दो शिलालेख हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। खेला मण्डप और नौचौकीपर गुम्बज बने हुए हैं। खेला मण्डपमें २३ दिगम्बर जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। खेला मण्डपके दोनों शिलालेखोंके नीचे सिंहासनपर विराजमान पंच बालयतियोंकी श्यामवर्ण प्रतिमाएँ हैं। मध्यकी प्रतिमा पद्मासन है तथा उसके दोनों ओर दो-दो प्रतिमाएँ खड्गासन हैं।

नौचौकी मण्डपके मध्यमें डेढ़ फुट ऊँची वेदी बनी हुई है। इसपर प्रतिदिन दिगम्बर जैन नित्य नियम पूजन करते हैं। अष्टाह्निका आदि विशेष अवसरोंपर मण्डप बनाकर यहाँ नैमित्तिक पूजन किया जाता है। वेदीके समीप एक स्तम्भपर क्षेत्रपालकी मूर्ति है। उसके निकट दूसरे स्तम्भपर दस दिग्पाल बने हुए हैं।

नौचौकीके सामने सभा मण्डपमें एक लघु वेदी बनी हुई है, जिसपर माण्डना माढ़कर दिगम्बर लोग पूजन करते हैं तथा विशेष अवसरों पर इसपर विशेष सजावट करके दिगम्बर लोग कीर्तन करते हैं।

पर्युषण पर्वके १० दिनोंमें नीचेकी वेदी और ऊपरकी वेदीपर दिगम्बर समाज मण्डप बनाकर और माडने माड़कर सारे दिन पूजन करती है। यहीं दिगम्बर लोग व्रतोंका उद्यापन करते हैं। मण्डपके दक्षिण भागमें सिंहासननुमा एक चबूतरा बना हुआ है। यह स्थान सदासे माथुर संघी दिगम्बर भट्टारकोंको शास्त्र-सभाके लिए गद्दीके रूपमें प्रयुक्त होता रहा है। किन्तु वि. सं. १९६९ में मन्दिरके दरोगा श्री तखतसिंहने साम्प्रदायिक व्यामोहवश मरम्मत करानेके बहाने चबूतरेपर 'श्रीमद्भागवत' लिखवा दिया। उन्होंने यह कार्य भाद्रपद मासकी एक ही रात्रिमें करवा डाला। अपने अधिकारका उल्लंघन कर जैनोंको धार्मिक भावनाओंको चोट पहुँचानेवाले उस कर्मचारीके विरुद्ध राज्यकी ओरसे कोई कार्यवाही नहीं की गयी, अपितु उसके अनधिकारपूर्ण इस कृत्यको स्थायित्व प्रदान करके राज्यने मानो मौन स्वीकृति प्रदान कर दी।

निज मन्दिरके चारों ओर ५२ जिनालय या देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। इनमें प्रत्येकके मध्यमें मण्डप सहित मन्दिर बने हुए हैं। इन मन्दिरोंमें स्कन्धचुम्बी जटायुक्त भगवान् ऋषभदेवकी मुख्य प्रतिमाएँ हैं। ये मन्दिर शिखरबन्द हैं। इन जिनालयों और निज मन्दिरके बीच भीतरी परिक्रमा है। इससे इन मन्दिरोंके दर्शन करनेसे निज मन्दिरकी परिक्रमा स्वतः हो जाती है। इन जिनालयोंमें पश्चिमकी पंक्तिमें एक स्तम्भमें १००८ दिगम्बर जिन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। जिसे सहस्रकूट चैत्यालय कहते हैं। पूर्वमें जिनालयोंके मध्यमें एक हाथी बना हुआ है। हाथीके दोनों ओर पाषाण-चरण बने हुए हैं। उनके नीचे चँवरवाहक इन्द्र हैं। पूर्वमें पाषाणोंमें एक ओर भरत-बाहुबलीका युद्ध प्रदर्शित किया गया है और साथ ही बाहुबलीको मुनिके रूपमें ध्यान करते हुए दिखाया है।

दक्षिणकी ओरसे बावन जिनालयोंका प्रारम्भ होता है। ये जिनालय वि. सं. १६११ से १८६३ तक बने हैं। इनकी रचना क्रमशः हुई है, एक साथ नहीं हुई। दक्षिणके जिनालयोंमें मण्डप सहित जो मन्दिर हैं, उसके पास एक कोठरा है। पहले इसमें भट्टारकजी निवास करते थे। किन्तु आजकल मन्दिरके उपकरण रखे जाते हैं। उसके सामने मण्डपमें काष्ठासंघके भट्टारकजीकी गद्दी है। भट्टारकजी तथा उनके शिष्य ब्रह्मचारीगण यहींपर गद्दी बिछाकर बैठते हैं और शास्त्र पढ़ते हैं। उत्तरकी जिनालय पंक्तिमें बड़े मन्दिरके चौकमें मूलसंघी भट्टारकजीकी गद्दी है। इससे आगे जिनालयोंमें मन्दिरका प्राचीन भण्डार है। ऊपर जिस चैत्यालयका उल्लेख किया गया है, वह काँचकी एक अलमारीमें है। उसमें ९ धातु मूर्तियाँ हैं। यह काष्ठासंघी भट्टारकोंका चैत्यालय कहलाता है। जब ये भट्टारक बाहर जाते थे, तब वे इसे प्रवासमें अपने साथ ले जाते थे। इसके आगे एक जिनालयमें पाषाणका नन्दीश्वर जिनालय है। जिनालयोंमें कई स्थानोंपर चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका आदि देवियोंकी मूर्तियाँ हैं।

दक्षिणकी ओर स्नानागारके मार्गमें भगवान् पार्श्वनाथका मन्दिर है। मन्दिरकी प्रतिष्ठा संवत् १८०१ में हुई थी। इसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी श्याम-वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमापर सहस्र फणावलि सुशोभित है। इसलिए इस प्रतिमाको सहस्रफणी पार्श्वनाथ कहा जाता है। इस मन्दिरमें दिगम्बर सप्तर्षियोंकी ध्यानमग्न मुद्राकी प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरमें टाइल्स और काँच जड़कर अत्याधुनिक रूप दे दिया गया है।

मन्दिरसे आगे भट्टारकोंका विश्रामस्थल, कूप और स्नानागार बने हुए हैं। उत्तरी भागमें

मन्दिरके प्रबन्धक तथा अन्य कर्मचारियोंके कार्यालय बने हैं। ये कोट बननेके बाद संवत् १८७३ में बने हैं। इससे आगे एक कोठरीमें उत्सवकी सामग्री रहती है।

मुख्य मन्दिरमें मूलनायकके ऊपर विशाल और भव्य शिखर है। इसके अतिरिक्त चारों दिशाओंमें चार शिखर हैं जो काफी विशाल और उत्तुंग हैं। छोटे-मोटे ४९ शिखर और हैं। मन्दिर-की बाह्य भित्तियोंपर कोष्ठकोंमें अनेक खड्गासन जिन-प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। केशरिया मन्दिरमें कुल ७२ पाषाणकी मूर्तियाँ हैं जिनमें ९-१० श्वेतवर्णकी हैं, शेष श्यामवर्णकी हैं।

मन्दिरके प्रतिष्ठा महोत्सव और ध्वजादण्डारोहण

मन्दिरमें प्रतिष्ठा महोत्सव और ध्वजारोहण कब-कब हुए, इसका पूरा इतिहास बताना कठिन है। किन्तु विभिन्न कालोंमें मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई अथवा मूर्तियोंकी स्थापना हुई, उन अवसरोंपर प्रतिष्ठा महोत्सव हुए और ध्वजारोहण भी हुआ, यह विश्वास करनेके तर्कसंगत कारण हैं। इनके समर्थक कुछ लेख और शिलालेख विद्यमान हैं।

निज मन्दिर और मुख्य मूर्तिकी प्रतिष्ठा प्रारम्भमें कब हुई, इसका निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। इसलिए उसका कोई काल निश्चित करना सम्भव नहीं है। किन्तु वि. सं. १४३१ में मुख्य मन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ। उस अवसरपर प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था। ध्वजादण्डारोहण भी प्रतिष्ठा-विधानका एक अंग होनेके कारण वह भी हुआ था। इसके पश्चात् वि. सं. १५७२ का शिलालेख मिलता है। इसके अनुसार निज मन्दिरके आगेकी नौचौकी और सभामण्डपका निर्माण हुआ था और खेला मण्डपमें पंचबालयतिकी प्रतिमाएँ विराजमान की गयी। इस अवसरपर भी इन मूर्तियोंका प्रतिष्ठोत्सव और ध्वजादण्डारोहण किया गया। तत्पश्चात् सं. १६११-१२ में खेला मण्डपकी कुछ प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा हुई थी। तब तक बावन चैत्यालयोंका निर्माण नहीं हुआ था, उस समय विचाराधीन अवश्य था। अत: इनकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा भी इस अवसरपर हुई थी। यह प्रतिष्ठा होनेके पश्चात् जैसे-जैसे चैत्यालयोंका निर्माण होता गया, प्रतिमा विराजमान कर दी गयी। इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा मूलसंघके भट्टारक शुभचन्द्रजीने करायी थी। इसके पश्चात् भट्टारक वादीभूषणने वि. सं. १६५१ में एक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी। संवत् १६५१ से १७३४ तकके अन्तरालमें कोई प्रतिष्ठा नहीं हुई। किन्तु बावन चैत्यालयोंका निर्माण निरन्तर हो रहा था। जब निर्माण-कार्य पूरा हो गया, तब स्वतन्त्र रूपसे समय-समयपर प्रतिष्ठाएँ भट्टारकोंके तत्त्वावधानमें होती रहीं। इन प्रतिष्ठाओंके प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक ही थे। इनमें उल्लेखनीय प्रतिष्ठाएँ संवत् १७५४ और १८६३ में हुई। इन प्रतिष्ठाओंके अवसरपर भारतके दिगम्बर जैन धर्मानुयायी सहस्रोंकी संख्यामें एकत्रित हुए थे।

संवत् १५७२ के पश्चात् संवत् १६८६ में बाज जातिके काष्ठासंघी कोड़िया भीमाके पुत्र जसवन्तने निज मन्दिरपर कलश और ध्वजादण्ड चढ़ाये। इसका प्रमाण संवत् १७३० में लिखे गये लेखसे मिलता है जो इस प्रकार है—

"संवत् १६८६ वर्षे ज्येष्ठ सुदी ९ सोमे खडग देशे धुलेव नग्रे रावलजी श्री सूर्यमलजी विजय राज्ये गिरीपुरे रावल श्री पूंजाजी विजय राज्ये श्रीमत्काष्ठासंघे भट्टारक श्री राजकीर्तिजी उपदेशात् कोठिया श्री पद्मसी भार्या पद्मादे सुत कोड़िया भीमा प्रथम भार्या पद्मावती द्वितीय भार्या बाई मनकाई सुत कोड़िया जसवन्त प्रथम भार्या सुजाणदे द्वितीय भार्या सोभागदे तस्य सुत ४ प्रथम पुत्र कोड़िया सिंघजी भार्या केशरदे तत्सुत कोड़िया जेतसिंहजी द्वितीय पुत्र कोड़िया बाघजी भार्या मोपणदे तृतीय पुत्र कोडिया लामजी प्रथम भार्या बालमदे द्वितीय भार्या लाणगदे सुत मनोहरदास

चतुर्थं पुत्र कोड़िया कानजी भार्या कोसमदे इदं समस्त कुटुम्बेन कनक कलश दण्ड ईडो सुवर्णको करापति धुलेव नग्रे श्री ऋषभदेव चैत्यालये शुभम् ।"

यह नकल संवत् १७३० में पौष सुदी ५ को रावल श्री जेतसिंहजीके समयमें भण्डारी रावल वाघजी मेघजी पुजारीने लिखी थी। इसकी कापी संवत् १७३० में भट्टारक विश्वसेनजीने थाणागामके कोठारी अभयराजसे करवायी थी। यह नकल जीर्ण-जीर्ण दशामें ऋषभदेवमें भट्टारक यशकीर्ति सरस्वती भवनमें विद्यमान है।

इसके पश्चात् संवत् १७९३ में ध्वजादण्ड चढ़ाये जानेका लेख मिलता है जो इस प्रकार है—

"संवत् १७९३ महासुदी १ गुरुवारे श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कार गणे श्री कुन्द-कुन्दाचार्यान्वये भट्टारक सकलकीर्ति तदाम्नाये भट्टारक विजयकीर्तिजी तत् शिष्य ब्रह्म नारायण उपदेशात् श्री सूरतवास्तव्यः हूंबड़ ज्ञातीय लघु शाखायां संघवी श्री मनोहरदास मनजी सुत किशोरदास दयालदास भगवानदास एते श्री सूरत नगरादागत्य श्री ऋषभदेव कलश तथा ध्वजास्त सोज्यो सं. मनोहरदास स्वपरिक श्रीऋषभदेव नित्यं प्रणमति।"

इस लेखकी नकल भी भट्टारक यशकीर्ति सरस्वती भवनमें विद्यमान है। संवत् १८६३ में सागवाड़ा निवासी धनजी करणजाने परकोटा बनवाया। उस समय प्रतिष्ठा हुई और ध्वजादण्ड चढ़ाया गया था।

संवत् १९८४ में सेठ पूनमचन्दजी करमचन्दजी पाटन निवासी (कोटावाले) ने पाँच हजार रुपया नकद भेंट करके ध्वजादण्ड चढ़ाया। किन्तु यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण रहा। दिगम्बरेतर समाजने इस अवसरपर भयानक उपद्रव किये और चार दिगम्बर जैनोंकी हत्या भी कर दी गयी। अनिष्ट समयमें चढ़ाया हुआ यह ध्वजदण्ड गिर पड़ा।

क्षेत्रपर भयानक हत्याकाण्ड और ध्वजादण्ड कमीशनका फैसला

ऋषभदेवका सम्पूर्ण मन्दिर, मूलनायक केशरियानाथजी तथा शेष सभी प्रतिमाएँ दिगम्बर आम्नायकी हैं। इनका निर्माण एवं प्रतिष्ठा दिगम्बर बन्धुओं द्वारा हुई है। मन्दिरमें मूलसंघ और काष्ठासंघके भट्टारकोंकी गद्दियाँ प्रारम्भसे ही रही हैं। अतः मूलतः यह क्षेत्र और प्रतिमा दिगम्बर है। इस तथ्यको कभी चुनौती नहीं दी जा सकती है। लेकिन मन्दिरकी व्यापक मान्यता और विशाल आयको देखकर श्वेताम्बर भाइयोंने क्षेत्रपर अपना अधिकार जमानेका कुटिल प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। मन्दिरका प्रबन्ध पहले यहाँके भट्टारक ही करते थे। कालक्रमसे भट्टारकों और स्थानीय दिगम्बर जैन समाजके हाथोंसे निकलकर मन्दिरका प्रबन्ध उदयपुरके महाराणाके हाथमें पहुँच गया। महाराणाकी देखरेखमें तीर्थका प्रबन्ध होने लगा। उस समय मेवाड़ सरकारमें श्वेताम्बर जैन कर्मचारियोंका बोलबाला था। अतः श्वेताम्बरोंने अपने प्रभावका अनुचित लाभ उठाना चाहा। जब संवत् १९८४ में सेठ पूनमचन्द करमचन्दजी कोटावालोंकी ओरसे ध्वजा-दण्डारोहणका समारोह हो रहा था, श्वेताम्बरोंने महाराणाकी अनुमतिके बिना ध्वजादण्ड चढ़ानेका अनधिकार प्रयत्न किया। उन्होंने ध्वजादण्ड चढ़ानेके साथ इस बातका भी प्रयत्न किया कि दक्षिण दिशावाले बड़े मण्डपकी प्रतिमाओंपर मुकुट कुण्डल भी चढ़ा दिये जायें। यद्यपि दिगम्बर भाइयोंने श्वेताम्बरोंकी अनधिकार चेष्टाका विरोध किया, किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि श्वेताम्बरोंके संकेतपर मन्दिरके हाकिम श्री लक्ष्मणसिंहने दिगम्बरोंको मन्दिरसे निकालनेका आदेश दे दिया। सिपाहियोंने आदेश पाते ही मारकाट शुरू कर दी, मन्दिरके फाटक बन्द कर दिये गये, भागनेवालोंको द्वारपर रोक दिया गया। क्षेत्रपर दर्शनोंके लिए आये हुए

निरीह दिगम्बर बन्धुओंपर सिपाहियोंने निर्दयतापूर्वक लाठियाँ चलायीं, परिणामस्वरूप चार दिगम्बर भाई घटनास्थलपर ही मारे गये और ४४ घायल हो गये। मृत व्यक्तियोंके नाम पं. गिरधरलालजी, परशादके दीपचन्दजी नागदा, पूनमचन्दजी, सेमारीके माणिकचन्दजी थे। दिगम्बर-श्वेताम्बरोंके पारस्परिक मतभेदों और संघर्षोंके इतिहासमें यह घटना अमिट कलंकके रूपमें सदा स्मरण की जाती रहेगी। जिन स्थानीय श्वेताम्बर-अधिकारियोंने इसमें मदद दी थी, उनके विरुद्ध बादमें कठोर कार्यवाही की गयी।

इस भयानक दुर्घटनाके बाद दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजमें मुकदमेबाजी हुई। फलतः उदयपुर महाराणाने वैशाख वदी १ संवत् १९९० को नं. १०३३८, ५३९, १-९० पी. सन् १९३३ के अनुसार ध्वजादण्ड कमीशन नियुक्त किया। कमीशनमें चार सदस्य नियुक्त किये गये। कमीशन-ने अपनी रिपोर्ट १०-४-४५ को दी। रिपोर्टकी मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

१. यद्यपि प्रारम्भसे ही ऋषभदेवजी मन्दिर दिगम्बर जैन मन्दिर है किन्तु फिर भी प्राचीन कालसे ही यह हिन्दुओं, जिनमें भील भी शामिल हैं तथा हर एक फिरकेके जैन लोगों द्वारा पूजा जाता है।

२. दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें-से किसी भी समाजको ध्वजादण्डारोहणकी धार्मिक विधि करनेसे रोका गया हो, यह सिद्ध नहीं हो सका है।

३. कोई भी दल जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा या ध्वजादण्डारोहण करना चाहे तो उसे सर्वप्रथम देवस्थान विभागसे आज्ञा प्राप्त करनी होगी।

४. ध्वजारोहण उत्सवके अवसरपर देवस्थान निधि सब सम्प्रदायवालोंको अपनी आम्नाय-के अनुसार अपने खर्चेसे विधि-विधान करनेके लिए निमन्त्रित करे। देवस्थान निधि एक ऑफिसरको, जो समारोहका अध्यक्ष होगा, नियुक्त करेगी।

उक्त फैसलेसे दिगम्बर सम्प्रदायमें बड़ा असन्तोष रहा है।

क्षेत्रकी वर्तमान व्यवस्था

प्राचीन कालमें मन्दिरका तमाम प्रबन्ध ईडरकी मूलसंघी गद्दीके भट्टारकोंके अधिकारमें था। वे स्थानीय कर्मचारियोंके द्वारा कार्य चलाते थे। कहते हैं, स्थनीय कर्मचारियोंने भट्टारकजी-को मारकर यहाँका प्रबन्ध हथिया लिया। भट्टारकजीके मारे जानेका स्मारक सूरज कुण्डके पास चन्द्रगिरि नामक पहाड़ीपर बना हुआ है। कुछ समय बाद भट्टारकजीके शिष्योंने पुनः यहाँका प्रबन्ध अपने अधिकारमें ले लिया। वे औदीच्य जातिके ब्राह्मण भण्डारियोंकी देखरेखमें काम कराने लगे। वि. सं. १८९० तक मन्दिरका सारा प्रबन्ध भट्टारक चन्द्रकीर्तिके प्रशिष्य भट्टारक यशकीर्ति तथा उनके शिष्य पं. गौतमजीके अधिकारमें था। इसके बाद काष्ठासंघके भट्टारक और भण्डारी व्यवस्था चलाते रहे। फिर कुछ समय तक अकेले भण्डारियोंने व्यवस्था सँभाली। भण्डारियोंकी व्यवस्था ठीक न होने पर डूँगरपुरके महारावलके अधिकारमें व्यवस्था चली गयी। उनसे पुनः भण्डारियोंके हाथोंमें प्रबन्ध व्यवस्था पहुँच गयी। किन्तु संवत् १९३२ से व्यवस्था सन्तोषजनक न होनेके कारण उदयपुर रियासतने व्यवस्था अपने हाथोंमें ले ली और देवस्थान विभाग द्वारा इसका प्रबन्ध होने लगा। उसका ऑफिस उदयपुर रखा गया। रियासतोंके विलय हो जाने और राजस्थान प्रान्तके निर्माणके बाद इसका ऑफिस जैसलमेर चला गया है। इस विभागकी ओरसे व्यवस्था करनेके लिए एक अधिकारी यहाँ रहता है। जिसे पहले दारोगा कहा

जाता था, किन्तु अब इन्सपेक्टर हाकिम भण्डार धुलेव कहा जाता है। उसके नीचे २४ कर्मचारी हैं। मन्दिरकी ओरसे १०० आदमियोंकी ऋषभदेव मिलिटरी फोर्स रहती है।

मन्दिरको लगभग एक लाख रुपये वार्षिक आय है और लगभग इतना ही उसका व्यय है।

दैनिक कार्यक्रम

मन्दिरका सारा कार्यक्रम नियत है। सारा कार्य जल घड़ीके अनुसार चलता है। यह घड़ी चौबीस मिनटकी होती है। इस प्राचीन पद्धतिमें कार्य आठ पहर या चौंसठ घड़ियोंके अनुसार होता है।

प्रातः मन्दिरका एक कर्मचारी धर्मशालामें जाकर प्रक्षालकी सूचना देता है। भक्तजन आवश्यक क्रियासे निवृत होकर मन्दिरमें आ जाते हैं। वहाँ गर्म और ठण्डे जलकी तथा शुद्ध वस्त्रोंकी व्यवस्था है। मन्दिरके २ बजे अर्थात् ७-२० के लगभग २४ मिनट तक मूलनायक भगवान्‌का जलसे अभिषेक होता है। उस समय पंचकल्याणक पाठ होता है। ७-४५ के करीब ३ बजते हैं। तब दुग्धका अभिषेक होता है। दुग्धाभिषेकके पश्चात् पुनः जलाभिषेक होकर 'अंगपोंछन' होता है। कच्ची घड़ीके ४ बजनेपर धूपक्षेपण होकर केशर और पुष्पोंसे पूजन होता है। तत्पश्चात् बैण्ड बाजेके साथ आरती होती है और स्तवन, भजन होता है। जल-प्रक्षाल, दुग्ध-प्रक्षाल और केशर पूजाकी बोली होती है। बोलीका रुपया पुजारियोंको मिलता है। एक बजेसे चार बजे तक दुन्दुभि बाजोंके साथ प्रातःकालकी तरह जलाभिषेक, दुग्धाभिषेक और केशर-पूजा चलती है। सायंकाल मूल प्रतिमाको आंगी धारण करायी जाती है जो ७ बजे तक रहती है। ७ बजे बैण्ड बाजेके साथ भगवान्‌की आरती होती है और निज मन्दिरमें तथा सभामण्डपमें भगवान्‌के स्तवनादि होते हैं। रात्रिके शान्त वातावरणमें ११ बजेके बाद भक्ति-स्तवन होते हैं। इस कार्यक्रममें सम्मिलित होनेके लिए मन्दिरके कामदारसे स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

यह विशेष ज्ञातव्य है कि भगवान्‌का अभिषेक जिनेन्द्र पंचकल्याणक स्तोत्रके साथ होता है। एवं आरती, कीर्तन, पूजन और शास्त्र-सभा आदि दिगम्बर जैन आम्नायके अनुसार होते हैं। विशेष अवसरोंपर रथ आदिके जुलूस आयोजित होते हैं। स्थानीय दिगम्बर समाजकी ओरसे नौचौकीकी वेदीपर नित्य-नियम पूजन होता है। प्रातः और रात्रिमें प्रतिदिन शास्त्र-सभा होती है।

मन्दिरमें ब्राह्ममुहूर्तमें, प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल और रात्रिमें कुल पाँच बार नौबत बजती है। इसके अतिरिक्त प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल आरतीके समय भी नौबत बजती है। दो बार आरतीके समय बैण्ड बजता है।

दर्शनीय स्थान

इस क्षेत्रपर आनेवाले यात्रियोंके लिए निम्नलिखित स्थान दर्शनीय हैं—

पगल्याजी—जहाँ ऋषभदेवजी भूगर्भसे प्रकट हुए थे, वहाँ एक छतरीमें पाषाण चरण बने हुए हैं। छतरी नवीन है। पहले यहाँ एक चबूतरा बना हुआ था। यह स्थान गांवसे दक्षिण-पूर्वमें लगभग तीन फर्लांग दूर है। छतरोके निकट एक सभामण्डप भी बना हुआ है जिसे 'आम खास' कहा जाता है। वार्षिक मेले, रथयात्रा, अथवा जलयात्राके समय इसी मण्डपमें प्रतिमा लायी जाती है। निकट ही महुएके वृक्षके नीचे भगवान् ऋषभदेवका विश्रामस्थान बना हुआ है। पासमें यहाँ एक कुण्ड और बरसाती नाला है। ये सभी स्थान अर्वाचीन हैं।

चन्द्रगिरि—क्षेत्रके निकट एक पहाड़ी टीलेपर भट्टारक चन्द्रकीर्तिकी छतरी बनी हुई है।

कहते हैं, तत्कालीन भण्डारियोंने भट्टारकजीकी हत्या करके क्षेत्रपर अपना अधिकार जमा लिया था। यहाँ दो छतरी और एक कुटीर बनी हुई है। भट्टारकजीके नामपर इस पहाड़ीपर उनका यह स्मारक बना है। एक छतरीपर संवत् १७३७ का लेख भी अंकित है।

इस पहाड़ीके नीचे सूरज कुण्ड है। मूलनायकके अभिषेकके लिए दिनमें दो बार यहींसे जल ले जाया जाता है।

भीमपगल्या—गांवकी परिक्रमा करती हुई एक छोटी-सी सदातोया नदी बहती है जिसे कोयल या कुँवारिका कहते हैं। इस नदीपर पक्का घाट और पुल भी है। नदीके दरवाजेके पास काष्ठासंघके सुप्रसिद्ध भट्टारक भीमसेनका प्राचीन स्मारक है। यह पुरातत्त्व विभागके सुरक्षित स्मारकोंमें है।

चैत्यालय

गाँवमें चार चैत्यालय हैं। ऋषभदेव-उदयपुर मार्गमें यहाँसे ५ मील दूर पीपली ग्राममें एक मन्दिर है।

भट्टारक यशकीर्ति गुरुकुल

पगल्याजी मार्गपर विशाल गुरुकुल बना हुआ है जिसमें इस क्षेत्रके बाहरके लगभग ५० छात्र रहकर शिक्षण प्राप्त करते हैं। इस गुरुकुलमें ५० कमरे बने हुए हैं। यहीं भट्टारक यशःकीर्तिजी और उनके विद्वान् शिष्य रहते हैं। इन कमरोंमें कुछ कमरे धर्मशालाके रूपमें प्रयुक्त होते हैं, जिनमें बाहरसे आनेवाले यात्री ठहरते हैं। गुरुकुल भवनके सामने खेलका विशाल मैदान है जिसमें छात्र खेलते हैं। गुरुकुलकी स्थापना सन् १९६८ में हुई थी।

जिनालय

गुरुकुल भवनके प्रांगणमें एक भव्य जिनालय बना हुआ है। उसमें नीचे और ऊपरके भागमें दो वेदियाँ बनी हुई हैं। नीचे गर्भगृह, विशाल सभामण्डप और अर्धमण्डप या बरामदा है। वेदीपर भगवान् ऋषभदेवकी ६ फुट ऊँची श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख सुदी ११ संवत् २०३२ में हुई थी। इसके आगे धातुकी चौबीसी है।

ऊपर एक चबूतरेपर श्वेत पाषाणकी भगवान् महावीरकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है जिसकी अवगाहना ५ फुट ५ इंच (आसन सहित) है। बायीं और दायीं ओर ४ फुट ९ इंच ऊँची भरत और बाहुबलीकी श्वेत पाषाणकी खड्गासन प्रतिमा हैं। प्रतिष्ठा संवत् २०३२ में हुई थी।

इनके आगे ऋषभदेव, महावीर, शान्तिनाथकी धातु-प्रतिमाएँ तथा धातुकी एक चौबीसी है।

मन्दिरकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा २१ मई सन् १९७५ को हुई थी। इस अवसरपर लगभग ५० हजार व्यक्ति महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे।

भट्टारक यशकीर्तिजीने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका लोकहितार्थ एक ट्रस्ट बना दिया है, जिसके अन्तर्गत गुरुकुल, भट्टारक यशकीर्ति भवन, भ. यशकीर्ति दि. जैन सरस्वती भवन, चैत्यालय आदि संस्थाएँ हैं। भट्टारक यशकीर्ति भवन पाँच मंजिलका है। पहले इसीमें भट्टारजी रहते थे। इसमें तीसरी मंजिलमें सरस्वती भवन और चैत्यालय हैं। इसमें भगवान् आदिनाथकी १ फुट ९ इंच ऊँची श्यामवर्ण पद्मासन मूलनायक प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् २०१५ में हुई थी। इसके अतिरिक्त यहाँ धातुकी २७ मूर्तियाँ हैं।

इसी सन्दर्भमें कोटमें उत्तरकी ओर लगे हुए एक और शिलालेखका उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा। यह शिलालेख इस प्रकार है—

श्री आदीश्वर नी पादिना नाम महादेव ।
सकल जिनेश्वर यह नमि प्रणमि सरस्वति माय ।
श्री गुरुना यह अनुसरी करो बुधि उपाय ।।
आदि जिनेश्वर मंदिरे दिसे दुर्ग उत्तुंग ।
चन्द्रकीर्ति सुरिवर जहाँ कीधो मन तणे रंग ।।
दंडारग देस मेवाड़में उदियापुर सुजाण ।
राज करै तिहाँ राजवी भीमसिंह राजान ।।
हिन्दुपत पातमा भलो समोवड़ अर्क-प्रताप।
गुण गंभीर सायर समो कल्पतरु सम साख ।।
संवत् १८६३ में असाढ़ सुदी तीज ।
गुरुवारे मुहूर्त जु करो भली तरै पूजा कीध ।।
मूल संघ गच्छ सरस्वती बलात्कारगणधार ।
कुन्दकुन्द सूरीवर भलो सु आम्नाय तेह उधार ।।
तह अनुक्रमे सूरीवर भलो सकल कीर्ति गछराय ।
तेह पाटै गुरु शोभतो भुवनकीर्ति नमूं णाय ।।
ज्ञानभूषण पाटे प्रगट विजयकीर्ति सुरि ईश ।
सुभचन्द्र सूरीवर सदा सुमतिकीर्ति गुणकीर्ति ।।
गुरु गुपातिलो वादिभूषण तसपाट ।
रामकीर्ति पाट सोभतो राच्यो धर्म नो ठाठ ।।
पद्मनन्दी पाटे सुजस देवेन्द्रकीर्ति गुणधार ।
खेमकीर्ति पट उज्वलो नरेन्द्रकीर्ति मनुहार ।।
विजयकीर्ति पाटे गुरु नेमिचन्द्र भवतार ।
चन्द्रकीर्ति चन्द्रसमो रामकीर्ति सुखकार ।।
यशकीर्ति सुरीजी सह उदयो पुन्य अंकूर ।
करी प्रतिष्ठा दुर्गतणी जस व्याप्यो भरपूर ।।
वागड़ देश सोहामणो सागल पुरवर ग्राम ।
संघपति साह रात्रिया मणि सुन्दर सैनी नाम ।।
गांधी धनजीकरण जी कसनजी सुत आण ।
कमलेश्वर गोत्रज तणु यसव धारणवान ।।
भार्या आणन्दे कुँवर जे सुत माणकचन्द ।
जेह भार्या कसनवाई निर्मली माणकदेवीजी तेह सुत अजेचन्द्र जाणिये ।
पुण्यवंत गुणवंत बालमदे भार्यामली शीलवंति सुसंत सुत नवलचन्द ।
जनमियो पुत्री हंसी जाण पुण्यवंत प्रतपो घणु गुण कला निधान ।
चन्द्रकीर्ति गुरु उज्वला कर्यो दुर्ग उतंग ।
यशकीर्ति गुरु निर्मलो करि प्रतिष्ठा मनरंग ।।

गांधी वजेचंधजी अली गुरु आज्ञा-प्रतिपाल ।
जशलीधो अति उज्वलो जसकीर्ति तणु प्रताप ॥
भट्टारकजी श्री नयरत्न सूरीस्तोजी साहाजी धर्मचन्दजी,
पण्डित किशनजी, पण्डित मोतीचन्दजी रावतजी जोतसिहजी,
भंडारी कुवेरजी हूमड़ ज्ञातीये वृद्धशाखायां
गांधी वजेचन्दजी सुत नवलचन्दजी
चिरंजीवत जोशी भागचन्द्रेण लिपिकृतं धुलेवनगरे । श्रीरस्तु ।
सोरण जोतश्री दौलतरामजी भट कृपाशंकरजी ॥

शिलालेख और मूर्ति-लेख : एक अध्ययन

ऋषभदेव (केशरियानाथ) मन्दिरमें जो शिलालेख और मूर्ति-लेख उपलब्ध होते हैं, उनसे अनेक महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है। विशेषतः इतिहासकी दृष्टिसे इनका बहुत महत्त्व है। इन लेखोंसे इस क्षेत्रसे सम्बन्धित भट्टारकों, उनके संघ, आम्नाय, गण, गच्छ, अन्वयके सम्बन्धमें प्रामाणिक जानकारी मिलती है। इनके साथ-साथ इन जिनालयोंके निर्माता तथा मूर्तियोंके प्रतिष्ठा-कारकोंके नाम, जाति, गोत्र, निवास तथा इनका निर्माण-काल अथवा प्रतिष्ठा-कालका ज्ञान होता है। इसलिए इन शिलालेखों और मूर्ति लेखोंपर इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें विचार करना आवश्यक है।

यहाँ उपलब्ध शिलालेखोंकी संख्या अधिक नहीं है। कुल मिलाकर ७-८ शिलालेख हैं, किन्तु मूर्ति-लेख ५० से भी अधिक हैं। इन दोनों प्रकारके लेखोंके अध्ययनसे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

मन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण एवं प्रतिष्ठा—यहाँके मूल मन्दिर अर्थात् केशरियानाथजीके मन्दिरका जीर्णोद्धार, बावन जिनालयों, नौचौकी, सभामण्डप, पार्श्वनाथ जिनालय, एवं मन्दिरके बाहरी कोट और उसके सिंहद्वारका निर्माण काष्ठासंघी दिगम्बर जैन भट्टारकोंके उपदेश अथवा प्रेरणासे दिगम्बर जैन धर्मानुयायियोंने कराया है। जिन भट्टारकोंने इनके निर्माणकी प्रेरणा की, उन्होंने ही इनकी प्रतिष्ठा करायी अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठाकारक दोनों ही दिगम्बर जैन थे।

मूर्तिलेखोंसे ज्ञात होता है कि इनकी प्रतिष्ठा काष्ठासंघ और मूलसंघ दोनों ही संघोंके भट्टारकोंने करायी थी। कुछ मूर्तियाँ मूलसंघके भट्टारकोंने प्रतिष्ठित करायी और कुछ मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा काष्ठासंघी भट्टारकोंने करायी। सहस्रकूट चैत्यालयकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १७४२ में मूलसंघके भट्टारक नेमिचन्द्रजीने करायी। सभी तीर्थंकर मूर्तियाँ दिगम्बर जैन आम्नायकी हैं और सभी प्रतिष्ठाकारक विभिन्न जातियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले दिगम्बर जैन धर्मानुयायी हैं।

मूल मन्दिरका जीर्णोद्धार वि. सं. १४३१ में भट्टारक धर्मकीर्तिके उपदेशसे हुआ था।

भट्टारक संघ

यहाँ सदासे मूल संघ और काष्ठासंघके भट्टारकोंकी गद्दी रही है। इन्हीं दोनों संघोंके भट्टारकोंने यहाँ सारा निर्माण और प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न कराया। मूलसंघके भट्टारकोंके गण, गच्छादिके सम्बन्धमें मूर्ति-लेखोंमें इस प्रकार परिचय मिलता है—मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यान्वय, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण। इनके पश्चात् भट्टारकका नाम आता है। इस प्रकार काष्ठासंघके भट्टारकोंके सम्बन्धमें दोनों प्रकारके लेखोंमें गच्छ-गणादिका विवरण इस प्रकार दिया गया है—

काष्ठासंघ, नन्दीतटगच्छ, विद्यागण, रामसेनान्वय। किसी मूर्ति-लेखमें लोहाचार्यान्वय भी मिलता है। संवत् १७५३ के शिलालेखमें लाडवागड़ गच्छका और भट्टारक प्रतापकीर्ति आम्नायका भी उल्लेख है।

मूलसंघ बलात्कारगण

ऋषभदेव क्षेत्रकी व्यवस्था पहले मूलसंघकी बलात्कारगण ईडर शाखाके भट्टारकोंके हाथमें थी। अतः उन्होंने अपनी एक गद्दी इस क्षेत्रमें स्थापित कर ली, जिससे व्यवस्था करनेमें सुविधा रहे।

बलात्कारगण ईडर शाखाका प्रारम्भ भट्टारक सकलकीर्तिसे हुआ। आप भट्टारक पद्मनन्दि-के शिष्य थे। भट्टारक पद्मनन्दिके तीन प्रमुख शिष्यों द्वारा बलात्कारगणकी तीन भट्टारक परम्पराएँ प्रारम्भ हुईं—शुभचन्द्रने दिल्ली-जयपुर शाखा, सकलकीर्तिने ईडर शाखा और देवेन्द्र-कीर्तिने सूरत शाखा प्रारम्भ की।

शिलालेखोंमें बलात्कारगण ईडर शाखाके जिन भट्टारकोंका उल्लेख आया है, उनका काल-पट इस प्रकार है—

१. सकलकीर्ति (संवत् १४५०–१५१०)
२. भुवनकीर्ति (संवत् १५०८–१५२७)
३. ज्ञानभूषण (संवत् १५३४–१५६०)
४. विजयकीर्ति (संवत् १५५७–१५६८)
५. शुभचन्द्र (संवत् १५७३–१६१३)
६. सुमतिकीर्ति (संवत् १६२२–१६२५)
७. गुणकीर्ति (संवत् १६३१–१६३९)
८. वादिभूषण (संवत् १६५२–१६५६)
९. रामकीर्ति (संवत् १६५७–१६८२)
१०. पद्मनन्दि (संवत् १६८३–१७०२)
११. देवेन्द्रकीर्ति (संवत् १७१३–१७२५)
१२. क्षेमकीर्ति (संवत् १७३४–)
१३. नरेन्द्रकीर्ति (संवत् १७६२–)
१४. विजयकीर्ति
१५. नेमिचन्द्र
१६. चन्द्रकीर्ति
१७. रामकीर्ति
१८. यशःकीर्ति (संवत् १८६३–)

उपर्युक्त नामोंके अतिरिक्त भी कुछ नाम मूर्ति-लेखोंमें आये हैं। जैसे प्रेमकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति। इनका भी काल-निर्धारण होना है। इनमें भट्टारक प्रेमकीर्तिका नामोल्लेख संवत् १७४६ के मूर्तिलेखमें आया है अर्थात् संवत् १७४६ में इन्होंने पार्श्वनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी थी। इसी प्रकार सुरेन्द्रकीर्तिके नामका उल्लेख सकलकीर्ति, पद्मनन्दीके बाद और क्षेमकीर्तिसे पूर्व वि.

सं. १७४६ के मूर्ति-लेखमें आया है। अर्थात् सुरेन्द्रकीर्तिका काल वि. सं. १७४६ से पूर्वका है। क्योंकि सं. १७४६ में भट्टारक क्षेमकीर्तिने मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी थी।

मूलसंघके भट्टारकोंका उल्लेख इन मूर्ति-लेखोंमें वि. सं. १६११ से १८६३ तक मिलता है। उन्होंने यहाँ पर वि. सं. १६११, १७११, १७४२, १७४६, १७६७, १७६८, १७६९, १७७३, १८६३ .न संवत्सरोंमें अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी।

काष्ठासंघ

आचार्य देवसेनने 'दर्शनसार' में लिखा है कि आचार्य विनयसेनके शिष्य कुमारसेनने वि. सं. ७५३ में नन्दियड (वर्तमान नान्देड़) में काष्ठासंघकी स्थापना की। बादमें काष्ठासंघकी कई शाखाएँ हो गयीं। जैसे माथुरगच्छ, बागड़गच्छ, लाडवागड़गच्छ तथा नन्दीतटगच्छ। काष्ठासंघका नाम दिल्लीके निकटवर्ती काष्ठा नामक ग्रामके नामपर रखा गया। बारहवीं शताब्दीमें यह टक्क वंशके शासकोंकी राजधानी थी। यहांके टक्क शासक मदनपालने 'मदनपाल निघण्टु' नामक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की थी। फीरोजशाह तुगलककी माता यहाँके शासककी पुत्री थी।

ऋषभदेवमें काष्ठासंघकी शाखा नन्दीतटगच्छके भट्टारकोंका प्रभाव प्रारम्भसे ही रहा है। शताब्दियों तक इस क्षेत्रकी व्यवस्था भी इनके हाथमें रही है। इस क्षेत्रके ज्ञात इतिहासके प्रारम्भसे ही इस संघके भट्टारकोंकी गद्दी भी इस क्षेत्रपर रही है। यहाँ सबसे प्राचीन शिलालेख वि. संवत् १४३१ का मिलता है। इस समय इस प्राचीन मन्दिरके जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है जो काष्ठासंघी भट्टारक धर्मकीर्तिके उपदेशसे सम्पन्न हुआ था।

इस क्षेत्रपर उपलब्ध शिलालेखों और मूर्तिलेखोंमें काष्ठासंघकी एक शाखा नन्दीतटगच्छ विद्यागणके निम्नलिखित भट्टारकोंका उल्लेख मिलता है—

भट्टारक रामसेन, धर्मकीर्ति, यशकीर्ति, विश्वभूषण, त्रिभुवनकीर्ति, भीमसेन, गोपसेन, राजकीर्ति, लक्ष्मीसेन, इन्द्रभूषण, सुरेन्द्रकीर्ति, प्रतापकीर्ति, श्रीभूषण, शुभचन्द्र, जयकीर्ति, सुमतिकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति, ज्ञानकीर्ति।

यहाँ काष्ठासंघकी एक अन्य शाखा लाडवागड़-गच्छका उल्लेख संवत् १७५३ के एक शिलालेखमें आया है किन्तु इस गच्छका केवल उल्लेख मात्र आया है, भट्टारक परम्परा नन्दीतटगच्छकी ही दी है।

इन भट्टारकोंने यहाँ मूल मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, नवीन जिनालयोंका निर्माण कराया, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इनके लेख वि. सं. १४३१ से १८४९ तकके उपलब्ध होते हैं। सर्वप्राचीन नामोल्लेख भट्टारक धर्मकीर्तिका और सबसे अन्तिम नामोल्लेख भट्टारक ज्ञानकीर्तिका मिलता है।

काष्ठासंघ—नन्दीतटगच्छके भट्टारकोंका सुविचारित कालपट इस प्रकार है—

१. रत्नकीर्ति
२. लक्ष्मीसेन

३ भीमसेन
४. सोमकीर्ति (संवत् १५२६-१५४०)
५. विजयसेन
६. यशःकीर्ति
७. उदयसेन
८. त्रिभुवनकीर्ति
९. रत्नभूषण (संवत् १६७४)
१०. जयकीर्ति (संवत् १६८६)
११. केशवसेन
१२. विश्वकीर्ति (संवत् १६९६-१७००)

१. धर्मसेन
२. विमलसेन
३. विशालकीर्ति
४. विश्वसेन (संवत् १५९६)

५. विजयकीर्ति

विद्याविभूषण (सं. १६०४-१६३६)
६. श्रीभूषण (सं. १६३४-१६७६)
७. चन्द्रकीर्ति (सं १६५४-१६८१)
८. राजकीर्ति
९. लक्ष्मीसेन (सं. १६९६-१७०३)
१०. इन्द्रभूषण (सं. १७१५-१७३६)
११. सुरेन्द्रकीर्ति (सं. १७४४-१७७३)

१२. लक्ष्मीसेन
विजयकीर्ति (सं. १८६२)

सकलकीर्ति (सं. १८१६)

देवेन्द्रकीर्ति (सं. १८८१-१८८५)

यह तालिका पूरी नहीं है तथा काल-गणना भी अधूरी है। इस तालिकामें कई नाम छूट गये हैं जो ऋषभदेवमें शिलालेखों और मूर्तिलेखोंमें आये हैं—जैसे धर्मकीर्ति, विश्वभूषण, गोपसेन, प्रतापकीर्ति, शुभचन्द्र, सुमतिकीर्ति, ज्ञानकीर्ति।

इनमेंसे कुछ तालिकामें दिये गये नामोंसे मिलते-जुलते हैं किन्तु उनकी कालगणना शिलालेखों और मूर्तिलेखोंके समयसे नहीं मिलती। इससे लगता है, समान नाम भिन्न व्यक्तियोंके रहे हैं। ऐसे भट्टारक हैं—यशःकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, भीमसेन, देवेन्द्रकीर्ति। शिलालेखों और मूर्तिलेखोंके अनुसार काष्ठासंघके भट्टारकोंने वि. सं. १५७२, १७०४, १७३४, १७५३, १७५४, १७५६, १७६०, १७६३, १७६४, १७६६, १७६८, १८४९ में मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी।

ज्ञाति और गोत्र

शिलालेखों और मूर्ति-लेखोंसे मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करानेवाले धार्मिक व्यक्तियोंके परिचयके अतिरिक्त उनकी जाति और गोत्रके बारेमें भी प्रकाश पड़ता है। इन लेखोंके अनुसार हूमड़, दसा हूमड़, नरसिंगपुरा, खण्डेलवाल, बघेरवाल, वाच, आवांसिता, लाड जातिके उदार सज्जनोंने मन्दिर-निर्माण, जीर्णोद्धार और प्रतिष्ठा-कार्य कराये।

इन जातियोंके प्रतिष्ठाकारक सज्जनोंके गोत्र भी दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं :

जाति	गोत्र
(दसा) हूमड़ वृद्धशाखा	विश्वेश्वर, कवुर, कमलेश्वर, बुध
खण्डेलवाल	लुहाड्या, ठोल्या
नरसिंगपुरा	सांपड़िया, कंकुलोल, अंगति
बघेरवाल	गोवाल
लाड	—
वाच	काश्यप

मेला

श्री केशरिया क्षेत्रपर दिगम्बर समाजकी ओरसे वर्षमें कई बार मेले उत्सव होते हैं। चैत्र वदी ८ और ९ को मेला होता है। इस अवसरपर जलूस निकलता है जो पगल्यांजी तक जाता है। चैत वदी ९ भगवान् ऋषभदेवका जन्मकल्याणक दिवस है। अतः अष्टमीको रातमें १२ बजे जन्म महोत्सव मनाते हैं। इस अवसरपर भजन, कीर्तन, आरती आदि होते हैं।

चैत्र शुक्ला १३ को महावीर स्वामीका एक जलूस मन्दिरजीसे निकलता है। यह भी पगल्यांजी तक जाता है। वहाँ मूर्ति विराजमान करके दिगम्बर समाज पूजन करती है। इस अवसरपर प्रभावना बाँटी जाती है।

दशलक्षण पर्वके १० दिन तक नीचे और ऊपरकी वेदीपर मण्डप बनाकर और मांडने माढ़कर दिगम्बर सम्प्रदायके लोग सारे दिन पूजन करते हैं। यहींपर व्रतोंका उद्यापन होता है।

आसौज कृष्णा १ और २ को दिगम्बर समाजकी ओरसे मय बैण्ड और लवाजमेके रथ-यात्रा निकलती है। रथ पहले दिन नदी-तटपर जाता है। वहाँ भगवान्‌का अभिषेक और पूजन होता है। वहाँसे लौटकर रथ बगीचेके नुक्कड़पर ठहरता है। दूसरे दिन शामको ६ बजेसे भजन, कीर्तन, नृत्य करते हुए वापस लौटते हैं और रातको २ बजे मन्दिरजीमें जलूसको विसर्जित करते हैं। उस समय सम्पूर्ण दिगम्बर समाज मय ढोल-नगाड़ोंके नीचेकी वेदी तक जाती है। वहाँ भक्तजन गरवा नृत्य करते हुए मूलनायक भगवान्‌की प्रदक्षिणा करते हैं। इस मेलेमें हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। इस अवसरपर सारा नगर सजाया जाता है।

कार्तिक कृष्णा अमावस्याके प्रातःकाल महावीर स्वामीका निर्वाण महोत्सव मनाया जाता है। निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है। पूजन होता है। इस मन्दिरसे निकलकर सभी दिगम्बर बन्धु नगरके सभी चैत्यालयों और मन्दिरोंमें निर्वाण लाडू चढ़ाने जाते हैं।

माघ कृष्णा १४ को ऋषभदेव भगवान्‌का निर्वाण जलूस मन्दिरसे निकलता है। जलूस नगरमें भ्रमण करता हुआ मन्दिरमें वापस आता है। वहाँ निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है।

मन्दिरमें काष्ठासंघ और मूलसंघकी दोनों गद्दियोंपर प्रतिदिन दोनों समय शास्त्र प्रवचन होता है, जिसमें दिगम्बर बन्धु सम्मिलित होते हैं तथा दिगम्बर समाज यहाँ प्रतिदिन पूजा करती है।

जब दिगम्बर मुनि या आचार्योंका पदार्पण होता है, तब समय-समयपर यहाँ उनका प्रवचन होता है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर आनेवाले यात्रियोंके ठहरनेके लिए तीन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। इनमें ओढ़ने-बिछाने, ठहरने, जल, प्रकाश, बर्तनों आदिकी व्यवस्था है। धर्मशालाओंकी व्यवस्थाके लिए एक मैनेजर भी रहता है। इन धर्मशालाओंमें दिगम्बर, श्वेताम्बर, हिन्दू आदि सभी यात्री ठहरते हैं। इनमें कुछ कमरे शुल्क देकर लिये जा सकते हैं। शुल्कवाले कमरे साफ-सुथरे हैं तथा उनके लिए जलकी व्यवस्था अच्छी है।

भट्टारक यशःकीर्ति दिगम्बर जैन गुरुकुलमें भी यात्रियोंके ठहरनेके लिए कुछ कमरे उपलब्ध हैं। यहाँकी व्यवस्था अपेक्षाकृत अच्छी है। यहाँ कमरे अधिक हवादार और साफ-सुथरे हैं।

व्यवस्था

केशरियाजी मन्दिरकी व्यवस्था राजस्थान सरकारका देवस्थान विभाग करता है। उसकी ओरसे यहाँ इन्सपेक्टर हाकिम भण्डार धुलेव अपने पूरे अमले और सैनिकोंके साथ रहता है और नियमानुसार यहाँकी व्यवस्था देखता है।

किन्तु दिगम्बर समाजके हितोंकी रक्षाके लिए यहाँ 'श्री ऋषभदेव (केशरियाजी) दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र रक्षा कमेटी ऋषभदेव' नामक एक व्यवस्था-समिति बनी हुई है। यह भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईसे सम्बन्धित है। इसका कार्यालय मन्दिर-कोटके प्रवेश-द्वारके दायीं ओर है। इसका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री ऋषभदेव (केशरियाजी) दिगम्बर जैन तीर्थरक्षा कमेटी,
ऋषभदेव (उदयपुर) राजस्थान

आबू

मार्ग

यह क्षेत्र पश्चिम रेलवेके अजमेर-अहमदाबाद रेल-मार्गके आबू रोड स्टेशनसे २९ कि. मी. दूर दिलवाड़ा नामक ग्राममें है। दिलवाड़ा आबूसे डेढ़ कि. मी. है और पहाड़की चोटीपर है। आबू रोड अजमेरसे ३०५ कि. मी. है और अहमदाबादसे १८६ कि. मी. है। आबू रोडसे १० कि. मी. आबू पर्वतकी तलहटी है और फिर १९ कि. मी. पहाड़पर पक्की सड़कपर चलना पड़ता है। यहाँकी प्राकृतिक दृश्यावली अत्यन्त नयनाभिराम है। यह पर्वतीय पर्यटन केन्द्र है तथा स्वास्थ्यप्रद स्थान (Sanitorium) है। यह समुद्रके धरातलसे ५३५० फुट ऊँचा है। पर्यटन केन्द्रके रूपमें सरकारने इसका खूब विकास किया है तथा पर्यटकोंके ठहरनेके लिए यहाँ अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँका पोस्ट ऑफिस माउण्ट आबू है और जिला सिरोही (राजस्थान) है।

तीर्थक्षेत्र

आबू पर्वतपर दिलवाड़ामें विश्वविख्यात जिनमन्दिर हैं। यहाँ पाँच मन्दिर शिल्पकलाके मूर्तिमान निधान हैं। ये संगमरमरके बने हुए हैं। इनके स्तम्भों, दिलहों, तोरणों और छतोंमें अत्यन्त सूक्ष्म अंकन किया गया है। कलाके इन अनूठे उपादानोंको देखकर ऐसा लगता है, मानो

कलाकी देवी इन पाषाणोंमें अवतरित हुई है। ऐसी अनिन्द्य कलाकी समानता विश्वप्रसिद्ध ताजमहल भी नहीं कर सकता। इसलिए अनेक विद्वान् इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि ताजमहलकी कलाकी अपेक्षा दिलवाड़ाके इन जैन मन्दिरोंकी कला कहीं उत्कृष्ट है। किन्तु ताजमहलकी जो इतनी ख्याति प्राप्त हुई है, उसका कारण राजकीय संरक्षण एवं ताजमहलका बाह्य परिवेश है। ये दोनों ही सुविधाएँ दिलवाड़ाके जैन मन्दिरोंको उपलब्ध नहीं हैं। यदि इन मन्दिरोंको ये सुविधाएँ प्राप्त हुई होतीं तो ताजमहलका स्थान सम्भवतः उस स्थितिमें दूसरा होता।

इन अद्भुत कलागारोंके निर्माता मन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल-तेजपाल हैं। आचार्य जिनप्रभसूरिने अर्बुदाद्रिकल्प (विविध तीर्थकल्प पृष्ठ १५) की रचना की है, जिसमें अर्बुदाचल क्षेत्रका इतिहास और मन्दिर-निर्माणका विवरण दिया है। इसी ग्रन्थमें वस्तुपाल-तेजपाल मन्त्रिकल्प (पृष्ठ ७९) नामक एक अन्य कल्प भी दिया है, जिसमें इन दोनों भ्राताओंका जीवन-परिचय और उनके द्वारा किये गये धार्मिक और पारमार्थिक कार्योंका ब्यौरा दिया है।

श्रीसूरिजी यहाँके प्राकृतिक वैभवका वर्णन करते हुए कहते हैं कि न तो कोई ऐसा वृक्ष है, न ऐसी लता है, न ऐसा कोई पुष्प है, न ऐसा फल है, न कोई ऐसा कन्द है, न कोई ऐसी खान है, जो यहाँ न हो। यहाँ ऐसी महौषधि हैं जो रात्रिमें दीपकके समान चमकती हैं। यहाँ ऐसे वृक्ष हैं, जिनमें सुगन्धि भी है और रस भी है। यहाँ मन्दाकिनी नदी बहती है, अनेक निर्झर और प्रपात हैं।

उन्होंने यहाँके मन्दिरोंके निर्माताओंका परिचय इस भाँति दिया है—

इस महाद्रिके शासक परमारनरेश थे। चन्द्रावती नगरी उनकी राजधानी थी जो धन-वैभवसे सम्पन्न थी। उनका दण्डनायक निर्मल बुद्धिवाला विमल था। यहाँ ऋषभदेव चैत्य था, जिसमें धातुकी प्रतिमा थी। इन्हीं विमलशाहने विक्रम संवत् १०८८ में करोड़ों रुपये व्यय करके विमल-वसति (मन्दिर) का निर्माण कराया। इस मन्दिरको आदिनाथ मन्दिर भी कहते हैं। इस मन्दिरके सामने शिल्पीने एक रात्रिमें ही अत्यन्त सुन्दर पाषाण-अश्व बनाया।

विक्रम संवत् १२८८ में वस्तुपाल-तेजपाल भ्राताओंने यहाँ लूणिग-वसतिका निर्माण कराया। इस वसतिको नेमिनाथ मन्दिर भी कहते हैं।

आक्रमणकारी मुसलमानोंने इन देवायतनोंको भी नहीं छोड़ा। उनके अविवेक और धर्मोन्मादके कारण इन मन्दिरोंको बड़ी क्षति पहुँची। तब शक संवत् १२४३ (ईसवी सन् १३२१) में एक मन्दिरका जीर्णोद्धार महणसिहके पुत्र लल्लने कराया तथा दूसरे मन्दिरका जीर्णोद्धार चण्डसिंहके पुत्र पीथडने कराया। चौलुक्यवंशी नरेश कुमारपालने महावीर जिनालयका निर्माण कराया।

आचार्य जिनप्रभ सूरिने वस्तुपाल-तेजपालके सम्बन्धमें जो परिचयात्मक विवरण दिया है, वह वस्तुतः उपयोगी है। संक्षेपमें उनका आशय इस प्रकार है—

पत्तननिवासी प्राग्वाटवंशी ठक्कुर चण्डपके पौत्र, ठक्कुर चण्डप्रसादके पुत्र चन्द्रवंशी ठक्कुर आसराज और कुमारदेवीके दो पुत्र हुए—वस्तुपाल और तेजपाल। एक बार दोनों भाई शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थोंकी यात्राके लिए गये। जब वे हडाला ग्राममें पहुँचे तो उन्होंने अपनी सम्पत्तिका आकलन किया तो तीन लाखकी बैठी। उन्होंने एक लाख रुपये भूमिमें गाड़नेका निश्चय करके रात्रिमें एक बड़े पीपलके पेड़के नीचे भूमिको खोदना प्रारम्भ किया। वहाँ उन्हें स्वर्ण मुद्राओंसे भरा हुआ कलश प्राप्त हुआ। इस धनको अपनी भाभी अनुपमादेवीके परामर्शसे वस्तुपालने शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थोंमें लगा दिया। यात्राके पश्चात् वे धवलक्ककपुर पहुँचे।

एक दिन वहांके शासक वीरधवल नरेशको स्वप्नमें किसी देवीने आदेश दिया कि "तुम वस्तुपाल-तेजपालको अपना मन्त्री बना लो। तुम्हारे राज्यकी श्रीवृद्धि होगी और तुम निश्चिन्तता-पूर्वक शासन करोगे।" देवीके आदेशानुसार राजाने प्रातःकाल होते ही दोनों बन्धुओंको बुलाया और उन्हें मन्त्री पद दे दिया। इतना ही नहीं, वस्तुपालको स्तम्भ तीर्थ और धवलक्ककका शासक बना दिया और तेजपालको सम्पूर्ण राज्य-व्यापारकी मुद्रा दे दी।

उन्होंने अपने जीवनमें सवा लाख मूर्तियोंको प्रतिष्ठा करायी। उन्होंने शत्रुंजय तीर्थपर १८,९६,००००० रुपये, गिरनारपर १२,८०,००००० रुपये और अर्बुदगिरिपर लूणिगवसतिके निर्माणमें १२,५३,००००० रुपये लगाये। उन्होंने ९८४ पौषधशालाएँ निर्मित करायीं, १३०४ शिखरबद्ध जैन मन्दिर बनवाये तथा २३०० जैन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया। इनके अतिरिक्त अनेक कार्य किये। कुल मिलाकर उन्होंने अपने जीवनमें ३००१४१८८०० रुपये व्यय किये।

जब वीरधवल राजाका स्वर्गवास हो गया तो उन्होंने राजाके पुत्र बीसलदेवको राज-सिंहासनपर आरूढ़ किया। किन्तु कुछ समय पश्चात् उसने अभिमानमें आकर इन्हें मन्त्रीपदसे पृथक् कर दिया तथा अन्य व्यक्तिको मन्त्री बना लिया। राजाके पुरोहित सोमेश्वर महाकविने एक काव्य द्वारा इसके लिए राजाकी बहुत भर्त्सना की।

इस प्रकार इन दोनों भ्राताओंका जीवन अत्यन्त यशस्वी था। उन्होंने आबू पर्वतपर मन्दिर-निर्माणमें साढ़े बारह करोड़ रुपयेसे अधिक व्यय किया। निश्चय ही यह व्यय पाषाण, निर्माण-सामग्री और मजदूरीके लिये हुआ, इन चीजोंका हिसाब किया जा सकता है। किन्तु वे पाषाण कलाका वरदान पाकर बोल उठे, वहाँ कला अपने सहस्र रूपोंमें मुखरित हो उठी है, उसका मूल्यांकन करनेका सामर्थ्य भला किसमें है? कलाका मूल्यांकन सोने-चाँदीके मानकों द्वारा नहीं होता।

भट्टारक ज्ञानसागरजीने 'सर्वतीर्थवन्दना' में आबू तीर्थकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—

"आबूगढ़ अभिराम काम त्रिभुवन माँ सारे।
श्री जिनबिम्ब अनेक समस्त भवजल तारे।
जिनवर भुवन विशाल देखत पाप पणासे।
कहेताँ न लहुँ पार कर्म अनन्त विनासे।
आबूनी रचना प्रबल देखत जन मन उल्लसे।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति मुझ मन जिनचरणें बसे॥१६॥"

इसी प्रकार भट्टारक जयसागरने आदिनाथकी मनोज्ञ प्रतिमाको नमस्कार किया है— 'सुआबुगढ़ जिनबिम्ब मनोहार। सुआदिनाथ पाली भवतार॥' इससे प्रतीत होता है कि भगवान् आदिनाथकी किसी मूर्तिकी बड़ी ख्याति रही होगी।

क्षेत्र-दर्शन

माउण्ट आबू बस स्टैण्डसे ३ कि. मी. आगे दिलवाड़ा है। बस दिगम्बर जैन मन्दिरके सामने रुकती है। कुछ सीढ़ियां चढ़कर मन्दिरका द्वार मिलता है। चारों ओर धर्मशाला है और मध्यमें शिखरबद्ध मन्दिर है। मन्दिरमें गर्भगृह, सभामण्डप, उससे आगे एक कमरेमें मण्डप, उसके नीचे पूजाका चबूतरा है। मुख्य वेदीपर भगवान् आदिनाथकी ३ फीट २ इंच ऊँची श्वेत पद्मासन मूर्ति २ फीट १ इंच ऊँचे पीठासन पर विराजमान है। पीठासन संगमरमरका है।

पीठासनपर कोष्ठकोंमें दोनों कोनोंमें यक्ष-यक्षी और मध्यकोष्ठकमें यक्षी बनी हुई है। मध्य कोष्ठकके दोनों ओर गज और सिंह उत्कीर्ण हैं। मध्य-यक्षीके नीचे धर्मचक्र बना हुआ है तथा लेख अंकित है।

मूलनायक एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण हैं। यह फलक ५ फीट ऊँचा है। मूर्तिके सिरके ऊपर छत्रत्रयी, उसके ऊपर देव-दुन्दुभि, उसके दोनों पार्श्वोंमें गजारूढ़ चमरवाहक, उनसे नीचे बायीं ओर पद्मासन जिनेन्द्र प्रतिमा, मालाधारी आकाशचारी देव तथा इनसे नीचे खड्गासन प्रतिमा है। आदिनाथके बगलमें दोनों ओर सिंहासनमें पीतलकी ६ इंच ऊँची मूर्ति तथा ८ इंचकी एक कृष्ण पाषाणकी मूर्ति विराजमान है। इनके अतिरिक्त दोनों पार्श्वोंमें २ फीट ऊँची पद्मासन मूर्तियाँ हैं। पीठासनसे नीचे दोनों ओर २ फीटकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

बायीं ओर दीवारमें एक वेदीपर २ फीट ८ इंच और २ फीट ३ इंचकी दो पाषाण मूर्तियाँ हैं। इसी प्रकार दायीं ओरकी दीवारवेदीमें इसी आकारकी आदिनाथ और महावीरकी मूर्तियाँ हैं।

गर्भगृहके मध्यमें एक मेजपर स्थित सिंहासनमें ४ धातु मूर्तियाँ हैं। गर्भगृहके प्रवेश-द्वारके सिरदलपर अर्हन्त प्रतिमा है। प्रवेशद्वारके बायीं ओर चौखटके बगलमें २ फीट ऊँची चन्द्रप्रभकी पद्मासन प्रतिमा है तथा बायीं दीवारमें २ फीट १ इंच ऊँची एक श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसी प्रकार दायीं ओर पीतवर्णकी १ फुट ८ इंच ऊँची धर्मनाथकी पद्मासन प्रतिमा है और दायीं दीवारमें १ फुट ८ इंचकी आदिनाथकी श्वेत प्रतिमा है।

सभी प्रतिमाएँ एक ही कालकी हैं। गर्भगृह और सभामण्डपके ऊपर शिखर हैं। मूलनायक प्रतिमा जमीनमें-से उत्खनन द्वारा निकली थी। संवत् १४९४ में ईडरके भट्टारकजीने इसकी पुनः प्रतिष्ठा की थी। मूर्ति सम्भवतः ११-१२वीं शताब्दीकी है।

दिलवाड़ाके कलापूर्ण मन्दिर

दिगम्बर मन्दिरसे कुछ आगे जानेपर श्वेताम्बर मन्दिरोंका समूह है। सर्वप्रथम विमल-वसहि मिलती है। यह प्रसिद्ध जिनालय राजा भीमदेवके मन्त्री विमलशाहने सन् १०३१ में बनवाया था। इसके निर्माणमें १८,५३,००००० रुपये व्यय हुए थे। विमलशाह पोरवाड़ जातिके थे तथा चालुक्य राजा भीमदेव प्रथमके मन्त्री थे। भीमदेव प्रथम नागदेवका पुत्र था और चालुक्य-वंशी दुर्लभराजके बाद सन् १०२२ में गद्दीपर बैठा था। सन् १०३१ से कुछ पूर्व उसने परमार-वंशी धान्धुकापर आक्रमण करके आबूपर अधिकार कर लिया तथा विमलशाहको वहाँका शासक (गवर्नर) नियुक्त कर दिया। विमलशाहने वहाँके मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्यको देखकर जिनालय बनवानेका विचार किया। किन्तु उन्होंने जिनालयके लिए जो स्थान पसन्द किया, वह ब्राह्मणोंका था। वे लोग जिनालय निर्माणके लिए जमीन देनेको तैयार नहीं थे। तब विमलशाहने जितनी जमीनकी आवश्यकता थी, उतनी जमीनपर सोनेके सिक्के बिछा दिये और वे सिक्के उन ब्राह्मणोंको देकर जमीन प्राप्त की।

इस मन्दिरमें चारों ओर १२ स्तम्भोंकी तीन पंक्तियोंपर आधारित मण्डल बने हुए हैं, जिनमें ५२ देहरियाँ बनी हुई हैं। इनमें विभिन्न तीर्थंकरों की मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन मण्डपोंके मध्य प्रांगणमें आदिनाथ मन्दिर बना हुआ है। गर्भगृहमें भगवान् आदिनाथकी मूलनायक प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृहके आगे सभामण्डप है। यह २० स्तम्भोंपर आधारित है। मण्डपके ऊपर शिखर है। इसकी छतमें १६ विद्या-देवताओंकी कलापूर्ण मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मन्दिर और देहरियोंके ऊपर भी शिखर बने हुए हैं। प्रत्येक देहरीके सामने नक्काशी की हुई गुम्मटवाली चौकी है। देहरियोंके द्वारों, तोरणों, मण्डपके स्तम्भों और छतोंमें सूक्ष्म शिल्पांकन किया गया है। इसमें पुष्प, तीर्थंकर, तीर्थंकर माताके चौदह स्वप्न, नेमिनाथकी बारात, शासन-देवताओं आदिके अंकन हैं। छतोंमें पुष्पोंके कटावका वैविध्य इतना कलापूर्ण, सुरुचिपूर्ण और सौन्दर्यपूर्ण है, जिससे निर्जीव पाषाण सजीव हो उठे हैं। शासन देवताओंकी मूर्तियाँ तो इतनी सुन्दर बन पड़ी हैं जो देखनेपर साक्षात् सजीव देवताओंका भ्रम उत्पन्न कर देती हैं। वस्तुतः यहाँकी कला सोद्देश्य है।

विमलशाहकी कुलदेवी नेमिनाथ तीर्थंकरकी शासनदेवी अम्बिकाका मन्दिर इस विशाल जिनालयसे दक्षिण-पश्चिममें मन्दिरके सामने बना हुआ है। कहते हैं, यह इस जिनालयसे भी प्राचीन है। इसके बाहर भैरव क्षेत्रपाल अपने वाहन श्वानके साथ विराजमान हैं। द्वारके पास हस्तिशाला है। इसमें पाषाणके १० हाथी बने हुए हैं। एक घोड़ेपर आरूढ़ विमलशाहकी मूर्ति है। मध्यमें चतुर्मुखी चैत्य है।

इस मन्दिरके आगे भगवान् कुन्थुनाथका दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिरमें गर्भगृह, सभामण्डप और अर्धमण्डप है। मूलनायक भगवान् कुन्थुनाथकी २ फीट १० इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमें एक-एक तथा आगे तीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। दायीं और बायीं दीवारवेदियोंमें ३-३ मूर्तियाँ हैं, तथा गर्भगृहके प्रवेश-द्वारके बाहर बायीं और दायीं ओर ३-३ मूर्तियाँ विराजमान हैं। सभी श्वेत पाषाणकी और पद्मासन हैं।

इस मन्दिरके निकट नेमिनाथका प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिरका निर्माण वीरधवलके मन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल नामक दोनों भाइयोंने सन् १२३१ में १२,५३,००००० रुपयोंकी लागतसे कराया था। वस्तुपाल और तेजपाल चालुक्यवंशी लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवलके मन्त्री थे। लवणप्रसादके पिता अर्णोराजसे प्रसन्न होकर चालुक्य कुमारपालने उसे अनहिल्ल-पाटनसे १० मील दूर व्याघ्रपल्ली गाँव पुरस्कारस्वरूप दे दिया। तबसे इसके वंशज गाँवके नाम-पर बघेल कहलाने लगे। ये चालुक्य भीमदेव द्वितीयके सहायक थे। भीमदेव कमजोर शासक था। चारों ओरसे उसके राज्यपर यादव सिंहन, लाटनरेश शंख, गोड्डहनरेश घुघुल, मालवनरेश देवपाल, मारवाड़ सरदार, इल्तुमश, भद्रेश्वरके भीमसिंह आदि अनेक राजा आक्रमण कर रहे थे। भीमदेवने इन बघेल सरदारोंको राज्यकी सुरक्षाका दायित्व सौंप दिया और उन्हें प्रशासनके अधिकार दे दिये। इन बघेल नरेशोंने अपने मन्त्री तेजपालको अपनी राजधानी ढोलका और वस्तुपालको स्तम्भ (वर्तमान काम्बे) का गवर्नर बना दिया और दोनों भाइयोंको दक्षिण गुजरातकी सुरक्षाका भार दे दिया। वस्तुपाल वस्तुतः कुशल कूटनीतिज्ञ और वीर योद्धा था। उसने अपने जीवनमें ६३ युद्धोंमें भाग लिया और विजयश्री प्राप्त की।

इन्हीं भाइयोंने यह नेमिनाथ मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिरमें ४८ देहरियाँ हैं। मन्दिर-की कला, शिल्प-सौन्दर्य और पाषाणोंमें सूक्ष्म खुदाई आदिनाथ मन्दिरसे होड़ करती प्रतीत होती है। मन्दिरके गर्भगृहके द्वारके दोनों पार्श्वोंमें दो गोखड़े हैं। ये देवरानी और जिठानीके गोखड़े कहलाते हैं। ये दोनों गोखड़े वस्तुपाल और तेजपालकी पत्नियोंने बनवाये थे और उस समय इनके बनवानेमें सवा लाख रुपये व्यय हुए थे। इस मन्दिरके पृष्ठ भागके पृष्ठ मण्डपमें हस्तिशाला बनी हुई है। इसमें १० खण्ड हैं और प्रत्येक खण्डमें संगमरमरका एक-एक हाथी है। इन हाथियोंके पीछे दीवारसे लगी वस्तुपाल-तेजपाल और उनके परिवारी जनोंकी पूरे कदकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। हाथियोंके बीचमें काले पाषाणके तीन मंजिलके चौमुख बने हुए हैं। सातवें खण्डमें वस्तुपाल

और उसकी दोनों पत्नियों—ललितादेवी और बैजलादेवीकी तथा आठवें खण्डमें तेजपाल और उनकी पत्नी अनुपमाकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इस मन्दिरके बाहर एक बगीचेमें दादा साहबकी पगल्याँ और एक स्तम्भ बना हुआ है।

इसके निकट लूणिगवसहि है। यह मन्दिर भी वस्तुपाल-तेजपालने अपने बड़े भाईके नामपर बनवाया था। लूणिगका बाल्यकालमें ही निधन हो गया था। इससे आगे पित्तलहर मन्दिर है। इसे गुर्जर जातिके भामाशाह महाजनने बनवाया था। महाराणा सांगाने इन्हें रणथम्भौरका किलेदार नियुक्त किया था। इसकी प्रतिष्ठा अहमदाबादके सुलतान मुहम्मद बेगड़ाके मन्त्री सुन्दर व गदाने संवत् १५२५ में करायी थी। इस मन्दिरमें भगवान् ऋषभदेवकी १०८ मनकी पंचधातुकी प्रतिमा है। दायीं ओर भी मन्दिर और मूर्तियाँ हैं।

इससे आगे खरतरसहि है। इस मन्दिरके और भी नाम हैं जैसे चौमुखीजी, शिल्पियोंका मन्दिर और चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर। इस मन्दिरमें चारों दिशाओंमें द्वार हैं और प्रत्येक द्वारके सामने मण्डप बना हुआ है। मण्डपोंके शिखरोंकी छतें कलापूर्ण हैं। द्वारों की बाह्य भित्तियाँ अलंकृत हैं।

इस मन्दिर-गुच्छकमें दो मन्दिर अत्यन्त भव्य, कलापूर्ण और दर्शनीय हैं—आदिनाथ मन्दिर और नेमिनाथ मन्दिर। इन मन्दिरोंको देखनेके लिए देश और विदेशके हजारों व्यक्ति आते हैं। ये मन्दिर संगमरमरके बने हुए हैं। इन मन्दिरोंके अन्तःभागकी कला अत्यन्त उच्च-कोटिकी है। किन्तु इनकी शिखर संयोजना साधारण है। वर्षा, आँधी आदिके कारण शिखर और छतें काली पड़ गयी हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि शिखर और छतोंमें सामान्य पाषाण लगाया गया है।

दिलवाड़ासे अचलगढ़को पक्की सड़क जाती है। अचलगढ़ यहाँसे ६ कि. मी. है। अचलेश्वर महादेव मन्दिर तक बस, टैक्सी जाती हैं। यहाँ अनेक छोटे-छोटे हिन्दू मन्दिर बने हुए हैं। यहाँसे अचलगढ़ पर्वतपर चढ़नेके लिए पक्का मार्ग और सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर चढ़नेपर कुन्थुनाथ मन्दिर, ऋषभदेव मन्दिर मिलते हैं। फिर सीढ़ियाँ चढ़कर आदिनाथ मन्दिर है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १५६६ फागुन सुदी १० को हुई। मूलनायक भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा १५४४ मन अष्टधातुकी कही जाती है। सभामण्डपमें चारों ओर सुन्दर चित्रांकन है। मन्दिरके बाहर चारों ओर देहरियाँ बनी हुई हैं।

धर्मशाला

दिगम्बर जैन मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला बनी हुई है। इसमें कुल ३८ कमरे हैं। नल और बिजलीकी व्यवस्था है। यात्रियोंकी सुविधाके लिए गद्दे, बर्तनोंकी भी पर्याप्त व्यवस्था है। यहाँ कोई वार्षिक मेला नहीं होता।

व्यवस्था

यहाँके दोनों मन्दिरोंकी व्यवस्था भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओरसे होती है। किन्तु इन दोनों मन्दिरोंकी व्यवस्थाके लिए एक स्थानीय कमेटी भी है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन मन्दिर
दिलवाड़ा, पो. माउण्ट आबू
जिला—सिरोही (राजस्थान)

तिजारा

मार्ग और अवस्थिति

श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा राजस्थानके अलवर जिलेका एक सुन्दर नगर है। यह अलवरके उत्तर-पूर्वमें ५० किलोमीटर तथा मथुराके उत्तर-पश्चिममें ९६ कि. मी. दूर है। इसके चारों ओर सघन वृक्षावली और उद्यान है। अनुश्रुतिके अनुसार इस नगरकी स्थापना यदुवंशी राजा तेजपालने की थी। जब मुस्लिम बादशाह मुहम्मद बिन कासिमने बयाना और ताहनगढ़पर अधिकार कर लिया, तब राजा तेजपालने वहाँसे भागकर सरहटा (तिजाराके पूर्वमें ४ मील दूर) के राजाके यहाँ शरण ली। तभी उसने तिजारा नगर बसाया। तेजपालके महलोंके अवशेष तिजाराके मिर्धोन मुहल्लेमें अब भी दिखाई पड़ते हैं। मेवातके खानजादोंके समयमें तिजाराको बहुत प्रसिद्धि मिली और कुछ समय तक यह नगर उनकी राजधानी भी रहा। यहाँ जानेके लिए देहली, रेवाड़ी, अलवर, फिरोजपुर, झिरका और खैरथल स्टेशनसे बसोंकी व्यवस्था है। देहलीसे एक बस दिनमें प्रातः ७ बजकर ५० मिनटपर चलकर १२ बजे तिजारा पहुँचती है और तिजारासे १-४० पर चलकर ५॥ बजे देहली पहुँचती है।

क्षेत्र-स्थापनाका इतिहास

अतिशय क्षेत्रके स्थापनाकालसे पूर्व यह स्थान देहरा कहलाता था। अलवर राज्यके प्राचीन रिकार्डोंमें भी यह स्थान देहरा लिखा हुआ मिलता है। देहराका अर्थ है जैन देवालय। स्थानीय जैन समाजमें अनुश्रुतिके रूपमें भी यह बात प्रचलित थी कि यहाँ कभी जैन मन्दिर था और प्राचीन भवनके खण्डहरोंके टीलेको जैन मन्दिरके खण्डहरोंका टीला माना जाता था। वृद्धजनोंसे चली आ रही इस अनुश्रुतिपर सन्देह करनेका कोई कारण भी नहीं था। यहाँपर लगभग १३-१४वीं शताब्दीसे मुसलमानोंका शासन रहा। अतः इस सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता कि मुस्लिम शासनकालमें जैन मन्दिर तोड़ दिया गया हो। अतः इस टीलेकी खुदाई करानेका विचार जैन समाजमें कई बार उठा। एक बार सन् १९४४ में श्री धनपालजी ज्योतिषी लखनऊ (जो मूलतः खेकड़ा—मेरठके निवासी हैं और जन्मान्ध होते हुए भी ज्योतिषका जिन्हें अच्छा ज्ञान है) यहाँ आये। उनसे जब पूछा गया तो उन्होंने बताया कि वर्तमान राज्य परिवर्तन होनेके पश्चात् स्वयं ऐसे कारण बनेंगे जिनसे इस खण्डहरको खोदनेपर श्री जिनेन्द्र भगवान्‌की मूर्तियाँ प्रकट होंगी।

जुलाई सन् १९५६ में ऐसे कारण स्वयं ही बन गये। स्थानीय नगरपालिका छोटी और संकरी सड़कोंको चौड़ा कर रही थी। इस खण्डहरके निकट मजदूर देहरेसे मिट्टी खोदकर सड़कपर डाल रहे थे, तभी एक तहखाना दृष्टिगोचर हुआ। स्थानीय जैन समाजने ज्योतिषीकी उपर्युक्त भविष्य वाणीसे प्रोत्साहित होकर देहरेकी खुदाई करानेका निश्चय किया। इसके लिए राज्याधिकारियोंसे स्वीकृति ले ली गयी। नगरपालिकाने भी इस कार्यमें रुचि दिखलायी और इसके लिए उसने २५०) रुपये दिये। पुलिसकी देखरेखमें खुदाईका कार्य आरम्भ हो गया। २-३ दिनकी खुदाईके फलस्वरूप भी कुछ नहीं निकला तो नगरपालिकाने इस कार्यसे अपना हाथ खींच लिया। तब समाजके द्रव्यसे खुदाईका कार्य चालू रखा गया। किन्तु फिर भी कोई सफलता नहीं मिली। इससे समाजमें निराशा छाने लगी। तब रात्रिमें नगीनावासी श्री झब्बूरामजीको स्वप्न हुआ। स्वप्नमें उस स्थानका स्पष्ट निर्देश था जहाँ खोदनेपर प्रतिमाएँ मिल सकती हैं।

स्वप्नके संकेतानुसार उस स्थानकी खुदाई हुई। फलतः १२-८-५६ को तीन खण्डित जैन प्रतिमाएँ मिलीं। इससे लोगोंकी निराशा दूर हुई और आशा बँधी कि अभी अखण्डित प्रतिमाएँ और मिलेंगी। किन्तु चार दिनकी खुदाईका भी कोई परिणाम नहीं निकला। तब लोगोंमें पुनः निराशा छाने लगी। वैद्य बिहारीलाल तिजाराकी धर्मपत्नी सरस्वतीदेवीने प्रतिमाएँ न मिलनेके कारण तीन दिनसे अन्न-जलका त्याग कर रखा था। उस पुण्यशीला महिलाको स्वप्न हुआ और प्रतिमा-प्राप्तिके निश्चित स्थानका संकेत मिला। संकेत प्राप्त होनेपर उस धर्मनिष्ठ महिलाने रात्रिको १ बजे उस संकेतित स्थानपर घी का दीपक जलाकर रखा और प्रातःकाल होनेपर उस स्थानपर रेखा खींच दी। जनतामें उल्लास छा गया। खुदाई जोरोंसे चालू की गयी। फलतः दिनांक १६-८-१९५६ को मध्याह्नमें श्वेत सिर दिखाई दिया। तब आहिस्तासे मिट्टी हटायी गयी, चरण चौकीपर अंकित चन्द्र लांछनसे ज्ञात हुआ कि मूर्ति चन्द्रप्रभु भगवान्‌की है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १५५४ वैसाख सुदी ३ को काष्ठासंघ पुष्करगणके भट्टारक मलयकीर्तिदेवने करायी थी।

इस मूर्तिके मिलनेपर सारे नगरमें हर्षोल्लास छा गया और सहस्रों व्यक्ति इसके दर्शनार्थ आने लगे। 'बड़े समारोह और गाजे-बाजेके साथ भगवान्‌का अभिषेक और पूजन किया गया तथा टीनका मण्डप बनाकर मूर्तिको एक काष्ठ-सिंहासनपर विराजमान किया गया। पश्चात् मूर्तिके सामने अखण्ड ज्योति जलायी गयी जो आज भी उसी प्रकार जल रही है। इसी प्रकार कीर्तनका जो क्रम उस दिन प्रारम्भ हुआ था, वह भी बराबर चालू है।

भगवान् चन्द्रप्रभुके अतिशय

जिस दिन भगवान् चन्द्रप्रभुकी मूर्ति प्रकट हुई, उसके दो-चार दिन बाद व्यन्तर-बाधासे पीड़ित एक अजैन महिला स्वयं प्रेरित होकर भगवान्‌के दरबारमें आयी और अपना सिर घुमाना प्रारम्भ कर दिया। उस व्यन्तरने अपना परिचय आदि दिया। २–४ दिन बाद उस व्यन्तरने भगवान्‌के समक्ष महिलाको छोड़ने और पुनः न आनेकी प्रतिज्ञा की। इसके पश्चात् तो व्यन्तर-बाधासे पीड़ित नर-नारियोंकी संख्या बढ़ती ही चली गयी और कई लोगोंको इस बाधासे मुक्ति भी मिली। अब भी ऐसे व्यक्ति आते रहते हैं।

अनेक भक्त अनेक प्रकारकी मनोकामनाएँ लेकर भगवान्‌के दरबारमें आते हैं। कोई व्यक्ति अपने या अपने प्रिय जनके रोगसे मुक्तिकी कामना लेकर आते हैं, तो कोई मुकदमेमें विजय चाहता है, कोई दम्पती पुत्र-प्राप्तिकी कामना मनमें सँजोकर आता है आदि। भक्तोंके मनमें भक्तिकी जो अजस्र धारा प्रवाहित होती है, उससे उनके अशुभोदय शुभोदयमें परिणत हो जाते हैं, अर्थात् उनके अशुभकर्मोंका क्षय हो जाता है और शुभकर्मोंका उदय हो जाता है, जिससे उनकी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

मन्दिर और धर्मशालाका निर्माण

प्रारम्भमें यह विचार था कि नवीन मन्दिरका निर्माण न करके उत्खननमें प्राप्त चन्द्रप्रभुकी मूर्तिको श्री पार्श्वनाथ मन्दिरमें विराजमान कर दिया जाये। किन्तु मूर्तिके अतिशयों और दर्शनाभिलाषी भक्तोंकी बढ़ती हुई भीड़के कारण यह निश्चय करना पड़ा कि भगवान् चन्द्रप्रभुका स्वतन्त्र मन्दिर निर्माण कराया जाये। फलतः मन्दिरके लिए देहरेके आसपासकी १२००० वर्ग गज भूमि सरकारसे खरीदी गयी। फिर मुहूर्त निकलवाकर दिनांक २३ से २५ नवम्बर १९६१ तक

रथ-यात्रा महोत्सव किया गया और २४ नवम्बरको मध्याह्नमें मन्दिरका शिलान्यास विधि-विधान-पूर्वक किया गया। मन्दिरका निर्माण-कार्य चालू हो गया और वह निरन्तर रूपसे होता चला आ रहा है। मन्दिरजीका मुख्य भवन, उसके आगेका विशाल हॉल, गगनचुम्बी शिखरका निर्माण एवं मुख्य वेदीका निर्माण लगभग पूर्ण होनेको है। मन्दिर भव्य और विशाल बना है। प्रक्षालके जलके लिए कुएँका निर्माण हो चुका है। कुएँमें मोटर एवं पम्प फिट होकर एक टंकी बना दी गयी है। महिलाओं और पुरुषोंके लिए स्नानागारोंका निर्माण भी हो चुका है, जिससे यात्रियोंको अब स्नानादिकी कोई असुविधा नहीं रही। बिजली लग चुकी है।

मन्दिरके पास ही एक दो मंजिली विशाल धर्मशालाका निर्माण पूर्ण हो चुका है। इसमें ५५ कमरे, जलप्लावित शौचालय, नल, बिजली, रसोईके बर्तन व बिस्तर आदिकी समुचित व्यवस्था है। धर्मशालापर एक मैनेजरकी नियुक्ति की हुई है, जो हर समय वहाँ रहकर यात्रियोंकी प्रत्येक सुविधा जुटाता है। मन्दिरके चारों ओर एक कटलेका निर्माण चल रहा है, जिसमें अब तक लगभग २०० कमरे आगेके बरामदों सहित बन चुके हैं। कुछ फ्लेट आधुनिक सुख-सुविधासे सज्जित बनने शेष हैं, जो शीघ्र ही निकट भविष्यमें बनने प्रारम्भ हो जायेंगे। मन्दिरजीके मुख्य द्वारके बराबर ही दूकानें हैं, जिनपर पूजन सामग्री, ज्योति एवं यात्रियोंकी आवश्यकताकी प्रत्येक वस्तु उपलब्ध होती है। नगरका मुख्य बाजार भी बहुत समीप ही है।

वार्षिक मेला

चन्द्रप्रभु भगवान्की मूर्ति श्रावण शुक्ला १० को प्रकट हुई थी, अतः प्रति वर्ष इस तिथिको वार्षिक मेला किया जाता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रप्रभु भगवान्के निर्वाण-दिवस फाल्गुन शुक्ला ७ को बृहद् रथ-यात्रा होती है। इस अवसरपर जनताकी बहुत भीड़ रहती है। इस दिन शोभा-यात्रा, ध्वजारोहण, मण्डलविधान, विद्वानोंके उपदेश आदि होते हैं।

प्रति माहके अन्तिम रविवारको देहली एवं अन्य नगरोंसे क्षेत्रपर काफी संख्यामें बसें आती हैं। इससे प्रति माह क्षेत्रपर एक अच्छा मेला लग जाता है। इस दिन पूजन, कीर्तन, आरती आदि कार्यक्रम बड़ी धूमधामसे सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार वर्षमें ये १२ मेले वार्षिक मेलोंके अतिरिक्त लगते हैं।

क्षेत्रका प्रबन्ध

क्षेत्रके प्रबन्ध एवं धन आदिकी व्यवस्थाके लिए एक प्रबन्धकारिणी कमेटी बनी हुई है, जिसमें ५ सदस्य स्थानीय समाजसे निर्वाचित होकर तथा एक सदस्य श्री पार्श्वनाथ मन्दिरजीका अध्यक्ष इस प्रकार छह व्यक्ति होते हैं। इनका चुनाव प्रति चौथे वर्ष होता है। नगरमें दिगम्बर जैनोंके लगभग १०० घर हैं जिनकी जनसंख्या लगभग १००० है।

स्थानीय मन्दिर एवं संस्थाएँ

यहाँ नगरके मध्यमें श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैनमन्दिर है। यह दो मंजिला है। इसमें ४ वेदियाँ हैं। मन्दिरका शिलान्यास वि. सं. १८९५ ज्येष्ठ कृष्णा १३ को किया गया था। इस मन्दिरमें सबसे प्राचीन प्रतिमा श्वेतवर्ण श्री नेमिनाथ भगवान्की है, जिसके आसनपर सं. ११६९ का लेख खुदा हुआ है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा सन् १८५९ में हुई थी। इस अवसरपर रथयात्रा हुई थी। इस प्रतिष्ठाके प्रतिष्ठाचार्य जयपुर निवासी पं. सदासुखजी थे, जिन्होंने रत्नकरण्ड-श्रावकाचारकी बृहत् टीका लिखी है।

नगरमें श्री पार्श्वनाथ मन्दिरके पास एक जैन धर्मशाला है। नगरके बाहर एक जैन वाटिका है। इसे नशिया भी कहते हैं। यह बड़ा सुन्दर उद्यान है। इसमें नीबू, सन्तरा एवं मौसमीके फल विशेष रूपसे होते हैं। यहाँपर क्षमावणी पर्वके दिन मेला भी लगता है।

नगरमें जैन पाठशाला, कन्या पाठशाला, वाचनालय, जैन छात्रावास है। भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें क्षेत्रपर एक जैन दातव्य निःशुल्क औषधालयकी स्थापना की गयी है। नगर तथा आस-पासके गाँवोंके बहुत-से रोगी तथा क्षेत्रपर पधारनेवाले यात्रीगण इससे समुचित लाभ उठाते हैं।

क्षेत्रके पत्र-व्यवहारका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा,
पो. तिजारा
जिला अलवर (राजस्थान)

□

गुजरात प्रदेश

तारंगा
गिरनार
सोनगढ़
शत्रुंजय
घोघा
पावागढ़
महुवा (विघ्नहर पार्श्वनाथ)
सूरत
अंकलेश्वर
सजोद
अमीझरो पार्श्वनाथ

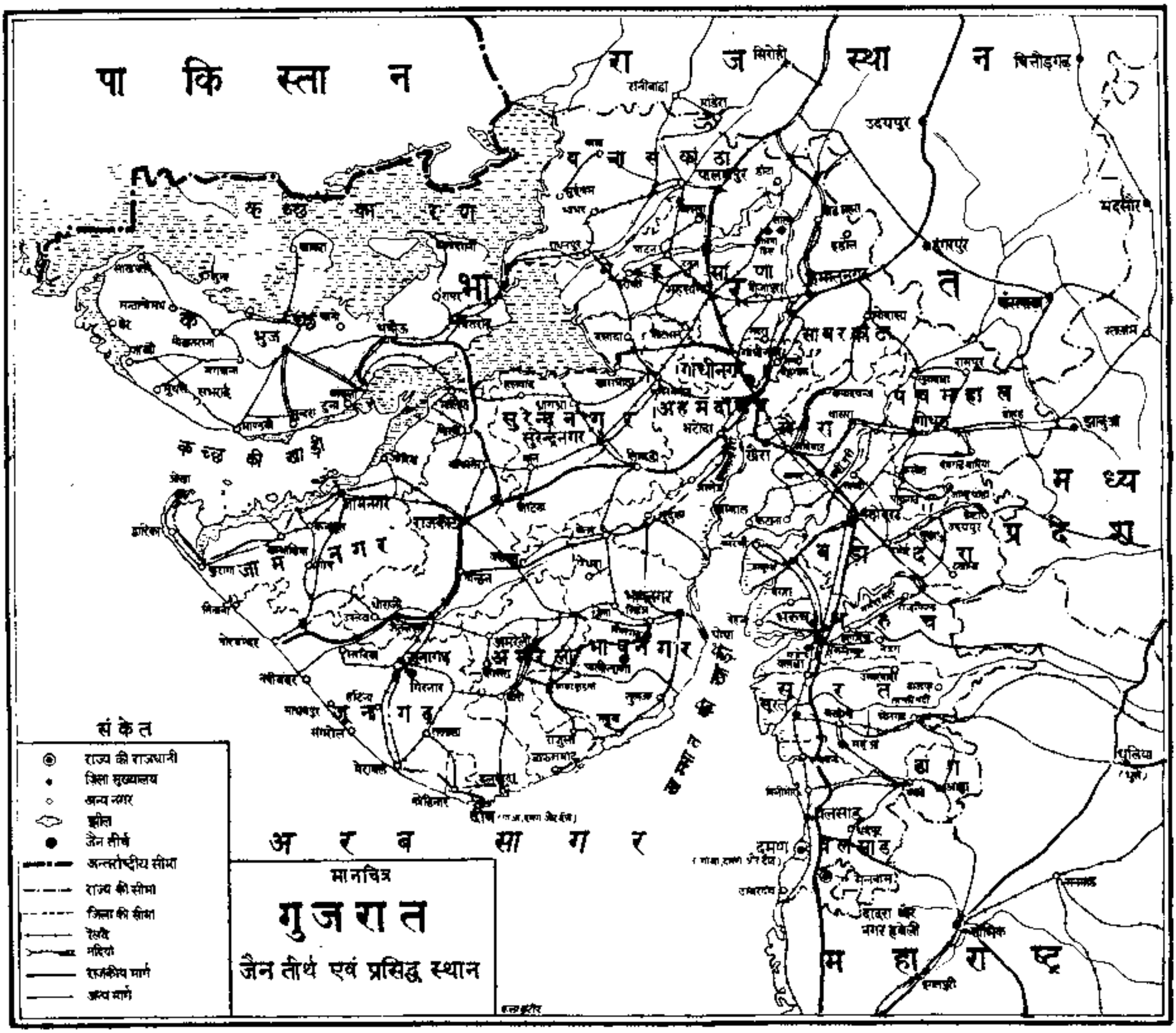

* भारतके महासर्वेक्षकको अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

* इस मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

© भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७७

* समुद्रमें भारतका जलप्रदेश उपयुक्त आधार रेखासे मापे गये बारह समुद्री मीलकी दूरी तक है।

तारंगा

सिद्धक्षेत्र

तारंगा एक प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे वरदत्त, वरांग, सागरदत्त आदि साढ़े तीन कोटि मुनियोंने निर्वाण प्राप्त किया था। इस नगरके नाम तारानगर, तारापुर, तारागढ़, तारंगा आदि मिलते हैं। इसका प्राचीन नाम तारापुर प्रतीत होता है, तारंगा यह नाम तो १५वीं शताब्दीके विद्वान् भट्टारक गुणकीर्तिकी मराठी रचना 'तीर्थवंदना'में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ मिलता है। इससे पूर्वकी रचनामें तारंगा नाम कहीं देखनेमें नहीं आया। 'तारापुर' यह नाम क्यों पड़ा, इसके सम्बन्धमें आचार्य सोमप्रभ कृत 'कुमारपाल प्रतिबोध'में यह कारण दिया गया है कि यहाँ वच्छराजने बौद्धोंकी तारादेवीका मन्दिर बनवाया था, इसलिए यह स्थान तारापुर कहलाने लगा। किन्तु यह कारण समुचित नहीं लगता। वच्छराजका समय आठवीं शताब्दी माना गया है। जबकि इससे पूर्व भी इस निर्वाण-क्षेत्रका नाम तारानगर था। प्राकृत निर्वाण-काण्ड, जो ईसाकी प्रथम-द्वितीय शताब्दीकी रचना मानी जाती है, में इसके सम्बन्धमें निम्नलिखित गाथा उपलब्ध होती है—

> "वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे।
> आहुट्ठय कोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥४॥"

इसके पश्चात्कालीन लेखकों—जैसे गुणकीर्ति, श्रुतसागर, मेघराज, दिलसुख आदिने तारंगनगरकी बड़ी प्रसन्नताके साथ चर्चा की है और उसे निर्वाण क्षेत्रका विशेष गौरव प्रदान किया है। भट्टारक ज्ञानसागर, देवेन्द्रकीर्ति और सुमतिसागरने तारंगाके ऊपर कोटिशिला होनेका उल्लेख किया है। ज्ञानसागरने तारंगा क्षेत्रकी वन्दना दो छप्पयोंमें की है। उनमें-से एक छप्पय इस प्रकार है—

> "तारंगो गढ़सार सिद्धक्षेत्र मनुहारह।
> जिनवर भुवन उतंग वंदत सुख अधिकारह।
> कोडिशिला अभिराम औठ कोडि मुनि शिवकर।
> पूजत सुरनरनाथ सेवत किन्नर मुनिवर ॥
> जे नर मनवचनें करी भावसहित यात्रा करे।
> ब्रह्मज्ञानसागर वदति ते नर भवसागर तरे ॥१७॥"

इसमें बताया है कि तारंगा गढ़के ऊपर कोटिशिला है, जहाँसे साढ़े तीन कोटि मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की थी। उस सिद्धक्षेत्रकी पूजा इन्द्र, नरेन्द्र, मुनि और किन्नर सभी करते हैं।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने भी तारंगाके ऊपर ही कोटिशिला मानी है। वे इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि—

> "गुज्जर देश सुतारंग पर्वत कोडिशिलोपरि कोडि मुनीसा।
> कोडी अउट्ठ बली बरदत्त पुरःसर भेदि जवे जब खासा ॥"

भट्टारक सुमतिसागरने भी 'सुतारंग कोडिसिला पवित्र। सुसमरे आतम होय पवित्र ॥' इसी उपर्युक्त मान्यताका समर्थन किया है।

इन विद्वानोंकी उक्त मान्यताका क्या आधार रहा, यह तो स्पष्ट नहीं हो पाया क्योंकि किसी भी शास्त्रमें इस मान्यताका समर्थन नहीं मिलता। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें तो तारानगर (तारंगा) और कोटिशिलाके सम्बन्धमें दो पृथक् गाथाएँ दी हैं और वे भी एक स्थानमें नहीं। तारापुर सम्बन्धी गाथाकी संख्या ४ है, जबकि कोटिशिलासे सम्बन्धित गाथाकी संख्या १८ है। कोटिशिला सम्बन्धी गाथामें तो यह स्पष्ट भी कर दिया है कि कोटिशिला कलिंग देशमें है। इसलिए जिन्होंने भी तारंगा पर्वतके ऊपर कोटिशिला होनेकी कल्पना की है, वह विचारणीय है। हमारी विनम्र सम्मति है कि तारंगापर कोटिशिला नामक पर्वत है। वर्तमानमें एक पहाड़का नाम यहाँ कोटिशिला है। कोटिशिलासे अभिप्रेत वह कोटिशिला नहीं है जिसे नारायण उठाते हैं। नामसाम्यके कारण ऐसा भ्रम होना स्वाभाविक है।

इसी प्रकार तारानगर या तारापुरसे तारंगा किस प्रकार हो गया, यह भी अन्वेषणीय है। सम्भव है, तारगाँवसे अपभ्रंश होकर तारंगा बन गया हो।

क्षेत्र-दर्शन

तारंगा पर्वतकी तलहटीमें एक कोट बना हुआ है, जिसके भीतर दिगम्बर जैन धर्मशाला, मन्दिर और क्षेत्रका कार्यालय है। धर्मशालाके पृष्ठ भागमें कोटिशिला पर्वतपर जानेके लिए पक्का मार्ग है। लगभग आधा मील चलना पड़ता है। पहाड़की चढ़ाई प्रारम्भ होनेसे पहले एक तालाब मिलता है। पहाड़पर कुछ ऊपर चढ़नेपर दायीं ओर एक गुफा मिलती है। इस गुफापर श्वेताम्बरोंका अधिकार है। गुफामें एक वेदी बनी हुई है। वेदीमें एक घोड़ा तथा वेदीके इधर-उधर बहुत-से खिलौने रखे हुए हैं। यहांसे आगे बढ़नेपर एक टोंक मिलती है जिसमें चरण विराजमान हैं। यह भी श्वेताम्बरोंके अधिकारमें है।

यहाँसे आगे जानेपर गुफाएँ मिलती हैं। गुफाओंके बीचसे बायीं ओर रास्ता जाता है। तब एक टोंक मिलती है। इसमें एक शिलाफलकमें बनी भगवान् नेमिनाथकी खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा श्वेत वर्णकी है। फलककी अवगाहना ५ फुट है। प्रतिमाके सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। इसके दोनों ओर दुन्दुभिवादक तथा गजारूढ़ भेरीवादक हैं। सिरके दोनों ओर पुष्पमाला लिये नभचारी देवयुगल हैं। इनके नीचे शार्दूल बने हुए हैं। भगवान्‌के चरणोंके दोनों ओर इन्द्र-इन्द्राणीका अंकन है। इन्द्र भगवान्‌के ऊपर चमर ढोल रहा है तथा इन्द्राणी नृत्य-मुद्रामें खड़ी है। इनसे अधोभागमें सम्भवतः प्रतिष्ठाकारक और उनकी पत्नी करबद्ध मुद्रामें आसीन हैं। पीठासनपर कमलका चिह्न है किन्तु मूर्ति-लेखमें 'श्री नेमिनाथ बिम्बं प्रतिष्ठितं' अंकित है। अतः मूर्ति नेमिनाथ भगवान्‌की है। लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् ११९२ वैशाख सुदि ९, रविवारको श्री सिद्धचक्रवर्ती जयसिंहदेवके शासनकालमें हुई थी। जयसिंहदेव चालुक्यवंशी सम्राट् था। उसका विरुद सिद्धराज था तथा उसका इतिहाससम्मत शासन-काल ई. सन् १०९४ से ११४३ है। इसीके दरबारमें प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र रहते थे।

उपर्युक्त मूर्तिके बायें पार्श्वमें एक शिलाफलकमें बने हुए दो स्तम्भोंके मध्यमें १ फुट ६ इंच उन्नत नेमिनाथ भगवान्‌की श्वेत पाषाणकी खड्गासन मूर्ति है। मूर्तिके सिरके ऊपर छत्र हैं और उनके ऊपर अभिषेक करते हुए गजोंका अंकन है।

इस मूर्तिके आगे भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा संवत् १९०२ में प्रतिष्ठित चरण बने हुए हैं।

नेमिनाथ भगवान्‌के दायें पार्श्वमें संवत् १६५४ वैशाख वदी १० को प्रतिष्ठित १ फुट ४ इंच ऊँची कृष्णवर्ण नेमिनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी बगलमें ६ इंच उन्नत

कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पीठासनपर लेख और लांछन नहीं है। इसके आगे संवत् १९०२ में प्रतिष्ठित चरण विराजमान हैं।

उक्त गुफामें-से लौटकर बायीं ओर पार्श्वनाथ टोंकको मार्ग जाता है। आगे जानेपर एक छोटी टोंक मिलती है। इस टोंकके मध्य चबूतरेपर एक चैत्य है, जिसमें चारों दिशाओंमें पार्श्वनाथ भगवान्‌की १ फुट ऊँची और संवत् १८६६ में प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ बनी हुई हैं।

इसके निकट एक श्वेताम्बर टोंक है। इसमें भी चैत्य बना हुआ है। इस प्रकार कोटिशिला-की टोंकोंकी वन्दना करके उतरते हैं और धर्मशालाके मुख्य प्रवेश-द्वारसे निकलकर कुण्डपर होते हुए तारंगाके दूसरे पर्वत सिद्धशिलापर चढ़ते हैं। इसकी चढ़ाई कोटिशिलाकी अपेक्षा सरल है। इस पर्वतके लिए कच्चा मार्ग है। पहाड़के ऊपर चढ़नेपर एक छोटी-सी टोंक मिलती है, जिसमें बाहुबली स्वामी की १० इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। वेदीके सामने ९ इंच लम्बे श्वेत चरण बने हैं। इनकी प्रतिष्ठा भट्टारक आदिभूषणके शिष्य भट्टारक रामकीर्तिने करायी।

इसके पास चार सीढ़ियाँ चढ़कर एक शिलापर एक छोटी टोंक बनी हुई है। इसमें बाहुबली स्वामीकी ११ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१२ में हुई थी।

पहली टोंकके बगलमें एक शिलाके नीचे जमीनपर १ फुट ९ इंच ऊँचा चैत्य रखा हुआ है जिसके चारों ओर ६ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा बनी हुई हैं। प्रतिमाएँ खण्डित हैं। चैत्यके ऊपर कोई लेख नहीं है।

यहाँसे कुछ आगे जानेपर एक टोंक मिलती है। इसमें ४ फुट ९ इंच ऊँची मल्लिनाथकी श्वेतवर्ण खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसका परिकर कोटि-शिलाके भगवान् नेमिनाथके समान है। भक्त स्त्री-पुरुषमें साधारण-सा अन्तर दृष्टिगोचर होता है। पुरुषके दाढ़ी है। वह कानोंमें कुण्डल, भुजाओंमें भुजबन्द और हाथोंमें दस्तबन्द पहने है। इस मूर्तिका प्रतिष्ठाकाल भी संवत् ११९२ है। अर्थात् नेमिनाथ और मल्लिनाथकी दोनों मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा एक साथ हुई थी। इनके प्रतिष्ठाकारक थे प्राग्वाट कुलके शाह लखन।

इस मूर्तिके दोनों ओर १ फुट १ इंच अवगाहनावाली खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इनके आगे संवत् १९०२ में प्रतिष्ठित चार चरण विराजमान हैं जिनमें २ श्वेत, १ कत्थई और १ सलेटी वर्णके हैं।

इस प्रकार कोटिशिला और सिद्धशिला नामक दोनों पर्वतोंपर लगभग ९०० वर्ष प्राचीन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। यहाँ जो गुफाएँ बनी हुई हैं, वे प्राकृतिक हैं और उनके निर्माण-कालके सम्बन्धमें कोई निश्चित अभिमत प्रकट नहीं किया जा सकता। यद्यपि शास्त्रोंमें तारंगा या तारानगरको निर्वाण क्षेत्र माना है, कोटिशिला और सिद्धशिला भी उसके ही भाग हैं। किसी प्राचीन ग्रन्थमें तारंगा क्षेत्रपर कोटिशिला और सिद्धशिलाका नामोल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि ये नाम बहुत बादमें प्रचलित हुए हैं, पहले इन दोनों पर्वतोंको तारंगा ही कहा जाता होगा।

तलहटीके मन्दिर

नीचे दिगम्बर जैन मन्दिरोंकी संख्या १३ है तथा १ मानस्तम्भ है। इन मन्दिरोंमें दो मन्दिर विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं—(१) सम्भवनाथ मन्दिर और (२) आदिनाथ मन्दिर। सम्भवनाथ मन्दिर चालुक्य कालका प्रतीत होता है। दिगम्बर मन्दिरोंके निकट बने हुए सम्राट

कुमारपालके मन्दिरकी कला और इस मन्दिरकी कला समकालीन है। दोनों ही मन्दिरोंकी शिखरसंयोजना तथा मन्दिरकी जंघापर शासन-देवताओंकी मूर्तियोंके शिल्पमें अद्भुत समानता है। लगता है, दोनोंके शिल्पी एक ही थे। गुजरातके मुहम्मदशाह देवड़ा तथा अन्य मुस्लिम आक्रान्ताओंने दोनों मन्दिरोंको क्षति पहुँचायी थी। उसके पश्चात् भावी विनाशकी सम्भावनासे दिगम्बर मन्दिरको चूने-गारेसे ढँक दिया गया। कुमारपाल मन्दिरकी सुरक्षाके भी इसी भाँति प्रयत्न किये गये थे, किन्तु इस शताब्दीमें श्वेताम्बर समाजने लाखों रुपये व्यय करके मन्दिरका जीर्णोद्धार करा दिया और उसके स्थापत्य एवं शिल्पको और अधिक निखार दिया। इधर दिगम्बर मन्दिरका उद्धार करते समय उसके ऊपर चूना सफेदी पुतवा दिये जानेसे मन्दिरका सारा शिल्प-सौन्दर्य ही आच्छादित हो गया, यद्यपि जहाँ-तहाँ वह शिल्प वैभव अब भी दिखाई दे जाता है।

इस मन्दिरमें भगवान् सम्भवनाथकी श्वेत पाषाणकी एक पद्मासन प्रतिमा है। इसके पादपीठपर कोई लेख और लांछन नहीं है। अतः लोग इसे चतुर्थ कालकी मानते हैं। किन्तु इसकी रचना शैलीका अध्ययन करनेपर इसके ऊपर चालुक्य कलाकी छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। सम्भवतः इस मन्दिरके साथ इस मूर्तिकी भी प्रतिष्ठा हुई थी। यह भी सम्भावना है कि प्रतिष्ठाकारकने सिद्ध भगवान्‌की प्रतिमाके रूपमें इसकी प्रतिष्ठा करायी हो। इसीलिए इसके ऊपर लेख, लांछन और अष्ट प्रातिहार्यका अंकन नहीं कराया गया। प्रतिष्ठा ग्रन्थोंके अनुसार सिद्ध प्रतिमाओंका रूप प्राचीन कालमें ऐसा ही होता था। इसे सम्भवनाथके रूपमें मान्यता तो अनुश्रुतिके आधारपर मिली प्रतीत होती है। इस प्रतिमाके आगे अखण्ड दीपक जलाया जाता है।

(२) दूसरा मन्दिर भगवान् आदिनाथका है। इसमें भगवान् आदिनाथकी पंच धातुकी ढाई फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा भव्य है।

तलहटीके मन्दिरों और मूर्तियोंका विवरण इस प्रकार है—

(१) **सम्भवनाथ मन्दिर**—इसमें गर्भगृह और सभामण्डप हैं। सभामण्डपके द्वारके सिरदल-के ऊपर अरहन्त प्रतिमा बनी हुई है। सभामण्डपके आगे दो मण्डप और हैं। सम्भवतः ये खेला मण्डप रहे होंगे। इनमें-से एक मण्डपके ऊपर तथा गर्भगृहके ऊपर विशाल शिखर हैं। मूलनायक भगवान् सम्भवनाथकी २ फुट ३ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा अति मनोज्ञ और अतिशयसम्पन्न है। इस मूर्तिके ऊपर कोई लांछन और लेख नहीं है।

बायीं ओर भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना १ फुट ४ इंच है। दायीं ओर श्रेयान्सनाथकी प्रतिमा है। यह श्वेत वर्णकी है और पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। यह १ फुट उत्तुंग है। आगेकी पंक्तिमें ४४ धातु प्रतिमाएँ हैं।

बायीं ओर एक दीवार-ताकमें पद्मावती और सरस्वतीकी पाषाण मूर्तियाँ विराजमान हैं।

(२) **चैत्य मन्दिर**—यहाँ ५ फुट ६ इंच ऊँचा एक चैत्य है। इसमें चारों दिशाओंमें ७ इंच ऊँची २ श्वेत तथा २ श्याम वर्णकी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाओंके चारों ओर चरण-चिह्न अंकित हैं। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२१, चैत सुदी ११, गुरुवारको की गयी।

(३) **छोटी देहरी**—वेदीमें मूलनायक भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना १ फुट ५ इंच है तथा प्रतिष्ठाकाल संवत् १९२८, माघ सुदी १३ गुरुवार है। इसके दोनों ओर श्वेत, श्याम पाषाणकी १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनका प्रतिष्ठा-काल संवत् १५२३ है।

(४) **नन्दीश्वर जिनालय**—३ फुट ऊँची वेदीपर श्वेत संगमरमरका २ फुट ८ इंच ऊँचा नन्दीश्वर जिनालय है। चारों दिशाओंमें १३-१३ अर्हन्त प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। वेदीपर चारों

दिशाओंमें १ फुट ६ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। नीचे वेदीपर श्याम वर्णके चरणचिह्न बने हुए हैं। ये संवत् १९७६ में प्रतिष्ठित किये गये थे।

(५) **मानस्तम्भ**—५२ फुट समुन्नत भव्य मानस्तम्भ बना हुआ है। शिखर-वेदीपर चार दिशाओंमें चार बाहुबली प्रतिमाएँ हैं। मानस्तम्भके मध्यमें चार तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी उत्कीर्ण हैं।

इस मानस्तम्भकी नींवकी खुदाईके समय श्वेत पाषाणकी ९ प्रतिमाएँ भूगर्भसे प्राप्त हुई थीं। सम्भवतः यहाँ प्राचीन कालमें कोई जिनालय रहा हो जो स्वतः गिर गया हो या गिरा दिया गया हो। उपलब्ध प्रतिमाओंमें-से दो फुट ऊँची भगवान् पार्श्वनाथकी श्याम वर्ण प्रतिमा स्टेशन चैत्यालयमें विराजमान है तथा शेष प्रतिमाएँ यहाँके विभिन्न मन्दिरोंमें विराजमान हैं।

(६) **महावीर मन्दिर**—इसमें श्वेत पाषाणकी दो फुट ऊँची और फागुन सुदी २ संवत् १९२३ में प्रतिष्ठित भगवान् महावीरकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके बायीं तथा दायीं ओर श्वेत पाषाणकी शान्तिनाथ और आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। दोनोंकी प्रतिष्ठा संवत् १९२८ में हुई थी। इनके अतिरिक्त वेदीपर ३ पाषाणकी और १० धातुकी मूर्तियाँ भी हैं। एक दीवार-ताकमें १ फुट २ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी संवत् १६५१ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है। दूसरे आलेमें बाहुबली स्वामीकी १ फुट ८ इंच ऊँची श्वेतवर्ण खड्गासन प्रतिमा है।

(७) **अजितनाथ मन्दिर**—एक चबूतरेनुमा वेदीमें श्वेत पाषाणकी तीर्थंकर अजितनाथकी प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना २ फुट ३ इंच है और पद्मासन मुद्रामें है। बायीं ओर शान्तिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ तथा दायीं ओर श्रेयान्सनाथ तथा महावीरकी प्रतिमाएँ हैं। ये सभी १ फुट ८ इंच ऊँची हैं और श्वेतवर्ण हैं। केवल मुनिसुव्रतनाथकी अवगाहना २ फुट १ इंच है। ये चारों मूर्तियाँ मानस्तम्भकी नींवकी खुदाई करते समय भूमिके अन्दरसे प्राप्त हुई थीं।

इनके अतिरिक्त वेदीपर तीर्थंकरोंकी १३ धातु-मूर्तियाँ हैं। धातुकी ही एक मूर्ति पद्मावती-की है।

(८) **ऋषभदेव मन्दिर**—भगवान् ऋषभदेवकी २ फुट १ इंच अवगाहनावाली श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८६५ चैत्र वदी ७ को हुई थी।

बायीं ओर नेमिनाथकी श्वेत वर्ण प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। अवगाहना १ फुट ५ इंच है। दायीं ओर श्रेयान्सनाथ भगवान्‌की प्रतिमा है। इसका वर्ण और आकार भी नेमिनाथकी प्रतिमाके समान है। इनके अतिरिक्त पाषाणकी २ मूर्तियाँ एवं धातुकी १७ मूर्तियाँ और हैं। पद्मावती और सरस्वतीकी भी २ धातु-मूर्तियाँ हैं। एक दीवार-ताकमें १ फुट ६ इंच उत्तुंग श्वेतवर्ण खड्गासन प्रतिमा है तथा दूसरे आलेमें भी इसी आकार और वर्णवाली प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२०३ फागुन सुदी २ में हुई थी। दायीं ओर १ खड्गासन तथा बायीं ओर ४ पद्मासन और १ खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

(९) **अजितनाथ टोंक**—इसमें अजितनाथ भगवान्‌की ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पीठासनपर कोई लेख नहीं है।

(१०) **ऋषभदेव मन्दिर**—यह बड़ा मन्दिर कहलाता है। इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् ऋषभदेवकी है। यह पंचधातु निर्मित पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना २ फीट ६ इंच है तथा इसकी प्रतिष्ठा फागुन सुदी २, संवत् १९२३ को हुई थी। इसके दोनों ओर ऋषभदेव और शान्तिनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनका आकार १ फुट ५ इंच है। इनमें-से पहली

प्रतिमाकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ वदी ५, संवत् १९०१ को और दूसरीकी प्रतिष्ठा फागुन सुदी २, संवत् १९२३ को हुई थी। इनके अतिरिक्त वेदीपर दो श्वेतवर्ण पाषाण-प्रतिमाएँ हैं, जो मानस्तम्भकी खुदाईमें प्राप्त हुई थीं तथा १६ धातु-प्रतिमाएँ भी हैं।

इस मन्दिरमें गर्भगृह, सभा-मण्डप और अर्ध-मण्डप हैं। तीनोंके ही ऊपर शिखर हैं।

(११) एक चैत्यमें चारों दिशाओंमें बाहुबली स्वामीकी १ फुट २ इंच ऊँची श्वेत वर्ण खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

१२. **पद्मप्रभ मन्दिर**—एक चबूतरेनुमा वेदीमें तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं—पद्मप्रभ और उसके दोनों ओर कुन्थुनाथ और सुपार्श्वनाथ। तीनों ही १ फुट ५ इंच उन्नत हैं। इनकी प्रतिष्ठा संवत् १९२८ में हुई थी।

१३. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—एक चबूतरेपर चन्द्रप्रभ भगवान्‌की २ फुट १ इंच उत्तुंग और संवत् १९२३ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर नेमिनाथ भगवान्‌की १ फुट ८ इंच ऊँची और संवत् १६६२ में प्रतिष्ठित प्रतिमा है तथा दायीं ओर अजितनाथ भगवान्‌की १ फुट ८ इंच ऊँची और संवत् १६३० में प्रतिष्ठित प्रतिमा है।

१४. **वासुपूज्य मन्दिर**—भगवान् वासुपूज्यकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है जिसकी अवगाहना १ फुट ६ इंच है तथा जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१८ में हुई थी। इसके दोनों बाजुओंमें १ फुट १ इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनपर लेख और लांछन नहीं हैं।

यहाँ मुनियोंके चार चरण भी विराजमान हैं।

इन मन्दिरों और धर्मशालाके पृष्ठ भागमें पहाड़पर गुफाएँ हैं। एक गुफामें जैन शासनदेवीकी मूर्ति है। कहते हैं, इन गुफाओंमें एक सिंह दम्पती निवास करता है किन्तु आज तक कभी कोई दुर्घटना सुननेमें नहीं आयी।

दिगम्बर धर्मशालाके निकट ही श्वेताम्बर समाजके ९ मन्दिर हैं। इनमें सम्राट् कुमारपाल द्वारा निर्मित विशाल मन्दिर है, जिसकी शिखर संयोजना और रथिकाओंमें देव-मूर्तियोंका अंकन दर्शनीय है। इस मन्दिरमें भगवान् अजितनाथकी १२ फुट ऊँची मूर्ति मूलनायकके स्थानपर विराजमान है।

यहाँसे पूर्वकी ओर लगभग १ मील दूर पहाड़के ऊपर मोक्षवारी नामक स्थान है। यहाँ १ दिगम्बर समाजकी तथा १ श्वेताम्बर समाजकी टोंक बनी हुई है। दोनोंमें चरण विराजमान हैं। इस स्थानके नामसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह सिद्धभूमि है और यहाँसे मुनियोंने मोक्ष प्राप्त किया है।

धर्मशालासे उत्तरकी ओर सिद्धशिला पर्वतपर जाते समय एक बावड़ी पड़ती है जिसमें पर्याप्त जल रहता है। इसके निकट ही क्षेत्रका उद्यान है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर एक धर्मशाला है, जिसमें ५४ कमरे हैं। यात्रियोंकी सुविधाके लिए २०० गद्दे, २०० रजाइयां, २०० तकिये, १०० छोटे गद्दे और बर्तनों आदिकी व्यवस्था है। जलके लिए धर्मशालासे उत्तरकी ओर बावड़ी बनी हुई है तथा दक्षिणकी ओर धर्मशालासे बाहर एक कुएँका निर्माण कराके उसमें मोटर फिट करके पाइपों द्वारा जल सप्लाई किया जाता है। प्रकाशके लिए बिजली और लालटेनोंकी व्यवस्था है।

व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके उद्देश्यानुसार स्थानीय क्षेत्र कमेटी करती है। यह कमेटी श्री तारंगाजी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र प्रबन्धकारिणी कमेटी कहलाती है।

११–१२वीं शताब्दीसे ऐसे पुरातात्त्विक और साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्रपर दिगम्बर जैन समाजका अधिकार रहा है। एक शिलालेखके अनुसार वैशाख सुदी ९ संवत् ११९२ को चक्रवर्ती (सम्राट् जयसिंह) के शासन-कालमें प्राग्वाट कुलके शाह लखनने तारंगा पर्वतपर बिम्ब-प्रतिष्ठा करायी थी। इस लेख तथा 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक श्वेताम्बर ग्रन्थसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सम्राट् कुमारपालके समय तक समूचे तारंगा क्षेत्रपर दिगम्बर जैन समाजका एकाधिकार था।

दिगम्बर समाजकी सद्भावनाके कारण श्वेताम्बर समाजने तलहटीमें मन्दिरोंका निर्माण किया। वे दिगम्बर मन्दिरोंमें दर्शनोंके लिए भी जब-तब जाते रहते थे। धीरे-धीरे श्वेताम्बर समाजमें क्षेत्रपर अधिकार करनेकी भावना बढ़ती गयी और वह समूचे तीर्थपर अपने स्वामित्वका दावा करने लगी। श्वेताम्बर समाजके दुराग्रहपूर्ण और तर्कहीन व्यवहारके कारण यहाँ दोनों समाजोंमें मनोमालिन्य बढ़ता गया। यहाँ तक कि दोनोंमें मुकदमेबाजी चलने लगी। पश्चात् श्री मैजाम्बिक (तत्कालीन पालिटिकल एजेण्ट महीकांठा एजेन्सी) के सत्प्रयत्नोंसे बम्बई सचिवालयमें दिनांक ९ अक्तूबर १९२७ को तारंगा क्षेत्रका मामला तय हुआ। निर्णयके अनुसार दिगम्बर समाजकी इमारतों, मन्दिरों, धर्मशालाओं, देहरियों और चबूतरोंपर दिगम्बर समाजका अधिकार रहा और श्वेताम्बर इमारतोंपर श्वेताम्बरोंका। तारंगा पर्वत टीवाँके जमींदारोंकी जमींदारीमें था। अतः इन जमींदारोंके साथ भी इसी समय एग्रीमेण्ट करा लिया गया। दोनों समाजोंके समझौतेमें यह भी तय किया गया कि कोटिशिला पर्वतके रास्तोंकी मरम्मत आदिका भार श्वेताम्बर समाजके ऊपर रहेगा और सिद्धशिला पर्वतके रास्तोंकी मरम्मत दिगम्बर समाज करती रहेगी। इस समझौतेके पश्चात् अब तक यही व्यवस्था चलती आ रही है।

मेला

कार्तिक शुक्ला १५ को भगवान् सम्भवनाथका पवित्र जन्म-दिवस है। अतः यहाँ प्रतिवर्ष भगवान् सम्भवनाथके जन्म कल्याणकके रूपमें समारोहपूर्वक यह दिवस मनाया जाता है। इस दिन विशाल मेला भरता है जिसमें जैन और जैनेतर जनता हजारोंकी संख्यामें सम्मिलित होती है। इस दिन सभी मन्दिरोंपर ध्वजारोहण, सामूहिक अभिषेक और पूजन होता है। सन्ध्याको जलयात्राका जलूस निकलता है। पाण्डुक शिलापर जाकर भगवान्का अभिषेक होता है।

वर्षमें एक दूसरा मेला चैत्र सुदी १३ से १५ तक होता है। १५ को जलयात्राका विशाल जलूस निकलता है और पाण्डुक शिलापर अभिषेक होता है।

एक विशाल मेला यहाँ संवत् २०१८ में हुआ था। उस समय मानस्तम्भका अभिषेक हुआ था।

अतिशय

ऐसा कहा सुना जाता है कि कभी-कभी यहाँ सम्भवनाथ भगवान्के मन्दिरमें रात्रिमें गीत, नृत्य, वादित्रकी ध्वनि सुनाई देती है। लगता है जैसे देवगण यहाँ पूजनके लिए आते रहते हैं।

मार्ग और अवस्थिति

तारंगा क्षेत्र उत्तर गुजरातके महसाणा जिलेमें अरावली पर्वतमालाओंकी एक मनोरम टेकरीपर अवस्थित है। यहाँ जानेके लिए पश्चिमी रेलवेकी दिल्ली-अहमदाबाद लाइनपर महसाणा जाना पड़ता है। महसाणासे तारंगा हिलके लिए ५७ कि. मी. लम्बी रेलवे लाइन है। तारंगा हिल स्टेशनके निकट ही दिगम्बर जैन धर्मशाला है, जिसमें १४ कमरे हैं। धर्मशालामें चैत्यालय भी हैं। धर्मशालाके सामनेसे तारंगा क्षेत्रके लिए टीवां होते हुए बसें जाती हैं। पक्की सड़क है। तारंगा हिलसे तारंगा क्षेत्र ९ कि. मी. है। जबतक यहाँ सड़क नहीं बनी थी और बसों की व्यवस्था नहीं हुई थी, तबतक यात्री तारंगा हिलकी धर्मशालामें सामान रखकर पैदल ही यात्रा करते थे। यहाँसे क्षेत्रका पैदल मार्ग ६–७ कि. मी. पड़ता है। तारंगासे ईडर होते हुए केशरियाजी जा सकते हैं तथा तारंगासे महसाणा होकर गिरनार आदि तीर्थोंकी यात्राके लिए जा सकते हैं।

यहाँका पता इस प्रकार है :

मन्त्री, श्री तारंगा दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र,
पो. तारंगा हिल (जिला महसाणा) उत्तर गुजरात।

गिरनार

सिद्धक्षेत्र

गिरनार पर्वत सुप्रसिद्ध तीर्थ-क्षेत्र है। षट्खण्डागम सिद्धान्त-शास्त्रकी आचार्य वीरसेन कृत धवला टीकामें इसे क्षेत्र-मंगल माना है। क्षेत्र-मंगलकी परिभाषा करते हुए आचार्य वीरसेन लिखते हैं :—

तत्र क्षेत्रमंगलं गुण-परिणतासन-परिनिष्क्रमण-केवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणक्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्, ऊर्ज्जयन्त-चम्पा-पावा-नगरादिः (१-१-१ पृ. २८-२९)। अर्थात् गुणपरिणत आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँपर योगासन, वीरासन इत्यादि अनेक आसनोंसे तदनुकूल अनेक प्रकारके योगाभ्यास, जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र (जहाँ किसी तीर्थंकरने दीक्षा ली हो) और निर्वाण क्षेत्र आदिको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। जैसे ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पापुर, पावापुर आदि नगर क्षेत्र-मंगल हैं।

ऐसे क्षेत्र मंगलकारी होते हैं, इसलिए इन्हें क्षेत्र-मंगल कहा जाता है। आचार्य यतिवृषभने भी 'तिलोयपण्णत्ती (प्रथम अधिकार, गाथा २१-२२) में इसी आशयकी पुष्टि करते हुए ऊर्जयन्तको क्षेत्र-मंगल स्वीकार किया है।

ऊर्जयन्त क्षेत्रपर बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) के तीन कल्याणक हुए थे— दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण। जिस क्षेत्रपर किसी तीर्थंकरका एक ही कल्याणक हो, वह कल्याणक क्षेत्र या तीर्थक्षेत्र कहलाता है। जहाँ किसी तीर्थंकरके तीन कल्याणक हुए हों, वह क्षेत्र तो वस्तुतः अत्यन्त पवित्र बन जाता है। अतः गिरनार (ऊर्जयन्त) क्षेत्र अत्यन्त पावन तीर्थभूमि है। भगवान् नेमिनाथका निर्वाण भी इसी क्षेत्रपर हुआ था, इसलिए यह निर्वाण-क्षेत्र या सिद्धक्षेत्र है। सिद्धक्षेत्र होनेके नाते इसे तीर्थराज भी कहा जाता है।

'तिलोयपण्णत्ती' शास्त्रमें भगवान् नेमिनाथकी दीक्षाके सम्बन्धमें ज्ञातव्य बातें इस प्रकार दी हैं—

चेत्तासु सुद्धसट्ठी अवरण्हे सावणम्मि णेमीजिणो।
तदियखवणम्मि गिण्हदि सहकारं वणम्मि तव चरणं॥ ४।६६५

अर्थात् भगवान् नेमिनाथने श्रावण शुक्ला षष्ठीको चित्रा नक्षत्रके रहते सहकार वनमें तृतीय भक्तके साथ तपको ग्रहण किया अर्थात् दीक्षा ली।

यह सहकार वन गिरनार पर्वतपर है और वर्तमानमें इसे सहस्राम्रवन कहा जाता है।

नेमिनाथने दीक्षा लेकर इसी पर्वतपर तपश्चरण किया और केवल छप्पन दिन पश्चात् ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। छप्पन दिन पूर्व इस गिरिराजके ऊपर देवताओं और मनुष्योंने भगवान्का दीक्षा-कल्याणक महोत्सव मनाया था। भगवान्को केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर चारों निकायके असंख्य देव और देवियाँ इन्द्रोंके साथ आये। आकर उन्होंने भगवान्की पूजा की और केवलज्ञान-कल्याणक महोत्सव मनाया। सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने वहाँ समवसरणकी रचना की। भगवान्ने गन्धकुटीमें सिंहासनपर विराजमान होकर धर्मचक्र-प्रवर्तन किया।

भगवान् नेमिनाथके केवलज्ञानकी प्राप्तिके सम्बन्धमें विशेष ज्ञातव्य तथ्योंपर प्रकाश डालते हुए 'तिलोयपण्णत्ती' शास्त्रमें इस प्रकार विवरण दिया है—

अस्सउज सुक्क पडिवदपुव्वण्हे उज्जयंतगिरिसिहरे।
चित्ते रिक्खे जादं णेमिस्स य केवलं णाणं॥ ४।६९९

अर्थात् नेमिनाथ भगवान्को आसौज शुक्ला प्रतिपदाके पूर्वाह्ण समयमें चित्रा नक्षत्रके रहते ऊर्जयन्त गिरिके शिखरपर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

भगवान् नेमिनाथ केवली अवस्थामें कुल ६९९ वर्ष १० मास ४ दिन रहे। उनकी उपदेश-सभा (समवसरण) में ग्यारह गणधर थे। जब निर्वाण-काल समीप आ गया तो भगवान् पुनः गिरनार पर्वतपर लौट आये। उनके आनेपर पुनः यहाँ समवसरणकी रचना हो गयी। भगवान्का अन्तिम उपदेश इसी पर्वतपर हुआ। जब आयुका एक मास शेष रह गया तो भगवान् योग निरोध कर आत्मध्यानमें लीन हो गये। अन्तमें अवशिष्ट चारों अघातिया कर्मोंको निर्मूल करके उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। 'तिलोयपण्णत्ती' शास्त्रमें भगवान्के निर्वाणकी तिथि आदिका उल्लेख इस प्रकार उपलब्ध होता है—

बहुलट्ठमीपदोसे आसाढे जम्मभम्मि उज्जंते।
छत्तीसाधियपणसयसहिदो णेमीसरो सिद्धो॥ ४।१२०६

अर्थात् भगवान् नेमीश्वर आषाढ़ कृष्णा अष्टमीके दिन प्रदोषकालमें अपने जन्म नक्षत्रके रहते ५३६ मुनियोंके साथ ऊर्जयन्त गिरिसे सिद्ध हुए।

भगवान्का निर्वाण होनेपर असंख्य देवों, उनके इन्द्रों और मनुष्योंने निर्वाण-कल्याणक महोत्सव मनाया। तबसे इस पर्वतकी ख्याति एक प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्रके रूपमें हो गयी।

आचार्य जिनसेनने 'हरिवंशपुराण'में भगवान्के निर्वाणका अत्यन्त रोचक वर्णन किया है, उससे कई नवीन तथ्योंका उद्घाटन होता है। अतः उपयोगी समझकर यहाँ उसका भावार्थ दिया जा रहा है।

"समवसरणकी विभूतिसे युक्त नेमि जिनेन्द्र जब दक्षिण दिशामें विहार कर रहे थे, तब वहाँके देश स्वर्गके समान सुशोभित होते थे। जब अन्तिम समय आया, तब निर्वाण कल्याणककी विभूतिको प्राप्त होनेवाले नेमि जिनेन्द्र मनुष्य, सुर और असुरोंसे सेवित अपने-आप गिरनार पर्वतपर आरूढ़ हो गये। वहाँ पहले ही के समान फिरसे कलुषतारहित तिर्यंच, मनुष्य और देवोंके समूहसे युक्त समवसरणकी रचना हो गयी। समवसरणके बीच विराजमान होकर जिनेन्द्र

भगवान्ने स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिका साधनभूत रत्नत्रयसे पवित्र एवं साधुसम्मत धर्मका उपदेश दिया। जिस प्रकार सर्वहितकारी जिनेन्द्र भगवान्ने केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद पहली बैठकमें विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया था, उसी प्रकार अन्तिम बैठकमें भी उन्होंने विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया। जिस प्रकार अग्निमें ऊर्ध्व ज्वलन और उष्णता, पानीमें शीतलता, वायुमें तिर्यग्गमन, सूर्य-चन्द्र आदि तेजस्वी पदार्थोंमें कान्ति, आकाशमें अमूर्तिकपना, पृथ्वीमें धारण करनेकी क्षमता स्वभावसे होती है, उसी प्रकार कृतकृत्य जिनेन्द्र भगवान्का धर्मोपदेश भी स्वभावसे होता था, किसीकी प्रेरणासे नहीं। तदनन्तर योग निरोध करनेवाले नेमि जिनेन्द्र अघातिया कर्मोंका अन्त कर कई सौ मुनियोंके साथ निर्वाण-धामको प्राप्त हो गये। जिनके आगे-आगे इन्द्र चल रहे थे, ऐसे चारों निकायके देवोंने भगवान्के अन्तिम शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाण-कल्याणककी पूजा की। दिव्य गन्ध तथा पुष्प आदिसे पूजित तीर्थंकर आदि मोक्षगामी जीवोंके शरीर क्षण-भरमें बिजलीके समान आकाशको देदीप्यमान करते हुए विलीन हो गये। क्योंकि यह स्वभाव है कि तीर्थंकर आदिके शरीरके परमाणु अन्तिम समयमें बिजलीके समान क्षण-भरमें स्कन्ध पर्यायको छोड़ देते हैं।"[1]

इस क्षेत्रपर भगवान् नेमिनाथके अतिरिक्त करोड़ों मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ है, इस प्रकारके उल्लेख जैन वाङ्मयमें प्रचुरतासे प्राप्त होते हैं। प्राकृत निर्वाणकाण्डमें ऊर्जयन्त पर्वतसे बहत्तर कोटि सात सौ मुनियोंके निर्वाण-गमनका उल्लेख किया गया है। वह गाथा इस प्रकार है—

"णेमिसामी पज्जुण्णो संवुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।
वाहत्तरि कोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥५॥"

अर्थात् नेमिनाथ भगवान्के अतिरिक्त प्रद्युम्न, शम्बुकुमार, अनिरुद्ध कुमार आदि बहत्तर करोड़ सात सौ मुनियोंने ऊर्जयन्त गिरिसे सिद्धपद प्राप्त किया।

यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि परम्परया जैन विद्वानोंमें ऐसी मान्यता चली आ रही है कि प्राकृत निर्वाण-काण्ड आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा विरचित है तथा संस्कृत निर्वाण-भक्तिकी रचना आचार्य पूज्यपादने की है। कुन्दकुन्द ईसाकी प्रथम शताब्दीके आचार्य माने जाते हैं और

---

१. आर्हन्त्यविभवोपेते महीं विहरतीश्वरे। दक्षिणां दक्षिणा देशा रेजिरे स्वर्गविभ्रमाः ॥
तत्रोर्जयन्तमन्तेऽसावन्तकल्याणभूतिभाक्। आरुरोह स्वभावेन नृसुरासुरसेवितः ॥
पूर्ववत्समवस्थानभूमिस्तत्राभवत्प्रभोः। तिर्यग्मानवदेवौघैरनघैः समधिष्ठिता ॥
धर्मं तत्र जिनोऽवोचद्रत्नत्रितयपावनम्। स्वर्गापवर्गसौख्यैकसाधनं साधुसंमतम् ॥
निषद्यायां यथाद्यायां पूर्वं सर्वहितो जिनः। अन्त्यायां च तथा धर्मं स सविस्तरमब्रवीत् ॥
ऊर्ध्वज्वलनमुष्णत्वं यथाग्नेः शीतताप्यपाम्। जवनं मरुतस्तिर्यग्भास्वरत्वं च तैजसः ॥
अमूर्तत्वं यथा व्योम्नः स्वभावाद्धारणं क्षितेः। कृतार्थस्य जिनेन्द्रस्य तथा धर्मस्य देशनम् ॥
अघातिकर्मणामन्तं ततो योगनिरोधकृत्। कृत्वानेकशतैः सिद्धिं जिनेन्द्रो मुनिभिर्ययौ ॥
परिनिर्वाणकल्याणपूजामन्त्यशरीरगाम्। चतुर्विधसुरा जैनीं चक्रुः शक्रपुरोगमाः ॥
गन्धपुष्पादिभिर्दिव्यैः पूजितास्तनवः क्षणात्। जैनाद्या द्योतयन्त्यो द्यां विलीना विद्युतो यथा ॥
स्वभावोऽयं जिनादीनां शरीरपरमाणवः। 'मुञ्चंति स्कन्धतामन्ते क्षणात्क्षणरुचामिव ॥
—हरिवंशपुराण, सर्ग ६५, श्लोक ३–१३

पूज्यपादकाकाल पाँचवीं शताब्दी अनुमानित है। आचार्य पूज्यपादने भी निर्वाण-भक्तिमें भगवान् नेमिनाथके प्रसंगमें उनका निर्वाण ऊर्जयन्त गिरिसे माना है। सम्बन्धित श्लोक इस प्रकार है—

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः पाखण्डिभिश्च परमार्थगवेषशीलैः।
नष्टाष्टकर्मसमये तदरिष्टनेमिः संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते ॥ २२

इस प्रकार यह स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि ऊर्जयन्त गिरिसे न केवल नेमिनाथ भगवान् ही मुक्त हुए हैं, अपितु वहाँसे अन्य भी अनेक मुनि मुक्त हुए हैं। इसका समर्थन हरिवंशपुराणसे भी होता है। इस सम्बन्धमें आचार्य जिनसेनने मुनियोंके कुछ नाम देकर यह भी सूचित किया है कि इन मुनियों आदिके निर्वाणके कारण ही ऊर्जयन्तको निर्वाण-क्षेत्र माना जाने लगा और अनेक भव्यजन तीर्थयात्राके लिए आने लगे। वे लिखते हैं—

'दशार्हादयो मुनयः षट्सहोदरसंयुताः।
सिद्धि प्राप्तास्तथान्येऽपि शम्बप्रद्युम्नपूर्वकाः॥
ऊर्जयन्तादिनिर्वाणस्थानानि भुवने ततः।
तीर्थयात्रागतानेकभव्यसेव्यानि रेजिरे॥

—हरिवंशपुराण, सर्ग ६५, श्लोक १६-१७

अर्थात् समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकीके युगलिया छह पुत्र, शम्बु और प्रद्युम्नकुमार आदि अन्य मुनि भी ऊर्जयन्तसे मोक्षको प्राप्त हुए। इसलिए उस समयसे गिरनार आदि निर्वाण-स्थान संसारमें विख्यात हुए और तीर्थयात्राके लिए भव्य लोगोंके आनेसे वे सुशोभित हुए।

आचार्य गुणभद्रकृत उत्तरपुराणमें प्रद्युम्न आदि मुनियोंके सम्बन्धमें ऊर्जयन्तगिरिसे निर्वाण प्राप्तिके साथ जिन कूटोंसे उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था, उसकी भी सूचना दी गयी है। इससे सम्बन्धित विवरण इस प्रकार है—

द्वीपायननिदानावसाने जाम्बवतीसुतः।
अनिरुद्धश्च कामस्य सुतः संप्राप्य संयमम्॥
प्रद्युम्नमुनिना सार्धमूर्जयन्ताचलाग्रिमम्।
कूटत्रयं समारुह्य प्रतिमायोगधारिणः॥
शुक्लध्यानं समापूर्य त्रयस्ते घातिघातिनः।
कैवल्यनवकं प्राप्य प्रापन्मुक्तिमथान्यदा॥

—उत्तरपुराण, सर्ग ७२, श्लो. १८०–१८२

अर्थात् द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारका-दाहका निदान करनेपर जाम्बवतीके पुत्र शम्बु और प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धने संयम धारण कर लिया। वे दोनों प्रद्युम्न मुनिके साथ ऊर्जयन्तगिरिके ऊँचे तीन शिखरोंपर आरूढ़ होकर प्रतिमायोगसे स्थित हो गये। उन्होंने शुक्लध्यानको पूरा करके घातियाकर्मोंका नाश किया और नौ केवललब्धियाँ पाकर मोक्ष प्राप्त किया।

इसमें जिन तीन कूटोंका संकेत आया है, उसके अनुरूप आज भी मान्यता प्रचलित है। द्वितीय कूटपर अनिरुद्ध कुमारके चरण-चिह्न बने हुए हैं। तीसरे कूटपर शम्बुकुमारके और चौथे कूटपर प्रद्युम्नकुमारके चरण-चिह्न उत्कीर्ण हैं।

उदयकीर्ति कृत अपभ्रंश निर्वाण-भक्तिमें प्राकृत निर्वाण-काण्डके अनुरूप ही ऊर्जयन्तको भगवान् नेमिनाथ, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और ७७२ कोटि मुनियोंका निर्वाण-स्थल माना है। उसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"ऊज्जंत महागिरि सिद्धिपत्तु । सिरि णेमिणाहु जादव पवित्तु ।
अण्णु वि पुणु सामि पज्जण णवेवि । अणुरुद्धइ सहियर णमवि तेवि ॥३॥
अण्णु वि पुणु सत्तसयाइं तित्थु । वहत्तरि कोडिय सिद्धजेत्थु ।"

इसी प्रकार भट्टारक श्रुतसागरने संस्कृतमें[1], भट्टारक गुणकीर्तिने मराठीमें,[2] भट्टारक ज्ञानसागरने हिन्दीमें[3] और चिमणा पण्डितने मराठीमें तीर्थवन्दना[4] लिखी हैं। उनमें भी ऊर्जयन्तको सिद्धक्षेत्र माना है। ब्र. नेमिदत्त रचित नेमिपुराण (अध्याय १६) और आचार्य दामनन्दी विरचित 'पुराणसार संग्रह'[5] (सर्ग ५, श्लोक १३४–१३६) में भी यथोक्त वर्णन है।

गजकुमार

गजकुमार श्रीकृष्णका अनुज था। वह देवकीसे उत्पन्न हुआ था। एक बार भगवान् नेमिनाथ द्वारकापुरी पधारे। समस्त यादव उनके दर्शनोंके लिए गये। गजकुमारको भगवान्के आगमनका समाचार ज्ञात हुआ तो वह भी समवसरणमें भगवान्के दर्शनार्थ पहुँचा और भगवान्का उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने भगवान्के समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली और घोर तप करने लगा।

एक दिन मुनि गजकुमार रात्रिके समय एकान्तमें प्रतिमायोगसे ध्यानमें अवस्थित थे। तभी सोमशर्मा ब्राह्मण संयोगवश उधर आ निकला। सोमशर्माकी कन्या सोमाका वरण गजकुमारके लिए किया गया था, किन्तु विवाह होनेसे पूर्व ही गजकुमारने दीक्षा ले ली। अपनी पुत्रीके परित्यागसे सोमशर्मा अत्यन्त खिन्न था। जब उसने गजकुमारको मुनि-वेषमें तप करते हुए देखा तो उसके हृदयमें भयंकर क्रोध उमड़ आया। उसने प्रतिशोध लेनेका कोई क्रूरतम उपाय सोचा।

---

१. ऊर्जयन्त-शत्रुंजय-लाटदेश-पावागिरि—आभीरदेश-तुंगीगिरि......
तीर्थंकरपंचकल्याणकस्थानानि....(बोधप्राभृत-टीका, गाथा २७)

२. उज्जंत महासिद्धगिरिपंथु श्रीनेमिश्वरुस्वामि पज्जण्णु अनुरुद्ध मुख्यकरौनि सात सँ बाहात्तर कोडि यादवराय सिद्धि पावले । त्या सिद्धासि नमस्कारु माझा ।
—तीर्थवन्दना, धर्मामृत, परिच्छेद, १६७

३. सोरठ देश पवित्र उज्जयंत गिरि नामह
जूनागढ़ ने पास जगमंडन सुभ ठामह ।
दर्शन थी सुख होय पूजत पाप विनाशे ।
सेवत शिवपद लहत नवनिधि निकट निवासे ।
राजिमती राणा तजी नेमिनाथ ध्याने रह्या ।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति कर्महणी मोक्षे गया । —सर्वतीर्थवन्दना, ९

४. उज्जंतगिरी नेमितीर्थंकरादि । हरिवंसीराय परिदमनादि ।
सातसँ बाहात्तरि कोडी मुनीशा । गिरनारी मुक्तिनमीती सुरेशा ॥ —तीर्थवन्दना

५. संघेन विहृत्यान्ते स्मारोहत्यूर्जयन्तगिरिम् ॥१३४॥
आषाढशुक्लपक्षे सप्तम्यां दशधनुः समुत्तुंगः ।
षट्त्रिंशता यतीनां पञ्चशतेनापि साहस्रम् ॥१३५॥
त्रीण्यपि निरुध्य योगान्त योगितामेत्य पूर्वशर्वर्य्याम् ।
परिनिर्वृते जिनेन्द्रे विनाश्य कर्माण्यशेषाणि ॥१३६॥

फलतः उसने मुनिराजके सिरपर अग्नि प्रज्वलित की। उस अग्निसे मुनिराजका शरीर जलने लगा। उसी अवस्थामें वे शुक्ल ध्यानके द्वारा कर्मोंका क्षयकर अन्तकृत केवली हो मुक्तिको प्राप्त हुए। सुर-असुरोंने आकर उनके शरीरकी पूजा की। गजकुमार मुनिका मरण जानकर दुखी होते हुए बहुतसे यादव तथा वसुदेवको छोड़कर समुद्रविजय आदि दशार्ह मोक्षकी इच्छासे दीक्षित हो गये। शिवा आदि देवियों, देवकी और रोहिणीको छोड़कर वसुदेवकी अन्य स्त्रियों तथा कृष्णकी पुत्रियोंने भी दीक्षा धारण कर ली।[1]

'हरिवंश पुराण' के इस कथनमें गजकुमारके मुक्ति-स्थानका उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु हरिषेण कृत बृहत्कथाकोषमें स्थानका स्पष्ट उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है—

'अत्रान्तरे कुमारोऽयं नेमिनाथान्तिके मुदा।
धर्मं श्रुत्वा प्रवव्राज वैराग्याहितमानसः ॥१४॥
ततो गजकुमारोऽपि कुर्वाणो विविधं तपः।
प्राप रैवतकोद्यानं नानातरुविराजितम् ॥१५॥
पादोपगमनं मृत्युं वांछन्नत्र वने सुधीः।
उत्तानशय्यया तस्थौ कुमारो भयवर्जितः ॥१६॥

—हरिषेण कथाकोष, पृ. ३१४

इसमें स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि गजकुमार मुनि रैवतक उद्यानमें पहुँचे और वहीं उन्होंने प्रायोपगमन मरण किया। यद्यपि कथाकोषमें गजकुमारको स्वर्गलोककी प्राप्ति बतायी गयी है, किन्तु इस सम्बन्धमें आचार्य जिनसेनका कथन अधिक प्रामाणिक माना जायेगा। अतः गजकुमारको भी रैवतक (गिरनार) से ही मोक्ष प्राप्त हुआ, यह असंदिग्ध सत्य है।

इस प्रकार गिरनार पर्वतसे करोड़ों मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ। अतः वह निर्वाण क्षेत्र या सिद्धक्षेत्र है। यहाँ एक बातका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें ऊर्जयन्तगिरिसे मुक्ति प्राप्त करनेवाले मुनियोंकी संख्या दी है, जो इस भाँति है— 'बाहत्तरि कोडीओ उज्जंते सत्तसया वंदे।' इसके अर्थके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मति-विभ्रम है। कुछ विद्वान् इसका अर्थ ७२ करोड़ ७०० मुनि करते हैं और अन्य विद्वान् ७७२ करोड़ मुनि करते हैं। भैया भगवतीदास कृत निर्वाण-काण्ड (भाषा) में इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है—'श्री गिरनार शिखर विख्यात। कोडि बहत्तर अरु सौ सात॥' किन्तु भट्टारक गुणकीर्ति और चिमणा पण्डितने मराठी तीर्थ वन्दनामें 'सात सौ बाहत्तर कोडि यादवरायसिद्धि पावले' किया है। आचार्य जिनसेन, यतिवृषभ आदि इस सम्बन्धमें मौन हैं। किन्तु समाजमें प्रचलित मान्यता ७२ करोड़ ७०० की है, यद्यपि निर्वाण-काण्डकी गाथाके दोनों ही अर्थ किये जा सकते हैं।

इन्द्र द्वारा चिह्नित सिद्धशिला

भगवान् नेमिनाथ जिस स्थानसे मुक्त हुए थे, वह स्थान अत्यन्त पवित्र और लोकपूज्य था। उस स्थानके गौरवको सदा कालके लिए अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए इन्द्रने वज्रसे सिद्ध-शिलाका निर्माण किया और उसपर भगवान्के चरण-चिह्न उत्कीर्ण किये। इस आशयकी सूचना आचार्य जिनसेनने 'हरिवंशपुराण' (सर्ग ६५, श्लोक १४) में दी है। आप लिखते हैं—

"ऊर्जयन्तगिरौ वज्री वज्रेणालिख्य पाविनीम्।
लोके सिद्धिशिलां चक्रे जिनलक्षणपङ्क्तिभिः॥"

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग ६१, श्लोक २–१०।

आचार्य दामनन्दीने भी 'पुराणसारसंग्रह' में इस बातका समर्थन करते हुए लिखा है—

'कुलिशेन सहस्राक्षो लक्षणपंक्ति लिलेख तत्रेशः।
भव्यहिताय शिलायामद्यापि च शोभते पूता॥' ५।१२९

इस सूचनाके अनुसार वह शिला, जिसमें इन्द्रने वज्रसे भगवान्के चिह्न अंकित किये थे, अब तक मौजूद है।

आचार्य जिनसेनने इन्द्र द्वारा ऊर्जयन्तके शिलातलपर वज्रसे चिह्नांकित करनेवाला तथ्य प्रगट किया है, उस रहस्यका उद्‌घाटन इनसे कई शताब्दी पूर्व ही आचार्य समन्तभद्र कर चुके थे। उन्होंने ऊर्जयन्त गिरिकी प्रशंसा करते हुए 'स्वयंभूस्तोत्र' में बताया है कि—

"ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलङ्कृतः।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा॥१२७॥"

अर्थात्, हे ऊर्जयन्त ! तू इस पृथ्वीतलके मध्यमें ककुदके समान ऊँचा है, विद्याधर-दम्पती तेरे ऊपर रहते हैं, तू शिखरोंसे सुशोभित है, मेघपटल तेरे तट भागको ही छू पाते हैं तथा स्वयं इन्द्रने तेरे पवित्र अंगपर वज्रसे नेमिनाथ भगवान्के चिह्न अंकित किये थे।

गिरनारपर इन्द्र द्वारा स्थापित मूर्ति

इन्द्रने जिस प्रकार भक्तिवश वज्रसे भगवान्के चिह्न अंकित किये थे, उसी प्रकार उसने भक्तिवश गिरनार पर्वतपर भगवान् नेमिनाथकी भव्य मूर्तिकी भी स्थापना की थी। इस आशयकी सूचना यतिपति मदनकीर्तिने 'शासन चतुस्त्रिंशिका' में इस प्रकार दी है—

"सौराष्ट्रे यदुवंशभूषणमणेः श्रीनेमिनाथस्य या
मूर्तिर्मुक्तिपथोपदेशनपरा शान्तामुधापोहनात्।
वस्त्रैराभरणैर्विना गिरिवरे देवेन्द्रसंस्थापिता
चित्तभ्रान्तिमपाकरोतु जगतो दिग्वाससां शासनम्॥२०॥"

अर्थात् सौराष्ट्रमें गिरनार पर्वतपर यदुवंशभूषण श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी आयुध, वस्त्र और आभरणरहित भव्य, शान्त और मोक्ष-मार्गका मूक उपदेश करनेवाली जो मूर्ति स्थित है, वह इन्द्र द्वारा स्थापित की गयी है। वह संसारके चित्तकी भ्रान्तिको दूर करे और दिगम्बर शासनका लोकमें प्रसार करे।

इन्द्र द्वारा स्थापित उस मूर्तिका क्या हुआ, इसका कुछ पता नहीं चलता। किन्तु श्वेताम्बराचार्य श्री राजशेखरसूरिकृत 'प्रबन्ध-कोष' (वि. सं. १४०५) में रत्नश्रावक सम्बन्धी एक प्रबन्ध है। उससे इस मूर्तिके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त होती है। उसमें बताया है कि 'काश्मीर देशके नवहुल्ल पत्तनके निवासी रत्न नामक एक जैन श्रीमन्त संध सहित गिरनारकी वन्दनाके लिए आया। उन्होंने कूष्माण्डी देवी और सात क्षेत्रपतियोंके दर्शन किये। फिर संघ रैवतक पर्वतपर गया। वहाँ भगवान् नेमिनाथकी जो अति प्राचीन मूर्ति थी, रत्नने उसका जलाभिषेक किया। प्रतिमा लेपकी थी, इसलिए वह गल गयी। इससे रत्नको बड़ा परिताप हुआ। उसने उपवास किया। रात्रिमें अम्बिका देवी प्रकट हुई और उसने अन्य प्रतिमा स्थापित करनेका आदेश दिया। तदनुसार रत्नने १८ सोनेकी, १८ चाँदीकी और १८ पाषाणकी प्रतिमाएँ बनवायीं।

यदि इस विवरणको प्रामाणिक स्वीकार किया जाये तो मदनकीर्ति (वि. सं. १२८५) ने नेमिनाथकी जिस भव्य दिगम्बर मूर्तिका उल्लेख किया है वह वि. सं. १४०५ में लिखित 'प्रबन्ध-कोष' के अनुसार रत्न नामक यात्रीके हाथों नष्ट हुई। इससे लगता है कि मदनकीर्तिके द्वारा

उल्लिखित मूर्ति वि. सं. की १४-१५वीं शताब्दी तक अवश्य विद्यमान थी। सम्भव है, मदनकीर्तिने उसके दर्शन भी किये हों। किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि वह मूर्ति दिगम्बर थी और अत्यन्त आकर्षक थी।

गिरनारकी अम्बिका देवी

गिरनारके दूसरे शिखरपर अम्बा या अम्बिका देवीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी मान्यता जैनों और हिन्दुओंमें दोनोंमें ही है। मन्दिरपर आजकल हिन्दुओंका अधिकार है। मि. बर्गेसने मूलतः इस मन्दिरको जैनोंका बताया है।[1]

अम्बिका देवीके कई नाम जैन शास्त्रोंमें मिलते हैं—कूष्माण्डी, कूष्माण्डिनी, आम्रा देवी, अम्बा देवी, अम्बिका देवी। यह देवी तीर्थंकर नेमिनाथकी शासन देवी कहलाती है। दिगम्बर जैन शास्त्रोंमें अम्बिका देवीका स्वरूप इस प्रकार का बताया है—

"सव्येकद्युपगप्रियंकरसुतुक्प्रीत्यै करे बिभ्रतीं,
दिव्याम्रस्तवकं शुभंकरकरश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम्।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां,
वन्दारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रां यजे ॥२२॥"[2]

अर्थात् दस धनुष शरीरवाले नेमिनाथ भगवान्‌की शासन देवी आम्रा है। वह नीले वर्ण वाली, सिंहकी सवारी करनेवाली, आम्रछायामें रहनेवाली और दो भुजावाली है। बायें हाथमें प्रियंकर नामक पुत्रके प्रेमके कारण आमकी डालीको और दायें हाथमें अपने द्वितीय पुत्र शुभंकरको धारण करनेवाली है।

श्वेताम्बर परम्परामें अम्बिका (कूष्माण्डी देवी) का रूप इस प्रकार बताया है—"तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां कूष्माण्डीं देवीं कनकवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां मातुलिंगपाशयुक्तदक्षिणकरां पुन्नाङ्कुशान्वितवामकरां चेति॥" अर्थात् नेमिनाथके तीर्थमें कूष्माण्डी नामक देवी है। वह सुवर्णवाली, सिंहकी सवारी करनेवाली और चार मुखवाली है। दायें हाथमें बिजौरा और पाश है और बायें हाथमें पुत्र और अंकुश है।

आचार्य जिनसेनने 'हरिवंशपुराण' (सर्ग ६६, श्लोक ४४) में गिरनारकी अम्बिका देवीके सम्बन्धमें विशेष उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—

"गृहीतचक्राप्रतिचक्रदेवता तथोर्जयन्तालयसिंहवाहिनी।
शिवाय यस्मिन्निह सन्निधीयते क्व तत्र विघ्नाः प्रभवन्ति शासने॥"

अर्थात् चक्रको धारण करनेवाली अप्रतिचक्रदेवता तथा गिरनार पर्वतपर निवास करनेवाली सिंहवाहिनी अम्बिकादेवी जिस जिनशासनमें सदा कल्याणके लिए सन्नद्ध रहती है, उस जिनशासन पर विघ्न अपना प्रभाव कहाँ जमा सकते हैं।

अम्बिकादेवीकी मूर्तियाँ बहुसंख्यामें प्राप्त होती हैं। इस देवीका मुख्य चिह्न यह है—सिंहारूढ़ देवीकी गोदमें एक बालक होता है तथा एक बालक बगलमें खड़ा होता है। देवी आम्र-वृक्षके नीचे बैठी होती है अथवा वृक्ष नहीं होता तो हाथमें आम्रस्तवक रहता है। देवीके शिरोभागपर भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन प्रतिमा बनी होती है।

---

१. Burgess, The Report on the Antiquities of Kathiawad and Kachha, p. 129.

२. ठक्कुर फेरुकृत 'वास्तुसार प्रकरण' पृ. १९९

देवीके इस रूपके सम्बन्धमें जैन शास्त्रोंमें बड़ा रोचक आख्यान दिया गया है—

"सौराष्ट्र देशमें किसी गाँवमें सोमशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। अग्निला नामक उसकी स्त्री थी, जो बड़ी जिनधर्मपरायण थी। उसके दो पुत्र थे—शुभंकर और प्रीतिंकर। सोमशर्मा वेदानुयायी था। एक दिन सोमशर्माने पिताका श्राद्ध किया। वह ब्राह्मणोंको बुलाने लगा। इधर मासोपवासी मुनि वरदत्त पारणाके लिए आये। अग्निलाने उनको पड़गाहकर विधिवत् आहार दिया। देवोंने ब्राह्मणीके इस कार्यकी सराहना की। किन्तु ब्राह्मणोंको यह कार्य रुचिकर न लगा। उन्होंने भोजन करनेसे इनकार कर दिया और उठकर चले गये। सोमशर्माको इस असह्य अपमानसे बड़ा क्रोध आया और वह क्रोधान्ध होकर ब्राह्मणीको पीटने लगा और उसे घरसे निकाल दिया। दु:खित होती हुई अग्निला अपने दोनों पुत्रोंको लेकर गिरनार पर्वतपर पहुँची। वहाँ उसने वरदत्त मुनिकी वन्दना की और पुत्रोंके साथ एक आम्रवृक्षके नीचे सहस्राम्र वनमें बैठ गयी। जब बच्चोंको भूख लगी, तब अग्निलाको चिन्ता हुई किन्तु तभी उसके पुण्य प्रभावमें आम्रवृक्षोंपर फल लहलहाने लगे। बच्चे पके आम्रफलोंको खाकर बड़े सन्तुष्ट हुए।"

"कभी-कभी अतर्कित घटनाएँ हो जाती हैं। सोमशर्माके गाँवमें आग लग गयी। सारा गाँव जल गया, किन्तु अग्निलाका घर नहीं जला। लोगोंने इसे कोई दैवी चमत्कार समझा और सब अग्निलाके धर्म-प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। सोमशर्माको भी अपनी भूल अनुभव हुई। वह अपनी पत्नीको लेनेके लिए गिरनार पर्वतपर गया। जब अग्निलाने अपने पतिको आते देखा तो वह बड़ी भयभीत हुई और एक ऊँचे शिखरसे नीचे कूद पड़ी। मरकर वह देवी बनी। सोमशर्मा भी अपनी पत्नीके पीछे शिखरसे कूद पड़ा और मरकर निम्नकोटिका देव बना और उस देवीकी सेवामें रहने लगा।"

"अब देवी भगवान् नेमिनाथकी सेवामें रहने लगी। वह दीन-दुखियोंका कष्ट दूर करने लगी। लोग आदरसे उसे अम्बा या अम्बिका (मा) कहते थे। वह दयाकी साक्षात् मूर्ति थी। भगवान् नेमिनाथ और उनके शासनकी सेवा करने और उसकी प्रभावना करनेमें उसे बड़ा आनन्द मिलता था।"

इस प्रकार अम्बिका नेमिनाथ तीर्थंकरकी सेविका शासनदेवी मानी गयी। अम्बिकाकी मान्यता लोकव्यापी हो गयी। उसकी मूर्ति बनाकर लोग पूजने लगे। गिरनार पर्वतपर भी अम्बिका देवीकी मूर्ति प्राचीन कालमें बनायी गयी थी। इस सम्बन्धमें शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। यह शिलालेख डॉ. बर्गेसको गिरनारके नेमिनाथ मन्दिरकी चहारदीवारीमें प्राप्त हुआ था। वह इस प्रकार पढ़ा गया है—

"संवत् १२१५ वर्षे चैत्र सुदि ८ रवौ अद्येह श्रीमदुज्जंयन्ततीर्थे जगत्यां समस्तदेवकुलिका-सत्कछाजाकुबा लिसंविरणसंद्यविठ सालवाहण प्रतिपत्या सू. जसहड ठ. सावदेवेन परिपूर्णा कृता ॥ तथा ठ. भरथसुत पण्डितसालिवाहेण नागजरिसिराया परित: कारित [भाग] चत्वारिंबिंबीकृत कुंडकर्मातर तदधिष्ठात्री श्रीअम्बिकादेवीप्रतिमा देवकुलिका च निष्पादिता[1]।"

अर्थ—संवत् १२१५, चैत सुदी ८, रविवारके शुभ दिन ऊर्जयन्त तीर्थ पर ठाकुर सालिवाहनकी सम्मतिसे राज (मिस्त्री) जसहड और सावदेवने समस्त जैन देवताओंकी प्रतिमा बनाकर पूर्ण की तथा भरथके पुत्र पण्डित सालिवाहनने 'नागज (झ) रि सिरा' (Elephant Fount) के चारों ओर एक दीवाल खींच दी, जिसमें चार बिम्ब पधराये गये। कुण्ड बन जानेके

१. जैन शिलालेख संग्रह भाग ३, पृ. १०९ (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन)

बाद उसकी अधिष्ठात्री श्री अम्बिका देवीकी मूर्ति और अन्य देवोंकी मूर्तियाँ उसके ऊपर बनायी गयीं।

कुछ श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें ऐसी भी कथाएँ दी गयी हैं, जिनमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि अम्बिकाने श्वेताम्बर-दिगम्बरोंके विवादमें श्वेताम्बर पक्षको सत्य और विजयी घोषित किया। रत्नमन्दिर गणि कृत 'उपदेश तरंगिणी' नामक ग्रन्थमें लिखा है—सुराष्ट्र देशके गोमण्डल (गोंडल) नामक गाँवमें धाराक नामक संघपति रहते थे। उनके ७ पुत्र, ७०० योद्धा, १३०० गाड़ियाँ और १३ करोड़ अशर्फियाँ थीं। शत्रुंजयकी यात्रा करके गिरनार तीर्थकी यात्राको गये। इस तीर्थपर ५० वर्षसे दिगम्बरोंका अधिकार था। वहाँ राखंगार नामक किलेदार था, जो दिगम्बर धर्मानुयायी था। संघपतिका किलेदारके साथ युद्ध हो गया। इस युद्धमें संघपतिके सातों पुत्र और सारे योद्धा काम आये। संघपति निराश होकर वापस लौट आये। उन्होंने सुना कि गोपगिरि (ग्वालियर) के राजा आम हैं और उन्हें वप्पभट्ट सूरिने प्रतिबोधित किया है। संघपति ग्वालियर आये और उन्हें दिगम्बराधिकृत गिरनार तीर्थकी हालत सुनायी। सुनकर आम राजाको बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि गिरनारके नेमिनाथकी वन्दना किये बिना मैं भोजन ग्रहण नहीं करूँगा। एक हजार श्रावकोंने भी ऐसी ही प्रतिज्ञा की। वह तत्काल संघ सहित गिरनारको चल दिया। खम्भात पहुँचते-पहुँचते उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। तब वप्पभट्ट सूरिने अम्बिकाको बुलाकर अपापमठसे एक प्रतिमा मँगाकर उसे दर्शन कराये।" इसके बाद ग्रन्थमें उल्लेख है कि दिगम्बर जैनोंके साथ श्वेताम्बरोंका शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ एक माह तक चला किन्तु निर्णय नहीं हो सका। तब अम्बिका देवीने 'उज्जित सेलसिहरे' गाथाएँ पढ़कर श्वेताम्बरोंको विजयी घोषित कर दिया। इस तरह तीर्थ लेकर दिगम्बर-श्वेताम्बरोंकी प्रतिमाओंमें नग्नावस्था और अंचलिकाका भेद कर दिया, जिससे भविष्यमें दोनोंकी प्रतिमाओंकी पृथक्-पृथक् पहचान हो सके।

लगता है, यह कथा श्वेताम्बरोंके आग्रहको सत्य सिद्ध करनेके लिए गढ़ी गयी है। इससे एक तथ्यपर अवश्य प्रकाश पड़ता है कि उस समय तक गिरनार पर्वतपर दिगम्बर जैनोंका अधिकार था और दूसरे यह कि उस समय तक दिगम्बर श्वेताम्बरोंकी प्रतिमाओंमें कोई भेद नहीं था किन्तु तबसे दोनोंकी प्रतिमाओंमें अन्तर हो गया।

पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाएँ

गिरनारपर अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाएँ घटित हुई हैं, जिनका विशेष महत्त्व है। चतुर्थ श्रुतकेवली गोवर्धनाचार्य गिरनारकी यात्राके लिए गये थे। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुने भी यहाँकी यात्रा की थी। इनके पश्चात् एक महत्त्वपूर्ण घटनाका गिरनारके साथ सम्बन्ध है, जिसके द्वारा जैन वाङ्मयका इतिहास जुड़ा हुआ है। वह घटना इस प्रकार है—

"धरसेनाचार्य[2] गिरनारकी चन्द्रगुफामें रहते थे। नन्दिसंघकी प्राकृत 'पट्टावली' के अनुसार वे आचारांगके पूर्ण ज्ञाता थे। उन्हें इस बातकी चिन्ता हुई कि उनके पश्चात् श्रुतज्ञानका लोप

१. ऊर्जयन्तं गिरिं नेमिं स्तोतुकामो महातपाः। विहरन् क्वापि संप्राप कोटीनगरमुद्ध्वजम्।
—हरिषेण कथाकोष, कथा १३१, पृ. ३७१

२. षट्खण्डागम (सत्प्ररूपणा खण्ड) भाग १, पृ. ५७-७१।

३. हरिषेण कथाकोष, कथा २६।

हो जायेगा। उस समय महिमानगरीमें मुनि-सम्मेलन हो रहा था। उन्होंने मुनि-सम्मेलनको एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त की। फलस्वरूप दो मुनि भूतबलि और पुष्पदन्त उनके पास पहुँचे जो व्युत्पन्न और विनयी थे, जो विद्या ग्रहण करने और उसे स्मरण रखनेमें समर्थ थे। धरसेनाचार्यने उनकी परीक्षा ली। एकको अधिकाक्षरी और दूसरेको हीनाक्षरी मन्त्र दिया और षष्ठभक्तोपवासपूर्वक उसे सिद्ध करनेको कहा। जब मन्त्र सिद्ध हुए तो मन्त्रोंकी एक अधिष्ठात्री देवी बड़े-बड़े दाँतोंवाली और दूसरी कानी प्रगट हुई। उन्हें देखकर चतुर साधकोंने जान लिया कि उनके मन्त्रोंमें कुछ त्रुटि है। उन्होंने विचारपूर्वक उनके अधिक और हीन अक्षरोंको ठीक करके पुन: साधना की, जिससे देवियाँ अपने सौम्य रूपमें प्रगट हुईं। उनकी इस कुशलतासे गुरुने जान लिया कि ये सिद्धान्त सिखाने योग्य पात्र हैं। फिर उन्होंने उन्हें क्रमसे सारा सिद्धान्त पढ़ा दिया। यह श्रुताभ्यास आषाढ़ शुक्ला एकादशीको समाप्त हुआ। उसी समय भूतोंने पुष्पोपहारों द्वारा शंख, तूर्य और वादित्रोंकी ध्वनिके साथ एक शिष्यकी पूजा की। इसीसे आचार्यने उनका नाम भूतबलि रखा। दूसरेकी दन्त-पंक्ति अस्त-व्यस्त थी। उसे भूतोंने ठीक कर दिया। इससे उनका नाम पुष्पदन्त रखा गया।

आचार्यने दोनों शिष्योंको अध्ययन समाप्त होते ही वहाँसे विदा कर दिया। आचार्यने चातुर्मास इतना समीप होते हुए भी उन्हें तत्काल क्यों विदा कर दिया, इसका उत्तर इन्द्रनन्दि कृत 'श्रुतावतार' तथा विबुध श्रीधर कृत 'श्रुतावतार' में दिया है कि धरसेनाचार्यको ज्ञात हुआ कि उनकी आयु जल्दी क्षीण होनेवाली है, शिष्योंको दुःख न हो, इस कारण उन्हें विदा कर दिया। गुरुकी आज्ञा अलंघनीय होती है, ऐसा विचार कर वे वहाँसे चल दिये और अंकलेश्वरमें वर्षाकाल बिताया। वर्षायोग समाप्त कर और जिनपालितको ले पुष्पदन्त आचार्य तो वनवासको चले गये और भूतबलि भट्टारक द्रमिल देशको चले गये। तदनन्तर पुष्पदन्त आचार्यने जिनपालितको दीक्षा देकर, बीस प्ररूपणा (अधिकार) गर्भित सत्प्ररूपणाके सूत्र बनाकर और जिनपालितको पढ़ाकर उन्हें भूतबलि आचार्यके पास भेजा। भूतबलिने उन्हें अल्पायु जानकर द्रव्यप्रमाणानुगमसे लगाकर आगेकी ग्रन्थ रचना की।

धवला टीकामें इसके आगेका वृत्तान्त नहीं दिया। किन्तु अन्य ग्रन्थोंके अनुसार[1] भूतबलि आचार्यने षट्खण्डागमकी रचना पुस्तकारूढ़ करके ज्येष्ठ शुक्ला ५ को चतुर्विध संघके साथ उन पुस्तकोंको ज्ञानका उपकरण मान श्रुतज्ञानकी पूजा की, जिससे श्रुत पंचमी पर्वकी प्रख्याति हुई। फिर भूतबलिने उन षट्खण्डागम पुस्तकोंको जिनपालितके हाथ पुष्पदन्तके पास भेज दिया। पुष्पदन्त उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने भी चातुर्वर्ण्य संघ सहित सिद्धान्त ग्रन्थोंकी पूजा की।

इस प्रकार सिद्धान्त ग्रन्थोंकी विद्या-भूमि गिरनार ही है। पुष्पदन्त और भूतबलिने गिरनारकी सिद्धशिलापर बैठकर, जहाँ भगवान् नेमिनाथको मुक्ति प्राप्त हुई थी, मन्त्र-सिद्धि की थी।

आचार्य कुन्दकुन्द भी गिरनारकी वन्दना करने आये थे।[2]

पुराणोंमें इस तीर्थसे सम्बन्धित अनेक घटनाओंका उल्लेख हुआ है। कुछ प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं—गिरिनगरका राजा भूपाल सम्यग्दृष्टि था। स्वरूपा उसकी रानी थी। उस नगरका

---

१. इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार।

२. ज्ञान प्रबोध, पाण्डवपुराण।

नगरसेठ गंगपति था। उसकी स्त्री सिन्धुमती थी जो मिथ्यादृष्टि थी। एक बार मासोपवासी मुनि समाधिगुप्त पारणाके लिए नगरमें पधारे। नगरसेठ अपनी पत्नी सहित राजाके साथ वन-विहारके लिए जा रहा था। नगरसेठने मुनिराजको गोचरी करते हुए देखा तो उसने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये! मुनिराजने चर्याके लिए हमारे गृहमें प्रवेश किया है। तुम जाकर उन्हें पहले आहार दो, फिर वनमें आ जाना।

पतिके कहनेसे वह लौट तो गयी, किन्तु वह मुनिपर मन-ही-मन बड़ी रुष्ट हुई। वह मुनिको पड़गाहकर भीतर ले गयी। उसने धाय द्वारा मना करनेपर भी आहारमें कड़वी तुम्बी दी। मुनिने उसे समभावसे ग्रहण किया और समाधिमरण करके स्वर्गमें देव बने। राजाने वनसे लौटकर मुनिराजकी मृत्युका समाचार सुना। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि सिन्धुमती सेठानीने आहारमें कटु तुम्बी दी थी, जिससे मुनिराजकी मृत्यु हो गयी। सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया। उसके आदेशसे सेठानीका सिर मुँड़ाकर, गधेपर बिठाकर, काला मुख करके नगरसे निकाल दिया गया। वह पापिनी सात दिन कुष्ठ रोगसे तड़प-तड़पकर मरी और छठे नरकमें उत्पन्न हुई।[1]

एक अन्य कथा इस प्रकार मिलती है—सौराष्ट्र देशके गिरिनगरमें अतिरथ राजा और गोमिनी नामक रानी थी। उनकी अत्यन्त रूपवती मनोहरी नामक एक कन्या थी। राजाके पुरोहितका नाम विजय था, कुबेरश्री उसकी पत्नी थी। उनके कुबेरकान्त नामक अति सुन्दर पुत्र था। राजाके नगरश्रेष्ठी धनदेव और उसकी सेठानी धनश्रीके श्रीधर नामका पुत्र था। राजपुरोहित और श्रेष्ठी दोनोंके पुत्रोंमें बड़ी मित्रता थी। श्रीधरकी स्त्री कुबेरश्री रत्नकम्बलकी फरमाइश पूरी न होनेपर महलसे कूदकर मर गयी। दोनों मित्र इस घटनाको लेकर शोक-वार्ता कर रहे थे। कुबेरकान्त बोला, "मित्र! तुम्हारी स्त्रीका समाचार सुनकर मेरी स्त्री भी पर्वतके शिखरसे कूदकर मर गयी।"

इसके पश्चात् कुबेरकान्त ऊर्जयन्तगिरिपर अपनी प्रिया मलयाकी तलाशमें गया। वहाँ उसने राजपुत्री मनोहरीको देखा और दोनोंके मनमें प्रेम उत्पन्न हो गया। कुबेरकान्त ऊर्जयन्त गिरिके ऊपर प्रतिदिन जाता और एक विद्याधरसे विद्या सीखा करता। जब मनोहरीका स्वयंवर हुआ तो उसने कुबेरकान्तके गलेमें वरमाला डाल दी। इससे नरेशगण क्षुब्ध हो गये। किन्तु कुबेरकान्तने विद्याके बलसे सभी युद्धलिप्सु राजाओंको जीत लिया और आनन्दपूर्वक मनोहरीके साथ विवाह कर लिया। एक दिन दोनों महलकी छतपर बैठे हुए थे। अकस्मात् दोनोंके ऊपर आकाशसे बिजली गिरी और दोनोंका प्राणान्त हो गया।

इस कथाके उत्तर भागमें एक महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है कि उस समय ऊर्जयन्तगिरिके ऊपर नेमिनाथ निषधिका (नसिया) बनी हुई थी। इससे सम्बन्धित अंश इस प्रकार है—

विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें अलंकारपुर नामक नगर था। वहाँका नरेश चण्डवेग और रानी तडित्प्रभा थी। कुबेरकान्तका जीव इनके यहाँ विद्युन्माली पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। तथा मनोहरी मरकर इसी नगरमें मेघमालीकी पुत्री हुई। एक दिन राजा चण्डवेग अपनी पत्नी और पुत्रके साथ ऊर्जयन्तगिरिपर नेमिनाथ निषधिकाकी वन्दना करने जा रहा था।[2] ऊर्जयन्तगिरिको देखकर विद्युन्मालीको पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। वह मनोहरीका स्मरण करके मूर्छित

---

१. हरिषेण कथाकोष, कथा ५७, पृ. १०७।

२. अन्यदा चण्डवेगेन विद्युन्मालीतडित्प्रभः।
ऊर्जयन्तगिरिं यातो नन्तुं नेमिनिषद्यकाम्॥—हरिषेण कथाकोष, कथा १२७, पृ. ३१२

हो गया। फिर उसने प्रज्ञप्ति विद्याका साधन किया। उसकी सहायतासे उसे ज्ञात हुआ कि मनोहरी मरकर उसके ही नगरमें मेघमाली विद्याधरकी विरलवेगा नामक पुत्री बनी है। राजा चण्डवेगको यह ज्ञात हुआ तो उसने दोनोंका विवाह कर दिया।

गिरनारके शिलालेख

यहाँ कुछ ऐसे शिलालेख दिये जा रहे हैं, जिनमें गिरनार (ऊर्जयन्त, रैवतकगिरि) की महत्ता, पर्वतसे नेमिनाथका सम्बन्ध अथवा अन्य निर्माण-कार्योंका उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें इन शिलालेखोंका बड़ा महत्त्व है।

नेमिनाथ मन्दिरके दक्षिणकी तरफके प्रवेश-द्वारके प्रांगणमें टूटे हुए खम्भेकी पश्चिम दीवार-पर उत्कीर्ण लेख इस प्रकार है—

"संवत् १५२२ श्री मूलसंघे श्री हर्षकीर्ति पद्मकीर्ति भुवनकीर्ति....[1]

अनुवाद—सं. १५२२, श्री मूलसंघके श्री हर्षकीर्ति, पद्मकीर्ति, भुवनकीर्ति।

(यह लेख खण्डित है।)

गिरनार पर्वतपर क्षत्रप रुद्रदामन्‌का शक संवत् ७२ (सन् १५०) का एक शिलालेख, जिसमें सुदर्शन झीलके निर्माण, जीर्णोद्धार आदिका रोचक विवरण दिया है। लेख काफी विस्तृत है। अतः यहाँ उसके आवश्यक अंश दिये जा रहे हैं—

"सिद्धम्! इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगरादपि....मृत्तिकोपलविस्तारायामोच्छ्रय निःसन्धि-बद्धदृढसर्वपालीकत्वा, पर्वतपादप्रतिस्पर्द्धिसुश्लिष्टबन्धं....मवजातेनाकृत्रिमेण सेतुबन्धेनोपपन्नं सुप्रति-विहितप्रणालीपरीवाहमीढविधानं च त्रिस्कन्धं...नादिभिरनुग्रहैर्महत्युपचये वर्तते। तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य जयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महा-क्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे मार्गशीर्षबहुलप्रतिपदायां सृष्टवृष्टिना पर्जन्येनैकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरुर्जयतः सुवर्णसिकतापलाशिनीप्रभृतीनां नदीना-मतिमात्रोद्‌धृतैर्वेगैः सेतुम.. नदीतलादुद्‌घाटितमासीत्।.......

मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितमशोकस्य मौर्यस्य कृते यवन-राजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृतम्......महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गोब्राह्म...र्थं धर्मकीतिवृद्धयर्थं चापीडयित्वा करविष्टिप्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात् कोशान्महता धनौघेनानतिमहता च कालेन त्रिगुणदृढतरविस्तारायामं सेतुं विधाय सर्वतटे...सुदर्शनतरं कारित-मिति...[2]

भावार्थ—गिरिनगरकी सुदर्शन झीलका सेतु महाक्षत्रप चष्टनके पौत्र और क्षत्रप जय-दामाके पुत्र महाक्षत्रप रुद्रदामाके ७२वें वर्षमें मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदाको ऊर्जयन्त गिरिकी सुवर्ण-सिक्ता पलाशिनी आदि नदियोंमें भयंकर बाढ़ आनेके कारण टूट गया। इस (झील)का निर्माण मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तके राष्ट्रीय वैश्य पुष्यगुप्तने कराया था। मौर्य सम्राट् अशोकके लिए यवनराज तुषास्फने इसमें नालियाँ निकलवायीं और महाक्षत्रप रुद्रदामाने नागरिकोंपर अतिरिक्त कर लगाये बिना अपने कोषसे बहुत धन लगाकर थोड़े ही समयमें पहलेसे तिगुना बड़ा सेतु बनवाया।

गुप्त शासनमें स्कन्धगुप्तके समय सौराष्ट्रका शासक पर्णदत्त था। जब वह वृद्ध हो गया

१. जैन शिलालेख संग्रह, भाग ३, पृ. ४९१।

२. Selections from Sanskrit Inscriptions, Part I, by D. B. Diskalkar, Epigraphia Indica, Vol. VIII, p. 47.

तो उसने प्रदेशकी सुरक्षाका भार अपने सुयोग्य पुत्र चक्रपालितको सौंप दिया। एक बार उसके राज्यकालमें जोरोंकी वर्षा हुई। इससे रैवतकगिरिसे निकलनेवाली पलाशिनी और सिक्ता नदियोंमें भयंकर बाढ़ आ गयी। उससे सुदर्शन झीलमें जगह-जगह दरार पड़ गयी, तट-बन्ध टूट गये। उसके कारण प्रलय-जैसी बाढ़ आ गयी। तब चक्रपालितने गुप्त सं. १३७ में झीलका जीर्णोद्धार किया। इससे सम्बन्धित एक शिलालेख गिरनारपर मिला है। इसमें ३९ श्लोक हैं। जीर्णोद्धारका कार्य ग्रीष्म ऋतुके प्रथम पक्षमें प्रथम दिन प्रारम्भ किया गया और दो माहमें पूर्ण हो गया। इसका सम्बन्धित अंश इस प्रकार है—

"ग्रैष्मस्य मासस्य तु पूर्वपक्षे...प्रथमेऽह्नि सम्यक्।
मासद्वयेनादरवान्स भूत्वा धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयम् ॥३५॥
आयामतो हस्तशतं समग्रं विस्तारतः षष्टिरथापि चाष्टौ।
उत्सेधतोऽन्यत्पुरुषाणि सप्त...हस्तशतद्वयस्य ॥३६॥
बबन्ध यत्नान्महतो नृदेवानभ्यर्च्य सम्यग्घटितोपलेन।
अजातिदुष्टं प्रथितं तटाकं सुदर्शनं शाश्वत्कल्पकालम् ॥३७॥"

महाक्षत्रप रुद्रदामन्‌के एक अन्य शिलालेखका उल्लेख मि. बर्गेसने अपनी रिपोर्टमें[1] इस प्रकार किया है—

....वत... ....ण...राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे...चैत्र-शुक्लपक्षस्य दिवसे पंचमे...गिरिनगरे देवासुरनागयक्षराक्षसेन्द्रि ... ... प्रक (?) मित्र प.........केवलिज्ञानप्राप्तानां जितजरामरणानां.... ।............।

इस लेखके विषयमें मि. बर्गेसने[2] लिखा है—"इस लेखमें एक शब्द विशेष उल्लेखनीय है—केवलिज्ञानसम्प्राप्तानां अर्थात् जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो कि विशेषतः जैन ग्रन्थोंमें प्रयुक्त होता है। अतः यह प्रमाणित होता है कि यह शिलालेख जैनोंका है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि गिरनारकी इन गुफाओंका निर्माण साहो वंशके राजाओंने सम्भवतः ईसाकी दूसरी शताब्दीके अन्तमें जैनोंके लिए कराया था। सम्भव है, गुफाएँ इससे भी प्राचीन हों।

जैन मन्दिरोंके मुख्य द्वारपर गिरनार गढ़के शासक रामण्डलीकका बहुत बड़ा पद्यमय शिलालेख है। इसमें रामण्डलीक द्वारा भगवान् नेमिनाथका स्वर्णखचित मन्दिर बनानेका उल्लेख है। वह इस प्रकार है—

---

१. Dr. Burgess, the Report on the antiquities of Kathiawad and Kachha— p. 141.

२. The most interesting point about it, the word 'Kevalijnana Sampraptanam' of those, who have obtained the knowledge of Kevalins, which occurs most frequently Jain Scriptures, and denotes a person, who is possessed of the Kevalijnana or true knowledge, which produces final emancipation. If would, therefore, seem that the inscription is of jainas, from this it would appear that these caves were probably excavated for the jainas by the Sahi Kings of Saurastra about the end of the second Century of the Christian era. They may however, be much older. –ibid, p. 143.

"वंशेऽस्मिन् यदुनामकावरपतेरभ्युग्रशौर्यावले-
रासीद्राजकुलं गुणौघविपुलं श्रीयादवख्यातिमत् ।
अत्राभून्नृपमण्डलीनतपदः श्रीमण्डलीकः क्रमात्
प्रासादं गुरुहेमपत्रततिभिर्योचीकरन्नेमिनः ॥"

इस शिलालेखमें चूड़ासमास वंशकी वंशावली भी दी गयी है, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह वंशावली प्रथम नवघनसे प्रारम्भ होती है। नवघनका पुत्र महीपालदेव (उसने प्रभासपट्टनमें सोमनाथका मन्दिर बनवाया) उसका पुत्र खंगार प्रथम, उसका पुत्र जयसिंह देव, उसका पुत्र मोकल सिंह, फिर मेलगदेव, महीपालदेव और माण्डलिक द्वितीय हुए।

प्रथम नवघनने दसवीं शताब्दीमें अहीरोंकी सहायतासे यहाँका राज्य प्राप्त किया था। प्रथम माण्डलिकने बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें शासन किया था।

श्री नेमिनाथ मन्दिरके सहनमें एक शिलाफलकपर निम्नलिखित लेख अंकित है। यहाँ चरण-चिह्न भी बने हुए हैं—

"हर्षकीर्तिजी पादुका"

"संवत् १६९२ श्री मूलसंघे श्री हर्षकीर्ति श्री पद्मकीर्ति श्री भुवनकीर्ति ब्र. अमर सिभाणमनजी पं. वीर जैयन्त माइदासदयाला तेसां ९ नेमियात्रा सफलास्तु।"

इस शिलालेखसे यह सिद्ध होता है कि इन दिगम्बर भट्टारकोंने यहाँकी ९ यात्राएँ की थीं और इस अन्तिम यात्रामें हर्षकीर्तिजी भट्टारकके चरण-चिह्न विराजमान कराये।

गिरनारका सम्बन्ध नेमिनाथ तीर्थंकरके साथ रहा है। उनके दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाणके कारण ही यह पर्वत तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। ऐसे शिलालेख और ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें नेमिनाथके निर्वाणका उल्लेख मिलता है अथवा उन्हें गिरनार (रैवतक पर्वत) का देव कहा गया है। यहाँ केवल दो शिलालेखों या ताम्रपत्रोंका उल्लेख करना पर्याप्त होगा। एक शिलालेख कल्लूरगुड्डू (शिमोगा परगना) में सिद्धेश्वर मन्दिरकी पूर्व दिशामें पड़े हुए पाषाण-पर उत्कीर्ण है जो शक संवत् १०४३ (सन् ११२१ ई०) का है। उसका सम्बन्धित अंश इस प्रकार है—

"हरिवंशकेतुः नेमीश्वरतीर्थवर्ति सुत्तगिरे गंगकुलां-
वर भानु पुट्टिदं भा— । सुरतेजं विष्णुगुप्तनेम्ब नृपालम् ॥
आ-धराधिनाथं साम्राज्यपदवियं कैकोण्डहिच्छत्र-पुरदोलु सुखमिर्दु नेमितीर्थंकर-
परमदेव-निर्वाणकालदोळ् ऐन्द्रध्वजवेम्बपूजेयं माडे देवेन्द्रनोसेदु अनुपम दैवावतयं।
मनोनुरागदोळे विष्णुगुप्तंगित्तम्।
जिनपूजेयिन्दे मुक्तितय। ननर्घ्यमं पडेगुसेन्दोडुलिदुट्टु पिरिदे ॥

—जैन शिलालेख संग्रह भाग २, पृ. ४०८-९

अर्थ—जब नेमीश्वरका तीर्थ चल रहा था, उस समय राजा विष्णुगुप्तका जन्म हुआ। वह राजा अहिच्छत्रपुरमें राज्य कर रहा था। उसी समय नेमि तीर्थंकरका निर्वाण हुआ। उसने ऐन्द्रध्वज पूजा की। देवेन्द्रने उसे ऐरावत हाथी दिया।

विष्णुगुप्त गंग वंशका एक ऐतिहासिक व्यक्ति हुआ है। नेमिनाथ भगवान्का निर्वाण उसके शासन कालमें हुआ था। इससे नेमिनाथकी ऐतिहासिकता असन्दिग्ध हो जाती है।

इस विषयमें प्रभासपट्टनसे बेबीलोनियाके बादशाह नेबुचडनज्जरका ताम्रपट लेख सर्वाधिक प्राचीन है। डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकारने उसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

"रेवानगरके राज्यका स्वामी, सुजातिका देव नेवुचडनज्जर आया है। वह यदुराजके नगर (द्वारका) में आया है। उसने मन्दिर बनवाया। सूर्य....देव नेमि कि जो स्वर्णसमान रैवत पर्वतके देव हैं, (उनको) हमेशाके लिए अर्पण किया।[1]"

नेवुचडनज्जरका काल ११४० ई. पू. माना जाता है। अर्थात् आजसे ३००० वर्षसे भी पहले रैवतक पर्वतके स्वामी भगवान् नेमिनाथ माने जाते थे। उस पर्वतकी ख्याति उन्हीं भगवान् नेमिनाथके कारण थी। उस समय द्वारकामें यदुवंशियोंका राज्य था और वहाँपर भगवान् नेमिनाथकी अत्यधिक मान्यता थी। इसीलिए बेबीलोनियाके बादशाहने द्वारकामें नेमिनाथका मन्दिर बनवाया।

गिरनार क्षेत्रपर दिगम्बर समाजका अधिकार

ऊर्जयन्त (गिरनार, रैवतक) पर्वत दिगम्बर परम्परामें तीर्थराज माना गया है। सम्मेद-शिखरको तो अनादिनिधन तीर्थ माना गया है क्योंकि हुण्डावसर्पिणी कालके कुछ अपवादोंको छोड़कर भूत, भविष्य और वर्तमानके सभी तीर्थंकरोंका निर्वाण इसी पर्वतसे होता है। इनके अतिरिक्त जिन मुनियोंको यहाँसे मुक्ति लाभ हो चुका है, उनकी संख्या ही अनन्त है। इन कारणों-से सम्मेदशिखरको तीर्थाधिराजकी संज्ञा दी गयी है। किन्तु ऊर्जयन्तगिरिसे ७२ करोड़ ७०० मुनियोंकी मुक्ति और तीर्थंकर नेमिनाथके दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणक यहाँपर हुए हैं, सम्मेदशिखरको छोड़कर अन्य तीर्थंकरोंसे सम्बन्धित किसी स्थानसे इतने मुनियोंका निर्वाण नहीं हुआ। इस दृष्टिसे तीर्थोंमें ऊर्जयन्तगिरिका स्थान सम्मेदशिखरके बादमें आता है।

यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन कालमें तीर्थंकर मूर्तियाँ दिगम्बर ही बनती थीं। इसलिए सभी तीर्थंकर मूर्तियाँ दिगम्बर ही मिलती हैं, चाहे वे कायोत्सर्ग मुद्रामें हों अथवा पद्मासनमें, चाहे वे अष्टप्रातिहार्ययुक्त हों अथवा प्रातिहार्य रहित, चाहे वे यक्ष-यक्षिणी सहित हों अथवा एकाकी। जैनेतर साहित्यमें भी जैन तीर्थंकरों और जैन मुनियोंका जो वर्णन उपलब्ध होता है, उसमें उन्हें दिगम्बर निर्ग्रन्थ (निग्गंठ) श्रमण और ऊर्ध्वमन्था वातरशना ही बताया है। महावीरका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें निग्गंठ नातपुत्त और उनके मुनियोंका निग्गंठके रूपमें ही सर्वत्र पाया जाता है।

मथुरामें कुषाण कालकी उपलब्ध सभी प्रतिमाएँ दिगम्बर हैं। कुछ मूर्तियोंपर श्वेताम्बरीय संघ और गच्छोंके भी नाम अंकित हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी दिगम्बर मूर्तियोंकी ही मान्यता थी। मथुराके कंकाली टीलेसे प्राप्त प्रसिद्ध वोद्व स्तूप तथा कुछ आयागपट्टोंमें ऐसी भी कुछ मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें नग्न साधु हाथमें एक खण्ड वस्त्र लिये हुए हैं और उससे अपनी नग्नताको छिपा रखा है। ऐसी मूर्तियाँ उस ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत करती हैं, जब बारह वर्षके दुष्कालके समय अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त और बारह हजार मुनियोंको लेकर दक्षिणकी ओर चले गये। बारह वर्ष पश्चात् विशाखाचार्यके नेतृत्वमें मुनि-संघ उत्तर भारतमें लौटा। उन्होंने आकर देखा कि जो मुनि इधर रह गये हैं वे हाथमें डण्डा रखते हैं, घरोंसे आहार लाकर बसतिकामें ग्रहण करते हैं तथा जब वे आहारके लिए जाते हैं तो एक खण्ड वस्त्र कलाईपर लटका लेते हैं, जिससे नग्नता ढँक

---

१. टाइम्स ऑफ इण्डिया, १९ मार्च, १९३५
"जैन" भावनगर, भा. ३५ अंक १, पृ. २

जाये। विशाखाचार्यने उन मुनियोंको इस उन्मार्ग प्रवृत्तिका त्याग करनेकी प्रेरणा की। उनके समझानेसे अनेक मुनियोंने आपत्तिकालमें अपनाये इस उन्मार्गका त्याग कर दिया, किन्तु कुछ मुनि सुविधापरक अभ्यासका त्याग करनेके लिए सहमत नहीं हुए। भगवान् महावीरके निर्ग्रन्थ पन्थमें इस सुविधावादी प्रवृत्तिके कारण भेद हो गया। तीर्थंकरोंके निर्ग्रन्थ मार्गको छोड़कर जो नया पन्थ निकाला, वही श्वेताम्बर सम्प्रदाय कहलाया। अस्तु!

कलाईपर लटके हुए खण्ड वस्त्रवाली कुछ मूर्तियाँ मथुरामें मिली थीं। ये मूर्तियाँ अर्धफालक सम्प्रदायके साधुओंकी थीं। यह सम्प्रदाय अधिक दिन तक नहीं चल पाया। जैसे-जैसे सुविधावादी प्रवृत्ति बढ़ती गयी, वस्त्रका व्यामोह भी बढ़ता गया। फिर वस्त्र कलाईसे कटि तक पहुँचा। उसका आकार-प्रकार और संख्या सब कुछ बढ़ता ही गया। अर्धफालक सम्प्रदायकी मूर्तियाँ अधिक दिनों तक नहीं चलीं। तब केवल दिगम्बर मूर्तियाँ ही चलती रहीं। सम्भवतः ११-१२वीं शताब्दी तक सभी जैन मूर्तियाँ दिगम्बर ही बनीं।

गिरनारपर भी ११-१२वीं शताब्दीसे पूर्वकी कोई सराग सवस्त्र जैन प्रतिमा नहीं मिलती। इस क्षेत्रपर अत्यन्त प्राचीन कालसे ही दिगम्बर समाजका अधिकार चला आ रहा है। हमें यह माननेमें कोई आपत्ति नहीं कि इस क्षेत्रकी मान्यता श्वेताम्बर समाजमें भी रही है। इसलिए श्वेताम्बर श्रावकोंने भी यहाँ मन्दिर बनवाये। सम्राट् सम्प्रति, वस्तुपाल-तेजपाल आदि द्वारा निर्मित जैन मन्दिर अब तक विद्यमान हैं। किन्तु उनमें भी दिगम्बर मूर्तियाँ ही विराजमान की गयी थीं। बाद में उन्हें वस्त्राभरणोंसे युक्त बना दिया गया।

मुनि जिनविजयजीने 'जैन हितैषी' भाग १३ अंक ६ में लिखा है कि मथुराके कंकाली टीलेमें जो लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन प्रतिमाएँ मिली हैं, वे नग्न हैं और उनपर जो लेख हैं, वे श्वेताम्बर कल्पसूत्रकी स्थविरावलीके अनुसार हैं।

गिरनार क्षेत्रपर सभी प्रतिमाएँ नग्न दिगम्बर थीं, बादमें उनपर वस्त्र लांछन लगाया गया। इस सम्बन्धमें १७वीं शताब्दीके श्वेताम्बर विद्वान् पं. धर्मसागर उपाध्यायने 'प्रवचन परीक्षा' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि गिरनार और शत्रुंजयपर एक समय दोनों सम्प्रदायोंमें झगड़ा हुआ और उसमें शासन देवताकी कृपासे दिगम्बरोंकी पराजय हुई। जब इन दोनों तीर्थोंपर श्वेताम्बर सम्प्रदायका अधिकार सिद्ध हो गया, तब आगे किसी प्रकारका झगड़ा न हो सके, इसके लिए श्वेताम्बर संघने यह निश्चय किया कि अबसे जो नयी प्रतिमाएँ बनवायी जायें, उनके पाद मूलमें वस्त्रका चिह्न बना दिया जाये। दिगम्बरियोंको यह उचित नहीं लगा और उन्होंने अपनी प्रतिमाओंको स्पष्ट नग्न बनाना शुरू कर दिया। इस तरह हम देखते हैं कि सम्प्रति राजा आदिकी बनवायी हुई प्रतिमाओंपर वस्त्र लांछन नहीं है और आधुनिक प्रतिमाओंपर है। पूर्वकी प्रतिमाओंपर वस्त्र लांछन भी नहीं है और स्पष्ट नग्नत्व भी नहीं है।

इस विवरणसे यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त विवादके पहले दोनों प्रतिमाओंमें कोई भेद नहीं था। दोनों एक ही जिनालयमें अपनी-अपनी उपासना करते थे।

पं. धर्मसागर उपाध्यायने जिस विवादका उल्लेख किया है, उसका संकेत नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें भी प्राप्त होता है। उसमें लिखा है—

"पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी।
पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ॥३६॥
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतो भवेत्।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने ॥३७॥"

इसी घटनाके सम्बन्धमें कविवर वृन्दावनने भी लिखा है—

"संघ सहित श्री कुन्दकुन्दगुरु वन्दन हेत गये गिरनार।
वाद पर्यो तहं संशयमतिसों साखी वदी अम्बिकाकार।
'सत्यपंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर' कही सुरी तहं प्रकट पुकार,
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे विघन हरण मंगल करतार॥"

नन्दिसंघकी गुर्वावली और वृन्दावनके उल्लेखोंमें साधारण-सा अन्तर परिलक्षित होता है। गुर्वावलीमें सरस्वतीको मध्यस्थ बनाकर दिगम्बर पन्थको सत्य घोषित करनेका संकेत है और वृन्दावन अम्बिकाके मुखसे यह घोषणा कराते हैं। दूसरा भेद उनके नामोंमें है। गुर्वावलीमें पद्मनन्दीके साथ यह घटना घटित हुई है, जबकि वृन्दावनको कुन्दकुन्द अभिप्रेत हैं। यद्यपि कुन्दकुन्दका एक नाम पद्मनन्दी भी है। यद्यपि पद्मनन्दी नामके कई आचार्य और भट्टारक भी हो गये हैं। सरस्वतीगच्छके उल्लेखसे गुर्वावलीके पद्मनन्दी कुन्दकुन्दसे भिन्न प्रतीत होते हैं।

गिरनारपर दिगम्बर-श्वेताम्बरोंके एक प्राचीन संघर्षका विवरण 'सुकृत सागर' ग्रन्थमें मिलता है। उसमें लिखा है कि "एक बार सेठ पेथड़शाह गिरनारकी यात्राको गये। उससे पहले वहाँ दिगम्बरोंका एक संघ आया हुआ था। उस संघके संघपति दिल्लीके सेठ पूर्णचन्द्रजी अग्रवाल थे। ये शाह 'अलाउद्दीन शाखीन मान्य' थे। पूर्णचन्द्रजीने तीर्थकी वन्दना पहले करनेका आग्रह किया क्योंकि वे पहले आये थे। दूसरे वे इस तीर्थको दिगम्बरोंका बताते थे। उन्होंने कहा, "यदि यह तीर्थ श्वेताम्बरोंका है तो भगवान् नेमिनाथकी मूर्तिपर अंचलिका और कटिसूत्र प्रकट करो।' किन्तु श्वेताम्बर ऐसा नहीं कर सके। उन्होंने कहा, 'भगवान् आभरण सहन नहीं कर सकते।' अन्तमें तय हुआ कि इन्द्रमालकी बोली लगायी जाये। जो ऊँची बोली लगाकर इन्द्रमाल ले ले, वही यात्राका अधिकारी माना जाये। श्वेताम्बरोंने ५१,००० स्वर्ण मुहरोंकी बोली लगाकर इन्द्रमाल ले ली, दिगम्बरी इससे ऊँची बोली नहीं लगा सके। अतः श्वेताम्बरोंने माला ले ली। प्रथम यात्रा श्वेताम्बरोंने की, पश्चात् दिगम्बरोंने यात्रा की।"

इस घटनासे भी यह सिद्ध होता है कि गिरनार क्षेत्रपर दिगम्बरोंका अधिकार था, मूर्ति निराभरण होती थीं और भगवान् नेमिनाथकी मूलनायक मूर्ति भी निराभरण दिगम्बर थी। इन्द्रमालकी बोली बोली जाती थी और उसे दिगम्बर अथवा श्वेताम्बर कोई भी ले सकता था। इन्द्रमालकी ऊँची बोलीसे क्षेत्रका अधिकार सिद्ध नहीं होता, बोली लगानेवालेकी धार्मिकता और धनसम्पन्नता अवश्य सिद्ध होती है।

इस सिद्धक्षेत्रपर आकर दिगम्बर मुनि ध्यान, अध्ययन और तपस्या किया करते थे। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यहाँ भद्रबाहु पधारे थे, धरसेनाचार्य यहाँकी चन्द्रगुफामें ध्यान किया करते थे। उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्तको सिद्धान्तका ज्ञान यहीं दिया था। यहाँ कुन्दकुन्द आदि अनेक दिगम्बर मुनियोंने यात्रा की थी।

ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालसे यहाँ दिगम्बर जैन व्यक्तिशः और यात्रा संघके रूपमें यात्राके लिए आते रहे हैं। कविवर रइधूने 'सम्मइजिनचरिउ' नामक अपभ्रंश काव्यकी अन्तिम प्रशस्तिमें हिसार नगरवासी सहजपालके पुत्र सहदेव द्वारा जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा कराने और उस अवसरपर प्रचुर दान देनेका उल्लेख करते हुए लिखा है कि सहजपालके पुत्रोंने गिरनारकी यात्राके लिए चतुर्विध संघ निकाला और उसका कुल आर्थिक भार वहन किया।

इसी कविके एक अन्य ग्रन्थ 'जसहरचरिउ' में योगिनीपुर (दिल्ली) निवासी अग्रवाल वंशी साहू कमलसिंह और उनके पुत्र साहू हेमराज और उनके वंशकी प्रशंसा करते हुए बताया है कि उक्त साहू परिवारने गिरनारकी तीर्थयात्राके लिए संघ चलाया था।

इस कविके 'यशोधर चरित' की प्रशस्तिसे भी ज्ञात होता है कि लाहण या लाहड़पुरके निवासी साहू कमलसिंहने संघ निकालकर गिरनारकी यात्रा की थी।

इस प्रकारके उल्लेख बहुसंख्यामें प्राप्त होते हैं।

'उपदेश तरंगिणी' नामक ग्रन्थमें वस्तुपाल मन्त्री द्वारा गिरनारकी यात्राके लिए निकाले गये संघका वर्णन मिलता है। यह संघ संवत् १२८५ में निकला था। इस संघमें २४ दन्तमय देवालय, १२० काष्ठ देवालय, ४५०० गाड़ियाँ, १८०० डोलियाँ, ७०० सुखासन, ५०० पालकियाँ, ७०० आचार्य, २००० श्वेताम्बर साधु, ११०० दिगम्बरी, १९०० श्रीकरी, ४००० घोड़े, २००० ऊँट और ७ लाख मनुष्य थे।

इस विवरणसे निष्कर्ष निकलता है कि उस समय तक दिगम्बर और श्वेताम्बरकी मूर्तियोंमें अन्तर नहीं था। मूर्तियाँ दिगम्बर ही होती थीं, दोनों ही उन्हें पूजते थे। यही कारण था कि इस संघमें श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्मिलित थे। इससे यह भी प्रतीत होता है कि उस समय तक मन्दिरों और मूर्तियोंको लेकर दोनों समाजोंमें इतनी अधिक कटुता नहीं थी, जितनी अब है।

क्षेत्र-दर्शन

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र गिरनार पर्वतके ऊपर पाँच टोंकें हैं तथा पहली टोंकके पाससे सहस्राम्रवनको मार्ग जाता है। सहस्राम्रवनमें भगवान् नेमिनाथने दीक्षा ली थी, यहींपर मनुष्यों और देवोंने भगवान्का दीक्षा कल्याणक मनाया था। भगवान्का केवलज्ञान कल्याणक भी यहीं मनाया गया था। यहाँ भगवान् नेमिनाथके चरण-चिह्न बने हुए हैं। पाँचों टोंकों और सहस्राम्रवनके लिए पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियोंकी कुल संख्या ९९९९ है। पहली टोंक तक ४४००, पहलीसे दूसरी टोंक तक ९००, दूसरीसे तीसरी टोंक तक ७००, तीसरीसे पाँचवीं टोंक तक २५०० तथा पहली टोंकसे सहस्राम्रवन तक १४९९ सीढ़ियाँ हैं। चौथी टोंकके लिए सीढ़ियोंकी व्यवस्था नहीं है। अनगढ़ पत्थरोंपर चढ़कर जाना पड़ता है। यहाँ चढ़ना स्त्री-बालक और वृद्धोंके लिए अत्यन्त कठिन और जोखम-भरा है। अतः प्रायः लोग इस टोंकपर नहीं चढ़ते, न यहाँ डोलीवाले ही जाते हैं। सहस्राम्रवनको जानेके लिए जो सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, उन्हींसे वापस लौटना पड़ता है क्योंकि सहस्राम्रवनसे धर्मशालाके लिए कच्चा मार्ग जाता है। वह बहुत असुविधाजनक है। सीढ़ियोंका मार्ग ही सुविधाजनक है।

यहाँ अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा डोलीका भाड़ा बहुत अधिक है। भाड़ा भारके अनुसार है। सूचनार्थ तालिका निम्न प्रकार है—

५५ किलो तक	९५-००	सहसावनके	४०-०० = कुल १३५-००
५५ किलोसे ८० किलो तक	१५५-००,	,,	५०-०० = कुल २०५-००
८० किलोसे १०० किलो तक	२५०-००,	,,	७०-०० = कुल ३२०-००
बच्चोंका चार्ज			
१ माह से ५ वर्ष तक	१८-००,	सहसावन	४-०० = कुल २२-००

पहाड़की यात्राको जानेवाले यात्रियोंको यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इस पर्वतपर दिगम्बर, श्वेताम्बर और हिन्दू सभी लोग जाते हैं। सदासे इस पवित्र क्षेत्रपर दिगम्बर समाजका अधिकार रहा है। दिगम्बर समाजके बहुमान्य तीर्थक्षेत्रोंपर अधिकार करनेके अभियानमें श्वेताम्बर समाजने इस क्षेत्रपर भी अपने स्वामित्वका दावा किया। कई मन्दिरोंपर अधिकार भी कर लिया। दोनों समाजोंमें मुकदमे चले। दोनों समाजोंके अनैक्यका लाभ उठाकर हिन्दू समाजने भी दावा करना प्रारम्भ कर दिया। व्यवहारतः श्वेताम्बर लोग प्रथम टोंक तक ही जाते हैं। रा-खंगारके दुर्गके द्वारके निकट उनके ९ मन्दिर हैं, वहीं खाने-पीनेकी व्यवस्था है। वे लोग वहाँके आदिनाथ मन्दिरमें ही पूजा-पाठ करते हैं। वे लोग अन्य टोंकोंपर बहुत कम संख्यामें जाते हैं। हाँ, हिन्दू समाजके साधुओंने रास्तेमें बने हुए मण्डपों, भवनों और टोंकोंपर अधिकार कर रखा है। उन्होंने गोमुखीपर और अम्बादेवोके मन्दिरपर तो अपना पूर्ण अधिकार जमा ही लिया है, नेमिनाथ टोंक (पाँचवीं टोंक) पर भी हिन्दू साधु बैठे रहते हैं। वहाँ यात्री जो कुछ चढ़ाते हैं, उसे तत्काल समेट लेते हैं। वे जैन बन्धुओंके साथ कभी-कभी बड़ा अभद्र व्यवहार करते हैं। कई बार तो उन्होंने जैन मुनियों और आचार्योंके साथ भी अपमानजनक व्यवहार किया है। नेमिनाथ टोंक-के सामने प्राचीन स्मारकोंके संरक्षणसे सम्बन्धित बोर्ड लगा हुआ है। किन्तु पुरातत्त्व-विभाग और पुलिस दोनों ही टोंकपर साधुओंके अवैध अधिकारके प्रति उदासीन हैं। अन्य टोंकोंपर भी इन साधुओंने इसी प्रकार अधिकार कर रखा है। किन्तु यह कितना रोचक तथ्य है कि चौथी टोंकपर ये साधु नहीं बैठते क्योंकि वहाँ सीढ़ियाँ नहीं हैं, अतः वहाँ प्रायः यात्री नहीं जाते।

उपर्युक्त सूचनाएँ यात्रियोंकी जानकारीके लिए दी गयी हैं। अब यहाँ क्षेत्र-दर्शन दिया जा रहा है—

धर्मशालासे कुछ दूर चलनेपर पहाड़ आ जाता है और सीढ़ियोंका सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है।

प्रथम टोंक—लगभग दो मीलकी चढ़ाई चढ़नेपर दिगम्बर मन्दिर और धर्मशालासे कुछ पहले राजीमतीकी गुफा मिलती है। इसे राजुल गुफा कहते हैं। यह गुफा बहुत नीची है। इसमें बैठकर जाना पड़ता है तथा उसके अन्दर भी खड़े नहीं हो सकते। श्वेताम्बर मान्यता है कि साध्वी राजुलमती इस गुफामें तपस्या करती थी। एक दिन वह इस गुफामें एकान्त जानकर अपने गीले वस्त्र सुखा रही थी, तभी उसकी दृष्टि एक कोनेमें बैठे हुए रथनेमिके ऊपर गयी जो अत्यन्त कामुक दृष्टिसे राजुलकी ओर निहार रहा था। रथनेमि नेमिनाथका लघुभ्राता था और वह मुनि-दीक्षा लेकर साधु बन गया था। किन्तु एकान्तमें राजुलके यौवन और सौन्दर्यको देखकर वह काम-विह्वल हो उठा और उसने राजुलसे काम-याचना की। राजुल अविचल निष्ठासे अपने कठोर व्रतोंके पालनमें दत्तचित्त थी। किसी पुरुषकी उपस्थितिको जानकर उसने अपनी शाटिका व्यवस्थित की और मुनि रथनेमिके स्थितिकरणके लिए उपदेश दिया। रथनेमि अपने कृत्यपर अत्यन्त लज्जित हुआ और प्रायश्चित्त लेकर अपनी साधनामें पुनः दत्तचित्त हो गया।

इस गुफामें बायीं ओर दीवारमें राजुलकी शृंगारविभूषित खड़ी मूर्ति है। इसके निकट रथनेमिकी मूर्ति बनी हुई है। यह उपर्युक्त कथानकके अनुरूप है। ये मूर्तियाँ आधुनिक हैं और श्वेताम्बरोंने यहाँ रख दी हैं।

इस गुफासे आगे बढ़नेपर दिगम्बर जैन धर्मशाला है तथा इसके कुछ आगे एक अहातेमें ३ मन्दिर और एक छतरी है। एक मन्दरियामें सलेटी वर्णकी ४ फुट ऊँची खड्गासन मूर्ति है। यह मूर्ति बाहुबलि स्वामीकी है। इसके नाक, ओठ काफी घिसे हुए हैं।

इसके पार्श्वमें एक छतरीमें कुन्दकुन्दाचार्यके १ फुट २ इंच लम्बे चरण श्वेत पाषाणके बने हुए हैं। सामने दीवारमें पंच परमेष्ठीकी ५ मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इस छतरीके पार्श्वमें एक मन्दिर है। वेदीपर कृष्ण पाषाणकी संवत् १७४५ में प्रतिष्ठित १ फुट ७ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों पार्श्वोंमें इसी कालकी १ फुट ११ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

इस अहातेके प्रांगणमें बड़ा मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिरमें गर्भगृह और सभामण्डप बने हुए हैं। वेदीपर मध्यमें कृष्णवर्ण पद्मासन १ फीट ४ इंच अवगाहनाकी संवत् १९२४ में प्रतिष्ठित नेमिनाथ भगवान्की प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर १ फुट ५ इंच और १ फुट ८ इंच ऊँची दो पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ तथा इसी आकारकी दो शान्तिनाथ प्रतिमाएँ हैं। दायीं ओर ८ इंच ऊँची कृष्ण वर्णकी पार्श्वनाथ और १ फुट ८ इंच ऊँची संवत् १७४९ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण नेमिनाथकी प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त १ फुट ऊँची संवत् १६६५ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ-की प्रतिमा है।

दिगम्बर मन्दिरसे थोड़ा आगे बढ़नेपर गोमुखी गंगा है। एक गोमुखसे जलधारा निकलती रहती है, जिसके जलसे कई कुण्ड बन गये हैं। गोमुखके पृष्ठ भागमें दीवारमें एक वेदीपर तीर्थंकरोंके चौबीस चरण-चिह्न बने हुए हैं। यह प्रथम टोंक कहलाती है। श्वेताम्बर इसे ज्ञानशिला कहते हैं। इस पवित्र कल्याणक स्थानपर हिन्दुओंने अधिकार कर रखा है। चरणों तक पहुँचनेके लिए एक कमरेमें होकर जाना पड़ता है। भक्त हिन्दू लोग उन कुण्डोंमें पैसे चढ़ाते हैं। इन कुण्डोंको देखनेपर उनके तलमें अनेक सिक्के पड़े हुए दिखाई पड़ते हैं।

इस गोमुखी गंगाके निकट ही सहस्राम्रवनको मार्ग जाता है। किन्तु वहाँ यात्राकी समाप्ति-पर ही जाना चाहिए।

यहाँसे कुछ आगे चलनेपर रा खंगारके दुर्गका द्वार मिलता है। द्वारके बायीं ओर नेमिनाथ-का विशाल और दर्शनीय मन्दिर है। यह मूलतः दिगम्बर आम्नायका था। लगभग १२५ वर्ष पूर्व दोनों सम्प्रदायोंने इस मन्दिरकी संयुक्त व्यवस्था कर रखी थी। इस मन्दिरकी व्यवस्थामें एक समय श्वेताम्बर समाजका बहुमत था। उन्होंने इसका लाभ उठाकर इस मन्दिरपर अधिकार कर लिया और नेमिनाथ भगवान्की दिगम्बर वीतराग प्रतिमाको आभरणादिसे मण्डित कर दिया। अन्य भी अनेक परिवर्तन किये।

इस मन्दिरके निकट वस्तुपाल-तेजपाल, सम्राट् कुमारपाल, मन्त्री सज्जन आदिके बनवाये हुए ९ कलापूर्ण श्वेताम्बर मन्दिर हैं।

द्वितीय टोंक—९०० सीढ़ियाँ चढ़नेपर द्वितीय टोंक मिलती है। बायीं ओर एक चबूतरे-पर छतरीके नीचे अनिरुद्धकुमारके चरण हैं। अनिरुद्धकुमारने यहीं तप करके निर्वाण प्राप्त किया था। इसके निकट ही अम्बा देवीका ऊँची चौकीपर विशाल मन्दिर है। यह वही मन्दिर है जिसका उल्लेख इस लेखमें ऊपर आ चुका है। यह मूलतः दिगम्बर मन्दिर था। किन्तु आजकल यह हिन्दुओंके अधिकारमें है।

तृतीय टोंक—आगे बढ़नेपर रास्तेके बायीं ओर शम्बुकुमारके चरण बने हुए हैं। यहींसे शम्बुकुमारको निर्वाण प्राप्त हुआ था। यहाँ भी हिन्दुओंने अपने मन्दिर बना लिये है। यह तीसरी टोंक कहलाती है।

चौथी टोंक—तीसरी टोंकसे सीढ़ियाँ नीचेकी ओर जाती हैं। लगभग १५०० सीढ़ियाँ उतरने और चढ़नेपर चौथी टोंकका पर्वत मिलता है। इस पर्वतपर चढ़नेके लिए सीढ़ियोंकी

व्यवस्था नहीं है। खड़ा पहाड़ है। मार्ग-दर्शनके लिए लाल रंगसे चट्टानोंपर तीरके संकेत चिह्न बना रखे हैं। चढ़ाई कठिन है। किन्तु युवक साहस और परिश्रमसे थोड़ा कष्ट सहकर चढ़ सकते हैं। पर्वतकी चोटीपर एक शिलामें चरण बने हुए हैं। ये चरण प्रद्युम्नकुमारके स्मारक हैं। यही वह स्थान है, जहाँसे श्रीकृष्ण-रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नकुमारने कर्मोंका नाश करके मोक्ष प्राप्त किया था। चरणोंके निकट ही एक शिलामें एक फुट ऊँची मूर्ति बनी हुई है।

पाँचवीं टोंक—वहाँसे उतरकर फिर सीढ़ियाँ कुछ दूरपर ऊपरको पाँचवीं टोंकके लिए जाती हैं। यहाँ मुख्य छतरीके नीचे भगवान् नेमिनाथके चरण बने हुए हैं। हिन्दू लोग इन्हें दत्तात्रेयके चरण कहते हैं। चरणोंके पीछे भगवान् नेमिनाथकी भव्य दिगम्बर प्रतिमा विराजमान है। यहाँ हिन्दुओंने बलात् अधिकार कर रखा है। यद्यपि, यह तथा अन्य टोंकें और नेमिनाथका मन्दिर सरकारके पुरातत्त्व विभागके अधिकारमें है।

यहाँसे उसी मार्गसे वापस लौटते हैं, जिस मार्गसे गये थे। प्रथम टोंकके पास सहस्राम्रवनके लिए सीढ़ियाँ जाती हैं। यहाँ इस दीक्षा वनमें एक छतरीके नीचे चरण बने हुए हैं। यहाँसे एक कच्चा मार्ग धर्मशालाके लिए जाता है, किन्तु यह बहुत कष्टकर है। अतः सीढ़ियों द्वारा ही लौटकर मुख्य मार्गसे जाना चाहिए।

लौटते हुऐ मार्गमें बायीं ओर एक शिलामें १-१ फुट ऊँची दो मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बायीं ओरकी मूर्ति पद्मासन है। यह तीर्थंकर मूर्ति है। दायीं ओर गोमेद यक्ष और अम्बिकाकी मूर्ति हैं तथा उनके शीर्षभागपर भगवान् नेमिनाथकी मूर्ति बनी हुई है।

तलहटीके मन्दिर

दिगम्बर जैन धर्मशालामें एक जिनालय बना हुआ है। मन्दिरके सामने एक समुन्नत धवल मानस्तम्भ बना हुआ है। मन्दिरकी मुख्य वेदीके ऊपर भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्ण भव्य प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें श्वेत पाषाण कमलपर विराजमान है। मूर्तिकी अवगाहना पीठासन सहित ४ फुटकी है। इसका प्रतिष्ठा काल विक्रम संवत् २०२९ वैशाख शुक्ला ८ है। पीठासनपर शंख लांछन बना हुआ है।

भगवान्के सिरके पीछे ऊँची वेदीपर भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी कृष्णवर्णवाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह संवत् १५४८ में जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित हुई थी। यही मूलनायक प्रतिमा कहलाती है। इसीके कारण यह मन्दिर भी मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर कहलाता है।

शेष वेदियोंका (बायींसे दायीं ओर) संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

वेदी नं. २—भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा १ फुट ७ इंच अवगाहनाकी, संवत् २००२ फागुन शुक्ला २ की प्रतिष्ठित है। बायीं ओर गुलाबी वर्णकी, संवत् २००२ में प्रतिष्ठित, भगवान् महावीरकी १ फुट ऊँची प्रतिमा है तथा दायीं ओर श्वेत वर्ण की, संवत् २००२ में प्रतिष्ठित, ११ इंच ऊँची, नेमिनाथ प्रतिमा है।

वेदी नं. ३—भगवान् आदिनाथकी संवत् १९८७ में प्रतिष्ठित पद्मासन धातु प्रतिमा है। इसकी बायीं ओर भगवान् महावीर की, संवत् १९८९ में प्रतिष्ठित, पद्मासन धातु प्रतिमा तथा दायीं ओर नेमिनाथकी, संवत् १९२६ में प्रतिष्ठित, पद्मासन धातु प्रतिमा है। इन तीनोंकी अवगाहना क्रमशः ८, ५ और ५ इंच है।

वेदी नं. ४—भगवान् पुष्पदन्तकी पद्मासन, संवत् १९२६ में प्रतिष्ठित और ९ इंच उन्नत धातु प्रतिमा विराजमान है। इसकी बायीं और दायीं ओर ४॥ और ७ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी पद्मासन धातु प्रतिमाएँ हैं।

वेदी नं. ५—शान्तिनाथ भगवान् संवत् १९८४ में प्रतिष्ठित पद्मासन मुद्रामें आसीन हैं। आकार १० इंच है। बायीं ओर धातुकी सिद्ध प्रतिमा है तथा दायीं ओर धातुका १ फुट ऊँचा चैत्य है।

वेदी नं. ६—१० इंच अवगाहनावाली संवत् १९९१ में प्रतिष्ठित नेमिनाथकी धातु प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। बायीं ओर नेमिनाथ और प्रद्युम्नकुमारकी, संवत् २०२१ में प्रतिष्ठित, १ फुट १ इंच ऊँची धातु मूर्तियां हैं। दायीं ओर शम्बुकुमार और अनिरुद्धकुमारकी धातुमूर्तियां हैं। ये तीनों ही खड्गासन हैं।

वेदी नं. ७—संवत् १९९० में प्रतिष्ठित कृष्ण वर्ण भगवान् नेमिनाथकी १ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर नेमिनाथकी संवत् १९१७ में प्रतिष्ठित ९ इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है और दायीं ओर संवत् १९२६ में प्रतिष्ठित ११ इंच अवगाहनावाली भगवान् अजितनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। नेमिनाथ प्रतिमाके आगे एक चौकोर पाषाण पट्टपर २४ चरण बने हुए हैं। एक अन्य शिलापट्टपर संवत् १९९१ में प्रतिष्ठित भगवान् नेमिनाथके चरण हैं।

वेदी नं. ८—भगवान् नेमिनाथकी संवत् १९४७ में प्रतिष्ठित श्यामवर्णवाली और २ फुट १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है।

वेदी नं. ९—गन्धकुटीमें भगवान् पार्श्वनाथकी ९॥ इंच ऊँची श्वेतवर्णवाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह सिंहासनमें आसीन है। इनके आगे पार्श्वनाथकी ५ इंच ऊँची एक धातु प्रतिमा विराजमान है। अन्य दो सिंहासनोंमें २ इंच और २॥ इंच ऊँची धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

धर्मशालाएँ

गिरनार क्षेत्रपर तलहटीमें एक विशाल धर्मशाला बनी हुई है। इसमें कुल ८४ कमरे हैं। यात्रियोंके लिए यहाँ बिजली, नल, बर्तन और बिस्तरकी सुविधा प्राप्त है।

पहाड़के ऊपर प्रथम टोंकपर भी एक धर्मशाला बनी हुई है। इसमें कुल ६ कमरे हैं।

इसी प्रकार जूनागढ़में भी ऊपर कोटके निकट क्षेत्रकी एक धर्मशाला बनी हुई है जिसमें २९ कमरे हैं। इसमें भी यात्रियोंको सभी प्रकारकी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

कार्यालय

क्षेत्रका कार्यालय जूनागढ़के जगमाल चौकमें 'श्री बण्डीलाल दिगम्बर जैन कारखाना' के नामसे स्थित है। इसके बगलमें श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री बण्डीलाल दिगम्बर जैन कारखाना,
श्री गिरनार (जूनागढ़) गुजरात

सोनगढ़

अवस्थिति और मार्ग

सोनगढ़ गुजरात प्रान्तके भावनगर जिलेमें अवस्थित है। अहमदाबादसे वीरमगाँव, सुरेन्द्रनगर और वहाँसे भावनगर जानेवाली ट्रेनसे धौला और सीहौर जंक्शनके मध्यमें सोनगढ़ स्टेशन है। यह स्टेशन धौला जंक्शन से २१ कि. मी. है। धौला और सोनगढ़के मध्यमें दो छोटे स्टेशन हैं—सनोसरा और वजूड। सोनगढ़ स्टेशनसे सोनगढ़ गाँव एक मील है। स्टेशनसे ताँगे मिलते हैं। स्वामीजीका नाम लेनेसे जैनधर्मशालामें पहुँचा देते हैं। अहमदाबादसे वोटाद और वोटादसे धौला जंक्शन पहुँचकर भी सोनगढ़ जा सकते हैं। जो लोग गिरनारकी यात्रा करके सोनगढ़ जाना चाहते हैं, उन्हें जूनागढ़, जैतलसर, ढसा होकर धौला उतरना चाहिए और धौलासे भावनगर जानेवाली ट्रेनसे सोनगढ़ उतरना चाहिए। जो लोग सोनगढ़से पालीताणा जाना चाहें, उन्हें सोनगढ़से बस द्वारा जाना चाहिए। सोनगढ़से पालीताणा केवल २२ कि. मी. है। सोनगढ़से भावनगर २८ कि. मी. है।

रोडसे अहमदाबादसे भावनगर जाकर वहाँसे सोनगढ़ जा सकते हैं। अथवा अहमदाबाद-भावनगर रोडपर सीहौर (भावनगरसे १९ कि. मी. पहले) से सोनगढ़को पक्की सड़क जाती है।

तीर्थक्षेत्र

यद्यपि सोनगढ़ कोई तीर्थक्षेत्र नहीं है, किन्तु आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामीके कारण यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान और तीर्थक्षेत्र ही बन गया है। स्वामीजीके दर्शन करने, उनके आध्यात्मिक प्रवचनामृतका पान करने एवं उनके आध्यात्मिक सत्संगमें रहनेके लिए यहाँ बहुसंख्यामें भक्तजनोंका आगमन होता रहता है।

जन्मतः कानजी स्वामी स्थानकवासी जैन थे। फिर वे २३ वर्षकी आयुमें स्थानकवासी साधु और फिर आचार्य बने। अपनी विद्वत्ता और विशिष्ट व्यक्तित्वके कारण सौराष्ट्रके स्थानकवासी साधुओंमें उनका स्थान और मान्यता सर्वोपरि थी। किन्तु अपने मौलिक चिन्तन और तात्त्विक प्रवचनोंके कारण अपने सम्प्रदायमें ही उनके अनेक विरोधी हो गये। स्थानकवासी सम्प्रदायके पत्रोंमें उनकी कड़ी आलोचना होती रहती थी। एक दिन उन्हें 'समयसार' ग्रन्थराज कहींसे मिल गया। उन्होंने इसका गहन अध्ययन किया, गहन मनन और चिन्तन किया और वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि धर्म वस्तुतः यही है, आत्मश्रद्धा एवं आत्मानुभवके बिना समस्त चारित्र और बाह्य परिवेश निष्फल है। उस समय वे विहार करते हुए सोनगढ़ चले आये। यहाँ जैनका कोई गृह नहीं था। इस एकान्त स्थानमें चैत्र सुदी १३ सं. १९९१ को इन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदायकी मान्यताका त्याग करके मुखपट्टिका उतार दी और दिगम्बर धर्मके प्रति अपनी आस्थाकी घोषणा की। इससे स्थानकवासी सम्प्रदायमें एक भयानक तूफान उठ खड़ा हुआ। स्थानकवासी पत्रोंमें उनकी कड़ी आलोचना होने लगी। कुछ समय पश्चात् श्री रामजी भाई राजकोटसे यहाँ आ गये। धीरे-धीरे विरोधका वातावरण शान्त होता गया और इनके भक्त यहाँ आने प्रारम्भ हो गये। पहले वे लोग आये जो साधु अवस्थामें इनके भक्त थे। वे साधु दशामें भी इनको अपना गुरु मानते थे और अब इस दशामें भी अपना गुरु मानते थे। गुरुने पहले जिस मार्गको सत्य बताया था, उसको सत्य मानकर उसका पालन करना है क्योंकि गुरुका वचन तथ्य होता

है। मार्ग-दर्शन तो गुरु ही कराते हैं, उन्होंने जो मार्ग दिखाया, गुरु वचनोंपर विश्वास करके उस मार्गको ही सत्य स्वीकार करना है।

इस प्रकार गुरु-भक्तिसे प्रेरित होकर धीरे-धीरे सौराष्ट्रके उनके सम्पूर्ण भक्त अनुयायी सोनगढ़में आने लगे। कुछ ही समयमें जंगलमें मंगल हो गया। उस अज्ञात, एकान्तमें पड़े हुए गाँवमें जीवन आ गया। भक्तोंने वहाँ लाखों रुपये व्यय करके धर्मायतनोंका निर्माण कराया। वहाँ दिगम्बर जैन मन्दिर, समवसरण मन्दिर, मानस्तम्भ, स्वाध्यायशाला, अतिथिगृह, प्रवचन मण्डप, श्राविकाश्रम, परमागम मन्दिर बन गये। प्रेस लग गया, पत्रों और पुस्तकोंका प्रकाशन होने लगा। सम्पन्न भक्तोंने वहाँ अपने ठहरनेके लिए सुन्दर भवन बनवा लिये। अनेक बालिकाओंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। अनेक धर्मरसिक गृहविरत होकर स्थायी रूपसे वहीं रहने लगे।

इस सम्पूर्ण बाह्य परिवेशके केन्द्रबिन्दु श्री कानजी स्वामी हैं। इस कायामें परिस्पन्दन करनेवाली शक्ति श्री कानजी स्वामी हैं। उनके प्रभावक व्यक्तित्व, समर्थ वाणी, सुनियोजित सुगठित प्रचारने सम्पूर्ण भारतकी सम्पूर्ण दिगम्बर समाजके सहस्रों व्यक्तियोंको उनका अनुयायी और समर्थक बना दिया है। सहस्रों व्यक्तियोंकी सहानुभूति उनके साथ है। उनके उपदेशोंसे अनेक स्थानोंपर दिगम्बर जैन मन्दिर बन गये हैं। जिस सौराष्ट्रमें दिगम्बर जैनोंकी संख्या नाममात्रकी थी, वहाँ आज हजारों दिगम्बर जैन दिखाई देते हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस सबके पीछे केवल स्वामीजीका व्यक्तित्व ही काम नहीं कर रहा है बल्कि उनकी अप्रतिम प्रतिभा, सूझबूझ और संगठन शक्ति भी काम कर रही है। इस सबके अतिरिक्त धनकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

स्वामीजीका व्यक्तित्व अत्यन्त विवादास्पद है। वे जब स्थानकवासी सम्प्रदायमें थे, तब भी विवादास्पद रहा था और जबसे दिगम्बर सम्प्रदायमें आये हैं, तब भी उनको लेकर विवाद उठ खड़े हुए हैं। विवादका मूल मुद्दा यह है—क्या व्यवहारनिरपेक्ष एकान्त निश्चय जैनधर्मके निश्चय-व्यवहार समन्वयपरक मोक्षमार्गके अनुकूल हो सकता है? स्थिति पालक और विरोधी पक्षकी एक मुख्य आपत्ति यह भी है कि कानजी स्वामी और उनके पक्षधर समस्त दिगम्बर मुनियोंकी अवहेलना करते हैं, उन्हें द्रव्यलिंगी कहते हैं। बल्कि निर्ग्रन्थ मुनियोंके मुकाबले सग्रन्थ श्रावक कानजी स्वामीको महान् सद्गुरुदेवके रूपमें मान्यता देते हैं। ऐसी बातोंको लेकर ही विरोधी पक्ष यह प्रचारित करनेमें लगा हुआ है कि कानजी स्वामी एक पृथक् सम्प्रदायकी योजनामें लगे हुए है।

निस्सन्देह कानजी स्वामी सदासे विवादास्पद व्यक्तित्वके व्यक्ति हैं, किन्तु उन्होंने अध्यात्म-की जो रस-गंगा बहायी है, उसने दिगम्बर समाजकी वर्तमान विचारधारामें समर्थ स्पन्दन उत्पन्न कर दिया है। समाजमें एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है जिसे स्वाध्याय या शास्त्रसभामें प्रथमा-नुयोगके 'राजा-रानीके किस्सों' के स्थानपर द्रव्यानुयोगके शास्त्रोंकी चर्चामें अधिक रस आता है। ऐसे अध्यात्म रसिक व्यक्तियोंका विशाल समूह सोनगढ़ जाता रहता है और कानजी स्वामीके मुखसे अध्यात्मका धारावाही प्रवचन सुननेमें अपने आपको धन्य मानता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो व्यक्ति सोनगढ़ जाता है, वह कानजी स्वामीसे और वहाँके वातावरणसे प्रभावित होकर लौटता है। कानजी स्वामी और उनके विद्वान् प्रचारकोंकी प्रचार-शैली उच्च स्तरकी है। वे अपनी बात दृढ़ताके साथ कहते हैं, दूसरोंकी निन्दा या आलोचना नहीं करते। वे विरोधकी भी चर्चा नहीं करते और न विरोधी पक्षको कोई उत्तर ही देते हैं। सोनगढ़का सम्पूर्ण कार्यक्रम अत्यन्त समयबद्ध, अनुशासनपूर्ण और नियमित होता है। वहाँ अध्यात्म चर्चाके अतिरिक्त अन्य

कोई चर्चा नहीं होती। अतः वहाँका वातावरण अत्यन्त शान्त और अध्यात्मरंजित रहता है। वहाँ जानेवाले व्यक्तिसे धनकी याचना नहीं की जाती, सबका समान आतिथ्य किया जाता है। वहाँके आर्थिक विनियोगकी अपनी पृथक् प्रभावशाली पद्धति है। उससे कानजी स्वामीको पृथक् रखा गया है।

इन कारणोंसे सोनगढ़ एक तीर्थ-जैसा बन गया है। वह हजारों व्यक्तियोंकी श्रद्धाका भावनात्मक केन्द्र बन गया है। इसलिए हजारों व्यक्ति वहाँ यात्राके निमित्त जाते हैं। वे उस स्थान (तीर्थ) की यात्रा इसलिए करते हैं क्योंकि उस तीर्थमें जंगम तीर्थ विराजमान है जो उनकी धार्मिक श्रद्धा और आध्यात्मिक आकांक्षाओंका केन्द्र है।

यह हम पूर्वमें निवेदन कर चुके हैं कि सोनगढ़ कोई तीर्थक्षेत्र नहीं है, न यह निर्वाण-क्षेत्र है, न कल्याणक-क्षेत्र, न अतिशय-क्षेत्र और न कलातीर्थ ही है। किन्तु हजारों व्यक्तियोंका श्रद्धा-केन्द्र अवश्य है। अतः इसे श्रद्धा-तीर्थके रूपमें मानकर यहाँ उसका परिचय दिया जा रहा है।

सोनगढ़-दर्शन

यहाँपर श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर, मानस्तम्भ, समवसरण मन्दिर, श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर, भगवान् श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप, स्वाध्याय मन्दिर, जैन अतिथि सेवा समिति, जैन विद्यार्थी गृह, श्री कहान राहत केन्द्र ट्रस्ट और श्री गोगीदेवी ब्रह्मचर्याश्रम नामक संस्थाएँ हैं।

श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर—मूलनायक भगवान् सीमन्धरकी ३ फुट उत्तुंग श्वेत वर्ण पद्मासन मूर्ति है। यह यहाँकी मूलनायक मूर्ति है इसके दोनों पार्श्वोंमें पद्मप्रभ और शान्तिनाथ भगवान्की २ फुट ६ इंच ऊँची बादामी वर्णकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ धातुकी ५ और स्फटिककी १ मूर्तियाँ है। सभामण्डपमें पौराणिक दृश्योंका सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

इसकी ऊपरी मंजिलमें वेदीमें कृष्ण वर्ण भगवान् नेमिनाथकी २ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। इसके बायीं ओर सीमन्धर और भगवान् पार्श्वनाथकी धातु-मूर्तियाँ हैं तथा दायीं ओर भगवान् महावीरकी श्वेत वर्ण पद्मासन मूर्ति है।

समवसरण मन्दिरके सम्मुख ६३ फुट उत्तुंग मानस्तम्भ है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् २००९ में हुई थी। इसकी शीर्ष वेदीमें सीमन्धर स्वामी विराजमान हैं। मानस्तम्भकी नीचेकी वेदीमें भी सीमन्धर स्वामीकी चारों दिशाओंमें मूर्तियाँ हैं।

समवसरण मन्दिर—सीमन्धर मन्दिरके पृष्ठ भागमें समवसरण मन्दिर है। इसमें समवसरणकी रचना की गयी है। गन्धकुटीमें चारों दिशाओंमें सीमन्धर स्वामी विराजमान हैं। एक ओर आचार्य कुन्दकुन्द खड़े हुए हैं और भगवान्के दर्शन करते हुए दिखाये गये हैं। रचना भव्य बनी है।

स्वाध्याय मन्दिर—मन्दिरके एक ओर स्वाध्याय मन्दिर है। इसमें समयसार शास्त्र स्थापित किया गया है। पूरा शास्त्र चाँदीके पत्रोंमें उत्कीर्ण है। 'वन्दित्तु' शब्दमें सच्चा हीरा लगा है तथा 'ॐ' सच्चे माणिक्यसे बनाया गया है।

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन सरस्वती भवन—सोनगढ़ ट्रस्टके भूतपूर्व प्रमुख श्री रामजी भाईको उनकी ८३वीं जन्म-जयन्तीके अवसरपर मुमुक्षु मण्डलोंकी ओरसे ८३००० रुपये भेंट किये गये थे। वे रुपये उन्होंने आभारसहित लौटा दिये। उन रुपयोंसे इस सरस्वती भवनका

निर्माण हुआ है। इसमें शास्त्रोंका संग्रह किया गया है। इसीमें स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्टका कार्यालय है।

श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर—सीमन्धर मन्दिरके पासमें यह नव-निर्मित मन्दिर है। इसका सभामण्डप ८०×४० फुटका है। यह पूरा संगमरमरका बना है। इसमें लगभग २६ लाख रुपये व्यय हुए हैं। इसमें भगवान् महावीरकी बादामी संगमरमरकी ५ फुट ऊँची मूर्ति स्थापित है। आचार्य कुन्दकुन्द कृत पाँच आगम ग्रन्थ (समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड) ४×२ फुटकी ४४८ पाटियोंपर मशीन द्वारा उत्कीर्ण कराये गये हैं। ये पाटिये क्रमशः इस मण्डपमें जड़े हुए हैं। इन पाँच आगमोंकी प्रतिष्ठा की गयी है। इन आगमोंमें मूल गाथा और अमृतचन्द्राचार्यकी टीका दी गयी है। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य अमृतचन्द्र और मुनि पद्मप्रभ मलधारी देवके भव्य चित्रांकन किये गये हैं। पौराणिक दृश्योंका भी भव्य चित्रांकन किया गया है।

यह मन्दिर दो-मंजिला है। ऊपरकी मंजिलमें भी तीर्थंकर महावीरकी प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिरके ऊपर ३ भव्य शिखर हैं।

भगवान् श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप—परमागम मन्दिरके पीछे यह प्रवचन मण्डप बना हुआ है। यह १०० फुट लम्बा और ५० फुट चौड़ा है। स्वामीजीके प्रवचन इसी मण्डपमें होते थे। वर्तमानमें उनके ये प्रवचन परमागम मन्दिरके विशाल हॉलमें होते हैं।

जैन विद्यार्थी गृह—इसमें ७० विद्यार्थी रहते हैं। स्कूलमें ये लौकिक शिक्षा प्राप्त करते हैं तथा छात्रावासमें इन्हें धार्मिक शिक्षण और अनुशासनकी शिक्षा दी जाती है।

श्री गोगीदेवी ब्रह्मचर्याश्रम—यहाँ ६४ बहनें रहती हैं जो बालब्रह्मचारिणी हैं और जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया है। ये बहनश्री चम्पा बहनके निर्देशनमें ज्ञान, शील और अनुशासनका अभ्यास करती हैं।

श्री कहान राहत केन्द्र—इसकी ओरसे भगवान् महावीर आयुर्वेदिक औषधालय चल रहा है। अकाल और सूखेके अवसरपर केन्द्रकी ओरसे जन-सेवाके कार्य किये गये थे।

कुछ ज्ञातव्य बातें

—स्वामीजी वर्षमें ९ माह सोनगढ़में रहते हैं। प्रातः और मध्याह्नमें उनका प्रवचन होता है। रात्रिमें तत्त्व चर्चा चलती है। मन्दिरमें प्रातः पूजन तथा मध्याह्न प्रवचनके बाद स्वामीजीकी उपस्थितिमें सामूहिक जिनभक्ति होती है।

—दशलक्षण पर्वमें सभी मुमुक्षु मण्डल यहाँ एकत्रित होते हैं।

—प्रतिवर्ष दशलक्षण पर्वके पूर्व यहाँ २० दिन तक शिक्षण शिविर चलता है। शिक्षणार्थियोंके लिए संस्थाकी ओरसे रहने और खानेकी व्यवस्था होती है। शिविरमें लगभग २५० शिक्षणार्थी भाग लेते हैं।

यहाँसे हिन्दी और गुजराती भाषामें 'आत्मधर्म' नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता है।

पुस्तक प्रकाशन विभागकी ओरसे अब तक हिन्दीमें १०० तथा गुजरातीमें ७९ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

धर्मशाला

यहाँ २ धर्मशालाएँ हैं जिनमें ४६ कमरे हैं। बिजली है। २५० व्यक्तियोंके लायक गद्दे, रजाई, तकिये आदि सामानकी व्यवस्था है। नल, कुएँ और हैण्डपम्प हैं।

प्राइवेट गेस्ट हाउस है, जिसमें प्रति कमरेका दस रुपये दैनिक शुल्क है।

यहाँका पता इस प्रकार है—

मैनेजर, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट,
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शत्रुंजय

सिद्धक्षेत्र

शत्रुंजय गिरि निर्वाण-क्षेत्र है। इस स्थानसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीन पाण्डव तथा आठ कोटि द्रविड़ राजा अष्टकर्मोंका नाश करके मुक्त हुए थे। जैसा कि निर्वाण-काण्डमें बताया है—

"पंडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
सत्तुंजय गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं॥"

इसी प्रकार संस्कृत निर्वाणभक्तिमें भी पाण्डवोंका मुक्ति-स्थान शत्रुंजयगिरिको माना है। यथा हि—

"शत्रुंजये नगवरे दमितारिपक्षाः पण्डोः सुताः परमनिर्वृतिमभ्युपेताः।"

आचार्य जिनसेनने 'हरिवंश-पुराण' में पाण्डवोंकी अन्तिम अवस्थाका वर्णन करते हुए बताया है कि—

'ज्ञात्वा भगवतः सिद्धिं पञ्चपाण्डवसाधवः।
शत्रुंजयगिरौ धीराः प्रतिमायोगिनः स्थिताः॥६५-१८॥
शुक्लध्यानसमाविष्टा भीमार्जुनयुधिष्ठिराः।
कृत्वाष्टविधकर्मान्तं मोक्षं जग्मुस्त्रयोऽक्षयम्॥६५-२२॥

अर्थात् भगवान् नेमिनाथकी निर्वाण-प्राप्तिका समाचार जानकर पाँचों पाण्डव मुनि शत्रुंजयके ऊपर प्रतिमायोग धारण करके स्थित हो गये। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन शुक्लध्यानमें स्थिर होकर और आठों कर्मोंका विनाश करके मुक्तिमें चले गये अर्थात् मुक्त हो गये।

इन पाण्डवोंके सम्बन्धमें हरिवंश-पुराण आदिमें कथानक मिलता है कि—

पाण्डवोंने भगवान् नेमिनाथसे अपने भवान्तर सुनकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और कठिन तपश्चर्या करने लगे। उन्हें अनेक प्रकारकी ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयीं, किन्तु उन्हें इन ऋद्धियोंसे क्या प्रयोजन था, अब तो उनकी दृष्टि बाह्यसे हटकर आत्मकेन्द्रित हो गयी थी। वे अनेक वर्षों तक भगवान् नेमिनाथके साथ विहार करते रहे और अन्तमें शत्रुंजय पर्वतपर जाकर आतापन योग धारण करके विराजमान हो गये। एक दिन कौरवोंका भानजा कुर्युवर भ्रमण करता हुआ उधर आ निकला। पाण्डवोंको देखते ही उसे अपने मामाके वध और मातुल कुलके विनाशका स्मरण हो आया। स्मरण आते ही उसके मनमें भयानक क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने पाण्डवोंसे प्रतिशोध लेनेका संकल्प कर लिया। वह नगरमें गया और लौहकारसे लोहेके मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर आदि बनवाकर लाया। उसने उन्हें अग्निमें तपाया। उन तप्त आभूषणोंको पाण्डवोंको पहना दिया। पाण्डवोंके अंग जलने लगे। किन्तु उन्हें तो बाह्यकी सुधि ही नहीं थी,

उनका उपयोग तो आत्मामें केन्द्रित था। वे शुक्लध्यानमें लीन हो कर्म शत्रुओंका संहार कर रहे थे। उधर कुर्युवर उनके तिल-तिल जलते हुए अंगोंको देखकर मनमें अत्यन्त मुदित हो रहा था और अपने प्रतिशोधकी सफलतापर गर्व कर रहा था। शुक्लध्यानके बलसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनने घातिया एवं अघातिया कर्मोंका विनाश किया और मुक्त हो गये। उनके जन्म-मरणकी श्रृंखलाका अन्त हो गया। नकुल और सहदेव पूर्णतः आत्म-विजय नहीं कर पाये। अतः वे कर्मोंका नाश नहीं कर सके। वे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र बने। इस प्रकार शत्रुंजय पर्वत पाण्डवोंकी निर्वाण-भूमिके रूपमें विख्यात है।

पश्चात्कालीन लेखोंमें भट्टारक उदयकीर्ति, श्रुतसागर, गुणकीर्ति, मेघराज, सुमतिसागर, सोमसेन, जयसागर, चिमणा पण्डित, देवेन्द्रकीर्ति, पण्डित दिलसुख, कवीन्द्र सेवक आदिने भी इसे सिद्धक्षेत्र माना है। इनमें-से किसीने तो केवल सिद्धक्षेत्रके रूपमें इसका नामोल्लेख-भर कर दिया है और किसीने पाण्डवों तथा ८ कोटि द्रविड़ राजाओंके मुक्ति-क्षेत्रके रूपमें इसका उल्लेख किया है। भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने यहाँ माघ कृष्णा ४ सोमवार शक सं. १६५१ (सन् १७०८-९) में यात्रा की थी। उस यात्राके संस्मरण रूपमें उन्होंने जो पद्य-रचना की है, उसमें उन्होंने शत्रुंजयका नाम अरिंजय दिया है।

किन्तु भट्टारक ज्ञानसागरने शत्रुंजयका जो वर्णन किया है, उसमें कुछ बातें अद्भुत हैं। उन्होंने सिद्धक्षेत्र होनेकी मान्यताके साथ यह भी लिखा है कि यहाँ भगवान् ऋषभदेव बाईस बार पधारे थे तथा यहाँ ललित सरोवर एवं अक्षय वट है। ऋषभदेव भगवान्के बाईस बार पधारनेकी जो बात इन्होंने लिखी है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः अक्षय वटके साथ भी भगवान्का सम्बन्ध रहा हो। किन्तु ज्ञानसागरजीने यह बात किस आधारसे लिखी है, वह अवश्य अन्वेषणीय है क्योंकि किसी जैन शास्त्र या पुराणमें किसी स्थानपर किसी तीर्थंकरके पधारनेकी संख्या नहीं दी है। ज्ञानसागरजीका उक्त छप्पय इस भाँति है—

"शत्रुंजय सुविशाल नयर तिहाँ पालीताणो।
अष्ट कोडि मुनि मुक्ति सिद्धसुक्षेत्र बखाणो।
वृषभदेव जिनराय वार वावीस पधार्या।
कहि उपदेश अनंत भविक जीव बहु तार्या॥
ललित सरोवर अखयबड देखत आनंद ऊपजे।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति स्वर्ग मोक्ष सुख संपजे॥११॥"

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें शत्रुंजयकी मान्यता

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें शत्रुंजय तीर्थकी मान्यता अन्य सभी तीर्थोंसे अधिक है, यहाँ तक कि सम्मेद शिखरकी अपेक्षा भी शत्रुंजयको विशेष महत्त्व प्राप्त है। आचार्य जिनप्रभसूरिने विविध-तीर्थ-कल्पके शत्रुंजय तीर्थकल्पमें शत्रुंजयकी महिमाका वर्णन किया है। उन्होंने इसमें बताया है कि शत्रुंजयके २१ नाम हैं—सिद्धिक्षेत्र, तीर्थराज, मरुदेव, भगीरथ, विमलाद्रि, बाहुबली, सहस्र कमल, तालध्वज, कदम्ब, सहस्रपत्र, ढंक, लौहित्य, कपर्दिनिवास, सिद्धिशेखर, शत्रुंजय, शतपत्र, नगाधिराज, अष्टोत्तर शतकूट, मुक्ति-निलय, सिद्धि पर्वत और पुण्डरीक।

---

१. उत्तरपुराण ७२।२६७-२७०; हरिवंशपुराण ६३।१८-२२।

इस तीर्थकी अतिशय मान्यताका कारण बताते हुए आचार्य जिनप्रभ कहते हैं—यहाँसे वृषभसेन आदि असंख्य मुनि मुक्त हुए हैं और पद्मनाथ आदि भावी तीर्थंकरोंके समवसरण यहाँ आवेंगे। नेमिनाथ भगवान्‌को छोड़कर शेष तेईस तीर्थंकरोंके समवसरण यहाँ आये थे। भरतचक्री-ने यहाँ चैत्य निर्मित कराया। यहाँसे भरतचक्रीके प्रथम पुत्र और ऋषभदेवके प्रथम गणधर मुक्त हुए। नमि-विनमि दो करोड़ मुनियोंके साथ यहींपर मुक्त हुए। द्रविड़ बालखिल्यादि नरेशोंने दस कोटि मुनियोंके साथ यहींसे सिद्धि-लाभ किया। जयराम राजर्षि आदि तीन कोटि मुनियोंका यहाँ आगमन हुआ। नारद आदि ९१ लाख मुनियोंने यहाँसे शिवपद पाया। प्रद्युम्न, शाम्ब आदि कुमारोंने साढ़े आठ करोड़ मुनियोंके साथ यहाँसे निर्वाण प्राप्त किया। ऋषभदेवके वंशमें आदित्ययशसे लेकर सगर पर्यन्त पचास करोड़ लाख नरेशोंको शिवपद मिला। भरतके पुत्र शैलक, शुक आदि असंख्यात कोटाकोटि मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की। कुन्तीके साथ बीस कोटि मुनि और पाँचों पाण्डव यहाँसे मुक्त हुए। अजितनाथ और शान्तिनाथ तीर्थंकरोंने यहाँ चातुर्मास व्यतीत किये। नेमिनाथके उपदेशसे यात्रार्थ आये हुए नन्दिषेण-गणेशने अजितनाथ-शान्तिनाथका सर्व-रोगहर स्तवन किया और असंख्य प्रतिमा और मन्दिरोंका यहाँ निर्माण किया। सम्प्रति, विक्रमादित्य, सातवाहन, वाग्भट, पादलिप्त, आमदत्त आदिने यहाँ उद्धार-कार्य किये। तीर्थोंका उच्छेद होनेपर इसका ऋषभकूट पद्मनाभ (भावी प्रथम तीर्थंकर) के तीर्थंकाल तक स्थिर रहेगा और पूजा जाता रहेगा।

वाग्भट मन्त्रीने तीन लाख कम तीन करोड़ मुद्राएँ व्यय करके आदीश्वर मन्दिरका निर्माण कराया। वि. सं. १०८ में जावडिने बहुत धन लगाकर रत्न प्रतिमा विराजमान करायी। इस प्रकार यह तीर्थ अनादि-निधन है।

क्षेत्र-दर्शन

पालीताना शहरसे शत्रुंजय गिरिकी तलहटी एक मील दूर है। पालीताना शहरमें एक दिगम्बर जैन मन्दिर है जो संवत् १९४८ में तैयार हुआ और उसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में माघ सुदी ५ को संघपति सेठ हरिभाई देवकरन तथा सेठ मोतीचन्द पद्मचन्द शोलापुरवालोंने भट्टारक कनककीर्तिजी द्वारा करायी। यहाँसे पहाड़की तलहटी तकके लिए सवारियाँ मिलती हैं। पर्वतकी सम्पूर्ण चढ़ाई लगभग ४ कि. मी. है। पत्थरकी सड़क तथा सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, जिनके कारण चढ़ाई सरल हो गयी है।

यह पर्वत एक प्रकारसे जैन मन्दिरोंका गढ़ है। पर्वतके ऊपर श्वेताम्बर समाजके लगभग ३५०० मन्दिर और मन्दरियाँ हैं। एक स्थानपर इतनी भारी संख्यामें कहींपर हिन्दुओं और बौद्धोंके भी मन्दिर नहीं हैं। इन मन्दिरोंमें कई मन्दिरोंका शिल्प-सौन्दर्य और उनकी स्थापत्य कला अनूठी है। इन मन्दिरोंका बाह्य वैभव भी मोहित करनेवाला है। इनमें-से अनेक मन्दिरोंमें विभिन्न प्रकारके रत्नों और स्वर्णकी प्रतिमाएँ हैं, अनेक प्रतिमाओंके मुकुट, किरीट, आभूषण रत्नजटित हैं। भक्तोंने जिनेन्द्र प्रभुके चरणोंमें करोड़ों-अरबों रुपये भक्तिवश अर्पित करके जिनायतन नगरीका निर्माण किया है। यह अपार वैभव सम्राट् एवं नरेश तीर्थंकरोंका है।

इन सराग वैभवसम्पन्न जिनायतनोंकी मालामें मणिके समान जाज्वल्यमान एक वीतराग दिगम्बर तीर्थंकर मन्दिर शोभायमान है। इस पर्वतपर मुख्य दो टोंकें हैं। प्रथम टोंकपर कोई दिगम्बर मन्दिर नहीं है। दूसरी टोंकपर श्वेताम्बर मन्दिरोंके केन्द्रमें परकोटेके भीतर एक

प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। लगता है, देदीप्यमान तारावलिके बीचमें पूर्ण चन्द्र चमक रहा हो। यह मन्दिर पर्याप्त प्राचीन है। इसमें नौ वेदियाँ बनी हुई हैं।

मुख्य वेदीमें भगवान् शान्तिनाथ विराजमान हैं। शान्तिनाथ भगवान्‌की ३ फीट ६ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख सुदी ५ संवत् १६८६ में मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण कुन्दकुन्दान्वयके भट्टारक सकलकीर्ति उनके शिष्य भुवनकीर्ति तच्छिष्य ज्ञानभूषण तच्छिष्य विजयकीर्ति तच्छिष्य शुभचन्द्र तच्छिष्य सुमतिकीर्ति तच्छिष्य गुणकीर्ति तच्छिष्य वादिभूषण तच्छिष्य रामकीर्ति तच्छिष्य भट्टारक पद्मनन्दिने करायी थी, जैसा कि इसके मूर्तिलेखसे ज्ञात होता है।

इसके दोनों पार्श्वोंमें २ फीट ३ इंच ऊँची धातुकी खड्गासन मूर्तियाँ हैं। ये चाँदीकी वेदियोंमें हैं। बायीं ओर संवत् १९५९ में प्रतिष्ठित और १ फुट ९ इंच ऊँची नेमिनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा है।

पार्श्वनाथकी १ फुट ७ इंच उन्नत श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। एक प्रतिमा १० इंच उन्नत श्वेतवर्णकी पद्मासन मुद्रामें विराजमान है।

इसके बगल बायीं ओरकी दीवारमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌को ११ इंच उत्तुंग श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके आगे तीन पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं—प्रथम ७ इंचकी श्वेत वर्ण, दूसरी ५ इंच ऊँची कृष्ण वर्ण और तीसरी ७ इंच ऊँची श्वेत वर्ण। इनके बगलवाली वेदीमें संवत् १८६३ में प्रतिष्ठित २ फीट ६ इंच ऊँची अजितनाथ भगवान्‌की श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके बगलवाले आलेमें पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है।

दायीं ओरकी दीवारमें १ फुट अवगाहनामें शान्तिनाथ प्रभुकी श्वेतवर्ण प्रतिमा है। इनके आगे तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं—प्रथम ७ इंचकी श्वेत, दूसरी ५ इंचकी कृष्ण और तीसरी ६ इंचकी श्वेत।

इससे आगेकी वेदीमें २ फीट ४ इंच ऊँची श्वेत वर्ण सुपार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पहले यह प्रतिमा मूलनायकके रूपमें विराजमान थी किन्तु पैरका अँगूठा खण्डित हो जानेसे इसे मुख्य वेदीसे हटाकर यहाँ विराजमान कर दिया है। इसके आगे पद्मावती देवी है।

गर्भगृहके द्वारपर बायीं ओर एक वेदीमें धातुकी एक फुट ऊँची युधिष्ठिर अर्हन्तकी संवत् २०२५ में प्रतिष्ठित प्रतिमा है। इसी प्रकार दायीं ओर वेदीमें अर्जुन और भीमकी धातु मूर्तियाँ हैं।

सभामण्डपमें गर्भगृहकी बाह्य भित्तिमें सामनेकी ओर दोनों पार्श्वोंमें २ फुट उत्तुंग और संवत् १७३४ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी पद्मासन धातु प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिरके उत्तर द्वारपर दोनों ओर ऋषभदेव और सम्भवनाथके चरणचिह्न हैं।

पश्चिम दीवारके आगे तीन मन्दरियोंमें ५ चरण-पादुकाएँ हैं। इसी प्रकार दूसरी ओर तीन मन्दरियोंमें ३ चरणयुगल हैं। इसके मध्यमें एक शिखरबद्ध मन्दरिया है। इसमें तीन पाण्डवोंके चरण-चिह्न विराजमान हैं।

नगर-मन्दिर

नगरके मध्यमें एक दिगम्बर जैन मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिरमें भगवान् शान्तिनाथ-की ढाई फीट ऊँची पद्मासन मूलनायक प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में हुई थी। बायीं ओर संवत् १९५१ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी अरनाथ भगवान्‌की पद्मासन प्रतिमा है।

इसके बगलमें संवत् १९५१ में प्रतिष्ठित २ फीट २ इंच ऊँची आदिनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। दायीं ओर संवत् १९५१ में प्रतिष्ठित १ फुट ८ इंच ऊँची अजितनाथकी श्वेत पाषाण-की पद्मासन प्रतिमा है। इसके पार्श्वमें २ फीट ४ इंच ऊँची श्वेत वर्णवाली चन्द्रप्रभकी पद्मासन प्रतिमा है।

इनके अतिरिक्त वेदीपर ३० धातु प्रतिमाएँ हैं, जिनमें ५ चौबीसी, १ चैत्य और शेष तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिरका सभामण्डप अत्यन्त सुन्दर है।

पर्वतके दिगम्बर मन्दिरको लेकर दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजके बीचमें कुछ समय तक तनाव रहा है। परन्तु बादमें भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी और सेठ आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी अहमदाबादके मध्य सन् १९२८ में एक एग्रीमेण्ट हुआ। इसके अनुसार इस मन्दिर-का सम्पूर्ण स्वत्व और स्वामित्व दिगम्बर समाजका रहेगा और श्वेताम्बर समाज उनकी पूजा और व्यवस्थामें कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी।

पर्वतपर श्वेताम्बर मन्दिरोंमें आदीश्वर, कुमारपाल, विमलशाह, सम्प्रति नरेशके मन्दिर दर्शनीय हैं। एक आगम मन्दिर बनाया गया है, जिसमें सम्पूर्ण आगम पाषाण पर अंकित कराये गये हैं।

करमुक्त

भारतकी स्वाधीनतासे पूर्व यहाँ आनेवाले प्रत्येक यात्रीसे यहाँके ठाकुर साहबकी ओरसे कर लिया जाता था। बादमें श्वेताम्बर समाज और पालीताना दरबारके मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार श्वेताम्बर समाज ठाकुर साहबको ६० हजार रुपये एकमुश्त वार्षिक कर देने लगी। भारतकी स्वतन्त्रता और रियासतोंके विलयके बाद श्वेताम्बरोंको उस करसे मुक्ति मिल गयी।

धर्मशाला

पालीताना नगरका नाम है तथा शत्रुंजय पर्वतका नाम है। पालीताना नगरके भैरवपुरा मुहल्लेमें दिगम्बर जैन धर्मशाला बनी हुई है। धर्मशाला काफी विशाल है। इसमें ४० कमरे हैं। नल और बिजलीकी व्यवस्था है। यात्रियोंकी सुविधाके लिए २५ रजाई, गद्दों और तकियोंकी व्यवस्था है। बरतन आदिकी भी व्यवस्था है। बाजार धर्मशालाके निकट ही है।

मेला

क्षेत्रपर कोई वार्षिक मेला नहीं होता। सात वर्ष पहले पर्वतपर अवश्य ही ध्वजारोहण-का मेला हुआ था।

मार्ग

सड़क-मार्गसे यह सोनगढ़से २२ कि. मी. तथा भावनगरसे ५७ कि. मी. है। रेल-मार्गसे पश्चिमी रेलके महसानासे सुरेन्द्रनगर, सुरेन्द्रनगरसे सीहोर और सीहोरसे सीहोर-पालीताणा ब्रांच लाइनसे पालीताना पहुँच सकते हैं। किन्तु बसोंका चारों ओर जाल फैला हुआ है। महसानासे तारंगा, जूनागढ़-गिरनार, पालीताना सब स्थानोंके लिए बस-सेवा है।

व्यवस्था

यह क्षेत्र भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके अन्तर्गत है। इस क्षेत्रके दो ट्रस्टी हैं जो बम्बई रहते हैं। वे ही इस क्षेत्रकी व्यवस्था करते हैं।

क्षेत्रका पता—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन धर्मशाला
भैरवपुरा, पालीताना (गुजरात)

घोघा

मार्ग और अवस्थिति

'श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र घोघा' भावनगर (गुजरात) से सड़क-मार्ग द्वारा सम्बद्ध है तथा लगभग २३ कि. मी. है। भावनगरसे घोघा जानेके लिए बसोंकी सुविधा है। वर्तमान घोघा साधारण नगर है और यह खम्भातकी खाड़ीके तटपर अवस्थित है। नगरमें बिखरे हुए खण्डहरोंमें इसके समृद्धिशाली अतीतके दर्शन होते हैं। लगता है, यह अतीतमें पत्तन था और व्यापारिक केन्द्र था। यहाँसे सुदूर अरब देशोंको व्यापारिक मालका निर्यात और आयात होता था।

अतिशय-क्षेत्र

यह एक अतिशय-क्षेत्र माना जाता है। यहाँ श्वेत पाषाणकी एक पद्मासन प्रतिमा है। इसके पादपीठपर लांछन और लेख नहीं है। किन्तु भक्त जनताने अपनी कल्पना द्वारा इन दोनों बातोंकी पूर्ति कर ली है। भक्त लोग इसे चतुर्थ कालकी मानते हैं तथा लांछन न होते हुए भी इसे भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमा मानते हैं। यहाँके अतिशयोंकी इस प्रदेशमें विशेष चर्चा सुनी जाती है। कहते हैं, कभी-कभी मन्दिरमें रात्रिकी नीरवतामें घण्टोंकी आवाज सुनाई देती है। भक्त लोग यहाँ मनौतीके लिए आते हैं।

पुरातत्त्व

प्राचीन कालमें यह नगर विशाल और समृद्धिशाली रहा होगा, नगरमें बिखरे हुए भग्नावशेषोंसे ऐसा प्रतीत होता है। समुद्र मार्गसे यहाँ सुदूर देशों तक व्यापार होता था। भावनगरसे चले हुए पोत यहाँके पत्तनपर आकर रुकते थे और यहाँसे मालका लदान करते थे। इसी प्रकार अरब सागरसे आनेवाले पोत इस पत्तनपर माल उतारते थे। विविध प्रकारके आयात-निर्यातके कारण यहाँकी समृद्धि निरन्तर बढ़ती गयी। जब तक चालुक्य वंशके सोलंकी और बाघेला नरेशोंका यहाँपर शासन रहा, यहाँका व्यापार फलता-फूलता रहा। किन्तु जब राज्यसत्ता मुसलमानोंके हाथमें आयी, उनके निरन्तर आक्रमणों और अत्याचारोंने यहाँके व्यापार और समृद्धिको गहरा आघात पहुँचाया। धीरे-धीरे यहाँका पत्तन समाप्त हो गया, व्यापार समाप्त हो गया और नगरका वैभव समाप्त हो गया।

यहाँ दिगम्बर समाजके दो खण्डवाले दो जिनालय हैं, दोनों ही आदिनाथ जिनालय हैं। इन मन्दिरोंसे थोड़ी दूरपर तीन श्वेताम्बर मन्दिर हैं—नवखण्ड पार्श्वनाथ मन्दिर, चन्द्रप्रभ

मन्दिर और जीरावाला पार्श्वनाथ मन्दिर। दोनों ही समाजोंके मन्दिरोंको देखनेसे ऐसा लगता है कि श्वेताम्बर मन्दिर उस कालमें बने थे, जब यहाँ चालुक्य वंशका शासन था और व्यापार अपने यौवनपर था। जबकि दिगम्बर मन्दिरोंको देखनेसे यह प्रभाव पड़ता है कि ये मन्दिर उसके उत्तरकालमें बने हैं, जब नगरमें व्यापार क्षीणावस्थामें पहुँच चुका था। यही कारण है कि श्वेताम्बर मन्दिरोंमें वि. संवत् १२७६ से संवत् १३७९ तककी मूर्तियां मिलती हैं, जबकि दिगम्बर मन्दिरोंमें संवत् १५११, १६४३ और १६७९ की मूर्तियां हैं। इनमें एक मूर्ति अवश्य ऐसी है, जिसके ऊपर लांछन और लेख नहीं है। लोगोंकी धारणा है कि यह मूर्ति चतुर्थ कालकी है। इस धारणाका एकमात्र आधार मूर्तिपर लांछन और लेखका अभाव है। इस प्रकारकी धारणा अनेक स्थानोंपर अनेक मूर्तियोंके सम्बन्धमें प्रचलित हैं। किन्तु रचना शैलीसे यह मूर्ति ११-१२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। सम्भवत: यह किसी अन्य मन्दिरमें विराजमान थी और उस मन्दिरके नष्ट होनेपर वह इस मन्दिरमें विराजमान कर दी गयी। हमारा यह अनुमान मन्दिरके निर्माण-कालपर आधारित है क्योंकि मन्दिर ५०० वर्षसे अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होता।

क्षेत्र-दर्शन

नगरके मध्यमें आदिनाथ मन्दिर अवस्थित है। इसमें प्रवेश करते ही सामने पीतलके सहस्रकूट जिनालयके दर्शन होते हैं। इसकी ऊँचाई ३ फुट ६ इंच और चौड़ाई १ फुट ११ इंच है। इसका प्रतिष्ठाकाल संवत् १६११ है।

दायीं ओर एक चबूतरानुमा वेदीमें भगवान् आदिनाथकी २ फुट ऊँची संवत् १६७९ में प्रतिष्ठित श्याम पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर २ फुट ३ इंच ऊँची एक पद्मासन प्रतिमा कृष्णवर्णकी है। पीठासनपर प्रतिष्ठाकाल संवत् अंकित नहीं है। इसी प्रकार दायीं ओर साढ़े नौ इंच ऊँचे एक फलकमें श्वेत वर्णकी पद्मासन मूर्ति है। उसके दोनों ओर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। यहाँ एक शिलापटमें चौबीसी बनी हुई है। आदिनाथ भगवान्‌की उक्त मूर्ति अत्यन्त अतिशय सम्पन्न है।

इस वेदीपर श्वेतवर्णकी २ फुट ७ इंच ऊँची एक पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसके पीठासन पर चिह्न और लेख नहीं है। इसे कुछ लोग चतुर्थ कालकी मानते हैं। इसकी रचना-शैलीको देखते हुए इसे ११–१२वीं शताब्दीकी माना जा सकता है।

इन मूर्तियोंके अतिरिक्त समवसरणमें २ श्वेत, ३ रक्त और १ कृष्णवर्णकी पाषाण मूर्तियाँ तथा ३ धातु मूर्तियाँ हैं।

बायीं ओर एक दीवार-ताकमें १ फुट ६ इंच आकारवाले पाषाणमें चौबीसी विराजमान है।

इस मन्दिरके उपरिखण्डमें एक वेदीमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की २ फुट ६ इंच अवगाहनावाली श्वेत पाषाणकी पद्मासन मूर्ति है। इसके समवसरणमें ४ पाषाणकी तथा ३८ धातुकी मूर्तियाँ हैं।

पाषाण मूर्तियोंके ऊपर समुद्रकी क्षारयुक्त वायुका दुष्प्रभाव पड़ा है। मूर्तियोंपर धब्बे पड़ गये हैं तथा पाषाण या पालिशकी चमक धुँधली पड़ गयी है।

इस मन्दिरके कम्पाउण्डमें एक और दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् आदिनाथकी है। यह श्वेत पाषाणकी है और पद्मासन मुद्रामें है। इसके समवसरणमें धातुकी ३९ और स्फटिककी १ मूर्ति है।

ऊपरी मंजिलमें एक वेदी है। इसमें संवत् १६४३ में प्रतिष्ठित साढ़े आठ इंच ऊँची भगवान् आदिनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त पाषाणकी एक

चौबीसी, एक खड्गासन और एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा हैं, पंचधातुकी ९ प्रतिमाएँ हैं और ३ चरण चिह्न विराजमान हैं।

नगरमें श्वेताम्बरोंके भी तीन मन्दिर हैं—नवखण्ड पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और जीरावाला पार्श्वनाथ। इन मन्दिरोंमें संवत् १२७६ से १३५९ तक मूर्तियाँ हैं। इस बीच गुजरातकी राजसत्ता चालुक्य वंशी भीमदेव द्वितीय, त्रिभुवनपाल और बघेल वंशके हाथोंमें रही थी। ये सभी प्रायः जैन धर्मानुयायी थे।

धर्मशाला

मन्दिरके निकट १ धर्मशाला है। वर्तमानमें इसमें क्षेत्रका कार्यालय है। धर्मशालामें केवल एक ही कमरा है। यहाँ जो यात्री दर्शनार्थ आते हैं वे प्रायः दर्शन करके भावनगर वापस लौट जाते हैं।

नगरमें दिगम्बर जैनका कोई घर नहीं है। क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन मन्दिर,
हूमड़का डेला, घोघा
जिला भावनगर (गुजरात)

पावागढ़

निर्वाण-क्षेत्र

पावागढ़का प्राचीन नाम पावागिरि था। बादमें पर्वतपर दुर्ग बन जानेके कारण इसका नाम पावागढ़ हो गया। यह स्थान सिद्धक्षेत्र या निर्वाण-क्षेत्र है। यहाँपर रामचन्द्रके दो पुत्रों—अनंगलवण और मदनांकुशने घोर तप करके कर्मोंका नाश कर निर्वाण प्राप्त किया था। इनके अतिरिक्त लाट देशके पाँच कोटि नरेशोंने भी यहाँपर तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की थी। इस पवित्र निर्वाण-भूमिके सम्बन्धमें प्राकृत निर्वाणकाण्डमें बड़े गौरवपूर्ण शब्दोंमें निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होता है—

"रामसुआ वेण्णि जणा लाउर्णारदाण पंचकोडीओ।
पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥"

भट्टारक उदयकीर्तिने 'तीर्थवंदना'में अपभ्रंश भाषामें पावागिरिके सम्बन्धमें निर्वाण-काण्डका ही अनुकरण करते हुए लिखा है—

"पावइ लवणंकुस रामसुआ। पंचेव कोडि जहिं सिद्ध हुआ ॥९॥"

भट्टारक गुणकीर्तिने भी मराठीमें 'पावामहागढ़ि श्री लवांकुश मुख्य करोनि पांचकोडि सिद्धि पावले त्या सिद्धक्षेत्रासि नमस्कारु माझा' लिखकर इस सिद्धक्षेत्रकी वन्दना की है। इसी प्रकार भट्टारक मेघराजने निर्वाण-काण्डका ही अनुसरण करते हुए गुजराती भाषामें इस क्षेत्रके सम्बन्धमें लिखा है—'पावागिरि पांचकोडि लहु अंकुस सिद्धि गयाए।' भट्टारक जिनसागरने लिखा है—

"तेव्हा दोय कुमार राज्य करिता वैराग्यता पावले।
घेती पंचमहाव्रतासि वरवे संबोधता लाधले।

केला भव्यजनासि बोध बहुधा पावापुरी लाधले।
गेले मोक्षपदासि भव्य कवि ते श्रोत्या जना दाविले ॥''

—लहु अंकुश कथा, श्लोक ७७

इसी प्रकार श्रुतसागर, ज्ञानसागर, चिमणा पण्डित आदि अनेक लेखकोंने भी इस क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र माना है।

पावागढ़की अवस्थिति

निर्वाणकाण्डमें तीन पावाओंका उल्लेख आया है। (१) प्रथम पावाके सम्बन्धमें उसमें लिखा है—'पावाए णिव्वुदो महावीरो' अर्थात् एक पावा वह थी, जहाँसे महावीर मुक्त हुए थे। (२) दूसरी पावाका नाम पावागिरि था जहाँसे रामके दो पुत्र और पाँच कोटि लाट नरेश मुक्त हुए थे, जैसा कि तत्सम्बन्धी उपर्युक्त गाथासे स्पष्ट है। (३) तीसरी पावा भी पावागिरि कहलाती थी और वहाँसे सुवर्णभद्र आदि चार मुनि मुक्त हुए थे। यह पावागिरि चेलना नदीके तटपर अवस्थित थी। यथा—

"पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइ मुणिवरा चउरो।
चलणाणई तडग्गे निव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥"

इन तीनों पावाओंमें वह पावा कौन-सी है जहाँसे रामके पुत्र मुक्त हुए थे। इसका उत्तर भट्टारक श्रुतसागरने बोधप्राभृतकी गाथा नं. २७ की टीकामें तीर्थक्षेत्रोंके नामोल्लेख करते हुए दिया है। उसमें इन तीन पावाओंमें अन्तर बतानेके लिए लाटदेश पावागिरि, पावापुरी और चलनानदी-तट इस प्रकार नामोल्लेख किया है। अर्थात् लाटदेशकी पावागिरि रामपुत्रोंकी निर्वाण-भूमि, पावापुरी महावीरकी निर्वाण-भूमि और चलनानदी-तट (पर स्थित पावागिरि) सुवर्णभद्रादि-की निर्वाण-भूमि। इससे सिद्ध होता है कि राम-पुत्रोंकी निर्वाण-भूमि लाटदेशमें थी।

भट्टारक ज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थवंदना' में इस क्षेत्रके लिए वर्तमान नाम पावागढ़ ही प्रयुक्त किया है और इसका दो बार वर्णन किया है। उन्होंने इस क्षेत्रको गुज्जर देश (गूर्जर, गुजरात) में बताया है। यथा—

'पावागढ़ सुपवित्र देश गुज्जर मुख मंडन।
सुन्दर जिनवर भुवन पाप संताप विखंडन।
विघन टलत सवि दूर दर्शन बहुसुखकारी।
वंदत नरवर खचर दुखदारिद्र निवारी ॥
भावसहित नर जे भजत तस मन इच्छित सवि फले।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति सुख संपति त्रेगे मले ॥१९॥'

इसी प्रकार एक अन्य पद्यमें भी पावागढ़को गुज्जर देशमें ही बताया है। यथा—'गुज्जर देश पवित्र पावागढ़ अतिसारह।'

लाटदेश सौराष्ट्रको कहा जाता था और गुज्जर गुजरातको। दोनों प्रदेश प्रायः सम्मिलित रहे हैं, अतः दोनों एक माने जाते हैं। इसलिए पावागढ़ लाटमें था या गुर्जर देशमें, एक ही बात है।

पावागढ़का इतिहास

अतिप्राचीन कालसे पावागिरि तीर्थभूमि रहा है। किन्तु यह सैनिक सुरक्षाकी दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा प्रतीत होता है। इसीलिए इसकी तलहटीमें चाँपानेर शहर बसाकर

पर्वतके ऊपर गढ़ बनाया गया। इस गढ़के कारण ही चाँपानेर शताब्दियों तक सुरक्षित रहा और यह धन-धान्यसे सम्पन्न रहा। इस नगरके चारों ओर भी कोट बना हुआ था। अब भी इस नगरका कुछ भाग कोटसे घिरा हुआ है। इस कोटमें पूर्व और पश्चिमकी ओर दो बड़े दरवाजे हैं, जिन्हें पार करके नगरका बाजार मिलता है। फाटकोंपर पुरातत्त्व विभागकी ओरसे सूचना-पट लगे हुए हैं। उनके अनुसार प्राचीन कालमें इस नगरकी लम्बाई १२ कोसकी बतायी जाती है। यह भी कहा जाता है कि यहाँपर ८४ चोउटा थे और यहाँ ५२ बाजार थे। यहाँ नगरमें और बाहर प्राचीन भवनोंके खण्डहर पड़े हुए हैं। इनमें नौलक्खी कोठार, मकई कोठार और फतई रावलके महलोंके अवशेष भी पाये जाते हैं।

यहाँ बहुत काल तक जैनोंका राज्य रहा था। इस कालमें किसी जैन राजाने ५२ जिनालय बनवाये थे। पर्वतके ऊपर भी जैन मन्दिर और भवन बनाये गये थे। चिमणा पण्डितने भी पावागढ़के ऊपर जैन मन्दिर निर्माण करानेकी सूचना 'तीर्थ वंदना' नामक अपनी रचनामें इस प्रकार दी है—

रामनंदन लहु अंकुस जाना। पावागिरि उभय गेले निर्वाना।
पाँच कोडि मुनि मुगति निवासी। गंगादासे चैत्यालि केली पुण्यासि ॥१५॥

इसमें बतलाया है कि गंगादासने पावागिरिके ऊपर चैत्यालयका निर्माण कराया था। पर्वतके मध्यमें खापरा नेवरीका सात खण्डका भवन अब तक खड़ा हुआ है। इस भवनके चार खण्ड पृथ्वीके भीतर हैं तथा शेष तीन खण्ड पृथ्वीके ऊपर हैं। इसे लोग देखने जाते हैं।

जैन राजाओंके पश्चात् यहाँपर तोमर वंशका शासन हो गया। संवत् १४८४ में अहमदाबादके मुहम्मद बेगड़ाने फतई रावल राजा जयसिंहको पराजित करके इस नगरपर अधिकार कर लिया। उसने पर्वत और नगरके मन्दिरोंको क्रूरतापूर्वक विनष्ट कर दिया। जैन मन्दिरोंका विनाश भी इसीने किया था, जिनके भग्नावशेष अब तक मिलते हैं।

पर्वतपर काली देवीका भी एक मन्दिर है। हिन्दू लोग वहाँ दर्शनार्थ जाते हैं। इस काली देवीके सम्बन्धमें कई अद्‌भुत किंवदन्तियाँ सुननेको मिलती हैं। एक तो यह कि मुनि विश्वामित्रने इस स्थानपर तपस्या की थी। कुछ लोग कहते हैं कि विश्वामित्र ऋषिने यहाँ तपस्या करते समय कालीदेवीको विराजमान करके उसकी पूजा की थी।

एक और किंवदन्ती इस देवीके सम्बन्धमें सुननेमें आयी है। कहा जाता है कि फतई रावलके राज्य-कालमें नवदुर्गा (नवरात्रि) के उत्सवमें स्त्रियाँ गरवा नृत्य किया करती थीं। इन स्त्रियोंमें काली देवी भी सुन्दर स्त्री-वेषमें सम्मिलित होती थी। एक दिन राजाके नाईने क्षौर क्रिया करते समय स्त्रियोंके गरवा नृत्यमें एक यौवनवती सुन्दरीके आनेकी चर्चा छेड़ दी। नापित-ने उस युवतीके रूप-सौन्दर्यका इतना सरस वर्णन किया कि राजा उसे देखनेके लिए अधीर हो उठा। वह वेष बदलकर वहाँ पहुँचा जहाँ नृत्य चल रहा था। राजाने उस सुन्दरीको देखा और कामविह्वल होकर उसने सुन्दरीका आँचल पकड़ लिया। देवीने राजाको बहुत समझाया। उन्होंने सांसारिक भोग-सामग्री देनेकी बात कही, किन्तु राजा नहीं माना, वह बराबर आग्रह करता रहा। इससे देवीको क्रोध आ गया। उसने शाप दिया—'तेरे वंशका नाश होगा, तेरी मृत्यु होगी और इस नगरका विनाश होगा।' शाप देकर देवी अन्तर्धान हो गयी।

इसके कुछ समय पश्चात् ही राज्यपर मुसलमानोंने प्रबल वेगसे आक्रमण किया। इसमें राजा मारा गया, अनेक कुटुम्बी मार डाले गये, स्त्रियोंने अग्निमें कूदकर शील-रक्षा की। आततायियोंने नगरको लूट लिया। नगरमें विध्वंस-लीला मचा दी। मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट कर

दिये गये और मन्दिरोंके स्थानपर बड़ी-बड़ी मसजिदें खड़ी की गयीं। पश्चिमकी ओर अब भी उस कालकी एक विशाल मसजिद खड़ी हुई है। उसके निकट निर्मल जलसे परिपूर्ण बावड़ी है। लगभग ११ मसजिदोंके अवशेष अब भी बिखरे पड़े हैं।

क्षेत्र-दर्शन

धर्मशालासे निकलते ही सम्मुख पर्वतराजके दर्शन होते हैं। पर्वतपर चढ़नेके लिए सड़क बनी हुई है जो लगभग ढाई मील है। पर्वतकी चढ़ाई लगभग साढ़े तीन मील है। अत: एक मील कच्चा मार्ग है। इस पर्वतपर प्राचीन कालमें सत्रह गढ़ थे जिनके सात दरवाजे भग्नावस्थामें आज भी विद्यमान हैं। अन्तिम दरवाजा नगाड़खानेका दरवाजा कहलाता है। यहाँके पुरातन दिगम्बर जैन मन्दिर मुहम्मद वेगड़ा नामक नवाबने वि. सं. १५४० में प्रायः विनष्ट कर दिये थे।

जहाँ तक पक्की सड़क बनी हुई है, वहाँ तक बसें, टैक्सी और कारें जाती हैं। वहाँपर रैस्टोरैन्ट, लाज, खाने-पीनेके सामानकी दुकानें और सरकारी रैस्ट हाउस बने हुए हैं। वहाँ जैनोंके समान हिन्दू भी विशाल संख्यामें आते हैं। पर्वतके ऊपरी शिखरपर कालीदेवीके मन्दिरकी मान्यता हिन्दू समाजमें दूरके प्रान्तोंमें भी है। कहते हैं, इस मन्दिरका निर्माण ग्वालियर नरेशने कराया था तथा इसमें जैन मन्दिरोंकी सामग्री प्रयुक्त हुई थी।

नगाड़खानेका दरवाजा पार करनेके बाद लगभग एक कि. मी. सीधा जानेपर पहाड़के शिखरपर बाजार बसा हुआ है। वहाँपर निर्मल जलसे परिपूर्ण साँसिया नामक एक विशाल तालाब है। तालाबसे दायीं ओर कुछ आगे बढ़नेपर सर्वप्रथम तीन जैन मन्दिर और एक मन्दिरिया मिलते हैं। सभी मन्दिरोंका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

१. प्रथम मन्दिर सुपार्श्वनाथका है। इसमें मूलनायक भगवान् सुपार्श्वनाथकी १३ फणा-वलियुक्त ३ फुट १० इंच ऊँची श्वेतवर्णकी एक पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। चरण-चौकीपर स्वस्तिक लांछन है। इसकी प्रतिष्ठा भट्टारक कनककीर्तिने माघ शुक्ला १३, संवत् १९३७ में करायी थी।

बायीं ओर भगवान् ऋषभदेवकी २ फुट ऊँची संवत् १६४३ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है तथा दायीं ओर संवत् १६७८ में प्रतिष्ठित अजितनाथकी २ फुट १ इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। बगलमें १ फुट २ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है।

मूलनायकके आगे २ फुट १ इंच ऊँची और संवत् १९३७ में प्रतिष्ठित पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर गुलाबी वर्णकी १ फुट ९ इंच अवगाहनावाली और संवत् १६६९ में प्रतिष्ठित सम्भवनाथ भगवान्की पाषाण-मूर्ति है। इनके अतिरिक्त ३ पाषाण-मूर्तियाँ संवत् १९३७ और १ पाषाण-मूर्ति संवत् १६६५ की भी है।

गर्भगृहके दायीं ओर एक पाषाणमें दो चरण-चिह्न बने हुए हैं। मन्दिरके प्रवेशद्वारमें घुसते ही बायीं ओर एक वेदीमें २ फुट १० इंच उत्तुंग एक खड्गासन मूर्ति है। चरणोंके दोनों ओर दो खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दोनों सिरोंपर इन्द्र खड़े हुए हैं। सिरके दोनों ओर पुष्पमालधारी गन्धर्व हैं।

बायीं ओर १ फुट ३ इंचकी तथा दायीं ओर १ फुटकी खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

ये मूर्तियाँ एक छोटे कमरेमें चबूतरानुमा वेदीपर हैं।

२. महावीर मन्दिर—सुपार्श्वनाथ मन्दिरके द्वारके सामने एक मन्दिरिया बनी हुई है।

इसमें महावीर स्वामीकी श्वेत पाषाणकी १ फुट ६ इंच ऊँची और वीर नि. संवत् २४७७ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पीठासनके सामने दो चरणचिह्न बने हुए हैं।

३. शान्तिनाथ मन्दिर—मन्दरियाके सामने एक ऊँचे चबूतरेपर यह मन्दिर बना हुआ है। इसमें केवल गर्भगृह है। एक ऊँचे चबूतरेपर १ फुट ७ इंच ऊँची वी. नि. संवत् २४७७ में प्रतिष्ठित भगवान् शान्तिनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर १ फुट ४ इंचकी सलेटी वर्णकी खड्गासन प्रतिमा है। उसके बगलमें १ फुट ३ इंच अवगाहनावाली २१ खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। दायीं ओर सलेटी वर्णकी १ फुट ९ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। बगलमें १ फुट २ इंचकी खड्गासन प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त १० प्रतिमाएँ और हैं।

यहाँसे कालीदेवीके मन्दिरके लिए मार्ग जाता है। यह एक ऊँची टेकरीके ऊपर है। इन जिनालयोंके दर्शन करके लौटना चाहिए। लौटते हुए लगभग दो फर्लांग चलनेपर दायीं ओर चन्द्रप्रभ मन्दिर मिलता है।

४. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इस मन्दिरमें गर्भगृह और सभामण्डप बने हुए हैं। वेदीपर मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभकी संवत् १९६७ में प्रतिष्ठित २ फुट ३ इंच उत्तुंग श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर १ फुट ९ इंच ऊँची कृष्णवर्ण नेमिनाथकी और दायीं ओर १ फुट १० इंच ऊँची कृष्णवर्ण मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमा है। ये दोनों ही प्रतिमाएँ संवत् १९६७ में प्रतिष्ठित हुई थीं।

इस मन्दिरके सामने तेलिया तालाब है। इसके किनारेपर एक ऊँची चौकीपर प्राचीन मन्दिर भग्नावस्थामें खड़ा है। मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। मन्दिरकी बाह्य भित्तियोंपर तीर्थंकरों और शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिरके शिल्पको देखनेसे यह मन्दिर ११-१२वीं शताब्दीका प्रतीत होता है। इसके निकट कई जिनालयोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। इन अवशेषोंमें अलंकृत स्तम्भ, तोरण आदि बहुमूल्य पुरातन सामग्री बिखरी हुई है। यह सामग्री पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें है।

५. भग्न मन्दिरके निकटसे एक कच्चा मार्ग अन्य प्राचीन मन्दिरोंको जाता है। सर्वप्रथम मल्लिनाथ मन्दिर मिलता है। इस मन्दिरमें गर्भगृह, सभामण्डप और अर्धमण्डप बने हुए हैं। गर्भगृहमें वेदीपर मूलनायक मल्लिनाथकी २ फुट १० इंच ऊँची श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। चरण-चौकीपर कोई लेख नहीं है।

बायीं ओर पद्मप्रभ भगवान्की श्वेतवर्णकी और दायीं ओर ऋषभदेवकी कृष्णवर्णकी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। दोनोंकी अवगाहना १ फुट १० इंच है तथा ये संवत् १९१८ में प्रतिष्ठित हुई हैं।

इस मन्दिरके निकट दो मन्दिर और हैं। यहाँ चारों ओर प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। सम्भवतः प्राचीन कालमें एक कम्पाउण्डके अन्दर ये मन्दिर बने हुए थे। मन्दिरोंकी आधार चौकियोंको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि पहले यहाँ मध्यमें कोई विशाल मन्दिर होगा और उसके चारों ओर अन्य मन्दिरोंका गुच्छक होगा।

६. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथकी यह प्रतिमा चिन्तामणि पार्श्वनाथ कहलाती है। यह प्रतिमा सप्तफणावलिसे मण्डित है। यह कृष्ण पाषाणकी ३ फुट ४ इंच ऊँची है और पद्मासन मुद्रामें है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख सुदी ३, रविवार संवत् १६६० को बलात्कारगणके भट्टारक वादिभूषणके द्वारा हुई थी।

बायीं ओर ३ फुट ५ इंच ऊँची शान्तिनाथ भगवान्‌की श्वेत पाषाणकी खड्गासन प्रतिमा है। यह एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण है। इसके दोनों पार्श्वोंमें दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इसके ऊपर कोनोंपर दो मालाधारी देव हैं तथा अधोभागमें हाथ जोड़े हुए दो भक्त बैठे हैं।

दायीं ओर ३ फुट ३ इंच ऊँची आदिनाथ भगवान्‌की श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा एक पाषाणफलकमें उत्कीर्ण है। फलकमें दो पद्मासन और दो खड्गासन मूर्तियाँ और हैं।

सभामण्डपमें सप्तफणयुक्त पार्श्वनाथकी ३ फुट ५ इंच अवगाहनावाली कृष्णवर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है जिसकी प्रतिष्ठा वीर नि. संवत् २४७७ में हुई थी।

बायीं ओर ११ इंचके एक शिलाफलकमें श्वेतवर्णकी एक खड्गासन प्रतिमा है। उसके परिकरमें दो पद्मासन और दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाके ऊपर छत्र और दो गज बने हुए हैं। दायीं ओर एक फुटके शिलाफलकमें एक खड्गासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। पूर्व प्रतिमाके समान इसमें भी दो पद्मासन और दो खड्गासन प्रतिमाएँ, छत्र और दो गज हैं।

एक आलेमें भूरे वर्णकी १ फुट ८ इंच ऊँची अजितनाथ भगवान्‌की खण्डित पद्मासन प्रतिमा रखी है। इस फलकमें ऊपरके भागमें माला लिये हुए देव-देवियाँ, गज और दो खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। एक खण्डित मूर्ति और भी रखी है। यह फलक १ फुट ऊँचा और १ फुट ९ इंच चौड़ा है। मूर्ति पद्मासन है। दायीं ओर मालाधारी देव उत्कीर्ण हैं।

७. पार्श्वनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें गर्भगृह, सभामण्डप और तीन ओर अर्धमण्डप बने हुए हैं। वेदीपर नौफणयुक्त भगवान् पार्श्वनाथकी २ फुट १० इंच उत्तुंग और संवत् १९६० में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

बायीं ओर संवत् १६४२ में प्रतिष्ठित १ फुट ८ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी पद्मप्रभ भगवान्‌की पद्मासन प्रतिमा है। तथा दायीं ओर १ फुट ५ इंच ऊँची संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है।

मन्दिरकी रथिका और जंघापर देवी-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ये सभी मन्दिर ११-१२वीं शताब्दीके अनुमान किये जाते हैं। किन्तु वर्तमानमें इन मन्दिरोंमें जो मूर्तियाँ विराजमान हैं, वे संवत् १५४८ के पश्चात्कालीन हैं। इन मन्दिरोंकी मूल प्रतिमाओंका क्या हुआ, इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता।

इन मन्दिरोंसे कुछ ऊपरकी ओर पहाड़ पर जलके दो गहरे कुण्ड बने हुए हैं। कुछ वर्ष पूर्व एक सिंह कुण्डमें गिर पड़ा था। प्रयत्न करनेपर भी वह कुण्डसे बाहर नहीं निकल सका था। वह कई दिन तक कुण्डमें पड़ा हुआ दहाड़ता रहा। उस समय कुण्डमें अधिक जल नहीं था। तब सरकारकी ओरसे उसे निकालकर पिंजड़ेमें बन्द करके चिड़ियाघर भेज दिया गया।

तलहटीके मन्दिर

तलहटीमें दो मन्दिर बने हुए हैं। एक तो महावीर मन्दिर, जो धर्मशालाके मध्यमें बना हुआ है तथा दूसरा पार्श्वनाथ मन्दिर, जो धर्मशालासे बाहर बना हुआ है।

महावीर मन्दिर—वेदीपर २ फुट ६ इंच उत्तुंग और संवत् १९४४ में प्रतिष्ठित भगवान् महावीरकी श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर ५ फुट ३ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें सम्भवनाथ भगवान्‌की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। फलकका वर्ण श्वेत है। प्रतिमाके ऊपर छत्र है। उसके ऊपर दुन्दुभिवादन करते हुए देव हैं। छत्रसे नीचे गजपर आरूढ़ पुष्पमाल लिये देवी है। उससे नीचे दोनों पार्श्वोंमें १-१ पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा तथा उससे

नीचे १–१ खड्गासन प्रतिमा है। सबसे अधोभागमें खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इस फलकका प्रतिष्ठाकाल संवत् १२४५ है।

दायीं ओर एक श्वेत फलकमें अजितनाथ भगवान्की पद्मासन प्रतिमा है। फलकका आकार ४ फुट ५ इंच है। ऊपरका तथा दायीं ओरका भाग खण्डित प्रतीत होता है। नीचे खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख सुदी ४ शुक्रवार संवत् १२४५ में पण्डिताचार्य भट्टारक सहस्रकीर्तिने की थी।

आगेकी पंक्तिमें १ फुट ७ इंच ऊँची और संवत् १९४४ में प्रतिष्ठित ६ पाषाण मूर्तियाँ तथा उनसे आगे ७ धातु-मूर्तियाँ हैं, जिनमें २ चौबीसी हैं। गर्भगृहके द्वारके दोनों पार्श्वोंमें १–१ वेदी है। बायीं ओरकी वेदीमें वीर नि. संवत् २४७७ में प्रतिष्ठित १ फुट ६ इंच ऊँची श्वेतवर्ण सम्भवनाथकी पद्मासन मूर्ति है। इसके आगे १ फुट १ इंच ऊँची दो खड्गासन धातु-मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ राम-पुत्र मदनांकुश और लवणांकुश अर्हन्तोंकी हैं। इनकी प्रतिष्ठा संवत् २०२५ में हुई थी।

दायीं ओर की वेदीमें श्वेत पाषाणकी २ फुट २ इंच ऊँची पार्श्वनाथ भगवान्की संवत् १९४४ के प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा है। इसके आगे धातुकी दो चौबीसी हैं।

पार्श्वनाथ वेदीके निकट पीतलका ४ फुट १० इंच ऊँचा पंचमेरु जिनालय है। यह चतुर्मुखी है। प्रत्येक खण्डमें एक पद्मासन प्रतिमा है। उसके ऊपर छत्र है। छत्रके दोनों ओर हाथीपर कलश लिये हुए इन्द्र हैं। हाथीसे नीचे दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। उनसे नीचे दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। पीठासनके नीचे हाथी और सिंह हैं तथा दोनों ओर कोनोंमें यक्ष-यक्षी हैं। इस प्रकार प्रत्येक खण्डमें ५×४=२० मूर्तियाँ हैं और चार खण्डोंमें २०×४=८० मूर्तियाँ हैं। मूर्तियोंसे नीचेके भागमें सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ज्ञानकीर्ति और ज्ञानभूषण भट्टारकोंकी कायोत्सर्ग मुद्रावाली मूर्तियाँ हैं। इनके हाथोंमें माला और पीछी है तथा नीचे कमण्डलु रखा है। मूर्तियोंके नीचे उनके नाम भी अंकित हैं। इसपर अंकित लेखके अनुसार संवत् १५३७, वैशाख सुदी ३, सोमवारको दिलुलिग्राममें राजाधिराज भानुविजयके राज्यमें मूलसंघ नन्दिसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण कुन्दकुन्दाचार्यान्वयके भट्टारक पद्मनन्दिदेव, तत्पट्टस्थ भट्टारक सकलकीर्तिदेव तत्पट्टस्थ भट्टारक भुवनकीर्तिदेव तत्पट्टस्थ भट्टारक ज्ञानभूषण गुरुके उपदेशसे इसकी प्रतिष्ठा की गयी। भट्टारकोंकी चार मूर्तियोंमें जो भट्टारक ज्ञानकीर्तिकी मूर्ति उत्कीर्ण की गयी है, वे भट्टारक ज्ञानभूषणके गुरुबन्धु और भट्टारक भुवनकीर्तिके शिष्य थे। भट्टारक ज्ञानकीर्तिने मानपुरमें भट्टारक पीठकी स्थापना की, जबकि शेष तीन भट्टारक ईडरकी पीठसे सम्बन्धित थे।

लेखसे यह ज्ञात होता है कि यह पंचमेरु मूलतः इस मन्दिरका नहीं है, बल्कि दूसरे मन्दिरसे लाकर यहाँ विराजमान किया गया है। इसी प्रकार मुख्य वेदीपर विराजमान सम्भवनाथ और अजितनाथकी बारहवीं शताब्दीकी दोनों प्रतिमाएँ भी इस मन्दिरकी नहीं हैं, बल्कि किसी अन्य मन्दिरसे लायी गयी हैं। हमारा अनुमान है कि ये प्रतिमाएँ पावागढ़ पर्वतके प्राचीन मन्दिरोंसे लायी गयी होंगी। यदि हमारा अनुमान सही है तो वे मन्दिर १२ शताब्दी या इससे पूर्वके हैं, इस बातकी भी पुष्टि हो जाती है।

इस मन्दिरके सामने ५० फुट ऊँचा भव्य मानस्तम्भ है।

पार्श्वनाथ मन्दिर—धर्मशालासे बाहर पार्श्वनाथ मन्दिर है। इस मन्दिरमें गर्भगृह, सभामण्डप और बन्द बरामदा है। गर्भगृहमें मूलनायक भगवान्की प्रतिमा विराजमान है। यह कृष्ण पाषाणकी है, पद्मासन है, सप्तफणी है और १ फुट ८ इंच उत्तुंग है। इसकी प्रतिष्ठा वीर नि. संवत् २४७७ में हुई थी।

बायीं ओर आदिनाथ और दायीं ओर पद्मप्रभ भगवान्‌की १ फुट २ इंच ऊँची और वीर संवत् २४७७ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

मूलनायकके सामनेकी पंक्तिमें कृष्ण पाषाणकी दो पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। बायीं ओरकी प्रतिमा १ फुट २ इंच ऊँची है और १५ फणयुक्त है तथा दायीं ओरकी प्रतिमा १ फुट ४ इंच ऊँची है और १३ फणवाली है। दोनोंकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४७७ में हुई थी।

नीचेकी कटनीपर एक सिंहासनमें पीतलकी ८ इंच ऊँची पार्श्वनाथ मूर्ति है। दायीं ओर धातुकी हंसवाहिनी चतुर्भुजी पद्मावतीकी मूर्ति है। इसके शीर्ष भागपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं।

गर्भगृहके द्वारके ऊपर भित्तिपर शयन करती हुई तीर्थंकर माता और रात्रिमें देखे हुए उसके १६ स्वप्नोंका भव्य चित्रांकन है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर कुल तीन धर्मशालाएँ हैं, जिनमें कमरोंकी कुल संख्या ६८ है। धर्मशालाके बाहर ही पोस्ट ऑफिस और बाजार हैं। यहाँके पर्वतका दृश्य अत्यन्त मनमोहक और आह्लादकारक है। यहाँकी प्राकृतिक सुषमा और दृश्यावली दर्शनीय है। यहाँके जल-प्रपात और नदीने तो यहाँके सौन्दर्यको चार चाँद लगा दिये हैं। क्षेत्रपर यात्रियोंके लिए लैम्प, गद्दे, रजाई, बर्तन, रसोईका सामान, पूजन-सामग्री आदिकी समुचित व्यवस्था है। धर्मशालाके बाहर ही बाजार है, जहाँ सभी आवश्यक सामान मिल जाता है।

मार्ग

पश्चिमी रेलवेकी बड़ौदा-रतलाम लाइनपर चांपानेर रोड स्टेशन है। वहाँसे पावागढ़के लिए छोटी लाइन जाती है। स्टेशनसे लगभग आधे मीलकी दूरीपर दिगम्बर जैन धर्मशाला है। बड़ौदा और गोधरासे पावागढ़ तक नियमित बस सेवा है। बस जैन धर्मशाला तक पहुँचाती है।

वार्षिक मेला

यहाँपर माघ शुक्ला १३ से माघ शुक्ला १५ तक प्रतिवर्ष मेला होता है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र,
पावागढ़ (बड़ौदा), गुजरात।

महुवा (विघ्नहर पार्श्वनाथ)

अवस्थिति और मार्ग

'श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुवा' सूरत जिलेमें वारडोली स्टेशन से १५ कि. मी. दूर पूर्णा नदीके तटपर अवस्थित है। यह क्षेत्र 'विघ्नहर श्री पार्श्वनाथ महुवा'के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ जानेके लिए वारडोली, नवसारी और सूरतसे बसें मिलती हैं। महुवामें पोस्ट ऑफिस, टेलीफोन भी है। एक महुवा भावनगर जिलेमें भी है किन्तु वहां कोई दिगम्बर जैन तीर्थ नहीं है।

अतिशय क्षेत्र

यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमाके चमत्कारोंके सम्बन्धमें बड़ी ख्याति है। कहते हैं, इस प्रतिमाके भावसहित दर्शन करनेसे आये हुए समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। इसीलिए इसके दर्शन करनेके लिए एवं मनौती मनानेके लिए यहाँ जैनोंके अतिरिक्त जैनेतर भी बड़ी संख्यामें आते हैं।

इस मूर्तिके बारेमें ऐसा कहा जाता है—एक बार महुआके सेठ डायभाई और कायभाई दोनों भाइयोंको स्वप्न आया। स्वप्नमें उन्होंने पार्श्वनाथकी इस मूर्तिको देखा। कोई दिव्य पुरुष उन्हें प्रेरणा कर रहा था कि भगवान् पार्श्वनाथकी उक्त मूर्ति सुलतानाबाद (पश्चिम खानदेश) के तुलावगाँव भूमिके अन्दर अमुक स्थानपर है। उस स्थानको खुदवानेका प्रबन्ध करें। प्रातःकाल उठनेपर दोनों भाई आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त होकर देवदर्शन और पूजनको गये, वहाँसे लौटकर वे स्वप्नमें देखे हुए तुलावगाँवमें पहुँचे और स्वप्नमें यथानिर्दिष्ट स्थानकी खुदाई करायी। खुदाई करानेपर भगवान् पार्श्वनाथकी भव्य प्रतिमा निकली। उसे रथमें विराजमान करके महुआ लाये और वहाँके चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिरमें भट्टारक श्री विद्यानन्दजी द्वारा इसकी प्रतिष्ठा करायी गयी।

मूर्तिके प्रकट होनेके सम्बन्धमें एक अन्य किंवदन्ती भी प्रचलित है। कहते हैं, सुलतानाबाद गाँवका एक किसान खेत जोत रहा था। अकस्मात् उसका हल किसी ठोस वस्तुसे रुक गया। तब उसने वहाँ खुदाई की तो यह मूर्ति प्रकट हुई। कुछ दिनों तक तो किसानने प्रतिमाको एक झोंपड़ीमें रखा। जब जैनोंको ज्ञात हुआ तो वे उसे रथमें विराजमान करके ले चले। वह रथ यहाँ आकर ठहर गया। फलतः इस मन्दिरके भूगर्भगृहमें उस मूर्तिको विराजमान कर दिया गया।

विराजमान होते ही इस मूर्तिके चमत्कारोंकी ख्याति जनतामें फैलने लगी। जनताके हर सम्प्रदाय और जातिके लोग उस ख्यातिसे आकर्षित होकर पार्श्व प्रभुके चरणोंमें पहुँचने लगे। कहते हैं, जो व्यक्ति मनमें कोई कामना लेकर भक्तिभावके साथ पार्श्वनाथके दरबारमें जाता है, उसकी मनोकामना अवश्य पूरी होती है।

जिस प्रकार ३०-४० वर्ष पूर्व श्री महावीरजी क्षेत्रपर भक्त मैना और गूजर भक्तिके अतिरेकमें महावीर बाबाके लिए कढ़ी-चावल तक चढ़ाते थे, कुछ वैसा ही दृश्य यहाँ भी देखनेको मिलता है। अनेक भक्तजन तो यहाँ बैंगन-जैसे फल और सब्जी तक चढ़ाते हैं। कुछ भक्त जन मनौती मनाते हैं तो भगवान्‌के लिए मंगल कलश और गाजे-बाजेके साथ चढ़ावा चढ़ाने आते हैं। उनकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसीलिए पार्श्वनाथको ये निष्कपट अबोध भक्तजन संकल्प-सिद्धिके देवता कहते हैं। जिन लोगोंको पुत्र-प्राप्तिकी कामना होती है, वे चाँदीका पालना चढ़ाते हैं, नेत्र-रोगी चाँदीके नेत्र, पंगु चाँदीकी वैशाखी, इसी प्रकार अन्य रोगी चाँदीकी कोई वस्तु स्वेच्छासे बनवाकर यहाँ चढ़ाते हैं। अनेक भक्तजन अपने आराध्यके लिए रुपये-पैसे भी चढ़ाते हैं। यहाँ सप्ताहमें शनिवार और रविवारको विशेष भीड़ रहती है।

क्षेत्रका माहात्म्य

इस क्षेत्रकी महिमाका वर्णन करते हुए ब्रह्म ज्ञानसागरजीने 'सर्वतीर्थ-वन्दना' नामक अपनी रचनामें बताया है कि इस क्षेत्रपर मुनि-जनोंका विहार होता था और मुनिजन यहाँ ठहर-कर ग्रन्थोंका अभ्यास करते थे। उल्लेख इस प्रकार है—

"मधुकर नयर पवित्र यत्र श्रावक धन वासह।
मुनिवर करत बिहार बहुविध ग्रन्थ अभ्यासह।

जिनवर धाम पवित्र भूमिगृहमें जिन पासह ।
... ... ||
नामे नवनिधि संपजे सकल विघ्न भंजे सदा ।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति विघ्नहरो वंदूं मुदा ॥६९॥

लगता है, प्राचीन कालमें यह क्षेत्र विद्यारसिकोंके लिए केन्द्र-स्थान रहा है। यहींपर बैठकर मूलसंघ सरस्वतीगच्छके भट्टारक प्रभाचन्द्रके शिष्य भट्टारक वादिचन्द्रने 'ज्ञानसूर्योदय' नाटककी रचना की थी। उन्होंने इस ग्रन्थकी समाप्ति विक्रम सं. १६४८ में की थी, जैसा कि इस नाटकके अन्तिम श्लोकसे ज्ञात होता है—

"वसु-वेद-रसाब्जके वर्षे माघे सिताष्टमी दिवसे ।
श्रीमन्मधूकनगरे सिद्धोऽयं बोधसंरभः ॥"

अर्थात्–मधूक नगर (महुवा) में सं. १६४८ में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। इसी प्रकार कारंजाके सेनगणान्वयी लक्ष्मीसेनके शिष्य ब्रह्महर्षने भी 'महुवा विघन हरे सहु धेनं' कहकर महुआके पार्श्वनाथका उल्लेख किया है। यह उल्लेख उनकी 'पार्श्वनाथ जयमाला'का है।

भट्टारक ज्ञानसागर और वादिचन्द्रके उल्लेखोंसे यह भी ज्ञात होता है कि महुआका प्राचीन नाम मधुकर नगर या मधूकनगर था। तथा यहाँ प्राचीन कालमें जैनोंकी विशाल जनसंख्या थी। कहीं-कहीं इस नगरका नाम मधुपुरी भी मिलता है।

मन्दिरका विनाश

इस अतिशय क्षेत्रपर न जाने क्या भयंकर भूल या अशुद्धि हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप इस क्षेत्रको भीषण आग और बाढ़की दुर्घटनाका तीन बार शिकार होना पड़ा। प्रथम बार सन् १९२९ में मन्दिरके आसपास १० घरोंमें भीषण अग्निकाण्ड हुआ। जिसमें मन्दिरकी ऊपरी मंजिलका भाग अग्निमें भस्म हो गया। वहाँ भट्टारक-गद्दी और शास्त्र भण्डार था। यहाँ उस समय दो मन्दिर थे—चन्द्रप्रभ मन्दिर और पार्श्वनाथ मन्दिर। इन मन्दिरोंमें लकड़ीपर दर्शनीय नक्काशीका काम था। किन्तु अधिकांश नष्ट हो गया। दूसरी बार सन् १९६८ और तीसरी बार सन् १९७० में विनाशकारी बाढ़के प्रकोपने मन्दिरको अपनी चपेटमें ले लिया। दोनों ही बार मन्दिरका अधिकांश भाग पानीमें डूब गया। इससे मन्दिरको बहुत क्षति पहुँची। तीन बारकी इन दुर्घटनाओंमें दोनों मन्दिर धराशायी हो गये अथवा क्षतिग्रस्त हो गये। किन्तु यह संयोग ही था कि किसी मूर्तिको कोई क्षति नहीं पहुँची और विघ्नहर पार्श्वनाथकी प्रतिमा एवं भोंयरा सुरक्षित रहे।

तब बम्बई, सूरत तथा अन्य स्थानोंके जैन बन्धुओंने एकत्रित होकर मन्दिरके पुनर्निर्माणका निश्चय किया। फलतः अब नवीन महत्त्वाकांक्षी योजनाके अनुसार शिखरबन्द मन्दिर, धर्मशाला और स्वाध्याय मन्दिरका निर्माण किया जा रहा है। विश्वास किया जाता है कि निर्माणकार्य सम्पन्न होनेपर मन्दिर विशाल, भव्य और अधिक सुरक्षित बन जायेगा।

क्षेत्र-दर्शन

मन्दिरका निर्माण-कार्य चल रहा है। चन्द्रप्रभ मन्दिरकी मूर्तियाँ एक कमरेमें विराजमान कर दी गयी हैं। तथा विघ्नहर पार्श्वनाथ अपने मूलस्थान भोंयरेमें ही विराजमान हैं। कुछ

सीढ़ियाँ उतरकर भोंयरेमें एक वेदीपर श्यामवर्णकी चार फुट ऊँची एवं सप्त फणवाली श्री विघ्नहर पार्श्वनाथकी भव्य प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाकी नाक और हाथ कुछ खण्डित हैं। बायीं ओर भगवान् चन्द्रप्रभकी २ फुट २ इंच अवगाहनावाली श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् १६४८ की प्रतिष्ठित है तथा दायीं ओर श्वेतवर्ण शान्तिनाथ विराजमान हैं। अवगाहना आदि पूर्व प्रतिमाके समान है।

आगेकी पंक्तिमें भगवान् महावीरकी साढ़े सात इंचकी तथा उसके इधर-उधर साढ़े पाँच इंच ऊँची पार्श्वनाथकी धातु प्रतिमाएँ हैं।

गर्भगृहको छड़दार किवाड़ोंका अवरोध देकर सुरक्षित कर दिया गया है।

एक अन्य कमरेमें २३ पाषाण प्रतिमाएँ तथा २९ धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूर्ति-लेखोंके अनुसार इनमें संवत् १३९०, १५२२, १५३५, १५४८, १६१४, १६६१, १६६५, १८२७ और १९११ की प्रतिमाएँ हैं। कुछ प्रतिमाओंके पीठासनपर लेख नहीं हैं। इनमें दो मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं—पहली है आदिनाथ भगवान्‌की और दूसरी है पद्मावतीकी। साढ़े चार फुट ऊँचे एक शिलाफलकमें भगवान् आदिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। छत्रवाला भाग खण्डित है। सिरके दोनों ओर गन्धर्वयुगल माला लिये हुए हैं। मुख्य मूर्तिके दोनों पार्श्वोंमें ११-११ पद्मासन मूर्तियाँ तथा चरणोंसे अधोभागमें खड्गासन मूर्तियाँ हैं। चरणोंके दोनों ओर भक्त हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। इससे अधोभागमें बायीं ओर यक्ष तथा दायीं ओर यक्षी है। सिंहासनके सिंहों और गजोंके मध्यमें ललितासनमें एक देवी बैठी है।

इस मूर्तिके पादपीठपर कोई लेख अंकित नहीं है। किन्तु शैलीके आधारपर यह ११-१२वीं शताब्दीकी अनुमानित की गयी है।

एक अन्य मूर्ति पद्मावती देवीकी है जो संवत् १८२७ की है। इसकी अवगाहना २ फुट १ इंच है। देवीके शीर्षपर तीन फणोंका मण्डप है। उसके ऊपर भगवान् पार्श्वनाथ विराजमान हैं।

इस कमरेके निकट ही एक अन्य भोंयरेमें भी कुछ मूर्तियाँ विराजमान हैं।

धर्मशाला

मन्दिरके निकट धर्मशाला है। इसके अधिकांश भागमें मन्दिरोंका सामान रखा हुआ है, जिसमें लकड़ीके कुछ ऐसे खण्ड भी हैं, जिनके ऊपर लेख अंकित हैं। ये खण्ड इन लेखोंके कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य कहे जा सकते हैं। इन्हें व्यवस्थित करके काँचके फ्रेममें रख देना चाहिए, जिससे कीड़ों आदिसे इनकी रक्षा हो सके। शिलाओं, भित्तियों आदिपर उत्कीर्ण लेखोंके समान ही इन दारु-लेखोंका भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

धर्मशालामें बिजलीकी व्यवस्था है। मन्दिरमें कुआँ है, मन्दिरके निकट पूर्णा नदी है। आशा है, मन्दिरका निर्माण होनेपर धर्मशालामें यात्रियोंको सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध होंगी।

मेला

यहाँ दिनांक ८ मई सन् १९७४ को निर्माणाधीन मन्दिरके शिलान्यास मुहूर्तके अवसरपर एक विशाल समारोह हुआ था। वार्षिक मेला यहाँ नहीं होता।

व्यवस्था

मन्दिरकी व्यवस्थाके लिए 'श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुआ प्रबन्धक समिति' है।

पता—

मन्त्री, श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र,
पो. महुआ (जिला सूरत), गुजरात।

सूरत

मार्ग और अवस्थिति

सूरत पश्चिमी रेलवेका प्रख्यात स्टेशन है। बम्बई नगरसे यह २६३ कि. मी. है। यह ताप्ती नदीके तटपर बसा हुआ है जबकि दूसरे तटपर रांदेर है। इसका अपरनाम सूर्यपुर भी मूर्ति-लेखों और प्रशस्तियोंमें उपलब्ध होता है। प्राचीन कालमें यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था और जलमार्ग द्वारा बड़े पैमानेपर व्यापार होता था। तबसे इस नगरकी समृद्धि निरन्तर बढ़ती गयी और अब यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया है।

स्थापनाका इतिहास

इसकी स्थापनाके सम्बन्धमें बताया जाता है कि पहले सूर्यपुर नामका एक छोटा-सा गाँव था। किन्तु बादमें एक हिन्दू गृहस्थ गोपीके प्रयत्नोंसे इस गाँवकी काया पलट हो गयी। ब्राह्मण-पुत्र गोपीने 'सूरज' की स्मृतिमें, जो एक प्रसिद्ध नर्तकी थी, सन् १५२१ में तत्कालीन बादशाह मुजफ्फरशाहके द्वारा इस गाँवका नाम 'सूरत' रखाया और उसका विकास कराया। धीरे-धीरे गाँव लुप्त हो गया और उसका स्थान एक विकसित और वैभवशाली शहरने ले लिया। सन् १५२६ में गोपीने यहाँ एक तालाब बनवाया जो खेतरबाड़ीके पास गोपी तालाबके नामसे अब भी मौजूद है।

सूरतपर तुगलकवंशने शासन किया। फिर गुजरातके बादशाह यहाँके शासक बने। गुजरातके तीसरे मुजफ्फरशाहने बादशाह अकबरके विरुद्ध बगावत कर दी। तब अकबर फौज लेकर स्वयं आया और सूरतपर अधिकार किया। मुगलोंके बाद यह अँगरेजोंके अधिकारमें चला गया।

इसके व्यापारिक महत्त्वको देखते हुए अँगरेजोंने सन् १६१४ में मुगल बादशाह जहाँगीरसे आज्ञा लेकर एक कोठी कायम की। उस समय मुगल दरबारमें सर टामस रो अँगरेज राजदूत था। औरंगजेब बादशाहके समय तारीख ५ जनवरी १६६४ को हिन्दू-कुल-गौरव छत्रपति शिवाजी-ने इस शहरको बुरी तरह लूटा। कहते हैं, इस लूटमें उन्हें तीस करोड़ रुपयेकी आय हुई।

जैन मन्दिर

सूरतमें सात दिगम्बर जैन मन्दिर और ६ चैत्यालय हैं। नवापुरामें चार मन्दिर हैं—मेवाड़ाका, गुजरातियोंका, चौपड़ाका और दांडियाका। एक दिगम्बर जैन मन्दिर गोपीपुरामें है, जिसमें भट्टारकोंकी गद्दी है। चन्दावाड़ीके पास दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं।

यहाँ पहले तीन मन्दिर बहुत प्रसिद्ध थे—(१) चन्दप्रभ जिनालय, (२) आदिनाथ जिनालय और (३) वासुपूज्य जिनालय। इन जिनालयोंके उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों, प्रशस्तियों और मूर्तिलेखोंमें भी मिलते हैं। चन्द्रप्रभ जिनालयके सम्बन्धमें भट्टारक ज्ञानसागरजीने अपनी 'सर्वतीर्थ वन्दना' में इस प्रकार वन्दनापरक विवरण दिया है—

'गुज्जर देश पवित्र धर्मध्यान गुण मण्डित।
नगर सूर्यपुर नाम पाप मिथ्यात विहंडित।
श्रीचन्द्रप्रभदेव मनमोहन प्रासादह।
अगणित महिमा जास देखत मन आल्हादह॥
स्तवन कहे पातक हरे भविक जीव सेवे सदा।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति चन्द्रप्रभ वंदू मुदा॥७१॥'

सम्भवत: चन्द्रप्रभ जिनालयकी बहुमान्यता उसकी अतिशयसम्पन्नताके कारण थी। किन्तु आदिनाथ जिनालय और वासुपूज्य जिनालय उस समय साहित्यिक केन्द्र बने हुए थे। वहाँ रहकर बहुश्रुत भट्टारक ग्रन्थ प्रणयन करते थे अथवा प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करते थे। यहीं रहकर सेनगणके भट्टारक नरेन्द्रसेनने शक सं. १६५६ आश्विन कृष्ण १३ को यशोधर-चरितकी प्रति की। मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके भट्टारक महीचन्द्रके शिष्य जयसागरने संवत् १७३२ मगसिर सुदी १३ में सीताहरण और अनिरुद्धहरण नामक दो ग्रन्थ लिखे।

इसी प्रकार वासुपूज्य जिनालयमें गिरनारकी यात्राके लिए जाते हुए भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजी सूरत ठहरे, जहाँ माघ शुक्ला १ संवत् १७८५ को रामजी संघाधिपके पुत्र आनन्द नामक हूमड़ श्रावकने आपको णायकुमारचरिउकी एक प्रति भेंट की। इसी जिनालयमें जब उक्त भट्टारकजी ठहरे हुए थे, उस समय संवत् १७८७ भाद्रपद शुक्ला ५ को आर्यिका पासमतीके लिए श्रीचन्द्र विरचित कथाकोषकी प्रति लिखवायी।

इन मन्दिरोंमें एक छोटा किन्तु सबसे पुराना मन्दिर गुजरातियोंके मन्दिरकी शाखा खपाटिया चकलामें चन्दाबाड़ी धर्मशालाके पास है। इस मन्दिरमें भोंयरा (गर्भगृह) भी है। इसमें सबसे प्राचीन मूर्ति पार्श्वनाथ भगवान्‌की है जो संवत् १२३५ वैशाख सुदी १० को प्रतिष्ठित हुई थी। संवत् १९५६ में मन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ। प्रतिमाओंको भोंयरामेंसे ऊपर लाया गया और एक ऊँचा शिखरबन्द मन्दिर बनवाया गया।

चन्दावाड़ीके पास दूसरा बड़ा मन्दिर है। दिनांक २४ अप्रैल सन् १८३७ में यहांके माछलीपीठ मुहल्लेमें भयानक अग्निकाण्ड हुआ था। उसमें ६००० मकान जल गये थे। लगभग आधा शहर जल गया था। इसी अग्निकाण्डमें यह मन्दिर भी जलकर भस्म हो गया था, किन्तु प्रतिमाएँ सुरक्षित रही थीं। सन् १८३९ से १८४१ तक इस मन्दिरका पुनर्निर्माण हुआ और सन् १८४२ में मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई। इस मन्दिरमें संवत् १३७६ से १८९९ तककी मूर्तियाँ हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान् आदिनाथकी है। यह सं. १३७६ की है।

इन दोनों मन्दिरोंमें जितनी मूर्तियाँ हैं, वे सब बलात्कारगणके भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठित हैं।

नवापुरामें चिन्तामणि पार्श्वनाथका प्रसिद्ध मन्दिर है जो मेवाड़ा जातिके लोगोंने बनवाया था। इस मन्दिरके सम्बन्धमें एक बड़ी रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। गोपीपुराके भट्टारकके दो शिष्य थे—एक मूर्ख था और दूसरा विद्वान्। उन दोनोंमें आपसमें झगड़ा हो गया। मूर्ख शिष्यको लज्जा आयी। वह विद्याध्ययनके लिए कर्नाटक चला गया और खूब विद्वान् बन गया तथा करमसदकी गद्दीका भट्टारक बन गया। उसने सूरत आनेका विचार किया। उसका गुरुबन्धु

गोपीपुराका भट्टारक हो गया था। गोपीपुराके भट्टारकने सूरतके नवाबसे यह फर्मान निकलवा दिया कि करमसदके भट्टारकको नर्मदाके पार न उतरने दिया जाये। जब करमसदके भट्टारक सूरतके लिए प्रस्थान करके भड़ोंच (भृगुकच्छ) आये तो नाविकोंने उन्हें नर्मदाके पार उतारनेसे इनकार कर दिया। तब भट्टारकजीने वहीं शतरंजी बिछा ली और मन्त्र-बलसे नर्मदाके दूसरे तटपर आ गये। नाविकोंने भड़ोंचके नवाबको इस अद्भुत घटनाकी सूचना दी। नवाब वहाँ आया और भट्टारकजीसे क्षमा-याचना की। भट्टारकजी वहाँसे चलकर बरियाव आये और ताप्ती नदी पार करनी चाही किन्तु वहाँ भी नाविकोंने उन्हें पार उतारनेके लिए इनकार कर दिया। भट्टारकजी पुनः मन्त्र-बलसे सूरतमें बरियावी भागल द्वारपर आ गये। यहाँ उन्हें रोकनेके लिए द्वार बन्द कर दिये गये। तब वे मन्त्र-शक्तिसे आकाश-मार्ग द्वारा नवापुरामें उस स्थानपर आये, जहाँ मेवाड़ाका मन्दिर बना हुआ है। यह घटना सुनकर सूरतका नवाब और श्रावक आये और नवाबने अपनी भूलके लिए उनसे क्षमा माँगी। बादमें भट्टारकजीने उसी स्थानपर यह मन्दिर बनवाया। इन भट्टारकजीका नाम विजयकीर्ति था और इनके गुरु-भ्राताका नाम भट्टारक सकलकीर्ति था। इनके गुरुका नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति था। विजयकीर्तिने इस मन्दिरके भोंयरेमें अपने गुरुकी चरण-पादुका स्थापित करायी जो अब भी मौजूद है। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिजीका एक चित्र भी इस मन्दिरमें है जो उनके समयमें ही बनाया गया था। पहले यहाँ मेवाड़ा जातिके काफी घर थे किन्तु अब तो केवल ८-१० ही घर जैन हैं, शेष सब वैष्णव बन गये।

इस मन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी एक पाषाण प्रतिमाका प्रतिष्ठाकाल उसकी चरण-चौकीपर संवत् १३८० माह सुदी १२ रविवार अंकित है। पद्मावतीकी एक धातु-प्रतिमा संवत् ११६४ की[1], चौबीसीकी एक धातु-प्रतिमा सं. १४९० की और भगवान् आदिनाथकी एक धातु-प्रतिमा संवत् १४९७ की है।

नवापुरामें चोपड़ाका एक जैन मन्दिर है। इसमें पार्श्वनाथकी एक पाषाण-प्रतिमा संवत् ११६० की है और पद्मावतीकी एक धातु-प्रतिमा संवत् १२३५ की है।

नवापुरामें तीसरा जैन मन्दिर गुजराती मन्दिर है। इसमें पाषाण-फलकपर उत्कीर्ण चौबीसी है। उसके मूर्तिलेखमें जो प्रतिष्ठाकाल दिया गया है, वह ठीक नहीं पढ़ा जाता किन्तु उसमें केवल तीन ही अंक हैं। पहला अंक पढ़नेमें नहीं आया, उसके आगे ७५ के अंक हैं। यहाँ धातु-प्रतिमाएँ १३८०, १४२९, १४९९, १५०४, १५१८ की हैं।

रांदेरमें एक पुराना दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह सूरतके दांडियाके मन्दिरकी शाखा है। इसमें १६ इंच अवगाहनावाली भगवान् शान्तिनाथकी मूलनायक प्रतिमा है जो संवत् १६६६ में भट्टारक वादिचन्द्रके उपदेशसे प्रतिष्ठित हुई। मन्दिर हूमड़ स्ट्रीटमें है। रांदेरसे लगभग १ कि. मी. पर भट्टारक विद्यानन्द स्वामी तथा अन्य भट्टारकोंके चरण हैं।

मुसलमानोंके आगमनसे पूर्व सूरत तथा रांदेरमें जैनोंकी संख्या बहुत बड़ी थी। मुसलमानोंने मन्दिरोंको तोड़कर उन्हींके मलवेसे मसजिदें बना लीं। सन् १९०८ का गजेटियर बताता है कि रांदेरकी जामा मसजिद, मियाँ खरवा और मुंशीकी मसजिदें जैन मन्दिरोंको तोड़कर बनायी गयी हैं।

---

१. सूरतमें १२वीं शताब्दीकी जिन प्रतिमाओंका उल्लेख किया गया है, वे कुछ वर्ष पूर्व वहाँ विद्यमान थीं। ऐसे प्रमाण मिलते हैं। किन्तु वे अब वहाँ नहीं हैं।

भट्टारक पीठ

सूरतमें मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणके भट्टारकोंका पीठ भट्टारक पद्मनन्दीके शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने स्थापित किया था। चन्दाबाड़ीके पासवाले बड़े मन्दिरमें मूलनायक आदिनाथके पादपीठपर जो मूर्तिलेख अंकित है, उससे ज्ञात होता है कि इस परम्परामें निम्नलिखित भट्टारक हुए—

देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दी, मल्लीभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र, वादीचन्द्र, महीचन्द्र, मेरुचन्द्र, जिनचन्द्र, विद्यानन्दी।

इनके पश्चात् निम्नलिखित भट्टारक हुए—

देवेन्द्रकीर्ति, विद्याभूषण, धर्मचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, गुणचन्द्र, सुरेन्द्रकीर्ति।

इन भट्टारकोंने धर्म-रक्षाके अनेक कार्य किये, अनेक स्थानोंपर मन्दिर निर्माण कराये, मूर्ति-प्रतिष्ठाएँ करायीं। इन्होंने अनेक लोगोंको जैनधर्ममें दीक्षित किया। जिन नवदीक्षित लोगोंको रोटी-बेटी व्यवहारमें असुविधा अनुभव हुई, उनकी एक पृथक् जातिका निर्माण कर दिया। इससे उन लोगोंकी समस्याका समाधान हो गया। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंका निर्माण किया और ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करायीं।

देवेन्द्रकीर्तिजीने अवन्तिदेशमें अनेक प्रतिष्ठाएँ करायीं। तथा सात सौ कुटुम्बोंको जैनधर्ममें दीक्षित करके 'रत्नाकरजाति' नामसे उनकी एक पृथक् जाति स्थापित कर दी। आपके एक शिष्य त्रिभुवनकीर्तिने बलात्कारगणकी जेरहट शाखाकी स्थापना की।

देवेन्द्रकीर्तिके पट्टशिष्य विद्यानन्दी हुए। आपने सुदर्शनचरित नामक संस्कृत काव्यकी रचना की। कर्नाटकके अनेक राजाओंने आपका सम्मान किया था। आपके शिष्य श्रुतसागर सूरिने ज्येष्ठ जिनवरकथा, षोडश कारण कथा, मुक्तावली कथा, मेरुपंक्ति कथा, लक्षणपंक्ति कथा, मेघमाला सप्त परमस्थान-रविवार, चन्दनषष्ठी, आकाश पंचमी, पुष्पांजलि, निर्दुःख सप्तमी, श्रवण द्वादशी, रत्नत्रय आदि व्रतोंकी कथाएँ लिखीं। आपकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—औदार्य चिन्तामणि नामक प्राकृत व्याकरण, ज्ञानार्णवके गद्यभागकी टीका, तत्त्वत्रय प्रकाशिका, महाभिषेक टीका तथा श्रुतस्कन्ध पूजा, पल्यविधान कथा, अक्षयनिधान कथा, यशस्तिलक चन्द्रिका, सहस्रनाम टीका, तत्त्वार्थवृत्ति, षट्प्राभृत टीका।

विद्यानन्दीके पट्टशिष्य मल्लिभूषण हुए। उन्होंने स्तम्भ तीर्थपर एक निषधिका बनवायी। मालवाके सुलतान ग्यासदीन अथवा गयासुद्दीनने आपका सम्मान किया था।

मल्लिभूषणके शिष्य लक्ष्मीचन्दका सम्मान कर्नाटकके १८ राजाओंने किया था। कारंजाके भट्टारक वीरसेन और भ. विशालकीर्तिने भी आपका सम्मान किया था।

लक्ष्मीचन्दके शिष्य वीरचन्दने बोधसताणू और चित्तनिरोध कथा लिखी। आपने नवसारीके शासक अर्जुनजीयराजसे सम्मान पाया।

वीरचन्दके पट्टशिष्य ज्ञानभूषण हुए। आपने सिद्धान्तसार भाष्यकी रचना की तथा कर्मकाण्डपर टीका लिखी। आपके एक शिष्य सुमतिकीर्तिने चौरासी लक्ष योनि विनती, धर्मपरीक्षारास और त्रैलोक्यसार रासकी रचनाएँ कीं। आपने शत्रुंजयमें शान्तिनाथ मन्दिरका निर्माण कराया। आपने श्वेताम्बरोंके साथ शास्त्रार्थ भी किया था। ज्ञानभूषणके पट्टशिष्य प्रभाचन्द्र हुए। उन्होंने त्रेपन-क्रिया विनती लिखी।

प्रभाचन्द्रके पट्टपर वादिचन्द्र भट्टारक हुए। आपने पार्श्वपुराण, ज्ञानसूर्योदयनाटक, श्रीपालचरित, यशोधरचरित नामक ग्रन्थोंकी रचना की।

वादिचन्द्रके पट्टपर महीचन्द्र भट्टारक बने। इन्होंने संस्कृतमें पंचमेरु पूजा बनायी। महीचन्द्रके शिष्य मेरुचन्द्रने षोडशकारण पूजा, नन्दीश्वर पूजा-विधान बनाया।

मेरुचन्द्रके पट्टपर जिनचन्द्र भट्टारक बने। जिनचन्द्रके बाद विद्यानन्दी पट्टाधीश हुए। इनके बाद देवेन्द्रकीर्ति हुए। इन्होंने पादरा तथा आमोदमें मन्दिर बनवाये। देवेन्द्रकीर्तिके पट्टपर विद्याभूषण भट्टारक हुए। इन्होंने महुआ, सूरत, अंकलेश्वर, सजोद और सोजित्रामें मन्दिर बनवाये। इनके बाद धर्मचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, गुणचन्द्र और सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक हुए।

भट्टारक गुणचन्द्रके साथ एक ऐसी घटना घटित हुई जिससे उनके मन्त्रबलका पता चलता है। संवत् १९१९ में बम्बई निवासी सेठ सौभाग्यचन्द्र मेघराजजी भट्टारक गुणचन्द्रको लेकर सपरिवार पालीताणा गये। वहाँ भट्टारकजीने कोई विधान किया। जलयात्राके समय जब उनकी पालकी बाजारमें पहुँची तभी पालकीमें मन्त्रप्रेषित नीबू और उड़द आदि आकर गिरे। पालकी स्तम्भित होने लगी। भट्टारकजीने तत्काल नीबू, उड़द आदि मन्त्र पढ़कर सभी दिशाओंमें फेंके। फलतः पालकी पूर्ववत् चलने लगी।

इस प्रकार सूरतमें बलात्कारगणके भट्टारकोंने धर्म-प्रभावनाके अनेक कार्य किये। इन भट्टारकोंकी समाधियाँ सूरतके निकट कतारगाँवमें विद्यानन्दि क्षेत्रमें बनी हुई हैं। यहाँ भट्टारक विद्यानन्दिके चरण-चिह्न बने हुए हैं। विद्यानन्दि बड़े प्रभावशाली और चमत्कारी व्यक्ति थे। इस स्थानपर प्रथम समाधि इन्हींकी बनायी गयी थी। इसलिए इस स्थानका नाम ही विद्यानन्दि क्षेत्र हो गया।

सूरतके मन्दिरोंमें विराजमान मूर्तियोंके लेखोंसे ज्ञात होता है कि उपर्युक्त भट्टारकोंमें-से अधोलिखित भट्टारकोंने यहाँ मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी। विभिन्न मूर्तियोंपर इन भट्टारकोंके नाम अंकित हैं—

विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र, वादिचन्द्र, महीचन्द्र।

सूरतमें काष्ठासंघके भट्टारकोंका भी पीठ रहा है। गोपीपुराके दिगम्बर जैन मन्दिर और नवापुराके मेवाड़ जातिके मन्दिरमें काष्ठासंघी भट्टारकोंका प्रभाव रहा है। इन मन्दिरोंमें जो मूर्तियाँ हैं, उनके मूर्तिलेखोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि वे काष्ठासंघी भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठित की गयी थीं, किन्तु या तो वे अन्य किसी मन्दिर से लायी गयी हैं अथवा अन्य स्थानपर प्रतिष्ठित कराकर यहाँ लायी गयी हैं, ऐसा लगता है।

यहाँके मूर्तिलेखोंसे काष्ठासंघके निम्नलिखित भट्टारकोंके सम्बन्धमें जानकारी मिलती है—

विशालकीर्ति, विश्वसेन, विद्याभूषण, श्रीभूषण, चन्द्रकीर्ति, राजकीर्ति, लक्ष्मीसेन, देवेन्द्रभूषण, सुरेन्द्रकीर्ति।

दर्शनसारके अनुसार काष्ठासंघकी स्थापना कुमारसेनने नन्दीतट ग्राम (वर्तमान नादेड़) में की थी। अतः गच्छका नाम स्थानके नामपर नन्दीतटगच्छ रखा गया। मूर्तिलेखोंमें विद्यागण भी आता है, जो सरस्वतीगच्छका केवल अनुकरण मात्र है। इन लेखोंमें रामसेनान्वय भी मिलता है। इन्हीं रामसेनने नरसिंहपुरा[1] जातिका स्थापना की थी और जिस नरसिंहपुरामें

१. रामसेनोति विदितः प्रतिबोधनपण्डितः।
स्थापिता येन सज्जातिर्नरसिंहाभिधा भुवि ॥ दानवीर माणिकचन्द्र., पृ. ४७।

स्थापना की थी, उसी ग्राममें शान्तिनाथ मन्दिरका निर्माण कराया था। इनके शिष्य नेमिसेनने भट्टपुरा जातिकी स्थापना की। भट्टारक विश्वसेनने आराधनासार टीका लिखी। विद्याभूषणने द्वादशानुप्रेक्षाकी रचना की। श्री भूषणका श्वेताम्बरोंके साथ वाद हुआ, जिसमें श्वेताम्बर पराजित हो गये और उन्हें देशत्याग करना पड़ा। आपकी रचनाओंमें शान्तिनाथ पुराण, प्रतिबोध चिन्तामणि और द्वादशांग पूजा उपलब्ध हैं। इन्होंने भट्टारक वादिचन्द्रको भी वादमें पराजित किया था। ये वादिचन्द्र मूलसंघके भट्टारक थे। श्रीभूषणके शिष्य चन्द्रकीर्तिने पार्श्वनाथ पुराण और पाण्डव पुराणकी रचना की। उनकी बनायी हुई पूजाओंमें पार्श्वनाथ पूजा, नन्दीश्वर पूजा, ज्येष्ठ जिनवर पूजा, षोडशकारण पूजा, सरस्वती पूजा, जिन चउबीसी और गुरुपूजा मिलती हैं। इन्होंने दक्षिण यात्राके समय कावेरी तटपर नरसिंहपट्टनमें कृष्णभट्टको वादमें पराजित किया।

इनके बाद राजकीर्ति भट्टारक हुए। आपने वाराणसीमें वादमें जय प्राप्त की।

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिने केशरिया क्षेत्रपर दो चैत्यालयोंकी प्रतिष्ठा की। काष्ठासंघके इन भट्टारकोंकी गद्दी सोजित्रामें थी। सूरतमें बलात्कारगणकी गद्दी थी। काष्ठासंघके भट्टारकोंकी सूरतमें शाखापीठ थी। यहाँके मूर्तिलेखोंमें काष्ठासंघके नन्दीतटगच्छ और लाडवागड़ गच्छका उल्लेख मिलता है। मूर्तियोंके प्रतिष्ठाकारक व्यक्तियोंकी जातियोंके नाम भी मिलते हैं, जैसे—नरसिंहपुरा, बघेरवाल, हूमड़, मेवाड़, सिंहपुरा, रायकवाल।

इस प्रकार इन भट्टारकोंकी धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक गति-विधियोंका अध्ययन करनेपर हमें लगता है कि तत्कालीन समाजपर इन भट्टारकोंका बड़ा प्रभाव था। वे सम्पूर्ण धार्मिक और सामाजिक चेतना और गतिविधियोंके केन्द्र थे, नियामक थे और संचालक थे। यदि ये भट्टारक उस कालमें हुए होते तो हमारी धार्मिक और सामाजिक स्थिति उस समय क्या होती, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। भट्टारक संस्थामें कुछ त्रुटियाँ भी रही होंगी, जिनके कारण यह संस्था शनैः-शनैः अपना प्रभाव खोती गयी। किन्तु भूतकालमें इस संस्थाने जो उपकार किया है, उसे हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

विद्यानन्दि-क्षेत्र

सूरतसे ३ कि. मी. दूर कतारगांवमें विद्यानन्दि-क्षेत्र है। यहाँ ८२ भट्टारकों और मुनियोंके चरण-चिह्न हैं। चरण-चिह्न अलग-अलग वेदियोंमें विराजमान हैं। ये वेदियाँ तीन पंक्तियोंमें बनी हुई हैं। ये सभी वेदियाँ श्वेत संगमरमरकी हैं। चरण-चिह्नोंके मध्यमें आचार्य शान्तिसागरजी महाराजकी १ फुट १ इंच ऊँची और भट्टारक विद्यानन्दिकी १ फुट ३ इंच ऊँची मूर्तियाँ विराजमान हैं। विद्यानन्दिकी मूर्तिकी पृष्ठ-पंक्तिमें उनके १ फुट २ इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। भट्टारक विद्यानन्दि अपने समयके बड़े प्रभावशाली और चमत्कारी पुरुष थे। वे मन्त्र-तन्त्रमें निष्णात तपस्वी साधु थे। उनके चमत्कारोंकी अनेक कथाएँ समाजमें प्रचलित हैं। एक प्रशस्तिके अनुसार राजाधिराज वज्रांग, गंग, जयसिंह, व्याघ्र आदि अनेक नरेश आपके भक्त थे। उनका स्वर्गवास मार्गशीर्ष वदी १० संवत् १५३७ को हुआ था।

चरण-वेदिकाओंके निकट एक मानस्तम्भ भी बना हुआ है। ऊपर जानेके लिए २७ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसकी शीर्ष-वेदिकामें चारों दिशाओंकी ओर मुख किये हुए चार तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। यहाँ एक ओर सम्मेदशिखरकी भव्य रचना निर्मित है।

धर्मशाला

यहाँ धर्मशाला बनी हुई है। इसमें पाँच कमरे हैं। विद्युत् और जलकी सुविधा है। स्थान अत्यन्त रमणीक है। यह पर्यटन और धर्मसाधन दोनों ही दृष्टियोंसे चित्ताकर्षक है। इसीलिए सूरतके जैनबन्धु समय-समयपर विशेषत: अवकाशके दिनोंमें यहाँ आते रहते हैं।

मेला

यहाँ वर्षमें कई बार मेले होते हैं—जैसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, वैशाख शुक्ला पूर्णिमा और कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा। भट्टारक विद्यानन्दिके समाधिमरण-दिवस मार्गशीर्ष कृष्णा १० को भी मेला होता है।

अंकलेश्वर

मार्ग

अंकलेश्वर पश्चिमी रेलवेके सूरत तथा बड़ौदाके मध्य स्टेशन है। स्टेशनसे अंकलेश्वर ग्राम १ कि. मी. है। यह गुजरातके भड़ोंच जिलेमें स्थित है।

अतिशय क्षेत्र

यह एक अतिशय क्षेत्र है। ग्राममें चार दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। यहाँ भोंयरेमें पार्श्वनाथ स्वामीकी एक प्राचीन अतिशयसम्पन्न मूर्ति है। यह चिन्तामणि पार्श्वनाथके नामसे विख्यात है। लोगोंकी धारणा है कि इस मूर्तिके दर्शन करनेसे समस्त चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं और शुभ मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जनतामें इस मूर्तिके प्रति फैले हुए इस विश्वासके कारण ही जैन और जैनेतर लोग मनौती मनानेके लिए भारी संख्यामें यहाँ आते रहते हैं। इसके कारण ही यह स्थान तीर्थक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है।

अंकलेश्वरका उल्लेख आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलिके प्रसंगमें धवला आदि ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। षट्खण्डागम-धवला टीका भाग १, पृ. ६७-७१ में जिस कथानक अथवा इतिहासके प्रसंगमें अंकलेश्वरका वर्णन आया है, वह कथानक अथवा इतिहास इस प्रकार है—

सौराष्ट्र देशके गिरिनगर नामक नगरकी चन्द्रगुफामें रहनेवाले अष्टांग महानिमित्तके पारगामी, प्रवचनवत्सल धरसेनाचार्यने आगे अंग श्रुतका विच्छेद हो जानेकी आशंकासे महिमा-नगरीमें एकत्रित हुए दक्षिणापथवासी आचार्योंके पास एक लेख (पत्र) भेजा। लेखमें लिखे गये धरसेनाचार्यके वचनोंको अच्छी प्रकार समझकर उन आचार्योंने शास्त्रके अर्थके ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ, विनयसे विभूषित, उत्तम कुल और उत्तम जातिमें उत्पन्न और समस्त कलाओंमें पारंगत ऐसे दो साधुओंको आन्ध्रदेशमें बहनेवाली वेणा नदीके तटसे भेजा। उनके पहुँचनेपर धरसेनाचार्यने उनकी परीक्षा की और सन्तुष्ट होनेपर उन्होंने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वारमें उन्हें पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार धरसेन भट्टारकसे पढ़ते हुए उन्होंने आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीके पूर्वाह्णकालमें ग्रन्थ समाप्त किया।

धरसेनाचार्यने ग्रन्थ समाप्त होते ही उन्हें उसी दिन वहाँसे विदा कर दिया। इसी सन्दर्भमें धवलाकारने लिखा है—"पुणो तद्दिवसे चेव पेसिदा संतो गुरुवयणमलंघणिज्जं इदि चिंतिऊणादेहि

अंकुलेसरे वरिसा कालो कओ।" अर्थात् उसी दिन वहाँसे भेजे गये उन दोनोंने 'गुरुके वचन अलंघनीय होते हैं' ऐसा विचारकर आते हुए अंकलेश्वरमें वर्षाकाल बिताया।

अंकलेश्वरमें वर्षावास करते हुए उन दोनों मुनियोंने श्रुतके प्रचारकी योजना बनायी होगी। उसी योजनाके अनुसार वर्षावासके पश्चात् पुष्पदन्त तो वनवास देशको चले गये और भूतबलि द्रमिल देशको। तदनन्तर पुष्पदन्तने जिनपालितको दीक्षा देकर सत्प्ररूपणाके बीस सूत्र (अधिकार) बनाये और उन्हें जिनपालितको पढ़ाया। पढ़ाकर उन्हें भूतबलिके पास भेजा। आचार्य भूतबलिने द्रव्य प्रमाणानुगमसे लेकर शेष पाँच खण्डोंकी रचना की। फिर षट्खण्डागमकी रचनाको पुस्तका-रूढ़ करके ज्येष्ठ शुक्ला ५ को चतुर्विधसंघके साथ श्रुत-पूजा की, जिससे श्रुत पंचमी पर्वका प्रचलन हो गया। फिर भूतबलिने उस षट्खण्डागमको जिनपालितके हाथ पुष्पदन्तके पास भेजा। पुष्पदन्त उसे देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए और उन्होंने भी चातुर्वर्ण संघ सहित सिद्धान्तकी पूजा की।

इस प्रकार अंकलेश्वर उन महिमान्वित पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्योंकी चरण-रजसे पवित्र हुआ था।

उपाध्याय धर्मकीर्तिने संवत् १६५७ में चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिरमें यशोधर-चरितकी रचना की थी। यह स्थान काष्ठासंघ और मूलसंघके भट्टारकोंका प्रभाव क्षेत्र था। इनके भट्टारक समय-समयपर आकर कुछ समयके लिए यहाँ ठहरा करते थे। यहाँके मन्दिरोंमें उनकी गद्दियाँ बनी हुई हैं।

क्षेत्रदर्शन

अंकलेश्वर एक अच्छा नगर है। नगरमें ४ दिगम्बर जैन मन्दिर हैं—(१) चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर, (२) नेमिनाथ मन्दिर, (३) आदिनाथ मन्दिर, और (४) महावीर मन्दिर। इनमें पार्श्वनाथ मन्दिरके मूलनायक चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है।

१–चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर—मन्दिरके भोंयरेमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कत्थई वर्णकी ४ फुट १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर सप्तफणावलि है। प्रतिमाका मूलवर्ण हलका गुलाबी है। किन्तु प्रतिमाके ऊपर पालिश की हुई है।

इस मूर्तिका भी एक इतिहास है। अंकलेश्वरसे लगभग एक मील दूर रासकुण्ड नामक एक कुण्ड है। इस कुण्डमें तीन मूर्तियाँ मिली थीं—पार्श्वनाथकी, शीतलनाथकी और नन्दीकी। तीनों मूर्तियोंको अलग-अलग गाड़ियोंमें रखकर अंकलेश्वर नगर की ओर ले जाने लगे। जब पार्श्वनाथवाली गाड़ी अंकलेश्वर नगरके मध्य वर्तमान जैन मन्दिरके स्थानपर पहुँची तो गाड़ी यहाँ आकर रुक गयी। बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी गाड़ी आगे नहीं बढ़ी, तब पार्श्वनाथ प्रतिमाको यहीं उतारकर किसी प्राचीन मन्दिरमें विराजमान कर दिया। इसी प्रकार शीतलनाथ-वाली गाड़ी अंकलेश्वर से ८ कि. मी. दूर सजोद जाकर अड़ गयी। तब वहींपर शीतलनाथका मन्दिर बनवाया गया। दोनों ही मूर्तियाँ भोंयरेमें हैं। नन्दीवाली गाड़ी उसके वर्तमान स्थानपर रुकी थी। यह आश्चर्यकी बात है कि तीनों ही मूर्तियाँ चमत्कारी हैं। लोग अपनी कामनाएँ लेकर वहाँ जाते हैं। कामनाएँ पूर्ण होनेके कारण ही पार्श्वनाथ मूर्तिको चिन्तामणि पार्श्वनाथ कहा जाने लगा है और अब यह मूर्ति इसी नामसे विख्यात है। इस मूर्तिकी पीठिकाके ऊपर कोई लेख नहीं है। किन्तु रचना शैलीसे यह मूर्ति ७-८वीं शताब्दी अथवा इससे कुछ पूर्वकी प्रतीत होती है।

बायीं ओर १ फुट २ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है जो

संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई थी। इसके प्रतिष्ठाकारक जीवराज पापड़ीवाल थे। इसके निकट धातुकी एक चौबीसी है।

दायीं ओर पद्मप्रभ भगवान्की २ फुट ७ इंच उन्नत श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। लेख न होनेसे प्रतिष्ठाकाल ज्ञात नहीं हो सका।

सामने कृष्ण पाषाणकी साढ़े छह इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है जो सम्भवतः नेमिनाथ भगवान्की है। इसके अतिरिक्त धातुका एक चैत्य, पार्श्वनाथ और सिद्ध भगवान्की प्रतिमाएँ हैं।

सीढ़ीके पास एक वेदीमें मूलनायक पार्श्वनाथ की १ फुट २ इंच ऊँची नौ-फणावलीयुक्त श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिष्ठाकाल संवत् १५४८ है। बायीं ओर १ फुट ८ इंच ऊँची पद्मप्रभ भगवान्की श्वेत वर्णवाली पद्मासन प्रतिमा है। लेख नहीं है। इसके बगलमें १ फुट ऊँची पद्मप्रभ भगवान्की एक और प्रतिमा है। दायीं ओर श्वेत पाषाणकी १ फुट ७ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। किन्तु इसके पादपीठपर लेख और लांछन नहीं हैं। इसके पार्श्वमें आदिनाथ भगवान्की १० इंच अवगाहनावाली श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है।

आगेकी पंक्तिमें १ फुट ८ इंच ऊँचे शिलाफलकमें कायोत्सर्गासनमें मुनि-प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके दायें हाथमें पीछी है और बायें हाथमें कमण्डलु है। इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १४६५ में हुई थी। विश्वास किया जाता है कि यह प्रतिमा महामहिमान्वित धरसेनाचार्यकी है।

दायीं ओर चलनेपर नेमिनाथ आदिकी ५ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं जिनमें २ खड्गासन और ३ पद्मासन हैं। इनसे आगे १ फुट ४ इंच ऊँची श्वेतवर्णकी पद्मासन मुद्रामें आदिनाथ भगवान्की मूर्ति है। तथा इससे आगे एक शिलाफलकमें दो स्तम्भोंके मध्य श्वेतवर्णकी एक खड्गासन प्रतिमा है। इसके ऊपर चिह्न और लेख नहीं हैं।

ऊपरकी मंजिलमें एक वेदीमें ४८ धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं। जिनमें चौबीसी, चैत्य, पंचबालयति, पंचमेरु आदि हैं। वेदीके ऊपर २ पाषाण प्रतिमाएँ भी विराजमान हैं।

वेदीके पीछे परिक्रमाकी दीवारमें १ फुट ११ इंच उत्तुंग श्यामवर्ण खड्गासन प्रतिमा है। इसके ऊपर कोई लेख और लांछन नहीं है। चरणोंके दोनों ओर गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षीका अंकन है। अतः यह प्रतिमा नेमिनाथ भगवान्की होनी चाहिए। भूकम्पके समय यह प्रतिमा दीवार-ताकमें-से गिर पड़ी थी, किन्तु प्रतिमाको कोई हानि नहीं पहुँची।

२. नेमिनाथ मन्दिर—वेदीपर मध्यमें एक गन्धकुटीमें चारों दिशाओंमें पार्श्वनाथकी १ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमाएँ हैं, जो संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई थीं। इनमें पूर्वकी ओर संवत् १८६२ में प्रतिष्ठित और २ फुट ३ इंच ऊँची नेमिनाथकी कृष्णवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है।

वेदीकी कटनियोंपर चारों ओर धातु और पाषाणकी प्रतिमाएँ रखी हैं। एक आलेमें धातुकी १० देवी मूर्तियाँ विराजमान हैं।

३ आदिनाथ मन्दिर—भोंयरेमें एक वेदीपर २ फुट ८ इंच उन्नत श्यामवर्ण आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। पादपीठपर कोई लेख अंकित नहीं है किन्तु वृषभ लांछन है।

बायीं ओर पद्मप्रभ भगवान्की २ फुट ४ इंच ऊँची श्याम वर्ण प्रतिमा है तथा दायीं ओर २ फुट ४ इंच ऊँची सुपार्श्वनाथकी प्रतिमा है। लेख नहीं है। इनके अतिरिक्त धातुकी चौबीसी और पार्श्वनाथकी ३ प्रतिमाएँ और हैं।

ऊपरके खण्डमें तीन कटनीवाली वेदीमें मूलनायक चन्द्रप्रभ भगवान्की १ फुट ६ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त वेदीके ऊपर संवत् १५४८ की

श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमाएँ, नेमिनाथकी १ पाषाण-प्रतिमा तथा धातुकी ३२ प्रतिमाएँ भी हैं। पाषाण-फलकपर एक यन्त्र भी उत्कीर्ण है।

४. महावीर मन्दिर—यह यहाँका बड़ा मन्दिर कहलाता है। वेदीके बाहर बायीं ओर पाषाणका पंचमेरु बना हुआ है। २० प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। दायीं ओर शीशेके फ्रेममें धातुका पावापुरी जल-मन्दिर बना हुआ है। रचना सुन्दर है। इसमें महावीर स्वामीकी १ फुट १ इंच ऊँची धातु-प्रतिमा भी विराजमान है।

मध्यमें गन्धकुटीमें एक चैत्य है जिसके चारों कोनोंके स्तम्भोंपर २४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं तथा चारों दिशाओंमें चार तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। कटनीपर चारों ओर धातु और पाषाणकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें एक वेदी बनी हुई है। इसमें ऊपरके भागमें ६ धातुकी तथा नीचेके भागमें ४ पाषाणकी और २ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिरके बाहर बायीं ओर एक देवरी बनी हुई है। उसमें धातुका एक स्तम्भ बना हुआ है। उसके आगे अम्बिका देवीकी एक पाषाण प्रतिमा विराजमान है।

व्यवस्था

उक्त चारों मन्दिरोंकी व्यवस्था किसी एक प्रबन्धक समितिके अन्तर्गत नहीं है। महावीर मन्दिर और आदिनाथ मन्दिर काष्ठासंघके हैं। इन दोनों मन्दिरोंका एक ट्रस्ट है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ और शीतलनाथ मन्दिर सजोद—ये दोनों मन्दिर मूलसंघके हैं। इन दोनों मन्दिरोंकी व्यवस्था एक ही ट्रस्टके द्वारा होती है। नेमिनाथ मन्दिर नवग्रह संघका कहलाता है। इसका एक पृथक् ट्रस्ट है।

धर्मशाला

नगरमें एक दिगम्बर जैन धर्मशाला है। उसमें यात्रियोंके लिए आवास, नल और बिजली-की सुविधा है।

मेला

महावीर स्वामीके मन्दिरसे क्वार वदी १ को जलयात्राका जलूस निकलता है। नेमिनाथ मन्दिरसे भाद्रपद शुक्ला १५ को एक जलूस निकलता है। रामकुण्डके पास मुनि-चरण बने हुए हैं। यह जलूस वहाँ जाता है।

पता—

मैनेजिंग ट्रस्टी, श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर,
अंकलेश्वर (जिला भड़ोंच) गुजरात

सजोद

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सजोद गुजरात प्रान्तके भड़ोंच जिलेमें अंकलेश्वरसे पश्चिमकी ओर ८ कि. मी. दूर स्थित है। अंकलेश्वर स्टेशन पश्चिमी रेलवेके सूरत और बड़ौदा स्टेशनोंके मध्यमें है। अंकलेश्वरसे मोटर द्वारा सजोद जा सकते हैं।

अतिशय क्षेत्र

यह एक अतिशय क्षेत्र है। यहाँ एक प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिरके भोंयरेमें भगवान् शीतलनाथकी श्वेत पाषाणकी ३ फुट २ इंच अवगाहनावाली सातिशय प्रतिमा विराजमान है।

भगवान् शीतलनाथकी मूर्तिके अतिशयके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है—वि. सं. १७४७ में किसी श्रावकको स्वप्न हुआ, 'अंकलेश्वरके रामकुण्डमें जैन मूर्तियाँ हैं, उन्हें तुम निकालो।' उसने अपने स्वप्नकी चर्चा अन्य श्रावकोंसे की। फलतः सब भाई मिलकर रामकुण्ड पहुँचे। उन्होंने कुण्डमें तलाश की तो दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ निकलीं—एक पार्श्वनाथकी और दूसरी शीतलनाथकी।

पार्श्वनाथकी प्रतिमाको गाड़ीमें लेकर चले। गाड़ी रामकुण्डसे चलकर अंकलेश्वर नगरमें पहुँची और वहीं रुक गयी। जब प्रयत्न करनेपर भी वह नहीं चली तो प्रतिमाको वहीं विराजमान कर दिया। इसी प्रकार शीतलनाथकी मूर्तिको दूसरी बेलगाड़ीमें रखकर चले। बैलगाड़ी अंकलेश्वरसे ८ कि. मी. सजोद ग्राममें जाकर रुक गयी। वह वहाँसे किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ी। तब शीतलनाथ भगवान्की मूर्तिको वहीं भोंयरेमें विराजमान कर दिया।

यह प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें है। पाषाण छींटेदार है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। छींटोंने इसकी शोभाको बिगाड़ा नहीं, बल्कि सँवारा ही है। भारतकी सुन्दर जैन प्रतिमाओंमें इसकी गणना की जा सकती है। अश्रद्धालु व्यक्ति भी इसके समक्ष आकर श्रद्धासे नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकता। इसके कर्ण स्कन्ध-चुम्बी हैं। ग्रीवापर तीन वलय पड़े हुए हैं। छातीपर श्रीवत्स उभरा हुआ नहीं है, मात्र चिह्न अंकित है। नासिका लम्बी, होठ पतले और चक्षु अर्धोन्मीलित हैं। भौंहें धनुषाकार हैं तथा सिरके कुन्तल वलयाकार अति सुन्दर बने हुए हैं। मूर्तिके पीठासन-पर वृक्षका अस्पष्ट लांछन बना हुआ है। लेख नहीं है। कुछ विद्वान् इसको २००० वर्ष प्राचीन मानते हैं, किन्तु हमारी विनम्र मान्यताके अनुसार इसकी रचना शैली और इसके शिल्प सौष्ठवको देखते हुए यह प्रतिमा ७-८वीं शताब्दी अथवा उससे कुछ पूर्व गुप्तकालकी होनी चाहिए। अंकलेश्वरकी चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा भी इसके समकालीन ही लगती है। मूलतः वह प्रतिमा पालिशदार नहीं रही होगी, पालिश बादमें की गयी होगी। उसकी पालिशके कारण उसका रचना-काल निर्धारित करनेमें कठिनाई प्रतीत होती है, किन्तु शीतलनाथ स्वामीकी प्रतिमाका काल निश्चित होनेपर उसके कालका भी सही निर्धारण किया जा सकता है।

धर्मशाला

नगरमें वर्तमानमें किसी जैन बन्धुका निवास नहीं है, केवल एक वृद्धा महिला अपने पतिगृहकी ममताके कारण रहती है। यहाँ धर्मशाला भी नहीं है। प्रायः यात्री अंकलेश्वरकी जैनधर्मशालामें अपना सामान रखकर बसों द्वारा यहाँ आते हैं और दर्शन-पूजा करके अंकलेश्वर लौट जाते हैं। मन्दिरके कुएँका जल भी खारा है, किन्तु वह वृद्धा बहन यात्रियोंकी मिष्ठजल आदिसे प्रेमपूर्वक सेवा करती है। मन्दिरका वातावरण अत्यन्त शान्त है।

मेला

गाँवमें माघ कृष्णा १४ को महादेवका मेला होता है। इसी अवसरपर मन्दिरपर ध्वजा-रोहण किया जाता है। मन्दिरमें दर्शनोंके लिए जैनोंके अतिरिक्त हिन्दू और भील आदि भी आते हैं।

व्यवस्था

इस मन्दिरकी सम्पूर्ण व्यवस्था अंकलेश्वरके चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिरका ट्रस्ट ही करता है।

—सजोदका पोस्ट-ऑफिस अंकलेश्वर है और उसका जिला भड़ोंच है।

अमीझरो पार्श्वनाथ

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अमीझरो पार्श्वनाथ गुजरात प्रान्तके बड़ाली ग्राममें है। बड़ाली पश्चिम रेलवेका छोटा-सा स्टेशन है। यह अहमदाबाद-खेडब्रह्मा लाइनपर खेड़ब्रह्मासे पहला स्टेशन है। यह हिम्मतनगरसे ४४ कि. मी. और ईडरसे १४ कि. मी. दूर है।

अतिशय क्षेत्र

बड़ाली ग्राममें एक प्राचीन मन्दिर है। उसमें मूलनायक प्रतिमा अमीझरो पार्श्वनाथकी है। यह ३ फुट अवगाहनावाली श्याम वर्ण प्रतिमा है। मन्दिरके भीतर बावड़ी और धर्मशाला है। भट्टारक सुमतिसागरने उल्लेख किया है कि 'पास अमीझर शीतलए चन्द्रनाथ महामुनि' अर्थात् अमीझरो पार्श्वनाथके निकट शीतलनाथ, चन्द्रप्रभ और ऋषभदेवकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। भट्टारक सुमतिसागरका समय सोलहवीं शताब्दीका मध्य भाग निश्चित किया गया है।[1] सुमतिसागरजीने अमीझरोकी स्थिति बताते हुए कहा है—

"सुगाम बड़ाली नाम विशाल। सुअमीझरा पूजो गुणमाल॥"

भट्टारक ज्ञानसागरने अपनी 'सर्वतीर्थ वन्दना' नामक रचनामें बताया है कि पूजाके अनन्तर पार्श्वनाथकी मूर्तिसे अमृत झरता है, इसलिए इसका नाम अमीझरो पार्श्वनाथ है। उक्त रचनाका यह पद्य इस प्रकार है[2]—

"सुघट घटित अति निपुण ग्राम बड़ाली नामह।
पार्श्वजिनेन्द्र प्रसिद्ध अमीझरो तिस ठामह।
पूजानंतर सार अमिय सर्वांग झरंतह॥
कृष्णागरु महकंत जय जय जगत करंतह।
मानव घन सेवा करत आराधत सुर खगपति।
अमीझरो नित वंदिये कहत ज्ञानसागर यति॥६८॥"

भट्टारक जयसागरने भी 'तीर्थ जयमाल' में अमीझरोका उल्लेख किया है और उसे बड़ाली ग्राममें बताया है।

इन विद्वान् भट्टारकोंके उल्लेखोंसे ऐसा लगता है कि उनके कालमें यह एक प्रसिद्ध दिगम्बर जैनतीर्थ था। किन्तु अब बड़ाली ग्राममें दिगम्बर जैनोंका कोई घर नहीं रहा। काफी समयसे ईडरकी दिगम्बर जैन समाज इस क्षेत्रकी देखरेख, पूजा-सेवाकी व्यवस्था करती थी। किन्तु

---

१. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ. २००।

२. तीर्थवन्दनसंग्रह, पृ. ७५।

आपसी मतभेदोंके कारण ईडरकी दिगम्बर समाज क्षेत्रकी ओरसे उदासीन हो गयी। इस अवसर-से लाभ उठाकर श्वेताम्बर समाजने इस क्षेत्रपर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु मूलनायक पार्श्वनाथ प्रतिमा अभी भी दिगम्बर आम्नायकी ही विराजमान है।

ईडरके आसपास कई अतिशय क्षेत्र अथवा प्राचीन मन्दिर हैं जो आज उपेक्षित दशामें पड़े हुए हैं। ईडर जिलेमें मुडैठीके पास और ईडरसे तीन मील दूर पर्वतमें एक प्राचीन शिखरबन्द जिनालय है। उसमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी ३ फुट ऊँची प्रतिमा है। प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ है।

ईडर जिलेमें टाकाट्रका और बोईडाके बीचमें जंगलके अन्दर नदीके किनारे आदीश्वर भगवान्का शिखरबन्द बड़ा प्राचीन मन्दिर है। प्रतिमा की अवगाहना ढाई फुटकी है। इसके बगलमें दोनों ओर २-२ फुट ऊँची दो प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

□

महाराष्ट्र प्रदेश

गजपन्था और अंजनेरी
मांगीतुंगी
चांदवड़ गुफा
बोरीवली (बम्बई)
वहीगाँव
कुण्डल (कलिकुण्ड पार्श्वनाथ)
बाहुबली
कोल्हापुर
कुन्थलगिरि
धाराशिवकी गुफाएँ
तेर
साबरगाँव
आष्टा
ऐलौराकी गुफाएँ
दौलताबाद का किला
औरंगाबादकी गुफाएँ
पैठण
नवागढ़
जिन्तूर
शिरड शहापुर
असेगाँव
अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ
कारंजा
बाढौणा रामनाथ
भातकुली
रामटेक
मुक्तागिरि (मेंढागिरि)

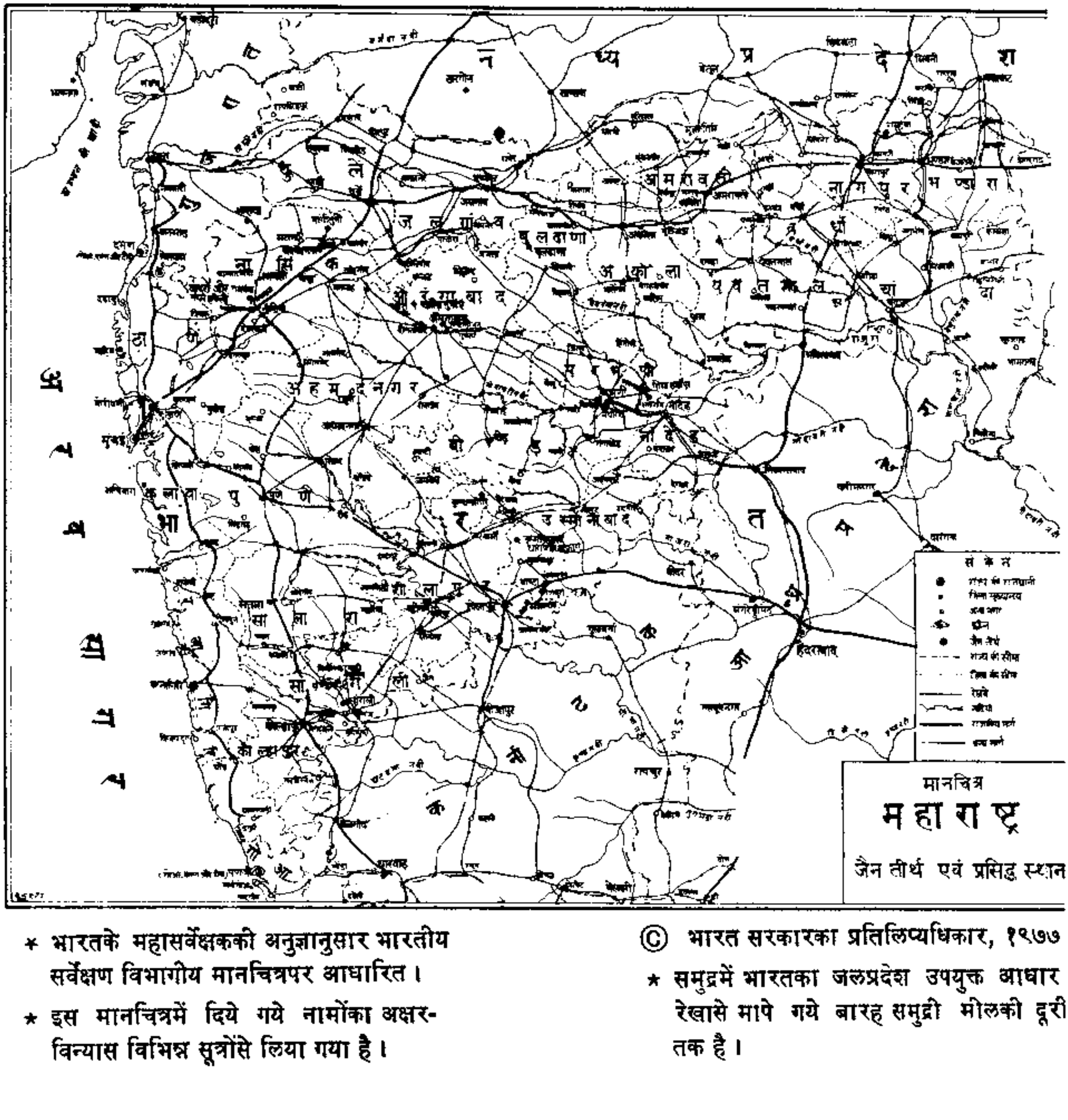

* भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

* इस मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

© भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७७

* समुद्रमें भारतका जलप्रदेश उपयुक्त आधार रेखासे मापे गये बारह समुद्री मीलकी दूरी तक है।

गजपन्था और अंजनेरी

सिद्धक्षेत्र

श्री गजपन्था सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र है। यहाँसे सात बलभद्र और आठ कोटि यादव मुक्त हुए थे। तत्सम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें उपलब्ध होते हैं। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित गाथा मिलती है—

सत्तेव य बलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥

अर्थात् सात बलभद्र और आठ कोटि यादव राजा गजपन्थ गिरिके शिखरसे मुक्त हुए।

कुछ उत्तरकालीन भाषा-कवियोंने भी गजपन्थको बलभद्रों और यादव नरेशोंकी निर्वाण-भूमि होनेके कारण इसे निर्वाण-क्षेत्र माना है। इन लेखकोंमें उदयकीर्ति, गुणकीर्ति, मेघराज, चिमणा पण्डित, दिलसुख और ज्ञानसागर मुख्य हैं। संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें 'दण्डात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ' कहकर गजपन्थका केवल नामोल्लेख ही किया है। संस्कृत निर्वाण-भक्ति आचार्य पूज्यपाद विरचित है, जैसा कि प्रभाचन्द्राचार्यने क्रियाकलापमें लिखा है—

"संस्कृताः सर्वा भक्तयः पादपूज्यस्वामिकृताः प्राकृतास्तु कुन्दकुन्दाचार्यकृताः ॥"

—दशभक्त्यादि संग्रह टीका, पृ. ६१

पूज्यपाद स्वामीका समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दी सुनिश्चित है। इसी प्रकार प्राकृत निर्वाण-भक्तियोंके रचयिता कुन्दकुन्दाचार्य माने गये हैं और उनका समय ईसाकी प्रथम शताब्दी माना जाता है। इन दोनों ही आचार्योंने गजपन्थको निर्वाणक्षेत्र स्वीकार किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ईसाकी प्रथम शताब्दीमें भी गजपन्थ निर्माण-क्षेत्र माना जाता था।

निर्वाणकाण्डमें इस पर्वतपर-से जिन सात बलभद्रोंकी मुक्ति-प्राप्तिका उल्लेख है, उनके नाम उत्तरपुराण आदि पुराणोंके आधारपर इस प्रकार हैं—(१) विजय, (२) अचल, (३) सुधर्म, (४) सुप्रभ, (५) नन्दी, (६) नन्दीमित्र और (७) सुदर्शन।

गजपन्थ क्षेत्रकी अवस्थिति

कुछ विद्वान् वर्तमान गजपन्थ क्षेत्रको वास्तविक न मानकर आधुनिक खोज मानते हैं। उनका तर्क है कि इस क्षेत्रपर न तो कोई प्राचीन मन्दिर है और न पुरातत्त्व ही। किन्तु प्राचीन साहित्यमें कुछ प्रसंग या स्थल ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जिनसे इस बातका निर्णय हो जाता है कि यह क्षेत्र कहाँपर अवस्थित था। असग कवि कृत 'शान्तिनाथ-चरित'में एक प्रसंग है—अमिततेज और श्रीविजयने अपनी विशाल वाहिनीको लेकर अशनिवेग विद्याधरका पीछा किया। तब वह अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर भाग खड़ा हुआ और नासिक्य नगरके बाहर गजध्वज पर्वतपर जा पहुँचा। उल्लेख इस प्रकार है—

"अपश्यन्नापरं किंचिद्रक्षोपायमथात्मनः।
शैलं गजध्वजं प्रापन्नासिक्यनगराद् बहिः ॥"

इस उल्लेखसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गजपन्थ शैल नासिक्य नगरके बाहर था। किन्तु श्लोकमें गजपन्थ शब्द न देकर कविने पर्वतका नाम गजध्वज दिया है। गजध्वज और गजपन्थ एक ही पर्वतके नाम हैं और परस्पर पर्यायवाची हैं। इस बातका समर्थन बोधप्राभृत गाथा २७ की श्रुतसागर कृत टीकासे भी होता है। उसमें समस्त तीर्थोंके नाम इस प्रकार दिये हैं—

"ऊर्जयन्त-शत्रुंजय-लाटदेश पावागिरि-आभीरदेशतुंगीगिरि-नासिक्यनगरसमीपवर्ति गजध्वज-गजपंथ-सिद्धकूट-तारापुर-कैलासाष्टापद-चम्पापुरी-पावापुर-वाराणसीनगरक्षेत्र- हस्तिनागपत्तन-चल मेंढ्रगिरि-वैभारगिरि-रूप्यगिरि-सुवर्णगिरि-रत्नगिरि-शौर्यपुर - चूलाचल-नर्मदातट - द्रोणीगिरि-कुन्थु-गिरि-कोटिकशिलागिरि-जम्बुक वन-चलनानदीतट-तीर्थंकरपंचकल्याणस्थानानि।"

उपर्युक्त उल्लेखमें 'नासिक्यनगर समीपवर्ती गजध्वज गजपन्थ' नाम देकर सारी शंकाओं-का समाधान कर दिया है। इसका अर्थ यह है कि गजपन्थ नासिक नगरके समीप था और उसका अपरनाम 'गजध्वज' भी था।

वर्तमानमें भी गजपन्थ क्षेत्र नासिक शहरसे केवल ६ कि. मी. दूर है। म्हसरूल गाँवमें धर्मशाला है। यह पर्वतकी तलहटीमें है। यहाँसे पर्वत अर्थात् निर्वाण-स्थान लगभग २ कि. मी. पड़ता है। ऊपर जानेके लिए पाषाणकी ४३५ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। नासिक रोड स्टेशनसे नासिक होकर म्हसरूल गाँव १६ कि. मी. पड़ता है। नासिकसे म्हसरूलके लिए मोटर, ताँगे बराबर मिलते हैं।

क्षेत्र दर्शन

म्हसरूल गाँवके उत्तरकी तरफ जैन धर्मशाला बनी हुई है। इसके चारों ओर परकोटा है। कम्पाउण्डके भीतर ही धर्मशाला, स्नानगृह तथा एक दो-मंजिला भवन है। परकोटाके दक्षिणकी ओर एक कम्पाउण्ड है। इसमें दो-मंजिला हवेली बनी हुई है। चौकके मध्यमें क्षेत्र-कार्यालय है। दो छोटे बंगले भी बने हुए हैं—एक ईशानकोणकी ओर, दूसरा बड़े फाटकके पास। ये सब क्षेत्रकी ही सम्पत्ति हैं। धर्मशालाके अन्तमार्गमें एक भव्य जिनालय है। इसमें मूलनायक प्रतिमा महावीर भगवान्‌की है। इसकी अवगाहना २ फुट १ इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४५ में हुई थी। यह श्वेत वर्णकी है और पद्मासन मुद्रामें है। इसके बायीं ओर २ फुट १ इंच ऊँची आदिनाथकी श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। समवसरणमें इनके अतिरिक्त धातुकी ३१ मूर्तियाँ हैं, जिनमें ७ बलभद्रोंकी हैं और १ गजकुमारकी है। शिखरपर ७ मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके आगे मानस्तम्भ है जो वीर सं. २४६० में ब्र. कंकुबाईकी ओरसे निर्मित हुआ था। मानस्तम्भकी शीर्षवेदी पर महावीर स्वामीकी ४ प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरके निकट एक कुआँ है। सामने क्षेत्रके खेतमें एक बावड़ी है।

यहाँ आज जो धर्मशाला, मन्दिर, सरस्वती भवन आदि दिखाई पड़ते हैं, लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले कुछ भी नहीं था। एक बार नागौरके भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति तीर्थयात्रा करते हुए यहाँ पधारे और क्षेत्रकी गौरव-गरिमासे प्रभावित होकर उन्होंने इसे अधिक प्रकाशमें लानेका विचार किया। अतः उन्हींकी प्रेरणासे प्रेरित होकर शोलापुर निवासी सेठ नानचन्द फतहचन्दजीने म्हसरूलमें जमीन खरीदकर यात्रियोंकी सुविधाके लिए धर्मशाला और मन्दिरका निर्माण कराया। मन्दिरकी प्रतिष्ठा भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्तिजीके नेतृत्वमें वि. सं. १९४३ में बड़े धूमधामके साथ सम्पन्न हुई थी।

पर्वतकी तलहटीमें एक सुन्दर वाटिका है। इसीके पासमें भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्तिकी समाधि बनी हुई है तथा एक जिनालय है। मन्दिरके गर्भगृहमें २ फीट ऊँचा एक चैत्य है, जिसमें चारों

दिशाओंमें श्वेतवर्णकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं तथा १२-१२ मूर्तियाँ और बनी हैं। दायीं ओर दीवार-वेदीमें २ फीट ऊँची पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति है। इस मन्दिरके पाससे ही पर्वतपर चढ़नेके लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। पर्वतकी ऊँचाई केवल ४०० फीट है। सीढ़ियाँ प्रायः एक फुट ऊँची और खड़ी हैं।

पर्वतपर चढ़नेके पश्चात् सर्वप्रथम एक फाटक मिलता है। इसमें घुसते ही दायीं ओरको १३ सीढ़ियाँ चढ़कर एक लघु शिखरके नीचे तीन श्वेत चरण सुदर्शन, नन्दि और नन्दीमित्र बलभद्रके विराजमान हैं। शिखरके अधोभागमें सुप्रभ, सुधर्म, गजकुमार, अचल और विजय बलभद्रके चरण हैं। फिर एक नवनिर्मित जिनालय और पार्श्वनाथ गुफाके दर्शन होते हैं। इस गुफा मन्दिरकी प्रतिमाकी पुनः प्रतिष्ठा (लेप चढ़ानेके कारण) पूनाके सेठ शोभाराम भगवानदास द्वारा निर्मित की गयी। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण १० फुट ४ इंच अवगाहनावाली नौ फणावलियुक्त पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। आचार्य शान्तिसागरजीके उपदेशसे इस विशाल प्रतिमाकी पुनः प्रतिष्ठा करायी गयी। इसकी प्रतिष्ठा मार्गशीर्ष शुक्ला १० संवत् १९९४ में की गयी। दूसरा मन्दिर ब्र. जीवराज गौतमचन्दजी शोलापुरने निर्माण कराया। यह वीर सं. २४६० में निर्मित हुआ था। बायीं ओर १ फुट ५ इंच ऊँची कत्थई वर्णकी पद्मप्रभकी और दायीं ओर वासुपूज्यकी प्रतिमा है। उपर्युक्त गुफा और पार्श्वनाथ प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन हैं।

इन मन्दिरोंके बगलमें ही अत्यन्त प्राचीन दो गुफा मन्दिर हैं। इन गुहामन्दिरोंका निर्माण कब किसके द्वारा किया गया, यह ज्ञात नहीं होता। प्रतिमाओंपर लेप चढ़ा दिया गया है, इसलिए उनकी कला और संरचनासे भी निर्माण-कालका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। गुफाको भी पलस्तर और रंग-रोगन करके कमरेका रूप दे दिया है।

सामने वेदीपर एक शिलाफलकमें तीन श्यामवर्णकी ४ फुट ५ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक प्रतिमाके दोनों ओर स्तम्भ हैं। इस प्रकार कुल ४ स्तम्भ हैं। स्तम्भोंपर ऊपर पद्मासन प्रतिमा, मध्यमें जंजीर और अधोभागमें खड्गासन प्रतिमाओंका अंकन है। प्रतिमाओंके सिरके ऊपर छत्र, छत्रके दोनों पार्श्वोंमें तूर्य वाद्य। छत्रके ऊपर एक हाथमें चमर तथा दूसरे हाथमें फल लिये हुए देवी तथा उसके ऊपर कीचक है। बायीं ओर आलेमें एक भक्त हाथ जोड़े बैठा है।

बायीं ओरकी दीवारमें पैनल बने हुए हैं। बायीं ओरसे—१० इंच ऊँची तीन खड्गासन मूर्तियाँ, आगे २ फुट ऊँची एक पद्मासन, उसके दोनों ओर खड्गासन मूर्तियाँ, इनसे आगे पुनः इसी प्रकार मध्यमें पद्मासन और दोनों ओर खड्गान मूर्तियाँ, पुनः १० इंच ऊँची तीन खड्गासन मूर्तियाँ। मध्यवर्ती दो मूर्तियोंके परिकरमें पुष्पमाला लिये हुए देव दिखाई पड़ते हैं।

इसी प्रकार दायीं ओरकी दीवारमें भी पैनल बने हुए हैं। बायीं ओरसे दायीं ओर को—मध्यमें पद्मासन मूर्ति, उसके दोनों पार्श्वोंमें खड्गासन मूर्तियाँ। मध्यमें मूर्तिके ऊपर छत्र, तूर्यवादक देव तथा ऊपर पुष्पनाल पकड़े हुए देवी। आगे इसी प्रकारका पैनल है। इससे आगेके पैनलमें सिंहपर द्विभुजी देवी ललितासनमें आसीन है। देवीका दायाँ हाथ जंघापर रखा है तथा बायें हाथमें गदा है।

बाहरी कक्षमें बायीं ओरकी दीवारमें साढ़े छह फीट अवगाहनावाली खड्गासन मूर्ति है। एक द्विभुजी गजारूढ़ा पद्मावती देवी भी है। उसके शीर्ष भागपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं। दायीं ओरकी दीवारमें भी इसी प्रकार पैनल हैं। अन्तर इतना है कि देवी सिंहारूढ़ा है।

इस गुफासे आगे बढ़नेपर एक दूसरी गुफा मिलती है। इसे भी पलस्तर करके कमरेका

रूप दे दिया गया है। सामने वेदीपर कृष्णवर्णकी ४ फुट ऊँची और २ फुट १० इंच चौड़ी पार्श्वनाथ भगवान्की तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये तीनों एक ही शिलाफलकमें उत्कीर्ण हैं। इस फलककी रचना इस प्रकार है—चमरवाहक, पार्श्वनाथ, चमरवाहक, ललितासनमें धरणेन्द्र, चमरवाहक, पार्श्वनाथ, चमरवाहक, ललितासनमें पद्मावती, चमरवाहक, पार्श्वनाथ, फिर चमरवाहक।

बायीं दीवारके सहारे मध्यमें ३ फीट २ इंच ऊँचे फलकमें पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। परिकरमें छत्र, दुन्दुभिवादक, गज सूँड़में जल-कलश लिये हुए। दोनों ओर देवयुगल पुष्पमाल लिये हुए। अधोभागमें चमरवाहक और उनसे नीचे यक्ष-यक्षी।

इस मूर्तिके ऊपर २ फुट ४ इंच ऊँचे शिलाफलकमें आदिनाथ भगवान्की मूर्ति है। उसके दोनों पार्श्वोंमें पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। भगवान्के सिरपर छत्र हैं। उनके ऊपर चमरवाहक हैं। छत्रके दोनों ओर मालाधारी देव हैं। भगवान्के पादपीठपर वृषभ लांछन है।

बायीं ओर मार्बलके एक फलकमें तीन सिद्ध मूर्तियाँ खड्गासन मुद्रामें हैं। दायीं ओर मार्बलके एक फलकमें मध्यमें खड्गासन साधु-मूर्ति है तथा दोनों पार्श्वोंमें उपाध्याय और आचार्य परमेष्ठीको पद्मासन मूर्तियाँ हैं। साधु परमेष्ठीके हाथोंमें माला और पिच्छी है। आचार्य परमेष्ठीको साधु वन्दना कर रहे हैं और उपाध्याय परमेष्ठीके नीचे शास्त्र है तथा श्रावक श्रोता बैठे हैं।

बायीं ओर की दीवार-वेदीमें पार्श्वनाथ भगवान्की दो श्वेत मूर्तियाँ हैं। दायीं ओरकी दीवार-वेदीमें श्वेत वर्ण महावीर, कत्थई वर्ण चन्द्रप्रभ और कृष्णवर्ण तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं।

दायीं ओर वेदीमें भगवान् महावीरकी कत्थई वर्णकी १ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। बायीं ओर सप्तर्षियोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं तथा दायीं ओर सात बलभद्रोंके चरण-चिह्न विराजमान हैं।

बाहर बरामदेमें द्वारके बायीं और दायीं ओर ५ फुट ९ इंच अवगाहनावाली तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। बायीं ओर बरामदेके सिरेपर वेदीमें श्याम वर्ण प्राचीन पद्मासन प्रतिमा है। उसके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथ भगवान्की कत्थई वर्णकी पद्मासन और कायोत्सर्गासन प्रतिमाएँ हैं तथा आगे दो श्वेत पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इसी प्रकार दायीं ओर बरामदेके छोरपर २ फुट ४ इंच ऊँची कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है।

पुरातत्त्व

इस क्षेत्रपर तथा इसके निकटस्थ १४-१५ मीलके प्रदेशमें जैन पुरातत्त्व सामग्री विपुल परिमाणमें उपलब्ध होती है। 'शान्तिनाथ पुराण'में लिखा है कि ईसा पूर्व ९०० में मैसूरके चामराज नरेशने यहाँकी गुफाओंमें मूर्तियोंकी प्राण-प्रतिष्ठा करायी थी। तबसे ही इन गुफाओंको चामर लेनी (चामर गुफा) कहने लगे हैं। महाराष्ट्र प्रान्तमें प्राइमरी कक्षाकी पुस्तकोंमें चाम्भार लेनोके नामसे यहांके जैन मन्दिरों और गुफाओंका वर्णन आता है।

शान्तिनाथ पुराणके उपर्युक्त उल्लेखमें कितना तथ्यांश है, यह कहना कठिन है। जबतक अन्य प्रामाणिक स्रोतोंसे इसकी पुष्टि नहीं हो जाती, तबतक इसे स्वीकार करनेमें संकोच होना स्वाभाविक है।

चाम्भार लेनीके नामके आधारपर एक बहुत रोचक दन्तकथा भी प्रचलित हो गयी है। यहांसे १० मील दूरस्थ पाण्डवलयणसे किसी साधुने जूता फेंका था, जो यहाँकी गुफामें आकर गिरा था। इसीलिए उसे चाम्भार (चमार) लेनी कहा जाता है।

पाण्डव गुफाओंमें ११ नवम्बर की गुफामें भगवान् महावीरकी एक प्रतिमा ३ फुट ऊँची पद्मासन मुद्रामें है।

गजपन्थसे पश्चिमकी ओर लगभग १६ कि. मी. दूर त्र्यंबक रोडपर अंजनेरी क्षेत्र है। यहाँ पर्वतके ऊपर दो गुफाएँ हैं। एक गुफामें भगवान् मल्लिनाथकी लगभग ३ फीट ऊँची एक पद्मासन प्रतिमा पहाड़में उत्कीर्ण है। दूसरी गुफामें ५ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इस पर्वतसे नीचे गाँवमें पहले १०-१५ जैन मन्दिर थे। उनके भग्नावशेष गाँवमें बिखरे पड़े हैं। कुछ मन्दिर अभी भग्न दशामें खड़े हुए हैं। इनका शिल्प और स्थापत्य उच्चकोटिका है। एक मन्दिरमें १२वीं शताब्दीका एक शिलालेख विद्यमान है। यहाँकी मूर्तियोंको लोग उठा ले गये। इन मन्दिरोंपर आजकल पुरातत्त्व विभागका अधिकार है। यहाँ सड़कके किनारे एक शेडके नीचे पाँच फुट ऊँची पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा रखी हुई है। हिन्दू लोग अपना आराध्य मानकर इसकी पूजा करते हैं। जैनोंने इसे ले जानेका कई बार प्रयत्न किया, किन्तु हिन्दू लोग इसे ले जाने नहीं देते।

उपर्युक्त सभी पुरातत्त्व चौथीसे आठवीं शताब्दी तकका अनुमानित किया जाता है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर एक धर्मशाला है। इसमें ६५ कमरे हैं। धर्मशालामें कुआँ, स्नानगृह और शौचालय बने हुए हैं। प्रकाशके लिए बिजली है। यात्रियोंकी सुविधाके लिए गद्दे, तकिये और पर्याप्त संख्यामें बर्तनोंकी व्यवस्था है। एक दुकान भी है, जहाँ सभी आवश्यक सामान मिल जाता है। धर्मशालाके निकट ही गाँव है। पोस्ट ऑफिस गाँवमें है। क्षेत्रके कार्यालयमें टेलीफोनकी भी सुविधा है।

नासिकमें भी एक जैन धर्मशाला है। यह प्रभात टाकीजके सामने गलीमें है। इसका पता है—१३८१ टकसाल लेन, दूध नाका, त्र्यंबक दरवाजा नासिक।

मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष माघ शुक्ला १४ को वार्षिक मेला होता है। उस दिन यहाँ जलयात्राका उत्सव होता है।

क्षेत्रपर सन् १९३६ और सन् १९५० में दो बार आचार्य शान्तिसागरजी महाराजका चातुर्मास हुआ था। इसी प्रकार आचार्य महावीरकीर्तिजीके भी यहाँ दो बार चातुर्मास हो चुके हैं। इनके कारण क्षेत्रपर अनेक बार उल्लेखनीय समारोह हो चुके हैं।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था श्री दिगम्बर जैन गजपन्थ सिद्धक्षेत्र प्रबन्धक समिति करती है। इसका चुनाव मेलेके अवसरपर तीन वर्षमें जनरल मीटिंग द्वारा होता है।

मार्ग

यह क्षेत्र नासिक शहरसे ६ कि. मी. उत्तरकी ओर डिण्डोरी रोडपर स्थित है। नासिकसे बस, टैम्पो, ताँगे सभी मिलते हैं। इनसे म्हसरूल गाँवका नाम लेना चाहिए।

मांगीतुंगीसे आनेवाले सटाणा-नासिक वाया कलवनवाली बससे यहाँ उतर सकते हैं।

हिन्दूतीर्थ नासिक

नासिक हिन्दुओंका परम पावन तीर्थ है। नासिक स्टेशनसे पाँच मील दूर गोदावरीके तट-पर नासिक शहर अवस्थित है। वनवास कालमें राम, लक्ष्मण और सीताजी यहाँ बहुत समय तक

रहे थे। कहते हैं, यहींपर लक्ष्मणने सूर्पणखाकी नाक काटी थी। उसीके कारण इस स्थानका नाम नासिका पड़ गया और उससे नासिक हो गया। गोदावरीके बाँयें तटपर आधा मील दूरपर वटवृक्ष है। हिन्दू लोग इसीको पंचवटी कहते हैं। यहाँसे पाँच मील दूर पाण्डव गुफा तथा २१ अन्य गुफाएँ हैं। इनका निर्माण काल ईसाकी चौथी शताब्दी माना जाता है। महाराष्ट्रके लोग नासिकको काशीके समान पवित्र नगरी मानते हैं। जब १२ वर्ष बाद बृहस्पति सिंहराशिमें होता है, तब यहाँ विशाल कुम्भका मेला भरता है।

नासिकमें देखने योग्य वस्तुओंमें गोदावरीसे पाँच मील दूर श्री रामचन्द्रजीका भव्य मन्दिर है। मन्दिरके पासका मण्डप बहुत ही सुन्दर है। कहते हैं, इस मन्दिरके बनवानेमें सात लाख रुपया खर्च हुआ था।

गजपन्था क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री गजपन्था दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र
पो० म्हसरूल, (जिला नासिक) महाराष्ट्र

मांगीतुंगी

सिद्धक्षेत्र

मांगीतुंगी परम पावन सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे राम, हनुमान्, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील, महानील आदि ९९ कोटि मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ था। अतः यहाँका कण-कण पवित्र है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस तीर्थके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

"राम हणू सुग्गीवोगवय गवक्खो य नील महनीलो।
णव णवदी कोडीओ तुंगीगिरि णिव्वुदे वंदे ॥८॥"

अर्थात् राम, हनुमान्, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील और महानील आदि ९९ कोटि मुनियोंने तुंगीगिरिसे निर्वाण प्राप्त किया। उन्हें मैं वन्दना करता हूँ।

संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें पूज्यपाद आचार्यने 'तुंग्यां तु संगरहितो बलभद्र नामा' इस श्लोक-चरणमें बलभद्र (राम) का निर्वाण तुंगीगिरिसे बतलाया है।

उदयकीर्ति, श्रुतसागर, अभयचन्द्र, गुणकीर्ति, मेघराज, ज्ञानसागर, जयसागर, चिमणा पण्डित, देवेन्द्रकीर्ति, पण्डित दिलसुख आदि उत्तरकालीन भाषा-कवियोंने तीर्थ-वन्दना सम्बन्धी अपनी रचनाओंमें राम आदि मुनियोंकी निर्वाण-भूमिके रूपमें मांगीतुंगीका उल्लेख किया है। गंगादास, कमल, मेरुचन्द्र, गुणकीर्ति और अभयचन्द्र आदि कवियोंने बलभद्र अष्टक अथवा तुंगी गीतकी रचना करके बलराम द्वारा अपने अनुज नारायण कृष्णका दाह-संस्कार करने, विरक्त होकर दीक्षा लेने एवं यहींसे स्वर्ग गमन करनेका भावपूर्ण चित्रण किया है। इन कवियोंने भी अपनी इन रचनाओंमें तुंगीगिरिसे रामको मुक्ति प्राप्त होनेका उल्लेख करके इसको निर्वाण-भूमि माना है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बातका उल्लेख करना आवश्यक है। आचार्योंने राम आदिकी निर्वाण भूमिका नाम तुंगीगिरि दिया है, कहीं भी मांगीतुंगी नाम नहीं दिया। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें इस पर्वतका नाम तुंगीगिरि ही था। किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि मांगी और तुंगी दो भिन्न पर्वत हैं और मांगी शिखर सिद्धक्षेत्र नहीं है। वस्तुतः मांगी और तुंगी

एक ही पर्वतके दो शिखर हैं और दोनों ही एक दूसरेसे मिले हुए हैं। इन शिखरोंके पृष्ठ भागमें मंगन और तुंगन नामक दो गाँव बसे हुए हैं।

इस क्षेत्रकी वन्दनाके माहात्म्यका वर्णन भट्टारक ज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थ वन्दना' नामक अपनी रचनामें दो छप्पयोंमें बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें किया है, जो इस प्रकार है—

"तुंगी पर्वत सार सिद्ध क्षेत्र सुखदायक।
श्री बलिभद्रकुमार थया जिहां सुरवरनायक।
दर्शनथी आनंद पूजत बहु सुख पावें।
सुर नर किन्नर सकल मुनिवर मिलि गुण गावें॥
मांगीतुंगी तीर्थकी महिमा जगमें विस्तरी।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति जिहां बलिभद्रे तपसा करी ॥१२॥
हलधर श्री बलिभद्र नृप वसुदेव सुनन्दन।
कृष्णरायको बंधु सकल शास्त्र कृत खंडन।
द्वारावति निज बंधु विरह थकी व्रत लीनो।
दृढतर राख्यो चित्त ध्यान अधिक परिकीनो॥
बालक फांस्यो देखि करि तुंगीगिरि अणसण कियो।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति पंचम स्वर्ग सुरपद लियो ॥९२॥"

भट्टारक गुणकीर्तिने 'तुंगी गीत' नामक अपनी मराठी रचनामें तुंगीगिरिकी यात्राको जन्म-जरा और मरणकी परम्पराका नाश करनेवाली बताया है। सम्बद्ध अंश इस प्रकार है—

"क्रम खंडण खेत्र बुझो रे लोइया अहोनिसी करो तम्हे जात्र।
जन्म-जरा-मरन सर्व क्रम तुटे अवर न जानुं तम्ह बात ॥४॥"

यद्यपि उत्तरपुराणमें रामचन्द्रका निर्वाण सम्मेद शिखरसे बताया है, किन्तु अन्य सभी जैन पुराणों और कथा-ग्रन्थोंमें तुंगीगिरिपर ही रामका निर्वाण बताया है। जैन समाजमें यही मान्यता प्रचलित है।

कुछ महत्त्वपूर्ण पौराणिक घटनाएँ

राम-निर्वाणके समान यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई थी, जिसके कारण भी इस स्थानकी ख्याति हजारों वर्षोंसे चली आ रही है। महाभारत कथाके आकर्षण-केन्द्र नारायण कृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलरामके साथ द्वारकापुरी भस्म हो जानेपर कौशाम्बीके वनमें पहुँचे। कृष्णको बड़ी जोरकी प्यास लगी। भैया बलभद्र जलकी तलाशमें चल दिये। श्रान्त और क्लान्त कृष्णको नींद आ गयी। तभी उधरसे घूमता हुआ उन्हींका सौतेला भाई जरत्कुमार आ निकला और कृष्णके हिलते हुए वस्त्रको हरिण समझकर धोखेसे उसने बाण चला दिया। बाण आकर कृष्णके पैरमें लगा। भवितव्य दुर्निवार होता है। उसी साधारण बाणसे नारायणकी मृत्यु हो गयी। जब अपने प्राणोपम भाईके लिए बलराम जल लेकर लौटे तो उन्होंने आकर यह अकल्प्य घटना देखी। देखते ही वे मोहाविष्ट हो गये। वे अपने प्रिय भाईकी मृत देहको कन्धेपर लादे फिरते रहे। पाण्डवोंकी माता कुन्तीने उन्हें समझाया, पाण्डवोंने उन्हें समझाया किन्तु वे यह माननेको तैयार नहीं थे, वे यह सुननेको तैयार नहीं थे कि नारायण कृष्णका निधन हो चुका है। इस प्रकार छह माह बीत गये, तब एक दिन अपने सारथी भाई, जो मरकर देव हो गया था, के समझानेपर उन्हें

विश्वास हुआ कि मेरा प्यारा भाई सचमुच ही मर गया है। तब उन्होंने तुंगीगिरिके ऊपर अपने प्रिय भ्राताका दाह संस्कार किया। जिस जगह उनकी अन्त्येष्टि की गयी, वह जगह आज भी दहन-कुण्डके नामसे प्रसिद्ध है।

अपने भ्राताके वियोगसे बलरामको भी संसारसे वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने सामने अपने स्वर्ग तुल्य नगर और बन्धु-बान्धवोंको जलते हुए देखा था, किन्तु उन्हें वैराग्य नहीं आया। क्योंकि उनका प्राणोपम अनुज जीवित था। वे उनके साथ जीवन बिता सकते थे। किन्तु जब वह अनुज भी उन्हें एकाकी निराश्रय छोड़कर चला गया तो उन्हें जीवनमें और इस विशाल संसारमें कोई सार नहीं दिखाई दिया। अतः वे मुनि-दीक्षा लेकर घोर तप करने लगे। वे तप करते हुए भी अपने प्रिय अनुजका मोह दूर नहीं कर सके। इसलिए वे अष्ट कर्मोंको नष्ट कर मुक्त नहीं हो सके, बल्कि तुंगीगिरिसे पंचम स्वर्गके ऋद्धिधारी देव बने।

आजसे लगभग २३०० वर्ष पूर्व उत्तर भारतके भयंकर दुर्भिक्षके समय अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु अपने विशाल संघके साथ इस क्षेत्रपर पधारे थे, ऐसा कहा जाता है। श्री भद्रबाहु-की स्मृतिस्वरूप एक ध्यानस्थ मूर्ति यहाँपर मांगीगिरिकी एक गुफामें विराजमान है।

मांगीतुंगीसे लगभग तीन मील दूर पश्चिमकी ओर डोंगरिया देव नामक एक गुफा है। भील, कोंकण आदि जातियोंमें इस गुफाका बड़ा महत्त्व है। यह गुफा भूमितलसे १००० फुटके लगभग ऊपर है। इसके चारों ओर सघन वन है। इस गुफामें छोटे-छोटे गोल दरवाजे गोल कुण्डी-की तरह अकृत्रिम बने हुए हैं। तीसरे दरवाजेके आगे पानी भरा रहता है। इस गुफाके सम्बन्धमें अनेक अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, इसके भीतर चैत्यालय है। गुफाके भीतर एक नाला बहता है, ऐसा भी सुननेमें आया।

वास्तवमें गुफाके अन्दर क्या है, यह आज भी रहस्य बना हुआ है। कुछ लोग गुफाका रहस्य-भेद करने गुफामें जाते रहते हैं, कई बार मुनि जन भी दिव्य प्रतिमाओंके दर्शनोंकी लालसा-से कुछ भक्तजनोंके साथ गये, किन्तु गुफाके गर्भमें स्थित नालेसे आगे कोई नहीं जा सका, ऐसी चर्चा है। यह भी कहने-सुननेमें आया है कि गुफाके भीतर नालेके पास एक बड़ी दीवार है। लेकिन ये सब बातें अभी सन्देहास्पद ही बनी हुई हैं।

प्राचीन मुल्हेड़ नगर

क्षेत्रके निकट प्राचीन कालमें एक बहुत विशाल और सम्पन्न नगर था, जिसे मुल्हेड़ कहा जाता था। आज तो विगतवैभव यह नगर साधारण कस्बा रह गया है। यहाँ पर्वतके ऊपर प्राचीन दुर्गके अवशेष बिखरे पड़े हैं। इन अवशेषोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि यह दुर्ग कभी बहुत विशाल रक्षा-दुर्ग रहा होगा। इस दुर्गमें अब भी सरोवर, जलकुण्ड और भवनोंके अवशेष दिखाई पड़ते हैं। इस नगरमें केवल जैनोंकी संख्या ही हजारों थी। यहाँ जैनपुरा नामक एक मुहल्ला था, जिसमें जैनोंके ८०० घर थे। अबसे दो सौ वर्ष पूर्व यहाँ तीन सौ घर तो दसा हूमड़ोंके थे। यहाँ अनेक जिनालय और धर्मशालाएँ बनी हुई थीं। मांगीतुंगीकी यात्रा करनेवाले यात्री इन्हीं धर्मशालाओंमें विश्राम करते थे। वहाँसे जंगलों-दुर्गोंमें होते हुए तीन मील पैदल या गाड़ियोंमें चलकर तलहटीमें पहुँचते थे। तब मार्ग ऊबड़-खाबड़ था। पहाड़पर जानेके लिए भी सीढ़ियोंका निर्माण नहीं हुआ था। इसलिए अनेक यात्री तो तलहटीमें ही पूजन आदि करके सन्तुष्ट हो लेते थे।

इस नगरमें कई सुप्रसिद्ध जैन साहित्यकार भी हुए हैं। ईडर गादीके भट्टारकोंकी ओरसे ब्रह्मचारी ब्रह्म जिनदास यहाँ रहते थे। संस्कृत और प्राकृतमें विरचित आपके कई ग्रन्थ आज भी

मिलते हैं। ब्रह्म जिनदास ईडर शाखाके प्रसिद्ध भट्टारक सकलकीर्तिके शिष्य थे। ब्रह्म जिनदासके शिष्य ब्रह्म शान्तिदास भी बड़े विद्वान् थे। वे भी मुल्हेड़में रहे थे। उनके समय सूरत गादीके भट्टारक लक्ष्मीचन्द और मुनि दयालचन्द्र मुल्हेड़में वास कर रहे थे, इस प्रकारके प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन्हींके कालमें वेटावदके निवासी वेणीदासजी दसा हूमड़ उच्च कोटिके विद्वान् थे। आपने भी संस्कृत और प्राकृतमें कुछ ग्रन्थोंकी रचना की थी। आपकी प्रेरणासे वेटावद निवासी संघवीने वि. सं. १८२२ में श्री मांगीतुंगीके लिए संघ निकालकर मुल्हेड़नगरमें जिन-बिम्ब-प्रतिष्ठा करायी थी। अमलनेरके निकट मांडल ग्रामके जिनालयमें चौबीसीकी चरण-चौकीपर जो लेख है, उससे भी मुल्हेड़ नगरमें हुई बिम्ब-प्रतिष्ठाकी सूचना मिलती है। वह मूर्ति-लेख इस प्रकार है—

"श्री सं. १८२२ वर्षे द्वितीय चैत्र शुक्ला ७ बुधवासरे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार-गणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्री सकलकीर्तिः तदनुक्रमेण भट्टारकश्री विजयकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारकनेमिचन्द्र तत्पट्टे भट्टारकश्री चन्द्रकीर्ति गुरु उपदेशात् श्री बगलान देशे मुल्हेड़ हुंबड़ नगरे ज्ञातौ लघुशाखायां गंगेश्वर गोत्रे सा श्री साल वेलजी तत् भार्या उताइ स्तेना सुत राखेवदास भ्राता लघु यग्मं एते प्रतिष्ठा करान्ति शुभं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां नित्यं प्रणमति श्रीरस्तु शुभं भवतु कल्याणमस्तु।"

इससे प्रतीत होता है कि दो शताब्दी पूर्व मुल्हेड़ नगर, जो हुंबड़ जातिका नगर कहलाता था, सम्पन्न था और उस काल तक वहाँ बिम्ब प्रतिष्ठा होती रही थी। किन्तु किन्हीं प्राकृतिक अथवा राजनीतिक कारणोंसे मुल्हेड़ नगर शोभाविहीन हो गया, जनविहीन हो गया और वहाँके हुंबड़ नगर छोड़कर खानदेशके विभिन्न ग्रामोंमें जा बसे। यहाँ तक कि इस नगरमें एक भी जैन नहीं रहा। तब यहाँके जिनालयकी कुछ प्रतिमाएँ कुसुम्बाके जिनालयमें भेज दी गयीं। निश्चय ही, मुल्हेड़ नगरका यह उत्थान और पतन संसारके परिवर्तनशील स्वभावका बोध कराता है।

तलहटीमें मन्दिरोंका निर्माण

जब मुल्हेड़में जैनोंका अभाव हो गया, तब ईडरकी गादीके भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिजीको यात्रियोंकी सुख-सुविधाकी चिन्ता हुई। अतः आपने वि. सं. १८७० में पं. रिखवदासजीको भेजकर पर्वतकी तलहटीमें एक धर्मशाला बनवायी और लकड़ीका एक सिंहासन बनवाकर एक जिन-प्रतिमा दर्शन और पूजनके लिए वहाँ विराजमान करा दी।

संवत् १९०४-५ में कारंजाके भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजी और उनके शिष्य मण्डलाचार्य ब्र. रतनसागरका यहाँ आगमन हुआ। उनके सदुपदेशसे शोलापुर निवासी उत्तरेश्वर गोत्री गान्धी देवकरणने एक विशाल शिखरबन्द जिनालय निर्माण कराकर वि. सं. १९१५ माघ शुक्ला ५ को भगवान् पार्श्वनाथकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा करायी।

तत्पश्चात् उक्त भट्टारकजीके उपदेशसे बार्शी निवासी सेठ तुलजाराम बड़जातेने एक दूसरा जिनालय निर्माण कराया, जिसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा वि. सं. १९२७ को माघ शु. ५ के शुभ मुहूर्तमें करायी।

इसके पश्चात् तो वहाँ धर्मशाला, कुआँ, सभा-मण्डप, मानस्तम्भ, पहाड़पर जानेके लिए सीढ़ियों आदिका निर्माण हुआ।

क्षेत्र-दर्शन

तलहटीके मन्दिरोंके पृष्ठ भागमें लगभग एक किलोमीटर कच्चे मार्गसे चलकर सीढ़ियोंका सिलसिला शुरू हो जाता है। पहाड़पर मांगी और तुंगी दोनों शिखरोंपर जानेके लिए २९६०

सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कहीं-कहीं वर्षाके कारण बड़ी-बड़ी शिलाओंके लुढ़कनेसे सीढ़ियाँ टूट-फूट गयी हैं। मांगी शिखरके निकट कुछ सीढ़ियोंका निर्माण अभी बाकी है। इसी प्रकार तुंगी शिखरके निकट भी थोड़े-से स्थानपर अनगढ़ पत्थरोंके सहारे चढ़ना पड़ता है। दोनों शिखरोंपर अनुमानतः २५० सीढ़ियोंका निर्माण होना बाकी है। सीढ़ियोंके दोनों ओर दीवारकी फेंसिंग है। दोनों शिखरोंकी परिक्रमामें तथा जहाँ दीवारकी फेंसिंग नहीं है, वहाँ लोहेके पाइपकी रेलिंग लगी हुई है।

कुछ सीढ़ियाँ चढ़नेपर बायीं ओर दो गुफाएँ मिलती हैं, जिन्हें शुद्ध-बुद्धजीकी गुफा कहते हैं। शुद्धजीकी गुफामें ३ फीट ऊँची पीत वर्ण पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त ८ प्रतिमाएँ गुफाके अन्तः और बाह्य भागमें दीवारोंपर उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार बुद्धजीकी गुफामें ५ फुट ४ इंच अवगाहनावाली श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा वेदीपर विराजमान है। इसके अतिरिक्त तीर्थंकरों और देवताओंकी १९ प्रतिमाएँ भित्तियोंमें उत्कीर्ण हैं। इन प्रतिमाओंका पाषाण बुरबुरा है और अधिक ठोस नहीं है। जिससे मूर्तियाँ काफी घिस गयी हैं। ये मूर्तियाँ अपने रूपसे नहीं, अपितु अपनी प्राचीनतासे दर्शकोंको प्रभावित करती हैं। इन गुफाओंके निकट निर्मल जलके प्राकृतिक कुण्ड बने हुए हैं।

यहाँसे आगे बढ़नेपर पाषाण-द्वार मिलता है। यहाँसे दायीं ओरका समतल मार्ग तुंगीगिरिको जाता है और बायीं ओरका सीढ़ियोंका मार्ग मांगी शिखरको जाता है। पहले मांगी शिखरकी यात्राके लिए जाते हैं।

मांगी शिखर—महावीर मन्दिर एक गुफा है। इसे पलस्तर और टाइल्स द्वारा कमरेका रूप दे दिया गया है। इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् महावीरकी है। यह श्वेत वर्णकी पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसकी अवगाहना ३ फुट ३ इंच है। मूर्तिके ऊपर पालिश की हुई है। इसके पीठासनपर लेख और लांछन नहीं है।

बायीं ओरकी दीवारमें १ फुट १ इंच ऊँची ४ पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनमें ३ एक पंक्तिमें हैं और १ मूर्ति बायीं ओर दीवारमें है। ये सभी दीवारमें उकेरी हुई हैं। इधर ही दो आलोंमें इतनी ही बड़ी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इस मन्दिरसे कुछ आगे चलनेपर पहाड़की दीवारमें ८ प्रतिमाएँ तीर्थंकरों और यक्ष-यक्षियोंकी उत्कीर्ण हैं। इसके निकट एक छोटा-सा जल-कुण्ड है। आगे बढ़नेपर एक बरामदा मिलता है जिसमें टाइल्स लगे हुए हैं। दीवारमें पहले पैनलमें ४ फुट ऊँची तथा बायीं ओर २ फुट ३ इंच ऊँची मूर्ति है। इससे आगेके पैनलमें शिलामें २ फुट ऊँची तथा उसके पार्श्वमें कायोत्सर्गासनमें एक साधु प्रतिमा है। उससे ऊपरकी ओर एक शिलामें चौबीस तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। एक प्रतिमा श्रीकृष्णके भाई बलराम मुनिकी है। इनकी पीठ दिखाई पड़ती है। जब देव द्वारा समझानेपर बलरामको यह विश्वास हो गया कि उनका प्राणोपम भाई वास्तवमें गतप्राण हो चुका है तो उन्हें इस असार संसारसे वैराग्य हो गया और वे दुनियासे मुख मोड़कर मुनि-दीक्षा लेकर तप करने लगे। दुनियाकी ओर पीठ किये हुए यह प्रतिमा उसी अवस्थाका बोध कराती है, ऐसी रोचक उक्ति प्रचलित है।

आगे बढ़नेपर गुफा नं. ६ मिलती है। यह गुफा औरोंकी अपेक्षा बड़ी है। इसे भी पलस्तर करके कमरेका रूप दे दिया गया है। दायीं ओरसे बायीं ओरको भगवान् आदिनाथकी ४ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इसके ऊपर श्वेतवर्णकी पालिश की हुई है। आगे दीवारमें २० पद्मासन प्रतिमाएँ हैं जिनमें एक खड्गासन है। आगे ६ भक्त युगल हैं। वेदीके मध्यमें एक शिलाफलकमें पार्श्वनाथ हैं। सिरके ऊपर छत्र हैं, दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक हैं। नीचे दो पद्मासन

और दो खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। अधोभागमें बायीं ओर दो भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। इस मूर्तिसे आगे २८ पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ तथा १० कायोत्सर्गासन साधु प्रतिमाएँ हैं तथा द्वारपर दायीं ओर पद्मासन प्रतिमा है। गुफाके मध्यमें एक दीवार है जिसमें ७ अर्हन्तोंकी पद्मासन और ६ साधुओंकी कायोत्सर्ग मुद्रामें दीवारके तीन ओर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इससे आगे गुफा नं. ७ मिलती है। यह एक अर्धमण्डप है। इसके मध्यमें एक चैत्य है जिसमें चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ बनी हुई हैं तथा अन्दर दीवारमें ४ प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इससे आगे एक खुली गुफा नं. ८ है। इसमें तीन ओर २० पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ और ७ साधु प्रतिमाएँ हैं। इनके एक हाथमें माला और दूसरे हाथमें पीछी है। गुफाकी बाह्य भित्तियों-पर ७ अर्हन्त-प्रतिमाएँ और ४ साधु-प्रतिमाएँ हैं।

आगे गुफा नं. ९ है। इसमें तीन ओर ४७ पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ और १३ खड्गासन साधु-प्रतिमाएँ हैं। मध्यमें २ फुट १० इंच ऊँची पार्श्वनाथ प्रतिमा है।

इसके आगे अर्धमण्डप है। उसके मध्यमें ५ फुट ३ इंच ऊँचे क्षेत्रपाल विराजमान हैं। निकट ही एक कुण्ड है। आगे पहाड़की दीवारमें ४० प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

यहाँसे पर्वतका परिक्रमा-पथ प्रारम्भ होता है। इसमें पर्वतकी दीवारमें २४ तीर्थंकर मूर्तियाँ, साधु मूर्तियाँ और १ चरण-चिह्न बने हुए हैं। परिक्रमा समाप्त होनेपर यहाँसे उतरना प्रारम्भ हो जाता है। थोड़ा-सा उतरनेपर एक खुली हुई गुफामें दो चरण-चिह्न बने हुए हैं। कहा जाता है, यहाँ सीताजीने आर्यिका दशामें तपस्या की थी। उसकी स्मृतिस्वरूप ये चरण-चिह्न विराजमान किये गये हैं।

तुंगी शिखर—मांगी शिखरसे सीढ़ियों द्वारा उतरकर पाषाण द्वारपर आते हैं। वहाँसे दायीं ओरको एक चौरस कच्चा मार्ग तुंगी शिखरके लिए जाता है। तुंगी शिखरके मार्गमें मार्बल-की दो छतरियाँ मिलती हैं। इनमें प्राचीन चरण-चिह्न विराजमान हैं। इनसे कुछ आगे चलनेपर सीढ़ियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। यहाँ सीढ़ियोंकी कुल संख्या ३०० है। कुछ मार्ग अनगढ़ है। सर्वप्रथम चन्द्रप्रभ गुफा मिलती है। यह गुफा १२ फुट चौड़ी और १८ फुट लम्बी है। यहाँ वेदीपर भगवान् चन्द्रप्रभकी ३ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके ऊपर श्वेत पालिश की हुई है। भित्तियोंमें तीन ओर १७ प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें २ खड्गासन और १५ पद्मासन हैं। पद्मासन प्रतिमाओंमें ७ प्रतिमाएँ २ फुट १ इंचकी और ८ प्रतिमाएँ १ फुट ३ इंचकी हैं। खड्गासन प्रतिमाएँ १० इंच ऊँची हैं।

इस गुफाके बगलमें रामचन्द्र गुफा बनी हुई है। इस गुफाका आकार ९ फुट × ९ फुट है। सामने वेदीपर श्वेत पालिश की हुई ३ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये तीनों ही २ फुट ३ इंच अवगाहनाकी हैं। इनमें मध्यमें रामचन्द्र, बायीं ओरकी दीवारमें नील और गवाक्ष तथा दायीं ओरकी दीवारमें सुडील और गव अर्हन्तकी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। सभी प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रामें हैं।

गुफाके बाहर दायीं ओर पहाड़की दीवारमें ललितासनमें एक यक्षी आसीन है। गलेमें मौक्तिक माला धारण किये हुए है। इसके ऊपर बने हुए एक कोष्ठकमें तीर्थंकर प्रतिमा है। यक्षीके वाम पार्श्वमें खड्गासन मुद्रामें एक तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। इससे कुछ आगे पर्वत शिलामें पार्श्वनाथ और एक अन्य तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है।

इस शिखरके चारों ओर भी परिक्रमा-पथ बना हुआ है। परिक्रमा-पथमें लोहेकी रेलिंग

लगी हुई है। दोनों शिखरोंके परिक्रमा-पथ कच्चे हैं। यदि ये पक्के बना दिये जायें तो सुरक्षाकी दृष्टिसे अधिक सुविधाजनक हो जायें।

दोनों शिखरों और शुद्ध-बुद्धजीकी गुफाओंमें मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं। अनुमानतः इनका निर्माण काल ७-८वीं शताब्दी प्रतीत होता है। इन मूर्तियोंमें सुडौलता नहीं है, छातीपर श्रीवत्स नहीं है, उनके पादपीठपर लेख और लांछन भी नहीं है। मूर्तियोंकी यह विधा गुप्तकालके पूर्वमें प्रचलित रही थी। इस दृष्टिसे यदि इनका काल गुप्त युगसे भी पूर्ववर्ती हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी। यहाँकी गुफाएँ प्राकृतिक हैं। किन्तु भक्तजनोंने पलस्तर द्वारा इन्हें कमरोंका रूप दे दिया है। इसी प्रकार उन्होंने कुछ मूर्तियोंपर पालिश करवा दी है। सम्भवतः उनका उद्देश्य गुफाओं और मूर्तियोंकी सुरक्षा करना रहा होगा। एक सीमा तक वे अपने उस उद्देश्यमें सफल भी हुए हैं क्योंकि जिन मूर्तियोंके ऊपर लेप नहीं किया गया, वे खिरकर विरूप हो गयी हैं। इसी प्रकार गुफाएँ भी सुन्दर लगने लगी हैं। किन्तु गुफाओंका अपने प्राकृतिक रूपमें जो महत्त्व था, वह पलस्तर करने और टाइल्स लगानेसे जाता रहा। गुफाओंकी तरह पालिश की हुई प्रतिमाओंमें प्राचीनताका आभास भी नहीं मिलता। सांस्कृतिक, पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिसे प्राचीनताका विशेष महत्त्व है।

तलहटीके मन्दिर

तलहटीमें धर्मशालाओंके मध्यमें तीन मन्दिर बने हुए हैं—१. पार्श्वनाथ मन्दिर, २. आदिनाथ मन्दिर और ३. पार्श्वनाथ मन्दिर।

१. पार्श्वनाथ मन्दिर—मन्दिरमें गर्भगृह, सभामण्डप और बरामदा बना हुआ है। वेदीमें मूलनायक पार्श्वनाथकी ३ फुट ८ इंच ऊँची कृष्ण वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमाके सिरपर नौ फणावलीका मण्डप है। इसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला ५ सोमवार संवत् १९१५ को हुई थी। वेदीके समवसरणमें १२ पाषाणकी (३ कृष्ण वर्ण और ९ श्वेतवर्ण पद्मासन) तथा ३३ धातुकी (जिनमें ३ चौबीसीकी, २ चैत्य और १ सिद्ध भगवान्‌की प्रतिमा सम्मिलित हैं) प्रतिमाएँ हैं।

इस वेदीके अतिरिक्त दो वेदियाँ और हैं जिनमें पद्मावती देवीकी मूर्तियाँ हैं। एक कमरेमें क्षेत्रपालकी मूर्ति है।

इस मन्दिरके सामने एक मानस्तम्भ था। वह १४ जून १९६८ को भयंकर तूफानमें गिर पड़ा और खण्ड-खण्ड हो गया, किन्तु शीर्ष वेदीकी चारों प्रतिमाएँ सुरक्षित रहीं। वे प्रतिमाएँ भी इस मन्दिरमें रखी हुई हैं।

२. आदिनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें केवल गर्भगृह और बरामदा है। वेदीपर मूलनायक भगवान् आदिनाथकी २ फुट ५ इंच ऊँची श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ला १३ वीर संवत् २४४६ को भट्टारक विजयकीर्तिके उपदेशसे हुई थी। इस प्रतिमाके वाम पार्श्वमें २ फुट १ इंच ऊँची भगवान् विमलनाथकी संवत् १९७६ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण प्रतिमा विराजमान है तथा दक्षिण पार्श्वमें भगवान् चन्द्रप्रभकी इसी कालकी और इसी वर्णकी एक प्रतिमा है।

दायीं ओर एक वेदीमें ऋषभदेवकी २ फुट २ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है तथा बायीं ओरकी वेदीमें आचार्य शान्तिसागरजीके चरण बने हुए हैं।

३. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह मन्दिर आदिनाथ मन्दिरसे मिला हुआ है। इसमें मूलनायक पार्श्वनाथकी ग्यारह फणवाली ३ फुट ६ इंच अवगाहनामें श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान

है। इसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला ८ संवत् १९२७ को भट्टारक रत्नकीर्तिके उपदेशसे हुई थी। इसके अतिरिक्त वेदीपर श्वेत पाषाणकी ६ पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मन्दिरके बरामदेमें द्वारके दोनों ओर क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

अतिशय

यह क्षेत्र ९९ कोटि मुनियोंकी निर्वाण-भूमि है। लोगोंका विश्वास है कि इस पावन तीर्थपर देवगण दर्शन-पूजनके लिए आते रहते हैं। कहा जाता है कि कुछ वर्ष पूर्व जयपुर, ग्वालियर और दुर्गके यात्रा-संघोंने तुंगी शिखरकी ओर जाते समय नाना प्रकारके अश्रुतपूर्व वाद्योंकी तुमुल मधुर ध्वनि तीन दिन तक यात्राके समय सुनी थी। अन्य लोगोंने तुंगी शिखरपर नृत्य और वाद्योंकी ध्वनियाँ अनेक बार सुनी हैं।

दुस्साध्य साधन

ऊपर जिन मांगी और तुंगी शिखरोंका वर्णन किया गया है, वस्तुतः वहाँ गुफाएँ और मूर्तियाँ पर्वतकी चोटियोंपर नहीं हैं। चोटियाँ वहाँसे सम्भवतः दो-ढाई सौ फुट ऊपर होंगी। उन चोटियोंपर जानेका कोई सुगम मार्ग नहीं है। शायद इन चोटियोंपर जानेका किसीने प्रयत्न भी नहीं किया। ऐसी दशामें यह जिज्ञासा और कुतूहल होना स्वाभाविक था कि इन दुर्गम चोटियोंके ऊपर क्या है। सम्भवतः इसी जिज्ञासावश कुछ वर्ष पूर्व कार्तिक सुदी १५ को क्षेत्रके मेलेपर एक साहसी आदिवासी युवक मांगी शिखरकी चोटीपर गया। उसने ऊपरसे विविध वर्णके पुष्प तोड़कर बरसाये। थोड़ी देर बाद वह वहाँसे उतर आया। आकर उसने बड़ी अद्‌भुत बातें बतायीं। उसने बताया कि चोटीपर अनेक वृक्ष और पुष्पवाले पौधे हैं। वहाँ गुफाएँ हैं, निर्मल जलके कुण्ड बने हुए हैं तथा वहाँ चरण बने हुए हैं। उससे चोटीपर अधिक शोध-खोज करनेका आग्रह किया गया तो उसने पंचमीके प्रातःकाल चोटीपर चढ़कर वहाँ ध्वजा फहरानेका वचन दिया। तदनुसार वह चतुर्थीको आकर पंचमीको प्रातःकाल चोटीपर चढ़ा। वह अपने साथ जैन ध्वज, रस्सी, इंची-टेप ले गया। ऊपर जाकर उसने अपनी रस्सी द्वारा मोटे रस्सेको खींचा। तब उस मोटे रस्सेके द्वारा एक अन्य युवककी सहायतासे, जो बादमें ऊपर चढ़ा था, २२ फुट लम्बे लोहेके पाइपको खींचा। उन्होंने पाइपको रस्सी द्वारा एक ऊँचे पेड़से बाँधकर उसपर जैन ध्वज लहराया। उस समय पर्वतपर तथा तलहटीमें सैकड़ों दर्शक मौजूद थे। फिर उन्होंने मांगी शिखरकी पैमाइश की। उन्होंने नीचे आकर बताया कि मांगीकी चोटी उत्तरसे दक्षिणकी ओर ३०० फुट लम्बी तथा पूर्वसे पश्चिमकी ओर ७५ फुट चौड़ी है।

इसके पश्चात् ढींगड़ा ग्रामवासी पवल्या नामक एक आदिवासी युवक कई वर्ष तक मेलेके अवसरपर मांगी और तुंगीकी चोटियोंपर चढ़ता रहा। वह प्रायः रात्रिके समय चढ़ता था। वह कार्तिक सुदी १४ को ऊपर चढ़ता था। वह अपने साथ १०-१५ किलो घी, रुई और सात बड़े दीपक ले जाता था। वह मांगीकी चोटीपर दीपक जलाता था। तुंगीकी चोटीपर वह ध्वजा फहराता था। कभी-कभी तो वह इन चोटियोंपर ८-८ दिन रहता था। उससे कई बार आग्रह किया गया कि तुंगीकी चोटीकी शोध-खोज करके बताये कि चोटीपर क्या है। किन्तु सदा ही वह रहस्यपूर्ण उत्तर देता था कि अभी मुझे बतानेका आदेश नहीं है, जब आदेश मिल जायेगा तो मैं स्वयं बता दूँगा। किन्तु यह अवसर कभी नहीं आया क्योंकि जो तीन युवक डोंगरिया देवकी गुफामें जाकर पुनः कभी नहीं लौटे, उनमें यह पवल्या भी था।

इसके पश्चात् फिर एक अन्य आदिवासी युवकने मांगीकी चोटीपर चढ़नेका साहस किया। वह युवक प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी १४ को मांगीकी चोटीपर चढ़ता है और वहाँ नयी ध्वज फहराता है। वह तीन वर्षसे इसी प्रकार ध्वजारोहण कर रहा है।

उल्लेख योग्य बात यह है कि इन दोनों चोटियोंपर जानेका कोई मार्ग नहीं है। यहाँ अनगढ़ शिलाओंके सहारे ही जाया जा सकता है। जरा-सी ही चूक प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। इनमें तुंगीकी चोटी तो एकदम सपाट सीधी है। कहा जाता है कि इसके ऊपर तो बन्दर तक नहीं चढ़ सकता।

कुछ आदिवासियोंकी सूचनाके आधारपर यह भी ज्ञात हुआ है कि मांगी और तुंगी शिखरोंके पृष्ठ भागमें जंगलमें कुछ जैन मूर्तियाँ पड़ी हैं। इन शिखरोंके चारों ओर पर्वतों और जंगलोंमें शोध-खोजकी आवश्यकता है। सम्भव है, यहाँ कुछ पुरातत्त्व और नवीन रहस्योंपर प्रकाश पड़ सके।

व्यवस्था

विक्रम संवत् १९०४ से संवत् १९४६ तक क्षेत्रकी व्यवस्था कारंजाके भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजीके शिष्य ब्र. रतनसागरजीके हाथमें रही। इसके पश्चात् वे अस्वस्थ हो गये और नागपुरकी ओर विहार कर गये। तब स्थिति यहाँ तक जा पहुँची कि मन्दिरोंपर कई दिन तक ताले लगे रहे। यह समाचार प्राप्त होनेपर भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजीके शिष्य क्षुल्लक धर्मदासजी यहाँ पधारे। संवत् १९४७ के वार्षिक मेलेपर आपकी अध्यक्षतामें सभा हुई। आपकी सम्मतिसे क्षेत्रकी व्यवस्थाके लिए एक पंच कमेटीका निर्वाचन किया गया। तबसे 'पंच कमेटी श्री मांगीतुंगी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र' ही इस क्षेत्रकी सम्पूर्ण व्यवस्था करती आ रही है।

धर्मशाला

यहाँ एक धर्मशाला है जिसमें ३५ कमरे हैं। यात्रियोंकी सुविधाके लिए कुएँमें मोटर लगाकर टंकी और पाइपकी व्यवस्था की गयी है। बिजली है। गद्दे, तकियोंकी व्यवस्था है। बर्तनोंका काफी बड़ा संग्रह है। यहाँ दुकानपर आवश्यक सामान मिल जाता है। धर्मशालामें बहुत बड़ा मैदान है। यहीं मन्दिर बने हुए हैं।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला १३ से १५ तक वार्षिक मेला होता है। कार्तिक शुक्ला १४ को गिरिराजपर पंचामृताभिषेक होता है। पूर्णिमाको प्रातःकाल तलहटीके मन्दिरोंमें अभिषेक होता है। मध्याह्नमें रथयात्राका जलूस निकलता है। रथ धर्मशालाके बाहर एक बटवृक्ष तक जाता है। वहाँ १०८ कलशोंसे भगवान्का अभिषेक होता है। इस अवसरपर लगभग २०-२५ हजार व्यक्ति मेलेमें सम्मिलित होते हैं जिनमें जैनेतर अधिक संख्यामें आते हैं। मेलेकी व्यवस्था ग्राम पंचायत करती है।

एक उल्लेखनीय धार्मिक मेला फाल्गुन शुक्ला १२ संवत् १९९७ को हुआ था। उस दिन मानस्तम्भकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी। उस समय मुनिराज श्री वीरसागरजीका संघ एक माहसे क्षेत्रपर ठहरा हुआ था। प्रतिष्ठाके अवसरपर परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी भी संघ सहित पधारे थे।

मार्ग और अवस्थिति

नासिक एण्ड वेस्ट खानदेश डिस्ट्रिक्ट सर्वे रिपोर्टके अनुसार मांगीतुंगी पर्वत गालना हिल्स कहलाता है तथा तलहटीके गाँवका नाम भिलवाड़ा है। मांगी शिखर समुद्रतलसे ४१४३ फुट ऊँचा है तथा तुंगी शिखर ४३६६ फुट ऊँचाईपर है।

वहाँ जानेका मार्ग इस प्रकार है—बम्बईकी ओरसे आनेवालोंको नासिकसे सटाणा (८८ कि. मी.) तथा सटाणासे ताराबाद (२७ कि. मी.) बस द्वारा जाना चाहिए। मनमाड़ स्टेशनसे सटाणा होते हुए ताराबाद ८६ कि. मी., गुजरातसे आनेवालोंको नवापुर होते हुए ताराबाद ८० कि. मी. तथा धूलियासे पिपलनेर होकर ताराबाद ८८ कि. मी. है। सभी स्थानोंसे बसें मिलती हैं। ताराबादसे बैलगाड़ी करनी पड़ती है। लगभग ४ कि. मी. पक्की सड़क है और ६ कि. मी. कच्ची सड़क है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री मांगीतुंगी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र
पो. मुल्हेड़ (तालुका सटाणा, जिला नासिक) महाराष्ट्र

चाँदवड़ गुफा मन्दिर

अवस्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन गुफा मन्दिर चाँदवड़ जिला नासिक (महाराष्ट्र) में है। चाँदवड़में पोस्ट-ऑफिस भी है। मध्य रेलवेके मनमाड़ और लासलगाँव स्टेशनोंसे चाँदवड़ जानेके लिए बसें मिलती हैं। मनमाड़से मांगीतुंगी जाते समय चाँदवड़ ग्राम मिलता है। ग्रामसे गुफा थोड़ी दूरपर है। इसी प्रकार गजपन्था क्षेत्रसे मांगीतुंगी क्षेत्रको जाते समय सटाणा पड़ता है। वहाँसे चाँदवड़ ४० कि. मी. है। बसें जाती हैं।

गुहा-मन्दिर

चाँदवड़ ग्रामसे पूर्वकी ओर पर्वतके मध्यमें श्री चन्द्रनाथ दिगम्बर जैन गुफाके नामसे एक प्राचीन गुफा है। इसमें जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान् चन्द्रनाथ (चन्द्रप्रभ) की है। वर्ण श्याम है, अवगाहना आसन सहित साढ़े तीन फुट है। पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसकी चरण-चौकीपर कोई लेख नहीं है। इस प्रतिमाकी दायीं ओर भगवान् पार्श्वनाथकी फणावलीयुक्त श्यामवर्ण पद्मासन ढाई फुट उन्नत प्रतिमा है। इससे आगे दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं जो दोनों ही ४-४ फुट ऊँची हैं। और आगे पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। अवगाहना लगभग २ फुट है। मूलनायककी बायीं ओर एक तीर्थंकर प्रतिमा, शिलाफलकोंपर दो चौबीसी तथा लगभग ३५ छोटी-बड़ी अन्य प्रतिमाएँ हैं। इनमें एक यक्ष-यक्षीकी मूर्ति है, १ चरण-चिह्न है तथा शेष तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। सभी प्रतिमाएँ श्यामवर्ण हैं। किसी भी प्रतिमापर लेख नहीं है, किन्तु उनकी रचना शैलीसे ये ८वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं। यक्ष-यक्षीकी मूर्तियोंपर सिन्दूर लगाकर कुछ लोग अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं।

पहले तो ग्रामके सभी दिगम्बर जैन प्रतिदिन पहाड़पर दर्शनार्थ जाते थे किन्तु कुछ वर्ष पूर्व ग्राममें एक दिगम्बर जैन मन्दिर बन जानेसे अब प्रायः इसी नवीन मन्दिरमें ही दर्शन कर

लेते हैं। इस मन्दिरमें मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा है। यह श्वेत वर्ण है और अवगाहना ढाई फुट है। मूर्तिलेखसे ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिष्ठा वि. संवत् १२९२ फाल्गुन शुक्ला १२ को भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति तच्छिष्य श्री विशालकीर्तिने करायी थी। यह प्रतिमा किस स्थानके मन्दिरसे लायी गयी है, यह ज्ञात नहीं हो सका।

मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त यहाँपर पार्श्वनाथकी २ प्रतिमाएँ, ऋषभदेवकी १, महावीर स्वामीकी १, नन्दीश्वरजीकी १, चौबीसीकी १ और शासनदेवी पद्मावतीकी १ प्रतिमा है। इन प्रतिमाओंमें २ पाषाणकी तथा ५ पीतलकी हैं। मूलनायकके अतिरिक्त शेष प्रतिमाएँ आधुनिक हैं।

गुफा-मन्दिरपर अथवा पहाड़पर दिगम्बर समाजका अधिकार है। ग्राममें श्वेताम्बर समाजके भी दो मन्दिर हैं—चन्द्रनाथ भगवान्‌का मन्दिर तथा नेमिनाथ ब्रह्मचर्याश्रममें स्थित आदिनाथ मन्दिर।

धर्मशाला

यात्रियोंको ठहरनेके लिए ग्रामके बाजारमें एक विशाल दिगम्बर जैन धर्मशाला है।

मेला

क्षेत्रपर कोई वार्षिक मेला नहीं होता। हाँ, स्थानीय और निकटवर्ती नगरोंके जैन भाद्रपद शुक्ला १४ को यहाँ अवश्य एकत्रित होते हैं। उस दिन यहाँ समारोह-पूर्वक महाभिषेक होता है।

बोरीवली (बम्बई)

मार्ग और अवस्थिति

श्री आदिनाथ बाहुबली दिगम्बर जैन मन्दिर (क्षेत्र) पोदनपुर बोरीवलीके नेशनल पार्कमें अवस्थित है। बोरीवली बम्बई नगरका उपनगर है। यह बम्बई सेण्ट्रल रेलवे जंक्शनसे ३० कि. मी. है। बम्बई सेण्ट्रल स्टेशन (वेस्टर्न रेलवे) से बराबर लोकल ट्रेन चलती रहती है। बोरीवली स्टेशनसे नेशनल पार्क, जहाँ मन्दिर अवस्थित है, २ कि. मी. है। यहाँ स्कूटर, घोड़ागाड़ी आदि सवारी मिलती है। मन्दिर नेशनल पार्कमें गान्धी स्मारकसे कुछ आगे जानेपर दायीं ओर मुख्य सड़कसे कुछ हटकर है और बोलचालमें 'तीनमूर्ति' कहा जाता है।

क्षेत्र-दर्शन

एक विशाल मैदानके मध्यमें ऊँची चौकीपर एक विशाल पक्का संगमरमरका चबूतरा बना हुआ है। उसके ऊपर सामने तीन खड्गासन मूर्तियाँ श्वेत मकरानेकी विराजमान हैं। मध्यमें आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव, बायीं ओर भगवान् भरत और दायीं ओर भगवान् बाहुबली स्वामीकी अति भव्य और मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं। मध्य मूर्ति (भगवान् ऋषभदेव) की अवगाहना ३१ फीटकी है तथा दोनों पार्श्ववर्ती मूर्तियोंकी ऊँचाई २९-२९ फीटकी है। उनके चरणोंमें जाकर हम संसारी जन उनके समक्ष कितने हीन और लघु लगते हैं किन्तु करुणाके स्वामी आदि-प्रभु हमें अपने चरणोंमें शरण देकर हमारे ऊपर अपार करुणाकी वर्षा करते हुए हमें मानो मूक सन्देश देते हैं, "तुम न हीन हो, न दीन हो। तुम्हारे अन्दर भी मेरे समान अनन्त आत्मवैभव

है, तुम अनन्त सम्पदाके स्वामी हो। तुम अपनी ओर देखो, अपनेको पहचानो। तुम भी मेरे समान त्रैलोक्येश्वर बन जाओगे।''

इन्हीं भावोंमें अभिभूत हुआ भक्त इन मूर्तियोंके पृष्ठ भागमें जाता है तो वहाँ तीनों ओर बनी २४ वेदियोंमें विराजमान २४ तीर्थंकरोंके दर्शन पाकर कृतकृत्य हो जाता है। दो वेदियाँ और हैं जिनमें धरणेन्द्र पद्मावती तथा क्षेत्रपालजी विराजमान हैं।

चबूतरा संगमरमरका है। सीढ़ियोंके दोनों ओर मार्बलकी दो छतरियाँ बनी हुई हैं। एक छतरीमें चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजीके मार्बलके चरण-चिह्न विराजमान हैं तथा दूसरी छतरीमें आचार्य कुन्थुसागरजी, आचार्य नेमिसागरजी, आचार्य वीरसागरजी और आचार्य शिवसागरजीके चरण-चिह्न हैं। सीढ़ियोंसे उतरनेपर चबूतरेके नीचे दोनों पार्श्वोंमें दो हॉल बने हैं। चबूतरेके सामने मैदानमें पश्चिमकी ओर त्यागी जनोंके निवास एवं ध्यानाराधनाके लिए ७ कमरे बने हुए हैं। निर्माण-कार्य अभी चालू है। मानस्तम्भ, आचार्य नेमिसागरजी महाराजकी छतरी, फर्श आदिका निर्माण शेष है।

बम्बईके अत्यन्त भौतिक और विलासपूर्ण जीवनके बीच अत्यन्त प्रशान्त और वीतरागतामय इस आयतनके निर्माणकी कल्पना जिन महनीय मुनि नेमिसागरजी महाराजके मनमें प्रस्फुटित हुई और जिन्होंने फिर अपनी इस कल्पनाको मूर्तरूप दिया, उनके पावन चरणोंमें मस्तक स्वतः ही विनत हो जाता है। आज ऐसे शहरोंमें ऐसे ही जिनायतनोंकी आवश्यकता है।

स्थानीय मन्दिर

बोरीवलीका दिगम्बर जैन मन्दिर स्टेशनसे पश्चिममें मण्डपेश्वर रोडपर स्थित है। वहाँपर भगवान् आदिनाथकी मूल प्रतिमा विद्यमान है। बाहरके प्रांगणमें चारित्रचूडामणि आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजका स्मारक स्टेच्यू है।

बम्बई शहरमें भूलेश्वर, गुलालवाडी, कालबादेवी रोड और झवेरीबाजार (सीमन्धर जिनालय) के जिनालय दर्शनीय हैं। इसी प्रकार चैत्यालयोंमें चौपाटीपर बने हुए सेठ घासीराम पूनमचन्दका चैत्यालय और सेठ हीराचन्द गुमानजीका चैत्यालय दर्शनीय है।

धर्मशाला

यहाँ हीराबागकी दिगम्बर जैन धर्मशाला (जो सी. पी. टैंकपर है) तथा इसके निकट सुखानन्द दिगम्बर जैन धर्मशाला—ये दो धर्मशालाएँ हैं। दोनों शहरके मध्यमें हैं। यहाँ नल, बिजलीकी सुविधा है। हीराबाग धर्मशालामें बर्तनोंकी भी सुविधा उपलब्ध है।

दर्शनीय स्थल

बम्बई संसारका पाँचवाँ बड़ा शहर है तथा भारतमें इसका स्थान दूसरा है। यहाँकी जनसंख्या लगभग ६० लाख है। नगरका कुल क्षेत्रफल ४३७ वर्ग किलोमीटर है। पर्यटकोंके आकर्षणके अनेक केन्द्र हैं। यहाँके दर्शनीय स्थलोंमें कुछ नाम इस प्रकार हैं—

गेटवे ऑफ इण्डिया, ताज होटल, प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम, जहाँगीर आर्ट गैलरी, राजाबाई टावर, फ्लोरा फाउण्टेन, नरीमान पाइंट, तारापोरवाला मछलीघर, (चर्नी रोड रेलवे स्टेशनके पास), चौपाटी, हैंगिंग गार्डन, कमला नेहरू पार्क, रेसकोर्स, चिड़ियाघर (विक्टोरिया गार्डन या रानीबाग), ब्रबोर्न स्टेडियम, जुहू बीच, नेशनल पार्क, कन्हेरी गुफाएँ (बोरीवली स्टेशन-

से पूर्वकी ओर लगभग ९ कि. मी. दूर १०९ गुफाओंका समूह), एलीफैंटा या धारापुरीकी गुफाएँ (शहरसे उत्तर-पूर्वमें ११ कि. मी.)।

दहीगाँव

मार्ग और अवस्थिति

'श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र दहीगाँव' महाराष्ट्र प्रान्तके शोलापुर जिलेके मालशिरस तालुकामें अवस्थित है। लोणन्दसे पंढरपुर जानेवाली सड़कपर नातेपुत्ते है। नातेपुत्तेसे बालचन्दनगरको जानेवाली सड़कपर ६ कि. मी. दूर दहीगाँव है। बालचन्दनगर यहाँसे केवल १३ कि. मी. है। सड़कसे क्षेत्रके मन्दिर दिखाई पड़ते हैं। दक्षिण-मध्य रेलवेके बारामतीसे यह ३५ कि. मी., पंढरपुर-नीरा और लोणन्दसे ६५ कि. मी. है। फलटण, अकलूज, सतारासे एस. टी. की बसें मिलती हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस प्रदेशमें दहीगाँव नामके दो गाँव है तथा एक गाँव दहीवड़ी नामसे है। जैन क्षेत्र उस दहीगाँवमें है जो नातेपुत्तेके निकट है तथा नातेपुत्तेसे बालचन्दनगरको जानेवाली सड़कके किनारेपर है।

अतिशय क्षेत्र

आजसे प्राय: डेढ़ शताब्दी पूर्व इस स्थानपर कोई जिनालय नहीं था। यहाँके जैन उस समय धर्मके प्रति उदासीन थे। अज्ञान और मिथ्यारूढ़ियाँ प्रचलित थीं। लगभग १२५ वर्ष पूर्व यहाँपर कारंजाके निकटवर्ती सेन्दुरजना ग्रामके निवासी ब्रह्मचारी महतीसागरजी पधारे। वे एक विद्वान् और शासन प्रभावक त्यागी थे। इस प्रदेशमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने कई स्थानोंपर जिनालयोंका निर्माण कराया था। उनके उपदेशोंसे यहाँकी समाजमें जागृति आयी और कुरूढ़ियोंका नाश हुआ। यहाँपर एक विशाल और कलापूर्ण मन्दिर बनवानेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी, किन्तु वे असमयमें ही विक्रम संवत् १८८९ में दिवंगत हो गये। ब्रह्मचारीजीकी इस अन्तिम अभिलाषाकी पूर्तिका दायित्व उनके शिष्य पण्डित गुणचन्द्र और गृहस्थशिष्योंने अपने ऊपर लिया और विशाल जिनालयका निर्माण कराया। विक्रम संवत् १८९३ में उनके एक गृहस्थ-शिष्य फलटण निवासी सेठ जयचन्द गान्धी और उनके पुत्रोंने ब्रह्मचारीजीकी समाधिका निर्माण कराके उसमें उनकी चरण-पादुका विराजमान करायीं। इन चरण-पादुकाओंके दर्शन करनेसे लोगोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इस प्रकार जनतामें विश्वास व्याप्त है। इसी मान्यताको लेकर धीरे-धीरे यह स्थान अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है।

क्षेत्र-दर्शन

यहाँ मुख्य वेदीमें ५ फुट ५ इंच अवगाहनावाली भगवान् महावीरकी श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा मूलनायकके रूपमें विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१० माघ शुक्ला ४ रविवारको हुई थी। बायीं ओर आदिनाथ भगवान्‌की श्वेत पद्मासन तथा दायीं ओर पार्श्वनाथकी कृष्ण पद्मासन प्रतिमा हैं। इसके अतिरिक्त इस वेदीपर धातुकी ५० मूर्तियाँ विराजमान हैं।

यहाँसे निकलकर बायीं ओर मण्डपमें-से जाते हैं और ३-४ सीढ़ियाँ उतरनेपर एक गर्भगृह मिलता है जिसमें वेदीपर भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा आसीन है। इसी

वेदीपर ब्रह्मचारी महतीसागरजीकी चरण-पादुकाएँ हैं। ये ही पादुकाएँ अतिशयसम्पन्न कहलाती हैं।

उक्त वेदीकी बायीं ओर एक गर्भगृहमें ३ फुट २ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें भगवान् पार्श्वनाथकी सप्तफणावलियुक्त श्यामवर्णवाली खड्गासन प्रतिमा है। पादपीठपर लेख नहीं है। प्रतिमाके दोनों पार्श्वोंमें यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। यह फलक एक किसानको खेत जोतते समय भूगर्भसे प्राप्त हुई थी।

मुख्य वेदीके सामने जो सभा-मण्डप बना हुआ है, उसके नीचे उतना ही बड़ा तलघर है। आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके उपदेशसे यहाँ विदेह क्षेत्रमें वर्तमान २० तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ विराजमान की गयी थीं। इनमें सीमन्धर भगवान्‌की ४ फुट ४ इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् २००२ में हुई थी। अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी वर्ण, आकार आदिकी दृष्टिसे लगभग इसके समान हैं। ये इस तल-प्रकोष्ठमें दीवारोंसे संलग्न चारों ओरकी वेदियोंमें विराजमान हैं। इस प्रकोष्ठके मध्यमें एक चबूतरेपर ५ फुट ऊँचा पीतलका सहस्रकूट जिनालय है। ऊपर एक ऊँचा शिखर है। जिनालयमें चारों दिशाओंमें १००८ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। यह जिनालय संवत् १६६५ में प्रतिष्ठित हुआ है।

इस प्रकोष्ठमें-से एक कमरेमें जाते हैं। इसमें एक वेदीपर ५ फुट ४ इंच अवगाहनावाली संवत् १९२१ में प्रतिष्ठित भगवान् आदिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों पार्श्वोंमें शिलाफलकमें उत्कीर्ण भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत वर्णवाली पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

इस कमरेमें-से दूसरे कमरेमें जाते हैं जहाँ वेदीपर भगवान् पार्श्वनाथकी ९ फणावलि-मण्डित कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना ५ फुट ८ इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४९ में हुई थी। यहाँ एक दीवार वेदीमें भगवान् आदिनाथकी ३ फुट ८ इंच उन्नत तथा संवत् १९२९ में प्रतिष्ठित कृष्ण वर्णवाली पद्मासन प्रतिमा आसीन है।

यहाँसे घूमकर एक अन्य तलघरमें पहुँचते हैं जहाँ पाषाणकी २८ तीर्थंकर प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनमें तीन मूर्तियाँ पार्श्वनाथकी हैं। ये श्वेत वर्णकी हैं और सहस्र फणावलियुक्त हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान् नेमिनाथकी है जो ३ फुट उत्तुंग है, कृष्णवर्णकी है, पद्मासन है और संवत् १९१९ की प्रतिष्ठित है।

इससे आगे बढ़नेपर एक अन्य कमरा मिलता है। इसमें २ फुट ऊँची संवत् १७४५ में प्रतिष्ठित भगवान् पार्श्वनाथकी सप्तफणवाली श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त यहाँ ६ श्वेत पाषाण-मूर्तियाँ और हैं। यहाँ क्षेत्रपालकी भी एक मूर्ति है।

इस कमरेमें-से निकलकर तलघरसे ऊपर जाते हैं। वहाँ मुख्य वेदीके दायीं ओर गर्भगृहमें ३ फुट ४ इंच ऊँचा एक रत्नत्रय स्तम्भ है। इसकी चारों दिशाओंमें श्याम वर्णवाली ३-३ खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२९ में हुई थी। इसीके कारण यह रत्नत्रय मन्दिर कहलाता है।

इसके पीछे दालानमें जाकर दायीं ओर कमरेमें पार्श्वनाथकी एक खड्गासन प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है। उसके दायीं ओर एक शिलाफलकमें पार्श्वनाथ खड्गासन मुद्रामें हैं। परिकरमें भामण्डल, छत्र, गजलक्ष्मी, दोनों ओर ३-३ पद्मासन मूर्तियाँ और उनसे नीचे चमरेन्द्र हैं। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९१९ है। बायीं ओर आदिनाथकी श्वेतवर्णवाली पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् १९६१ की प्रतिष्ठित है।

बायीं ओर एक आलेमें भगवान् महावीरकी श्वेत वर्णकी संवत् १९४९ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा है। इसके बायीं ओर दो श्वेत पार्श्वनाथ मूर्तियाँ खड्गासन मुद्रामें हैं। इन पार्श्वनाथ मूर्तियोंमें फणावलि नहीं है। पादपीठपर सर्प लांछन अंकित है।

इससे आगेके बरामदेमें दायीं ओर संवत् १९३९ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण और नौ फणमण्डित पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर कृष्ण वर्णकी पार्श्वनाथ प्रतिमा संवत् १९५७ में प्रतिष्ठित पद्मासन मुद्रामें आसीन है। तथा दायीं ओर एक पाषाणफलकमें पद्मावती देवीकी चतुर्भुजी मूर्ति है। इसके शीर्ष भागपर ७ तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। अधोभागमें एक ओर धरणेन्द्र है तथा दूसरी ओर भैरव अपने वाहन श्वानपर आसीन है।

बायीं ओर एक कमरेमें संवत् १९३९ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। उसके बायीं ओर खड्गासन कृष्णवर्ण ऋषभदेवकी दो मूर्तियां हैं। तथा दायीं ओर सुपार्श्वनाथ-की कृष्ण पद्मासन प्रतिमा है। कमरेके मध्यमें एक चैत्य विराजमान है।

मुख्य वेदीवाले गर्भगृहके सामने २४ स्तम्भोंपर आधारित सभामण्डप बना हुआ है। उसके मध्यमें एक खेला-मण्डप है। सभामण्डपके सामने देशी श्याम पाषाणका बना हुआ ५३ फुट उत्तुंग मानस्तम्भ है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५७ में हुई थी। मध्य मण्डपके दोनों ओर भी मण्डप बने हुए हैं।

यहाँ एक कमरेमें शास्त्र-भण्डार है। एक अन्य कमरेमें संग्रहालय बना हुआ है। इसमें ब्रह्मचारी महतीसागरजीकी सभी वस्तुएँ—शास्त्र, ऐनक आदि संग्रहीत हैं। क्षेत्रके मुख्य द्वारके बगलमें क्षेत्र कार्यालय है।

इस क्षेत्रसे लगभग ३ फर्लांग दूर जंगलमें आचार्य धर्मसागरजीके समाधि-स्थानपर छतरी बनी हुई है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर ३ धर्मशालाएँ हैं। इनमें ५० कमरे हैं। यात्रियोंको यहाँ भोजन, नल, बिजली और बिस्तरोंकी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

मेला

यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक वदी ५ से ७ तक रथयात्रा महोत्सव होता है। इस अवसरपर यहाँ १०-१५ हजार व्यक्ति बाहरसे आते हैं। प्रति पांच वर्ष बाद मानस्तम्भका अभिषेक होता है।

जैन गुरुकुल

क्षेत्रपर एक जैन गुरुकुल चल रहा है, जिसमें लगभग २५ छात्र विद्याध्ययन करते हैं। छात्रावासमें रहकर वे सरकारी स्कूलमें भी शिक्षा पाते हैं।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र,
दहीगाँव (वाया—नातेपुते), तालुका—मालशिरस
जिला शोलापुर (महाराष्ट्र)

कुण्डल (कलिकुण्ड पार्श्वनाथ)

मार्ग और अवस्थिति

श्री कलिकुण्ड पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कुण्डल महाराष्ट्र प्रान्तके सांगली जिलेमें तालुका तासगाँवमें अवस्थित है। यह पूना-सतारा-मिरज रेलमार्गपर किर्लोस्करबाड़ीसे ३.५ कि. मी. है। यह क्षेत्र सड़क मार्गसे सांगलीसे ५१ कि. मी., कराड़से २९ कि. मी. तथा तासगांवसे भी २९ कि. मी. है। सभी स्थानोंसे यहाँके लिए बस-सेवा चालू है। किर्लोस्करबाड़ीसे क्षेत्र तकके लिए ताँगे भी मिलते हैं।

अतिशय क्षेत्र

प्राचीन कालमें इस नगरका नाम कौण्डिन्यपुर था। बादमें यह कुण्डल हो गया। कहते हैं, इस नगरका सत्येश्वर नामक एक राजा था, जो बहुत बीमार था। बहुत उपचार करनेपर भी उसके स्वास्थ्यमें सुधार नहीं हुआ। वह मरणासन्न दशा तक पहुँच गया। उसकी रानीका नाम पद्मश्री था। उसने पत्थर जमा करके पार्श्वनाथकी मूर्ति तैयार करायी और बड़े भक्तिभावसे इसकी पूजा करने लगी। धीरे-धीरे राजाके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और वह बिलकुल स्वस्थ हो गया। इससे राजा और प्रजा सभी इस चमत्कारी मूर्तिके भक्त बन गये। यह तभीसे अतिशय-सम्पन्न मूर्ति मानी जाने लगी।

इस मूर्तिके अभिषेकके लिए जिस गाँवसे दही आता था, उस गाँवका नाम दह्यारी पड़ गया; जिस गाँवसे दूध आता था, उसका दुधारी; जिस गाँवसे कुम्भ (नारियल) आता था, उसका नाम कुम्भार और जिस गाँवसे फल आते थे, उस गाँवका नाम पलस पड़ गया। ये गाँव अब भी विद्यमान हैं और क्षेत्रके निकट ही हैं।

इतिहास

प्राचीनकालमें कौण्डिन्यपुर (वर्तमान कुण्डल) करहाटक (वर्तमान कराड़) राज्यके अन्तर्गत था। उस समय करहाटकमें शस्त्र-विद्या और शास्त्र-विद्याके शिक्षणके लिए विख्यात विश्वविद्यालय था। यहाँ उस समय प्रकाण्ड विद्वानोंका वास था। विद्वानोंको राज्याश्रय प्राप्त था। भारतके बड़े-बड़े विद्वान् यहाँ आकर स्थानीय शास्त्रार्थ किया करते थे। उनकी जय-पराजय-का निर्णय राज्यसभामें ही होता था। आचार्य समन्तभद्र भारतीय विद्वानोंकी अपनी दिग्विजय यात्रामें यहाँ भी पधारे थे और यहाँके विद्वानोंको वादमें जीता था।[१]

कुछ वर्ष पूर्व कुण्डल नगरके दसलाढ़ नामक एक व्यक्तिको अपने घरमें खुदाई करनेपर तीन ताम्र शासन पत्र प्राप्त हुए थे। इनका प्रकाशन दैनिक अकालके ३-४-१९५५ के अंकमें हुआ था। इनमें-से प्रथम ताम्र-पत्र राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय द्वारा दिये दानसे सम्बन्धित है। द्वितीय ताम्रपत्रमें पुलकेशिन विजयादित्य द्वारा दिये दान शासनका उल्लेख है।

तृतीय ताम्रपत्र शक संवत् १२१० का है। इसमें वनवासी नगरके कदम्बवंशी मयूरवर्मन द्वारा दिये गये दानका उल्लेख मिलता है। इस दान पत्रसे कई महत्त्वपूर्ण तथ्योंपर प्रकाश पड़ता है। इसमें प्रारम्भिक ५ श्लोकोंमें मंगलाचरण करनेके पश्चात् बताया है—एक दिन कदम्बवंशी राजा कृतवर्मा दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे। सिरपर एक श्वेत केशको देखकर उनके मनमें

---

१. श्रवणबेलगोलाका शिलालेख नं. ५४।

संसार और भोगोंसे विराग उत्पन्न हो गया। उसने अपने पुत्र मयूरवर्माका अभिषेक करके उसे राज्य सौंप दिया और मुनि-दीक्षा ले ली।

एक बार गिरनार पर्वतपर रहनेवाली अम्बिका देवी दक्षिण दिशामें आयी और कराड़ नगरकी वायव्य दिशामें स्थित पहाड़पर रहनेवाले चन्द्रगुप्त मुनिके प्रभावसे पहाड़के नीचे उत्तर दिशामें एक वृक्षके ऊपर रहने लगी। लोग उसकी पूजा करने लगे। निकटवर्ती गाँवोंके नाम उस देवीके नामपर रखे गये। कराड़का राजा हैयवनवंशी हरिश्चन्द्र देवीकी आराधना करने लगा। देवीने प्रसन्न होकर राजाको वरदान दिया, जिससे उसका मनोरथ पूर्ण हुआ। इसे देखकर मयूरवर्माने अपने धर्माध्यक्ष विष्णुमित्रके पुत्र भट्ट हरिवर्माको धार्मिक विधि-विधान करनेके लिए नियुक्त किया। उसने देवीसे अपने राजाके लिए पुत्र माँगा तथा यह वचन दिया कि पुत्र होनेपर राजा रयवल्ली गाँव देवीके लिए दानमें देगा। यथासमय राजाको पुत्र-प्राप्ति हुई। राजा नवजात पुत्रको लेकर देवीके मन्दिरमें पहुँचा, मन्दिरकी प्रदक्षिणा देकर देवीके दर्शन किये। मन्दिरके मण्डपमें आचार्य श्रीपाल विराजमान थे। राजाने उन्हें नमस्कार किया और उनसे निवेदन किया कि आप अपना एक शिष्य हमें दे दीजिए। आचार्यने गुणपाल नामक शिष्य राजाको दिया। राजाने रयवल्ली देशका दान उन्हें किया। देवीने कहा कि मुझे इतने बड़े देशकी क्या आवश्यकता है। तब राजाने कराड़ देशके अनेक ब्राह्मणोंकी साक्षीमें चैत्र शुक्ला १० को उदम्बर गाँवका दान किया। यह गाँव कृष्णावेणा नदीके तटपर है। आचार्य श्रीपालके शिष्य भल्लंकी गणके गुणदेवने यह दान सँभाला।

इस ताम्रपत्रमें यापनीय संघकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी दी गयी है।

१६वीं शताब्दीके रत्ननन्दी मुनिके मतानुसार कराड़ नरेश भूपाल दिगम्बर मतानुयायी था और उसकी रानी नकुलदेवी श्वेताम्बर थी। दोनोंको सम्मिलित भक्तिके कारण यापनीय संघकी उत्पत्ति हुई।

इस लेखमें एक स्थानपर बताया है कि १०वीं शताब्दीके एक आचार्यके मतानुसार इस संघकी स्थापना कल्याणी नगरमें द्वितीय शताब्दीमें हुई थी। चालुक्य नरेशोंकी चार राजधानियोंमें एक राजधानी कल्याणी नगरमें थी। ५वीं शताब्दीके लगभग जब मूल दिगम्बर जैन संघसे पृथक् होकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय अस्तित्वमें आया, तब कुछ समन्वयवादी जैनोंने यापनीय संघ स्थापित किया। ताम्रपत्रमें यह भी उल्लेख है कि चालुक्य नरेश विजयादित्यने सातवीं शताब्दीमें कुण्डल नामक ग्राममें स्थित यापनीय संघके किसी विद्यापीठको कई गाँव दानमें दिये। इस यापनीय संघकी स्थापना इसी राजाने की थी। इस मतके अनुसार भूपाल नरेश ७वीं शताब्दीसे पूर्व कराड़ देशमें हुआ होगा। सम्भवतः इस राजाने दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायोंके मतभेद दूर करनेका बहुत प्रयत्न किया था।

१३वीं शताब्दीके आचार्य श्रीमाल और १६वीं शताब्दीके रत्ननन्दी आदि आचार्य मुनिसंघके साथ इस देशमें विहार करते थे।

क्षेत्र-दर्शन

कुण्डलनगरमें एक मन्दिर है। यह कलिकुण्ड पार्श्वनाथ मन्दिर कहलाता है। इसके गर्भगृहमें वेदीपर ५ फीट ४ इंच ऊँची भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। अभी कुछ वर्ष पूर्व मूर्तिपर लेप किया गया है। अतः लेख दब गया है। यह मूर्ति बालुकामय

कहलाती है। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। इसके पीछे दीवारमें हाथ जोड़े हुए देवियाँ बनी हुई हैं। यही मूर्ति कलिकुण्ड पार्श्वनाथ कहलाती है। अनेक भक्तजन यहाँ मनौती मनाने आते हैं।

इस मूर्तिके सामने पार्श्वनाथ भगवान्‌की एक और मूर्ति कृष्ण वर्णकी पद्मासन मुद्रामें आसीन है। इसकी अवगाहना १ फुट ३ इंच है। यह सप्तफणमण्डित है। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। पादपीठपर सर्पका लांछन अंकित है। मूर्तिलेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् ९६४ में हुई थी।

इस वेदीपर विधिनायक पार्श्वनाथकी एक धातु-प्रतिमा संवत् १९३६ की प्रतिष्ठित है। यहाँ धातुका एक शिखराकार चैत्य भी है।

दायीं ओर पद्मावतीदेवीकी श्वेत मार्बलकी मूर्ति है। वेदीके नीचे शिखराकृति बनी हुई है जिससे लगता है कि नीचे भोंयरा है।

गर्भगृहके बाहर सभा-मण्डपमें दायीं ओर दीवारमें धरणेन्द्र और बायीं ओरकी दीवारमें पद्मावतीकी मूर्तियाँ हैं। इन दोनोंको अज्ञानतावश सिन्दूर पोत दिया गया है। धरणेन्द्र मुकुट, गलहार, जनेऊ, कड़ा और भुजबन्द धारण किये हुए हैं। पद्मावती मुकुट और हार धारण किये है। दोनोंके साथ सर्प बना है जिससे इनकी पहचान धरणेन्द्र और पद्मावतीके रूपमें की जाती है।

मन्दिरके बाहर प्रांगण और एक लम्बा बरामदा है। यह यात्रियोंके ठहरनेके उद्देश्यसे बनाया गया है। मन्दिरके बाह्य परिक्रमापथमें एक शिलाफलकमें तीर्थंकर मूर्ति बनी हुई है। इसमें एक ओर हाथ जोड़े हुए स्त्री बैठी है, दूसरे पार्श्वमें एक पुरुष खड़ा है। सम्भवतः यह प्रतिष्ठाकारक दम्पती है। अधोभागमें एक दूसरेके नीचे दो कोष्ठक बने हैं। सम्भवतः इनमें भरत-बाहुबलीका युद्ध प्रदर्शित है।

झरी पार्श्वनाथ—कुण्डल गाँवसे २ कि. मी. दूर पहाड़पर एक प्राकृतिक गुफा बनी हुई है। यह २६ फीट २ इंच लम्बी तथा १३ फीट ८ इंच चौड़ी है। गुफाके दो भाग हैं। दायीं ओरके भागमें पार्श्वनाथ प्रतिमा है। यह ३ फीट ८ इंच अवगाहनाकी कृष्णवर्णवाली पद्मासन प्रतिमा है। शिरोभागपर नौ फण सुशोभित हैं। दायीं ओर पद्मावती देवीकी २ फीट ७ इंच ऊँची कृष्ण-वर्णकी चतुर्भुजी मूर्ति है। देवीके दो हाथ वरद मुद्रामें हैं। बायें हाथमें कमल और दायें हाथमें त्रिशूल है। देवीके सिरपर सप्तफण हैं। देवी कानोंमें कर्णफूल, गलेमें हार, भुजाओंमें भुजबन्द और हाथोंमें कंकण धारण किये हुए है। फणके ऊपर पार्श्वनाथकी लघु प्रतिमा बनी हुई है। उसके ऊपर फण और शिखर हैं। यह देवी-मूर्ति स्वतन्त्र कोष्ठकमें है।

पार्श्वनाथ प्रतिमाके सामने ६ स्तम्भोंका एक मण्डप बना हुआ है। मण्डपके ऊपर गुफाकी छतमें दायीं ओर काले पाषाण हैं तथा बायें भागमें ताम्बुष पाषाण हैं। गुफामें, मण्डपमें और मूर्तिके ऊपर निरन्तर जल झरता रहता है। इसलिए इस प्रतिमाको झरी पार्श्वनाथ कहते हैं।

गुफाका बायाँ भाग १२ फीट लम्बा है। इसकी चौड़ाई पूर्ववत् है। इसमें आधे भागमें ४ फीट ऊँचा चबूतरा है तथा आगे भागमें कुण्ड बना हुआ है जिसमें ५ फीट गहरा जल है। कुण्डमें जल निरन्तर आता रहता है। गुफाके द्वारपर दीवार बनाकर उसमें दो द्वार निकाले गये हैं।

इस गुफाके दायीं ओर कुछ ऊपर चढ़कर एक अन्य प्राकृतिक गुफा है। गुफाके बाह्य भागमें कुण्ड बना हुआ है जिसमें जल बराबर आता रहता है। गुफाके अन्दर एक हॉल है तथा

उसके अन्दर एक छोटी गुफा है। छोटी गुफाकी सामनेकी भित्तिमें मध्यमें हनुमान्, बायीं ओर राम और दायीं ओर सीताकी अनाम मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक अन्य गुफा इस गुफाके बगलमें है। यह गुहा मन्दिर दक्षिणाभिमुखी है।

इस पहाड़के सामने २-२॥ मील दूरपर कृष्णा नदी बहती है। पहाड़के सामने चौरस मैदान है।

गिरि पार्श्वनाथ—पहले पहाड़से लगभग ४ कि. मी. पहाड़पर चलनेपर दूसरा पहाड़ आता है। पहाड़के ऊपर सपाट मैदानमें एक छतरीमें दो चरण-चिह्न बने हुए हैं। इनके सम्बन्धमें अनुश्रुति है कि यहाँ भगवान् महावीरका समवसरण आया था। उनकी स्मृतिमें ये चरण-चिह्न बनाये गये हैं। यहाँसे थोड़ी दूर आगे बढ़नेपर एक मन्दिर मिलता है। मन्दिर ८ फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। यहाँ ३ फीट २ इंच ऊँची कृष्ण वर्णकी पद्मासन मुद्रामें सप्तफणी पार्श्वनाथ प्रतिमा विराजमान है। कन्धेके दोनों पार्श्वोंमें फलकमें चमरेन्द्र बने हुए हैं। ये ही गिरि पार्श्वनाथ कहलाते हैं। मूर्तिके ऊपर लेप किया हुआ है। इसमें शैली आदि दब गयी है। अतः इसका रचना-काल ज्ञात नहीं हो पाता। इसके निकट क्षेत्रपालकी मूर्ति है।

मन्दिरके चारों ओर बाहर प्रदक्षिणापथ है और ऊँचा पक्का अहाता है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है।

यहाँसे गाँवके लिए सीधा मार्ग जाता है।

धर्मशाला

गाँवमें एक धर्मशाला है। क्षेत्रपर २० अगस्त सन् १९६३ को आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज संघ सहित पधारे थे। उस समय क्षेत्रपर कोई धर्मशाला नहीं थी। क्षेत्र बहुत पिछड़ी हुई दशामें था। गाँवमें जैनोंके केवल २-४ घर हैं। वे चाहते हुए भी क्षेत्रकी दशा सुधारनेमें असमर्थ थे। यह दशा देखकर पूज्य आचार्य महाराजने बाहरसे आये हुए जैन बन्धुओंको क्षेत्रकी दशा सुधारनेकी प्रेरणा की। आपकी प्रेरणासे क्षेत्रके जीर्णोद्धारका निश्चय किया गया और क्षेत्रपर आवश्यक निर्माण कार्य हुआ।

सेठ शिवलाल भाई प्रेमचन्द लेंगरेकर बारामतीने २९ दिसम्बर १९५२ को क्षेत्रका ट्रस्ट किया और कुण्डल ग्राममें स्थित अपना मकान क्षेत्रको दान कर दिया। वही भवन आवश्यक परिवर्तन करके धर्मशाला बना दिया गया। धर्मशालामें तीन ओर खुले बरामदे तथा कई कमरे हैं। बाथरूम, नल और बिजलीकी व्यवस्था है।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रतिवर्ष श्रावण मासके अन्तिम सोमवारको जलयात्रा होती है। इसमें लगभग ६-७ हजार व्यक्ति सम्मिलित हो जाते हैं। नगरके मन्दिरसे जलयात्राका जलूस निकलकर तालके घाटपर जाता है। वहाँ मण्डपमें भगवान्का अभिषेक होकर जलूस वापस लौटता है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री कलिकुण्ड पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
कुण्डल, तालुका तासगाँव
जिला सांगली (महाराष्ट्र)

बाहुबली

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बाहुबली (कुम्भोज) दक्षिण मध्य रेलवेके मिरज स्टेशनसे कोल्हापुर जानेवाले रेलमार्गपर है। हातकलंगणे उसका स्टेशन है। उस स्टेशनसे ६ कि. मी. दूर बाहुबली क्षेत्र महाराष्ट्रके कोल्हापुर जिलेमें है। यहाँका पोस्ट ऑफिस बाहुबली है। यहाँसे पश्चिमकी ओर २ कि. मी. दूर कुम्भोज नामक नगर है। स्टेशनसे क्षेत्र तक पक्की सड़क है। बस, तांगा और स्कूटरोंकी सुविधा है।

अतिशय क्षेत्र

अनुश्रुति है कि कई शताब्दी पूर्व दिगम्बर मुनि बाहुबली विहार करते हुए बाहुबली (कुम्भोजगिरिपर) पधारे। यहाँ ध्यान और तपस्याके योग्य एकान्त और शान्ति देखकर तथा यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर वे यहाँकी एक गुफामें ठहर गये और तपस्या करने लगे। वे तपस्यामें अत्यधिक निरत रहने लगे। वे आहारको भी अपनी तपस्यामें अन्तराय या बाधा मानते थे, अतः वे आहारके लिए कई-कई दिन बाद उठते थे। उन्हें आहारके लिए गाँवमें जाना भी रुचिकर नहीं लगता था, अतः वे कई बार नियम कर लेते थे कि अगर जंगलमें आहार विधिके अनुकूल मिल जायेगा तो ले लूँगा, अन्यथा उपवास करूँगा। इस प्रदेशके जैनोंमें कृषक समुदायकी संख्या अधिक है। स्त्रियाँ पुरुषोंको भोजन देनेके लिए खेतोंपर जाती हैं। सुनते हैं, मुनि बाहुबलि आहारके लिए जाते थे। यदि मार्गमें कोई जैन स्त्री भोजन ले जाती हुई मिल जाती तो वे वहीं मुद्रा धारण करके खड़े हो जाते थे और आहार लेकर पुनः गुफामें लौट आते थे।

तपस्यासे उन्हें दिव्य शक्तियाँ भी प्राप्त हो गयी थीं। एक बार वे आहारके निमित्त कुम्भोज ग्राममें पधारे। उनके नग्न रूप और मलिन वेषको देखकर कुछ शरारती मुस्लिम युवकोंने आवाजकशी करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु वे वीतराग साधु इससे मनमें कोई विकार लाये बिना ईर्यापथशुद्धिपूर्वक चलते रहे। किन्तु वे युवक उनके पीछे उपसर्ग करते हुए लगे रहे। मुनिराज अन्तराय समझकर वापस पहाड़ीपर लौट गये। तभी वहाँ एक व्याघ्र आया और मुनिराजके सम्मुख सिर झुकाकर बैठ गया। शरारती युवक भी अश्लील बकते हुए वहाँ आ पहुँचे। किन्तु जैसे ही उनकी दृष्टि व्याघ्रपर पड़ी, उनका शरीर भयसे काँपने लगा, उनकी वाणी जड़ हो गयी। मुनिराजने उनकी यह दशा देखी तो वे दयार्द्र हो उठे। उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया, "आप लोग भय न करें, व्याघ्र आप लोगोंसे कुछ नहीं कहेगा।" वे लोग शंकित कम्पित मनसे वहाँसे धीरे-धीरे खिसक गये। किन्तु उस दिनसे उन्होंने उपद्रव करना बन्द कर दिया और मुनिराजके भक्त बन गये। तबसे वे कहने लगे—"ये तो पहुँचे हुए फकीर हैं, इनमें खुदाई जलवा है, ये तो वाकई पैगम्बर है।"

इनकी स्मृति सुरक्षित रखनेके लिए एक मन्दिरमें उनके चरण-चिह्न विराजमान हैं। इन मुनिराजके चमत्कारोंके सम्बन्धमें इस प्रदेशमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इन्हींके कारण यह स्थान अतिशयक्षेत्र कहा जाने लगा।

क्षेत्र-दर्शन

सड़कके किनारे बायीं ओर एक विशाल प्रदेश-द्वार बना हुआ है। इसमें प्रवेश करते ही लगता है, एक पवित्र वातावरणमें पहुँच गये हैं। सड़क द्वारा क्षेत्रकी ओर बढ़ते ही दायीं ओर धर्मशाला नं. १ और २, यान्त्रिक विद्यालय और अतिथि-निवास एवं विद्यापीठके गुरुजनोंके निवास मिलते हैं। बायीं ओर द्वारके निकट प्रतीक्षागृह, छात्रावास, विद्यालय भवन और क्रीड़ा क्षेत्र हैं। वृक्षों, पुष्पवल्लरियों और हरित दूर्वांचलोंने बाह्य परिवेशमें प्राचीन विद्याश्रमोंकी-सी शुचिता और सौन्दर्य भर दिया है। दर्शक इस सौन्दर्यमें भावाभिभूत होकर जिनालयोंके मुख्य द्वारमें प्रवेश करता है तो सामने ऊँचाईपर सत्य और शिवके मूर्तिमान रूप और सौन्दर्यके निधान महामुनि बाहुबलिकी मूर्तिको निहारता है। निहारते ही वह भावलोकमें पहुँच जाता है। ये ही हैं कामजेता कामदेव महामनस्वी मुनि बाहुबली, जिन्होंने भरत क्षेत्रके षट्खण्ड पृथ्वीको जीतकर भी आत्मविजयका कठोर व्रत लेकर उसमें भी सफलता प्राप्त की। वे ही जगज्जयी वीतराग महामुनि मानो जगत्के सन्तप्त सन्त्रस्त प्राणियोंको अभय दान देकर खड़े-खड़े उनपर अनन्त करुणाकी वर्षा कर रहे हैं।

५० सीढ़ियाँ चढ़कर मार्बलका चबूतरा मिलता है। वहाँ बाहुबली भगवान्की २८ फीट ऊँची श्वेत मकराना पाषाणकी भव्य खड्गासन मूर्ति खड़ी है। इसकी प्रतिष्ठा सन् १९६३ माघ शुक्ला १३ बुधवारको सम्पन्न हुई थी। चबूतरेके कोनोंपर एक भक्त पुरुष और स्त्री हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। सीढ़ियोंके प्रारम्भमें दोनों ओर पाषाण गज बने हुए हैं। सीढ़ियोंपर दोनों पार्श्वोंमें बिजलीके स्तम्भ हैं। रात्रिमें विद्युत् प्रकाशमें इस मूर्तिकी रूपच्छटा अद्भुत हो जाती है।

इस मूर्तिके पृष्ठ भागमें ६ वेदियाँ बनी हुई हैं, जिनमें मांगीतुंगी, मुक्तागिरि, गजपंथा, तारंगा, सोनागिरि और पावागिरि सिद्धक्षेत्रोंकी पाषाण-सीमेण्टसे बनी प्रतिकृतियाँ हैं। इस चबूतरेके निकट दूसरे चबूतरेपर लगभग १५ फीट ऊँचा कैलास पर्वत बनाया गया है, जिसके ऊपर ७२ मन्दिराकृतियाँ बनी हुई हैं। उसके पार्श्वमें दायीं ओर गिरनार पर्वतकी रचना की गयी है। बाहुबलीके दूसरे पार्श्वमें सम्मेदशिखरकी भव्य रचना है। इन तीनों रचनाओंकी प्रतिष्ठा सन १९७० में की गयी।

इस मूर्तिके चबूतरेसे उतरकर बायीं ओर एक छतरीमें श्रुतस्कन्ध और छतरीके मध्यमें एक ताम्रपत्रपर श्रुतदेवताको नमस्कारपरक मंगलाचरण अंकित है तथा सामने दीवारपर श्रुतस्कन्धके द्वादशांगके नाम और उनकी पद संख्याका चित्रण है।

इस चबूतरेसे उतरकर एक मन्दिरमें, जो पावापुरीकी आकृतिका है, भगवान् महावीरकी हलके गुलाबी वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिष्ठा काल सन् १९७० है। पावापुरी मन्दिरसे उतरकर एक मन्दिरमें तीन खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मध्य प्रतिमा २ फीट ८ इंच ऊँची हलके गुलाबी वर्णकी भगवान् शान्तिनाथकी है। बायीं ओर २ फीट ७ इंच की कुन्थुनाथकी श्वेत और दायीं ओर अरनाथकी इसी आकारकी श्वेत वर्णवाली प्रतिमाएँ हैं। इनकी प्रतिष्ठा २६-२-१९७० को हुई है। यह रत्नत्रय मन्दिर कहलाता है। बाहर परिक्रमा-पथ बना हुआ है। इसके ऊपरी भागमें वेदीपर १ फुट ४ इंच अवगाहनावाली भगवान् महावीरकी श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसमें परिक्रमा-पथ है। इसके ऊपर लाल छतरीमें आचार्य शान्तिसागरजी-के चरण बने हुए हैं।

यहाँसे उतरकर प्रवचन मण्डप मिलता है। यह हॉल ३७ × ७६ फीट है। इससे दायीं ओर

बढ़नेपर एक कमरेमें १० पेटिकाओंमें भगवान् महावीरके जीवनसे सम्बन्धित १० चित्रांकन मिलते हैं। इसके बगलमें एक अन्य कमरेमें कांचका समवसरण बना हुआ है।

इसके दायीं ओर बाहुबली मन्दिर है। इसमें बाहुबली स्वामीकी हेम वर्णकी ६ फीट उत्तुंग और वीर संवत् २४७५ में प्रतिष्ठित खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसके आगे ३ धातु प्रतिमाएँ हैं। बाहुबली मन्दिरके शिखरमें एक छोटे कमरेमें ऋषभदेवकी भूरे वर्णकी १ फुट १० इंच ऊँची संवत् १९७६ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा है। इस मन्दिरके सामने छतकी मुंडेरपर एक लघु मानस्तम्भ बना हुआ है। इस गर्भगृहके आगे विशाल सभामण्डप बना हुआ है। इस मन्दिरके आगे ३२ फीट ऊँचा मानस्तम्भ बना हुआ है। मानस्तम्भके बगलमें सिंहद्वार है। अर्थात् प्रवेश मार्गके दोनों ओर दो स्तम्भोंपर सिंह आसीन हैं। उसके सामने मुख्य प्रवेश-द्वार बना हुआ है।

बड़ी प्रतिमाकी सीढ़ियोंके दायीं ओर एक कमरेमें श्वेत संगमरमरका ८ फीट ६ इंच ऊँचा सहस्रकूट जिनालय अवस्थित है। इसके सामने एक हॉलमें समवसरणकी भव्य रचना है। रचना कांच द्वारा निर्मित है। विद्युत् प्रकाशमें इसकी शोभा दुगुनी हो जाती है। इससे मिले हुए हॉलमें शास्त्र भण्डार है। समवसरण मन्दिरके ऊपर नन्दीश्वर जिनालय बना हुआ है। इस मन्दिरके मध्यमें पंचमेरु हैं। इस मन्दिरके सामने छतकी मुंडेरपर पूर्ववत् लघु मानस्तम्भ बना हुआ है। दीवारपर छतरियाँ बनी हुई हैं जिनमें मुनियोंके चरण-चिह्न हैं। सहस्रकूट जिनालयके शिखर वेदीमें गन्धकुटी जिनालय है। तीन कटनियोंवाली इस गन्धकुटीमें ८ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

समवसरण मन्दिरसे आगे बढ़नेपर स्वयम्भू मन्दिर है। इसकी वेदीपर ३ फीट २ इंच ऊँची ऋषभदेवकी कृष्णवर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। सिरपर घुँघराले कुन्तल हैं। स्कन्धों पर केशगुच्छक पड़ा हुआ है। श्रीवत्स नहीं है। लेख और लांछन अंकित हैं। मूर्तिके आकारके अनुपातसे मूर्तिका सिर समानुपातिक नहीं लगता। इस मन्दिरमें गर्भगृह, अर्धमण्डप और लघु प्रांगण हैं। प्रांगण ऊँची दीवारसे घिरा हुआ है। दीवारोंमें भीतर और बाह्य भागमें तीन पंक्तियों-में लघु-स्तम्भों और द्वारोंपर महराब और उनके भीतर लघु कक्ष बने हुए हैं। यहाँ तीन दिशाओं-में द्वार बने हैं। ९२ लघु कक्षोंमें मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन ९२ मूर्तियोंमें भूत-भविष्य-वर्तमानके ७२ तीर्थंकर तथा विदेह क्षेत्रके २० तीर्थंकर सम्मिलित हैं। इन लघु कक्षोंमें बहुत-से खाली हैं। ऊपरके प्रत्येक कक्षके ऊपर लघु शिखर बना हुआ है।

जिस चबूतरेपर बड़ी मूर्ति विराजमान है, उस चबूतरेपर तीन कटनियाँ हैं। बड़ी मूर्तिकी सीढ़ियोंके दायीं ओर अर्थात् स्वयम्भू मन्दिरके सामने प्रथम कटनीपर चम्पापुरी मन्दिरकी रचना की गयी है। इसमें वासुपूज्य भगवान्‌की हलके गुलाबी वर्णकी १ फुट २ इंच ऊँची वीर संवत् २४९६ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके आगे चरण-चिह्न है। इस मन्दिरके चारों कोनोंपर चार लघु मानस्तम्भ बने हुए हैं। प्रत्येक मानस्तम्भमें ४-४ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इन मन्दिरोंकी बगलमें कई कमरे बने हुए हैं। यहीं आचार्य समन्तभद्रजी महाराज विराजमान हैं। जिनका चमत्कारी व्यक्तित्व और कृतित्व इस सम्पूर्ण परिसरके अणु-अणुमें परिलक्षित होता है। उनके तप और ज्ञानसे प्रदीप्त व्यक्तित्वमें प्राचीन ऋषि-मुनियोंके दर्शन होते हैं। वस्तुतः वे मूर्तिमान् जंगम तीर्थ हैं। अनेक गुरुकुल, हाईस्कूल और कॉलेज उनके कल्पनाशील मस्तिष्क, प्रभावक व्यक्तित्व और अमोघ आशीर्वादके परिणाम हैं।

पहाड़के मन्दिर

तलहटीके इन मन्दिरोंके बगलसे पहाड़पर जानेके लिए सोपान मार्ग बना हुआ है। कुल सीढ़ियोंकी संख्या ३८६ है। कुछ सीढ़ियाँ चढ़नेपर दायीं ओर एक चबूतरेपर क्षुल्लिका पार्श्वमती अम्माके चरण बने हुए हैं। इससे थोड़ा आगे बढ़नेपर बायीं ओर एक छतरीमें मुनि श्री वर्धमान-सागरजी महाराजके चरण बने हुए हैं। ये आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके संसारी दशाके अग्रज थे। उन्हींसे आपने दीक्षा ली थी और मुनि-व्रतोंका निरतिचार पालन करते हुए इस क्षेत्र-पर आपने समाधिमरण किया था। इनकी समाधिके सामने एक अन्य मुनिके चरण एक चबूतरेपर बने हुए हैं। सीढ़ियाँ समाप्त होनेपर धर्मशाला मिलती है।

पहले यहाँ ४ दिगम्बर जैन मन्दिर थे, जिन्हें गिरा दिया गया है। उनके स्थानपर नवीन मन्दिरोंका निर्माण हो रहा है। इन मन्दिरोंकी मूर्तियाँ १६ स्तम्भोंपर आधारित एक मण्डपमें रख दी गयी हैं। यह बाहुबली मन्दिर कहलाता है। इसी मन्दिरमें मुनि बाहुबलीके चरण विराजमान हैं। इन मुनिराजके कारण ही यह क्षेत्र बाहुबली क्षेत्र कहलाता है। इन संग्रहीत मूर्तियोंमें ३ देवी-मूर्तियाँ हैं – चारभुजी पद्मावती, चतुर्भुजी सरस्वती और षोडशभुजी ज्वाला-मालिनी। ये मूर्तियाँ श्याम पाषाणकी हैं। ३ मन्दिरोंकी मूलनायक प्रतिमाएँ और उनकी अवगाहना इस प्रकार है—५ फीट २ इंच ऊँची शान्तिनाथकी, ६ फीट ऊँची चन्द्रप्रभकी और ४ फीट ३ इंच ऊँची आदिनाथकी मूर्ति। तीनों मूर्तियोंके दोनों पार्श्वोंमें उनके सेवक यक्ष-यक्षी हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ पाषाणकी १९, धातुकी ४ मूर्तियाँ हैं और १ चैत्य है। भग्न मन्दिरोंके सामने मानस्तम्भ बना हुआ है। मन्दिरोंके निकट एक बड़ा कुआँ है।

दिगम्बर मन्दिरोंके उत्तरकी ओर श्वेताम्बर मन्दिर बना हुआ है। इस पहाड़के ऊपर ४ एकड़ भूमिपर दिगम्बर समाजका अधिकार है। श्वेताम्बर मन्दिरका निर्माण इस दिगम्बर जैन क्षेत्र और दिगम्बरोंकी भूमिपर किस प्रकार हुआ, इसका एक इतिहास है। कुछ वर्ष पूर्व कुछ श्वेताम्बर जैन बाहुबली दिगम्बर जैन क्षेत्रके अधिकारियोंके पास आये और उनसे निवेदन किया कि आप हमें अपने मन्दिरोंके निकट कुछ भूमि देनेकी कृपा करें। हमारी भावना यहाँ एक जिनालय बनानेकी है। दिगम्बर समाज सदासे उदार और सहृदय रही है। क्षेत्रके अधिकारियोंने इसी सहज उदारतावश श्वेताम्बर समाजने जितनी भूमि माँगी, उतनी दे दी। इस सम्बन्धमें दोनों पक्षोंमें लिखित अनुबन्ध हुआ कि (१) श्वेताम्बर मन्दिरमें जो चढ़ावा आवेगा, उसका आधा भाग उक्त दिगम्बर क्षेत्रको दिया जायेगा। (२) श्वेताम्बर मन्दिरके निकट जो धर्मशाला बनेगी, उसके आधे भागपर दिगम्बर समाजका अधिकार रहेगा। तथा जब आवश्यकता होगी, तब सारी धर्मशालामें दिगम्बर यात्री ठहर सकेंगे। (३) श्वेताम्बर समाज दी हुई भूमिसे अधिक भूमिपर अधिकार नहीं करेगा।

उदारतावश दिगम्बर जैन क्षेत्रके अधिकारियोंने श्वेताम्बर समाजसे भूमिका कोई मूल्य या मुआवजा नहीं लिया। जब मन्दिर और धर्मशालाका निर्माण हो गया, तो श्वेताम्बर भाइयोंने दिगम्बर जैन क्षेत्रके अधिकारियोंके विरुद्ध अदालतमें मुकदमा दायर कर दिया। उसमें उन्होंने दिगम्बर मन्दिरसे लगी हुई डेढ़ फुट भूमिपर अपना अधिकार सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। अदालतमें यह मुकदमा अभी चल रहा है। दक्षिणकी ओर कोल्हापुर नरेश द्वारा बनवाया हुआ दुर्गादेवीका एक छोटा मन्दिर है।

क्षेत्रपर देशी काले पाषाणकी सात फीट ऊँची बाहुबली स्वामीकी एक प्राचीन भव्य प्रतिमा

है। यह प्रतिमा खण्डित है। इसकी चरण-चौकीपर 'शके १०७८ नलगाम संवत्सरे वैशाख सुदी १० बुधवार' अंकित है। मण्डप मन्दिरमें रखी हुई मूर्तियोंमें-से कई मूर्तियाँ भी लगभग इसी कालकी प्रतीत होती हैं।

तलहटीके मन्दिरोंसे दक्षिणको ओर लगभग ३ फर्लांग दूर प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है जिसमें भगवान् आदिनाथ, नेमिनाथ और महावीरकी अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहीं एक मुनि गुफा है। इसमें आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्य समन्तभद्रजी आदि मुनियोंने रहकर आत्म-साधना और तपस्या की है।

इस क्षेत्रकी व्यवस्थाके लिए निकटवर्ती गाँव कुम्भोजमें दिगम्बर जैनोंका रजिस्टर्ड तीर्थक्षेत्र ट्रस्ट स्थापित है जिसका नाम 'बाहुबली क्षेत्र दिगम्बर जैन ट्रस्ट' है।

गुरुकुल

पर्वतकी तलहटीमें श्री बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम (जैन गुरुकुल) चल रहा है, जो कारंजा ब्रह्मचर्याश्रमके बाद स्थापित हुआ है। शिक्षाके क्षेत्रमें गुरुकुल पद्धति भारतकी एक देन है। प्राचीन भारतमें माता-पिता अपने बालकोंको गुरुकुलमें भेज देते थे। गुरुकुल नदी तटपर, एकान्त वनस्थलीमें, प्रशान्त वातावरणमें, नागरिक कोलाहलसे दूर होते थे। वहाँ अध्यापनके लिए उच्च चारित्रवान्, निस्पृह गुरुजन रहते थे। वहाँके छात्र विनय और अनुशासनका पालन करते हुए ज्ञानकी विविध शाखाओंका अध्ययन करते थे। वहाँ रहनेवाले सभी छात्रोंके निवास, भोजन, शिक्षा, वस्त्र आदिकी व्यवस्था समान भावसे संस्थाकी ओरसे की जाती थी। गुरुकुलोंके समान ऋषिकुल भी होते थे। वहाँ ऋषियोंके सान्निध्यमें विद्याध्ययनकी व्यवस्था होती थी। ऋषियोंके आश्रमोंमें रहनेवाले छात्र विद्यार्जनके साथ स्वाभिमान, स्वावलम्बन और पुरुषार्थका पाठ भी यहीं पढ़ते थे। उन्हें आश्रमोंकी गायें दुहनेसे लेकर खेती करने, लकड़ी काटने, समिधा लाने आदि सभी कार्य करने होते थे। कुछ उपाध्याय अपनी निजी शालाएँ चलाते थे। ऐसी शालाओंमें पाँच सौ तक छात्र विद्याध्ययन करते थे। इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति (मुनि और गणधर बननेसे पूर्व) आदिने ऐसी ही शालाएँ चला रखी थीं। इन सभी प्रकारके गुरुकुलोंमें शिक्षाकी सम्पूर्ण व्यवस्था निःशुल्क होती थी। राजा और सम्पन्न लोग बिना याचनाके स्वयं ही अत्यन्त भक्ति और विनयसे सभी सुविधाएँ जुटा देते थे। वैसे इन गुरुकुलोंमें आवश्यकताएँ भी क्या थीं! भोजनकी सम्पूर्ण सामग्री खेतीसे मिल जाती थी, घी और दूधकी पूर्ति गायोंसे हो जाती थी। शिक्षा मौखिक होती थी अथवा ताड़पत्रका प्रयोग होता था। कक्षाएँ वृक्षोंके नीचे लगती थीं। आवासकी व्यवस्था झोंपड़ियोंमें की जाती थी। छात्र वहाँकी शान्ति, एकान्त और प्रकृतिके साहचर्यमें विद्या देवीकी सतत आराधना करते थे। देवी प्रसन्न होकर अपना सम्पूर्ण कोष उनपर लुटाती थी।

इस प्रकारकी गुरुकुल प्रणाली मुस्लिम आक्रमणोंसे पूर्व तक किसी न किसी प्रकार चलती रही। मुस्लिम शासन-कालमें गुरुकुलोंके अस्तित्वके सम्बन्धमें इतिहास ग्रन्थोंमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीमें आकर आधुनिक परिवेशके अनुरूप कुछ परिवर्तन करके, गुरुकुल प्रणालीका पुनरुज्जीवन हुआ। इस क्षेत्रमें सबसे अग्रणी हम महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) को मानते हैं। उन्होंने स्वामी दयानन्दके आदर्शोंको मूर्त रूप देनेके लिए कांगड़ीमें गुरुकुलकी स्थापना की। इसके बाद अनेक गुरुकुल और ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किये गये। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरने बोलपुरमें विश्वभारती (शान्ति निकेतन) की स्थापना प्राचीन गुरुकुलोंके आदर्शपर की। जैन समाजमें भी महात्मा भगवानदीन आदि कुछ उत्साही

व्यक्तियोंने गुरुकुल खोले, किन्तु जैन समाज इन गुरुकुलोंसे अपेक्षित लाभ नहीं उठा सकी। इसमें अपवाद रहे कारंजा और उसके शाखा गुरुकुल।

क्षुल्लक समन्तभद्र (जो अब आचार्य समन्तभद्र हैं) विद्वान् और रचनात्मक कार्योंके प्रति दृढ़ आस्थावान् त्यागी थे। यशोलिप्सा और प्रचारतन्त्रसे दूर और मौन साधक। उन्होंने कारंजामें एक गुरुकुल स्थापित किया। छात्रोंकी सम्पूर्ण व्यवस्था निःशुल्क रखी। उन्होंने एक आदर्श परम्परा स्थापित की जो छात्र विद्वान् बनकर यहाँसे निकलेंगे, उनमें-से कुछ आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करेंगे और अपनी संस्था की सेवा करेंगे। फलतः वहाँके निकले हुए स्नातक ही संस्थाकी व्यवस्था और संचालन करने लगे। ज्यों-ज्यों स्नातक निकलते गये, क्षुल्लकजी विभिन्न स्थानोंपर शाखा गुरुकुल खोलते गये। उन्होंने एलोरा, खुरई, शोलापुर, कुंथलगिरि, बागेवाड़ी, बाहुबली, तेरडाल, कारकलमें गुरुकुलोंकी स्थापना की। इतने स्थानोंपर शाखा गुरुकुलोंकी स्थापनाका अर्थ यही था कि वे अपने मिशनमें सफल हो रहे हैं और जनता उनका समर्थन कर रही है। आज उनके द्वारा स्थापित ११ गुरुकुल और ४ हाईस्कूल एवं कालेज सफलतापूर्वक चल रहे हैं। प्रस्तुत गुरुकुल बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापना सन् १९३४ आषाढ़ शुक्ला २ को हुई थी। इस गुरुकुलका नाम श्री बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम (जैन गुरुकुल) है। यहाँ लगभग ७०० विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हैं। उनके आवास, भोजनकी सुन्दर व्यवस्था है। छात्रोंके स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य और शिक्षापर विशेष ध्यान दिया जाता है। यहाँ धार्मिक शिक्षाका उत्तम प्रबन्ध है।

विद्यालयमें कला, विज्ञान और वाणिज्य तीनों विषयोंके शिक्षणकी व्यवस्था है। इनके अतिरिक्त यहाँ टैक्निकल स्कूल भी है। विद्यालयमें छात्रोंकी संख्या बारह सौके लगभग है। अब यह हाईस्कूलसे जूनियर कालेज हो गया है। अध्ययनके अतिरिक्त यहाँके छात्र धान्य संग्रह, पुस्तक बैंक, बचत संचयिका, सहकारी विविध-वस्तु-भण्डार आदि अनेक सार्वजनिक और स्वावलम्बी प्रवृत्तियोंमें योगदान करते हैं। इसके ट्रस्टकी ओरसे 'सन्मति' नामक एक मासिक पत्र कनड़ी और मराठी भाषाओंमें प्रकाशित होता है।

व्यवस्था

तीर्थक्षेत्र, गुरुकुल, औषधालय आदि विविध अंगों और प्रवृत्तियोंके संचालनके लिए (१) बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम ट्रस्ट और (२) बाहुबली विद्यापीठ नामक दो ट्रस्ट स्थापित हैं। प्रथम ट्रस्ट गुरुकुलके विद्यालय विभाग और औषधालय आदिकी व्यवस्था करता है तथा द्वितीय ट्रस्ट क्षेत्र, छात्रावास, धर्मशाला आदिके कार्योंकी देखभाल करता है। दोनों ही ट्रस्टोंकी स्थिति सुदृढ़ है।

धर्मशाला

यात्रियोंके ठहरनेके लिए तलहटीमें दो विशाल धर्मशालाएँ, अतिथि निवास, पर्वतपर दिगम्बर धर्मशाला और दिगम्बर-श्वेताम्बरोंको सम्मिलित धर्मशाला बनी हुई हैं। इनमें नल, बिजलीकी सुविधा है। क्षेत्रपर अन्य भी आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो जाती है।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला पूर्णमासी और मगशिर कृष्णा १ को वार्षिक मेला होता है। प्रथम दिवस गुरुकुलका उत्सव होता है तथा द्वितीय दिवस रथयात्रा। इस अवसरपर बाहरसे कई हजार व्यक्ति आते हैं।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री बाहुबली दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र,
पो. बाहुबली (कोल्हापुर) महाराष्ट्र

कोल्हापुर

मार्ग और अवस्थिति

कोल्हापुर महाराष्ट्र प्रान्तका प्रमुख व्यापारिक नगर है। बम्बई, पूना आदि नगरोंसे रेल और सड़क मार्ग दोनोंसे यह सम्बन्धित है। पूनासे कोल्हापुर ३२८ कि. मी., बम्बईसे पूना १९२ कि. मी. है। इसी प्रकार शोलापुर, बेलगाम आदि नगरोंके साथ भी इसका सम्पर्क है। यहाँ भट्टारक लक्ष्मीसेन और भट्टारक जिनसेनके भट्टारकपीठ हैं।

नगरके मन्दिर

नगरमें कई मन्दिर दर्शनीय हैं। उनमें १२वीं शताब्दी तक की प्रतिमाएँ हैं।

लक्ष्मीसेन मठ—यह शुक्रवार पेठमें स्थित है। विशाल प्रवेश-द्वारमें प्रवेश करनेपर यह सामने दिखाई देता है। बायीं ओर मठका भवन है। एक मण्डपमें २८ फोट ऊँची श्वेत मकरानेकी आदिनाथ भगवान्‌की खड्गासन मूर्ति है। उसकी बगलमें पीतलकी एक खड्गासन प्रतिमा है तथा आगे एक श्वेत शिलाफलकमें भगवान् पार्श्वनाथकी सप्तफणी श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। परिकरमें तीन छत्र हैं; ऊपर अलंकरण है। छत्रोंके दोनों ओर विमानमें बैठे देव पुष्पवर्षा करते दीख पड़ते हैं। उनके नीचे २-२ नगाड़े रखे हुए हैं। आसनके अधोभागमें वाद्यवादक हैं। दोनों ओर चमरेन्द्र हैं। उनके नीचे चतुर्भुजी यक्ष-यक्षी हैं। प्रतिष्ठा काल शक संवत् १८८४ वैशाख शुक्ला १२ बुधवार है।

इस मठके पार्श्वमें एक जिनालय है। उसमें नीचेके गर्भगृहमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की ४ फोट उन्नत प्रतिमा है तथा ऊपरकी मंजिलमें भगवान् पार्श्वनाथ एवं भगवान् शान्तिनाथकी मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त इस पार्श्वनाथ मन्दिरमें अन्य अनेक तीर्थंकर और शासन देवताओं-की मूर्तियाँ हैं। शिखर उन्नत है। यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थोंकी संख्या सात सौ है जिनमें अनेक ताड़-पत्रीय ग्रन्थ हैं। यहाँसे 'रत्नत्रय' पत्र प्रकाशित होता है तथा श्री लक्ष्मीसेन दि. जैन ग्रन्थमालासे अब तक लगभग २० ग्रन्थ प्रकट हो चुके हैं।

मंगलवार पेठ—यहाँ श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। मूलनायक भगवान् नेमिनाथ-की श्यामवर्ण मूर्ति ३ फोट ५ इंच ऊँची, पद्मासन मुद्रामें आसीन है। इसके पादपीठपर लेख और लांछन नहीं है। यह मन्दिर हिन्दुओंके महालक्ष्मी मन्दिरके समकालीन है। महालक्ष्मी मन्दिर मूलत: जैनोंका देवी मन्दिर था। बादमें इसपर हिन्दुओंने अधिकार कर लिया है। अब भी उसकी छतों और स्तम्भोंपर जैन मूर्तियाँ दिखाई देती हैं।

नेमिनाथके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथ भगवान्‌की भूरे वर्णकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं। नेमिनाथकी मूर्तिपर कुछ वर्ष पूर्व लेप किया गया है। इन मूर्तियोंके अतिरिक्त वेदीपर पीतलकी ६ और चांदीकी २ मूर्तियाँ और हैं। इनके अतिरिक्त मन्दिरमें पाषाणकी १० और धातुकी ३२ मूर्तियाँ हैं।

इस मन्दिरके पार्श्वमें रत्नत्रय मन्दिर है। वेदीपर एक शिलाफलकमें ३ खड्गासन श्याम मूर्तियाँ हैं। मध्य मूर्ति ३ फीट ६ इंचकी है तथा पार्श्ववर्ती मूर्तियाँ ३ फीट ४ इंचकी हैं। इनके आगे पार्श्वनाथकी श्वेत आधुनिक प्रतिमा है।

गर्भगृहके बाहर ७ प्रतिमाएँ पाषाणकी हैं तथा ५ फीट ६ इंच ऊँचा शिखराकार एक सहस्रकूट प्रतिमा है।

ये दोनों ही मन्दिर समकालीन हैं। कहते हैं, इसी मन्दिरमें षट्खण्डागमका अन्तिम भाग लिखकर ग्रन्थको पूर्ण किया गया था।

इसी परिसरमें जैनोंका त्रिकूट चैत्यालय था। उसपर हिन्दुओंने अधिकार कर लिया है और अब वह रंक भैरव कहलाता है। पहले इसमें पार्श्वनाथ भगवान्की मूर्ति विराजमान थी।

बाहरके प्रांगणमें ४ बड़े और ४ छोटे दीपाधार स्तम्भ बने हुए हैं तथा सदर (पालकी रखनेकी वेदी) बना हुआ है। इनपर भी हिन्दुओंने अधिकार कर लिया है।

गंगावेश—यह मन्दिर श्री पार्श्वनाथ मानस्तम्भ दिगम्बर जैन मन्दिर कहलाता है। मन्दिरके द्वार पर ३० फीट ऊँचा एक मानस्तम्भ है। इसके निकट दो चौकोर पाषाणोंपर कनड़ी भाषामें लिखे हुए दो शिलालेख दीवारके सहारे रखे हुए हैं। दायीं ओरका शिलालेख ३ फीट ६ इंच ऊँचा और २ फीट ५ इंच चौड़ा है। इसमें कुल ३१ पंक्तियाँ हैं। बायीं ओरका पाषाण ३ फीट १ इंच ऊँचा और इतना ही चौड़ा है। इसमें ४४ पंक्तियाँ हैं। इन शिलालेखोंमें 'शक संवत् १०६५ दुन्दुभी संवत्सर माघ पूर्णिमा सोमवार चन्द्रग्रहण एवं दूसरेमें शक संवत् १०७३ प्रमोद संवत्सर भाद्रपद पौर्णिमा शुक्रवार चन्द्रग्रहण' यह काल निर्देश किया गया है।

इनमें-से एक शिलालेखके ऊपरी भागमें अर्हन्त प्रतिमा उत्कीर्ण है। दायीं ओर एक गाय और बछड़ा बने हुए हैं। बायीं ओर तलवार। उसके वाम पार्श्वमें सूर्य और दक्षिण पार्श्वमें चन्द्रमा बने हुए हैं। इस शिलालेखमें शिलाहार नरेश विजयादित्यने रूपनारायण जैन मन्दिरके आचार्य मूलसंघ देशीयगण पुस्तकगच्छके प्रमुख माघनन्दि सिद्धान्तदेवके शिष्य माणिक्यनन्दि पण्डितका पाद प्रक्षालन करके वासुदेव क्षुल्लकपुर (कोल्हापुर) को पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी अष्टविध पूजा, मन्दिरके जीर्णोद्धार और मठमें रहनेवाले मुनियोंके अन्न सन्तर्पणके उद्देश्यसे जमीन दानकी थी, उसका वर्णन है। इस शिलालेखका मूलपाठ इस प्रकार है। शिलालेखकी भाषा संस्कृत है और लिपि कनड़ी है—

१. श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलांछनम्। जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिन-शासनम् //१//
२. स्वस्ति श्रीज्जंयश्चाभ्युदयश्च। जयत्यमलनानार्थप्रतिपत्तिप्रदर्शकं (कम्)। अर्हत्
३. पुरुदेवस्य शासनं मोहशासनं (नम्) //२// स्वस्ति श्रीशिलाहार महाक्षत्रियान्वये वित्र—
४. स्ताशेषरिपुप्रततिर्ज्जंतिगो नाम नरेन्द्रोभूत्। तस्य सूनवो गोंकलो गोवलः
५. कीर्तिराजश्चन्द्रादित्यश्चेति चत्वारः। तत्र गोंकलभूतलपतेर्म्मारसिंहो नाम नन्दनः। तस्य तनुजाः गूवलो
६. गंगदेवः बल्लालदेवः भोजदेवः गण्डरादित्य दे (व) श्चेति पंच। तेषु धार्म्मिकधर्म्मंजस्य वैरिका—
७. न्तावैधव्यदीक्षागुरोः सकलदर्शनचक्षुषः श्रीमद्गण्डरादित्यदेवस्य प्रियतनयः श्रीशिला—

८. स्वस्ति समधिगतपंचमहाशब्द महामण्डलेश्वरः। तगरपुरवराधीश्वरः। श्रीशिला—
९. हारनरेन्द्रः जिनविलासविजितदेवेन्द्रः जीमूतवाहनान्वयप्रसूतः शौर्य्यविख्यातः
१०. सुवर्ण्ण गरुड़ध्वजः युवतीजनमकरध्वजः निर्द्दलितरिपुमण्डलिकदर्प्पः। मरुवंकसर्प्पः।
११. अय्यनसिंगः। सकलगुणतुंगः। रिपुमंडली (लि) कभैरवः। विद्विष्ट गजकण्ठीरवः।
१२. इडुवरादित्यः। कलियुगविक्रमादित्यः। रूपनारायणः नीतिविजितचा—
१३. रायणः गिरिदुर्ग्गलंघनः। विहितविरोधिबंधनः। शनिवारसिद्धिः। धर्म्मैकबुद्धिः। महा—
१४. लक्ष्मीदेवीलब्धवरप्रसादः। सहजकस्तुरिकामोदः। एवमादिनामावली—
१५. विराजमानश्रीमद्विजयादित्यदेवः। बलवाडस्थिरशिविरे सुखसंकथाविनोदेन राज्यं कु-
१६. र्व्वार्णः। शकवर्षेषु पंचषष्ट्युत्तरसहस्रप्रमितेष्वतीतेषु प्रवर्त्तमान दुं—
१७. दुभिसंवत्सरमाघमास पौर्णमास्यां सोमवारे। सोमग्रहण पर्व्वनिमि—
१८. त्तमाजिरगेरवोल्लानुगत हाविनहेरिलगे ग्रामे। सामन्तकामदेवस्य हडप —
१९. वलेन श्रीमूलसंघदेशीयगणपुस्तगच्छाधिपतेः क्षुल्लकपुरश्रीरूपनारायणजि—
२०. नालयाचार्य्यस्य श्रीमन्माघनन्दिसिद्धान्तदेवस्य प्रियछात्रे (त्रे) ण सकलगुणरत्न-पात्रेण
२१. जिनपदपद्मभृंगेण। विप्रकुलसमुत्तुंगरंगेण। स्वीकृतसद्भावेन। वासुदेवेन।
२२. कारितायाः वसतेः श्रीपार्श्वनाथदेवस्याष्टविधार्चनार्त्थं तच्चैत्यालयखण्ड—
२३. स्फुटितजीर्ण्णोद्धारार्त्थं। तत्रत्ययतीनामाहारदानार्त्थं च। तत्रैव ग्रामे
२४. कुण्डिदण्डेन निवर्तनचतुर्त्थभोगप्रमितं क्षेत्रं। द्वादशहस्तसम्मितं गृहनिवेशनं
२५. च। तन्माघनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्याणां माणिक्यनन्दिपण्डितदेवानां। पादौ प्रक्षाल्य धारापू—
२६. र्व्वकं सर्वनमस्यं सर्व्वबाधापरिहारमाचन्द्रार्क्कतारं सशासनं दत्तवान्॥
२७. तदागामिभि। रस्मद्वंश्यै। रन्यैश्च। राजभि। रात्मसुखपुण्ययशस्सन्ततिवृद्धिम-भिलिप्सुभिः। स्व—
२८. दत्ति निर्व्विशेषं प्रतिपादनीयमिति। शान्तरसक्के ताने नेलेयाद
२९. जिनप्रभु तन्न दैव। मश्रान्तगुणक्के ताने नेलेयाद तपोनिधि माघनन्दिसैद्धान्तिक—
३०. योगि तन्न गुरु। तन्नाधिपं विभु कामदेवसामंतनिदुत्तमत्वमिदु
३१. पुण्य मिदुन्नति वासुदेवेन॥

विजयादित्यका वामणी शिलालेख—शक संवत् १०७३

यह शिलालेख कोल्हापुर जिलेके कागल तालुकाके कागलसे नैऋत्य दिशामें पाँच मील दूर वामणी ग्रामके जैन मन्दिरके द्वारपर लगा हुआ था। उसे कोल्हापुरके रूपनारायण जैन मन्दिरमें लाकर रख दिया गया है। इस शिलालेखमें बलवाडके पार्श्वनाथ मन्दिरकी देवपूजा, आवश्यक मरम्मत और मुनियोंके आहारदानकी व्यवस्थाके लिए दिये गये दानका उल्लेख है। यह मन्दिर सणगमय्य और चन्ध...व्वाके पुत्र और पुन्नकव्वेके पति चोधोरे कामगावुंडने बनवाया था। यह दान माघनन्दि सिद्धान्तदेवके शिष्य अर्हन्नन्दि सिद्धान्तदेवका पाद प्रक्षालन करके दिया गया था। इस शिलालेखसे ज्ञात होता है कि माघनन्दि सिद्धान्तदेव कुन्दकुन्दान्वयके आचार्य कुलचन्द्र मुनिके शिष्य थे।

इस शिलालेखके अग्रभागके मध्यमें पद्मासनासीन जिनेन्द्रदेव हैं। उनके सिरपर सप्तफणावली है। दायीं ओर गाय और बछड़ा है तथा बायीं ओर तलवार है। उसके दोनों पार्श्वोंमें सूर्य और चन्द्र हैं। इसका काल शक संवत् १०७३ है। इसकी भाषा संस्कृत और लिपि कनड़ी है।

लेखका मूलपाठ इस प्रकार पढ़ा गया है।

१. स्वस्ति ॥ जयत्यमल नानार्त्थ प्रतिपत्ति प्रदर्शकं (कम्)। अर्हंत पुरुदेव—
२. स्य शासनं मोहशासनं (नम्) //१// श्रीशिलाहारवंशे जतिगो नाम (क्षि)—
३. तीशस्संजातस्तत्पुत्रौ गोंकल गूवलौ। तत्र गोंकलस्य सू (नु)—
४. र्म्मारसिंहदेवस्तदपत्यं गण्डरादित्य देवस्तस्य नंदनः। समधिग—
५. तपंचमहाशब्द महामण्ड (ले) श्वरः। तगरपुर—
६. वराधीश्वरः श्रीशिलाहारवंशस (न) रेन्द्रः ॥ जीमूतवाहना—
७. न्वयप्रसूतः। सुवर्ण्णगरुड़ध्वजः। मरुवक्कसर्प्पः। अय्यनसिं—
८. गः। रिपुमंडलिकभैरवः। विद्विष्ट (ग) जकण्ठीरवः। इडुवरादित्यः।
९. कलियुगविक्रमादित्यः। रूपनारायणः। गिरिदुर्गलंघनः। श—
१०. निवारसिद्धि (द्धिः)। श्रीमहालक्ष्मीलब्धवरप्रसाद इत्यादि नामावलिविराजमानः
११. श्रीमद्विजयादित्यदेवः। बलवाडस्थिरशिविरे सुखसंकथा वि—
१२. नोदेन विजयराज्यं कुर्व्वन्। शकवर्षेषु त्रिसप्तत्युत्तरसह—
१३. स्रप्रमितेष्वतीतेषु अंकतोपि १०७३ प्रवर्त्तमानप्रमोदसंव (त्स)—
१४. र भाद्रपद पौर्णमासी शुक्रवासरे सोमग्रहणपर्व्वनिमि (त्तं)—
१५. णतुरगे गोल्लानुगतमडलूरग्रामे सणगमय्यचंध—
१६. व्वयोः पुत्रेण। पुन्नकव्वाया पत्या जन्तगावुण्डहेम्म—
१७. गावुण्डयो पित्रा चोधोरेकामगावुण्डेन कारितायाः
१८. श्रीपार्श्वनाथवसतेर्द्देवानामष्टवि (धा) र्च्चन निमित्तं। वसतेः ख —
१९. ण्डस्फुटित जीर्णोध्धा (द्धा) रार्त्थं। तत्रस्थितयतीनामाहार—
२०. दानार्त्थं च तस्मिन्नेव ग्रामे कुंडिदेशदण्डेन निव—
२१. र्त्तनचतुर्त्थभागप्रमितक्षेत्रं। तेनैव दण्डेन त्रि—
२२. शत्स्तंभप्रमाणपुष्पवाटीं। द्वादशहस्तप्रमाण—
२३. गृहनिवेशनं च स राजा निजमातुललक्ष्मणसामंतविज्ञा—
२४. पनेन तस्यैव गोत्रदानार्त्थं श्रीमूलसंघ देशीयग—
२५. णपुस्तकगच्छक्षुल्लकपुरश्रीरूपनारायणचैत्याल—
२६. यस्याचार्य्यः ॥ श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तदेवो विश्वमही—
२७. स्तुतः। कुलचन्द्रमुनेः शिष्यः कुन्दकुन्दान्वयां—
२८. शुमान् //२// अपि च। रोदोमण्डलमङ्ग किं स्ववपुषा
२९. व्याप्नोति शक्रद्विषः किं क्षीरांबुधिरावृणोति भुवनं गंगाबु
३०. किं वेष्टते। स्त्यानोयं प्रियसुस्थिरः समरुचत्किं सांद्रचंद्रात—
३१. पो यत्कीर्त्त्येत्थमभूद्वितर्कणमसौ श्रीमाघनन्दी जयेत् //३// त—
३२. न्मुनीन्द्रस्यांतेवासिनामर्हंन्नन्दिसिद्धान्तदेवानां पादौ
३३. प्रक्षाल्य धारापूर्व्वकं सर्व्वनमस्यं सर्व्वबाधापरिहारमाचं—
३४. द्राक्कंतारं सशा (स) नं दत्तवान् ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसु—

३५. न्धरां (राम्) । षष्टि वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ //४// न विषं विषमि—
३६. त्याहुर्देवस्वं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पु—
३७. त्रपौत्रकं (कम्) //५// अपि च । सवत्सां कपिलां शस्त्र्या हत्वास्या
३८. मांसशोणिते । गंगायां सोत्ति यो गृह्णात्यमूं धर्म्मोर्वरां
३९. नरः //६// तत्पातकफलेनासौ यावच्चन्द्रदिवाकरं (रम्) । तावद् घोरतरं दुःख—
४०. मश्नुते नरकावनौ //७// अन्यच्च । मातुस्साद्रंकपालेन सोत्ति मा—
४१. तंगवेश्मसु । श्वमांसं भिक्षया लब्धं गये (?) यो धर्म्मभूहरः //८//
४२. भद्रमस्तु जिनशासनाय ॥ संपद्यतां प्रतिविधानहेतवे । अन्य—
४३. वादिमदहस्तिमस्तकस्फाटनाय घटने पटीयसे ॥ अक्कसाले वं—
४४. म्योजनपुत्र । अभिनंददेवर गुड्ड गोव्योजन खडरणे ॥

पत्र-व्यवहारका पता इस प्रकार है—

स्वस्ति श्री पट्टाचार्य भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी
जैन मठ, शुक्रवार पेठ
कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

कुन्थलगिरि

सिद्धक्षेत्र

कुन्थलगिरि या कुन्थुगिरि सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र है। यहांसे कुलभूषण और देशभूषण नामक दो मुनि मुक्त हुए थे। इस सम्बन्धमें प्राकृत निर्वाणकाण्डमें इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—

"वंसत्थलवरणियडे पच्छिमभायम्मिकुंथुगिरि सिहरे।
कुलदेशभूषणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१७॥"

अर्थात् वंशस्थलके निकट पश्चिमकी ओर कुन्थुगिरिके शिखरपर कुलभूषण और देशभूषण मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए। उन्हें नमस्कार हो।

भट्टारक मेघराज (समय १६वीं शताब्दी) ने प्राकृत निर्वाणका मराठी अनुवाद किया है। उसमें उन्होंने प्राकृत मूलपाठसे अधिक एक विशेष सूचना भी दी है। मराठी अनुवाद इस प्रकार है—

"कुंथलगिरिवरसार देसभूषण कुलभूषणए।
उपसर्ग टाले राम सिद्ध हवा जगमंडणए ॥१२॥"

इसमें उन्होंने यह भी सूचित किया है कि रामने दोनों मुनियोंका उपसर्ग दूर किया।

अन्य अनेक लेखकोंने—जैसे ज्ञानसागर, गुणकीर्ति, सोमसेन, जयसागर, चिमणा पण्डित, सुमतिसागर, दिलसुख आदिने भी इसे सिद्धक्षेत्र माना है, किन्तु उन्होंने कुन्थलगिरि नाम न देकर वांसिनयर, वंशगिरि, वंशाचल आदि नाम दिये हैं जो निर्वाणकाण्डके 'वंसत्थल'से मिलते-जुलते हैं अथवा समानार्थक हैं।

कुलभूषण-देशभूषणका पौराणिक इतिहास

सिद्धार्थनगरके नरेश क्षेमंकर थे। उनकी रानीका नाम विमला था। उसके दो पुत्र थे जिनका नाम देशभूषण और कुलभूषण था। जब वे दोनों कुछ बड़े हुए तो पिताने उन्हें सागरघोष नामक एक विद्वान्के पास पढ़नेके लिए भेज दिया। दोनों भाई शास्त्र और शस्त्र दोनों प्रकारकी विद्याओंका अध्ययन करते रहे। वे सभी विद्याओं और कलाओंमें निपुणता प्राप्त कर सकें, इसलिए अध्ययन-कालमें वे परिवार और राज्यसे दूर रहे। इस कालमें वे अपने माता-पिता तथा परिवारके किसी भी सदस्यसे नहीं मिले। उनसे मिलने भी कोई नहीं गया। विद्याध्ययनमें कोई व्यवधान न हो, इसलिए यह ऐच्छिक प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

कुछ वर्षोंमें ही वे सम्पूर्ण कलाओं और विद्याओंमें पारंगत हो गये। तब गुरु उन्हें अपने साथ लेकर राज्य सभामें आये और राजासे निवेदन किया—"देव! दोनों बालक सर्वकलासम्पन्न और सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात हो गये हैं। दोनों बालक अत्यन्त सुशील, विनयी और बुद्धिमान् हैं।" राजा दोनों पुत्रोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अनेक वर्षोंके पश्चात् पुत्रोंको देखकर स्नेहविह्वल होकर उसने उन्हें अंकमें भर लिया, बड़ी देर तक उनके सिरको सूँघता रहा और हृदयसे उन्हें आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् उसने राजगुरुका समुचित सम्मान करके उन्हें विदा किया।

दोनों भाई आदर-सत्कारसे निवृत्त होकर नगर-भ्रमणके लिए चल दिये। वे नगरकी शोभा देखते हुए लौट रहे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि राजप्रासादके गवाक्षकी ओर उठ गयी। गवाक्षमें रूप-लावण्यसे सुशोभित एक षोडशी बैठी हुई थी। उसे देखकर यह भ्रम होता था—क्या गवाक्षमें पूर्णचन्द्र उदित हुआ है या कामपत्नी रति ही अवतरित हुई है? यह देवदुर्लभ रूपराशि क्या किसी मानुषीमें सम्भव है? उसे देखकर दोनोंके मनमें एक ही-से विचार उदित हुए—"इस सुन्दरीको मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा, इसके साथ विवाह करके स्वर्गीय आनन्दका अनुभव करूँगा। यदि मेरे सहोदरने इस कार्यमें बाधा डाली या प्रतिद्वन्द्विता की तो मैं उसका भी वध करूँगा।"

दोनों उस कन्याको देखकर भावलोकमें विचरण कर रहे थे। तभी वन्दीजनोंके विरुद उनके कानोंमें पड़े—"महारानी विमला और महाराज क्षेमंकरकी जय हो, जिनके दोनों पुत्र देवोंके समान हैं तथा झरोखेमें बैठी हुई जिनकी कन्या कमलोत्सवा साक्षात् सरस्वती है।"

वन्दीजनोंके ये शब्द सुनते ही उन्हें बड़ी वेदना और आत्मग्लानि हुई। दोनों ही विचार करने लगे—"धिक्कार है हमें जो हमारे मनमें अपनी सहोदरा भगिनीके प्रति कुत्सित विचार उपजे।" उन्हें अपने ऊपर बड़ी ग्लानि उपजी। मनका यह विकार ही वस्तुतः संसार है। इस संसारसे उन्हें विराग हो गया। माताने, पिताने, बहनने और सभीने उन्हें समझाया, किन्तु वे अपने विचारपर दृढ़ रहे और अन्तमें सबकी अनुमति प्राप्त करके उन्होंने मुनि-व्रत अंगीकार कर लिया।

दोनों मुनियोंने घोर तप किया। उन्हें आकाशगामिनी आदि ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। एक बार वे वंशगिरि पर्वतपर जाकर ध्यानारूढ़ हो गये। तभी वनवास-कालमें राम, लक्ष्मण और सीता सहित भ्रमण करते हुए वंशस्थल नगरमें आये। उन्होंने देखा कि नगरसे राजा और प्रजा निकलकर भाग रही है। रामचन्द्रने लोगोंसे इसका कारण पूछा तो वे कहने लगे -"तीन दिनसे सन्ध्याके समय निकटके पर्वतपर भयानक शब्द होता है, जिससे सम्पूर्ण पर्वत और पृथ्वी तक हिल उठती है। सन्ध्या होते ही भयके कारण सब नगरवासी नगर छोड़कर चले जाते हैं और प्रातःकाल होनेपर पुनः वापस आ जाते हैं।"

तब सीता सहित दोनों भाइयोंने निश्चय किया कि भय उत्पन्न करनेवाला भयानक शब्द क्यों होता है, इसका हम पता लगावेंगे और आज वंशगिरिपर ही चलकर रहेंगे। यह विचार करके वे लोग वंशगिरिपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने दो मुनियोंको ध्यानारूढ़ देखा। तीनोंने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। वे विनयसहित मुनियोंके निकट बैठ गये। तभी कई भवोंका शत्रु अग्निकुमार जातिका एक देव आकर घोर गर्जना करने लगा और मुनियोंपर घोर उपसर्ग करने लगा। यह देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मणने अपने-अपने धनुषोंका टंकार किया। असुर इन्हें बलभद्र और नारायण जान उनके धनुष टंकारसे भयभीत होकर भाग गया। तभी दोनों मुनियोंके चारों घातिया कर्मोंका नाश हो गया और लोकालोकका ज्ञायक केवलज्ञान प्राप्त हो गया। चारों निकायके देव आये और केवली भगवान्‌की पूजा की।

लक्ष्मण और सीताके साथ राम यहाँ काफी समय तक ठहरे। उन्होंने यहाँ अनेक जिनालयों-का निर्माण कराया, जिनमें सुदृढ़ स्तम्भ और गवाक्ष थे, तोरण सहित द्वार थे, जो कोट, परिखा और ध्वजाओंसे सुशोभित थे, जिनमें भक्तजनोंके भक्तिगान एवं मृदंग, वीणा, बाँसुरी, झालर, झांझ, मंजीरा, शंख, भेरी आदि वादित्रोंकी ध्वनि सदा मुखरित रहती थी। रामने राजा और प्रजाका संकट दूर किया था, अतः इस अनुग्रहके उपलक्ष्यमें इस पर्वतको सब लोग रामगिरि कहने लगे।

वंशगिरिकी पहचान

अनेक आचार्योंने कुलभूषण-देशभूषणकी निर्वाण भूमिको कुन्थुगिरि, कुन्थलनगर, कुन्थलगिरि, वंशगिरि, वंशस्थल, बांसिनयर बताया है। इस स्थानका मूल नाम सम्भवतः कुन्थुगिरि था। सर्वप्रथम प्राकृत निर्वाण-काण्डमें यह नाम उपलब्ध होता है। इसके बाद इस नामसे मिलते-जुलते कुन्थलगिरिका नामोल्लेख १६वीं शताब्दीके विद्वान् मेघराजने किया है। इनके अतिरिक्त कुन्थुगिरि या कुन्थलगिरिके नामका उल्लेख अन्य किसी प्रसिद्ध आचार्यने नहीं किया। संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें तो कुलभूषण-देशभूषण मुनियोंकी निर्वाण-भूमिका कोई नाम ही नहीं दिया। विमलसूरि और रविषेणने रामकथाके प्रसंगमें दोनों मुनियोंका जीवन-परिचय और उनपर हुए उपसर्गके निवारणका वर्णन किया है। उपसर्ग दूर होनेपर वंशगिरिपर ही उनकी केवलज्ञान-प्राप्तिका भी उल्लेख किया गया है। किन्तु दोनों ग्रन्थोंमें उनके निर्वाण और निर्वाण-स्थानका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। बल्कि केवलज्ञान-प्राप्तिके बाद नगर, ग्राम, पर्वतादि-पर विहार करते हुए उनके उपदेश देनेका कथन किया है।

यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि वर्तमानमें जो कुन्थलगिरि क्षेत्र है, उसे उत्तरकालीन किसी लेखकने रामगिरि नहीं लिखा। इसी प्रकार नागपुरके पास रामटेक, जिसे रामगिरि माना जाता है, उसे किसीने कुन्थलगिरि नहीं लिखा।

हरिवंश पुराण (सर्ग ४६, श्लोक १७-२०) में भी पाण्डवोंके सन्दर्भमें राम द्वारा निर्मित जिनालयोंके कारण रामगिरि नाम पड़नेका उल्लेख मिलता है। उसमें बताया है कि वहाँ कुछ दिन विश्राम करके पाण्डव कोशल देश पहुँचे। वहाँ राम द्वारा सेवित रामगिरिपर पहुँचे। उस गिरिपर रामने चन्द्र और सूर्यके समान देदीप्यमान सैकड़ों जिनालय बनवाये थे। वहाँ विभिन्न देशोंसे अनेक भव्य जन आते थे। पाण्डवोंने उन मन्दिरोंमें प्रतिमाओंकी पूजा की।

इस विवरणमें दो बातें उल्लेखनीय हैं—(१) रामगिरि कोशल देशमें था। यहाँ कोशलसे

दक्षिण कोशल अभिप्रेत लगता है। (२) पाण्डवोंके कालमें उस गिरिका नाम रामगिरि प्रचलित था और वह उन जिनालयोंके कारण तीर्थ बन गया था।

हरिवंश पुराण और पद्मपुराणके रामगिरि एक ही लगते हैं अर्थात् जिस वंशस्थल या वंशगिरिपर पद्मपुराणके अनुसार कुलभूषण-देशभूषण नामक मुनियोंपर असुरने उपसर्ग किया था, उसी पर्वतपर रामने जिनालय निर्मित कराये थे, पद्मपुराणके अनुसार उसी वंशगिरिपर दोनों मुनियोंको केवलज्ञान हुआ था। उसी पर्वतका उल्लेख दोनों पुराणकारोंने किया है। किन्तु प्राकृत निर्वाण-काण्डके अनुसार दोनों मुनियोंका निर्वाण कुन्थुगिरिके ऊपर हुआ था जो वंशगिरिके निकट पश्चिममें था। पद्मपुराणने वंशगिरिका उल्लेख करके भी उनकी निर्वाण-भूमिका उल्लेख नहीं किया। अतः उक्त अवतरणोंसे दो बातें फलित होती हैं—(१) दोनों मुनियोंका निर्वाण कुन्थुगिरि या कुन्थलगिरिपर हुआ था, वंशगिरिपर नहीं। (२) वंशगिरि कुन्थुगिरिसे भिन्न था और वह उसके पश्चिममें था। रामने वंशगिरिपर जिनालयोंका निर्माण कराया था, न कि कुन्थुगिरिपर।

इन फलितार्थोंके प्रकाशमें कुन्थलगिरिको रामगिरि नहीं माना जा सकता। कुन्थलगिरि उक्त दोनों मुनियोंको निर्वाण-भूमि था, इसमें किसीको आपत्ति नहीं। उत्तरकालीन कई भट्टारकोंने भ्रमवश इन मुनियोंकी निर्वाण-भूमिका नाम वंशनयर, वांसीनयर, वंशगिरि दिया है। ये सभी नाम समानार्थक हैं। सभीका एक ही आशय है—बाँसोंका नगर या पर्वत अर्थात् जहाँ बाँस अधिक होते थे। कोई विद्वान् वांसीनयर वार्शीको बताते हैं। यह भी भ्रमजनित धारणा है। चूँकि वंशगिरिका नाम ही राम द्वारा जिनालयोंका निर्माण करानेके कारण रामगिरि हो गया, उसके पश्चात् वंशगिरि नाम लुप्त हो गया, व्यवहारमें रामगिरि ही प्रचलित हो गया।

रामगिरिकी अवस्थिति कहाँ है, इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। कोई विद्वान् कहता है कि मध्यप्रदेशके सरगुजा जिलेका रामगढ़ ही रामगिरि है। दूसरे मतके अनुसार आन्ध्रप्रदेशके विजयानगरम्का समीपवर्ती रामकोण्ड रामगिरि है। तीसरी मान्यता नागपुरके समीपस्थ रामटेकके पक्षमें है। इनमें रामटेकके पक्षमें अधिक पुष्ट प्रमाण[१] मिलते हैं।

अब केवल यह सिद्ध करना शेष रह जाता है कि कुन्थलगिरि वंशस्थलके निकट था। वर्तमान रामटेक और कुन्थलगिरिके मध्य कर्णरवा (महानदी) थी तथा वंशस्थल (रामटेक) के दक्षिणमें दण्डकारण्य था। ये सब आज भी मिलते हैं। गोदावरी और कृष्णाका तटवर्ती वन ही दण्डकारण्य कहलाता था।

कुन्थलगिरिमें प्राचीन कालमें दोनों मुनियोंके चरण-चिह्न विराजमान थे। जो अब भी विद्यमान हैं। निर्वाण-क्षेत्रोंपर प्रायः चरण-चिह्न ही रहते थे, प्राचीन परम्परा यही थी। उक्त चरण-चिह्न बहुत प्राचीन लगते हैं।

क्षेत्र-दर्शन

दोनों मुनियोंका निर्वाण कुन्थलगिरिके ऊपर हुआ था, अतः वही निर्वाण-भूमि है। पर्वतके ऊपर जानेके लिए पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियोंकी कुल संख्या २५० है। पहाड़पर कुल ७ जिनालय बने हुए हैं। यह पहाड़ दक्षिण उत्तरमें फैला हुआ है और १७५ फीट ऊँचा है।

(१) **कुलभूषण-देशभूषण मन्दिर**—यह यहाँका मुख्य मन्दिर है। गर्भगृहमें वेदीपर दोनों मुनियोंके प्राचीन चरण विराजमान हैं। इन चरणोंकी प्राप्तिके सम्बन्धमें एक अनुश्रुति प्रचलित

१. इस सम्बन्धमें विस्तारके साथ रामटेक सम्बन्धी लेखमें ऊहापोह किया गया है।

है। बाबावड़ ग्रामके ब्रह्मचारी मेटाशाह हूमड़को एक बार स्वप्न हुआ कि कुन्थलगिरि पर्वतपर जहाँ गाय अपने बछड़ेको दूध पिलायेगी, वहाँ भूमिके नीचे कुलभूषण-देशभूषण मुनियोंके चरण-चिह्न दबे पड़े हैं। ब्रह्मचारीजीने अपने इस स्वप्नकी चर्चा लोगोंसे की। तब ब्रह्मचारीजी कुछ लोगोंको लेकर पर्वतपर गये। वे चारों ओर खोज करने लगे। तभी उन्हें एक गाय बछड़ेको दूध पिलाती हुई दिखाई पड़ी। सब लोग उस स्थानपर पहुँचे। उन्होंने उस स्थानको खोदा तो उन्हें पाषाणके चरण-चिह्न दिखाई पड़े। उन्हें निकाला गया और उनका प्रक्षाल करके सबने भक्तिपूर्वक दोनों मुनियोंकी पूजा की तथा एक ऊँची शिलापर उन्हें विराजमान कर दिया।

संवत् १९३२ में सेठ हरिभाई देवकरणने ईडरके भट्टारक कनककीर्ति द्वारा यहाँके मन्दिरकी प्रतिष्ठा करायी और उसमें चरण-चिह्न विराजमान किये।

वेदीमें चरण-चिह्नोंके अतिरिक्त दोनों मुनियोंकी ३ फीट १ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी तथा पीतलकी १ फुट ३ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इनका प्रतिष्ठा-काल संवत् २००६ है। बायीं ओर २ फीट ४ इंच ऊँची मुनिसुव्रतनाथ और शान्तिनाथकी पाषाण-मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त वेदीपर १० धातु-प्रतिमाएँ हैं।

गर्भगृहके बाहर सभा-मण्डपमें दायीं और बायीं ओर भगवान् आदिनाथकी १ फुट ११ इंच ऊँची संवत् १९३२ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण की पद्मासन मूर्तियाँ हैं। यहाँ एक शिलालेख भी है, जिसके अनुसार संवत् १९३२ मगसिर वदी १ सोमवारको भट्टारक कनककीर्ति द्वारा प्रतिष्ठा की गयी।

द्वारके निकट बायीं ओर एक भित्ति-वेदीमें ३ फीट २ इंच ऊँचे शिलाफलकमें भगवान् आदिनाथकी अर्ध-पद्मासन प्रतिमा है। स्कन्धों तक जटाएँ फैली हुई हैं। वक्षपर श्रीवत्स लांछन है। दायीं ओर पार्श्वनाथकी श्वेत प्रतिमा है। प्रतिमा ११ फणावलीयुक्त है। भित्ति-वेदीके शिखरके ऊपर सीमन्धर स्वामीकी १ फुट ६ इंच ऊँची संवत् २००६ में प्रतिष्ठित गेहुँआ वर्णकी प्रतिमा है। इसके एक पार्श्वमें आचार्य शान्तिसागरजीकी मूर्ति है तथा दूसरे पार्श्वमें उनके चरण-चिह्न हैं। मन्दिरकी छतपर एक छतरी है जिसमें दो चरण रखे हैं। छतपर जानेके लिए मन्दिरके पृष्ठ भागमें सीढ़ी है।

२. **शान्तिनाथ मन्दिर**—मुख्य मन्दिरके द्वारके सामने प्रांगणमें प्रवेश-द्वार बना हुआ है। इसके दायीं ओर पूर्व की तरफ शान्तिनाथ मन्दिर है। इसमें ऊपर चढ़कर जाना पड़ता है। भगवान् शान्तिनाथकी २ फीट ३ इंच ऊँची श्याम वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९३२ है। इसके अतिरिक्त ४ श्वेतवर्ण और २ श्यामवर्ण पाषाणकी तथा पद्मावती एवं सरस्वतीकी धातु-मूर्तियाँ हैं।

प्रवेश-द्वारके बायीं ओर (पश्चिमकी ओर) एक कमरेमें आचार्य शान्तिसागरजीके चरण हैं। पूज्य आचार्य महाराजने १४ अगस्त सन् १९५५ को कुलभूषण-देशभूषण मुनिराजोंके चरणोंके समक्ष इंगिनीमरण नामक संलेखनाका नियम लिया था। सल्लेखनाके दिनों आचार्यश्री इसी कमरेमें बैठते थे और १८ सितम्बर १९५५ को इसी कमरेमें उनका समाधिमरण हुआ था। इसलिए यह कमरा भी एक पावन तीर्थस्थल बन गया है।

आचार्य शान्तिसागरजीका समाधिमरण—आचार्य शान्तिसागरजी इस युगकी महान् आध्यात्मिक विभूति थे। वे धर्मके मूर्तिमान् रूप थे। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। उनकी प्रत्येक गतिविधि और क्रियामें शास्त्रानुमोदित धर्मके दर्शन होते थे। वे आत्महितमें सदा सजग रहते थे। सन् १९५१ में आचार्यश्रीगजपंथा क्षेत्रपर पधारे। उन्होंने विचार करके वहींपर द्वादश

वर्षवाली सल्लेखनाका नियम ले लिया। तभीसे उन्होंने उपवासोंकी संख्या बढ़ा दी। सन् १९५३ में आचार्यश्रीका चातुर्मास कुन्थलगिरि क्षेत्रपर हुआ। अब वे लम्बे-लम्बे उपवास करने लगे थे। इसके दो वर्ष पश्चात् आचार्यश्री नीरा ग्राममें पधारे। उनके भाव मुक्तागिरिकी ओर जानेके थे। किन्तु कुन्थलगिरि क्षेत्रके लोगोंने उनसे कुन्थलगिरि चलनेका विशेष आग्रह किया, तब महाराज कुन्थलगिरिकी पावन भूमिमें पहुँचे। वहाँ आचार्यश्रीके मनमें एक भावना बार-बार उदित होती थी—"शरीर तो अवस्थाके अनुरूप ठीक है, किन्तु आँखोंकी ज्योति मन्द हो रही है। इन्द्रियाँ और मन तो मेरे आधीन हैं। अतः इन्द्रिय संयममें कोई बाधा नहीं है किन्तु नेत्रोंकी ज्योति निर्बल होनेके कारण प्राणी संयमका निर्दोष रीतिसे पालन होना कठिन होता जा रहा है।" एक दिन इस भावनाने निश्चयका रूप ले लिया। १४ अगस्त १९५५ को आहार लेनेके पश्चात् उन्होंने केवल जल रखकर सभी प्रकारके आहारका सर्वथा त्याग कर दिया और यम सल्लेखना ले ली। उनके ८४ वर्षके जीवन में १४ अगस्तका आहार उनका अन्तिम आहार था।

आचार्यश्री द्वारा यम सल्लेखना ग्रहण करनेका समाचार सारे देशमें बड़ी चिन्ताके साथ सुना गया। देशके सभी भागोंसे आचार्यश्री के दर्शनार्थ हजारों व्यक्ति कुन्थलगिरि पहुँचने लगे। कोलाहल और भीड़भाड़के बावजूद उन योगिराजकी समाधि शान्तिपूर्वक चलती रही। उनका शरीर निरन्तर क्षीण हो रहा था, किन्तु उनका आत्मबल उससे सहस्र गुना बढ़ रहा था। ४ सितम्बर को जल ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने जलका भी त्याग कर दिया। ८ सितम्बरको उन्होंने २२ मिनट पर्यन्त लोक-कल्याणकारी अन्तिम सन्देश दिया जो रिकार्ड किया गया। १८ सितम्बर १९५५ को प्रातःकाल ६.५० पर भाद्रपद शुक्ला २ रविवारको हस्त नक्षत्र और अमृत सिद्धियोगमें उस चारित्रचक्रवर्ती महायोगीने इस मानव-देहको त्यागकर स्वर्गलोक प्रयाण किया। उनकी आयु उस समय ८४ वर्षकी थी।

आचार्यश्रीके उस तपःपूत शरीरको उपर्युक्त प्रवेश-द्वारके बाहर बायीं ओर एक उन्नत स्थानपर जनताके दर्शनार्थ रख दिया गया। मध्याह्नमें वह पार्थिव शरीर एक काष्ठ-विमानमें विराजमान करके जलूसके साथ क्षेत्रके बाहर बनी पाण्डुक शिला तक ले जाया गया और फिर पर्वतकी परिक्रमा देकर पुनः पर्वतपर मानस्तम्भके निकट मैदानमें रख दिया गया। पश्चात् उनका अग्नि-संस्कार किया गया। यह अन्तिम संस्कार कोल्हापुर जैनमठके भट्टारक स्वर्गीय श्री लक्ष्मीसेन स्वामीने १५००० लोगोंके समक्ष शास्त्रानुसार कराया। आचार्य महाराजके शरीरका अग्नि-संस्कार करनेमें इस प्रकार सामग्री काममें आयी—२५ मन चन्दन, ६० किलो घी, १२०० किलो नारियल तथा तीन बोरा कपूर।

आचार्यश्रीका पार्थिव शरीर जहाँ दर्शनार्थ रखा गया था, वहाँ छतरीका निर्माण करके आचार्यश्रीके चरणोंके मापके ११ इंच आकारके श्वेत पाषाणके चरण विराजमान कर दिये गये तथा जहाँ आचार्यश्रीका अन्तिम संस्कार किया गया था, वहाँ एक चबूतरा बनाकर पाषाण-चरण विराजमान कर दिये गये हैं।

३. बाहुबलि मन्दिर—प्रवेश-द्वारके दायीं ओर चौकमें बाहुबली स्वामीकी मकरानेकी १७ फीट ६ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा सन् १९७२ में हुई थी।

४. आदिनाथ मन्दिर—इसके निकट आदिनाथ मन्दिरमें वेदीपर भगवान् आदिनाथकी ४ फुट ६ इंच ऊँची संवत् १९३२ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त वेदीपर २२ धातु मूर्तियाँ और हैं तथा पद्मावतीकी १ पाषाण प्रतिमा है।

५. अजितनाथ मन्दिर—आदिनाथ मन्दिरके निकट यह मन्दिर बना हुआ है। इसमें वेदी-पर ३ फुट ४ इंच ऊँची श्वेत वर्णवाली अजितनाथ भगवान्‌की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठाकाल संवत् १९३२ है। इसके अतिरिक्त यहां ३४ मूर्तियां और हैं जिनमें बाहुबली स्वामीकी ३ तथा चौबीसीकी २ प्रतिमाएँ हैं।

इन मन्दिरोंसे आगे बढ़नेपर सीढ़ियोंके सामने ५३ फुट उन्नत और संवत् २००१ में प्रतिष्ठित मानस्तम्भ खड़ा हुआ है।

६. चैत्य—मानस्तम्भके आगे एक छतरीमें चैत्य विराजमान है जिसमें चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ हैं तथा इसके पीछे दो स्तम्भोंमें विदेह क्षेत्रके २० तीर्थंकरोंकी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

७. नन्दीश्वर जिनालय—जहां पर्वतकी सीढ़ियां समाप्त होती हैं, वहां नन्दीश्वर जिनालय बना हुआ है। इसमें पीतलका एक नन्दीश्वर है। यह तीन कटनीवाली वेदीमें सबसे ऊपर विराजमान है। शेष दो कटनियोंपर पाषाणकी १३ मूर्तियां हैं। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा क्षेत्रके एक मुनीम श्री निहालचन्दने संवत् १९५२ में करायी थी। इस मन्दिरके आगे एक चबूतरेपर लगभग १० फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ बना हुआ है।

तलहटीके मन्दिर

१. नेमिनाथ मन्दिर—पर्वतसे उतरनेपर दायीं ओर नेमिनाथ मन्दिर बना हुआ है। इसमें मूलनायक नेमिनाथ भगवान्‌की संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित २ फुट १० इंच ऊँची श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों पार्श्वोंमें महावीर और आदिनाथकी २ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। वेदीके नीचे आदिनाथकी १ फुट ८ इंच और नेमिनाथकी १ फुट ४ इंच उन्नत प्रतिमाएँ हैं। नीचे भोंयरेमें सम्भवनाथकी संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित २ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमें कुन्थुनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी दो श्वेत प्रतिमाएँ हैं। ऊपर शिखर वेदीमें १ फुट ८ इंचकी संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी ९ फणयुक्त श्वेत पद्मासन प्रतिमा है।

२. महावीर मन्दिर—यह मन्दिर नेमिनाथ मन्दिरके सामने है। इसमें संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित महावीर भगवान्‌की २ फुट ८ इंच ऊँची श्वेत प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें आसीन है। इसके इधर-उधर हाथी रखे हैं। बायीं ओर चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेत और श्याम वर्णकी दो प्रतिमाएँ हैं। दायीं ओर श्वेत शान्तिनाथ और गेहुँआ अरहनाथकी प्रतिमाएँ हैं। इसके आगे खुला मण्डप है। फिर सामने एक वेदीपर मध्यमें मल्लिनाथकी ३ फुट २ इंच, बायीं ओर मुनिसुव्रतनाथकी २ फुट १० इंच और दायीं ओर अरनाथकी २ फुट १० इंचकी प्रतिमाएँ हैं। यह रत्नत्रय मूर्ति कहलाती है। इनका प्रतिष्ठा-काल संवत् २००८ है। सीढ़ियोंसे ऊपर जाकर शिखर-वेदीमें १ फुट ७ इंच की श्वेत पार्श्वनाथ प्रतिमा है। प्रतिष्ठाकाल संवत् १९३२ है।

३. रत्नत्रय मन्दिर—शिखर-मन्दिरके बगलमें यह मन्दिर है। वेदीपर शान्तिनाथकी २ फुट ९ इंच और कुन्थुनाथ-अरनाथकी २ फुटकी प्रतिमाएँ हैं। ये श्वेत पाषाणकी और खड्गासन हैं। इनका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९६१ है। इनके दोनों ओर ३-३ मूर्तियां विराजमान हैं। ऊपर शिखर-वेदीमें मूँगा वर्णकी २ फुट ६ इंच ऊँची बाहुबली स्वामीकी संवत् २००८ में प्रतिष्ठित खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इस गर्भगृहमें चारों ओर कांच जड़े हुए हैं। अतः यह कांच-मन्दिर कहलाता है।

४. **समवसरण मन्दिर**—आगे चलकर एक बड़े हॉलमें समवसरणकी रचना की गयी है। इसके आगे एक विशाल हॉल है।

ब्रह्मचर्याश्रम

क्षेत्रपर श्री देशभूषण-कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रम नामसे एक गुरुकुल चल रहा है। इसमें लौकिक शिक्षाके साथ छात्रोंको धार्मिक शिक्षण भी दिया जाता है। यहाँ हाईस्कूल तककी शिक्षा दी जाती है। यह बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रमका शाखा गुरुकुल है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर २ धर्मशालाएँ हैं। इनमें कुल ५२ कमरे हैं। धर्मशालाओंमें कुआँ और बिजलीकी व्यवस्था है। कुएँमें मोटर फिट करके पाइप लाइनकी व्यवस्था की गयी है। यात्रियोंके लिए बर्तनोंका भी प्रबन्ध है।

मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष शुक्ला ११ से १५ तक पंच दिवसीय वार्षिक मेला होता है। इस अवसरपर रथयात्रा होती है। लगभग ३-४ हजार यात्री इसमें सम्मिलित होते हैं।

भाद्रपद शुक्ला २ को पूज्य आचार्य शान्तिसागरजीकी पुण्य-तिथि मनायी जाती है। इस अवसरपर ४००-५०० व्यक्ति आ जाते हैं। भोजन आदि द्वारा सभी साधर्मी बन्धुओंका सत्कार किया जाता है।

क्षेत्रपर संवत् २००२ में पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी। उस अवसरपर लगभग १०-१२ हजार व्यक्ति प्रतिष्ठामें सम्मिलित हुए थे।

अतिशय

क्षेत्रपर कई बार अद्भुत घटनाएँ होती रहती हैं जिन्हें दैवी अतिशय कहा जाता है। अनुश्रुति है कि ५०-६० वर्ष पहले पहाड़पर बड़े मन्दिरमें (कुलभूषण-देशभूषण मन्दिर) रात्रिमें घण्टानादकी ध्वनि सुनाई देती थी तथा भगवान्का अभिषेक होता था। इससे चारों ओर सुगन्धि फैल जाती थी। प्रातःकाल जब यात्री मन्दिरमें दर्शन-पूजनके लिए जाते थे तो उन्हें कटोरेमें गन्धोदक मिलता था।

मार्ग और अवस्थिति

यह क्षेत्र महाराष्ट्र प्रान्तके उस्मानाबाद जिलेमें अवस्थित है। यहाँ पहुँचनेके लिए निकटतम रेलवे स्टेशन येडशी या वार्शी टाउन हैं। दोनों ही स्टेशन दक्षिण-मध्य रेलवेकी कुर्डुवाड़ी-लातूर शाखापर अवस्थित हैं। येडशोसे यरमाला होकर कुन्थलगिरि ५० कि. मी. है तथा वार्शीटाउनसे ५७ कि. मी. है। उस्मानाबाद शोलापुर, बीडसे जो बसें भूम जाती हैं, वे सब कुन्थलगिरि धर्मशालाके पास ही रुकती हैं। जो बसें औरंगाबाद, शोलापुर, उस्मानाबाद और बीडके मध्य चलती हैं, वे कुन्थलगिरि फाटा (सरमगुण्डी बस स्टैण्ड) पर रुकती हैं। यहाँसे कुन्थलगिरि क्षेत्र ४ कि. मी. है। फाटापर उतरकर पुनः भूम जानेवाली बससे कुन्थलगिरि जाना पड़ता है। जानेके लिए बैलगाड़ी या अन्य कोई साधन नहीं है।

हिंसा और शिकारपर प्रतिबन्ध

निजाम सरकारने एक लिखित आदेश प्रचारित किया था, जिसके अनुसार क्षेत्र-भूमिके चारों ओर ३ मील पर्यन्त किसी भी प्रकारकी जीव-हिंसा और शिकारपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। उस आदेशमें इसकी सीमा निश्चित की गयी थी और उस सीमाका नाम 'अहिंसा मैदान' रखा गया। उक्त आदेश व्यवहारतः आज भी इस क्षेत्रमें लागू है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री देशभूषण-कुलभूषण दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र
पो. कुन्थलगिरि (जिला उस्मानाबाद) महाराष्ट्र

धाराशिवकी गुफाएँ

मार्ग और अवस्थिति

धाराशिवकी गुफाएँ लयण कहलाती हैं। ये उस्मानाबाद शहर (महाराष्ट्र प्रदेश) से केवल ५ कि. मी. दूर हैं। शहरकी कोतवालीके बगलसे ईशान कोणसे एक सड़क इन गुफाओंको जाती है। ४ कि. मी. तक तो सड़क है और १ कि. मी. पहाड़ी मार्गसे होकर जाना पड़ता है। जहाँ तक सड़क है, वहाँ तक ताँगा और रिक्शा चले जाते हैं। उस्मानाबादके लिए शोलापुर, औरंगाबाद अथवा कुर्डुवाड़ी-लातूर रेल मार्गके येडसी स्टेशनसे सरकारी बसें जाती हैं।

गुहा मन्दिरोंका इतिहास

इन गुहामन्दिरोंका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भगवान् पार्श्वनाथसे कुछ वर्षोंके पश्चात् हुए कलिकुण्ड नरेशने यहाँ तीन लयणों अथवा गुहा-मन्दिरोंका निर्माण कराया था और उनमें पार्श्वनाथ भगवान्की प्रतिमाएँ विराजमान करायी थीं। इन लयणोंका इतिहास आचार्य हरिषेणने 'बृहत्कथाकोष' ग्रन्थमें दिया है। मुनि कनकामर कृत 'करकण्डुचरिउ' नामक अपभ्रंश ग्रन्थमें विस्तारपूर्वक इसकी कथा दी गयी है। कथाका सारांश इस प्रकार है—

चम्पानगरीमें दधिवाहन नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम पद्मावती था। एक बार जब रानी गर्भवती थी, उसके मनमें दोहला उत्पन्न हुआ—"मैं मर्दाने वस्त्र धारण करके गजराजपर आरूढ़ होकर वन-विहारके लिए जाऊँ।' उसने अपनी यह इच्छा अपने पतिको बतायी। राजा अपनी रानीकी इच्छा-पूर्तिके लिए झट तैयार हो गया। गजशालासे मुख्य गजको मँगाकर, रानीको मनुष्यों जैसे वस्त्र धारण कराके, गजके ऊपर रानीको अपने साथ आरूढ़ कराकर वहाँसे चल दिया। नगरसे बाहर निकलते ही वनकी मादक वायुके शीतल झकोरोंके लगते ही गज मदोन्मत्त हो उठा और बड़ी द्रुत गतिसे वनकी ओर भागने लगा। महावतने अंकुशोंके प्रहारों द्वारा गजको वशमें करनेकी बहुत चेष्टा की, किन्तु गज नहीं रुका। वह मार्गमें वृक्षों और लताओं-को उखाड़कर फेंकने लगा, महावतको सूँड़से पकड़कर पैरों तले रौंद दिया। राहमें जो पशु या मनुष्य उसकी चपेटमें आ गये, उन सबको रौंद दिया। गज अनेक नगरों, गांवों और पर्वतोंको लांघता हुआ तीव्र वेगसे चलता गया।

राजाने इस भयानक संकटसे बचनेका उपाय सोचा। तभी उसे एक वृक्षकी लटकती हुई शाखा दिखाई पड़ी। राजा उसे पकड़कर लटक गया, किन्तु रानी भयाक्रान्त होकर जड़ बनी बैठी

रही। अनेक योजनोंकी यात्राके पश्चात् जब गज शान्त हुआ तो एक पद्म सरोवरको देखकर जलमें आलोडनकी इच्छासे धीमी गतिसे जलमें घुसा। रानी अवसर देखकर गजके ऊपरसे कूद पड़ी और वनमें एक ओर चल दी।

चलते-चलते वह एक श्मशानमें पहुँची। वहाँ उसे प्रसव-पीड़ा हुई। भाग्यकी यह कैसी विडम्बना थी कि एक राजरानीके प्रसवके समय परिचर्याके लिए कोई परिचारिका भी नहीं थी। रानीने पुत्र-प्रसव किया। तभी एक शापग्रस्त विद्याधर चाण्डाल-वेषमें वहाँ आया और अपनी शाप-कथा विस्तारसे बताकर कहने लगा—"देवी ! अनेक वर्षोंसे मैं इस श्मशानमें इस पुण्यवान् बालककी प्रतीक्षा कर रहा था। इसके कारण ही मुझे शापसे मुक्ति मिल सकेगी। निमित्तज्ञोंने ऐसा ही बताया है। मैं इस बालकका अपने पुत्रके समान लालन-पालन करूँगा। इसे आप मुझे दे दें।" रानीने अपना सद्यःजात शिशु उस चाण्डालको दे दिया। शिशुको देकर वह एक आर्यिका-के आश्रममें चली गयी। बालकके हाथमें जन्मसे खुजली थी, अतः उसका नाम करकण्डु रख दिया गया। पद्मावती दूर रहकर भी अपने प्राणप्रिय पुत्रका ध्यान रखती थी।

बालक करकण्डु अब किशोर हो गया। एक दिन वह भ्रमण करता हुआ वनमें पहुँचा। जब वह श्रान्त हो गया तो एक वृक्षकी छायामें बैठ गया। उसी दिन उस नगरके नरेशकी मृत्यु हो गयी थी। नरेशके कोई सन्तान नहीं थी। सिंहासन सूना नहीं रखा जा सकता था। अतः अमात्योंने निश्चय किया कि राजगजको जलसे पूर्ण कलश देकर छोड़ दिया जाये। वह जिसका अभिषेक कर दे, उसीका राज्याभिषेक कर दिया जाये। इस निर्णयके अनुसार गज छोड़ा गया। वह नगरमें घूमता रहा, किन्तु उसने किसीका भी अभिषेक नहीं किया। राज्याधिकारी और सेवक राजगजके साथ थे। सारे नगरमें भ्रमण करता हुआ राजगज वनमें चल दिया। वह भ्रमण करता हुआ उधर जा निकला, जिधर करकण्डु वृक्षके नीचे चिन्तामग्न बैठा हुआ था। उसको पता तक नहीं चला कि कब राजगज उसके समीप आ खड़ा हुआ। राजगजने जब कलशका जल उसके सिरपर उँड़ेल दिया तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और आश्चर्यचकित नेत्रोंसे कभी राजगजको और कभी राजकर्मचारियोंको देख रहा था। राजकर्मचारियोंने उसका आश्चर्य दूर करते हुए विनय-पूर्वक निवेदन किया—"आप इस नगरके नरेश मनोनीत हुए हैं। आप हमारे साथ राजप्रासाद चलें, वहाँ आपका राज्याभिषेक किया जायेगा।"

वह राजगजपर आरूढ़ होकर राजप्रासाद पहुँचा। वहाँ शुभलग्नमें राजपुरोहित और अमात्योंने विधिवत् उसका राज्याभिषेक करके राजसी वस्त्रालंकार और मुकुट पहनाकर सिंहासन-पर बैठाया। राज्यासीन होते ही करकण्डुने राजसी सम्मानके साथ अपने विद्याधर माता-पिताको राजमहलोंमें बुला लिया। उसने अल्प समयमें ही राज्यमें बहुमुखी सुधार किये, जिससे सम्पूर्ण प्रजा अपने नवीन राजासे बहुत प्रसन्न हुई, साथ ही राजकोष भी बहुत बढ़ गया। राज्यमें खुशहाली हो गयी। सभी ओर उसकी जयजयकार होने लगी। उसने राज्यकी स्थिति सुदृढ़ बना दी। राज्यकी सैनिक शक्तिमें भी उसने पर्याप्त वृद्धि की। उसने कलिंग देशके दन्तिपुर नगर-को अपनी राजधानी बनाया।

आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ करनेके पश्चात् उसने आसपासके राज्योंको जीतना प्रारम्भ कर दिया। अनेक राजाओंने उसका माण्डलिक बनना स्वीकार कर लिया। अब सम्पूर्ण कलिंगपर उसका अधिकार हो गया। तब शुभ मुहूर्तमें वह दिग्विजयके लिए निकला। सर्वप्रथम उसने दक्षिणके राज्योंकी ओर ध्यान दिया। वह जहाँ भी गया, विजयश्रीने उसके चरण चूमे। वह अपने इस विजय-अभियानके सन्दर्भमें तेर नगरमें आया। वहाँके राजाने उसकी आधीनता

स्वीकार कर ली और बहुमूल्य भेंट देकर उसे सन्तुष्ट किया। एक दिन तेर नरेश शिव उससे सविनय निवेदन करने लगा—"देव ! यहाँ निकट ही एक पर्वतपर बड़ी आश्चर्यजनक घटना होती है। उस पर्वतके भीलराजने मुझे उस घटनाका विवरण बताया है। उस पर्वतपर एक वामी है। एक गज प्रतिदिन सूँड़में जल भरकर और अद्‌भुत कमल-पुष्प लेकर उस वामी तक आता है। वह वामीपर जल छिड़कता है, वहाँ कमल-पुष्प चढ़ाता है और वामीको नमस्कार करके चला जाता है। यदि देव प्रसन्न हों तो आप भी इस आश्चर्यको देखनेका अनुग्रह करें।"

करकण्डु नरेशको भी यह सुनकर देखनेकी उत्सुकता हुई। वह अनेक नरेशों, अमात्यों और पुरजनोंसे परिवृत हुआ पर्वतकी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर सबने उस वामीको देखा। तभी उन्हें एक गज आता हुआ दिखाई पड़ा। गज वामीके पास आकर खड़ा हो गया। उसने सूँड़में भरा हुआ जल वामीके ऊपर छिड़का, पश्चात् वामीपर कमल चढ़ाया और सिर झुकाकर वनमें चला गया। यह देखकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ।

करकण्डु नरेश कुछ देर विचार करके बोला—"प्रतीत होता है, इस वामीके नीचे कोई जिन-प्रतिमा है। इस गजको अवधिज्ञान द्वारा अथवा किसी प्रकार इस प्रतिमाका ज्ञान हो गया है। अतः यह प्रतिदिन प्रतिमाकी पूजा करने आता है।" फिर करकण्डु महाराजके सुझावपर जब वामीको खुदवाया गया तो वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्‌की अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा दिखाई पड़ी। सबने भक्तिपूर्वक भगवान्‌के दर्शन और पूजन किये।

सहसा करकण्डुको प्रतिमाके पादपीठपर एक गाँठ दिखाई पड़ी। उसने आदेश दिया—"इस गाँठको तोड़ दिया जाये। इससे प्रतिमाकी सुन्दरतामें निखार आ जायेगा। तत्काल मूर्ति-शिल्पी बुलाये गये। गाँठ देखकर मुख्य शिल्पी हाथ जोड़कर बड़ी विनयपूर्वक बोला—"राजाधिराज ! मेरी धृष्टता क्षमा करें। यदि यह गाँठ तोड़ी गयी तो अनर्थ हो जायेगा।" किन्तु राजहठके आगे किसी की नहीं चली। गाँठ तोड़ी गयी। गाँठके टूटते ही उसमें-से जलधारा निकल पड़ी। फिर प्रयत्न करनेपर भी जलधारा नहीं रुकी।

करकण्डु नरेशको एक विद्याधरसे यह भी ज्ञात हुआ कि रथनूपुरके नील और महानील नामक दो विद्याधर नरेश शत्रुसे पराजित होकर तेरमें आ बसे और वहीं अपना राज्य स्थापित कर लिया। एक बार वे लंकाकी यात्राको गये। लौटते हुए मलय देशके पूदी पर्वतपर एक जिनालयमें उक्त पार्श्वनाथ प्रतिमाके दर्शन करके मनमें उन्हें विचार उत्पन्न हुआ कि इस प्रतिमा-को हम अपने नगरमें ले चलेंगे और ऐसी ही मनोज्ञ प्रतिमा बनवायेंगे। यह सोचकर वे उस प्रतिमाको ले आये। रातमें विश्राम करनेके लिए वे इस पर्वतपर उतरे। प्रातःकाल होनेपर उन्होंने ले जानेके लिए प्रतिमा उठायी, किन्तु वह उठ नहीं सकी, वहीं अचल हो गयी। तब उन्होंने वहीं एक सहस्र स्तम्भोंवाली लयण बनवा दी। किन्तु वह लयण निरन्तर जलधाराके कारण टूट-फूट गयी।

करकण्डुने उसी लयणको पुनः बनवाया। उसके अतिरिक्त दो लयण और बनवाये और उनमें पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ विराजमान करायीं।

दक्षिणके सम्पूर्ण नरेशोंपर विजय प्राप्त करके करकण्डुने वंगको जीता। पश्चात् उसने अंग-पर आक्रमण किया। दोनों ओरकी सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। दधिवाहन और करकण्डु भी एक दूसरेके सम्मुख डट गये। तभी एक स्त्री दौड़ती हुई आयी। उसने हाथ उठाकर दोनोंको रोकते हुए कहा—"यह युद्ध बन्द करो, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। पिता और पुत्रको मैं अपने नेत्रसे शत्रुके रूपमें आमने-सामने खड़ा हुआ नहीं देख सकती।"

दधिवाहन और करकण्डु दोनों विस्मित होकर उस स्त्रीको देखने लगे। दधिवाहनने पूछा—"भद्रे ! तुम कौन हो ?" वह स्त्री और कोई नहीं पद्मावती थी। वह बोली—"इस मलिन वेषमें मुझे आप नहीं पहचान सके। मैं पद्मावती हूँ और यह आपका पुत्र करकण्डु है।" तब दधिवाहनने उसे पहचान लिया और उसे अपने अंकमें भर लिया। बीस वर्षके बिछुड़े पति-पत्नीका यह अप्रत्याशित संयोग कितना रोमांच, हर्ष और विस्मयसे भरा हुआ था।

दधिवाहन पद्मावतीको छोड़कर अपने पुत्रकी ओर दौड़ा और उसे भी अपने आलिंगनमें लपेट लिया। करकण्डु अत्यन्त चकित विस्मित हुआ कुछ समझ नहीं पा रहा था। तब पद्मावतीने अपने दुर्भाग्यकी कथा सुनाते हुए उसके जन्मका वृत्तान्त सुनाया। तभी उसके माता-पिता विद्याधर दम्पती भी आ गये। उन्होंने भी पद्मावतीके कथनका समर्थन किया। करकण्डुको अब विश्वास हुआ कि मेरे माता-पिता ये विद्याधर नहीं, अपितु दधिवाहन और पद्मावती हैं। उसने अपने वास्तविक माता-पिताके चरण छुए। दधिवाहनने वहीं करकण्डुको अंगका राजा बना दिया। इस प्रकार करकण्डु भारतके बहुत विशाल भूभागका स्वामी हो गया।

धाराशिवकी तीन गुफाएँ और उनकी पार्श्वनाथ मूर्तियाँ इसी करकण्डु नरेश द्वारा निर्मित करायी गयी थीं। यह नरेश पार्श्वनाथ और महावीरके मध्यवर्तीकालमें हुआ था। नल और नील नामक विद्याधर भी पार्श्वनाथके पश्चाद्वर्ती कालमें हुए थे, ऐसा लगता है। ये नील-महानील रामचन्द्रके समकालीन नल-नीलसे भिन्न प्रतीत होते हैं क्योंकि रामचन्द्रके कालमें सर्पफणवाली पार्श्वनाथकी कोई मूर्ति थी, ऐसा उल्लेख किसी शास्त्र या पुराणमें नहीं मिलता। पार्श्वनाथकी सर्पफणावलियुक्त प्रतिमा पार्श्वनाथके पश्चात् ही बनना प्रारम्भ हुआ था। अतः लगता है, नल-नील पार्श्वनाथके १००-५० वर्ष पश्चात् हुए थे। पार्श्वनाथ प्रतिमा उनसे कुछ पूर्वकालकी थी। नल-नीलने जो लयण बनाया था, वह निरन्तर जल-धारा गिरनेके कारण गिर पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है, करकण्डु नरेश नल-नीलसे लगभग १०० वर्ष पश्चात् हुआ था। इस प्रकार धाराशिवकी ये गुफाएँ २५५० या २६०० वर्ष प्राचीन हैं।

कुछ पुरातत्त्व वेत्ताओंके मतमें ये गुफाएँ ईसाकी तीसरी शताब्दीकी हो सकती हैं तथा वहांकी पार्श्वनाथ-मूर्तियोंका आनुमानिक काल ईसाकी पाँचवींसे आठवीं शताब्दी मानते हैं। प्रचलित इतिहासमें करकण्डु नामक किसी राजाका नाम उपलब्ध नहीं होता। अतः ये पुरातत्त्व-वेत्ता करकण्डुका ऐतिहासिक व्यक्तित्व स्वीकार करनेके लिए सम्भवतः तैयार नहीं हैं। किन्तु महावीरसे पूर्वकालीन इतिहासकी शोध-खोजका अभी तक कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं हुआ। ऐसी दशामें साहित्यिक साक्ष्योंको एकदम उपेक्षणीय अथवा अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर तीसरीसे आठवीं शताब्दी तकका उपर्युक्त काल-निर्धारण नितान्त काल्पनिक एवं आनुमानिक आधारपर किया गया लगता है। उसके लिए कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं किया गया। बिना किसी पूर्वाग्रहके हमारा अब भी विश्वास है कि धाराशिवकी गुफाएँ एवं मूर्तियाँ महावीरसे पूर्वकालीन हैं। यदि यह मान्यता पुरातत्त्व जगत्में स्वीकार कर ली जाती है तो भारतमें मूर्ति-निर्माणका इतिहास वर्तमान मान्यतासे २-३ शताब्दी पूर्व तक जा पहुँचता है। हमें विश्वास है, हमारी इस मान्यताको गम्भीरताके साथ लिया जायेगा।

उस्मानाबादका प्राचीन नाम धाराशिव था। अतः गुफाओंका नाम इस नगरके नामपर

---

१. Jain Art and Artitecture, editor Amlanand Ghosh

ही 'धाराशिव गुफाएँ' पड़ गया। उस कालमें तेर नगरका विशेष महत्त्व था और गुफाओंवाला क्षेत्र तेरका प्रभाव क्षेत्र था। अतः साहित्यमें कहीं-कहीं इन्हें तेरकी गुफाएँ भी कह दिया गया है।

अतिशय क्षेत्र

प्राचीन काल में धाराशिवके पार्श्वनाथको अग्गलदेव या अर्गलदेव कहा जाता था। इनके अतिशयोंके कारण इनकी बड़ी मान्यता थी। ये अग्गलदेव इतने विख्यात थे कि आचार्योंने केवल अग्गलदेवका उल्लेख किया है, उसके साथ नगर तक का उल्लेख करनेकी आवश्यकता उन्होंने अनुभव नहीं की। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें केवल 'अग्गलदेवं वंदमि' लिखना ही पर्याप्त समझा। विश्वभूषण (१७वीं शताब्दीका उत्तरार्ध) ने भी 'अर्गलदेवं वंदे नित्यं' लिखकर अर्गलदेवकी वन्दना की है। किन्तु अनेक लेखकोंने अग्गलदेव अथवा अर्गलदेवकी स्पष्ट पहचानके लिए उसके साथ धाराशिवका भी उल्लेख किया है। जैसे गुणकीर्तिने 'धारासिवनगरि आगलदेवासि नमस्कारु माझा' इस पद्यमें स्पष्ट किया है कि धाराशिव नगरीके आगलदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। इसी प्रकार जयसागरने 'सुआगलदेव धारासिव ठाम' लिखकर गुणकीर्तिका ही अनुकरण किया है। ज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थं वंदनामें' आगलदेवका स्मरण छप्पय छन्दमें इस प्रकार किया है—

"धारासिव सुभ ठाण स्वर्गपुरीसम लहिए।
आगलदेव जिनेश नामथी पातक दहिए।
पर्वतमध्य निवास महिमा नहि पारह।
सेवत नवविधि होय पूजत सुखभंडारह ॥
आगलदेव तणी कथा सुणतां पातक परिहरे।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति मनवांछित पूरण करे ॥"

उदयकीर्तिने आगलदेवकी स्थिति स्पष्ट करनेके लिए उन्हें करकण्डु राजा द्वारा निर्मित बताया है। यथा—'करकंडराय णिम्मियउ भेउ। हउँ वंदउँ आगलदेव देउ ॥'

उपर्युक्त विद्वान् १३वीं शताब्दीसे १७वीं शताब्दी तकके हैं। अर्थात् धाराशिवके पार्श्वनाथ-की अर्गलदेवके रूपमें १७वीं शताब्दी तक तो निश्चित रूपसे ख्याति रही है। अर्गलदेवके रूपमें यह मान्यता कब और कैसे धुँधली पड़ती गयी, यह जाननेका कोई साधन नहीं है।

क्षेत्र-दर्शन

यहाँ पर्वतपर ४ गुफाएँ उत्तराभिमुखी बनी हुई हैं। इसी प्रकार ३ गुफाएँ दक्षिणाभिमुखी हैं। दोनोंके मध्यमें उत्तराभिमुखी गुफाओंके सामने शिवगुरुका मन्दिर बना है। दक्षिणाभिमुखी गुफाओंमें मूर्तियां नहीं हैं, केवल एक गुफामें पार्श्वनाथकी जीर्ण मूर्ति है। ये गुफाएं और मूर्तियाँ पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं। किन्तु वास्तवमें पुरातत्त्व विभाग इतनी बहुमूल्य पुरातन सामग्रीकी ओरसे उदासीन है। यहाँकी मुख्य गुफाका प्रवेश भाग गिर गया है। उसके कारण गुफा-में अन्धकार रहता है, यात्रियोंको प्रवेश करनेमें भी असुविधा होती है तथा गुफाके शेष भागके गिरनेका भी खतरा है। सफाई और प्रकाशके अभावमें गुफाओंमें चमगादड़ोंका साम्राज्य है।

गुफा नं. १—यहाँ हम मुख्य गुफाकी ओरसे दर्शन करेंगे। इस गुफाका प्रवेश भाग गिर गया है। पहाड़की बड़ी-बड़ी शिलाएँ तथा बाहरी भाग गिरकर गुफाके द्वारपर मलवेका ढेर एकत्रित हो गया है। इस मलवेके कारण द्वार अवरुद्ध हो गया है और गुफामें अन्धकार व्याप्त हो गया है। अन्दर प्रवेश करनेके लिए छोटा-सा मार्ग शेष है। प्रवेश करते समय भय बना रहता है कि कहीं कोई शिला ऊपरसे आकर गिर न पड़े।

गुफामें प्रवेश करते ही २० स्तम्भोंपर आधारित एक विशाल मण्डप मिलता है। इसमें जगह-जगहसे ऊपरसे पानी टपकता रहता है। इसके कारण मण्डपमें जल भरा रहता है। बगलसे निकलकर सामने ६ सीढ़ियाँ चढ़कर गर्भगृह मिलता है। इसमें सामने ही भगवान् पार्श्वनाथकी ६ फीट ६ इंच ऊँची और ६ फीट चौड़ी श्याम वर्ण अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। कान स्कन्ध तक नहीं है। सिरके ऊपर विशाल सप्तफण सुशोभित है। फणोंके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पवर्षा करते हुए देव दीख पड़ते हैं। भगवान्के दोनों ओर इन्द्र चमर लिये बैठे हैं। इन्द्रोंके सिरपर किरीट तथा गलेमें रत्नहार सुशोभित हैं। उनके आगे सिंह मुख फाड़े हुए बैठा है।

इस गर्भगृहका आकार १९ फीट ८ इंच लम्बा और १६ फीट ३ इंच चौड़ा है। परिक्रमा-पथ बना हुआ है। इतनी विशाल होते हुए भी मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ और लावण्ययुक्त है।

मण्डपके तीन ओर २३ प्रकोष्ठ बने हुए हैं। गर्भगृहके वामपार्श्वमें एक खड्गासन ६ फीट उत्तुंग श्यामवर्ण प्रतिमा है। केशोंकी अलग-अलग सुन्दर लटें बनी हुई हैं। सिरके ऊपर छत्र है। इस प्रतिमाके बगलमें भूरे पाषाणकी ३ फीट ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है।

इस प्रकोष्ठके बाहर भूरे पाषाणकी ३ फीट उन्नत एक तीर्थंकर प्रतिमा रखी है। यह अर्धपद्मासन है। सिरके ऊपर छत्र हैं। छत्रोंके दोनों ओर चमरेन्द्र हैं। उनसे नीचे दोनों ओर दो-दो पद्मासन प्रतिमाएँ और बनी हुई हैं। पादपीठपर सात भक्त श्रावक हाथ जोड़े हुए विनय मुद्रामें बैठे हैं। प्रतिमा खण्डित है।

इस प्रकोष्ठके बगलवाली कोठरीमें सरस्वतीकी २ फीट ७ इंच ऊँची श्यामवर्ण मूर्ति है। बायें कन्धेके सहारे वीणा रखी हुई है और देवी उसे दायें हाथसे बजा रही है। बायाँ हाथ वरद मुद्रामें है। देवी अर्धपद्मासनसे बैठी है।

मण्डपमें ३ फीट १ इंच ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी हुई है। यह खण्डित है। शिखरके ऊपर चारों दिशाओंमें पद्मासन तथा नीचे खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

इन प्रकोष्ठोंके अतिरिक्त शेष प्रकोष्ठोंमें चमगादड़ोंने निवास बना लिया है।

गुफा नं. २—उक्त गुफाकी बायीं ओरकी गुफामें तीन द्वार हैं। यह गुफा १७ फीट १ इंच लम्बी और ११ फीट २ इंच चौड़ी है। इसके मध्यमें दो जल-कुण्ड बने हुए हैं। दीवारके सहारे ४ फीट ४ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। यह सप्तफणावलियुक्त है। प्रतिमाकी पीठपर सर्प-वलय बना हुआ है। प्रतिमाका वर्ण हलका श्याम है। इसका मुख घिस गया है। इसके वाम पार्श्वमें ३ फीट ९ इंच ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है तथा दक्षिण पार्श्वमें १ फुट ९ इंच ऊँचे पाषाणफलकमें पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसके ऊपर छत्र तथा नीचे चमरवाहक हैं।

गुफा नं. ३—दायीं ओर एक विशाल गुफा है। इसमें बाहर बरामदा तथा २० स्तम्भोंपर आधारित विशाल सभा-मण्डप है। मण्डपका फर्श कच्चा है। गर्भगृह १९ फीट २ इंच लम्बा और १७ फीट ९ इंच चौड़ा है। ४ फीट ऊँचे चबूतरेपर भगवान् पार्श्वनाथकी अर्धपद्मासन श्यामवर्ण प्रतिमा है। यह ६ फीट २ इंच ऊँची और ६ फीट चौड़ी है। इसका लेप कहीं-कहीं उतर गया है। सिरके ऊपर सप्तफण है, किन्तु जीर्ण-शीर्ण हैं। शेष रचना प्रथम गुफाकी प्रतिमाके समान है, किन्तु काफी अस्पष्ट हो चुकी है। वेदीके चारों ओर परिक्रमा-पथ बना हुआ है। इस गुफामें भी कहीं-कहीं जल टपकता है, किन्तु जल-कुण्ड नहीं बना है।

मुख्य गर्भगृहकी बायीं ओर एक प्रकोष्ठमें एक चबूतरेपर ४ फीट २ इंच ऊँची अर्धपद्मासन श्यामवर्ण प्रतिमा है। ऊपर छत्रत्रयी है। छत्रोंके दोनों ओर चमरेन्द्र हैं, किन्तु अस्पष्ट हैं।

मूर्तिसे लेप उतर गया है। बरामदेमें दायीं ओर एक गुफा है। इस गुफामें सात द्वार हैं। बीचमें स्तम्भ बने हुए हैं। इसके आगे चौरस चबूतरा है। इस गुफा की हालत अच्छी है। इसका जीर्णोद्धार किया गया है। स्तम्भ नये लगे हैं। चबूतरेपर दायीं ओर एक छोटी गुफा बनी हुई है।

गुफा नं. ४—इस गुफा में प्रवेश-द्वार तथा उसके दोनों ओर खिड़कियां हैं। फिर सभा-मण्डप है जिसमें ४ स्तम्भ बने हुए हैं। सामने गर्भगृह है, जिसमें भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति है। मूर्ति बिलकुल जीर्णशीर्ण है। यह मूर्ति गारे मिट्टीकी बनी हुई है। रचना पूर्ववत् है, किन्तु सब कुछ अस्पष्ट है। इसमें परिक्रमा-पथ नहीं है। गर्भगृह भी छोटा है। इस गुफामें ४ प्रकोष्ठ बने हुए हैं। ये सब खाली हैं।

यहाँसे पहाड़पर पगडण्डी द्वारा दक्षिणाभिमुखी गुफाओंकी ओर जाते हैं। यहाँ ३ गुफाएँ बनी हुई हैं। इसका विवरण इस प्रकार है—

गुफा नं. ५—इस गुफामें तीन खण्ड हैं। इसमें जल भरा हुआ है।

गुफा नं. ६—इसमें ५ द्वार हैं। मध्यमें स्तम्भ है। आगे बराण्डा है। १० स्तम्भोंपर आधारित सभा-मण्डप बना हुआ है। स्तम्भोंके मध्य गर्भगृह है। इसमें ५ फीट ६ इंच ऊँची पार्श्वनाथ प्रतिमा है। इसके शीर्षपर नौ फण बने हुए हैं किन्तु जीर्णशीर्ण हैं। सब कुछ अस्पष्ट है। इस गुफा में दो कोठरियाँ बनी हैं।

गुफा नं. ७—इस गुफामें ११ द्वार हैं। एक कोठरी बनी हुई है। गुफामें जल है। द्वारोंके सिरदलोंपर पशुओं आदिकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। किन्तु वे अस्पष्ट हो गयी हैं।

उपर्युक्त सभी गुफाओंका निर्माण-काल एक नहीं लगता। सम्भवतः उत्तराभिमुखी गुफाएँ प्राचीन हैं। इसमें गुफा नं. १–३ और ४ करकण्डु नरेश द्वारा निर्मित लगती हैं। पार्श्वनाथ-मूर्तियाँ, जो अर्धपद्मासन हैं, वे भी करकण्डु द्वारा प्रतिष्ठित प्रतीत होती हैं। शेष गुफाएँ एवं मूर्तियाँ उत्तरकालीन लगती हैं। इनका निर्माण समय पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा अनुमानित काल लगता है।

धर्मशाला

उस्मानाबादमें दो जैन मन्दिर हैं। वे एक दूसरेके सामने बने हुए हैं। सेठ नेमचन्द बालचन्द गान्धीके मन्दिरमें धर्मशाला बनी हुई है जिसमें ५ कमरे हैं। नल और बिजलीकी उचित व्यवस्था है।

विशेष जानकारीके लिए पत्र-व्यवहारका पता इस प्रकार है—

मैसर्स सुभाषचन्द्र मोतीचन्द गान्धी,
उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)

तेर

मार्ग और अवस्थिति

'श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र तेर' महाराष्ट्र प्रान्तके उस्मानाबाद जिलेमें अवस्थित है। उस्मानाबादसे यह स्थान १९ कि. मी. है और बार्शीसे ४९ कि. मी. है। पक्की सड़क है। उस्मानाबादसे तेरके लिए एस. टी. बस जाती है। यह क्षेत्र तेर गाँवसे बाहर वाटर वर्क्सके ठीक सामने खेतोंमें वृक्षोंकी छायामें स्थित है। गाँवमें दिगम्बर जैनोंका कोई घर नहीं है। क्षेत्रका

पुजारी गांवमें रहता है। वह प्रातःकाल मन्दिरमें आकर पूजा-प्रक्षाल कर जाता है। दर्शनार्थियों-को गांवमें जाकर पुजारीसे मन्दिरकी चाबी लानी पड़ती है। रेल-मार्गसे कुड़ुँवाड़ी-लातूर शाखा लाइन (एस. सी. रेलवे) पर तेर स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग ३ कि. मी. गाँव है। किन्तु यहां ठहरने आदिकी कोई व्यवस्था नहीं है। उस्मानाबादमें ठहरनेमें सुविधा है। इस क्षेत्रके निकट तेरणा नदी बहती है तथा यहाँसे ६ कि. मी. दूर नवनिर्मित हवाई अड्डा है।

अतिशय क्षेत्र

यह एक अतिशय क्षेत्र है। क्षेत्रपर अहातेके बाहर एक बावड़ी है। उसके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि प्राचीन कालमें इस क्षेत्रपर यात्री बहुसंख्यामें आते थे। उन्हें भोजन पकाने या अन्य किसी कामके लिए बर्तनोंकी जब आवश्यकता होती थी तो वे एक कागजपर अपेक्षित बर्तनोंके नाम लिखकर उस बावड़ीमें डाल देते थे। थोड़ी देरके पश्चात् सूचीवाले बर्तन बावड़ीके जलपर बहते हुए आ जाते थे। यात्री उन्हें निकाल लेते थे। काम हो जानेपर वे पुनः बर्तनोंको बावड़ीमें डाल देते थे और बर्तन थोड़ी देर बाद जलमें अदृश्य हो जाते थे। एक बार एक यात्रीने किसी बड़े बर्तनका नाम पर्चीपर लिखकर पर्ची बावड़ीमें डाल दी। थोड़ी देर बाद वह बर्तन जलसे बाहर आ गया। यात्री उसे निकालकर ले गया। किन्तु उसने काम हो जानेपर बर्तन बावड़ीको नहीं लौटाया। एक व्यक्तिकी इस बदनीयतीके कारण बावड़ी नाराज हो गयी। तबसे उसने बर्तन देना बन्द कर दिया।

उत्तरप्रदेशके मदनपुर क्षेत्रपर भी वहाँकी बावड़ीके सम्बन्धमें बिलकुल इसी प्रकारकी किंवदन्ती प्रचलित है।

तेरकी बावड़ीके सम्बन्धमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूचना मिली कि इस बावड़ीका जल पहले बड़ा स्वादिष्ट और आरोग्यप्रद था। दूर-दूरसे रुग्ण व्यक्ति यहां आते थे और बावड़ीका जल तथा यहाँकी वायुका सेवन करके वे स्वस्थ हो जाते थे।

क्षेत्रपर एक अद्भुत बात और सुननेमें आयी है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। कहते हैं, इस मन्दिरमें ऐसी ईंटोंका उपयोग किया गया है जो जलमें तैरती हैं। कुछ वर्ष पूर्व मन्दिरकी दीवारमें खिड़कियां बनायी गयी थीं। दीवार तोड़नेसे जो ईंटें निकलीं वे जलमें डालने-पर डूबती नहीं हैं, बल्कि तैरती रहती हैं। इस आश्चर्यजनक बातकी भनक अनेक लोगोंके कानों तक पहुँची तो वे उन ईंटोंको उठा ले गये। किन्तु वहाँ पड़े हुए मलवेमें अब भी कुछ ईंटें या उनके खण्ड तलाश करनेपर मिल जाते हैं।

इस घटनामें सचाई कहां तक है यह एक अलग विचारणीय बात है लेकिन इससे रामायण-की उस घटनाका समर्थन हो जाता है जब लंकापर आक्रमण करनेके लिए रामचन्द्रजीको आज्ञासे उस कालके प्रसिद्ध वास्तु विद्या विशारद नल और नीलने समुद्रके ऊपर ऐसे सेतुका निर्माण किया, जिसमें स्तम्भ या आधार नहीं थे। अवश्य ही उन्होंने तेरके इस मन्दिरमें प्रयुक्त इन ईंटोंके समान ही किन्हीं विशेष प्रकारकी ईंटों या पत्थरोंका प्रयोग किया होगा।

सिरपुर (अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ) के निकटस्थ पवली ग्रामके प्राचीन जैन मन्दिरमें भी ऐसी ईंटें मिलनेका उल्लेख है।

इतिहास

तेर नगरका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। पौराणिक दृष्टिसे इसका इतिहास नल और नीलके काल तक जा पहुँचता है। उस समय तेर बहुत बड़ा नगर था। नल और नील इस नगरमें

आये थे। इस सम्बन्धमें हरिषेण कथाकोष[1], करकण्डुचरिउ आदि ग्रन्थोंमें महत्त्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। इनमें बताया है कि विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाले रूप और यौवनसे सम्पन्न नल और नील नामक दो भाई तेर नगरमें आये। उन्होंने इस नगरके निकट पर्वतपर भगवान् पार्श्वनाथकी एक लयण (गुफा) का निर्माण किया। उसमें सहस्र स्तम्भ बने थे किन्तु निरन्तर जलकी धारा पड़नेसे वह लयण नष्ट हो गया।

इसके पश्चात् उपर्युक्त ग्रन्थोंके अनुसार भगवान् पार्श्वनाथके तीर्थमें हुआ करकण्डु नरेश दिग्विजय करता हुआ यहाँ आया था।

इसके बाद अनेक शताब्दियों तक इस नगरका नाम अन्धकारमें डूबा रहा। किन्तु १०वीं शताब्दीमें शिलाहार नरेशोंके कालमें इस नगरको विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया। इन नरेशोंकी महाराष्ट्रीय शाखाका शासन कराड, कोल्हापुर, मिरज आदिपर था और ये सभी नरेश 'तगरपुर-वराधीश्वर' विरुद धारण करते थे। तेर का नाम ही उस समय तगरपुर था। इस शाखाके राज्य-का संस्थापक जतिग था। राष्ट्रकूट नरेशोंके ह्रास कालमें ये नरेश एक प्रकारसे स्वतन्त्र हो गये। इन्होंने ११वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें दक्षिण कोंकणको भी अपने राज्यमें मिला लिया था। जतिगके पश्चात् इस वंशमें गण्डरादित्य और विजयादित्य प्रसिद्ध नरेश हुए। इस वंशका ध्वज स्वर्ण गरुड़ ध्वज था। ये नरेश अपने-आपको विद्याधर नरेश जीमूतकेतु (जिसने गरुड़को अपने शरीरका सम्पूर्ण मांस खिला दिया था) के पुत्र जीमूतवाहनके वंशज कहते थे। इन नरेशोंके शासन-कालमें तेर (तगर) की श्रीसमृद्धि बहुत बढ़ी। शिलाहार नरेशोंके शासनकालके पश्चात् तेरका वैभव धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

शिलाहार वंशी नरेशोंके शासन-काल में (सम्भवतः गण्डरादित्यके शासन-कालमें) तेरमें वर्तमान जैन मन्दिरका निर्माण हुआ था और अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई थी। स्वयं गण्डरादित्य-ने मिरज जिलेमें गण्डर समुद्र नामक एक विशाल तालाबका निर्माण कराया था और उसके तटपर अनेक जैन, हिन्दू और बौद्ध मन्दिर बनवाये थे। उन मन्दिरोंके रख-रखावके लिए उसने अनेक गाँव भी दानमें दिये थे। यह नरेश १२वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुआ था।

उत्तरकालीन साहित्यमें तेर—शिलाहार वंशके बाद सम्भवतः तेरका वैभव क्षीण हो गया, किन्तु लगता है, इसका एक अतिशय-क्षेत्रके रूपमें महत्त्व कई शताब्दियों तक कायम रहा। भट्टारक युगके कई लेखकोंने इसका उल्लेख किया है।

१६वीं शताब्दीके मेघराजने 'तेर पुरे वड्ढमाण' इस रूपमें अपनी गुजराती 'तीर्थवन्दना' में उल्लेख किया है।

१६वीं शताब्दीके अन्तिम चरण तथा १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुए ब्रह्मज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थ वन्दना' में तेरके सम्बन्धमें एक छप्पय लिखा है जो इस प्रकार है—

'तेरनपुर सुप्रसिद्ध स्वर्गपुरी सम जाणो।
वर्धमान जिनदेव तास तिहाँ चैत्य बखाणो।
पाप हरत सुख करत अतिशय श्रीजिनकेरो।
भविक लोक भयहरत दूर करत भवफेरो।

---

१. विद्याछेदं विधायाशु दायादैः पुरुविक्रमैः।
ततो निर्घाटितौ सन्तौ तेराख्यं पुरमागतौ॥

समवसरण जिनवीर को तेर थकी पाछ्यो वल्यो।
ब्रह्मज्ञान जग उद्धरण पावापुर सर शिव मल्यो ॥३४॥'

ब्रह्मज्ञानसागरके इस छप्पयसे लगता है कि उनके कालमें तेरनगर वैभवसम्पन्न था, यहाँकी मूर्ति अतिशयसम्पन्न थी और उनके कालमें भी यह धारणा प्रचलित थी कि तेरमें भगवान् महावीरका समवसरण आया था।

काष्ठासंघी भट्टारक रत्नभूषणके शिष्य जयसागरने 'तीर्थ जयमाला' में 'सुतेरनयर वन्दौं वर्धमान' इस पद्यांश द्वारा तेरनगरके वर्धमान स्वामीकी वन्दना की है। जयसागरजीका समय १७वीं शताब्दीका पूर्वार्ध निश्चित किया गया है।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह तो सुनिश्चित है ही कि तेर क्षेत्रकी ख्याति १७वीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध तक तो निश्चित रूपसे थी।

क्षेत्र दर्शन

इस क्षेत्रपर दोहरा परकोटा बना हुआ है। बाहरी परकोटेसे अन्दर प्रवेश करनेपर मन्दिरके चारों ओर काफी बड़ा मैदान मिलता है। पुनः दूसरे परकोटेके प्रवेश-द्वारसे प्रवेश करते हैं। दायीं ओर हेमाड़पन्थी महावीर मन्दिर है। उसके गर्भगृहमें वेदीपर भगवान् महावीरकी ५ फुट ३ इंच ऊँची और ५ फुट चौड़ी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वक्षपर श्रीवत्स है। स्कन्धपर जटाएँ हैं। चार वर्ष पूर्व इस प्रतिमापर लेप किया गया था, जिससे मूर्ति-लेख और लांछन दब गये हैं। मूलनायकके आगे पाषाण और धातुकी १-१ प्रतिमा आसीन है। वेदीके आगे एक छोटा चबूतरा है।

परिक्रमा-पथमें पृष्ठ-भित्तिमें तीन आले बने हुए हैं। मध्य आलेमें श्यामवर्ण २ फुट ७ इंच ऊँचे पद्मासन मुद्रामें ऋषभदेव विराजमान हैं। सिरके ऊपर पाषाणफलकमें छत्रत्रयी है। वक्षपर श्रीवत्स अंकित है। कन्धेपर जटाएँ हैं। शेष दोनों आलोंमें बलुए वर्णकी २ फुट ७ इंच उन्नत पार्श्वनाथकी सप्तफणमण्डित खड्गासन मूर्तियाँ हैं। दोनों मूर्तियोंके पृष्ठ भागमें सर्प वलय बना है। दायीं ओरकी मूर्तिके आगे ८ इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। यहाँ पार्श्वनाथकी ३ फुट ऊँची मूर्ति है।

गर्भगृहसे निकलनेपर बायीं ओर पार्श्वनाथकी ३ फुट ऊँची बलुए पाषाणकी खड्गासन मूर्ति है। उसके आगे चरण हैं। पादपीठपर बायीं ओर स्पष्ट लेख अंकित है। इसके पार्श्वमें एक फलकमें २ फुट ३ इंच ऊँची खड्गासन मूर्ति है।

बाहर बरामदेमें आनेपर बायीं ओर ३ फुट ३ इंच ऊँची खण्डित खड्गासन मूर्ति रखी है। आगे चरण हैं। दायीं ओर ५ मूर्तियाँ रखी हुई हैं—३ फुट १० इंच ऊँचे पाषाणफलकमें खड्गासन, ५ फुट ४ इंच ऊँचे स्तम्भमें सर्वतोभद्रिका, २ फुट ५ इंच ऊँचे स्तम्भमें सर्वतोभद्रिका, १ फुट ५ इंचके फलकमें खड्गासन प्रतिमा और ३ फुट १० इंच उन्नत पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा। एक पाषाणमें चरण बने हैं। ये सभी प्रतिमाएँ बलुए पाषाणकी हैं, प्राचीन हैं और पर्याप्त घिस गयी हैं।

इस मन्दिरके आगे खुला सहन है। बायीं ओर (परकोटेके प्रवेश-द्वारके ठीक सामने) हेमाड़पन्थी पार्श्वनाथ मन्दिर है। मन्दिरके द्वारके बाहर दायीं ओर ३ फुट १० इंच लम्बी और २ फुट २ इंच चौड़ी शिलापर २४ तीर्थंकरोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं। इसके आगे एक पाषाणपर १० इंच लम्बे चरण-चिह्न हैं। कहा जाता है कि इस नगरमें भगवान् महावीरका समवसरण आया था। उनकी स्मृतिमें ये चरण-चिह्न अंकित किये गये हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिरमें केवल गर्भगृह बना हुआ है। पार्श्वनाथ भगवान्‌की ५ फुट ९ इंच ऊँची कृष्ण वर्ण खड्गासन प्रतिमा है। पृष्ठ भागमें सर्पवलय है। इसके अतिरिक्त वेदीपर ११ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं जिनमें ४ सर्वतोभद्रिका हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिरके बगलमें एक कमरेका फर्श तथा एक कमरा बना हुआ है।

वर्तमानमें इन दोनों मन्दिरोंकी दशा बहुत खराब है। भित्तियोंमें बड़े-बड़े वृक्ष उग आये हैं।

इन मन्दिरोंके परकोटेके आगे एक लघु पार्श्वनाथ मन्दिर है। इसकी दशा भी बहुत ही शोचनीय है। मन्दिरमें सम्भवत: कभी झाड़ू भी नहीं लगती है। इसमें प्रवेश करनेपर दुर्गन्ध आती है। दीवारोंपर मकड़ियोंके जाले लगे हुए हैं।

इस मन्दिरमें सामने दीवारमें २ फुट १० इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें पार्श्वनाथकी एक खड्गासन मूर्ति है। बायीं ओर एक पद्मासन मूर्ति है। उसके नीचे पक्षी बने हुए हैं। दायीं ओर एक खड्गासन मूर्ति है। बगलमें भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं।

इसके दोनों पार्श्वोंमें सर्प-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दायीं ओर पाँच सर्प कुण्डली मारे और फण फैलाये दिखाई पड़ते हैं। बायीं ओर वृक्षाकार आकृतिमें अधोभागमें ५ सर्पफण तथा ऊपरके गुच्छक में २५ सर्पफण बने हुए हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें ५ फुट ९ इंच ऊँचे स्तम्भमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है। दायीं ओर दीवारमें ३ फुट ७ इंच ऊँचे फलकमें पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है तथा अधोभागमें दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इस मन्दिरके ऊपर भी अन्य मन्दिरोंके समान शिखर हैं।

इसके निकट ही वह बावड़ी है, जिसके चमत्कारोंका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। बावड़ीके ऊपर चार पाषाण-सर्प बने हुए हैं। पास ही एक ऊँची गुमटीमें चरण विराजमान हैं। उसके निकट एक देवड़ीमें भी चरण हैं। ये दोनों किन्हीं मुनियोंकी समाधियाँ हैं।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रतिवर्ष माघ शुक्ला ५ और ६ को वार्षिक मेला होता है। इस अवसरपर भगवान्‌की पालकी निकलती है। लगभग ४-५ सौ यात्री इसमें सम्मिलित होते हैं।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—
ट्रस्टी, दिगम्बर जैन मन्दिर,
पो. तेर (जिला उस्मानाबाद) महाराष्ट्र

सावरगाँव

मार्ग और अवस्थिति

'श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सावरगाँव' महाराष्ट्र प्रान्तके तुलजापुर तालुकामें उस्मानाबाद जिलेमें अवस्थित है। शोलापुरसे सावरगाँवके लिए सूरतगाँव होती हुई एक बस सन्ध्याको ५ बजे जाती है। शोलापुरसे सूरतगाँवके लिए तो अनेक बसें चलती हैं। शोलापुरसे सूरतगाँव २५ कि. मी. है। सूरतगाँवसे सावरगाँवके लिए बैलगाड़ियाँ भी मिलती हैं।

अतिशय

इस क्षेत्रपर भगवान् पार्श्वनाथकी बड़ी मनोज्ञ प्रतिमा है। इस प्रदेशके लोक-मानसमें ऐसी श्रद्धा व्याप्त है कि यह प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है और इसकी भक्ति करनेसे मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसी श्रद्धावश अनेक लोग यहाँ मनौती मनाने आते हैं। यह भी कहा जाता है कि दिनमें इस मूर्तिके तीन रूप बदलते हैं। प्रातःकाल मूर्तिके मुखपर बाल्यकालके भाव अंकित रहते हैं, मध्याह्नमें मुखमुद्रापर तारुण्यका ओज रहता है और सन्ध्याके समय उसके मुखपर वार्धक्य झलकता है।

क्षेत्र-दर्शन

जिनालय गाँवके मध्यमें बना हुआ है। सीढ़ियोंसे चढ़कर जिनालयके मुख्य द्वारमें प्रवेश करते हैं। द्वारके ऊपर नौबतखाना बना हुआ है। सम्भवतः प्राचीन कालमें इस मन्दिरका बहुत वैभव होगा और यहाँ चारों सन्ध्याओंके समय नौबत बजती होगी। चारों ओर ऊँची दीवार बनी हुई है। मन्दिर मध्यमें है। उसके चारों ओर खुला सहन है।

मन्दिरमें प्रवेश करनेपर सामने गर्भगृहमें वेदीपर मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी ४ फीट ४ इंच ऊँची और ३ फीट चौड़ी कृष्णवर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह नौ फणमण्डित है। इसके पृष्ठ भागमें सर्पवलय है। इसके कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। इस प्रतिमाके ऊपर संवत् १९८३ में लेप कराया गया था। इससे प्रतिमाकी शैली और लेख दब गया है। अतः इसका काल-निर्णय करना कठिन है। लेपके पश्चात् प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई। इस अवसर-पर पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी भी अपने संघ सहित पधारे थे।

इस वेदीपर मूलनायकके अतिरिक्त १ फुट ७ इंच ऊँची और संवत् १९९० में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी एक पाषाण प्रतिमा और धातुकी ९ प्रतिमाएँ और हैं।

गर्भगृहके द्वारके सिरदलपर अर्हन्त मूर्ति बनी हुई है। द्वार पाषाणका बना हुआ है और अलंकृत है। आगे बरामदा है। इसमें दो स्तम्भ हैं, उनके सिरदलपर भी अर्हन्त प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। दायीं ओर एक चौकोर पाषाण-खण्डके ऊपर २ फीट ४ इंच ऊँची हलके श्यामवर्णकी सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है। इसके पास चबूतरेपर मुनि-चरण बने हुए हैं। दायीं तथा बायीं दीवार-वेदियोंमें पार्श्वनाथकी १ फुट ५ इंच ऊँची कृष्णवर्ण और शान्तिनाथकी १ फुट ४ इंच ऊँची श्वेत वर्ण प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मुख्य वेदीसे बाहर निकलनेपर दायीं ओर एक कमरेमें वेदीपर कृष्णवर्णकी संवत् १५९८ में प्रतिष्ठित आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त वेदीपर सुपार्श्वनाथ, अरनाथ, चन्द्रप्रभ, पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरोंको ८ पाषाण प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बायीं ओरकी कोठरीमें वेदीपर २ फीट १ इंच ऊँची पद्मासनस्थ पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त वेदीपर ७ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं।

मुख्य गर्भगृहके आगे ४ स्तम्भोंपर आधारित खेला-मण्डप है। उसके आगे खुला स्तम्भ-मण्डप है। मन्दिरके ऊपर शिखर है। स्तम्भमण्डपके ऊपर लघु शिखर है। इनसे आगे सभामण्डप बना हुआ है।

सभामण्डपके दोनों ओर खुले मैदानमें दो मानस्तम्भ हैं। ये ५ खण्डोंमें बने हुए हैं। पूर्व दिशाके मानस्तम्भमें प्रत्येक खण्डमें मिट्टीकी १ और शीर्ष वेदीपर १ प्रतिमा विराजमान है, जबकि पश्चिमके मानस्तम्भमें केवल शीर्ष वेदीमें ४ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। पूर्व दिशाके मानस्तम्भके

पास २ फीट ७ इंच ऊँची एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी है। प्रतिमा काफी प्राचीन है। इसके पास प्राचीन चरण बने हुए हैं। एक ओर क्षेत्रपालकी मूर्ति है।

धर्मशाला

यहाँ पृथक् धर्मशाला नहीं है। किन्तु मन्दिरके अहातेमें हो ७ कमरे बने हुए हैं। यहाँ कुआं है। मन्दिरमें बिजली नहीं है।

मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष वदी १० और ११ को दो दिन मेला होता है। इस अवसरपर बाहरसे लगभग ५०० व्यक्ति आ जाते हैं। इस समय भगवान्‌की पालकी नगर-भरमें निकाली जाती है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
पो. सावरगाँव (तालुका तुलजापुर)
जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)

आष्टा

मार्ग और अवस्थिति

'श्री दिगम्बर जैन विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कासार आष्टा' महाराष्ट्र प्रदेशके उस्मानाबाद जिलेमें उमर्गा तालुकामें स्थित है। यह शोलापुर-हैदराबाद नेशनल हाई वे नं. ९ पर स्थित भोसगागांवसे ५ कि. मी. दूरपर है। गाँव तक पक्की सड़क है। यह उमर्गासे २४ कि. मी., उस्मानाबादसे ५१ कि. मी. और शोलापुरसे ६४ कि. मी. है। शोलापुरसे आष्टाके लिए सन्ध्याके ५ बजे बस चलती है और वह प्रातः ८ बजे शोलापुरको वापस लौटती है। आष्टा नामक कई गाँव हैं। प्रस्तुत आष्टा कासार आष्टा कहलाता है। क्योंकि प्राचीन कालमें इस गाँवमें कासार जैनोंके २००-२५० घर थे।

अतिशय क्षेत्र

यहाँ पार्श्वनाथ भगवान्‌की मूर्ति अतिशयसम्पन्न है। इसकी भक्तिसे विघ्नोंका नाश होता है, अतः भक्त जन इसे विघ्नहर पार्श्वनाथ कहते हैं। इस मूर्तिके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है। लगभग ५०० वर्ष पूर्व मुस्लिम शासन-कालमें जब मूर्तियोंका निर्मम भंजन किया जा रहा था, मूर्तिके रक्षणकी दृष्टिसे यह निर्णय किया गया कि मूर्तिको किसी सुरक्षित स्थानपर स्थानान्तरित कर दिया जाये। फलतः इसे सन्दूकमें बन्द करके ले जाया जा रहा था। जब यहाँसे २ कि. मी. दूर दस्तापुर गाँवके बाहर बैल गाड़ी पहुँची तो वहाँ जाकर वह रुक गयी। बहुत प्रयत्न करनेपर भी गाड़ी वहाँसे नहीं चली। उसी रात आष्टा गाँवके जैन पटेलकी पुत्र-वधूको स्वप्न आया कि मूर्ति कहीं नहीं जायेगी, दस्तापुर जाकर मूर्तिको वापस लौटा लाओ। प्रातःकाल उठनेपर उसने अपने स्वप्नकी चर्चा घरवालोंसे की। सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए। परिवार तथा गाँवके अन्य जैन नर-

नारी भक्ति गीत गाते हुए दस्तापुर पहुँचे। वहाँ उक्त पुत्र-वधू तथा अन्य लोगोंने भगवान्‌के दर्शन किये, आरती उतारी और भक्तिपूर्वक पूजा की तथा प्रार्थना की—"प्रभु ! हम आपको ले जानेके लिए आये हैं, आप चलिए।" साधारण प्रयत्न करते ही गाड़ी आष्टाकी ओर चल पड़ी। वापस पहुँचनेपर इसके लिए मन्दिरका निर्माण कराया गया और प्रतिष्ठा महोत्सवके साथ उस मन्दिरमें मूर्तिको विराजमान किया गया।

मूर्तिके चमत्कारको देखकर सभी ग्रामवासी इसके भक्त बन गये और इसे ग्राम-देवता मानने लगे। तभी से जैन-जैनेतर सभी लोग भगवान्‌के दर्शनोंके लिए यहाँ आने लगे। अनेक भक्त जन मनोकामनाएँ लेकर प्रभु-चरणोंमें आते हैं और प्रभुकी भक्तिसे उनकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सरकारने भी भगवान्‌की सेवा-पूजाके लिए कुछ भूमि मन्दिरको दी है जो आज भी मन्दिरके नाम विद्यमान है। मनौती मनानेवाले भक्त गण घीसे भगवान्‌का अभिषेक भी करते हैं।

इस मूर्तिके ऊपर सर्प-फण नहीं है, पादपीठपर सर्प लांछन बना हुआ है।

क्षेत्र-दर्शन

प्राचीन मन्दिर हेमाड़पंथी शैलीका था। उसके स्थानपर एक मण्डप बनाकर उसके दो भाग कर दिये गये हैं। अन्तःभाग गर्भगृह और बाह्य भाग सभा-मण्डपके रूपमें प्रयुक्त होता है। इस मण्डपके दायीं ओर कुछ भाग प्राचीन मन्दिरका अवशिष्ट है।

गर्भगृहमें चबूतरानुमा वेदीमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी १ फुट ५ इंच ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वक्षपर श्रीवत्स है। प्रतिमाके कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। इसके आगे भगवान् ऋषभदेवकी १०॥ इंच ऊँची श्वेत पद्मासन प्रतिमा आसीन है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १४७२ में की गयी थी। इसके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथ और ऋषभदेवकी धातु प्रतिमाएँ हैं।

बायीं ओर एक कृष्ण पाषाणफलकमें २४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्यके खुले भागमें खड्गासन पार्श्वनाथ हैं। फलकका आकार २ फीट २ इंच है तथा इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९२९ है। इसके दोनों ओर पार्श्वनाथ और बिना लांछनकी कृष्ण वर्णवाली पद्मासन प्रतिमाएँ हैं तथा ३ धातु-प्रतिमाएँ हैं। इनके बायीं ओर चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त २ पाषाणकी तथा ७ धातुकी प्रतिमाएँ और हैं।

मूलनायककी दायीं ओर श्वेत मार्बलका ३ फीट ४ इंच ऊँचा संवत् १९२९ में प्रतिष्ठित २४ तीर्थंकरोंका एक फलक है जिसके मध्यमें पार्श्वनाथ-प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त एक खड्गासन और एक पद्मासन धातु प्रतिमा है।

इसकी दायीं ओर ९ इंच ऊँची सुपार्श्वनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त कृष्ण पाषाणकी ४ तथा धातुकी १२ प्रतिमाएँ हैं।

ये सब प्रतिमाएँ एक ही चबूतरेपर विराजमान हैं। यहाँ क्षेत्रपाल भी विराजमान हैं।

सभामण्डपमें पाषाणकी पद्मावती देवी आसीन हैं। मण्डपका फर्श मार्बलका है। मन्दिरके ऊपर शिखर नहीं है। सभामण्डपके आगे बरामदा और प्रांगण हैं।

धर्मशाला

यहाँ यात्रियोंके लिए पृथक्से कोई धर्मशाला नहीं है। मन्दिरके प्रांगणमें ही सामने और दायीं ओर दो बरामदे हैं तथा इन बरामदोंमें दो कमरे हैं। कमरे रसोईके, बरामदे यात्रियोंके

ठहरनेके काम आते हैं। मन्दिरमें बिजली है, कुआँ है और यात्रियोंकी सुविधाके लिए बरतनोंकी भी व्यवस्था है। शौचके लिए गांवसे बाहर जाना पड़ता है।

मेला

क्षेत्रपर चैत वदी ४ को वार्षिक मेला होता है। इस अवसरपर भगवान्‌को पालकीमें विराजमान करके उनकी नगर-यात्रा होती है। मेले में निकटवर्ती ग्रामोंसे २००-३०० धर्मबन्धु पधारते हैं।

क्षेत्र का पता इस प्रकार है—

ट्रस्टी, श्री दिगम्बर जैन विघ्नहर पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र,
पो. आष्टा कासार (तालुका उमर्गा)
जिला उस्मानाबाद—महाराष्ट्र

ऐलौराके गुहामन्दिर

मार्ग और अवस्थिति

ऐलौराकी जगद्विख्यात गुफाएँ और गुहामन्दिर महाराष्ट्र प्रान्तके औरंगाबाद नगरसे पश्चिम दिशामें ३० कि. मी. दूर हैं। ऐलौरा (वर्तमान वेरूल ग्राम) तक पक्की सड़क है और औरंगाबादसे वहाँ तक नियमित बस-सेवा है। ऐलौराकी पहाड़ी समुद्रतलसे २२ फुट ऊँची है। यह सह्याद्रि पर्वत शृंखलाकी एक कड़ी है। यहांकी जलवायु समशीतोष्ण है और दृश्य अत्यन्त मनोरम एवं नयनाभिराम है।

यहाँ कुल ३४ गुफाएँ हैं। ये सभी गुफाएँ किसी एक धर्मसे सम्बन्धित नहीं हैं, अपितु भारतके तीन प्राचीन धर्मों—जैन, हिन्दू और बौद्धसे सम्बन्धित हैं। गुफा नं. १ से १२ तककी गुफाएँ बौद्ध धर्मकी हैं, १३ से २९ तककी गुफाएँ शैव धर्मावलम्बियोंकी हैं तथा क्रमांक ३० से ३४ तक गुफाएँ जैन धर्मसे सम्बन्धित हैं।

इतिहास

इतिहास ग्रन्थोंमें इस नगरका प्राचीन नाम एलापुर बताया है। इस नगरकी स्थापना और उसके नामकरणके सम्बन्धमें विद्वान् एकमत नहीं हैं। किन्हीं विद्वानोंका मत है कि इस नगरका नामकरण सुप्रसिद्ध जैनाचार्य एलाचार्यके नामपर किया गया था। ऐलाचार्य कुन्दकुन्द स्वामीका भी एक नाम है। किन्तु प्रस्तुत एलाचार्य वीरसेन स्वामीके विद्यागुरु थे। वीरसेन स्वामीने जयधवलामें एक स्थानपर 'एलाइरियवस्सजस्स णिच्छओ' इस पद द्वारा ऐलाचार्यका स्मरण किया है और अपने आपको उनका शिष्य स्वीकार किया है। उन पूज्य ऐलाचार्यका बिहार इस प्रदेशमें सतत होता रहता था। वे विद्वान्, चरित्रनिष्ठ और प्रभावशाली आचार्य थे। उनके नामपर ही इस नगरको ऐलापुरकी संज्ञा प्राप्त हो गयी।

एलापुरके निकट शूलिभंजन नगर था, जो उस समय राष्ट्रकूट नरेशोंकी उपराजधानी थी। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (ई. ८१४-८७७) राजकुमार अवस्थामें यहीं रहता था। उस समय आचार्य जिनसेन एलापुरमें अपने गुरु वीरसेन द्वारा जयधवलाके अधूरे छोड़े हुए कार्यको पूरा करनेमें लगे हुए थे। (उन्होंने यह टीका सन् ८३८ में पूर्ण की।) उस समय राष्ट्रकूट वंशके

जगत्तुंगका शासन था। कुमार अमोघवर्षने आचार्य जिनसेनसे जैनधर्मकी शिक्षा प्राप्त की थी। यह माननेके प्रबल कारण विद्यमान हैं कि जिस प्रदेशमें ऐलाचार्यका विहार सतत रूपमें हुआ, उस प्रदेशमें आचार्य वीरसेनका भी अवश्य पावन विहार हुआ होगा। इसी प्रकार जिस स्थान—ऐलापुर अथवा शूलिभंजनमें एक लम्बे काल तक रहकर आचार्य जिनसेनने जयधवला टीकाकी रचना की, उस स्थानपर उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य गुणभद्रने भी अवश्य निवास किया होगा। इस प्रकार यह स्थान इन महान् आचार्योंकी चरण-रजसे दीर्घ काल तक पवित्र हुआ था। राज्यारोहणके पश्चात् नृपतुंग ध्रुव अमोघवर्षने मान्यखेट नगर (शोलापुरसे दक्षिण-पूर्वमें १४४ कि. मी.) की स्थापना की। मान्यखेटसे पहले राष्ट्रकूट वंशकी राजधानी मयूरखिण्डी (नासिक जिला), शालिभंजन (ऐलौराके निकट) और ऐलिचपुर थी।

कुछ अन्य विद्वानोंकी मान्यता है कि इस ऐलापुर नगरकी स्थापना ऐलिचपुर नरेश ऐलवंशी श्रीपालने की थी। इन विद्वानोंकी यह धारणा भ्रमजनित लगती है। प्रतीत होता है, इन विद्वानोंको श्रीपाल नरेशका वंश ऐल होनेके कारण यह भ्रम उत्पन्न हो गया। इस भ्रमका एक कारण १६वीं शताब्दीके विद्वान् ब्रह्मज्ञानसागर द्वारा रचित 'सर्वतीर्थ वन्दना'का ऐलूरसे सम्बन्धित निम्नांकित छप्पय है—

'एयल राय प्रसिद्ध देश दक्षिणमें जायो।
एलुर नयर वखाण महिमंडल जस पायो।
खरचो द्रव्य अनंत पर्वत सवि कोरायो।
षटदर्शनकृत मान इन्द्रराज मन भायो॥
कार्तिक सुदि पूनम दिने यात्रा श्री जिन पासकी।
जे पूजन नित भाव सूँ आसा पूरत तासकी॥३२॥'

इस छप्पयका सारांश यह है कि दक्षिण देशमें ऐल राजा उत्पन्न हुआ। ऐलूर नगरका यश सारे पृथ्वीमण्डलपर व्याप्त था। उस राजाने अनन्त द्रव्य व्यय करके सारे पर्वतमें गुफाएँ, प्रतिमाएँ आदि उत्कीर्ण करायीं। यह कार्य इन्द्रराजको बहुत अच्छा प्रतीत हुआ। यहाँ कार्तिक सुदी पूर्णिमाको भगवान् पार्श्वनाथकी यात्रा होती है। जो लोग भक्तिभावपूर्वक इन पार्श्वनाथकी पूजा करते हैं, उनकी मनोकामना पूर्ण होती है।

उक्त पद्यमें नाममात्रको भी यह संकेत नहीं दिया गया कि ऐल राजाने ऐलूर नगरकी स्थापना की थी। बल्कि इस पद्यसे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐल राजाके कालमें ऐलूरकी बहुत ख्याति थी। वस्तुतः ऐलापुर या ऐलूरकी ख्याति दो कारणोंसे थी—(१) उस नगरकी स्थापना जैनाचार्य ऐलके नामपर हुई थी तथा वहाँ जिनसेनाचार्य-जैसे महान् आचार्यने निवास किया था और षट्खण्डागम-जैसी महान् साहित्यिक निधिका सृजन किया था। (२) वहाँ सभी धर्मोंके गुहामन्दिर और मूर्तियाँ थीं, जिनका शिल्प-वैभव अनुपम था। हाँ, उक्त पद्यसे यह अवश्य ज्ञात होता है कि ऐलराजाने ऐलूरमें गुफाओंका निर्माण कराया था। इसे माननेमें किसीको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु उसने किन-किन गुफाओंका निर्माण कराया, यह जाननेका कोई साधन उपलब्ध नहीं है।

ऐलौराका जैन शिल्प-वैभव

ऐलौरा अपने शिल्प-वैभव और स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे सारे संसारमें प्रसिद्ध है। यहाँ कला अपने उद्देश्य—सत्यं, शिवं, सुन्दरंको पूर्णतः चरितार्थ करनेमें सफल हुई है। कठिन पाषाणोंमें

लावण्य, मनोज्ञता और विराग-जैसी कोमल भावनाओंको उभारनेमें यहांके शिल्पीने कलाको उसके उच्चतम शिखरपर पहुँचा दिया है। यहाँकी जैन मूर्तियोंमें जो समानुपातिकता परिलक्षित होती है, वह शिल्पीके नैपुण्यका स्वयंमें ही एक प्रमाण-पत्र बन गयी है। यहाँ पार्श्वनाथ और बाहुबली-की मूर्तियोंमें वैविध्यके दर्शन होते हैं। कुछ पार्श्वनाथ मूर्तियाँ पद्मासन या कायोत्सर्गासनमें ध्यानमुद्रामें अवस्थित हैं; कई मूर्तियाँ केवलज्ञानसे पूर्व कमठासुर द्वारा किये गये विविध उपसर्गों-का सजीव चित्रण करती हैं। ऐसी भी मूर्तियाँ यहाँपर हैं जिनमें पार्श्वनाथकी कैवल्य-प्राप्तिपर देव-देवियाँ पुष्प-वर्षा करके, वाद्य बजाकर अपना मोद प्रकट कर रही हैं। बाहुबलीकी सभी मूर्तियाँ कायोत्सर्गासनमें बाहुबलीके घोर तपकी सूचक हैं। तपस्यारत मुनिराज बाहुबलीकी जंघाओं और भुजाओंपर माधवी लताएँ चढ़ गयी हैं, वामियोंमें-से सर्प निकलकर बाहुबलीके प्रशान्त मुखमण्डलको एकटक देख रहे हैं और गन्धर्व बालाएँ मुनिराजके ऊपर चढ़ी हुई लताओंको हटा रही हैं। बाहुबलीकी एकाधिक मूर्तियोंमें भरत चक्रवर्ती मुनिराजके चरणोंमें नमन करते हुए त्याग और विरागके सम्मुख सांसारिक वैभवकी निस्सारता एवं अगाध समृद्धिके स्वामी अपनी अकिंचनता प्रदर्शित कर रहे हैं। उनकी बहन ब्राह्मी और सुन्दरी मुनिराजके दोनों पार्श्वोंमें खड़ी हैं और मुनिराजके प्रति अपनी असीम भक्तिका परिचय दे रही हैं। तीर्थंकरोंमें पार्श्वनाथके अतिरिक्त ऋषभदेव, नेमिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ और महावीरकी भी अनेक मूर्तियाँ हैं। ये सभी अर्धपद्मासन हैं।

शासन-देवताओंमें चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका और सिद्धायिका एवं गोमेद, मातंग और धरणेन्द्रकी मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। नीलांजना और इन्द्रकी नृत्य मुद्रावाली मूर्तियाँ दर्शकका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित करती हैं। स्तम्भों, तोरणों और सिरदलोंपर देव-देवियोंका समाज कई स्थानोंपर जुटा हुआ है। उपर्युक्त सभी देव-देवियोंकी अलंकरण-सज्जा, भावभंगिमा और सौन्दर्यके अंकनमें कला अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी है।

यहाँ कई गुफाएँ दो-मंजिली हैं। कई गुफाओंके स्तम्भ विशेष अलंकृत हैं। इन गुफाओंमें छोटा कैलास, इन्द्रसभा और जगन्नाथ सभा नामक गुफाएँ अपनी उत्कृष्ट शिल्पकला, भव्यता और विशालतामें सर्वोत्कृष्ट हिन्दू और बौद्ध गुफाओंके समकक्ष हैं और यहाँके गुफा समूहमें इनका विशिष्ट स्थान है। पहाड़ी चट्टानोंको तराशकर खोदी गयीं इन विशाल, गहरी और सुडौल गुफाओंको देखकर दर्शक हैरान रह जाता है। गर्भगृह, सभामण्डप, अर्धमण्डप, विशाल स्तम्भ, मूर्तियाँ, उनके अलंकरण, गुफाओंकी छतें और उनका स्थापत्य, दो-मंजिली गुफा सभी कुछ तो स्वप्नलोक-सा लगता है। इनके निर्माणमें कितना यान्त्रिक कौशल काममें लाया गया होगा!

क्षेत्र-दर्शन

गुफा नं. ३० अ—यह गुफा अधबनी है। चार स्तम्भोंपर अर्धमण्डप आधारित है। इसके मण्डप, गर्भगृह और दीवारें बन नहीं पायीं। ये अनगढ़ हैं। सामने ४ फीट ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी हुई है। इसकी प्रतिमाएँ खड्गासन हैं। इस गुफाके स्तम्भ अत्यन्त कलापूर्ण और अलंकृत हैं। ये गुफा नं. ३२ के स्तम्भोंकी होड़ करते हैं।

इस गुफासे एक कच्चा मार्ग गुफा नं. ३० ब को जाता है। लगभग एक फर्लांग चलनेपर यह गुफा मिलती है।

गुफा नं. ३० ब – गुफामें प्रवेश करनेपर दायीं ओर एक स्तम्भमें एक विशाल अर्ध-पद्मासन मूर्तिके दर्शन होते हैं। शिरोभागपर छत्र हैं। उसके ऊपर दुन्दुभिवादक तथा पुष्पवर्षा

करते हुए देव दिखाई पड़ते हैं। अधोभागमें चमरेन्द्र हैं। यह मूर्ति क्रैक है। इसकी बायीं ओर एक स्तम्भमें अर्धपद्मासन मूर्ति है। छत्रोंके ऊपर माला लिये हुए देव बैठा है। उसके दोनों ओर दुन्दुभिवादक हैं। नीचेके भागमें चमरेन्द्र हैं।

बायीं ओर एक पैनलमें बारहभुजी देवी है। एक ओर छह हाथ हैं। दूसरी ओर केवल एक हाथ अवशिष्ट है, शेष खण्डित कर दिये गये हैं। देवी मुकुट और गलहार धारण किये हुए है। शीर्षपर एक अर्धपद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। नीचे एक व्यक्ति देवीको पीठासन सहित उठाये हुए है।

यह एक मण्डप है जो पूरी तरह गढ़ा नहीं गया है। इसके आगे खुला सहन है। फिर चार स्तम्भोंपर अर्धमण्डप बना हुआ मिलता है। द्वारके दोनों ओर गदा लिये द्वारपाल खड़े हैं। बायीं ओर एक देवी खड़ी है। इसकी कटिसे नीचेका भाग नहीं है। इससे आगे द्वादशभुजी देव नृत्यमुद्रामें प्रदर्शित है। सम्भवतः यह सौधर्मेन्द्र है। इसकी भुजाओंपर देवियाँ नृत्य कर रही हैं, गन्धर्व वाद्य बजा रहे हैं। आदिपुराणमें भगवान्के जन्म-कल्याणकके समय सौधर्मेन्द्र द्वारा किये गये नृत्यका जो वर्णन किया है, उससे प्रस्तुत मूर्तिका साम्य है। इन्द्रकी नृत्यमुद्रामें इतनी विशाल मूर्ति अन्यत्र देखनेमें नहीं आयी। वह अपने पदके अनुरूप अलंकार धारण किये हुए है। इसकी ऊँचाई लगभग ८ फीट है। इसी प्रकार बायीं ओर चतुर्भुजी इन्द्र नृत्य-मुद्रामें प्रदर्शित हैं।

इस गुफाके प्रवेश-द्वारके बाहर गन्धर्वयुगल उत्कीर्ण हैं। अन्दर मण्डप है। इसमें २० स्तम्भ हैं। बायीं और दायीं ओर ७-७ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसके गर्भगृहमें अर्धपद्मासन तीर्थंकर-प्रतिमा है।

मुख्य गुहामन्दिरमें तीन दिशाओंमें द्वार बने हुए हैं। इसका पूर्वी द्वार ही मुख्य द्वार है जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। दक्षिण द्वारपर तथा इसकी चौखटोंपर गन्धर्वयुगल बने हुए हैं। इसके सामने खाली गुफा है। इस मन्दिरके उत्तरी द्वारपर अर्धमण्डप बना हुआ है। द्वारपर दो द्वारपाल खड़े हुए हैं। इसके सामने एक मण्डप और गर्भगृह है। मण्डपमें बायीं ओर एक प्रकोष्ठ है। इसके द्वारपर बायीं ओर ६ फीट ५ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। इसके सिरदलपर अर्धपद्मासन प्रतिमा है। उसके दोनों ओर चमरधारी हैं। इसके दायीं ओर भित्तिके मध्य पैनलमें ऊपर-नीचे अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनके ऊपर चमरेन्द्र है, दोनों ओर खड्गासन और नीचे खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। मण्डपके स्तम्भोंपर यक्ष बने हुए हैं। दायीं ओरके स्तम्भके बगलमें अम्बिका है। दायीं ओरकी भित्तिमें तीन पैनल बने हुए हैं। एक पैनलमें खड्गासन प्रतिमा है, शेष दोनों पैनलोंमें अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ और उनके दोनों ओर चमरवाहक हैं।

इस मण्डपके दो स्तम्भोंने गर्भगृहके आगे छोटा-सा मण्डप बना दिया है। इसमें बायीं ओरकी भित्तिमें खड्गासन पार्श्वनाथ परिकर सहित विराजमान हैं। दायीं ओरकी भित्तिमें एक खड्गासन प्रतिमा बनी हुई है। चार देवियाँ भगवान्की सेवामें निर्दिष्ट हैं।

यह गुफा छोटा कैलास कहलाती है। यह हिन्दुओंकी सुप्रसिद्ध कैलास गुफाकी अनुकृतिपर बनायी गयी है। शक संवत् ११६९ (ई. सं. १२४७) में यह निर्मित की गयी। इसका आकार १३० × ८० फीट है।

गुफा नं. ३१—इसमें ६ स्तम्भोंपर आधारित मण्डप है। बायीं ओरकी दीवारमें ६ फीट ऊँची पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। सिरके ऊपर सप्तफणावलि है। उसके ऊपर छत्रत्रय हैं। दोनों ओर मालाधारी देव हैं। मध्यमें दोनों ओर दण्डधारी देवियाँ हैं। ये मुकुट, गलहार,

बाजूबन्द, मेखला धारण किये हुए हैं। चरणोंके निकट विनत मुद्रामें पति-पत्नी बैठे हैं। इस प्रतिमासे आगे एक पद्मासन प्रतिमा है। ऊपर छत्र हैं। दोनों ओर चमरवाहक हैं।

सामनेकी दीवारमें गोमेद यक्ष और अम्बिकाकी मूर्तियाँ हैं। यक्ष यज्ञोपवीत धारण किये हुए है। मुकुट, कुण्डल, हार, भुजबन्द, मेखला और कड़े आदि अलंकारोंसे मण्डित है। यक्ष ललितासनमें है। उसके इधर-उधर सेवक खड़े हैं। अम्बिका भी ललितासनमें सिंहारूढ़ है। उसकी बायीं गोदमें एक बालक है जो सम्भवतः शुभंकर है। बालकका सिर खण्डित है। अम्बिकाके दायें हाथमें आम्रफल है। सिरपर आम्रगुच्छक है। बायीं ओर चमरवाहक खड़ा है।

दायीं ओरकी दीवारमें एक खण्डित पद्मासन प्रतिमा है। इससे आगे बाहुबलीकी ६ फीट ऊँची मूर्ति है। मूर्तिके सिरके पीछे तथा ऊपर छत्र हैं। उनके दोनों ओर पुष्पमालाएँ हाथमें लिये देव-देवियाँ दीख पड़ते हैं। बाहुबलीकी जंघाओं और भुजाओंके ऊपर माधवी लताएँ चढ़ गयी हैं, गन्धर्वबालाएँ उनको हटा रही हैं। बायीं ओर भक्त दम्पती हाथ जोड़े बैठा है।

अन्दर गर्भगृहमें ४ फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्तिका सिर और मुख खण्डित है।

गुफा नं. ३२—इस गुफाको इन्द्रसभा कहते हैं। यह यहाँकी जैन गुफाओंमें सबसे बड़ी है और दो-मंजिली है। यहाँ छतोंमें जो चित्रकारी की गयी है, उसका वैशिष्ट्य जगप्रसिद्ध है। यह अजन्ताकी चित्रकलाकी अनुकृति है। इस चित्रकलाके सम्बन्धमें कलामर्मज्ञोंका विचार है कि परवर्ती भारतीय चित्रकलापर ऐलौराकी चित्रकलाका स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। जैन कलाशैलीके विकासशील तत्त्वोंका मूल कारण ज्यादातर ऐलौराकी कलाका रहा है। निश्चय ही यहाँकी चित्रकला अत्यन्त भव्य, सुरुचिपूर्ण और आकर्षक है। इन चित्रकृतियोंमें कई पौराणिक जैन-कथानक और पारम्परिक दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं।

इसी प्रकार इस गुफाकी उत्कृष्ट मूर्तिकला और कलात्मक शिल्प विधानकी सराहना कला क्षेत्रोंमें की जाती है। यहाँके सूक्ष्म शिल्पांगन, प्रतिमाओंके भव्य शिल्प कौशलके अतिरिक्त यहाँके शिलापट्टों और स्तम्भोंपर कलाके ललित पक्षके दर्शन भी प्रचुरतासे होते हैं। देव-देवियोंका अलंकरण और वस्त्रोंकी चुन्नटें कलाके विकसित रूपका प्रमाण हैं। नृत्य करती ललनाओंकी त्रिभंग मुद्रा, उनका केश-विन्यास और मोहक छवि आदि रूप पाषाणोंपर जितने सजीव और भव्यता लिये उभरे हैं, उनसे यहाँकी कला अमरता पा गयी है। यहाँके प्रत्येक पाषाण खण्डमें शिल्पीके कौशल और तन्मयताके दर्शन होते हैं।

इस गुहा-मन्दिरमें गर्भगृह, पूजामण्डप, उसके चारों ओर परिक्रमा-पथ हैं। मण्डपके आगे विशाल सहन है। इस सहन या प्रांगणमें पहले २७ फीट ऊँचा एक पाषाणस्तम्भ था और उसके शीर्षपर चतुर्मुखी प्रतिमा विराजमान थी। किन्तु कुछ वर्ष पूर्व वह स्तम्भ भग्न हो गया। उसके भग्न भाग वहाँ अब भी पड़े हुए हैं, उसकी प्रतिमाएँ भी भग्न दशामें पड़ी हैं। दायीं ओर एक विशाल आकारका पाषाण-गज बना है। उसकी पूँछ नहीं है। सम्भवतः वह भग्न हो गयी। द्वारके आगे ५ फीट ९ इंच ऊँचे पाषाण-स्तम्भमें सर्वतोभद्र प्रतिमा है। मूर्तियोंके मुख खण्डित हैं। मूर्तियोंके सिरके ऊपर छत्र हैं। छत्रोंके दोनों ओर देव पुष्पवर्षा करते हुए दीख पड़ते हैं। चमरवाहक सेवामें चमर लिये उपस्थित हैं।

मण्डपमें प्रवेश करते ही स्तम्भमें पद्मासन मुद्रामें तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। दूसरे भागमें बाहुबलीकी मूर्ति है। सभा-मण्डपमें बायीं ओरकी दीवारमें १२ फीट ऊँची तीर्थंकर पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। यह सप्त फणावलि मण्डित है। देवगण शिरोभागमें वाद्य-वादन तथा दोनों

कोनोंपर पुष्पवर्षा कर रहे हैं। बायीं ओर महिषवाहिनी पद्मावती देवी है। उसके निकट एक यक्षी हाथमें एक यष्टिका लिये खड़ी है। उसने यष्टिकाको पीठकी ओर कर रखा है। नीचे नाग-पुरुष और नागकन्या खड़े हैं। दायीं ओर सिंहारूढ़ धरणेन्द्र है। उनके वाम हस्तमें कटार है। दक्षिण हस्त वरद मुद्रामें है। इससे नीचे भक्त दम्पती भक्ति-मुद्रामें बैठे हैं। इससे आगेके स्तम्भमें पद्मासन प्रतिमा है। उससे आगेके पैनलमें पहलेके समान पार्श्वनाथ भगवान्‌की प्रतिमा है।

सामने गजपर ललितासनमें यक्ष आरूढ़ है। यक्षकी यह मूर्ति शिल्पकलाका एक बेजोड़ नमूना है। उसके सिरके ऊपर सम्भवतः सिद्धार्थ वृक्ष है, किन्तु वृक्षकी मनोहारी रचना शैलीसे इसके आम्रवृक्ष होनेकी भी सम्भावना हो सकती है। यक्ष सिरपर मुकुट धारण किये है, कन्धेपर यज्ञोपवीत सुशोभित है; उसने रत्नहार, कुण्डल, भुजबन्द और रत्नमेखला धारण कर रखी हैं। उसके ऊपर तथा दोनों पार्श्वोंमें पद्मासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। अधोभागमें दोनों ओर दण्डधारी सेवक हैं। गर्भगृहके द्वारपर बायीं ओर खड्गासन प्रतिमा है। दायीं ओरकी मूर्ति तोड़ दी गयी है। इससे आगे अम्बिका-मूर्ति है। उसके सिरपर आम्रगुच्छक है। इससे आगे दीवारमें एक यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति आसनसहित भगवान्‌को सिरपर उठाये हुए है। भगवान् पद्मासन मुद्रामें हैं। सिरके ऊपर तीन छत्र हैं। चमरेन्द्र चमर लिये हुए भगवान्‌की सेवामें रत हैं।

दायीं ओरकी दीवारमें तीन पैनल या कोष्ठक बने हैं। पहले कोष्ठकमें खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। प्रतिमाका पाषाण बीचमें-से चीर दिया गया है। प्रतिमाके शीर्षपर छत्र सुशोभित है। छत्रोंके ऊपर पद्मासन प्रतिमा है। दोनों पार्श्वोंमें ४-४ देव नृत्य-मुद्रामें प्रदर्शित हैं।

दूसरे कोष्ठकमें १२ फीट ऊँची बाहुबली स्वामीकी खड्गासन प्रतिमा है। गोम्मटेश्वर बाहुबली घोर तपस्यामें लीन हैं। माधवी लताएँ उनके शरीरपर चढ़ गयी हैं। लताओंसे उनका सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। ऊपर तथा कोनोंपर देव-देवियाँ नृत्यगान द्वारा अपना मोद प्रकट कर रही हैं। देव गोम्मटेश्वरके ऊपर पुष्पवर्षा कर रहे हैं। नीचे गन्धर्वबालाएँ माधवी लताएँ हटा रही हैं। बायीं ओर चरणोंके निकट चक्रवर्ती भरत राजसी अलंकार और परिधान धारण किये हुए उन्हें नमस्कार कर रहे हैं। तपस्वी मुनिराजके निकट हरिण-मिथुन स्वच्छन्द विचरण कर रहा है। बाहुबलीकी यह प्रतिमा उनके केवलज्ञानसे कुछ पूर्वकी है क्योंकि इसमें गन्धर्वबालाएँ लताओंको हटाती हुई दीख पड़ती हैं। भरत द्वारा अपनी लघुता निवेदन करते ही बाहुबलीके मनसे जब यह विकल्प दूर हो गया कि वह जिस भूमिपर खड़े हैं, वह भरतकी है तो उसी क्षण उन्हें केवलज्ञान हो गया था।

तीसरे कोष्ठकमें परिकर सहित पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रामें खड़े हैं। बायीं ओर अलंकार-मण्डित पद्मावती देवी है तथा दायीं ओर अस्पष्ट धरणेन्द्र है। अधोभागमें अलंकृत दम्पती बैठा है।

इससे आगे एक स्तम्भमें एक ओर पद्मासन और दूसरी ओर खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। बायीं ओर हाथ जोड़े हुए दम्पती है तथा दायीं ओर भक्त श्रावक हैं।

इस गुफाके गर्भगृहमें भगवान् महावीरकी साढ़े पाँच फीट ऊँची अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके शिरोभागपर छत्रत्रय हैं। उनके ऊपर दुन्दुभिवादक है। उसके दोनों पार्श्वोंमें देव पुष्पवर्षा कर रहे हैं। भगवान्‌के दोनों ओर सौधर्म और ऐशानेन्द्र चमर लिये खड़े हैं।

इस मण्डपमें बाहरके दालानमें दायीं ओर दो ऊँचे छोटी गुफानुमा गर्भगृह हैं, जिनमें-से एकमें छह फीटकी अवगाहनामें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति है तथा ३ फीट १० इंच ऊँची तीर्थंकर-की एक अन्य मूर्ति है। दोनोंके साथ पारम्परिक परिकर है। पार्श्वनाथके बायीं ओर महिषारूढ़ पद्मावती तथा दायीं ओर सिंहारूढ़ धरणेन्द्र हैं। प्रथम गुफाके द्वारपर बायीं ओर गजारूढ़ मातंग

और दायीं ओर सिद्धायिका हैं। दोनों ही अलंकार धारण किये हुए हैं। इस बाह्य भित्तिमें ६ फीट ऊँची बाहुबली प्रतिमा है। परिकर बाहुबलीकी पूर्व वर्णित प्रतिमाके समान है। इसमें केवल भरत नहीं हैं।

इस मण्डपके पार्श्वमें दूसरा मण्डप है। इसमें प्रवेश करते ही बायीं ओर दालानमें १०-१० फीट ऊँची दो कायोत्सर्गासन मूर्तियोंके दर्शन होते हैं। मण्डप १६ स्तम्भोंपर आधारित है।

इसके गर्भगृहमें ४ फीट ५ इंच ऊँची पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। यह प्रतिमा महावीर स्वामीकी कही जाती है, यद्यपि इसके पादपीठपर कोई लांछन नहीं है। इसके सिरके ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं। दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र हैं। गर्भगृहके द्वारपर बायीं ओर मातंग यक्ष है। उसके बगलमें एक सेवक देव खड़ा है। दायीं ओर सिद्धायिका देवी ललितासनमें आसीन है। बायीं ओर एक सेविका देवी खड़ी है और दायीं ओर छत्र, चमर लिये हुए देव दम्पती हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें भगवान् पार्श्वनाथकी १२ फीट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। इससे आगेके पैनलमें एक पद्मासन प्रतिमा है। दायीं दीवारमें तीन कोष्ठक बने हुए हैं। पहले कोष्ठकमें अर्धपद्मासन प्रतिमा है। दूसरेमें बाहुबली स्वामी तपस्यामें लीन खड़े हैं। भरत सहित इसका परिकर पूर्ववत् है। तीसरे कोष्ठकमें आदिनाथ भगवान्‌की पद्मासन प्रतिमा है। इससे आगे बरामदेमें दायीं ओर एक गुफानुमा गर्भगृह है। जिसमें १० फीट ऊँचे एक शिलाफलकमें पद्मासन प्रतिमा है। एक स्तम्भमें खड्गासन प्रतिमा है। दायीं ओर ऊपर जानेवाली सीढ़ीके पास पार्श्वनाथ प्रतिमा है। पृष्ठ भागमें सर्पवलय है। इसके बायीं ओर पद्मावती और दायीं ओर धरणेन्द्र हैं। गर्भगृहके द्वारपर बायीं ओर गोमेद यक्ष और दायीं ओर अम्बिकाकी प्रतिमाएँ हैं। इससे आगे दायीं ओर दीवारमें बाहुबली स्वामीकी प्रतिमा है। इसमें भी माधवी लताएं हटाती हुईं देवियाँ प्रदर्शित हैं। इसके बगलमें भी एक गर्भगृह है। उसमें ५ फीट १० इंच ऊँची अर्धपद्मासन प्रतिमा है।

ऊपरी मंजिल—सीढ़ीपर ऊपर चढ़ते ही अम्बिका और गोमेद यक्षकी बड़ी भव्य अलंकृत मूर्तियाँ हैं। उनके सिरके ऊपर आम्रगुच्छक और आम्रवृक्ष हैं। यहाँका मण्डप २० स्तम्भोंपर आधारित है। इसके स्तम्भ सुडौल और अलंकृत हैं। दो स्तम्भोंमें तीन ओर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। मण्डपके मध्यमें एक चबूतरेपर एक पाषाण-खण्ड रखा है जो सम्भवतः सर्वतोभद्रिकाका पीठासन है। इसमें चरण बने हुए हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें क्रमशः यक्षी, दो पद्मासन तीर्थंकर, दो अर्धपद्मासन तीर्थंकर, ८ फीट ऊँची अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। उनसे आगेके दो कोष्ठकोंमें २-२ पद्मासन तीर्थंकर-प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृहमें ४ फीट ५ इंच ऊँची अर्धपद्मासन महावीरकी प्रतिमा है। गर्भगृहके द्वार-स्तम्भोंपर खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

सामने दीवारमें क्रमशः दो पद्मासन प्रतिमाएँ, स्तम्भमें १ प्रतिमा, फिर १२ फीट ऊँचे शिलाफलकमें पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। इसके पृष्ठभागमें सर्पवलय है। फणावलिके ऊपर दुन्दुभिवादक हैं, देव पुष्पवर्षा कर रहे हैं। बायीं ओर पद्मावती देवी तथा दायीं ओर सिंहारूढ़ धरणेन्द्र हैं। अधोभागमें भक्तदम्पती है।

गर्भगृहके द्वारसे आगे स्तम्भमें एक ओर खड्गासन तथा दूसरी ओर पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। आगे गोम्मटेश्वर बाहुबलीकी १२ फीट ऊँची कायोत्सर्गासन प्रतिमा है। इसके शीर्षपर छत्र हैं, देव पुष्पवर्षा कर रहे हैं। देवियाँ माधवी लताएँ हटा रही हैं। चक्रवर्ती भरत एक ओर हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। गोम्मटेश्वरके निकट हिरण, गाय, सर्प, सिंह आदि पशु बैठे हैं। लगता है,

तपस्वी बाहुबलीके निकटका वनप्रदेश अभयवन बन गया है। इनसे आगे पद्मासन प्रतिमा है। एक स्तम्भमें पद्मासन प्रतिमा है। फिर दो अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

इसी प्रकार दायीं ओरकी दीवारमें ५ कोष्ठक बने हैं, जिनमें मध्य कोष्ठकको छोड़कर शेष कोष्ठकोंमें दो-दो प्रतिमाएँ हैं तथा मध्य कोष्ठकमें १ प्रतिमा है। ये सभी अर्धपद्मासन हैं।

मण्डपमें-से एक कमरेमें होकर एक अन्य मण्डपमें जाते हैं। इसके द्वारपर एक ओर यक्ष तथा दूसरी ओर खण्डित यक्षी है। यह मण्डप १६ स्तम्भोंपर आधारित है। बायीं ओरकी दीवारमें ३ पैनल बने हुए हैं। मध्यके १२ फीट ऊँचे पैनलमें पार्श्वनाथ तथा शेष दोनों पैनलोंमें २-२ अर्धपद्मासन मूर्तियाँ हैं।

सामने गर्भगृहमें ४ फीट ५ इंच ऊँची अर्धपद्मासन प्रतिमा है। गर्भगृहके बाह्य स्तम्भोंमें खड्गासन तथा सामने दीवारमें १ पद्मासन तथा २ खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृहके द्वारसे आगे १ खड्गासन प्रतिमा है। उसके दोनों ओर पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इसी प्रकार दायीं ओर-की दीवारमें २ अर्धपद्मासन और १ खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

इस मण्डपमें सामने दीवारमें बने एक कमरेसे पुनः एक मण्डपमें जाते हैं। कमरेसे निकलने-पर दायीं ओर अम्बिका और बायीं ओर चक्रेश्वरी देवीकी बड़ी मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं। अम्बिका ललितासनसे बैठी है। उसके सिरके ऊपर आम्रस्तवक है। चक्रेश्वरी पद्मासनसे बैठी है। यह चतुर्भुजी है। इसके दो हाथोंमें चक्र हैं। बायें सिरेपर गजारूढ़ यक्ष है।

इस मण्डपमें १६ स्तम्भ हैं। इसके स्तम्भ भी बड़े सुडौल और अलंकृत हैं। यहाँ बायीं दीवारमें तीन पैनल बने हैं। पहले पैनलमें २ प्रतिमाएँ, मध्य पैनलमें खड्गासन पार्श्वनाथ और इधर-उधर २-२ अर्धपद्मासन तथा तीसरेमें दो अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। मण्डपके स्तम्भोंमें खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृहमें अर्धपद्मासन प्रतिमा है। सामने दीवारमें एक पैनलमें २ और दूसरे पैनलमें १ प्रतिमा है। दायीं दीवारमें तीन पैनल हैं। पहले पैनलमें २ प्रतिमाएँ हैं। दूसरे पैनलमें बाहुबलीकी प्रतिमा है। इस पैनलमें बाहुबलीके इधर-उधर दो खड्गासन तथा इसकी बायीं और दायीं दीवारोंमें २-२ प्रतिमाएँ एवं तीसरे पैनलमें दो अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

गुफा नं. ३३—यह गुफा जगन्नाथ सभा कहलाती है। यह दो-मंजिली है। गुफा नं. ३२ के एक कमरेमें-से इसकी दूसरी मंजिलमें जानेका मार्ग है अथवा गुफा नं. ३२ में सीढ़ीसे उतरकर गुफा नं. ३३ में प्रवेश-द्वारसे जा सकते हैं।

निचली मंजिल—बाहर बरामदा है। बरामदेमें बायीं ओर तीन पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं, किन्तु वे खण्डित या घिसी हुई हैं। बायें सिरेपर गोमेदकी विशाल खण्डित मूर्ति है। दायें सिरेपर अम्बिकाकी बड़ी मूर्ति है। देवी ललितासनमें सिंहपर बैठी हुई है। उसकी बायीं गोदमें एक बालक है। अम्बिकाका सिर और स्तन कटे हुए हैं। सिरके ऊपर एक आम्रवृक्ष है। उसपर तोते बैठे हैं। दो सेविकाएँ चमर धारण किये हैं। एक भक्त हाथ जोड़े खड़ा है। इसके बगलमें ९ पैनल हैं जो ३-३ की पंक्तिमें बने हैं। पैनल नं. १ में तीर्थंकर नेमिनाथ, उससे नीचे नं. २ में गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षी, उसके नीचे नं. ३ में खड्गासन मुद्रामें नेमिनाथ जहाँ पुरुष वरद मुद्रामें तथा स्त्रियाँ हाथ जोड़े हुए हैं। पैनल नं. ४ में दो पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ, नं. ५ में एक पद्मासन प्रतिमा, नं. ६ में भी एक पद्मासन प्रतिमा जो शिला टूट जानेसे खण्डित है। नं. ८ और ९ में भी एक-एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

मण्डपके स्तम्भोंमें भी तीर्थंकर-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। एक स्तम्भमें खड्गासन तीर्थंकर-प्रतिमाके साथ मुनियों और आर्यिकाओंकी ६-६ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ये सभी हाथ जोड़े हुए हैं।

मण्डपकी बायीं दीवारमें एक पैनलमें ५ फीट ५ इंच ऊँची अर्धपद्मासन प्रतिमा है। परिकरमें छत्र और चमरेन्द्र हैं। इससे आगे स्तम्भमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इससे अगले पैनलमें १२ फीटकी पार्श्वनाथ भगवान्‌की खड्गासन प्रतिमा है। परिकरमें कमठासुर कृत उपसर्ग प्रदर्शित हैं। अनेक असुर भगवान्‌को नाना प्रकारके भय दिखाकर ध्यानसे विचलित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। धरणेन्द्र फण फैलाकर भगवान्‌की रक्षा कर रहा है। निश्चय ही यह प्रतिमा भक्ति और वैरका समन्वित रूप है। इस प्रकारकी प्रतिमाएँ यहाँ और भी हैं। इससे आगे एक स्तम्भमें ऊपर-नीचे दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

गर्भगृहके प्रवेश-द्वारके दोनों ओर स्तम्भोंमें पद्मासन प्रतिमाएँ ऊपर-नीचे हैं। गर्भगृहमें अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

दायीं ओरकी दीवारमें ऊपर-नीचे ३ कोष्ठक बने हैं। इनमें क्रमशः २-२ और ३ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। आगे एक स्तम्भमें ३ प्रतिमाएँ हैं। इससे अगले पैनलमें ६ फीट ३ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। दोनों पार्श्वोंमें देवियाँ हैं, जिनके दोनों हाथोंमें चमर हैं। उससे आगेके स्तम्भमें दो अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। फिर एक कोष्ठक है जिसमें अर्धपद्मासन प्रतिमा है। दोनों ओर चमरवाहक हैं।

मण्डपके एक स्तम्भपर खड्गासन पार्श्वनाथकी प्रतिमा उत्कीर्ण है। बायीं ओर पद्मावती देवी दण्ड धारण किये है। दायीं ओर हाथ जोड़े हुए धरणेन्द्र है। उसकी बाँहमें कमण्डल लटका हुआ है।

इस गुफामें-से गुफा नं. ३४ में जानेका मार्ग है।

गुफा नं. ३४—इस गुफाके दूसरे भागमें, जिसमें सामनेसे प्रवेश करते हैं, ४ स्तम्भ हैं। बायीं ओरसे पहले स्तम्भमें वीणा लिये एक देवी प्रदर्शित है। ऊपर ४ देवियाँ नृत्य कर रही हैं। दूसरे स्तम्भमें एक देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है। ऊपर ४ देवियाँ नृत्य कर रही हैं। इस स्तम्भके पृष्ठ भागमें अलंकार धारण किये हुए यक्ष बैठा है। उसके हाथमें शक्ति है। स्तम्भके तीसरी ओर एक वीणावादिनी और नृत्यमुद्रामें ४ देवियाँ हैं। स्तम्भके चौथी ओर एक देवी त्रिभंग मुद्रामें पीठ किये हुए खड़ी है। तीसरे स्तम्भमें एक देवी नृत्यमुद्रामें खड़ी है। उसके पार्श्वमें एक बौना व्यक्ति चमर लिये खड़ा है। ऊपर २ स्त्रियाँ नृत्य कर रही हैं। इस स्तम्भके दूसरी ओर एक देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है और नृत्य कर रही ४ देवियाँ हैं। तीसरी ओर एक देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है और ३ देवियाँ नृत्य कर रही हैं। चौथी ओर एक देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है और ४ देवियाँ वीणावादन और नृत्य कर रही हैं। चौथे स्तम्भमें एक देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है और हाथमें बिजौरा फल लिये हुए है। इन सभी मूर्तियोंमें देहका गठन, शरीर-सौष्ठव और भंगिमा आदि इन सभी रूपोंमें कलाका पूरा निखार है। इस कलाका उद्भव साधारण छैनी-हथौड़ोंसे नहीं, शिल्पीकी कल्पना और निपुणतामें-से हुआ है।

बायीं ओर बरामदेमें गोमेद यक्ष ललितासनमें गजारूढ़ है। अलंकार धारण किये हुए है। वह एक हाथसे हाथीकी सूँड़ पकड़े है और दूसरे हाथमें बिजौरा फल लिये हुए है। उसके सिरके ऊपर वृक्ष है। दोनों ओर सेवक यक्ष-दम्पती है। यक्षी चमर लिये है। दायीं ओर अम्बिका देवी सिंहपर ललितासनमें बैठी है। उसके सिरके ऊपर आम्रगुच्छक है। उसके दोनों ओर यक्ष-दम्पती है। वृक्षके पास शार्दूल है। सिंहके निकट एक व्यक्ति खड़ा है। बायीं ओर एक भक्त स्त्री हाथ जोड़े हुए खड़ी है।

इस गुफाका मण्डप २० स्तम्भोंपर आधारित है। बायीं ओरकी दीवारमें ३ पैनल बने हैं।

प्रथम पैनलमें २ अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इससे आगे स्तम्भमें एक देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है। ऊपर ४ देवियाँ हैं। द्वितीय पैनलमें परिकर सहित खड्गासन पार्श्वनाथकी प्रतिमा है। इसके दोनों ओरकी दीवारोंमें २-२ अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। तीसरे पैनलमें २ अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

सामनेकी दीवारमें १ अर्धपद्मासन प्रतिमा है। गर्भगृहके बाह्य स्तम्भोंपर २ खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। गर्भगृहमें अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बाह्य स्तम्भसे आगे दीवार-में एक अर्धपद्मासन प्रतिमा है।

दायीं ओरकी दीवारमें ३ पैनल बने हुए हैं। पहले पैनलमें २ पद्मासन, दूसरेमें खड्गासन और अगल-बगलकी भित्तियोंमें २-२ पद्मासन तथा तीसरे पैनलमें २ अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

इस गुफाके स्तम्भ अलंकृत हैं। अलंकरण अत्यन्त कलापूर्ण है। गुफाके बाहर शिलाओंमें २ खड्गासन और २ पद्मासन मूर्तियाँ बनी हैं।

ऊपरी मंजिल—गुफा नं. ३२ से जो मार्ग आता है, उस द्वारके दोनों ओर पद्मासन और ऊपर खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इस मण्डपमें १६ स्तम्भ हैं। इस गुफाके स्तम्भ नं. ३२ के समान अलंकृत नहीं हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें ७ पैनल, १ कमरा और ३ स्तम्भ बने हुए हैं। इनमें अर्धपद्मासन, पद्मासन और खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं, जिनकी कुल संख्या २८ है।

गर्भगृहमें अर्धपद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृहकी बाहरी दीवारमें एक ओर गजारूढ़ धरणेन्द्र है तथा दूसरी ओर पद्मावती देवी है। इनके अतिरिक्त इस दीवारमें १३ तीर्थंकर प्रतिमाएँ और हैं।

इसी प्रकार दायीं ओरकी दीवार में २१ प्रतिमाएँ हैं। इस दीवारमें भी एक प्रकोष्ठ बना हुआ है।

इस मण्डपके बाहरकी ओर एक शिलामें एक देवी-मूर्ति बनी हुई है। किन्तु अब उसका केवल मुख और मुकुट शेष रह गया है। शेष भाग नष्ट कर दिया गया है।

दायीं ओरकी बाह्य दीवारमें ३ कोष्ठकोंमें ३ अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। मध्यमें पार्श्वनाथ हैं। ये भूरे वर्णके हैं। शेष दोनों प्रतिमाएँ काली पड़ गयी हैं।

गुफा नं. ३४ के बाहर एक जलकुण्ड है। इसमें पहाड़से जल झरता रहता है। इस गुफाके बाहर बरामदा बना हुआ है। मण्डपमें कुल ४ स्तम्भ हैं। बायीं ओरकी दीवारमें ३ पैनल बने हुए हैं। मध्य पैनलमें पार्श्वनाथकी प्रतिमा है तथा शेष दोनों पैनलोंमें २-२ प्रतिमाएँ हैं।

सामने दीवारमें गजारूढ़ यक्ष और सिंहारूढ़ यक्षी मूर्ति है। उसके एक हाथमें शक्ति है तथा दूसरा हाथ वरद मुद्रामें है। गर्भगृहमें अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

दायीं ओरकी दीवारमें पहले पैनलमें २ अर्धपद्मासन, दूसरे पैनलमें १ खड्गासन प्रतिमा है। इसके बायीं ओर चमरेन्द्र खड़ा है। दायीं ओरका भाग, तीसरा पैनल और स्तम्भ तोड़ दिये गये हैं।

इस मण्डपके स्तम्भ साधारण अलंकृत हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर

गुफा नं. ३० से उत्तरकी ओर एक कच्चा मार्ग पहाड़के ऊपर गया है जो पार्श्वनाथ मन्दिर तक जाता है। मार्ग चौड़ा है। लगभग ३ फर्लांग जानेपर पार्श्वनाथ मन्दिर आता है। इस

मन्दिरके लिए मेन रोडपर स्थित घृष्मेश्वर मन्दिरके बगलसे एक कच्चा मार्ग जाता है। लगभग दो फर्लांग चलकर फिर पक्की सीढ़ियाँ मिलती हैं। सीढ़ियाँ चढ़कर पार्श्वनाथ मन्दिर पहुँच जाते हैं।

मन्दिर आधुनिक है। यह प्राचीन मन्दिरके स्थानपर बनाया गया है। इसमें केवल मण्डप और गर्भगृह है। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति १६ फीट उत्तुंग श्यामवर्ण अर्धपद्मासन है। इसके शिरोभागके ऊपर नौफणावली सुशोभित है। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। कर्ण स्कन्ध तक नहीं हैं। पीठासनपर सामनेकी ओर सिंह और गज उत्कीर्ण हैं। मध्यमें सम्भवतः प्रतिष्ठाकारक दम्पती हाथ जोड़े बैठे हुए हैं। भगवान्‌के पीछे सर्पवलय है। बायीं ओर एक दाढ़ीवाला भक्त हाथ जोड़े बैठा है। भगवान्‌का सेवक यक्ष धरणेन्द्र खड़ा है। दायीं ओर भगवान्‌की सेविका यक्षी पद्मावती खड़ी है। तथा दो भक्त हाथ जोड़े बैठे हुए हैं। भगवान्‌के चरणोंके निकट पार्श्वनाथकी एक लघु प्रतिमा विराजमान है।

बाहर बरामदेमें मंगलकलश लिये दो भक्त खड़े हैं।

यह मन्दिर गुफाओंसे अलग एकान्तमें बना है। इस पर्वतको चारणाद्रि अथवा कनकाद्रि कहते हैं। इस सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि यहाँ प्राचीनकालमें चारण ऋद्धिधारी मुनि आकर तपस्या करते थे। अतः इस पर्वतका नाम 'चारणाद्रि' पड़ गया। यहाँका एकान्त, शान्तिपूर्ण वातावरण तपस्या और ध्यानके लिए अत्यन्त अनुकूल है। पार्श्वनाथ भगवान्‌की यह मूर्ति अत्यन्त सौम्य, प्रशान्त और गम्भीर है। इसके दर्शन करनेसे मनमें शान्ति और वीतरागता-का उद्रेक होने लगता है।

इस मूर्तिकी चरण-चौकीपर लेख अंकित है जिससे मूर्तिके निर्माता, निर्माणकाल आदि ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश पड़ता है। लेख इस प्रकार पढ़ा गया है—

'स्वस्ति श्री शाके ११५६ जय संवछरे फाल्गुन सुध तृतीय बुधे श्रीर्धनापुर जभा...जनि राणुगिः।

तत्पुत्रो महालुगिः स्वर्णवल्लभो जगतोप्यभूत् ॥१॥
ताभ्यां बभूवश्चत्वाराः पुत्राश्चक्रेश्वरादयः।
मुख्यश्चक्रेश्वरस्तेषु दानधर्मगुणोत्तरः ॥२॥
चैत्यं श्री पार्श्वनाथस्य गिरौ चारणसेविते।
चक्रेश्वरो सृजद्दानाद्घृताहुति च कर्मणां ॥३॥
बहूनि विम्बानि जिनेश्वराणां महानि तेनैव विरच्य सर्वतः॥
श्रीचारणाद्रिर्गमितः सुतीर्थतां कैलाशभूभृद् भरतेन यद्वत् ॥४॥
धर्मैकमूर्तिः स्थिरशुद्धदृष्टिः हृद्यो सतीवल्लभकल्पवृक्षः।
उत्पद्यते निर्मलधर्मपालश्चक्रेश्वरः पंचमचक्रपाणिः ॥५॥

इस मूर्ति-लेखमें बताया गया है कि शक संवत् ११५६ (ई. सं. १०७८) फाल्गुन सुदी ३ बुधवारको श्रीर्धनापुर (श्रीवर्धनपुर) के राणुगिके चार पुत्रोंमें-से ज्येष्ठ पुत्र चक्रेश्वरने चारणाद्रि पर्वतपर पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। उसने जिनेन्द्रदेवकी बहुत-सी मूर्तियाँ बनवायीं। इसके कारण चारणाद्रि तीर्थ बन गया जिस प्रकार भरत चक्रवर्ती द्वारा स्थापित मूर्तियोंके कारण कैलास तीर्थ बन गया। चक्रेश्वर वस्तुतः धर्ममूर्ति, सम्यग्दृष्टि, सर्वप्रिय, ब्रह्मचारियोंके लिए कल्प-वृक्षके समान, निर्मल धर्मपालक था।

इस लेखके अनुसार चक्केश्वरने इस पर्वतपर अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी, किन्तु उन मूर्तियोंकी पहचान नहीं हो पायी है।

पार्श्वनाथ मन्दिरके दर्शन करनेके बाद सीढ़ियोंसे उतरते हैं। लगभग ८० सीढ़ियाँ उतरने पर बायीं ओर एक गुफा मिलती है। उसमें मण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं। इसमें ६ यक्षों और ६ यक्षियोंकी मूर्तियाँ हैं। इस गुफाके बगलमें एक पाषाण-गज बना हुआ है। इसके द्वारपर द्वारपाल है। इससे आगे बढ़नेपर एक गुफा मिलती है जो खाली है। इससे आगे पुनः एक छोटी गुफा मिलती है। इसमें एक जलकुण्ड बना हुआ है। इसके दायीं और बायीं ओरकी दीवारोंमें तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इससे आगे बढ़नेपर एक गुफा मिलती है। इसके बाहर भूमितलपर एक द्वार बना हुआ है। इसमें जल भरा हुआ है।

गुरुकुल

क्षेत्रपर श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल स्थापित है। इसकी स्थापना आचार्य समन्तभद्रजी महाराजकी प्रेरणासे मुनिवर्य आर्यनन्दी महाराजके तत्त्वावधानमें श्रुतपंचमी दिनांक ७ जून १९६२ को की गयी थी। यह कारंजाके महावीर ब्रह्मचर्याश्रमकी शाखाके रूपमें कार्य कर रहा है। आचार्य समन्तभद्रजी द्वारा स्थापित अन्य गुरुकुलोंके समान प्रेम, ज्ञान, सेवा, शील और व्यवस्था यह पंचसूत्री ध्येय इस गुरुकुलका भी ध्येय है। यहाँ १०वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षाके अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। यहाँके गुरुमण्डलमें प्रायः इन्हीं गुरुकुलोंके स्नातक हैं जिन्होंने अपना जीवन इन संस्थाओंके लिए अर्पित कर दिया है। संस्थामें छात्रावास, विद्यालय भवन, अतिथिगृह, पुष्पवाटिका तथा निर्माणाधीन जिनालय सम्मिलित हैं।

क्षेत्रकी व्यवस्था

क्षेत्रकी सम्पूर्ण व्यवस्था गुरुकुलकी कार्य समितिके अन्तर्गत है। यहाँपर जितने गुहामन्दिर हैं, वे सब भारत सरकारके पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं। किन्तु पार्श्वनाथ मन्दिरपर जैन समाजका अधिकार है और उसकी व्यवस्था गुरुकुल समिति करती है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर या गुरुकुल परिसरमें अभी तक कोई पृथक् जैन धर्मशाला नहीं है। यात्रियोंको गुरुकुल भवनमें ठहरना पड़ता है अथवा औरंगाबाद शहरके शाहगंज मुहल्लेमें श्री चन्द्रसागर दिगम्बर जैन धर्मशालामें। दोनों ही स्थानोंपर नल और बिजलीकी सुविधा है। शाहगंज जैन धर्मशालाके निकट ही बस स्थानक है जहाँसे ऐलौराके लिए बसें जाती हैं।

मेला

श्री पार्श्वनाथ मन्दिर चारणाद्रिका वार्षिक मेला फाल्गुन कृष्णा १४ को होता है। उस दिन गुरुकुलसे भगवान्‌की पालकी निकलती है और पार्श्वनाथ मन्दिर जाती है। वहाँ भगवान्‌का अभिषेक और पूजा-पाठ होता है। इस अवसरपर लगभग ६-७ सौ व्यक्ति आ जाते हैं। माघ वदी १३ को शिवरात्रिके अवसरपर घृष्मेश्वर महादेव मन्दिरका मेला होता है। इस अवसरपर लगभग ५०००० हिन्दू आते हैं। ये लोग पार्श्वनाथ भगवान्‌के दर्शनोंके लिए भी जाते हैं।

दर्शनीय गुफाएँ

जैसा कि पूर्वमें निवेदन कर चुके हैं, यहांके गुफा-समूहमें क्रमांक १३ से २९ तककी गुफाएँ हिन्दुओंकी हैं। इनमें कैलास नामक गुफा जगत्प्रसिद्ध है। यह वास्तवमें मानव कृतिका चमत्कार कहा जाता है। इसका शिल्प और अलंकरण अत्यन्त सूक्ष्म और भव्य है। इस कलापूर्ण गुफाका निर्माण राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज प्रथम (ई. सं. ७५७-७८३) ने सन् ७५८ में प्रारम्भ किया था और इसका कार्य १५० वर्षमें पूरा हो पाया। इस प्रकारका उल्लेख क्रमांक १५ वाली गुफामें अंकित एक शिलालेखमें उपलब्ध होता है। इसके निर्माणके लिए १२५.६ × ४८.८ मीटर पर्वतको खोदना पड़ा। इसका मध्यभाग ५० × ३३ मीटर और ऊँचाई २९ मीटर है। इसमें शिव और विष्णु-परिवारसे सम्बन्धित अनेक मूर्तियां हैं। मूर्तियां सुडौल, भव्य और कलापूर्ण हैं।

इसी प्रकार गुफा नं. १ से १२ पर्यन्त बौद्धधर्मी गुफाएं हैं। अजन्ताकी जगद्विख्यात गुफाएँ अपने कलापूर्ण चित्रांकन और शिल्पके लिए आदर्श कृति मानी जाती हैं। उनका समय ईसा पूर्व द्वितीय शतीसे ७वीं शती तक माना जाता है। वहांकी कलाकी उस परम्पराको ऐलौराकी इन गुफाओंने जीवित रखा है। इन गुफाओंका निर्माण-काल ईसाकी ७वीं शतीसे ९वीं शती तक माना जाता है। इन गुफाओंमें क्रमांक १० 'सुतार झोंपड़ी' सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सुतार झोंपड़ी एक चैत्यगृह है, शेष गुफा विहार है। यह महायान सम्प्रदायके बौद्ध साधुओंके निवासके रूपमें प्रयुक्त होती थी। इसका सभामण्डप ८५ फीट लम्बा, ४४ फीट चौड़ा और ३४ फीट ऊँचा है। चैत्यगृहमें बुद्धकी एक मूर्ति ११ फीट ऊँची है।

दौलताबादका किला

औरंगाबादसे ऐलौराकी सुप्रसिद्ध गुफाओंकी ओर जाते समय वायव्य दिशामें १५ कि. मी. दूर बायीं ओर दौलताबादका सुप्रसिद्ध किला मिलता है। इतिहासमें इस किलेको मुहम्मद तुगलकके कारण विशेष ख्याति प्राप्त हुई, जब उसने दिल्लीसे अपनी राजधानी हटाकर देवगिरिके किलेको अपनी राजधानी बनानेकी घोषणा की और देवगिरिका नाम परिवर्तन करके इसका नाम दौलताबाद रखा। उसने अपने विचारको मूर्तरूप देनेके लिए दिल्लीके सम्भ्रान्त और सम्पन्न परिवारोंको तलवारकी नोकपर दौलताबाद चलनेके लिए बाध्य किया। दिल्लीके सम्पन्न परिवारोंका यह काफिला मरते-खपते दौलताबाद पहुँचा। लेकिन उस सनकी बादशाहने तबतक अपना पुराना विचार बदल दिया और पुनः उन्हें दिल्ली चलनेका आदेश दिया। ये परिवार मार्गके कष्टों और यातनाओंको सहते जब दिल्ली पहुँचे तो उनकी संख्या आधी रह गयी थी और उनकी सम्पत्ति डाकुओं और सैनिकों द्वारा लूट लिये जानेके कारण अत्यल्प शेष रह गयी थी। मुहम्मद तुगलककी इस सनक और क्रूर मजाकने दौलताबादका नाम जहाँ प्रसिद्ध कर दिया, वहाँ इतिहासने इस बादशाह को 'अर्धविक्षिप्त' कहकर सम्बोधित किया।

इस नगरका प्राचीन नाम देवगिरि था। हेमाद्रि (व्रतखण्ड) के अनुसार इस नगरकी स्थापना यादव वंशके नरेश भिल्लम पंचमने की थी और अपनी राजधानी देवगिरिमें स्थानान्तरित की। यह नरेश यादव वंशमें सूर्यके समान तेजस्वी था। यादववंशकी स्थापना द्वारावतीपुर नरेश सुबाहुके पुत्र द्रिधप्रहारने (नौवीं शताब्दीका पूर्वार्ध) की थी। इसकी राजधानी चन्द्रादित्यपुर

(नासिक जिलेका वर्तमान चान्दौर) थी। यादववंशी नरेश मान्यखेटके राष्ट्रकूट और कल्याणके चालुक्योंके तीन शताब्दी तक सामन्त रहे। किन्तु भिल्लमने सर्वप्रथम सार्वभौम राज्यकी स्थापना की। इसने सन् ११८५ में राज्यारोहण किया और सन् ११९३ के लगभग उसका देहान्त हो गया। इसने अपने इस अल्पकालिक शासन-कालमें दक्षिणमें चालुक्य नरेश सोमेश्वर चतुर्थ, डोरासमुद्रके होयसल तथा चोल नरेश कुलोत्तुंग तृतीय तथा उत्तरमें मालवनरेश परमार विन्ध्यवर्मन, गुजरात-के चौलुक्य भीम द्वितीय आदि अनेक शक्तिशाली राजाओंको पराजित करके उनके राज्यके अनेक नगरोंको अपने राज्यमें मिला लिया और अपने राज्यका बहुत विस्तार कर लिया।

भिल्लमने देवगिरि नगरकी स्थापनाके साथ अभेद्य दुर्गका भी निर्माण कराया क्योंकि उस कालमें राजधानी सुदृढ़ किलेमें ही स्थापित की जाती थी। उसके पुत्र जैतुगि या जैत्रपालके सन् ११९६ के शिलालेखमें देवगिरिका राजधानीके रूपमें सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है। भिल्लम जैनधर्मका अनुयायी था। इसने देवगिरिके दुर्गमें सहस्र स्तम्भवाला एक विशाल जैन मन्दिर बनवाया था।

यह मन्दिर अब भी वहाँ विद्यमान है। मुहम्मद तुगलकने इसे मसजिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया था। भारतके स्वाधीन होनेपर भारत सरकारने इसे भारतमाताका मन्दिर बना दिया। इस मन्दिरमें वर्तमानमें १५२ स्तम्भ हैं। मन्दिरका बहुभाग ध्वस्त हो चुका है और उसके स्तम्भ आदिका ढेर वहाँ पड़ा हुआ है। इस मन्दिरकी अनेक जैन मूर्तियाँ और मन्दिरके स्तम्भ, जिनमें जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, किलेके फाटकमें प्रवेश करनेपर खुले आसमानके नीचे मैदानमें रखे हुए हैं। इनमें स्तम्भोंके अतिरिक्त १९ जैन मूर्तियाँ हैं जो पद्मासन और कायोत्सर्गासनमें हैं। किलेकी एल दीवारमें भी एक जैन मूर्ति विराजमान है। सम्भवतः यह मूर्ति अम्बिकाकी है और उसके शीर्षभागपर नेमिनाथ तीर्थंकर विराजमान हैं। भारतमाता मन्दिरके स्तम्भों और छतोंमें धर्मचक्र आदि जैन प्रतीक दिखाई पड़ते हैं। जो पुरातत्त्व संग्रह मैदानमें है, वह भी इसी मन्दिरसे संग्रह किया गया है।

कुछ विद्वानोंकी धारणा है कि भिल्लम राजाका शासन-काल केवल ८-९ वर्ष ही रहा था। इतने अल्प कालमें वह इतना विशाल और सुदृढ़ किला नहीं बना सकता था। इस किलेका निर्माण राष्ट्रकूट वंशके किसी राजाने ९-१०वीं शताब्दीमें किया था। यह भी कल्पना की गयी है कि देवगिरिके निकट शूलिभंजनमें आचार्य जिनसेनने जयधवलाका शेष भाग लिखा था। उनके निकट ही अमोघवर्षने शिक्षा प्राप्त करके मान्यखेटको अपनी राजधानी बनाया था। वह जैन धर्मानुयायी था। सम्भवतः उसीने या अन्य किसी राष्ट्रकूटवंशी राजाने इस दुर्गका निर्माण किया था, किन्तु इस प्रकारका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। फिर यह भी सिद्ध करना होगा कि उस राष्ट्रकूट नरेशके कालमें देवगिरि विद्यमान था अथवा उस राजाने देवगिरि नगरकी स्थापना की थी।

एक अन्य विद्वान्की सम्मतिके अनुसार वर्तमान भारतमाता मन्दिर मूलतः जैन मन्दिर था, उसका नाम 'लावण्य प्रासाद' था, उसे पुष्कल धन व्यय करके उज्जैनके श्रेष्ठी पृथ्वीधरने बनवाया था। उज्जैनके जैन मन्दिरमें सद्रत्न मण्डलगणि कृत पृथ्वीधर चरित नामक ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। उसके आधारपर मन्दिर-निर्माणकी कल्पना की गयी है। किन्तु इस ग्रन्थकी प्रामाणिकता सिद्ध करना अभी शेष है। अस्तु।

इस किलेमें शिल्प संग्रह, हाथी हौज, बुर्ज, भारतमाता मन्दिर, मीनार, कालकोट, निजामशाही राजवाड़ा, मेंढ़ा तोप, खाई, बारहदरी, मोतीझील आदि वस्तुएँ दर्शनीय हैं।

औरंगाबादकी गुफाएँ

मार्ग और अवस्थिति

औरंगाबाद महाराष्ट्रका (मराठवाड़ा) प्रसिद्ध ऐतिहासिक और औद्योगिक शहर है। यह मनमाड-काचीगुड़ा रेलवे (एस. सी. रेलवे एम. जी.) लाइनपर एक प्रसिद्ध स्टेशन है। यह जिलेका सदर मुकाम है। विख्यात ऐलौरा गुफाएँ इसके बिलकुल निकट (२९ कि. मी.) हैं तथा अजन्ताकी गुफाएँ यहाँसे लगभग ९० कि. मी. हैं।

सन् १६१० में अबीसीनियाके मलिक अंबर उर्फ सैद अंबरने खिड़कीके निकट एक गाँव बसाया, जिसका नाम फत्तेनगर रखा गया। सन् १६२६ में अहमदनगरके राजाने उसपर अधिकार कर लिया। सन् १६३७ में यह मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित हो गया। सन् १६३५ से १६५३ तक औरंगजेब यहाँ सूबेदार बनकर रहा था। उसके नामपर इस गाँवका नाम औरंगाबाद हो गया। औरंगजेबकी मृत्यु होनेके पश्चात् प्रथम निजाम आसफशाहने इसे स्वतन्त्र करके इसे अपने राज्यमें मिला लिया और हैदराबादको राजधानी बनाया।

यहाँ औरंगजेबकी बेगम दिलरसबानूका मकबरा, जो ताजमहलकी शैलीपर बना है, तथा पनचक्की आदि कई चीजें दर्शनीय हैं। यह मकबरा रजिया बेगमका कहलाता है।

निपट निरंजन गुफाएँ

बेगमपुरा मुहल्ला अथवा मकबरेसे उत्तरकी ओर लगभग ५ कि. मी. दूर १० गुफाएँ हैं। मकबरेसे आगे चलनेपर गुफाओंकी राहमें निपट निरंजन महादेवका एक मन्दिर बना हुआ है। उसीके नामपर ये गुफाएँ या लेणी 'निपट निरंजन गुफाएँ' कहलाती हैं। इन १० गुफाओंमें ५ गुफाओंका समूह उत्तरकी ओर है और ५ गुफाओंका समूह दक्षिणकी ओर है। बायीं ओरकी गुफाओंमें प्रथम गुफा ७ फीट लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इसमें एक चबूतरेपर ६ फीट ८ इंच ऊँची और ५ फीट चौड़ी भगवान् अरनाथकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। ऊपर दोनों कोनोंमें पुष्पमाला लिये देव प्रदर्शित हैं। तथा अधोभागमें चमरेन्द्र हैं। इस गुफामें केवल यही एक जैन मूर्ति है, शेष मूर्तियाँ दीवारोंपर उत्कीर्ण हैं। वे बुद्ध धर्मकी हैं।

इससे आगे दो गुफाओंमें बौद्ध मूर्तियाँ हैं। चौथी गुफामें, जो अधबनी है, भित्तियोंपर बौद्ध मूर्तियाँ बनी हुई हैं। बायीं ओर एक पद्मासन जिनमूर्ति है। उसके दोनों पार्श्वोंमें चमरधारी इन्द्र हैं। सबसे अन्तिम गुफा (क्रमसंख्या १) में दालानके बाह्य स्तम्भोंके शीर्ष भागमें अम्बिका, पद्मावती आदि जैन देवियाँ उत्कीर्ण हैं। यहाँ इस गुफा-गुच्छकमें जैन और बौद्ध कलाका अद्भुत संगम दिखाई पड़ता है। वास्तवमें यह तत्कालीन धर्म-सहिष्णुताकी एक बेजोड़ मिसाल है।

इस गुफा-समूहके पृष्ठ भागमें भी ५ गुफाओंका समूह है। गुफा नं. ६ में बौद्ध मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसके गर्भगृहकी पृष्ठ दीवारमें बायीं ओर कमरेमें एक पद्मासन तीर्थंकर-मूर्ति है। (सर्वेक्षणके अवसरपर मूसलाधार वर्षा होनेके कारण इससे आगेकी गुफाओंका निरीक्षण नहीं किया जा सका)। इनमें कई गुफाएँ दो-मंजिली हैं। ये गुफाएँ पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं।

औरंगाबाद शहरसे यहाँ तक पक्की सड़क बनी हुई है। तांगे और स्कूटर मिलते हैं।

शहरके जैन मन्दिर

यहाँ शहरमें मुख्य ४ मन्दिर हैं। (१) शान्तिनाथ मन्दिर—पहले इसमें काष्ठासंघी भट्टारकोंका पीठ था। इसमें मुनियोंके ध्यानाध्ययनके लिए कमरे भी बने हुए हैं। यह सर्राफा

बाजारमें है। (२) जैन मन्दिर—यह भी सर्राफा बाजारमें है। इस मन्दिरमें भोंयरा भी है। यहाँ संवत् १२७२ और १३४५ की कई मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ किसी प्राचीन जैन मन्दिरकी थीं। उस मन्दिरके व्यवस्थापक पहले तो जैन थे, किन्तु उन्होंने जैनधर्म त्यागकर अन्य धर्म अपना लिया। ऐसी स्थितिमें भगवान्की पूजा-सेवा भी नहीं हो पाती थी। उन्होंने मन्दिरको किरायेपर उठा दिया। तब जैनबन्धु वहाँकी मूर्तियाँ इस मन्दिरमें ले आये। (३) खण्डेलवाल जैन मन्दिर—यह किराना बाजारमें है। इसमें संवत् १५४८ से प्राचीन कोई प्रतिमा नहीं है। (४) यह मन्दिर सैतवालोंका है। इसमें चन्द्रप्रभ भगवान्की एक प्रतिमा संवत् १५४८ की है। शेष प्रतिमाएँ इसके बादकी हैं।

सवाई दिगम्बर जैन मन्दिरमें ऊपर तथा भोंयरेमें कुल मिलाकर १६९ मूर्तियाँ हैं। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी एक मूर्ति ऊपरके भागमें तथा कई मूर्तियाँ भोंयरेमें हैं जिनका प्रतिष्ठा-काल संवत् १२७२ माघ सुदी ५ है। यहाँ संवत् १३४५ और १५४८ की भी मूर्तियाँ हैं। यहाँ पीतलका एक सहस्रकूट (?) जिनालय है। इसमें ७ कटनियाँ और गन्धकुटी बनी हुई हैं। इसमें चारों दिशाओंमें ६९×४=२७६ मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

पैठण

मार्ग और अवस्थिति

श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पैठण महाराष्ट्र प्रान्तके औरंगाबाद जिलेमें औरंगाबादसे दक्षिणमें ५१ कि. मी. दूर गोदावरीके उत्तरी तटपर अवस्थित है। औरंगाबादसे नियमित बस-सेवा है। पक्की सड़क है। जैन मन्दिर गोदावरीसे पर्याप्त ऊँचाईपर अवस्थित है, इसलिए नदीमें बाढ़के समय भी यह सुरक्षित रहता है।

इस नगरका प्राचीन नाम प्रतिष्ठान था। प्राचीन कालमें प्रतिष्ठान नामके दो नगर थे—(१) प्रस्तुत प्रतिष्ठान, जिसका वर्तमान नाम पैठण है। यह अश्वक (महाराष्ट्र) की राजधानी था। (२) प्रतिष्ठानपुर, जिसे वर्तमानमें झूँसी भी कहा जाता है और जो इलाहाबादके पास है। यह पुरुरवा आदि चन्द्रवंशी नरेशोंकी राजधानी था।

प्राचीन कालमें यह नगर (पैठण) आन्ध्र राज्यका मुख्य व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ जल और थल दोनों ही मार्गोंसे व्यापार होता था।

अतिशय

सत्रहवीं शताब्दीके भट्टारक अजितकीर्तिके शिष्य चिमणा पण्डित यहाँ रहते थे। वे मराठी भाषाके विद्वान् कवि थे। यहाँ हिन्दू धर्मके महान् सन्त एकनाथजी तथा मुसलमानोंके प्रमुख मौलानासे उनकी मित्रता थी। इनके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुत प्रचलित है। कहा जाता है कि एक दिन तीनों विद्वान् बैठे हुए धर्म-चर्चा कर रहे थे। उनमें-से किसीने चिमणा पण्डितसे पूछा—"आज कौन-सी तिथि है?" पण्डितजीके मुखसे निकल गया—"आज पूर्णमासी है।" जबकि वास्तवमें उस दिन अमावस्या थी। उत्तर सुनकर दोनों विद्वान् मित्र हँस पड़े। किन्तु पण्डितजी बार-बार कहते रहे—"आज पूर्णमासी है।" तब निश्चय हुआ कि इसका निर्णय रात्रिमें हो जायेगा।

पण्डितजीको अपनी भूल ज्ञात हुई तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे भगवान् मुनिसुव्रतनाथके सामने बैठे और भगवान्की आराधना करने लगे। रात्रि हुई तो सबने आश्चर्यसे देखा कि पैठणके ऊपर आकाशमें पूर्णचन्द्र खिला हुआ है और पैठणका सम्पूर्ण नगर, नदी-तट और वन-प्रान्त ज्योत्स्नासे चमक रहा है।

इस प्रान्तमें जैन और जैनेतर जनतामें यहाँके मुनिसुव्रतनाथ भगवान्के नानाविध अतिशयोंकी नानाविध किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। फलतः अमावस्या और प्रति शनिवारको अनेक लोग यहाँ आते हैं और मुनिसुव्रतनाथके समक्ष मनौती मनानेसे उनकी व्यन्तरबाधा, नाना प्रकारके रोग और चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं।

एक प्राचीन गाथा

पैठणका प्राचीन नाम प्रतिष्ठान था। प्रतिष्ठानमें २००० वर्ष से कुछ पूर्व सातवाहन (जिसे शालिवाहन भी कहते हैं) नामक राजा हुआ था। इस राजाके सम्बन्धमें श्वेताम्बर और हिन्दू साहित्यमें नाना प्रकारकी कथाएँ और किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। ये किंवदन्तियाँ इतिहासकी दृष्टिसे भले ही मान्य नहीं हैं, किन्तु ये अत्यन्त रोचक हैं। यहाँ श्वेताम्बर साहित्यमें वर्णित सातवाहन नरेशका जीवन-परिचय दिया जा रहा है जो किंवदन्तियोंपर आधारित है। इसे पढ़कर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इस परिचयमें इतिहासका अंश नहीं है, यदि है भी तो बहुत अल्प।

दक्षिण भारतमें महाराष्ट्र प्रान्तमें प्रतिष्ठान नामक एक प्रसिद्ध नगर था। एक बार दो ब्राह्मण भाई किसी ग्रामसे आकर अपनी विधवा बहनके पास किसी कुम्हारकी शालामें रहने लगे। वे भिक्षा द्वारा अपनी और अपनी बहनकी उदर-पूर्ति करने लगे। एक दिन उनकी बहन जल लानेके लिए गोदावरी नदीपर गयी। वहाँ अन्तर्ह्रदवासी नागराज शेषने उस सुन्दरीको देखा। उसके रूप और यौवनसे कामासक्त होकर नागराजने मनुष्यका रूप धारण करके उस सुन्दरीके साथ बलात् सम्भोग किया तथा चलते समय उसे वचन दे दिया—"भद्रे! जब कभी तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति आवे, तब तुम यहाँ आकर मुझे स्मरण करना, मैं तुम्हारी विपत्तिका निवारण करूँगा।" यद्यपि नागराजका शरीर सप्तधातु रहित था, किन्तु उसकी दैवी शक्तिके कारण उस सुन्दरीके गर्भ रह गया।

धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा। गर्भके लक्षणोंको देखकर दोनों भाइयोंके मनमें नाना प्रकारकी शंकाएँ घर करने लगीं; यहाँ तक कि वे एक दूसरेको भी शंकाकी दृष्टिसे देखने लगे। दोनोंके लिए यह स्थिति असह्य होने लगी, अतः एक दिन वे किसीसे कुछ कहे बिना भिन्न दिशाओंमें चले गये। उनके जानेके पश्चात् बहन लज्जासे डूबी हुई किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करने लगी। समय पूर्ण होनेपर उसने राजलक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। बाल्यावस्थामें वह अन्य बालकोंके साथ विभिन्न क्रीड़ाएँ किया करता था, किन्तु उन क्रीड़ाओंमें अन्य बाल-क्रीड़ाओंसे विशेषता रहती थी। क्रीड़ा करते समय वह सदा राजा बनता था तथा अपने साथी बालकोंको अश्व, रथ, गज आदि बनाकर उनपर सवारी किया करता तथा दूसरे बालकोंको उनका दान करता था। इसके कारण उसका नाम सातवाहन पड़ गया। उस बालकका एक अन्य खेल भी था। वह बैठे-बैठे मिट्टीके हाथी, घोड़े, रथ और सैनिक बनाया करता था।

उस समय उज्जयिनीमें विक्रमादित्य नरेश राज्य कर रहा था। निमित्तज्ञोंने एक दिन उससे कहा—"देव! प्रतिष्ठानमें सातवाहन नामक बालक उत्पन्न हो गया है। वह आपका शत्रु होगा एवं आपके लिए कण्टकरूप सिद्ध होगा। राजा सुनकर चिन्तित हो उठा। तभी एक और घटना हो गयी। उज्जयिनीमें एक वृद्ध गृहपतिने अपनी मृत्यु आसन्न जानकर अपने चारों पुत्रोंको बुलाया और उनसे बोला—"मेरी मृत्युके पश्चात् मेरी शय्याके दक्षिण पादसे प्रारम्भ करके शय्याके चारों पायोंके नीचे निधि कलश गड़े हुए हैं। तुम लोग उन्हें निकालकर चारों भाई अवस्था-क्रमसे एक-एक कलश ले लेना। तुम्हारे जीवन-निर्वाहके लिए वे यथेष्ट होंगे।

यथासमय वृद्धकी मृत्यु हो गयी। तेरह दिन पश्चात् शुद्धि होनेपर चारों भाइयोंने वह स्थान खोदा तो उन्हें चार कलश मिले। उनमें एकमें स्वर्ण भरा था, दूसरेमें मिट्टी, तीसरेमें भूसा और चौथेमें हड्डियाँ भरी हुई थीं। कोई उनका उद्देश्य नहीं समझा। तीनों छोटे भाई बड़े भाईसे लड़ने-झगड़ने लगे और सोनेका बँटवारा करनेकी जिद करने लगे। जब आपसमें मामला नहीं निबटा तो वे चारों राजदरबारमें पहुँचे और राजासे न्याय करनेकी प्रार्थना की। राजा उन कलशोंका आशय नहीं समझा, अतः कोई निर्णय नहीं दे सका। तब वे चारों भाई न्याय प्राप्त करनेके लिए महाराष्ट्रको चल दिये। वे प्रतिष्ठान नगरमें पहुँचे और नगरके बाहर कुम्भकार शालामें जाकर ठहर गये। बालक सातवाहन उन चारों बन्धुओंकी चेष्टाएँ देखकर बोला—"ब्राह्मण देवो! आप चिन्ताकुल क्यों दिखाई पड़ रहे हैं?" बालककी बात सुनकर ब्राह्मण बोले—"कुमार! तुमने कैसे जाना कि हम लोग चिन्तित हैं।" बालक मुसकराकर कहने लगा—"मनुष्यके मुखके भाव और चेष्टाओंसे उसके मनके सब भाव ज्ञात हो जाते हैं। आप लोग मुझे अपनी चिन्ता बताइए, मैं उसका समाधान करूँगा।" ब्राह्मण बन्धुओंने समझ लिया कि बालक साधारण बालकोंसे भिन्न और बुद्धिमान् है। इसे अपनी समस्या बतानेमें क्या हानि है। यह सोचकर उन्होंने बालकको सारी बात बतायी और कहा कि इसका समाधान कर सकते हो तो करो। बालक सुनकर पुनः मुसकराया और कहने लगा—"यह क्या कठिन है। मैं आपके झगड़ेका समाधान बताता हूँ, आप लोग सुनें। जिसे स्वर्णसे भरा कलश मिला है, वह उससे अपना काम चलावे। जिसके कलशमें मिट्टी है, वह जमीन और मकानका मालिक होगा। जिसका कलश भूसेसे परिपूर्ण है, वह भण्डारमें सुरक्षित सम्पूर्ण धान्यका अधिकारी होगा। इसी प्रकार जिसके कलशमें हड्डियाँ निकली हैं, वह गाय, भैंस, घोड़े, दास-दासी आदि जीवित पदार्थ ले।

यह निर्णय सुनकर चारों भाई बड़े प्रसन्न हुए और सन्तुष्ट होकर उज्जयिनी लौट गये। वहाँ उन्होंने एक बालक द्वारा किये गये समाधानकी चर्चा लोगोंसे की। जिसने भी यह निर्णय सुना, वही बालककी प्रशंसा करने लगा। उस निर्णयकी चर्चा महाराज विक्रमादित्यके कानों तक भी पहुँची। महाराजने उन चारों ब्राह्मण बन्धुओंको राजसभामें बुलाकर पूछा—"भद्रजनो! सुना है, आप लोगोंके विवादका सन्तोषकारक समाधान हो गया। कौन है वह बुद्धिमान् महाभाग जिसने इतना तर्कसंगत और न्यायपूर्ण निर्णय दिया है?" ब्राह्मण बन्धुओंने निर्णय सुनाते हुए निवेदन किया—"देव! यह निर्णय किसी वृद्धने नहीं दिया, अपितु एक बुद्धिमान् बालकने दिया है। वह प्रतिष्ठानपुरका निवासी है और उसका नाम सातवाहन है।"

सातवाहनका नाम सुनते ही महाराज विक्रमादित्य चिन्तामें निमग्न हो गये। उन्हें निमित्तज्ञोंकी भविष्यवाणीका स्मरण हो आया। बाल्यावस्थामें ही उस बालककी इस कुशाग्रबुद्धि और विवादोंका उचित निर्णय करनेकी असाधारण क्षमताके कारण महाराज विक्रमादित्यको भय होने लगा कि यह बालक एक दिन कहीं मेरी सत्ताको ही चुनौती न देने लगे। उन्होंने

सोचा—विषवृक्षको बढ़नेसे पूर्व ही नष्ट कर देना बुद्धिमत्ता होगी। और फिर सेनापतिको बुलाकर आदेश दिया—"तुरन्त सेना लेकर प्रतिष्ठानपुरको घेर लो और बालक सातवाहनको नष्ट कर दो।"

आदेश पाते ही सेनापति चतुरंगिणी सेना लेकर प्रतिष्ठानपुर जा पहुँचा। महाराज विक्रमादित्य अपने राजगजपर आरूढ़ थे। नगरवासी इतनी विशाल सेनाको देखकर भयभीत भी थे और आश्चर्यचकित भी। सभी विस्मयमें पड़े हुए थे—"हमारे नगरमें कोई राजा नहीं है, फिर अवन्ती नरेशने अपने सम्पूर्ण सैन्यबलको लेकर हमारे इस छोटे-से नगरके विरुद्ध यह अभियान क्यों किया है?" तभी एक राजदूत बालक सातवाहनके निकट पहुँचकर बोला—"बालक! महाराज तुझपर कुपित हैं। वे कल प्रातःकाल तेरा वध करेंगे। तुझे युद्धके लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

राजदूतकी बात सुनकर बालकके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह पूर्ववत् निर्भय होकर अपने खेलमें लगा रहा। जब उसकी माताको यह विदित हुआ तो गहन चिन्तामें डूब गयी। उसके दोनों भाइयोंको भी अपनी बहनके गर्भके सम्बन्धमें वास्तविकताका पता चल गया था, अतः वे दोनों पुनः प्रतिष्ठानमें लौट आये थे। वे अपनी बहनसे बोले-"बहन! जिसने तुझे पुत्र दिया था, उस देवसे अपनी चिन्ता कह। वही तेरी सहायता करेगा।" बहनको यह सुनकर नागराजके आश्वासन-वचन याद आ गये। वह तत्काल गोदावरी नदीके उस नागह्लदपर पहुँची। उसने नागराज शेषका ध्यान किया। तत्काल नागराज प्रगट हुए और बोले—"मुझे तुमने क्यों स्मरण किया।" ब्राह्मण-कन्याने सिरपर मँडराते हुए संकटकी बात बतायी। सुनते ही नागराज क्षुब्ध होकर बोले—"अवन्तिराजका इतना साहस कि वह मेरे पुत्रका ही वध करना चाहता है। तू निर्भय रह और यह अमृत घट ले। इसमें-से कुछ अमृत पुत्रके मिट्टीके खिलौनोंपर छिड़क देना। वे सब सजीव हो उठेंगे। वे ही अवन्तीकी सेनासे युद्ध करके उसे पराजित करेंगे। तेरा पुत्र प्रतिष्ठान-का नरेश बनेगा। उसका राज्याभिषेक इस घटके अवशिष्ट अमृतसे ही करना। जब तू मुझे स्मरण करेगी, मैं तत्काल आऊँगा।" यों कहकर नागराजने अमृत घट उसे दिया और अन्तर्धान हो गये।

ब्राह्मणीने घरपर जाकर मिट्टीके खिलौनोंके ऊपर अमृत छिड़का तो वे खिलौने सजीव साकार हो उठे। उन्होंने अवन्तिनरेशकी सेनासे युद्ध किया। परिणाम यह हुआ कि अवन्तीकी सेना और महाराज विक्रमादित्य पराजित हुए और अपने प्राणोंको लेकर भागे। प्रतिष्ठानमें सातवाहनका राज्याभिषेक किया गया। अभिषेकमें घटका अमृत ही प्रयुक्त किया गया। राज्या-सीन होनेपर सातवाहनने प्रतिष्ठानमें अनेक प्रासादों, हर्म्यों, कोट, परिखा, राजपथों, पण्यागारों, हाटों आदिका निर्माण किया। उस समय प्रतिष्ठान व्यापारका एक प्रमुख केन्द्र बन गया। सुदूर देशोंसे बड़े-बड़े पोत और सार्थ वहाँ आते और वहाँसे जाते थे। हिरण्य, सुवर्ण, धन और धान्यसे यह नगर सम्पन्न था। दक्षिणापथमें इसके वैभवकी समता नहीं थी।

सातवाहन एक प्रबल पराक्रमी वीर था। उसने थोड़े ही कालमें सम्पूर्ण दक्षिणापथको अपने आधीन कर लिया तथा तापी तक उत्तरापथका भाग उसके अधिकारमें आ गया। उसने जैनधर्म धारण कर लिया और अनेक जिनालयोंका निर्माण कराया। उसकी सभामें विख्यात ५० वीर रहते थे। उन्होंने भी अनेक जिनालयोंका निर्माण कराया। इस प्रकार सातवाहन नरेशके कारण प्रतिष्ठानकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी।

अनेक विद्वानोंका मत है कि इसी सातवाहनने शक संवत्का प्रचलन किया था।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रके मुख्य द्वारसे प्रवेश करनेपर दायीं ओर विशाल मन्दिर है। मूलनायक भगवान् मुनिसुव्रतनाथके नामपर यह मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर कहलाता है। क्षेत्रसे गोदावरी नदी थोड़ी-सी दूर है। मन्दिर दो-मंजिला है। एक भूगर्भगृह और दूसरा ऊपरकी मंजिल। भूगर्भगृह आधुनिक बना हुआ है और उसमें प्रकाश और वायुकी समुचित व्यवस्था है। सम्पूर्ण मन्दिरका जीर्णोद्धार हो चुका है। अतः यह नवीन दिखाई पड़ता है और किसी रूपमें इसमें प्राचीनताके दर्शन नहीं होते, यद्यपि यह मन्दिर पर्याप्त प्राचीन था ऐसा माना जाता है। इस मन्दिरमें कुल ५० मूर्तियाँ हैं। इनमें १५ मूर्तियाँ श्याम पाषाणकी, २२ मूर्तियाँ श्वेत पाषाणकी, २ मूर्तियाँ बादामी पाषाणकी, ९ मूर्तियाँ धातुकी तथा १ सहस्रकूट जिनालय है। इनके अतिरिक्त १ मूर्ति मूलनायककी है। मूलनायकको छोड़कर शेष मूर्तियोंमें प्राचीनतम मूर्ति संवत् १५२८ की एक पाषाण-चौबीसी तथा संवत् १५३१ की एक धातु चौबीसी है।

मूलनायक भगवान् मुनिसुव्रतनाथ तलघरकी एक खुली वेदीमें विराजमान हैं। यह प्रतिमा श्याम वर्ण है, लेपदार है, अर्धपद्मासन मुद्रामें है तथा इसकी अवगाहना ३ फीट ७ इंच है। इसके कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं, वक्षपर श्रीवत्स है। केशोंकी तीन पट्टियाँ अलंकृत हैं तथा हाथकी हथेलीपर भी श्रीवत्स बना हुआ है। इसकी चरण-चौकीपर कच्छप लांछन अंकित है जो मुनिसुव्रतनाथका लांछन है।

इसके आगे विधिनायक मुनिसुव्रतनाथकी ८ इंच ऊँची और वीर संवत् २४८० में प्रतिष्ठित पीतलकी प्रतिमा है। इसी कालकी पार्श्वनाथकी पीतलकी एक मूर्ति १० इंचकी विराजमान है।

ऊपरकी मंजिल—यहाँ बड़ी वेदीपर भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी ३ फीट २ इंच ऊँची संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह वेदी ५ दरकी है। इसमें कुल ३१ मूर्तियाँ विराजमान हैं।

सभामण्डपमें बायीं ओर बादामी वर्ण की ५ फीट ३ इंच ऊँची एक पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इस मण्डपमें एक दरकी एक अन्य वेदी है। इसमें भगवान् आदिनाथकी बादामी वर्णकी संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित और ३ फीट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इस वेदीपर ६ धातुकी और १ पाषाणकी और भी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बायीं ओरकी एक भित्ति-वेदीमें २ खड्गासन तथा दायीं ओर १ फुट ११ इंच उत्तुंग २ खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। जिस पीठासनपर ये खड़ी हैं, उनमें चिह्न बादमें उकेरे गये हैं। उनके अनुसार बायीं ओरकी प्रतिमा मल्लिनाथकी तथा दायीं ओरकी प्रतिमा आदिनाथकी है। इसी प्रकार दायीं ओर दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं जो क्रमशः महावीर और नेमिनाथकी हैं।

ऊपर शिखर-वेदीमें चबूतरेपर पार्श्वनाथकी शक संवत् १६७४ की १ फुट ३ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

मन्दिरके आगे मानस्तम्भ है। तीन ओर धर्मशाला बनी हुई है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर ४ धर्मशालाएँ हैं जिनमें कुल ३० कमरे हैं। यहाँ बिजली, नल, बरतनों और लगभग १०० बिस्तरोंकी व्यवस्था है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला चैत्र शुक्ला १५ को होता है। इस अवसरपर भगवान्‌की पालकी निकलती है। सन् १९७४ में यहाँ पंचकल्याणक जिन-बिम्ब प्रतिष्ठा हुई थी, जिसमें लगभग ३ लाख व्यक्ति सम्मिलित हुए थे।

क्षेत्रका पता—

मन्त्री, श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र,
पो. पैठण (जिला औरंगाबाद) महाराष्ट्र

नवागढ़

मार्ग और अवस्थिति

श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नवागढ़—उखलद महाराष्ट्र प्रान्तके परभणी जिलेमें अवस्थित है। यह मनमाड़-काचीगुड़ा रेलवे लाइनपर (S. C. Rly) मिरखेल स्टेशनसे उत्तर दिशामें ३ कि. मि. की दूरीपर है। स्टेशनसे क्षेत्र तक सड़क है। क्षेत्रपर पहले सूचना भेजनेपर बैलगाड़ीका प्रबन्ध हो जाता है। अन्यथा स्टेशनपर कोई वाहन नहीं मिलता। क्षेत्र जंगलमें स्थित है। यहाँसे दो फर्लांगकी दूरीपर (स्टेशनसे आते हुए रास्तेमें) पिंपरी गाँव है। वहाँ १० घर जैनोंके हैं। यहीं पर पोस्ट-ऑफिस है। क्षेत्रसे पूर्णानदी १ मील दूरी पर बहती है।

अतिशयपूर्ण इतिहास

पहले यह क्षेत्र पूर्णानदीके तटपर अवस्थित था। मन्दिर पाषाणका बना हुआ था। ५० वर्ष पूर्व नदीमें भयंकर बाढ़ आनेसे मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु मूर्तियाँ बच गयीं। तब मूर्तियोंको क्षेत्रके वर्तमान स्थानपर लाकर रख दिया गया। प्रयत्न करनेपर तत्कालीन निजाम सरकारने मन्दिरके लिए १० एकड़ भूमि प्रदान की। उस भूमिमें ही मन्दिरका नव-निर्माण किया गया, धर्मशाला बनायी गयी, रथशाला, व्यासपीठ आदिका निर्माण किया गया। यह सम्पूर्ण निर्माण ३७० × ३०५ फीटके अहातेमें हुआ है।

इस क्षेत्रकी मूलनायक भगवान् नेमिनाथ-प्रतिमाके सम्बन्धमें एक रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। कहते हैं, इस मूर्तिके पैरके अँगूठेमें पारस पत्थर जड़ा हुआ था। एक वृद्ध पुजारी भगवान्‌की और क्षेत्रकी पूजा-सेवा किया करता था। वह अपना उदर-निर्वाह इसी पारस पत्थरके द्वारा करता था। वह प्रतिदिन लोहेकी एक सुईको पारसमणिसे स्पर्श कराके स्वर्ण बनाता था और उसे बेचकर उदर-पोषण करता था। जब उसका मृत्यु-काल निकट आ पहुँचा, तब उसने अपने पुत्रको बुलाकर कहा—"पुत्र ! भगवान् नेमिनाथकी प्रतिमाके पैरके दायें अँगूठेमें पारसमणि लगी हुई है। मैं प्रतिदिन उससे लोहेकी सुईके बराबर सोना बनाकर उससे तुम लोगोंका पोषण करता था। तुम भी आवश्यकता-भरके लिए उससे स्वर्ण बनाकर अपना निर्वाह करना और भगवान्‌की सेवा-पूजा करते रहना। तुम्हें कभी कोई कष्ट नहीं होगा। याद रखो, कभी लोभ मत करना।"

इसके कुछ समय पश्चात् वृद्धकी मृत्यु हो गयी। अब उसका पुत्र अपने पिताके समान भगवान्‌की सेवा करने लगा और स्वर्ण बनाकर निर्वाह करने लगा। कुछ समय पश्चात् उसे

लोभने आ घेरा। वह पुष्कल मात्रामें स्वर्ण बनाने लगा और व्यसनोंमें लिप्त रहने लगा। अकस्मात् ही उसकी सम्पन्नता और व्यसनोंको देखकर कुछ लोगोंने उसकी शिकायत जिलेके मुस्लिम अधिकारीसे कर दी। अधिकारीको ज्ञात हो गया कि उसकी सम्पन्नताका कारण मूर्तिके अँगूठेमें लगी हुई पारसमणि है। जिलाधिकारी कुछ सैनिकोंको लेकर वहाँ आया। वह ज्यों ही मणि निकालनेके उद्देश्यसे मूर्तिके निकट पहुँचा, अकस्मात् विस्फोटका-सा भयानक शब्द हुआ और मणि मूर्तिके अँगूठेसे निकलकर पूर्णानदीमें जा गिरी। सभी सैनिक और वह अधिकारी बेहोश हो गये। जब सब लोग होशमें आये तो पुजारीने शासकसे कहा—"पारसमणि तो स्वयं निकलकर पूर्णा नदीमें गिर गयी है। अब आप लोग वापस लौट जाइए।" जिला-शासकने मणिको आकाश-मार्ग द्वारा नदीकी ओर जाते हुए देख लिया था। उसे आशा थी कि कोशिश करनेपर मणि प्राप्त हो सकती है। उसने हाथियोंके पैरोंमें लोहेकी जंजीर बांधकर नदीमें भेजा। जब हाथी निकले तो एक हाथीकी जंजीरकी कुछ कड़ियाँ सोनेकी हो गयी थीं। उसने नदीमें मणि ढुँढ़वानेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु मणि नहीं मिल सकी। अन्तमें निराश होकर वह वापस लौट गया।

मणि निकल जानेपर मूर्तिके पैरका अँगूठा खण्डित हो गया है तथा उखलदसे लाते समय उस मूर्तिके हाथकी अँगुलियाँ खण्डित हो गयी हैं।

इस क्षेत्रके सम्बन्धमें ब्रह्मज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थ वन्दना' में इस प्रकार लिखा है—

'पूर्णा नाम पवित्र नदि तस तीर विसालह।
नामे ग्राम उखलद जिहाँ जिननेमि दयालह।
सार पार्श्व पाषाण कर अंगुष्ठे जाणो।
अगणित महिमा जास त्रिभुवन मध्य बखाणो॥
प्रगट तीर्थं जाणी करी भविकलोक आवे सदा।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति लक्ष लाभ पावे तदा॥६०॥'

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रके चारों ओर अहाता और धर्मशाला बनी हुई है। धर्मशालामें दो बड़े प्रवेश-द्वार हैं। मध्यमें मन्दिर बना है। गर्भगृहमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण अर्धपद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना ५ फीट (आसन सहित) है। यह एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण है। भगवान्के सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। सिरके पीछे भामण्डल सुशोभित है। ऊपर कोनोंपर माला लिये हुए देव हैं। अधोभागमें दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र हैं। प्रतिमाके वक्षपर श्रीवत्स है। चरण-चौकीपर शंख लांछन अंकित है।

इस वेदीपर ३ पाषाणकी और १० धातुकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

गर्भगृहके बाहर सभामण्डपमें ५-५ कटनीवाली दो वेदियाँ बनी हुई हैं। बायीं ओरकी वेदी-पर १९ पाषाणकी तथा १ धातुकी मूर्तियाँ रखी हैं। चबूतरेपर १ धातुकी मूर्ति रखी है। गर्भगृह-के द्वारपर बायीं ओर पद्मावती देवीकी एक पाषाण मूर्ति है। दायीं ओरकी वेदीपर २३ पाषाण-मूर्तियाँ हैं। चबूतरेपर एक पाषाण-फलकमें पद्मावती देवी है। ये सब मूर्तियाँ आष्टा (परभणी) से लायी गयी हैं।

शिखर-वेदीपर पार्श्वनाथ प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा रानीका कौलाशा गाँवसे लायी गयी है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर एक धर्मशाला है। इसमें ३५ कमरे हैं। क्षेत्रपर बिजली है, दो कुएँ हैं।

मेला

क्षेत्र का वार्षिक मेला माघ सुदी ५ से ७ तक होता है। इस अवसरपर रथयात्रा निकलती है। अहातेके भीतर भगवान्‌की शोभायात्रा निकलती है। इस अवसरपर ४-५ हजार व्यक्ति सम्मिलित हो जाते हैं।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नवागढ़
पो. पिंपरी देशमुख (जि. परभणी) महाराष्ट्र

जिन्तूर

मार्ग और अवस्थिति

महाराष्ट्र प्रान्तमें दक्षिण-मध्य रेलवेकी काचेगुड़ा-मनमाड़ शाखा लाइनके परभणी स्टेशनसे ४२ कि. मी. जिन्तूर नगर है और वहाँसे लगभग ४ कि. मी. दूर सह्याद्रि पर्वतपर श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अवस्थित है। जिन्तूर नगर तक पक्की सड़क है तथा परभणीसे बस-सेवा चालू है। नगरसे क्षेत्र तक कच्ची सड़क है।

इतिहास

इस नगरका प्राचीन नाम जैनपुर है। जैनपुरसे जिन्तूर किस प्रकार हो गया, इस सम्बन्धमें सैदुल कादरी द्वारा लिखित फारसीकी एक पुस्तकमें विवरण दिया गया है। यह पुस्तक ताड़पत्रपर लिखी हुई है और यहाँकी मसजिदमें सुरक्षित है। इस पुस्तकमें इस क्षेत्र और नगरका जो विवरण मिलता है, उससे पता चलता है कि कादरी अफगानिस्तानसे दिल्ली आया था। वह दिल्लीसे अजमेरकी ख्वाजा साहबकी दरगाहमें पहुँचा। वहाँके वलीने उसे बताया कि तुम दक्षिणमें जैनपुर जाओ। वहाँ बड़ा मजबूत किला है। रातमें उसके द्वार बन्द हो जाते हैं और सुबह खुलते हैं। तुम उसे जाकर विजय करो। गाँवके नजदीक पहाड़पर गुफाएँ हैं जिनमें अन्धकार रहता है। उन गुफाओंमें बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं।

वलीके आदेशसे कादरी अजमेरसे खुलताबाद, दौलताबाद होता हुआ जैनपुर पहुँचा। उन दिनों जैनपुर यमराज और नेमिराज नामक दो जैन भाइयोंकी जागीर था। कादरीने बादशाहकी सेनाकी सहायतासे नगरको जीत लिया और यहाँकी तथा क्षेत्रकी मूर्तियोंका विध्वंस किया तथा मन्दिरोंको मसजिद बना दिया। यह घटना हिजरी सन् ६३१ की है। नगरको जीतकर उसका नाम जिन्तूर रख दिया। तबसे इस नगरको जिन्तूर कहा जाने लगा। मुसलमानोंके वार्षिक उत्सवके समय इस ग्रन्थका पाठ किया जाता है।

संवत् १५३२ में नांदगांव निवासी बघेरवाल जातीय वीर संघवी आये। यहाँके मन्दिरोंकी भग्नावस्था देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। तब उन्होंने इन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया। कहते हैं, नगरमें पहले १४ जैन मन्दिर थे और ३०० घर जैनोंके थे। इनमें वर्तमानमें २ मन्दिर विद्यमान

हैं। ३-४ मन्दिरोंके भग्नावशेष मिलते हैं। ७ जैन मन्दिरोंकी मूलनायक प्रतिमाएँ साहूके जैन मन्दिरमें रखी हुई हैं।

जिस पहाड़पर जिनालय है, उसके सामनेकी पहाड़ीपर एक गुफा बनी हुई है, जिसे चन्द्रगुफा कहते हैं। यहाँ मुसलमान आक्रान्ताओंने बहुत सी मूर्तियाँ तोड़ दी थीं। कहते हैं, जैनोंने खण्डित मूर्तियाँ जमीनमें दबा दीं और अखण्डित मूर्तियाँ गाँवके मन्दिरमें पहुँचा दीं। यह गुफा पर्याप्त प्राचीन है। इस गुफाका उल्लेख संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें भी आया है। इस उल्लेखसे ही उसकी प्राचीनता असन्दिग्ध हो जाती है। सन्दर्भ श्लोक इस प्रकार है—

"श्रीमच्चन्द्रगुहावराक्षरशिलां वस्त्रावतारं सदा।
अर्चे चारणपादुकाचणगुहे सर्वामरैरर्चिताम्।
भास्वल्लक्षणपङ्क्तिनिर्वृतिपथं विन्दुं च धर्मं शिलाम्।
सम्यग्ज्ञानशिलाञ्च नेमिनिलयं वन्दे च शृङ्गत्रयम्॥२८॥"

इसमें ज्ञानशिला और नेमिनाथ मन्दिरके नेमिनाथकी वन्दना की गयी है। सम्भवतः प्राचीनकालमें चन्द्रगुफामें कोई शिला थी जिसे ज्ञानशिला कहते थे। आज ज्ञानशिलाको तो लोग भूल गये हैं, किन्तु चन्द्रगुहा और चारण मुनियोंकी पादुका (चरण-चिह्न) अब भी विद्यमान हैं।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्र तक कच्ची सड़क है। एक अहातेके अन्दर गुहा-मन्दिर हैं। ये गुफाएँ एक ही मन्दिरके भीतर हैं। इस मन्दिरमें कुल ६ गुफाएँ या तल-प्रकोष्ठ बने हुए हैं। इन प्रकोष्ठोंमें जानेके लिए मार्ग है। मन्दिरमें प्रवेश करते ही दायीं ओर एक प्रकोष्ठमें ४ फीट ८ इंच ऊँचा पाषाण-चैत्य है जिसमें चारों दिशाओंमें २७ मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पाषाण श्यामवर्ण है।

यहाँसे सीढ़ियों द्वारा उतरकर एक कक्षमें जाते हैं। इसमें भगवान् आदिनाथकी २ फीट अवगाहनाकी श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्तिके स्कन्ध तक जटाएँ हैं। चरण-चौकीपर कोई लांछन नहीं है किन्तु जटाओंके कारण इसे आदिनाथकी प्रतिमा माना जाता है। इस कक्षसे ४ सीढ़ियाँ उतरकर ११ फीट ९ इंच चौड़ा और १६ फीट ६ इंच लम्बा एक कक्ष मिलता है। इसमें भगवान् शान्तिनाथकी ५ फीट ४ इंच ऊँची और ४ फीट ४ इंच चौड़ी एक पद्मासन प्रतिमा आसीन है। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। कर्ण स्कन्धस्पर्शी हैं।

इस कक्षसे थोड़ा उतरनेपर एक कक्षमें भगवान् नेमिनाथकी ७ फीट २ इंच ऊँची और ५ फीट ८ इंच चौड़ी श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके वक्षपर श्रीवत्स है। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। जटाएँ स्कन्ध तक हैं। इसके अधोभागमें दोनों पार्श्वोंमें ३-३ भक्त-स्त्रियों और मध्यमें ३ भक्त-पुरुषोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इसके पार्श्ववर्ती एक अन्य प्रकोष्ठमें भगवान् पार्श्वनाथकी नौ फणावलिमण्डित ५ फीट १० इंच उत्तुंग और ४ फीट ५ इंच चौड़ी पद्मासन प्रतिमा है। वक्षपर श्रीवत्स है। पृष्ठ भागपर सर्पवलय बना हुआ है। यह वलय एक अन्य वलयमें लिपटा हुआ है। वक्षपर श्रीवत्स अंकित है। इसके फण पर्याप्त भारयुक्त हैं। इतनी विशाल और भारी मूर्ति लगभग ३ इंच वर्गाकार पाषाणके एक टुकड़ेपर आधारित है। अतः लोग इसे अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ कहते हैं। इस मूर्तिके नीचे इतना स्थान है जिसमें मोटा कोबरा सर्प आसानीसे बैठ सकता है। एकाधिक बार यहाँ काला फनियल सर्प भी मूर्तिके नीचे बैठा हुआ देखा गया है। लगभग २० वर्ष पहले मूर्तिके गिर जानेकी आशंका-

से इस पाषाण-खण्डको तोड़नेका प्रयत्न किया गया था। वह पाषाण-खण्ड तो नहीं टूटा, किन्तु प्रतिमाका बैलेन्स कुछ बिगड़ गया। फलतः प्रतिमा बायीं ओरसे भूमिपर कुछ टिक गयी है।

इस प्रकोष्ठसे ऊपर चढ़कर चैत्यस्तम्भके पार्श्ववर्ती प्रकोष्ठमें एक खड्गासन मूर्ति बाहुबली स्वामीकी है जिसकी अवगाहना ४ फीट ७ इंच है। इसमें गहन माधवी लताओंका अंकन है। दायें स्कन्धपर एक सर्प फण निकाले हुए है। बायें कन्धेका सर्पफण खण्डित है। इस कक्षमें बायीं ओर एक शिलाफलकमें मध्यमें एक खड्गासन प्रतिमा बनी हुई है। ऊपर दोनों किनारोंपर दो पद्मासन और अधोभागमें खड्गासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मध्यवर्ती मूर्तिके कन्धोंपर जटाएँ हैं।

इस मन्दिरके सामनेकी पहाड़ी पर चन्द्रगुफा है। दोनों पहाड़ियोंके मध्यमें धवधवी नामक नदी बहती है। नेमिनाथ मन्दिरसे नीचे घाटीमें उतरनेपर एक चबूतरेपर चरण-पादुका बनी है। सम्भवतः यह किसी चारण मुनिकी स्मृतिमें बनायी गयी है जो इस पहाड़ीपर कभी आये थे। सामनेकी पहाड़ीपर राजुलमतीका प्राचीन मन्दिर है। यहाँ एक वेदी है। इसके चारों ओर तीन कटनीवाली दीवार है। मुस्लिम आक्रामकोंकी विध्वंस-लीलासे बची हुई यहाँकी मूर्तियाँ गाँवके मन्दिरमें पहुँचा दी गयी हैं।

प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य

इन मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर लेख उत्कीर्ण हैं। इन लेखोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इस मन्दिर और उसके तल-प्रकोष्ठोंका निर्माण नांदगाँव निवासी बघेरवाल जातीय सुरा गोत्रीय जस्सू संघवी और उनकी धर्मपत्नी कौण्डाईके पुत्र वीर संघवीने कराया था। वीर संघवीकी पत्नीका नाम घालावो था। उसके पुत्रोंके नाम नेमा, सातू या शान्ति, अन्तू या अनन्तसा थे। मूर्ति-लेखोंमें उनकी स्त्रियोंके ये छह नाम मिलते हैं—गंगाई, सरस्वती, जयवाई, नेमाई, रतनाई और आदाई।

इन मूर्तियोंके प्रतिष्ठाचार्य थे भट्टारक कुमुदचन्द्राचार्य, जो मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण कुन्दकुन्दाचार्यान्वियके भट्टारक थे। भट्टारक कुमुदचन्द्र, भट्टारक धर्मचन्द्र, उनके शिष्य भट्टारक धर्मभूषण उनके शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। ये सभी भट्टारक कारंजा पीठके अधीश्वर थे। इनका भट्टारक-काल संवत् १६५६ से १६७० तक [1] निश्चित किया गया है। इन्होंने इस क्षेत्रकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा शक संवत् १५३२ श्रावण सुदी १३ और फाल्गुन वदी १० को करायी थी।

किन्तु एक खण्डित पार्श्वनाथ-मूर्तिकी चरण-चौकीके लेखसे कुछ नवीन तथ्योंपर प्रकाश पड़ता है, जिनसे (१) इन भट्टारकोंके काल-निर्णयपर प्रभाव पड़ता है। (२) वीर संघवीके पाँच पुत्र थे, इस मान्यताका खण्डन होता है। तथा (३) यह धारणा कि वीर संघवीके तीन पुत्रोंने अपने नामके अनुरूप तीर्थंकरोंकी एक-एक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी, इस धारणाका भी खण्डन होता है। बल्कि मूर्ति-लेखोंके देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वीर संघवी और उनके पुत्रोंने इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा करायी थी।

पार्श्वनाथकी मूर्तिका लेख इस प्रकार है—

"शक १५२० फाल्गुन शुद्ध ५ मूलसंघे बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्य-परम्परागत भट्टारक धर्मचन्द्र तत्पट्टे भट्टारक श्री धर्मभूषण तत्पट्टे भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री कुमुदचन्द्राचार्य भट्टारक धर्मचन्द्र उपदेशात् बघेरवालज्ञातीय सुरागोत्रे संघवी श्री जसाशाह भार्या

१. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखक प्रो. वी. पी. जोहरापुरकर एम. ए., पृ. ७७।

संघवी श्री कौण्डाई तस्य पुत्र ९ एतेषां मध्ये संघवी श्री वीर सा भार्या घालावी तस्य पुत्रत्रय संघवी श्री अनन्तसा भार्या गंगाई संघवी सातूसा भार्या रतनाई संघाधिपति श्री नेमासा भार्या जयबाई नित्यं प्रणमति।"

इस लेखसे ज्ञात होता है कि भट्टारक धर्मचन्द्रने शक संवत् १५३० में पार्श्वनाथ-मूर्तिकी प्रतिष्ठा की; जसाशाह संघवीके ९ पुत्र थे, जिनमें संघवी वीरसा एक पुत्र था; और संघवी वीरसाके ३ पुत्र थे। इससे ऐसा लगता है कि इन तीन पुत्रोंकी ६ पत्नियोंके जो नाम विभिन्न मूर्ति-लेखोंमें उपलब्ध होते हैं, वस्तुतः उनकी पत्नियोंकी संख्या ३ ही थी, किन्तु उनके नाम दो-दो थे।

क्षेत्रकी दशा

लगभग १०–१२ वर्ष पहले भूकम्प आया था। उससे पहाड़ी क्रैक हो गयी। भूकम्पका प्रभाव मन्दिरपर भी पड़ा था। पहाड़ीकी दरारकी सीधमें मन्दिरकी दीवार और छतमें भी दरार पड़ गयी। इससे मन्दिरकी सुरक्षाको खतरा उत्पन्न हो गया है। चन्द्रगुफामें कोई मूर्ति नहीं है।

क्षेत्रपर धर्मशाला है, जिसमें ६ कमरे हैं।

गाँवके मन्दिर

जिन्तूर नगरमें वर्तमानमें २ मन्दिर हैं—(१) साहूका महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर और (२) महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर पुराना।

साहूका मन्दिर—यह मन्दिर मूर्तियोंकी दृष्टिसे अत्यन्त सम्पन्न है। नगरके प्राचीन ७ मन्दिरोंकी मूलनायक प्रतिमाएँ इसी मन्दिरमें विराजमान हैं। दूसरे मन्दिरसे भी कुछ मूर्तियाँ लाकर यहाँ विराजमान कर दी गयी हैं। इस मन्दिरमें एक वेदीपर पीतलके दो सहस्रकूट चैत्यालय हैं। दायीं ओरका चैत्यालय ४ फीट ९ इंच ऊँचा और १ फुट १ इंच चौड़ा है। बायीं ओरका जिनालय लोकाकार है और ४ फीट ५ इंच ऊँचा है। दोनों ही जिनालयोंमें १००० + २४ मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इनमें १००० मूर्तियाँ सहस्रकूट जिनालयकी और २४ मूर्तियाँ वर्तमान २४ तीर्थंकरोंकी लगती हैं। लोकाकार जिनालयके ऊपर लेख उत्कीर्ण है। इसके अनुसार शक संवत् १५४१ माघ वदी ८ को काष्ठासंघ लाडबागड़गच्छ पुष्करगण लोहाचार्यान्वयके भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति, उनके शिष्य हेमेन्द्रकीर्ति, उनके शिष्य प्रतापकीर्तिने बघेरवालजातीय पिवल्या गोत्रके पुंजा और उनके परिवारकी ओरसे इस सहस्रकूट जिनालयकी प्रतिष्ठा की।

इसके ऊपरी भागमें भी लेख है। इसके अनुसार काष्ठासंघ नन्दीतट गच्छ विद्यागण रामसेनान्वयके भट्टारक श्री विद्याभूषण, उनके शिष्य भट्टारक श्रीभूषणने इसकी प्रतिष्ठा की।

उपर्युक्त दो लेखोंके कारण यह समझना कठिन है कि वस्तुतः किन भट्टारकने इसकी प्रतिष्ठा की। सम्भवतः भट्टारक प्रतापकीर्तिके उपदेशसे इस जिनालयका निर्माण हुआ और भट्टारक श्रीभूषणने इसकी प्रतिष्ठा की।

इस मन्दिर (साहूके मन्दिर) का भी एक अद्‌भुत इतिहास है। इस मन्दिरमें भगवान् शीतलनाथकी श्वेत पद्मासन मूलनायक प्रतिमा थी। घटना उस समयकी है, जब इस मन्दिरपर मुस्लिम-कालमें मुसलमानोंका आक्रमण होनेवाला था। आक्रमण होनेसे पहले एक सज्जनको रात्रिमें स्वप्न हुआ, 'तुम मुझे यहाँसे तत्काल हटा दो।' प्रातःकाल होनेपर उसने शुद्ध वस्त्र पहनकर छिपाकर मूर्तिको वहाँसे हटा दिया और कहीं छिपा दिया। थोड़े समय बाद ही मुसलमानोंने

मन्दिरपर आक्रमण कर दिया। उन्होंने मूर्तियोंका भयंकर विनाश किया। मन्दिरको मसजिद बना दिया। जब हैदराबादके विरुद्ध भारत सरकारने पुलिस एक्शन लिया और हैदराबाद रियासतको भारतमें सम्मिलित कर लिया, तब जैनोंने सरकारके समक्ष इसके बारेमें अपनी माँग रखी। मसजिद बना लेनेपर भी वेदीके दो स्तम्भोंपर पार्श्वनाथकी मूर्तियाँ बनी हुई थीं। अतः सरकारने जैनोंकी माँग स्वीकार कर ली और यह मन्दिर पुनः जैनोंके अधिकारमें दे दिया गया। तब इसका जीर्णोद्धार किया गया।

पुराना महावीर मन्दिर—इस मन्दिरमें यों तो अनेक मूर्तियाँ हैं, किन्तु दो मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। चन्द्रनाथ-गुहासे लायी हुई पद्मावती देवीकी ३ फीट ऊँची एक श्यामवर्ण प्रतिमा है। इसकी अलंकरण-सज्जा दर्शनीय है। देवी चतुर्भुजी है। दूसरी मूर्ति भगवान् पार्श्वनाथकी है जो ३ फीट १० इंच ऊँची है और खड्गासन मुद्रामें अवस्थित है। इस प्रतिमाके ऊपर लताएँ अंकित हैं जो भगवान्की ध्यानावस्थाको प्रकट करती हैं। प्रतिमा अद्भुत है। इसकी प्रतिष्ठा शक संवत् १५१४ में हुई थी।

इस मन्दिरके नीचे तलघर बना हुआ है। यहाँकी समस्त मूर्तियाँ साहूके मन्दिरमें पहुँचा दी गयी हैं।

धर्मशाला

यहाँ धर्मशाला है जिसमें १ कमरा है। बिजली और कुआँ है। मन्दिरके पृष्ठभागमें नवीन धर्मशाला और प्रवचन-मण्डपका निर्माण हो रहा है।

मेला

यहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी ५ को वार्षिक मेला होता है। इस अवसरपर गाँवसे भगवान्की पालकी निकलती है जो क्षेत्रपर जाती है। इस मेलेमें चार-पाँच सौ व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। श्रावण सुदी ६ को नेमिनाथ भगवान्के तप-कल्याणकके दिन क्षेत्रपर पूजाका विशेष आयोजन होता है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
पो. जिन्तूर (जिला परभणी) महाराष्ट्र

शिरड शहापुर

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शिरड शहापुर महाराष्ट्रके परभणी जिलेमें अवस्थित है। मध्य रेलवेकी खण्डवा—पूर्णा रेल मार्गपर चौंड़ी स्टेशनसे ८ कि. मी. दूर शिरड शहापुर ग्राम है। गाँव तक पक्की सड़क है। क्षेत्र गाँवमें ही है। इस ग्रामका तालुका वसमतनगर है। ग्राममें डाकखाना भी है। गाँवके बाहर असना नदी बहती है।

अतिशय क्षेत्र

इस क्षेत्रके सम्बन्धमें एक रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। यहाँ भगवान् मल्लिनाथकी सातिशय प्रतिमा विराजमान है। पहले यह प्रतिमा नौदेड़ जिलेमें अर्धापुरमें विराजमान थी। उस समय कारंजा पट्टके पट्टाधिकारी बलात्कारगणके भट्टारक पद्मनन्दी विहार करते हुए भीकर ग्राम जा रहे थे। मार्गमें अर्धापुर ग्राममें निवास हुआ। वहाँ उन्होंने अनेक खण्डित-अखण्डित जैन मूर्तियाँ देखीं। उनमें मल्लिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा थी। उस मूर्तिको इस प्रकार पड़ा हुआ देखकर उन्हें दुःख हुआ। उन्होंने उस मूर्तिको कारंजा ले जानेका विचार किया। इसके लिए उन्होंने गाँवके पटेल तथा पटवारीसे अनुमति माँगी किन्तु उन्होंने मूर्ति ले जाने देनेकी अनुमति नहीं दी। भट्टारकजी म्यानामें बैठकर सीधे हैदराबाद गये और वहाँके शासक निजामके दरबारमें पधारे। दरबारमें पहुँचकर उन्होंने वाहकोंसे म्याना छोड़ देनेको कहा। वाहकोंने आज्ञानुसार म्याना कन्धेसे उतारकर छोड़ दिया किन्तु वह फिर भी जमीनसे अधर रहा। निजाम इस चमत्कारको देखकर बड़े प्रभावित हुए और बड़ी विनम्रतासे भट्टारकजीसे बोले—"स्वामीजी ! मैं कारंजा-की जागीर आपके कदमोंमें चढ़ाता हूँ। मेहरबानी करके उसे कबूल फरमायें।" भट्टारकजी बोले—"हम तो दिगम्बर गुरु हैं। हमें धन-सम्पत्तिकी आवश्यकता नहीं है। यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हमें अर्धापुरसे जैन मूर्तियोंको कारंजा ले जाने की इजाजत दे दें।" निजामने तत्काल भट्टारकजीकी इच्छानुसार आदेश-पत्र लिख दिया।

भट्टारकजी अर्धापुर गये और प्रतिमाको लेकर कारंजाकी ओर चल दिये। मार्गमें शिरड शहापुरमें उनका मुकाम हुआ। उसी रात्रिको भट्टारकजी को स्वप्न हुआ कि भगवान् मल्लिनाथकी यह प्रतिमा यहींपर विराजमान कर दो। प्रातःकाल होनेपर भट्टारकजीने वह प्रतिमा वहाँ जैन मन्दिरमें विराजमान कर दी और उसकी समारोहपूर्वक प्रतिष्ठा की। बादमें इस प्रतिमाके कारण ही यह स्थान अतिशय क्षेत्र कहलाने लगा।

इस क्षेत्रसे सम्बन्धित एक चमत्कारिक घटना सुननेमें आती है जिससे जनताकी श्रद्धा इस मूर्तिके प्रति बढ़ती गयी।

घटना इस प्रकार है कि सन् १९६४ में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा थी। लगभग ५ हजार यात्री इस अवसरपर आये थे। उस समय कुओंमें जलकी कमी थी, जिससे यात्रियोंके लिए जलकी असुविधा होने लगी। भक्त लोग भगवान् मल्लिनाथके चरणोंमें बैठकर स्तुति करने लगे। सबने आश्चर्यके साथ देखा कि कुओंमें तेजीसे जल बढ़ने लगा और लगभग डेढ़-दो फुट जल बढ़ गया। इससे जलकी समस्या सुलझ गयी।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रके प्रमुख प्रवेश-द्वारसे प्रवेश करनेपर दो सहन मिलते हैं। इन सहनोंमें कार्यालय और धर्मशाला है। भीतरके सहनमें जिनालय बना हुआ है। जिनालयमें प्रवेश करते ही सामने गर्भगृह है। यह पूर्वाभिमुख है। इसमें वेदीपर मल्लिनाथ भगवान्‌की अर्धपद्मासन श्याम वर्ण ४ फीट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। मूर्तिके कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। प्रतिमाके स्कन्धपर जटाएँ बिखरी हुई हैं। वक्षपर सुन्दर श्रीवत्स है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। मूर्तिकी चरण-चौकीपर कोई लांछन नहीं है, किन्तु मूर्ति-लेखमें मल्लिनाथका नामोल्लेख है, अतः इसे मल्लिनाथकी मूर्ति माना जाता है। मूर्ति-लेखके अनुसार संवत् १६३१ माह वदी ३ को मूलसंघ बलात्कारगणके भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिने अर्धापुरमें मल्लिनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी।

इस वेदीपर मूलनायकके अतिरिक्त १ पाषाण प्रतिमा पार्श्वनाथकी तथा ९ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृहके चारों ओर सभामण्डप बना हुआ है।

इस वेदीकी बायीं ओर एक अन्य मण्डप बना हुआ है। यह उत्तराभिमुखी है। मुख्य वेदी-पर मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी श्वेत पाषाणकी १ फुट २ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। इसकी प्रतिष्ठा शक संवत् १५३५ में हुई है। इस वेदीपर पाषाणकी १० और धातुकी ३२ मूर्तियाँ विराजमान हैं।

पहले इस मन्दिरको शान्तिनाथ मन्दिर कहा जाता था। शान्तिनाथकी इस मूर्तिकी बड़ी मान्यता, ख्याति थी। मराठी भाषामें रची गयी पूजन और आरती संग्रहोंमें इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। ब्रह्म जिनसागर, ब्रह्म नेमिसागर आदिने इसकी प्रशंसामें अनेक पद्योंकी रचना की है। किन्तु जबसे मल्लिनाथकी मूर्ति यहाँ आयी है और उसके अतिशयोंकी चर्चा चारों ओर फैली है, तबसे मल्लिनाथकी मूर्तिकी मान्यता बहुत बढ़ गयी है।

बायीं ओरकी वेदीमें पाषाणकी ७ धातुकी प्रतिमाएँ और हैं। मुख्य वेदीके पृष्ठ भागवाली वेदीमें २१ पाषाणकी तथा ४ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। इनमें काले पाषाणकी प्रतिमाएँ अम्बा (शिरडसे ८ कि. मी. पूर्वकी ओर एक गाँव) से लायी गयी हैं। वहाँका मन्दिर ध्वस्त हो चुका है। यहाँ पीतलका एक पंचमेरु भी है जो वार्शीटाकली (जिला अकोला) से लाया गया है।

इस मण्डपमें एक भित्ति-वेदीमें ३ धातुकी तथा ३ पाषाणकी देवी-मूर्तियाँ हैं। पीतलकी एक श्रुतस्कन्ध प्रतिमा भी है।

ऊपर छतपर भी एक वेदी है। उसमें भगवान् महावीरकी श्वेत प्रतिमा है। मन्दिरके सामने मानस्तम्भ है।

भट्टारक-समाधि

शिरड शहापुरसे बलात्कारगणकी कारंजा शाखाके भट्टारकोंका सम्बन्ध रहा है। भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति अपने अन्तिम समयमें शिरड शहापुरमें शान्तिनाथ मन्दिरमें आकर कुछ समय तक रहे थे। जब उन्हें अपनी मृत्युका आभास हो गया तो उन्होंने दिगम्बर मुनि-दीक्षा ले ली और यहाँके जंगलमें घोर तपश्चरण करने लगे। अन्तमें उन्होंने समाधिमरण करके देवगति प्राप्त की। उन्होंने कार्तिक वदी १० संवत् १८५० को देह त्याग की। नदीके दूसरे तटपर उनकी समाधि बनी हुई है।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति बलात्कारगणकी कारंजा शाखाके भट्टारक थे। उनके गुरु भट्टारक धर्मचन्द्र थे। इनका भट्टारक-काल संवत् १८४० से १८५० तक है। इनके एक शिष्य जिनसागर थे। इन्होंने शिरड गाँवमें रहकर लवणांकुश कथा, अनन्त कथा और सुगन्धदशमी कथाकी रचना की थी।

बलात्कारगण मन्दिर कारंजामें भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिकी चरण-पादुका है। उनके ऊपर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है।

'संवत् १८५० शके १७१५ कार्तिक मासे कृष्ण पक्षे १० बुद्ध मध्याह्ने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रे प्रीतियोगे अस्यां शुभवेलायां श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये मलखेड-सिंहासनाधीश्वरकार्यरंजकपुरवासी भ. श्रीधर्मचन्द्रस्तत्पट्टे भ. श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिनां देवलोक प्राप्तिर्जाता तत्पादुकेयं प्रतिष्ठापिता ॥'

धर्मशाला

क्षेत्रपर धर्मशाला है, जिसमें १२ कमरे हैं। बिजली है, कुआं नहीं है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला मार्गशीर्ष सुदी ११ को होता है। यह तिथि मल्लिनाथ भगवान्के जन्मकल्याणककी तिथि है। इस अवसरपर मन्दिरसे भगवान्की रथ-यात्रा निकलती है और सारे गांवमें भगवान्का विहार होता है। दूसरी रथयात्रा आश्विन वदी २ को निकलती है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री मल्लिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
पो. शिरड शहापुर (जिला परभणी) महाराष्ट्र

असेगाँव

मार्ग और अवस्थिति

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र असेगांव महाराष्ट्र प्रान्तके परभणी जिला वसुमतनगर तालुकामें अवस्थित है। शिरड शहापुरसे यह स्थान २४ कि. मी. है। वसुमतनगर तक बस जाती है, सड़क पक्की है। वसुमतसे ८ कि. मी. कच्चा मार्ग है। पैदल या बैलगाड़ीसे जाना पड़ता है। यहांपर कार्तिक शुक्ला १५ को प्रतिवर्ष यात्रोत्सव होता है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
पो. असेगांव (तालुका वसुमतनगर, जिला परभणी) महाराष्ट्र

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ' महाराष्ट्रके अकोला जिलेमें सिरपुर गांवमें स्थित है। सिरपुर पहुँचनेके लिए सबसे निकटका स्टेशन अकोला है जो बम्बई—नागपुर रेलवे मार्गपर यहाँसे लगभग ७० कि. मी. दूर है। गांव तक पक्की सड़क है और नियमित बस-सेवा है। यहां आनेके लिए अकोलाकी ओरसे आनेवालोंको मालेगांव आना पड़ता है। वहांसे सिरपुर ६ कि. मी. है। नांदेडसे वाशिम, वाशिमसे मालेगांव होकर भी आ सकते हैं। वाशिम स्टेशन सिरपुरसे ३० कि. मी. खण्डवा—पूर्णा छोटी रेलवे लाइनपर है।

क्षेत्रका इतिहास

अतिशय क्षेत्र सिरपुर (श्रीपुर) और उसके अधिष्ठाता अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ भारत-भरमें प्रसिद्ध है। इस क्षेत्रका इतिहास काफी प्राचीन है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि इस क्षेत्रका निर्माण ऐल नरेश श्रीपालने कराया था। उनका आशय सम्भवतः क्षेत्रसे नहीं, मन्दिरसे है। अर्थात्

वर्तमान मन्दिर राजा श्रीपालने निर्मित कराया होगा। किन्तु क्षेत्रके रूपमें अन्तरिक्षमें विराजमान उस मूर्ति विशेषकी ओर क्षेत्रकी ख्याति तो इससे भी पूर्वकालसे थी। जैन साहित्य, ताम्रशासन और शिलालेखोंमें इसके सम्बन्धमें अनेक उल्लेख मिलते हैं। जैन कथा साहित्यके आधारपर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि यह चमत्कारी प्रतिमा रामचन्द्रके कालमें भी विद्यमान थी। विद्याधर नरेश खरदूषणने इसकी स्थापना की थी। कथा इस प्रकार है—

लंकानरेश रावणकी बहन चन्द्रनखाका विवाह खरदूषण विद्याधर नरेशके साथ हुआ था। खरदूषण जिन-दर्शन किये बिना भोजन नहीं करता था। एक बार वन-विहार करते हुए उसे प्यास लगी। किन्तु वहाँ आसपासमें कोई जिनालय दिखाई नहीं पड़ रहा था। प्यास अधिक बढ़ने लगी। तब उसने बालुकाकी एक मूर्ति बनाकर उसका पूजन किया। पश्चात् उस मूर्तिको एक कुएँमें सुरक्षित रख दिया।

१६वीं सदीके लक्ष्मण नामक एक कविने 'श्रीपुर पार्श्वनाथ विनती'में इस घटनाका इस प्रकार पद्यमय चित्रण किया है—

"लंकानयरी रावण करे राज्य। चन्द्रनखा भगिनी भरतार ॥१॥
खरदूषण विद्याधर धीर। जिनमुख अवलोकनव्रत धरे धीर ॥२॥
वसंत मास आयो तिह् काल। क्रीड़ा करन चाल्यो भूपाल ॥३॥
लागी तृषा प्रतिमा नहिं संग। बालुतनू निर्मायो बिंब ॥४॥
पूजि प्रतिमा जल लियो विश्राम। राख्यो बिंब कूपनि ठाम ॥५॥"

आचार्य लावण्यविजयजी आदि कई श्वेताम्बर आचार्योंने भी पार्श्वनाथके बिम्बकी स्थापना खरदूषण द्वारा की गयी माना है। दूसरे आचार्योंके मतानुसार इस बिम्बकी स्थापना माली-सुमाली द्वारा हुई मानी जाती है।

जैन पुराणोंमें कई स्थानोंपर श्रीपुरका नामोल्लेख मिलता है। चारुदत्त धनोपार्जनके लिए भ्रमण करता हुआ यहाँ आया था। इसका उल्लेख चारुदत्त चरित्रमें आया है। कोटिभट श्रीपाल वत्सनगर (वाशिम, जिला अकोला) आया था, तब इस नगरके बाहर विद्या साधन करते हुए एक विद्याधरकी सहायता उसने की थी।

सिरपुर (श्रीपुर) के पार्श्वनाथकी ख्याति पौराणिक युगके पश्चात् ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियोंमें भी रही है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस मूर्तिकी वन्दना करते हुए कहा गया है — 'पासं सिरपुरि वंदमि' अर्थात् 'मैं श्रीपुरके पार्श्वनाथकी वन्दना करता हूँ।' भट्टारक उदयकीर्ति कृत अपभ्रंश निर्वाण-भक्तिमें इसीका अनुकरण करते हुए कहा है—'अरु वंदउँ सिरपुरि पासणाहु। जो अंतरिक्ख थिउ णाणलाहु।' प्राकृत निर्वाण-भक्तिकी अपेक्षा अपभ्रंश निर्वाण-भक्तिमें एक विशेषता है। इसमें श्रीपुरके जिन पार्श्वनाथकी वन्दना की गयी है, उनके सम्बन्धमें यह भी सूचित किया गया है कि वे पार्श्वनाथ अन्तरिक्षमें स्थित हैं।

इनके अतिरिक्त गुणकीर्ति, मेघराज, सुमतिसागर, ज्ञानसागर, जयसागर, चिमणा पण्डित, सोमसेन, हर्ष आदि कवियोंने तीर्थ-वन्दनाके प्रसंगमें विभिन्न भाषाओंमें अन्तरिक्ष पार्श्वनाथका उल्लेख किया है। यतिवर मदनकीर्तिने 'शासन चतुस्त्रिंशिका' में इस प्रतिमाके चमत्कारके सम्बन्धमें इस प्रकार बताया है—

"पत्रं यत्र विहायसि प्रविपुले स्थातुं क्षणं न क्षमं,
तत्रास्ते गुणरत्नरोहणगिरिर्यो देवदेवो महान्।

चित्रं नात्र करोति कस्य मनसो दृष्टः पुरे श्रीपुरे,
स श्रीपार्श्वजिनेश्वरो विजयते दिग्वाससां शासनम् ॥"

अर्थात् जिस ऊँचे आकाशमें एक पत्ता भी क्षण-भरके लिए ठहरनेमें समर्थ नहीं है, उस आकाशमें भगवान् जिनेश्वरका गुणरत्न पर्वतरूप भारी जिनबिम्ब स्थिर है। श्रीपुर नगरमें दर्शन करनेपर वे पार्श्वजिनेश्वर किसके मनको चकित नहीं करते?

इस प्रकार अनेक आचार्यों, भट्टारकों और कवियोंने श्रीपुरके अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी स्तुति की है और आकाशमें अधर स्थिर रहनेकी चर्चा की है। कुछ शिलालेख और ताम्रशासन भी उपलब्ध हुए हैं, जिनमें इस क्षेत्रको भूमि-दान करनेका उल्लेख मिलता है। चालुक्यनरेश जयसिंहके ताम्रपत्रानुसार ई. सन् ४८८ में इस क्षेत्रको कुछ भूमि दान दी गयी थी।[1] एक अन्य लेखके अनुसार मुनि श्री विमलचन्द्राचार्यके उपदेशसे (ई. सन् ७७६) पृथ्वी निर्गुन्दराजकी पत्नी कुन्दाच्चीने श्रीपुरके उत्तरमें 'लोक तिलक' नामक मन्दिर बनवाया था।[2] इन्हीं विमलचन्द्राचार्य की प्रतिष्ठित कई छोटी-बड़ी मूर्तियाँ श्रीपुरमें उपलब्ध होती हैं।

अकोला जिलेके सन् १९११ के गजैटियरमें यहाँके सम्बन्धमें लिखा है कि आज जहाँ मूर्ति विराजमान है, उसी भोंयरेमें वह मूर्ति संवत् ५५५ (ई. सन् ४९८) में वैशाख सुदी ११ को स्थापित की गयी थी।

इसके विपरीत कुछ लोगों की मान्यता है कि ऐल नरेश श्रीपालने यह पार्श्वनाथ मन्दिर बनवाया था। ऐल श्रीपालके सम्बन्धमें एक रोचक किंवदन्ती भी प्रचलित है जो इस प्रकार है—

ऐलिचपुरके नरेश ऐल श्रीपाल जिनधर्मपरायण राजा थे। अशुभोदयसे उन्हें कुष्ठ रोग हो गया। उन्होंने अनेक उपचार कराये, किन्तु रोग शान्त होनेके बजाय बढ़ता ही गया। एक बार वे अपनी रानीके साथ कहीं जा रहे थे। मार्गमें विश्रामके लिए वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये। निकट ही एक कुआँ था। वे उस कुएँपर गये। उन्होंने उसके जलसे स्नान किया और उस जलको तृप्त होकर पिया। फिर वे रानीके साथ आगे चल दिये। दूसरे दिन रानीकी दृष्टिमें यह बात आयी कि रोगमें पर्याप्त अन्तर है। रानीने राजासे पूछा—"आपने कल भोजनमें क्या-क्या लिया था?" राजाने उन व्यंजनोंके नाम गिना दिये जो कल लिये थे। रानी कुछ देर सोचती रही, फिर उसने पूछा—"आपने स्नान कहाँ किया था?" राजाने उस कुएँके बारेमें बताया जहाँ कल स्नान किया था। रानी बोली—"महाराज! हमें लौटकर वहीं चलना है जहाँ आपने कल स्नान किया था। आपके रोगमें सुधार देख रही हूँ। मुझे उस कुएँके जलका ही यह चमत्कार प्रतीत होता है।"

राजा और रानी लौटकर कुएँ तक आये। उन्होंने वहीं अपना डेरा डाल लिया। कई दिन तक रहकर राजाने उस कुएँके जलसे स्नान किया। इससे रोग बिलकुल जाता रहा। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु वह उस कूपके सम्बन्धमें विचार करने लगा—क्या कारण है जो इस कूप-जलमें इतना चमत्कार है। रात्रिमें जब वह सो रहा था तब उसे स्वप्न दिखाई दिया और स्वप्नमें पार्श्वनाथकी मूर्ति दिखाई दी। स्वप्नसे जागृत होनेपर उसने बड़े यत्नपूर्वक वह मूर्ति कुएँसे निकाली। प्रतिमाके दर्शन करते ही राजाको अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने बड़ी भक्तिके साथ भगवान्की पूजा की। फिर स्वप्नमें देव पुरुष द्वारा बतायी विधिके अनुसार घास की गाड़ीमें उस प्रतिमाको रखकर चल दिया। उसकी इच्छा प्रतिमाको अपनी राजधानी ऐलिचपुर ले जानेकी थी।

---

१. जैन शिलालेख संग्रह भाग २, पृष्ठ ८५।

२. वही, पृष्ठ १०९।

वह कुछ ही दूर गया होगा कि उसके मनमें सन्देह हुआ—गाड़ी हलकी क्यों है ? उसने पीछेकी ओर मुड़कर देखा, प्रतिमा सुरक्षित थी। वह गाड़ी लेकर फिर चला, किन्तु प्रतिमा नहीं चली, वह बहुत भारी हो गयी। तब राजाने लाचार होकर मूर्ति वहाँके (श्रीपुर) मन्दिरके तोरणमें विराजमान करा दी। पश्चात् मन्दिरका निर्माण कराया। इस कार्यमें भट्टारक रामसेनका पूरा सहयोग रहा। किसी कारणवश वहाँकी जनता रामसेनसे इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा नहीं कराना चाहती थी। अतः रामसेनने अधूरे मन्दिरमें ही प्रतिमा विराजमान करनेका विचार किया किन्तु प्रतिमा वहाँसे हटी नहीं। तब रामसेन वहाँसे चले गये।

पश्चात् राजाने पद्मप्रभ मलधारी भट्टारकको बुलाया। उन्होंने अपनी भक्तिसे धरणेन्द्रको प्रसन्न किया और धरणेन्द्रके आदेशानुसार प्रतिमाके चारों ओरसे दीवारें बनवाकर मन्दिरका निर्माण कराया।

इस प्रकार विद्याधर नरेश खरदूषणने जिस प्रतिमाकी स्थापना की थी, वह मूर्ति पहले कुएँमें निवास करती थी। ऐल श्रीपालने उसे कुएँ से निकाला और उसका देवालय बनवाया।

ये किंवदन्ती हैं। इससे मनको पूरा समाधान नहीं हो पाता, बल्कि मनमें कुछ शंकाएँ भी उठ खड़ी होती हैं। जैसे (१) खरदूषण मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरके कालमें हुआ है जो कि तीर्थंकर परम्परामें बीसवें तीर्थंकर हैं। खरदूषणने उनकी प्रतिमा न बनाकर तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी प्रतिमा क्यों बनायी ? भविष्यमें होनेवाले पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी फणावलीयुक्त प्रतिमाकी कल्पना उसने क्योंकर कर ली ? (२) खरदूषणने जिस प्रतिमाको कुएँमें विराजमान कर दिया था, उस प्रतिमाकी ख्याति किस प्रकार हो गयी ? निर्वाण-काण्ड आदिसे ज्ञात होता है कि राजा ऐल श्रीपालसे पूर्व भी श्रीपुरके पार्श्वनाथकी ख्याति थी और यह अतिशय-क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध था।

इन प्रश्नोंका समाधान पाये बिना क्षेत्रका प्रामाणिक इतिहास खोजा नहीं जा सकेगा। क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन है, इसमें सन्देह नहीं है। यदि हम प्राकृत निर्वाण-काण्डमें आये हुए 'पासं सिरपुरि वंदमि' समेत अतिशय क्षेत्रों सम्बन्धी समस्त गाथाओंको बादमें की गयी मिलावट भी मान लें, जैसी कि कुछ विद्वानोंकी धारणा है, तब भी क्षेत्रको प्राचीन सिद्ध करनेवाले अन्य भी प्रमाण उपलब्ध हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, चालुक्य नरेश जयसिंहके वि. संवत् ५४५ (ई० सन् ४८८) के ताम्रशासनादेश द्वारा इस क्षेत्रको कुछ भूमि दान दी गयी थी। अर्थात् ईसा की पाँचवीं शताब्दीमें भी यह क्षेत्र प्रसिद्ध था।

आठवीं शताब्दीके आचार्य जिनसेनने 'हरिवंशपुराण'में श्रीपुर आदि नगरोंको दिव्य नगर माना है। बृहत् जैन शब्दार्णव, पृ. ३१७ के अनुसार 'इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा वि. संवत् ५५५ में हुई थी।'

सिरपुरके सन्दर्भ

Sirpur Inscription

(In Situ)

Shirpur is 37 miles from Akola. In the temple of Antariksha Parswanath, belonging to the Digamber Jain Community, there is an abroded inscription in Sanskrit, which seems to be dated in Sambat 1334. But Mr. Consens believes that the temple was built at least a hundred years earlier. The name

of Antariksha Parswanath with that of the builder of temple Jaysingh also occurs in the record."

—Consens Progress Report 1902, p. 3

and Epigraphia Indomoslemanica, 1907-8, P. 21

Inscriptions in the C. P. & Berar, by R. B. Hiralal, p. 389

—Central Provinces & Berar District Gazettier Akola District, Vol. VIII, by C. Brown I. C. S. & A. F. Nelson I.C.S. ने भी संवत् ५५५ का समर्थन किया है।

भ्रान्त धारणाएँ

श्रीपुरके पार्श्वनाथकी मूर्ति अत्यन्त चमत्कारपूर्ण, प्रभावक और अद्‌भुत है। इसका सबसे अद्‌भुत चमत्कार यह है कि यह अन्तरिक्षमें अधर विराजमान है। कहते हैं, प्राचीन कालमें यह अन्तरिक्षमें एक पुरुषसे भी अधिक ऊँचाईपर अधर विराजमान थी। श्री जिनप्रभसूरि श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ कल्पमें इस मूर्तिकी ऊँचाई इतनी मानते हैं, जिसके नीचेसे सिरपर घड़ा लिये हुए स्त्री आसानीसे निकल जाये। उपदेश सप्ततिमें सोमधर्म गणी बताते हैं कि पहले यह प्रतिमा इतनी ऊँची थी कि घटपर घट धरे स्त्री इसके नीचेसे निकल सकती थी। श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ छन्दमें श्री लावण्य समय नीचेसे एक घुड़सवार निकल सके इतनी ऊँचाई बताते हैं।

इस प्रकारकी कल्पनाओंका क्या आधार रहा है, यह किसी आचार्यने उल्लेख नहीं किया और दुर्भाग्यसे ऐसे सन्दर्भ प्राप्त नहीं हैं जो उनकी धारणा या कल्पनाका समर्थन कर सकें। श्रद्धाके अतिरेकमें जनतामें नाना प्रकारकी कल्पनाएँ बनने लगती हैं। आचार्योंने जैसा सुना, वैसा लिख दिया। उनके कालमें मूर्ति भूमिसे एक अंगुल ऊपर थी, आज भी वह अन्तरिक्षमें अधर स्थित है।

कहनेका सारांश यह है कि जिसकी ख्याति हो जाती है, उसके सम्बन्धमें कुछ अतिशयोक्ति होना अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु उसके बारेमें भ्रान्ति या विपर्यास होना खेदजनक है। इस क्षेत्रकी अवस्थितिके बारेमें भी कुछ भ्रान्तियाँ हो गयी हैं। जैसे, श्रीपुर पार्श्वनाथ क्षेत्र कहाँ है, इस सम्बन्धमें कई प्रकारकी मान्यताएँ प्रचलित हैं। सुप्रसिद्ध जैन इतिहासवेत्ता पं. नाथूराम प्रेमी धारवाड़ जिलेमें स्थित शिरूर गाँवको श्रीपुर मानते हैं। इस स्थानपर शक संवत् ७८७ का एक शिलालेख भी उपलब्ध हुआ था। बर्गेस आदि पुरातत्त्ववेत्ता बेसिंग जिलेके सिरपुर स्थानको प्रसिद्ध जैन तीर्थ मानते हैं तथा वहाँ प्राचीन पार्श्वनाथ मन्दिर भी मानते हैं।

किन्तु हमारी विनम्र सम्मतिमें ये दोनों ही मान्यताएँ नाम-साम्यके कारण प्रचलित हुई हैं। श्वेताम्बर मुनि शीलविजयजी (विक्रम सं. १७४८) ने 'तीर्थमाला' नामक ग्रन्थमें अपनी तीर्थ-यात्राका विवरण दिया है। उस विवरणको यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये, तो श्रीपुरके सम्बन्धमें कोई भ्रान्ति नहीं रह सकती। उन्होंने अपनी दक्षिण यात्राका प्रारम्भ नर्मदा नदीसे किया था। सबसे प्रथम वे मानधाता गये। उसके बाद बुरहानपुर होते हुए देवलघाट चढ़कर बरारमें प्रवेश करते हैं। वहाँ "सिरपुर नगर अन्तरीक पास, अमीझरो वासिम सुविलास" कहकर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ और वाशिमका वर्णन करते हैं। उसके बाद लूणारगाँव, ऐलिचपुर और कारंजाकी यात्रा करते हैं।

इस यात्रा-विवरणसे इसमें सन्देहका रंचमात्र भी स्थान नहीं रहता कि वर्तमान सिरपुर पार्श्वनाथ ही श्रीपुर पार्श्वनाथ है। वाशिम, लूणारगाँव, ऐलिचपुर और कारंजा इसीके निकट हैं। मुनि शीलविजयजीने सिरपुर पार्श्वनाथको अन्तरिक्षमें विराजमान पार्श्वनाथ लिखा है।

वर्तमान सिरपुर पार्श्वनाथ तो अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ कहलाता ही है और वस्तुतः यह प्रतिमा भूमिसे एक अंगुल ऊपर अन्तरिक्षमें विराजमान है। जबकि धारवाड़के शिरूर गाँव अथवा बेसिंग जिलेके सिरपुर गाँवके पार्श्वनाथ मन्दिरमें जो पार्श्वनाथ-प्रतिमा हैं, वह न तो अन्तरिक्षमें स्थित है और न उन प्रतिमाओंको अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ ही कहा जाता है।

धारवाड़ (मैसूर प्रान्त) जिलेके शिरूरके पक्षमें एक प्रमाण अभिलेख सम्बन्धी दिया जाता है, वह एक ताम्रपत्र है, जिसके अनुसार शक संवत् ६९८ (ई. स. ७७६) में पश्चिमी गंगवंशी नरेश श्रीपुर द्वारा श्रीपुरके जैन मन्दिरके लिए दान दिया गया। यह मन्दिर निश्चय ही गंगवाड़ी प्रदेशमें होगा। इसलिए धारवाड़ जिलेके शिरूर गाँवको श्रीपुर माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। इस सम्भावनासे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि विद्यानन्द स्वामीने जिस 'श्रीपुर पार्श्वनाथ-स्तोत्र' की रचना की है, वह श्रीपुर भी वर्तमान शिरूर गाँव ही हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि गंगवाड़ीका श्रीपुर (वह शिरूर हो अथवा अन्य कोई) प्राचीन कालमें अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान था और वहाँ कोई पार्श्वनाथ मन्दिर था। उसकी ख्याति भी दूर-दूर तक थी। प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् आचार्य विद्यानन्द गंगवंशी नरेश शिवमार द्वितीय (राज्यारोहण सन् ८१०, श्रीपुरुषके पुत्र) और राचमल्ल सत्यवाक्य (शिवमारका भतीजा, राज्यारोहण-काल सन् ८१६) इन दोनों नरेशोंके समकालीन थे। उनका कार्य-क्षेत्र भी प्रायः गंगवाड़ी प्रदेश ही रहा है। श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्रके रचयिता ये ही दार्शनिक आचार्य विद्यानन्द हैं अथवा वादी विद्यानन्द, यह अभी तक निर्णय नहीं हो पाया। यदि दार्शनिक आचार्य विद्यानन्द इसके रचयिता सिद्ध हो जाते हैं तो कहना होगा कि श्रीपुरके उक्त पार्श्वनाथ मन्दिरके साथ आचार्य विद्यानन्दका भी सम्बन्ध था।

श्रीपुर (गंगवाड़ी) के इन पार्श्वनाथके साथ एक और महत्त्वपूर्ण घटनाका सम्बन्ध बताया जाता है। वह घटना है आचार्य पात्रकेशरीकी। आचार्य पात्रकेशरी एक ब्राह्मण विद्वान् थे। उनकी धारणा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि जिस ग्रन्थ को वे दो बार पढ़ या सुन लेते थे, वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाता था। एक दिन वे पार्श्वनाथ मन्दिरमें गये। वहाँ एक मुनि देवागम स्तोत्रका पाठ कर रहे थे। उस स्तोत्रको सुनकर पात्रकेशरी बड़े प्रभावित हुए। स्तोत्र समाप्त होनेपर पात्रकेशरीने उन मुनिराजसे स्तोत्रकी व्याख्या करनेके लिए कहा। मुनिराज सरल भावसे बोले—"मैं इतना विद्वान् नहीं हूँ जो इस स्तोत्रकी व्याख्या कर सकूँ।" तब पात्रकेशरीने उनसे स्तोत्रका एक बार फिर पाठ करनेका अनुरोध किया। मुनिराजने उसका पुनः पाठ किया। सुनकर पात्रकेशरीको वह स्तोत्र कण्ठस्थ हो गया। वे घर जाकर उसपर विचार करने लगे, किन्तु अनुमानके विषयमें उनके मनमें कुछ सन्देह बना रहा। वे विचार करते-करते सो गये। रात्रिमें उन्हें स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्नमें उनसे कोई कह रहा था—"तुम क्यों चिन्तित हो। प्रातः पार्श्वनाथके दर्शन करते समय तुम्हारा सन्देह दूर हो जायेगा।" प्रातःकाल होनेपर वे पार्श्वनाथ मन्दिरमें गये। वहाँ पार्श्वनाथका दर्शन करते समय उन्हें फणपर एक श्लोक अंकित दिखाई दिया। श्लोक इस प्रकार था—

"अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥"

श्लोक पढ़ते ही उनका सन्देह जाता रहा। उनके मनमें जैनधर्मके प्रति अगाध श्रद्धाके भाव उत्पन्न हो गये। वे विचार करने लगे—"मैंने अब तक अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट किया। मैं अब तक मिथ्यात्वके अन्धकारमें डूबा हुआ था। अब मेरे हृदयके चक्षु खुल गये हैं।

मुझे अब एक क्षणका भी विलम्ब किये बिना आत्म-कल्याणके मार्गमें लग जाना चाहिए।" उन्होंने जिनेन्द्र प्रतिमाके समक्ष हृदयसे जैनधर्मको अंगीकार किया और दिगम्बर मुनि-दीक्षा ले ली। वे जैन दार्शनिक परम्पराके जाज्वल्यमान रत्न बने। इस प्रकार पात्रकेशरीको श्रीपुरके पार्श्वनाथके समक्ष आत्म-बोध प्राप्त हुआ।

इस सम्पूर्ण कथनका सारांश यह है कि श्रीपुर नामक कई नगर थे। उन नगरोंमें पार्श्वनाथ मन्दिर और पार्श्वनाथ-प्रतिमाकी भी प्रसिद्धि थी। किन्तु इन सबमें अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ केवल एक ही थे और वे थे उस श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर) में, जो वर्तमानमें अकोला जिलेमें स्थित है। आचार्य विद्यानन्द अथवा पात्रकेशरीकी घटना किस श्रीपुरके पार्श्वनाथ मन्दिरमें घटित हुई, यह अवश्य अन्वेषणीय है। आचार्य पात्रकेशरीसे सम्बन्धित घटना अहिच्छत्रमें घटित हुई, इस प्रकारके उल्लेख भी कई ग्रन्थों और शिलालेखोंमें उपलब्ध होते हैं। आराधना कथाकोश-कथा १ में उस घटनाको अहिच्छत्रमें घटित होना बताया है। इसलिए इस सम्बन्धमें भी विश्वासपूर्वक कहना कठिन है कि वस्तुतः यह घटना श्रीपुरमें घटित हुई अथवा अहिच्छत्र में? यदि श्रीपुरमें घटित हुई तो किस श्रीपुर में?

ऐल श्रीपाल कौन था?

ऐलवंशी नरेश श्रीपालका कुष्ठ रोग अन्तरिक्ष पार्श्वनाथके माहात्म्यके कारण वहाँके कुएँके जलमें स्नान करनेसे जाता रहा, इस प्रकारका उल्लेख हम इस लेखके प्रारम्भमें कर चुके हैं। वह श्रीपाल कौन था? कुछ लोग इस श्रीपाल और पुराणोंमें वर्णित कोटिभट श्रीपालको एक व्यक्ति मानते हैं जो मैनासुन्दरीका पति था, किन्तु यह मान्यता निराधार है और केवल नाम-साम्यके कारण है। वस्तुतः कोटिभट श्रीपाल भगवान् नेमिनाथके तीर्थमें हुए हैं, जबकि ऐल-श्रीपालका काल अनुमानतः दसवीं शताब्दीका उत्तरार्ध है। इसी ऐल नरेशने पार्श्वनाथ मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिरमें कई शिलालेख मिलते हैं। किन्तु उनमें जो अंश पढ़ा जा सका है, उसमें रामसेन, मल्लपद्मप्रभ, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्पष्ट पढ़े गये हैं। पवली मन्दिरके द्वारके ललाटपर एक लेख इस प्रकार पढ़ा गया है—'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य प्रतिष्ठित।'

इन लेखोंमें आचार्य रामसेन, आचार्य मलधारी पद्मप्रभ, आचार्य नेमिचन्द्र इन आचार्योंका नामोल्लेख है। ये सभी आचार्य समकालीन थे और इनके समयमें ऐल श्रीपाल ऐलिचपुरका राजा था। वह राष्ट्रकूट नरेश इन्द्रराज तृतीय और चतुर्थका सामन्त था। जिला बैतूलके खेरला गाँवसे शक सं. १०७९ और १०९४ (क्रमशः ई. स. ११५७ और ११७२) के दो लेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें श्रीपालकी वंश-परम्परामें नृसिंह, बल्लाल और जैनपाल नाम दिये हुए हैं। खेरला गाँव राजा श्रीपालके आधीन था। राजा श्रीपालके साथ महमूद गजनवी (सन् ९९९ से १०२७) के भानजे अब्दुल रहमानका भयानक युद्ध हुआ था। 'तवारीख-ए अमजदिया' नामक ग्रन्थके अनुसार यह सन् १००१ में ऐलिचपुर और खेरलाके निकट हुआ था। अब्दुल रहमानका विवाह हो रहा था। वह नौशेका मौर बांधे हुए बैठा था। तभी युद्ध छिड़ गया। वह दूल्हेके वेषमें ही लड़ा। इस युद्धमें दोनों मारे गये। यह स्थान अचलपुर-बैतूल रोडपर खरपीके निकट माना जाता है।

ऐल श्रीपाल जैन धर्मका कट्टर उपासक था। इसी कुएँके जलसे कुष्ठ रोग ठीक हो जानेपर उसने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्ति कुएँके जलसे निकलवायी और मन्दिर बनवाया। इसीने ऐलोराकी विश्वविख्यात गुफाओंका निर्माण कराया था।

यह भी कहा जाता है कि इस राजाने सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरिपर भी मन्दिरका निर्माण कराया था।

इस प्रकार अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मन्दिरका निर्माता ऐल श्रीपाल था। उसने ऐलिचपुर, ऐलौरा आदि कई नगर अपने वंश-नामपर बसाये।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है। जब ऐल श्रीपाल ऐलिचपुरमें शासन कर रहा था, लगभग उसीके कालमें आश्रमनगरमें एक परमारवंशी श्रीपाल शासन कर रहा था। यह राजा भोजका सम्बन्धी और सामन्त था, जबकि ऐल श्रीपाल राष्ट्रकूट नरेश इन्द्रराजका सामन्त था। आश्रमनगरके श्रीपालके सम्बन्धमें ब्रह्मदेव सूरि कृत बृहद्द्रव्यसंग्रह-टीकाके आद्यवाक्यमें इस प्रकार परिचय दिया गया है—"अथ मालवदेशे धारा नाम नगराधिपतिराजभोजदेवाभिधान-कलिकाल-चक्रवर्तिसंबन्धिन: श्रीपालमहामण्डलेश्वरस्य....।" इसमें श्रीपालको भोजराजका सम्बन्धी और महामण्डलेश्वर माना है और वह आश्रमपत्तन नगरका शासक बताया है। दोनों श्रीपालोंका काल समान है, नाम समान है, सामन्त-पद भी समान है। अतः दोनों श्रीपालोंके सम्बन्धमें भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। किन्तु दोनों का वंश समान नहीं है, दोनोंके स्वामी समान नहीं हैं। फिर विचार करने की बात यह है कि राजा भोज-जैसा अनुभवी शासक आश्रमपत्तन नगर (बूँदी जिला) का शासन ऐलिचपुर (अकोला जिला) में बैठे हुए व्यक्तिको क्यों सौंपेगा, जबकि ऐलिचपुरकी अपेक्षा धारानगरी आश्रमपत्तनके अधिक निकट है। इसलिए नामसाम्य होनेपर भी दोनों श्रीपाल भिन्न व्यक्ति हैं।

यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है। ब्रह्मदेव सूरिने बृहद्द्रव्यसंग्रहकी टीकाके उत्थानिका-वाक्यमें यह सूचना दी है कि आश्रमपत्तन नगरमें सोम श्रेष्ठीके अनुरोधपर नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेवने लघु द्रव्य-संग्रह रची और फिर तत्त्वज्ञानके विशद बोधके लिए बृहद्द्रव्य-संग्रहकी रचना की। दूसरी ओर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मन्दिरके द्वारके ऊपर अंकित लेखमें 'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य प्रतिष्ठित' यह वाक्य दिया है। यद्यपि यह वाक्य अधिक प्राचीन नहीं लगता, किन्तु नेमिचन्द्राचार्य नामसे भ्रान्ति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इससे तो ऐसा आभास होता है कि आश्रमपत्तन नगरके शासक श्रीपाल और ऐलिचपुरके शासक श्रीपालमें अभिन्नता है तथा आश्रमपत्तन नगरमें बैठकर जिन नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेवने द्रव्यसंग्रहकी रचना की, उन्होंने ही अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा की।

किन्तु वस्तुतः नामसाम्य होनेपर भी ये व्यक्ति अलग-अलग हैं क्योंकि धारानरेश भोज और ऐल श्रीपालका समय भिन्न है। भोज ई. सन् १००० में गद्दीपर बैठा और श्रीपालकी मृत्यु सन् १००१ में हो गयी। केवल एक वर्षका ही काल दोनोंका समान था। अतः इस एक वर्षमें श्रीपाल द्वारा मन्दिर-निर्माणका कार्य सम्भव नहीं हो सकता।

मन्दिर और मूर्ति दिगम्बर आम्नाय की हैं

पवली मन्दिर, सिरपुर मन्दिर, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्ति तथा अन्य सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मन्दिरका निर्माण दिगम्बर धर्मानुयायी ऐल श्रीपालने कराया, मूर्तियोंके प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य दिगम्बर धर्मानुयायी रहे हैं। मूर्तियोंकी वीतराग ध्यानावस्था दिगम्बर धर्मसम्मत और उसके अनुकूल है। इस मन्दिर और मूर्तियोंके ऊपर प्रारम्भसे दिगम्बर समाजका अधिकार रहा है। इसके अतिरिक्त पुरातात्त्विक,

साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्य भी मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र सम्पूर्णतः दिगम्बर धर्मानुयायियोंका है।

श्वेताम्बर मुनि शीलविजयजीने १७वीं शताब्दीमें दक्षिणके तीर्थोंकी यात्रा की थी। उन्होंने 'तीर्थमाला' नामसे अपनी यात्राका विवरण भी पुस्तकके रूपमें लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा है कि यहाँसे समुद्र तक सर्वत्र दिगम्बर ही बसते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने सिरपुर अन्तरिक्षको दिगम्बर क्षेत्र लिखा है।

इससे पूर्व यतिवर्य मदनकीर्ति (ईसाकी १३वीं शताब्दी) अन्तरिक्ष पार्श्वनाथको स्पष्ट ही दिगम्बरोंके शासनकी विजय करनेवाला अर्थात् दिगम्बर धर्मकी मूर्ति बता ही चुके थे।

यहाँ उत्खननके फलस्वरूप जो पुरातत्त्व उपलब्ध हुआ है, उससे भी सिद्ध होता है कि ये मन्दिर और मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी हैं। प्रथम उत्खनन १९२८ ई. में हुआ था। सिरपुर गाँवके बाहर पश्चिम दिशाकी ओर पवली मन्दिर है। मन्दिरकी दीवारके इर्द गिर्द पक्के फर्शके ऊपर ४-५ फुट मिट्टी चढ़ गयी थी। उसे सन् १९६७ में हटाया गया। फलतः मन्दिरके तीन ओर दरवाजोंके सामने १० × १० फुटके चबूतरे और सीढ़ियाँ निकलीं। इसके अतिरिक्त पाषाणकी खड्गासन सर्वतोभद्रिका जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब स्तम्भ, एक शिलालेखयुक्त स्तम्भ और अन्य कई प्रतिमाएँ निकली हैं। गर्भगृहकी बाह्य भित्तियाँ भी निकली हैं, जिनमें १८ इंच या इससे भी लम्बी, ९ इंच चौड़ी और २ फुट ३ इंच मोटी ईंटें लगी हुई हैं।

इसी प्रकार मन्दिरके अन्दर गर्भगृहके सामने पत्थरके चौके लगानेके लिए खुदाई की गयी। खुदाईमें दिनांक ६-३-६७ को ११ अखण्ड जैन मूर्तियाँ निकलीं। इनमें एक मूर्ति मूँगिया वर्णकी तथा शेष हरे पाषाणकी हैं। सभीके पादपीठपर लेख उत्कीर्ण हैं। इन लेखोंमें आचार्य रामसेन, मलधारी पद्मप्रभ, नेमिचन्द्र आदिका नामोल्लेख मिलता है, जो दिगम्बर आचार्य थे। इन मूर्तियों, स्तम्भों और लेखोंमें एक भी वस्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायसे सम्बन्धित नहीं है, सभी दिगम्बर मान्यताके अनुकूल हैं।

पुरातत्त्व-विभागके पूर्वांचलकी सर्वे रिपोर्ट (१७-४-७३) में लिखा है—सिरपुरका प्राचीन मन्दिर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथका है तथा वह दिगम्बर जैनोंका है।

लिस्ट ऑफ प्रोटेक्टेड मौन्यूमेण्ट (List of Protected Monuments, inspected by the Govt. of India, correted on Sept. 1920)—यह सिरपुर गाँवके बाहरका अन्तरिक्ष पार्श्वनाथका मन्दिर जैनोंका है तथा पुरातत्त्व विभागने इसको संरक्षित करके अपने अधिकारमें लिखा है और ता. ८ मार्च १९२१ के करारके अनुसार दिगम्बरी लोग साधारण मरम्मत कर सकते हैं तथा विशेष मरम्मत सिर्फ सरकार ही करेगी।

इसके पश्चात् पुरातत्त्व विभाग भोपालकी ओरसे दिनांक ५-१२-६४ को दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके नाम एक महत्त्वपूर्ण पत्र आया। उसमें लिखा है—"सरकारकी ओरसे सिरपुरके पवली मन्दिरकी मरम्मत नहीं हो सकी क्योंकि पवली मन्दिर सुरक्षित स्थानोंकी सूचीमेंसे निकाल दिया है। आप मालिक हैं। अब आप उचित मरम्मत करा सकते हैं।"

इस मन्दिरके सम्बन्धमें इम्पीरियल गजेटीयर (आक्सफोर्ड) बाशिम डिस्ट्रिक्ट-भाग ७, पृ. ९७ पर उल्लेख है कि अन्तरिक्ष पार्श्वनाथका प्राचीन मन्दिर इस जिलेमें सबसे अधिक आकर्षक कलापूर्ण स्थान है। यह मन्दिर दिगम्बर जैनोंका है।

यहाँ खुदाईमें जो मूर्तियाँ और स्तम्भ निकले थे, उनके लेख इस प्रकार पढ़े गये हैं—

१. नेमिनाथ भगवान्—अवगाहना ७ इंच, संवत् १७२७ मार्गशीर्ष सुदी ३ शुक्रे श्री काष्ठासंघे माथुरगच्छे पुष्करगणे श्री लोहाचार्यान्वये भट्टारकश्रीलक्ष्मीसेनाम्नाये भट्टारकश्रीगुणभद्रोपदेशात्···ज्ञातीय इक्ष्वाकुवंशे उपरोत पाबायक गोत्रे स. क तस्यात्मज स. वासुदेव तस्यात्मज······ इदं बिम्बं प्रणमति।

२. भगवान् पार्श्वनाथ—अवगाहना ७ इंच, संवत् १७५४ वैशाख सुदी १३ शुक्रवार काष्ठासंघे······प्रतिष्ठा।

३. भगवान् पार्श्वनाथ—अवगाहना ८ इंच। शके १५९१ फाल्गुण सुदी द्वितीया सेनगणे भ. सोमसेन उपदेशात् श्रीपुर नगरे प्रतिष्ठा।

४. भगवान् पार्श्वनाथ—अवगाहना ९ इंच। स्वस्ति श्री संवत् १८११ माघ शुक्ला १० श्री कुन्दकुन्दाम्नाये गुरु ज्ञानसेन उपदेशात् आदिनाथ तत्पुत्र पासोवा सडतवाल (पुत्र) कृपाल जन्मनिमित्ते श्रीपुर नगरे अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पवली जिनालय जीर्णोद्धार कृत्य प्रतिष्ठितमिदं बिम्बं।

५. पाषाणस्तम्भ—श्री अन्तरिक्ष नमः गुरु कुन्दकुन्द नमः संवत् १८११ माघ सुदी १० आदिनाथ पुत्र पासोवा सडतवाल·········पुत्र कृपाला जमे देंऊल उद्धार केले।

इन मूर्ति लेखोंसे भी यह स्पष्ट है कि ये मूर्तियाँ और जिनालय दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। इनके निर्माता, प्रतिष्ठापक, प्रतिष्ठाचार्य आदि सभी दिगम्बरी थे।

क्षेत्र-दर्शन

पवलीका दिगम्बर जैन मन्दिर—सिरपुर गाँवके बाहर अति प्राचीन हेमाड़पंथी शैलीका दिगम्बर जैन मन्दिर है। यहींपर राजा ऐल श्रीपालका कुष्ठ रोग यहाँके कुएँके जलमें स्नान करनेसे ठीक हुआ था। इस कुएँमेंसे ही उसने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्ति निकाली थी और उसने यहींपर मन्दिरका निर्माण कराया था। पवलीका यह मन्दिर ऐल श्रीपाल द्वारा बनवाया हुआ है। कहा जाता है कि इस मन्दिरके शिखरमें ऐसी ईंटोंका प्रयोग किया गया था, जो जलमें तैरती हैं। यद्यपि इन ईंटोंका प्रयोग बहुत ही कम हुआ है, अधिकांशतः पाषाणका प्रयोग हुआ है। यह मन्दिर अष्टकोण आकारका है और अत्यन्त कलापूर्ण है। इस पाषाण-मन्दिरके नीचे ईंटोंका चबूतरा बना है। ये ईंटें भी आकारमें बड़ी और अधिक प्राचीन हैं। लगता है, वर्तमान पाषाण मन्दिरके निर्माणके पहले यहाँ ईंटोंका कोई प्राचीन मन्दिर था।

मराठी भाषामें पोल शब्दका अर्थ है मिट्टी गारेकी सहायताके बिना बनायी गयी पत्थरकी दीवार। लगता है इस पोल शब्दसे ही अपभ्रंश होकर पवली शब्द बन गया और वह मन्दिरका ही नाम हो गया। यह मन्दिर गाँवके बाहर पश्चिमकी ओर वृक्षोंकी पंक्तिके मध्य खड़ा हुआ है। इस मन्दिरमें पूर्व, उत्तर और दक्षिणकी ओर पत्थरके द्वार बने हुए हैं। द्वारोंके सिरदलपर पद्मासन दिगम्बर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसी प्रकार द्वारोंके दोनों ओर खड्गासन दिगम्बर जैन मूर्तियाँ और आम्रपत्रोंसे वेष्टित कलशोंका अंकन बड़ा भव्य प्रतीत होता है। दक्षिण द्वारपर तीर्थंकरोंके जीवनसे सम्बन्धित अत्यन्त कलापूर्ण चित्रांकन है। पूर्वके द्वारपर तीन-तीन पंक्तियोंके दो शिलालेख हैं जिन्हें इस प्रकार पढ़ा जा सका है—

ऊपरका शिलालेख—शाक ९०९.......पंच......मूलसंघे......(बलात्कार) भट्टारक श्री... जि...न....रा (ज्ञी) रा (जा) मति श्री भूपालभूप श्री पार्श्वनाथ बि......(राष्ट्रकूटसंघ)....श्री जे (जि) न···(प्र) तिष्ठित····(इन्द्र) राज (हने) श्रीपाल इह श्रीरायतनं।

दूसरा शिलालेख—॥ स....१३३८ वैशाख सुदि ..श्री मालवस्थ ठः रामल पौत्र ठः भोज पुत्र अमर (कुल) समुत्पन्न संघपति ठः श्री जगसिंहेन अन्तरिक्ष श्री पार्श्व (ना) थ निजकुल (उद्धारक) षटखड वंश......राज........।

गर्भगृहमें भगवान् पार्श्वनाथकी ३ फीट ६ इंच उत्तुंग संवत् १४५७ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। शीर्षपर ९ फण सुशोभित हैं। वक्षपर श्रीवत्स अंकित है। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। इस वेदीपर पाषाणकी ३२ और धातुकी ४ मूर्तियां हैं।

गर्भगृहके द्वारपर अर्हन्त और देव-देवियोंकी प्रतिमा बनी हुई हैं। द्वार अलंकृत है। गर्भगृहके आगे दालान बना हुआ है। बायीं ओर २ फीट २ इंच ऊँचे एक पाषाण फलकमें अर्धपद्मासन दिगम्बर प्रतिमा बनी हुई है। परिकरमें भामण्डल, छत्र और कोनोंमें पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। अधोभागमें खड्गासन दिगम्बर मूर्तियाँ हैं।

इस वेदीसे आगे बायीं ओर एक वेदीमें १ फुट ६ इंच ऊँचे फलकमें भगवान् महावीरकी अर्ध पद्मासन मूर्ति है। इससे आगे २ फीट ६ इंच ऊँचे फलकमें पार्श्वनाथकी प्रतिमा उत्कीर्ण है। ये तीनों मूर्तियाँ प्राचीन हैं।

दालानमें दायीं ओर २ फीट २ इंच ऊँचे शिलाफलकमें अर्ध पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। सिरके पृष्ठ भागमें भामण्डल और उपरिभागमें छत्रकी संयोजना है। ऊपर दोनों कोनोंपर दो पद्मासन और नीचे दो खड्गासन मूर्तियोंका अंकन है। इससे आगे बढ़नेपर दूसरी वेदीमें श्वेत पाषाणकी चन्द्रप्रभ भगवान्‌की पद्मासन मूर्ति है। इसकी अवगाहना १ फुट ५ इंच है और वीर संवत् २४९६ में प्रतिष्ठित हुई है। इस वेदीसे आगे बढ़नेपर तीसरी वेदीमें २ फीट ७ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें संवत् १५४५ की पार्श्वनाथ मूर्ति है। यह श्यामवर्ण है और पद्मासन है। इसके परिकरमें गजारूढ़ इन्द्र तथा दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथके सेवक यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती है। नीचे चरणचौकीपर गज बने हुए हैं, जो इन्द्रके ऐरावत गजके प्रतीक हैं। मध्यमें धरणेन्द्र उत्कीर्ण हैं।

गर्भगृहके सामने चार स्तम्भोंपर आधारित खेलामण्डप बना हुआ है। स्तम्भोंपर तीर्थंकरों, मुनियों और भक्ति-नृत्यमें लीन भक्तोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मण्डपके मध्यमें गोलाकार चबूतरा बना हुआ है जो सम्भवतः पूजा, मण्डल विधानके प्रयोजनसे बनाया गया है।

यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है। उत्तर और दक्षिण द्वारोंके आगे अर्धमण्डप बने हुए हैं। दक्षिण द्वारपर दो चैत्यस्तम्भ रखे हुए हैं, जिनमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ हैं। पूर्व द्वारके आगेका अर्धमण्डप गिर गया है। यह मन्दिर अठकोण बना हुआ है। इसकी रचना शैली अत्यन्त आकर्षक है।

मन्दिरके आगे बायीं ओर चबूतरेपर भट्टारक शान्तिसेन, भट्टारक जिनसेन और भट्टारकोंके शिष्योंकी समाधियाँ बनी हुई हैं।

इस मन्दिरके सामने एक और जिनालय है। इसमें प्रवेश करनेपर बायीं ओर २ फीट ५ इंच उत्तुंग पार्श्वनाथकी श्याम वर्ण पद्मासन मूर्ति है जो वीर संवत् २४९६ की प्रतिष्ठित है। इस मूर्तिमें फणकी संयोजना नहीं की गयी, पादपीठपर सर्पका लांछन बना हुआ है। इसकी बायीं ओर ५ फीट ९ इंच उत्तुंग पंच फणावलिमण्डित श्यामवर्ण सुपार्श्वनाथकी खड्गासन प्राचीन मूर्ति है तथा दायीं ओर ५ फीट ६ इंच उन्नत नौ फण विभूषित पार्श्वनाथकी खड्गासन प्राचीन मूर्ति है। इस मूर्तिके सिरपर जटाएँ अंकित हैं।

इससे बायीं ओर बढ़नेपर पार्श्वनाथकी ३ फीट ५ इंच ऊँची श्याम वर्णकी खड्गासन मूर्ति है। इसके सिरपर सप्तफण मण्डप है। इसके आगे बायीं ओर बढ़नेपर ३ फीट ४ इंच ऊँचे

फलकमें मध्यमें खड्गासन और ऊपर-नीचे दो-दो पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये मूर्तियाँ यहीं उत्खननमें निकली थीं।

यहाँ मन्दिरके बाहर अहातेमें १८ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं। ये सभी खण्डित हैं। ये मूर्तियाँ इसी मन्दिरसे खुदाईमें निकली थीं। यहाँ एक कुआँ है। इसके जलसे कुष्ठ रोग, उदर रोग आदि ठीक हो जाते हैं, ऐसा कहा जाता है।

मन्दिरके पास धर्मशाला बनी हुई है जिसमें पाँच कमरे हैं। संवत् २०२६ में यहाँ पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी।

पवली मन्दिरके निकट एक जिनालय बना हुआ है। इसमें केवल गर्भगृह है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी ४ फीट ५ इंच ऊँची ९ फणवाली पद्मासन मूर्ति विराजमान है। मन्दिरका द्वार पूर्वाभिमुखी है।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ मन्दिर

इस मन्दिरके सम्बन्धमें यह अनुश्रुति है कि ऐल श्रीपालने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा इस मन्दिरमें नहीं करायी थी, बल्कि पवलीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें करायी थी। मुस्लिम कालमें, जब मूर्तियोंका व्यापक विनाश किया जा रहा था, तब अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्तिकी सुरक्षाके लिए पवलीके मन्दिरसे सिरपुरके इस मन्दिरमें लाकर भोंयरेमें विराजमान कर दिया गया था। पवली मन्दिरकी खण्डित मूर्तियोंको देखनेसे इस अनुश्रुतिमें सार दिखाई देता है। किन्तु यह मूर्ति किस संवत्में पवलीके मन्दिरसे लाकर यहाँ विराजमान की गयी, यह ज्ञात नहीं होता। इस सम्बन्धमें हमारी धारणा इससे भिन्न है। हमारी विनम्र मान्यता है कि ऐल श्रीपालने ही सिरपुरके जिनालयका निर्माण कराया था और पवलीके कुएँसे मूर्तिको निकालकर और यहाँ लाकर भूगर्भगृहमें विराजमान किया था। ऐल श्रीपालके सम्बन्धमें पूर्वमें जिस किंवदन्तीका उल्लेख किया गया है, उसमें भी यह बताया गया है कि ऐल श्रीपाल घासकी गाड़ीमें मूर्तिको कुछ दूर ले गया। जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो मूर्ति वहीं अचल हो गयी। इस अनुश्रुतिसे भी हमारी धारणाकी पुष्टि होती है। हमें लगता है, जहाँ पवली मन्दिर है, पहले उस स्थानपर कोई मन्दिर था। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्ति उसमें विराजमान थी। वह मन्दिर किसी कारणवश नष्ट हो गया या किसी आततायीने नष्ट कर दिया। उस कालमें मूर्तिको बचानेके उद्देश्यसे मूर्तिको कुएँमें छिपा दिया। ऐल श्रीपालने उस मूर्तिको कुएँसे निकाला और उसे लेकर चला। किन्तु सिरपुरमें आकर मूर्ति अचल हो गयी, तब उसने मूर्तिके ऊपर ही मन्दिरका निर्माण कराया। हमारी यह धारणा अधिक तर्कसंगत और स्थितिके अनुकूल लगती है। इस स्थितिमें यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि तब पवली मन्दिर किसने बनवाया? हमारी मान्यता है कि पवली मन्दिर भी ऐल श्रीपालने ही बनवाया। जहाँ उसने कुएँसे मूर्ति निकालकर रखी, उसी स्थानपर स्मृतिके रूपमें उसने मन्दिर बनवाया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऐल श्रीपाल कट्टर दिगम्बर धर्मानुयायी था। उसने वाशिम, मुक्तागिरि, ऐलौरा आदि कई स्थानोंपर दिगम्बर जिनालयोंका निर्माण कराया था। अतः पवली और सिरपुरके जिनालय मूलतः दिगम्बर जिनालय थे और हैं। उसने जिन रामसेन, मलधारी पद्मप्रभ और नेमिचन्द्रसे प्रतिष्ठा करायी थी, वे भी दिगम्बर जैन भट्टारक थे और उन्होंने दिगम्बर विधिसे ही प्रतिष्ठा की। अस्तु।

यह मन्दिर गाँवके मध्यमें गलीमें है। मन्दिरका प्रवेश-द्वार छोटा है। उसमें झुककर ही प्रवेश किया जा सकता है। प्रवेश करनेपर एक छोटा प्रांगण मिलता है। उसके तीन ओर बरामदे

हैं। यहीं दिगम्बर जैन गद्दी (कार्यालय) है तथा तिजोड़ी आदि रहती है। इस प्रांगणमें ऊपरसे ही अन्तरिक्ष पार्श्वनाथके दर्शनके लिए एक झरोखा बना हुआ है। इस झरोखेमें-से मूर्तिके स्पष्ट दर्शन होते हैं।

आँगनमें-से ही तलघर (भोंयरे) में जानेके लिए सोपान-मार्ग बना हुआ है। तलघरमें भगवान् पार्श्वनाथकी ३ फीट ८ इंच ऊँची और २ फीट ८ इंच चौड़ी कृष्ण वर्ण अर्धपद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति अत्यन्त अतिशयसम्पन्न और मनोज्ञ है। इसके शीर्षपर सप्तफणावलि सुशोभित है। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। वक्षपर श्रीवत्सका अंकन है। सिरके पीछे भामण्डल है तथा सिरके ऊपर छत्र शोभायमान है। यह मूर्ति भूमिसे कुछ ऊपर अधरमें स्थित है। नीचे और पीछे कोई आधार नहीं है। केवल बायीं ओर मूर्तिका अंगुल-भर भाग भूमिको स्पर्श करता है। नीचेसे रूमाल निकल जाता है, केवल इस थोड़े-से भागमें आकर अड़ जाता है।

मूलनायकके आगे विधिनायक पार्श्वनाथकी छह इंच अवगाहना वाली लघु पाषाण प्रतिमा विराजमान है। दोनों ही मूर्तियोंके ऊपर लेख नहीं है।

दायीं ओर एक दीवार-वेदीमें मध्यमें महावीर स्वामीकी १ फुट ७ इंच उन्नत श्वेत खड्गासन प्रतिमा है। इसके बायीं ओर पार्श्वनाथकी १ फुट ४ इंच ऊँची श्वेत पद्मासन और दायीं ओर शान्तिनाथकी १ फुट २ इंच ऊँची संवत् १५४८ की प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है।

मूलनायकके बायें पार्श्वमें संवत् १९३० में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी १ फुट अवगाहना वाली श्वेत वर्णकी सहस्रफणवाली प्रतिमा है।

इससे आगेकी वेदीपर नेमिनाथकी संवत् १५६४ में प्रतिष्ठित १ फुट समुन्नत श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इससे आगे बढ़नेपर मुनिसुव्रतनाथकी संवत् १५४८ की १ फुट १ इंच ऊँची श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। फिर अरनाथकी संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित १ फुट २ इंच ऊँची श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। इससे आगे संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित १ फुट ४ इंच ऊँची आदिनाथ भगवान्‌की श्वेत पद्मासन मूर्ति है। इनसे ऊपर दीवार-वेदीमें संवत् १५६१ में प्रतिष्ठित और १ फीट ७ इंच उन्नत श्वेत वर्ण ऋषभदेव पद्मासन मुद्रामें आसीन हैं। इसके दोनों पार्श्वोंमें श्याम वर्ण तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। इनमें-से काले पाषाणकी एक मूर्ति आदिनाथकी है। यह ७ इंच ऊँची है और इसका प्रतिष्ठाकाल संवत् १९४६ है। दूसरी मूर्ति अनन्तनाथकी है। यह १० इंच ऊँची और अति प्राचीन है। इसपर ब्राह्मी लिपिमें दो पंक्तियोंका लेख है। इनके बगलमें ३ पाषाण चरण बने हुए हैं, जिनमें शक संवत् १८०८ के, नेमिसागरके और संवत् १९४६ के आदिनाथ और पार्श्वनाथके चरण हैं। इनके बगलमें २ फीट ३ इंच ऊँचे पाषाण-फलकमें पद्मावती देवी, ५ तीर्थंकर मूर्तियों और चमरवाहकोंका अंकन है। अधोभागमें दोनों किनारोंपर भैरव बने हुए हैं तथा संवत् १९३० का प्रतिष्ठा लेख खुदा है।

इन मूर्तियोंके बगलमें भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति कारंजाकी गद्दी है।

बायीं ओर बरामदेमें ५ वेदियाँ बनी हुई हैं, जिनमें काष्ठासनपर संवत् १५४८ की ४ मूर्तियाँ विराजमान हैं। एक वेदीमें अर्धपद्मासन अति प्राचीन तीर्थंकर मूर्ति भी विराजमान है। इसी बरामदेसे होकर नीचे तल-प्रकोष्ठ (भोंयरे) में जानेका सोपान-मार्ग है। यह आकारमें छोटा है, किन्तु इसमें सम्पूर्ण मन्दिरकी रचना दीख पड़ती है। २ फीट ७ इंच ऊँचे श्याम वर्ण शिलाफलकमें खड्गासन चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसे विघ्नहर पार्श्वनाथ भी कहते हैं। इसके परिकरमें छत्र, कीचक, मालावाहक देव, ४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ, चमरेन्द्र और भक्त हैं। इस मूर्तिके सामने क्षेत्रके रक्षक दो क्षेत्रपाल विराजमान हैं। यह भोंयरा आठ फीट ऊँचा है।

चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है। अनेक लोग यहाँ मनौती मनाने आते हैं। कहते हैं, लगातार पाँच रविवारोंको भक्तिपूर्वक इसके दर्शन करनेसे कामना पूर्ण होती है।

ऊपर आँगनके पास एक कमरेमें वेदीमें सहस्रफण पार्श्वनाथकी श्वेत वर्णवाली दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त पाषाणकी ९ और धातुकी २ प्रतिमाएँ हैं। एक चरण-पादुका भी है।

एक ओर भट्टारक वीरसेनकी गुरु-गद्दी है। उसके पास बरामदेमें भट्टारक विशालकीर्तिकी गद्दी है। इस प्रकार इस मन्दिरमें तीन भट्टारकोंके पीठ या गद्दियाँ रही हैं। लगता है, इन तीन भट्टारकोंमें भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति बलात्कारगणकी कारंजा शाखाके, भट्टारक वीरसेन सेनगण और भट्टारक विशालकीर्ति सम्भवतः बलात्कारगणकी लातूर शाखाके थे।

यह उल्लेखनीय है कि इस मन्दिरमें उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी हैं, नग्न दिगम्बर हैं। इनके प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य सभी दिगम्बर धर्मानुयायी थे, जैसा कि उनके मूर्ति-लेखोंसे ज्ञात होता है। भट्टारकोंकी तीन परम्पराओंकी यहाँ गद्दियाँ रही हैं। ये भट्टारक भी दिगम्बर धर्मानुयायी थे। कुल मिलाकर यह सिद्ध होता है कि मन्दिर और मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी हैं और सदासे दिगम्बर समाजके अधिकारमें रही हैं।

इस मन्दिरके ऊपर शिखर है तथा मन्दिरके द्वारपर नगाड़ाखाना है। मन्दिरके ऊपर दिगम्बरोंकी ध्वजा लगी हुई है। वर्षमें अनेक बार यात्रा उत्सव होते हैं, उन अवसरोंपर तथा जब कभी प्रतिष्ठा, विधान आदि होते हैं, उन अवसरोंपर दिगम्बर समाज पुरानी ध्वजा उतारकर नयी ध्वजा लगाती है।

नीचेके भोंयरेकी देहलियोंमें जहाँगीर और औरंगजेबकालीन रुपये जड़े हुए हैं। कुछ उखड़ भी गये हैं। यह मन्दिर पंचायतन कहलाता है। यहाँ पंचायतनसे प्रयोजन है, जिसमें आराध्य मूलनायककी मूर्ति हो, शासन देवोंकी मूर्ति हो, शास्त्रका निरूपण करनेवाले गुरुकी गद्दी हो, क्षेत्रपाल हो और सिद्धान्त-शास्त्र हों। ये सभी बातें यहाँपर हैं ही।

मन्दिरके चबूतरेके बगलमें एक कच्चा मण्डप है जो दिगम्बर समाजके अधिकारमें है। इसमें एक पीतलकी वेदीपर संवत् १९२५ में प्रतिष्ठित सुपार्श्वनाथ भगवान्की श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यहाँ दो चरण-चिह्न भी स्थापित हैं।

धर्मशाला

मण्डपके पीछे दिगम्बर समाजकी दो धर्मशालाएँ बनी हुई हैं—एक मण्डपके पीछे और दूसरी मन्दिरके पीछे। यहीं क्षेत्रका दिगम्बर जैन कार्यालय है। इन धर्मशालाओंमें यात्रियोंके लिए बिजली, गद्दे, तकिये, चादरें और बर्तनोंकी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मण्डपके पीछेवाली धर्मशालामें मीठे जलका कुआँ है, जिसमें मोटर फिट है तथा हैण्डपम्प लगा हुआ है। कुएँके पास ही स्नानगृह बना है। इन धर्मशालाओंमें कुल कमरोंकी संख्या ३७ है।

व्यवस्था

सिरपुर और पवलीके दोनों मन्दिरों, समाधियों तथा उनसे सम्बन्धित सम्पत्तिकी व्यवस्था 'दिगम्बर जैन तीर्थ कमेटी सिरपुर' द्वारा होती है। यह एक पंजीकृत संस्था है। इसका चुनाव वैधानिक ढंगसे नियमानुसार होता है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला कार्तिक शुक्ला १३ से १५ तक तीन दिन होता है। इस अवसरपर भगवान्की रथयात्रा निकलती है। मेलेमें लगभग ३-४ हजार व्यक्ति सम्मिलित होते हैं।

चैत्र शुक्ला १ को नव वर्षके उपलक्ष्यमें दो दिन मेला होता है। इस अवसरपर जलयात्रा होती है।

आषाढ़ शुक्ला १४-१५ को विशेष आयोजनके साथ अभिषेक और पूजन होता है।

निकटवर्ती तीर्थक्षेत्र

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ सिरपुरके पास वाशिममें अमोझरो पार्श्वनाथ (धाकड़ मन्दिर) और चिन्तामणि पार्श्वनाथ (सैतवाल मन्दिर) हैं जो ७०० वर्ष प्राचीन हैं। इन दोनों मन्दिरोंमें भोंयरे हैं।

ऐल राजाने बरार प्रदेशमें अनेक मन्दिरोंका निर्माण कराया था।

श्वेताम्बर समाज द्वारा कलह

श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन क्षेत्रका मन्दिर और मूर्तियाँ स्पष्टतः दिगम्बर आम्नाय की हैं, किन्तु श्वेताम्बरों द्वारा दिगम्बर तीर्थोंपर बलात् अधिकार करनेकी अपनी नीतिके कारण लगभग आधी शताब्दीसे इस क्षेत्रपर भी श्वेताम्बर समाज द्वार अनुचित कार्य किये जा रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व श्वेताम्बर लोगोंने दिगम्बर समाजसे केवल दर्शन-पूजनकी सुविधा मांगी थी। दिगम्बर समाजने उदारतावश उन्हें यह सुविधा प्रदान कर दी। परिणाम यह हुआ कि श्वेताम्बर भाइयोंने इस उदारताका लाभ उठाकर अपने पैर फैलाने शुरू कर दिये और सम्पूर्ण तीर्थपर अपना स्वामित्व जताने लगे। प्रीवी कौंसिल तक केस चले। वहांसे जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार दोनों मन्दिरों, उनकी मूर्तियों आदिका स्वामित्व और उनकी व्यवस्थाका दायित्व तो दिगम्बर समाजका है, केवल अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्तिके पूजनके लिए दोनों समाजोंके लिए तीन-तीन घण्टेका समय नियत कर दिया गया है।

यहाँ दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजके लिए सरकार द्वारा निर्धारित पूजा सम्बन्धी समय-सारणी दी जा रही है। यह सारणी केवल श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी मूर्तिकी पूजाके लिए है। मन्दिरमें विराजमान शेष मूर्तियोंकी पूजा करनेके लिए दिगम्बर समाज स्वतन्त्र है।

दिवस	दिनका समय				रात्रिका समय					
	६-९	९-१२	१२-३	३-६	६-८	८-१०	१०-१२	१२-२	२-४	४-६
रविवार	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.
सोमवार	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.
मंगलवार	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.
बुधवार शुक्लपक्ष	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.
बुधवार कृष्णपक्ष	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.
गुरुवार	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.
शुक्रवार	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.
शनिवार	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.	श्वे.	दि.

क्षेत्र सम्बन्धी पत्र व्यवहारका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन संस्थान
पो. सिरपुर (तालुका वाशिम)
जिला अकोला (महाराष्ट्र)

कारंजा

मार्ग और अवस्थिति

कारंजा मध्य रेलवेके मुर्तिजापुर-यवतमाल मार्गपर मुर्तिजापुरसे ३२ कि. मी. दूर स्टेशन है। अमरावती यहाँ ६२ कि. मी. है। विदर्भके सभी बड़े नगरोंसे सड़क-मार्ग द्वारा इसका सम्बन्ध है। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ यहाँसे मंगलरुलपीर और मालेगाँव होकर केवल ९२ कि. मी. है। यह जिला अकोलाका व्यापारिक केन्द्र और समृद्ध नगर है। नगरके समीप दरवाजों और दीवारोंके भग्नावशेष देखनेसे ज्ञात होता है कि पहले नगरके चारों ओर एक मजबूत किला होगा।

नगरके मन्दिर

नगरमें तीन प्रसिद्ध मन्दिर हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सेनगण मन्दिर, (२) श्री चन्द्रनाथ स्वामी काष्ठासंघ दिगम्बर जैन मन्दिर, (३) श्री मूलसंघ चन्द्रनाथ स्वामी बलात्कारगण दिगम्बर जैन मन्दिर। इन तीनों मन्दिरोंके नामोंसे ही ज्ञात होता है कि तीनों मन्दिर भट्टारकोंकी तीन परम्पराओंसे सम्बन्धित हैं। यद्यपि वर्तमानमें इन मन्दिरोंमें किसी भट्टारक-परम्पराका पीठ नहीं है, किन्तु १५-१६वीं शताब्दीसे इन मन्दिरोंमें भट्टारक-पीठ थे। पार्श्वनाथ मन्दिरमें सेनगणके भट्टारकोंका पीठ था; दूसरा मन्दिर काष्ठासंघके भट्टारकोंसे सम्बद्ध था और तीसरे मन्दिरमें मूलसंघ बलात्कारगणके भट्टारक रहते थे। ये भट्टारक अत्यन्त सक्रिय और कर्मठ थे। उनमें कार्यकी दृष्टिसे पारस्परिक स्पर्धा भी रहती थी। इसलिए कारंजा उस समय सामाजिक गतिविधियोंका केन्द्र बना हुआ था। विदर्भ प्रान्तकी सम्पूर्ण जैन समाज इस नगरसे मार्ग-दर्शन प्राप्त करती थी। इस दृष्टिसे कारंजाने विदर्भ-प्रान्तमें शताब्दियों तक सामाजिक नेतृत्वका गौरव प्राप्त किया। यहाँ इन तीनों मन्दिरोंकी मूर्तियों आदि-का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सेनगण मन्दिर—गर्भगृहमें भगवान् पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा है। यह १ फुट ४ इंच उन्नत है, श्वेत पाषाणकी है, पद्मासन है। इसके शीर्षपर सप्त-फणावलि सुशोभित है। कन्धेपर केशोंकी लटें पड़ी हुई हैं। वक्षपर श्रीवत्स है।

यहाँ सुपार्श्वनाथ भगवान्की २ फीट ४ इंच उत्तुंग श्याम वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसके सिरपर पाँच फण हैं। कन्धेपर जटाएँ हैं। वक्षपर श्रीवत्स है। चरणचौकीपर स्वस्तिक लांछन बना हुआ है। यक्ष-यक्षीका भी अंकन है। यह प्रतिमा बालूकी कही जाती है। इस प्रतिमाकी प्राप्तिका भी एक अद्भुत इतिहास है। चन्द्र तालाबपर एक धोबी कपड़े धोता था। जब वह कपड़ोंको पछीटता था तो आवाज आती थी कि धीरे-धीरे पछीट। इस बातकी उसने इधर-उधर चर्चा की। यह बात जैनोंके भी कानोंमें पहुँची। उन्होंने वहाँ जाकर उस स्थानको खुदवाया तो सुपार्श्वनाथकी यह प्रतिमा निकली।

इस मन्दिरमें पाषाणकी ६२ और धातुकी कुल ४९ मूर्तियाँ हैं। इसका सभामण्डप विशाल है। गर्भगृहके आगे बरामदेमें वीरसेन भट्टारककी गद्दी विद्यमान है। भट्टारक वीरसेनका पट्टाभिषेक इसी मन्दिरमें संवत् १९३५ में हुआ था और वे संवत् १९९५ तक ६० वर्ष पर्यन्त भट्टारक-पदको सुशोभित करके ज्येष्ठ शुक्ला २ संवत् १९९५ में स्वर्गवासी हुए। सेनगणके कारंजा पीठके वे अन्तिम भट्टारक थे। यहीं उनकी समाधि है। इन्होंने नागपुर, कलमेश्वर, कारंजा, पिपरी, भातकुली आदि कई स्थानोंपर मूर्ति-प्रतिष्ठाएँ करायीं।

इनसे पूर्व इसी परम्पराके भट्टारक सोमसेनने संवत् १५६१ में सम्भवनाथकी, भट्टारक जिनसेनने संवत् १५८० में पद्मावतीकी, भट्टारक शान्तिसेनने संवत् १६७५ में चन्द्रप्रभकी, भट्टारक सिद्धसेनने शक संवत् १६९२ में पार्श्वनाथकी मूर्ति-प्रतिष्ठा की। इसके अतिरिक्त इस परम्पराके अनेक भट्टारकोंने कारंजामें अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। कारंजाके भट्टारक सोमसेनके उपदेशसे उनके शिष्य कारंजा निवासी बघेरवाल ज्ञातीय खमडवाल (खटबड) गोत्रीय शाह जीजा और उनके पुत्र पूनसिंह (पुण्यसिंह) ने चित्रकूट नगर (चित्तौड़) में चन्द्रप्रभ जिनालयके सामने कीर्तिस्तम्भका निर्माण कराया था। शाह जीजाने १०८ जिनालयोंका जीर्णोद्धार कराया था, १०८ जिनालयोंकी प्रतिष्ठा करायी थी, १८ स्थानोंपर १८ कोटि शास्त्र भण्डारोंकी स्थापना की थी और सवा लाख बन्दियोंको मुक्त कराया था।

सेनगण मूलसंघ सूरस्थ पुष्करगच्छ वृषभसेनान्वयके निम्नलिखित भट्टारक इस मन्दिरमें भट्टारक-पीठपर आसीन रहे या उनका सम्बन्ध रहा—

सोमसेन, गुणभद्र, वीरसेन, श्रुतवीर, माणिकसेन, गुणसेन, लक्ष्मीसेन, सोमसेन, माणिक्यसेन, गुणभद्र इन भट्टारकोंका कारंजासे सम्बन्ध रहा है। सोमसेन (रामपुराणके रचयिता), जिनसेन, समन्तभद्र, छत्रसेन, नरेन्द्रसेन, शान्तिसेन, सिद्धसेन, लक्ष्मीसेन और वीरसेन ये भट्टारक यहाँके पीठपर आसीन रहे।

सेनगणके इस मन्दिरमें लगभग ४०० वर्ष प्राचीन पंचकल्याणक चित्रावली है जो मजबूत कपड़ेपर चित्रित है। यह स्वर्णांकित है। यह वस्त्र ३ फीट २ इंच चौड़ा है और ४१ फीट लम्बा है। इसमें पाँचों कल्याणकोंसे सम्बन्धित सुन्दर एवं कलापूर्ण चित्रावली है।

मन्दिरके आगे मानस्तम्भ है। मानस्तम्भके निकट दो छतरियोंमें यहाँके भट्टारकोंके संवत् १९२२ के सात चरण बने हुए हैं।

यहाँ चैत्र कृष्णा प्रतिपदाको रथयात्रा होती है और पद्मावती देवीका मेला होता है। पर्यूषणके बाद यहाँ जलयात्रा होती है।

कविवर ब्रह्महर्षने 'नयर कारंजे नवनिधि पासं' कहकर यहाँके पार्श्वनाथकी स्तुति की है।

२. **श्री चन्द्रनाथ स्वामी काष्ठासंघ दिगम्बर जैन मन्दिर**—यह मन्दिर चबरे लाइनमें है और काष्ठासंघी भट्टारकोंसे सम्बन्धित है। इस मन्दिरमें चार स्तम्भोंके मण्डपमें भगवान् चन्द्रप्रभकी भूरे वर्णकी मूलनायक पद्मासन मूर्ति है। इस वेदीपर ६ पाषाणकी तथा १० धातुकी मूर्तियाँ और हैं। इसके पीछे वेदीपर २० धातुकी और ३१ पाषाणकी मूर्तियाँ हैं। धातु-मूर्तियोंमें चौबीसी, पंचमेरु, चैत्य स्तूप और देवियोंकी मूर्तियाँ भी हैं। दायीं ओरके एक प्रकोष्ठमें मूल्यवान् मूर्तियाँ सुरक्षित हैं तथा बायीं ओरके कक्षमें पद्मावती देवीकी अतिशयसम्पन्न मूर्ति विराजमान है। इस मूर्तिकी अवगाहना ९ इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १७१७ में लेकुर सिंघई कस्तूरीवालेके एक वंशजने करायी थी। इस मूर्तिके चमत्कारोंकी ख्याति दूर-दूर तक है। इसके अतिशय हुम्मच

पद्मावतीके अतिशयोंके समान माने जाते हैं। कहा जाता है, यहाँ रात्रिमें नृत्य-गानकी ध्वनि आती है। इसकी यात्रा चैत्र सुदी १५ को होती है। इस अवसरपर रथयात्रा निकलती है।

गर्भगृहके सामने एक दारु-मण्डप बना हुआ है। इस मण्डपमें ४२ स्तम्भ हैं। मध्य स्तम्भोंपर जो सूक्ष्म खुदाई की गयी है, वह बेजोड़ है। लकड़ीपर इतनी भव्य और कलापूर्ण खुदाई अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आयी। खुदाईमें लता, पुष्प, पशु, पक्षी, ऐरावत हाथी, बाल भगवान्‌को गोदमें लिये हुए इन्द्र और तीर्थंकर मूर्तियाँ उकेरी गयी हैं।

इस मन्दिरमें एक तलप्रकोष्ठ भी है। यहाँ पाषाणकी १५ मूर्तियाँ हैं, जिनमें ११ मूर्तियाँ संवत् १२७२ की हैं। ४ मूर्तियाँ संवत् १७१५ की हैं। यहाँकी मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी भूरे वर्णकी ३ फीट १ इंच अवगाहनावाली पद्मासन मूर्ति अतिशयसम्पन्न कहलाती है। मूर्तिके मस्तकके ऊपर सप्तफण सुशोभित है। इसके वक्षपर श्रीवत्स उत्कीर्ण है। इस मूर्तिके लेखके अनुसार इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा काष्ठासंघ नन्दीतटगच्छ विद्यागण रामसेनान्वयके भट्टारक प्रतापकीर्तिकी आम्नायके काष्ठासंघ नन्दीतटगच्छके भट्टारक राजकीर्ति, उनके शिष्य भट्टारक लक्ष्मीसेन, उनके शिष्य भट्टारक इन्द्रभूषणने संवत् १७१५ शक संवत् १५८० विलम्बिनाम संवत्सर माघ शुक्ला ५ सोमवारको चन्द्रप्रभ जिनालयमें काष्ठासंघ लाडवागड गच्छके अनुयायी बघेरवाल ज्ञातीय गोवाल गोत्री संघवी बापू भार्या जमुनाई (इसके आगे उनके परिवारका नाम दिया गया है) की ओरसे की।

इस मन्दिरके काष्ठासंघके लक्ष्मीसेनने संवत् १७०३ में बाहुबलीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा की। इस परम्पराके भट्टारक विजयकीर्ति इस गद्दीके अन्तिम भट्टारक थे।

ब्रह्म ज्ञानसागरने 'सकल-तीर्थ-वन्दना' नामक रचनामें दो छप्पयों द्वारा यहाँके चन्द्रनाथ स्वामीकी प्रशंसा की है। उन्हें रोग-शोक-भयका हरनेवाला और मनवांछित सुखका देनेवाला बताया है।

३. श्री मूलसंघ चन्द्रनाथ स्वामी बलात्कारगण दिगम्बर जैन मन्दिर—यह मन्दिर बलात्कारगणके भट्टारकोंकी गतिविधियोंका कई शताब्दी तक केन्द्र रहा। इस मन्दिरकी मुख्य वेदी गर्भगृहमें सात स्तम्भोंपर आधारित मण्डपके नीचे बनी हुई है। इसमें मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभकी १ फुट ८ इंच ऊँची भूरे वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। चरण-चौकीपर चन्द्रप्रभका लांछन अर्धचन्द्र अंकित है, किन्तु लेख नहीं है। इस वेदीपर ११ धातुकी और २ पाषाणकी मूर्तियाँ हैं। इसके पीछेकी वेदीपर पाषाणकी २७ और धातुकी २७ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्दिरके शिखरमें भगवान् महावीरकी श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

यहाँ पीतलके दो सहस्रकूट जिनालय हैं। ये और इनकी मूर्तियाँ साँचेमें ढालकर बनायी गयी हैं। एक चैत्यालयमें १००८ मूर्तियाँ हैं तथा दूसरे चैत्यालयमें १७२८ मूर्तियाँ हैं।

यहाँपर बलात्कारगणके भट्टारकोंकी गद्दी है। यहाँ अन्तिम भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति हुए। कारंजामें बलात्कार गणके भट्टारक-पीठकी स्थापना भट्टारक धर्मभूषणने की थी। ये भट्टारक धर्मचन्द्रके शिष्य थे। इन्होंने शक संवत् १५७२ में पार्श्वनाथकी, शक संवत् १५८० में नेमिनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा की। भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिकी चरण-पादुका भी यहाँ बनी हुई है। इनका स्वर्गवास संवत् १८५० कार्तिक कृष्णा १० बुधवारको शिरडशहापुरमें हो गया था।

इस मन्दिरमें हस्तलिखित शास्त्रोंका अमूल्य भण्डार है। हस्तलिखित ग्रन्थोंकी कुल संख्या ९८१ है। इनमें ताड़पत्रके ग्रन्थोंकी संख्या २५ है। इनमें कई ग्रन्थ अप्रकाशित हैं।

इस प्रकार यहाँ तीन भट्टारक सम्प्रदायोंका एक-एक मन्दिर है। इन तीनों मन्दिरोंकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। सेनगणके मन्दिरमें पंचकल्याणक चित्रावली है, काष्ठासंघके मन्दिरमें लकड़ीपर कलापूर्ण शिल्प है और बलात्कार गण मन्दिरमें हस्तलिखित शास्त्रोंका बहुमूल्य भण्डार है। ये तीनों मन्दिर कारंजाकी जैन समाजके अधिकारमें हैं। इस दृष्टिसे कारंजा अपने इस प्राचीन कलापूर्ण मूर्ति-वैभव और जैन शिल्प सम्पदासे सम्पन्न है तथा भट्टारकोंके सेनगण-काष्ठासंघ और बलात्कारगणकी गंगा-यमुना-सरस्वतीका संगम-स्थल है। इन तीन धाराओंसे यह सिंचित भूमि जैन संस्कृतिकी दृष्टिसे अत्यन्त उर्वरा रही है।

श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम

क्षुल्लक पार्श्वसागरजी (वर्तमानमें आचार्य समन्तभद्रजी महाराज) के मानसमें तब विचार-मन्थन चल रहा था—देशकी स्वतन्त्रता-प्राप्ति और स्वतन्त्र देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षा उन युवकों द्वारा ही निष्पन्न हो सकेगी, जो निष्ठावान्, सुसंस्कारी, शिक्षित और आत्मविश्वासी होंगे। ऐसे युवकोंका निर्माण वर्तमान दूषित वातावरणसे सन्त्रस्त विद्यालयोंमें सम्भव नहीं है। इसके लिए ऐसे सरस्वती मन्दिरोंका निर्माण करना होगा, जिनके वातावरणमें शुचिता, सौन्दर्य, शील, सेवा, अनुशासन और माँ सरस्वतीकी एकनिष्ठ आराधनाकी भावना समायी हो; जिनकी आत्मा सात्त्विक जीवन और उच्च विचारसे दीप्त हो और जिनकी बुद्धि शिक्षाकी आधुनिकतम उपलब्धियोंसे मण्डित हो।

क्षुल्लकजी ने एक महत्त्वाकांक्षी व्यावहारिक योजना बनायी और कारंजाकी इस उर्वरा भूमिमें उसका बीज डाल दिया। देखते-देखते वह बीज एक विशाल वटवृक्ष बन गया। उस वृक्ष-की शाखाएँ सुदूर महाराष्ट्र, कर्नाटक और मध्यप्रदेश तक फैल गयीं। वही वटवृक्ष 'श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम' कहलाता है। इस गुरुकुलकी अनेक स्थानोंपर गुरुकुल शाखाएँ हैं। ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा नगरसे बाहर सुरम्य वातावरणमें अवस्थित है। यहाँसे निकले हुए स्नातक ही इन सब संस्थाओंका संचालन सेवा-भावसे कर रहे हैं। यहाँकी लौकिक, नैतिक और शारीरिक त्रिविध शिक्षाकी पद्धति छात्रोंको ज्ञान, शील और आत्मविश्वाससे समृद्ध करती है।

महावीर मन्दिर—ब्रह्मचर्याश्रममें एक महावीर जिनालय है। इसमें मूलनायक भगवान् महावीरकी श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है जिसका आकार २ फीट ६ इंच है और यह संवत् १९९१ में प्रतिष्ठित हुई है। इसके अतिरिक्त गर्भगृहमें २ पाषाणकी तथा ७ धातुकी मूर्तियाँ हैं। गर्भगृहके बाहर बायीं ओर भगवान् चन्द्रप्रभकी ५ फीट १० इंच ऊँची पीतवर्ण खड्गासन प्रतिमा है और दायीं ओर शान्तिनाथ विराजमान हैं।

इस मन्दिरमें एक तल-प्रकोष्ठ है जिसमें ४ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ऊपर शिखरमें शान्तिनाथकी दो मूर्तियाँ हैं।

यहाँ एक कक्षमें मूर्ति-संग्रहालय है। इसमें बाहरसे लायी हुई प्राचीन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं।

अम्बिका देवीकी एक ४ फीट उत्तुंग मूर्ति है। देवीके कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और मौक्तिक माला, भुजाओंमें भुजबन्द, हाथोंमें कंकण, कटिमें मेखला है। बायें हाथकी उँगलीसे अपने बालक शुभंकरको पकड़े हुए है। बालक आम्रफल लिये हैं। देवीके दायें हाथमें आम्रगुच्छक है। उसके पार्श्वमें दूसरा बालक प्रीतिंकर खड़ा है। भगवान् नेमिनाथका यक्ष गोमेद सिंहपर आरूढ़ है। दो चमरवाहिका देवियाँ सेवामें खड़ी हैं। यक्षके सिरके ऊपर आम्र लटके हुए हैं। उनके मध्यमें तीर्थंकर नेमिनाथ पद्मासनमें विराजमान हैं।

१२ फीटके एक शिलाफलकमें २४ तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। मध्यमें ऋषभदेवकी ४ फीट २ इंच ऊँची खड्गासन मूर्ति है। शेष २३ तीर्थंकरोंमें २१ पद्मासन और २ खड्गासन मुद्रामें हैं। नीचे यक्ष-यक्षीका अंकन है। फलक अत्यन्त कलापूर्ण है।

एक अन्य फलक ३ फीट ५ इंच उन्नत है। इसमें पद्मासन ऋषभदेवकी मूर्ति उत्कीर्ण है। सिरके पीछे भामण्डल, सिरके ऊपर छत्र और उनके ऊपर दुन्दुभिवादक हैं। उधर दोनों कोनोंपर पुष्पमाला लिये गन्धर्व हैं। भगवान्‌के दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र खड़े हैं। अधोभागमें ऋषभदेवके यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी हैं। चरण-पीठपर वृषभ लांछन अंकित है।

एक और शिलाफलक है जो २ फीट ६ इंच ऊँचा है। इसमें पद्मासनस्थ आदिनाथकी मूर्ति है। परिकरमें भामण्डल, छत्र, ऊपर कीर्तिमुख है। शीर्ष भागमें दो पद्मासन तथा अधो-भागमें दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। नीचे गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षी हैं। चरण-चौकीपर ऋषभका लांछन वृषभ अंकित है।

ये मूर्तियाँ नागपुरके निकटवर्ती कण्डलेश्वर गाँवके मन्दिरसे लायी गयी हैं। ये ७–८वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं।

ऊपर एक कमरेमें २० प्राचीन मूर्तियाँ संरक्षित हैं। इनमें नवदेवताकी एक मूर्ति अद्भुत है।

सत्रहवीं शताब्दीमें कारंजा

सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मुनि शीलविजयजीने गुजराती भाषामें 'तीर्थमाला' पुस्तक-की रचना की थी। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके तपागच्छीय संवेगी साधु थे। उन्होंने चारों दिशाओं के तीर्थोंकी पैदल यात्रा की थी। तीर्थोंपर उन्होंने जो कुछ देखा-सुना था, उसे गुजराती भाषामें पद्यबद्ध कर दिया था। अपनी इस यात्रामें उन्होंने दिगम्बर जैन तीर्थोंकी भी यात्रा की थी और उनका वर्णन एक तटस्थ दर्शककी भाँति निष्पक्ष रूपसे कर दिया। यात्रा करते हुए वे कारंजा भी पधारे थे। उन्होंने वहाँ जो कुछ देखा, वह उन्होंने लिख दिया। उससे तत्कालीन कारंजा नगरके जैन समाजकी आर्थिक समृद्धि, धार्मिक आचार आदिपर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने बघेरवाल जातिके भोज संघवी और उनके परिवारकी धर्मपरायणता और उनके वैभवका भी वर्णन किया है। उससे पता चलता है कि उस समय जैन समाजमें कैसे-कैसे उदार श्रीमन्त थे। वह विवरण इस भाँति है—

"एलजपुर कारंजानयर, धनवंतलोक वसि तिहाँ सभर।
जिनमंदिर ज्योती जागता, देव दिगम्बर करि राजता ॥२१॥
तिहाँ गच्छनायक दीगंबरा, छत्र सुखासन-चामरधरा।
श्रावक ते सुद्धधरमी वसिइ, बहुधन अगणित तेहनि अछइ ॥२२॥
बघेरवाल वंश-सिणगार, नामि संघवी भोज उदार।
समकितधारी जिनने नमइ, अवर धरमस्यूं मननवि रमइ ॥२३॥
तेहने कुले उत्तम आचार, रात्री भोजननो परिहार।
नित्यइं पूजा महोच्छव करइ, मोतीचौक जिन आगलि भरइ ॥२४॥
पंचामृत अभिषेक घणी, नयणे दीठी ते म्हि भणी।
गुरू सामी पुस्तक भंडार, तेहनी पूजा करि उदार ॥२५॥
संघ प्रतिष्ठा ने प्रासाद, बहुतीरथ ते करि आल्हाद।
कर्नाटक कुंकण गुजरात, पूरब मालव ने मेवात ॥२६॥

द्रव्यतणा मोटा व्यापार, सदावर्त पूजा विवहार ।
जप तप क्रिया महोच्छव धणा, करि जिन सासन सोहाभणा ॥२७॥
संवत सात सतरि सही, गढ़ गिरनारी जात्रा करी ।
लाख एक तिहाँ धन बावरी, नेमिनाथनी पूजा करी ॥२८॥
हेममुद्रा संघवच्छल कीओ, लच्छितणो लाहो तिहाँ लीओ ।
परवि पाईं सीआलि दूध, ईषुरस उँनालि सुद्ध ॥२९॥
एलाफूलि वास्मां नीर, पंथी जननि पाई धीर ।
पंचामृत पकवाने भरी, पोषि पात्रज भगति करी ॥३०॥
भोज संघवी सुत सोहाभणा, दाता विनयी ज्ञानी धणा ।
अर्जुन संघवी पदारथ नाम, शीतल संघवी करि शुभ काम ॥३१॥"

इसका सारांश यह है कि कारंजामें बड़े-बड़े धनी लोग रहते हैं और वहाँ जिन भगवान्‌के मन्दिर हैं जिनमें दिगम्बर देव विराजमान हैं। वहाँ गच्छनायक (भट्टारक) हैं जो छत्र, सुखासन (पालकी) और चँवर धारण करते हैं। शुद्धधर्मा श्रावक हैं जिनके यहाँ अपार धन है। बघेरवाल वंशके शृंगाररूप भोज संघवी बड़े ही उदार और सम्यक्त्वधारी हैं। वे जिन भगवान्‌को ही नमस्कार करते हैं। उनके कुलका आचार उत्तम है। उन्हें रात्रि-भोजनका त्याग है। नित्य ही पूजा-महोत्सव करते रहते हैं। भगवान्‌के आगे मोतियोंका चौक पूरते हैं और पंचामृतसे अभिषेक करते हैं। यह सब मैंने अपनी आँखोंसे देखकर कहा है। गुरु स्वामी (भट्टारक) और उनके पुस्तक-भण्डारका पूजन करते हैं। उन्होंने संघ निकाला, प्रतिष्ठा की, मन्दिर बनवाये और आह्लादपूर्वक बहुत-से तीर्थोंकी यात्रा की। कर्नाटक, कोंकण, गुजरात, पूर्व मालवा और मेवाड़से उनका बहुत बड़ा व्यापार चलता है। जिनशासनको शोभा देनेवाले सदावर्त, पूजा, जप, तप, क्रिया-महोत्सव आदि उनके द्वारा होते रहते हैं। संवत् १७०७ में उन्होंने गढ़ गिरनारकी यात्रा करके नेमि भगवान्‌की पूजा की, सोनेकी मोहरोंसे संघ-वात्सल्य किया और एक लाख रुपया खर्च करके धनका 'लाहा' लिया। प्याउओंपर शीतकालमें दूध, गर्मियोंमें गन्नेका रस और इलायची-वासित जल राहगीरोंको पिलाया और पात्रोंको भक्तिपूर्वक पंचामृत पक्वान्न खिलाया जाता है। भोज संघवीके पुत्र अर्जुन संघवी और शीतल संघवी भी बड़े दाता, विनयी, ज्ञानी और शुभ काम करनेवाले हैं।

मुनि शीलविजयजीके इस वर्णनसे कारंजाके तत्कालीन जैन समाजकी सम्पन्न दशा और धार्मिक रुचिका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष आ जाता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय सम्पन्न लोग ऐसे धर्मात्मा भी होते थे जो भगवान्‌के समक्ष मोतियोंका चौक पूरते थे। शास्त्रोंमें इस प्रकारका वर्णन पढ़कर बड़ा अद्भुत-सा लगता है किन्तु भोज संघवीका आँखों देखा चरित्र पढ़कर विश्वास हो जाता है कि शास्त्रोंका कोई विवरण अविश्वसनीय नहीं है।

हिन्दू-तीर्थ

कारंजाके नामकरणके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है। उसके अनुसार कहा जाता है कि प्राचीन कालमें यहाँ जंगलमें कारंज नामक एक ऋषि तपस्या करते थे। वे एक बार भयंकर रोगसे ग्रस्त हो गये। तब अम्बा देवीने उनकी दशासे दयार्द्र होकर एक सरोवरका निर्माण किया, जिसमें स्नान करनेसे ऋषि कुछ दिनोंमें ठीक हो गये। इस कारण यहाँ जो नगर बसा, उसका नाम कार्यरंजकपुर पड़ गया। कहते हैं, वह सरोवर अब भी विद्यमान है। इस सरोवरके

तटसे लगभग दो मील तकका क्षेत्र हिन्दुओंके मानसरत्नोंसे—मन्दिरोंसे सुशोभित है। विश्वास किया जाता है कि इन देवालयोंका निर्माण देवगिरिके यादव वंशी राजा रामचन्द्रने कराया था।

नगरके मध्यमें एक बावड़ी है। इसके सम्बन्धमें यह अनुश्रुति प्रचलित है कि इस स्थानपर प्राचीन कालमें बहुत-से ऋषियोंने यज्ञ किया था। उन दिनों यहाँ तथा इसके आसपास जलका बड़ा संकट था। तब ऋषियोंने वहाँ एक कुण्ड बनाया और सप्त तीर्थोंका जल लाकर उसमें भर दिया। तीर्थ-जल डालते ही कुण्डमें-से जल तीव्र गतिसे बहने लगा। यही वेम्बला नदी कहलाने लगी।

कारंजा नृसिंह सरस्वतीका जन्म स्थान है। इसलिए यहाँ बीसवीं शताब्दीमें विशाल गुरु मन्दिरका निर्माण किया गया है जो हिन्दू यात्रियोंके लिए तीर्थस्थान है।

तीर्थक्षेत्रका पत्र-व्यवहारका पता इस प्रकार है—

श्री ब्र. माणिकचन्द्रजी चवरे,
मंत्री, श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम,
पो. कारंजा लाड, जि. अकोला (महाराष्ट्र)

बाढौणा रामनाथ

मार्ग और अवस्थिति

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बाढौणा रामनाथ महाराष्ट्र प्रान्तके जिला अमरावतीमें स्थित है। कारंजासे यह क्षेत्र २२ कि. मी. दूर है। सड़क है। कारंजासे बस जाती है।

क्षेत्र-दर्शन

मन्दिरमें प्रवेश करनेपर वेदीपर भगवान् आदिनाथकी ३ फीट ८ इंच अवगाहनावाली और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है। भक्तजन यहाँ आकर मनौती मनाते हैं। लेप चढ़ाया जा रहा है।

वेदीपर मूलनायकके अतिरिक्त आदिनाथ भगवान्की श्वेत पाषाणकी तथा ३ धातुकी मूर्तियाँ हैं।

पीछेकी वेदीमें भगवान् पद्मप्रभकी संवत् १४५७ में प्रतिष्ठित और ३ फीट ८ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त इस वेदीमें पाषाणकी २० तथा धातुकी ६ मूर्तियाँ और हैं।

मन्दिरमें एक तलप्रकोष्ठ है। इसमें ४ वेदियाँ हैं जिनमें कुल ८ मूर्तियाँ विराजमान हैं।

इस मन्दिरमें एक पाषाण-फलकमें बनी हुई चौबीसी प्राचीन प्रतीत होती है। यह लगभग ११-१२वीं शताब्दीकी होनी चाहिए।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
बाढौणा रामनाथ (जिला अमरावती) महाराष्ट्र

भातकुली

अवस्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र भातकुली महाराष्ट्र प्रान्तके अमरावती जिलेमें स्थित है। भातकुलीके लिए निकटवर्ती स्टेशन बम्बई-नागपुर लाइनपर कुरम ९ कि. मी., अमरावती १६ कि. मी., बड़नेरा १६ कि. मी. है। तथा निकटवर्ती सड़क थामोरी, अमरावती और दर्यापुरसे १३ कि. मी. है। अमरावतीसे भातकुलीके लिए प्रतिदिन बस जाती है। भातकुलीमें पोस्ट ऑफिस भी है। भातकुली पूर्णाकी सहायक नदी पैढ़ीके किनारेपर है।

अतिशय क्षेत्र

यह क्षेत्र श्री आदिनाथ स्वामी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र संस्थान भातकुली कहलाता है। इस क्षेत्रके प्रकाशमें आनेके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है। लगभग चार सौ वर्ष पहले पं. नेमसागरको मूर्तिके सम्बन्धमें स्वप्न आया। उन्होंने प्रातःकाल होनेपर अपने स्वप्नकी चर्चा जैन बन्धुओंसे की। जब वह स्थान खोदा गया तो वहाँ एक अति भव्य अतिशयसम्पन्न प्रतिमा प्रकट हुई। यह मूर्ति भगवान् आदिनाथकी है।

मूर्ति प्रकट होनेपर पं. नेमसागरने और भी खोज की। प्राचीन मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें था। उसका जीर्णोद्धार किया और भूगर्भसे प्राप्त आदिनाथ स्वामीकी प्रतिमाको मूलनायकके रूपमें प्रतिष्ठित किया।

इस मूर्तिके सम्बन्धमें एक और किंवदन्ती प्रचलित है। एक ग्वाला गाय चराने जाता था। वह गाय चरते-चरते एक टीलेपर जाती थी, वहाँ उसका दूध प्रतिदिन झड़ जाता था। इससे वह बड़ा परेशान था। एक दिन उसने गायकी पूरी निगरानी की। उसने देखा कि टीलेपर जाकर गाय खड़ी हो गयी और स्वतः ही उसका दूध झरने लगा। ऐसा क्यों होता है, यह बात उसकी समझमें नहीं आयी। किन्तु इससे उसकी चिन्ता बढ़ गयी। उसे उसी रात्रिको स्वप्न आया— 'जहाँ तेरी गायका दूध झरता है, वहाँ खुदाई कर। तुझे भगवान् मिलेंगे।'

दूसरे दिन उसने उस स्थानपर जाकर खुदाई की। फलतः आदिनाथ भगवान्‌की यह प्रतिमा निकली। कहते हैं, खुदाईके समय मूर्तिको फावड़ा लग गया तो उस अंगसे दूधकी धार भी बह निकली। जैनोंको मूर्तिका समाचार मिला तो वे लोग आये और उसे वहीं विराजमान कर दिया। बादमें जिनालय बनवाकर वहाँ विराजमान कर दिया गया।

अनेक भक्तजन यहाँ आकर मनौती मनाते हैं। इस क्षेत्रसे सम्बन्धित और भी अनेक बातें कहने-सुननेमें आती हैं जैसे रात्रिमें कभी-कभी मन्दिरमें नृत्य-गानकी ध्वनि होना, कभी-कभी घण्टोंकी आवाज आना, कभी-कभी रात्रिमें मन्दिरसे मोहक सुगन्धिका आना आदि।

क्षेत्र-दर्शन

मण्डपमें प्रवेश करनेपर वेदीपर मूलनायक भगवान् आदिनाथकी श्यामवर्ण ३ फुट ४ इंच ऊँची शक संवत् ११५३ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका भामण्डल अति मनोज्ञ है। केशोंकी लटें कन्धेपर छितरायी हुई हैं। वक्षपर श्रीवत्सका अंकन है। हाथों और पैरोंकी अंगुलियाँ परस्पर जुड़ी हुई नहीं हैं, जैसा कि प्रायः पाषाण प्रतिमाओंमें होता है, अपितु वे

पृथक्-पृथक् हैं। अंगुलियोंके नाखून आगे बढ़े हुए हैं। फलकमें नन्दीकी मूर्ति भी बनी हुई है जो भगवान् आदिनाथका लांछन है।

इस वेदीपर मूलनायकके अतिरिक्त १ पाषाणकी तथा ७ धातुकी मूर्तियाँ भी हैं।

बायीं ओरकी वेदीमें ४ फुट ३ इंच ऊँची संवत् १९२५ में प्रतिष्ठित आदिनाथकी श्वेत वर्ण प्रतिमा है। इसके बायें पार्श्वमें ५ फुट ४ इंच उन्नत पार्श्वनाथकी संवत् १९२५ में प्रतिष्ठित कृष्ण पाषाणकी पद्मासन तथा दायें पार्श्वमें संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित ३ फुट ११ इंच समुन्नत बादामी वर्णकी पार्श्वनाथ प्रतिमा हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें ३ फुट ३ इंच उन्नत पाषाण-फलकमें चौबीसी बनी है। एक श्वेत वर्ण प्रतिमा पार्श्वनाथकी है। इसकी अवगाहना २ फुट ९ इंच है।

दायीं ओरकी दीवारके सहारे संवत् १९९९ में प्रतिष्ठित २ फुट ८ इंच उन्नत पार्श्वनाथ-की श्वेत प्रतिमा और संवत् १७६० में प्रतिष्ठित १ फुट ४ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी कृष्ण वर्णवाली प्रतिमा रखी है।

मण्डपसे नीचे उतरकर एक कमरेमें दो वेदी हैं। बायीं ओरकी वेदीमें भगवान् पुष्पदन्तकी संवत् १९२४ में प्रतिष्ठित २ फुट ४ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इस वेदीपर पार्श्वनाथकी दो पाषाण मूर्तियाँ २ फुट और १॥ फुटकी और हैं तथा ३ पीतलकी भी मूर्तियाँ हैं। दायीं ओरकी वेदीमें संवत् १९३४ में प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभ भगवान् की २ फुट ४ इंच उन्नत श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त पाषाणकी ६ और धातु की १ मूर्ति है।

इस मन्दिरके आगे मण्डप बना है। मुख्य मन्दिरके आगे ३० काष्ठ-स्तम्भोंपर आधारित खुला मण्डप बना है। मन्दिरके तीन ओर बरामदे (या धर्मशाला) हैं।

धर्मशाला

मन्दिरके बाहर धर्मशाला बनी हुई है। इसमें कुल ३२ कमरे हैं। धर्मशालामें बिजली है। धर्मशालाके खुले आँगनमें कुआँ है। यात्रियोंके लिए बर्तनोंकी भी व्यवस्था है।

मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष मगसिर वदी ५-६ को वार्षिक मेला होता है। इस अवसरपर रथयात्रा होती है जो सारे नगरमें निकलती है। सन् १९५२ में क्षेत्रपर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री आदिनाथ स्वामी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र संस्थान
पो. भातकुली (जिला अमरावती) महाराष्ट्र।

रामटेक

अवस्थिति और मार्ग

श्री रामटेक क्षेत्र महाराष्ट्र प्रान्तके नागपुर जिलेमें नागपुरसे लगभग ४८ कि. मी. दूरीपर स्थित है। नागपुर शहरसे यहाँ तक बसमार्ग भी है और रेलमार्ग भी। रामटेक स्टेशनसे क्षेत्र दो मील है। पर्वतका नाम रामटेक है। इसी कारण यह ग्राम भी इसी नामसे जाना जाने लगा है। ग्रामसे उत्तरकी ओर एक मीलकी दूरीपर यह पर्वत है। क्षेत्र मैदानमें अवस्थित है।

क्षेत्रका इतिहास

इस क्षेत्रका इतिहास अत्यन्त प्राचीन काल तक अथवा प्रागैतिहासिक काल तक पहुँचता है। प्रागैतिहासिक कालका परम्परागत इतिहास हमारे पुराण और कथा-साहित्यमें अब तक सुरक्षित रूपसे चला आ रहा है। ऐतिहासिक कालके (जो ईसासे नौ-दस शताब्दी पूर्व तक माना जाता है) पूर्वका इतिहास जाननेके लिए प्राचीन वाङ्मय, विशेषतः पुराण साहित्यके अतिरिक्त अन्य कोई साधन हमें उपलब्ध नहीं है। अतः प्राचीन इतिहास जाननेके लिए पुराणोंका विशेष महत्त्व है।

जैन पुराणोंके अनुसार रामटेक क्षेत्रका इतिहास बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रतनाथके काल तक जा पहुँचा है। आचार्य रविषेणने पद्मपुराण (पर्व-४०) में रामचन्द्र द्वारा वंशगिरिमें हजारों जिन-मन्दिरोंके निर्माणका उल्लेख करते हुए यह भी सूचित किया है कि इस वंशगिरिका ही नाम रामगिरि हो गया। यह उल्लेख अत्यन्त बोधप्रद है। वह इस प्रकार है :

"तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना।
निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्रशः॥
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः।
गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिताः॥
सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः।
सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाञ्चिताः॥
मृदङ्गवंशमुरजसंगीतोत्तमनिस्वनाः।
झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः॥
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः।
विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः॥"

अर्थात् उस वंशगिरिके ऊपर जगत्के लिए चन्द्रस्वरूप रामचन्द्रने जिनेन्द्रदेवके हजारों मन्दिर बनवाये। उनमें बड़े लम्बे-चौड़े स्तम्भ लगवाये, उनमें गवाक्ष और अट्टालिकाएँ सुशोभित थीं, वे विशाल तोरण, द्वार, प्राकार और परिखाओंसे युक्त थे, उनके ऊपर श्वेत पताकाएँ फहराती रहती थीं, उनमें विशाल घण्टाओंके स्वर गूँजते रहते थे। वे मृदंग, वंशी, मुरज आदि वाद्यों और संगीतके घोषसे गुंजित रहते थे तथा शंख, भेरी, झांझ आदिकी ध्वनि होती रहती थी। इस प्रकार गान, वाद्य, संगीत और उत्सवोंसे युक्त जिनालयोंकी पंक्तियाँ रामचन्द्रने बनवायीं।

आचार्य रविषेणने इस पर्वतका नाम वंशधर बताया है क्योंकि वहाँ सघन बाँसोंका अति विस्तृत जंगल था। राम द्वारा हजारों जिनालयोंके निर्माणके कारण इस वंशधर (वंशगिरि) का ही नाम रामगिरि हो गया। इस सम्बन्धमें आचार्यने स्पष्ट लिखा है—

"रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि।
निर्नष्टवंशाद्रिवचः स तस्माद्रविप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः॥"

आचार्य रविषेणसे भी प्राचीन आचार्य विमलसूरि कृत 'पउमचरिउ' (४०-४) में भी इससे ही मिलता-जुलता वर्णन है। उसमें लिखा है कि रामचन्द्रके वंशस्थपुर पहुँचनेपर राजाने उनसे नगरमें पधारनेकी प्रार्थना की किन्तु उन्होंने पर्वतपर ही ठहरना उचित समझा। राजाने उनकी सभी सुविधाओंकी व्यवस्था कर दी। रामचन्द्रके कहनेपर उसने वहाँ अनेक जिनालय

निर्मित कराये[1]।

रामने वहाँ कुछ दिन ठहरकर लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण ! अब हमें अन्यत्र चलना चाहिए। सुनते हैं, यहाँसे दक्षिणमें एक कर्णरवा नदी है, जिसे पार करनेपर दण्डकारण्य मिलता है जो मनुष्योंके लिए अगम्य कहा जाता है[2]।'

राम, लक्ष्मण और सीताने वह स्थान छोड़ दिया और दण्डकारण्यको चल दिये। चूँकि रामने वहाँ जिनालय बनवाये थे, अतः उस (वंशस्थगिरि) का नाम रामगिरि हो गया[3]।

रामचन्द्रजीने रामगिरिमें जिन जिनालयोंका निर्माण कराया था, वे पाण्डवोंके कालमें भी विद्यमान थे। इस सम्बन्धमें हरिवंश-पुराण (सर्ग ४६) का अधोलिखित अवतरण विशेष उल्लेखनीय है—

"विश्रम्य तत्र ते सौम्या दिनानि कतिचित् सुखम्।
याताः क्रमेण पुंनागा विषयं कोशलाभिधम् ॥१७॥
स्थित्वा तत्रापि सौख्येन मासान् कतिपयानपि।
प्राप्ता रामगिरिं प्राग् यो राम-लक्ष्मणसेवितः ॥१८॥
चैत्यालया जिनेन्द्राणां यत्र चन्द्रार्कभासुराः।
कारिता रामदेवेन संभान्ति शतशो गिरौ ॥१९॥
नानादेशागतैर्भव्यैर्वन्द्यन्ते या दिने दिने।
वन्दितास्ता जिनेन्द्राणां प्रतिमाः पाण्डुनन्दनैः ॥२०॥

इसका आशय यह है कि पाण्डव कुछ दिन वहाँ ठहरकर कोशलदेशमें आये। कुछ माह आरामसे वहाँ ठहरकर वे रामगिरि पहुँचे जहाँ पहले राम और लक्ष्मण ठहरे थे। जहाँ रामचन्द्रजी द्वारा बनाये हुए सैकड़ों जिनालय पहाड़पर सूर्य-चन्द्रमाके समान देदीप्यमान अब भी विद्यमान हैं। प्रतिदिन नाना देशोंसे आ-आकर लोग उनकी वन्दना करते हैं। पाण्डवोंने जिनेन्द्रदेवकी उन प्रतिमाओंकी वन्दना की।

इस अवतरणसे दो बातें सिद्ध होती हैं—(१) रामचन्द्रजी द्वारा बनाये मन्दिर पाण्डवोंके कालमें मौजूद थे। (२) उन मन्दिरोंके कारण रामगिरि एक तीर्थ बन गया था और प्रतिदिन वहाँ बाहरके यात्री भारी संख्यामें आया करते थे।

इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि रामगिरिका पूर्वनाम वंशगिरि था। वहाँ रामचन्द्रजीने अनेक जिन-मन्दिर बनवाये थे। उनके कारण पर्वतका नाम रामगिरि पड़ गया। इन मन्दिरोंके कारण ही यह तीर्थक्षेत्रके रूपमें मान्य हो गया। पाण्डवोंने इन मन्दिरोंके दर्शन भी किये थे। इसके पश्चात् ये मन्दिर कब तक सुरक्षित रहे, इस सम्बन्धमें कोई निश्चित सूचना

---

१. तत्थेव वंससेले पउमाणत्तेण नरवरिन्देणं।
जिणवर भवणाइं तओ निवेसियाइं पभूयाइं ॥४०।९

२. अह अन्नमा कमाई भणिओ रामेण तत्थ सोमित्ती।
मोत्तूण इमं ठाणं अन्नं देसं पगच्छामो ॥
निसुणिज्जइ कण्णरवा महाणई तीए अत्थि परएणं।
मणुयाण दुग्गमं चिय तरुवहलं दण्णयारण्णं।४०। १२-१३

३. रामेण जम्हा भवणोतमाणि जिणिंदचन्दाण निवेसियाणि।
तत्थेव तुंगे विमलप्पभाणि तम्हा जणे रामगिरी पसिद्धो ॥४०।१६

उपलब्ध नहीं होती। किन्तु इस क्षेत्रके सम्बन्धमें १६–१७वीं शताब्दीके कुछ भट्टारकोंके ग्रन्थों अथवा तीर्थवन्दन संग्रहोंमें कुछ उल्लेख अवश्य प्राप्त होते हैं।

कारंजाके सेनगणके भट्टारक जिनसेन (सन् १६५५–१६८५) के सम्बन्धमें एक हस्तलिखित गुटकेमें ऐसी सूचना प्राप्त होती है कि उन्होंने गिरनार, सम्मेदशिखर, रामटेक तथा माणिक्य स्वामीकी यात्राएँ की थीं। उनके द्वारा सौयरासाह, निंवासाह, माधव, गनवा और कान्हा इन पाँच व्यक्तियोंको संघपति पद प्राप्त हुआ था। इनमें कान्हा संगवीको तो रामटेकमें ही संघपतिका तिलक किया गया था।

भट्टारक ज्ञानसागरजी (सोलहवीं शताब्दीका अन्तिम चरण और सत्रहवीं शताब्दीका प्रारम्भ) ने अपनी रचना 'सर्वतीर्थ वन्दना'के दो छप्पयों (संख्या ९५–९६) में रामटेकके शान्तिनाथ भगवान्की बड़ी प्रशंसा की है तथा उन्हें मनवांछित फलको पूर्ण करनेवाला बतलाया है। लगता है, रामटेकमें शान्तिनाथ भगवान्की सातिशय प्रतिमा थी। उसीके कारण लोग यहाँ मनौती मनाने आते थे। इसलिए यह अतिशय क्षेत्र कहलाने लगा।

भट्टारक हेमकीर्तिके शिष्य मकरंदने तो मराठी भाषामें 'रामटेक' छन्द ही लिखा है। इससे क्षेत्रके सम्बन्धमें कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। जैसे—"यहाँ शान्तिनाथ भगवान्की तीन पुरुष ऊँची पश्चिमाभिमुखी मूर्ति विराजमान है। मुख्य मन्दिरके दोनों ओर क्षेत्रपाल है। आगे वेदी और प्रतिशाला है। यहाँका चौक लेकुर संघवीने; सभामण्डप और चारों ओरकी दीवार लाड सज्जन ने, जिनका उपनाम गाहानकारी था, बनवायी। आँगनमें एक कुआँ बनवाया। आगे इमलीके पेड़ोंके बीचमें भी एक कुआँ है। पानी मीठा है। मन्दिरके पीछे तालाब, आधारवन, कुआँ, तातोवाकी ध्यान-मठी है। आगे भवानीका मन्दिर है। कार्तिक पूर्णिमाको यहाँ वार्षिक यात्रा होती है। यहाँकी पहाड़ीपर राम और सीताके मन्दिर हैं। तालाबके पास कैकेयी और गौतमके मन्दिर हैं। नागार्जुन ऋषिका गुप्त स्थान है। सिंदूर तीर्थके आगे आँगन है। यहाँ बालाजीकी मूर्ति तीन मन वजन की है। यह क्षेत्र देवगढ़ राज्यके दहे परगनेमें है। यहाँ बलात्कारगणके भट्टारक विद्याभूषणका शिष्यवर्ग रहता है। उनमें हेमकीर्तिजी इस वन्य प्रदेशके बादशाह कहे जाते हैं।[2]

यह तीर्थ प्रकाशमें कैसे आया, इसके सम्बन्धमें एक रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। कहते हैं कि दो सौ वर्ष पहले नागपुर नरेश श्री आपा साहब भोंसले नगरमान्य श्री वर्धमान सावजीके साथ रामचन्द्रजीके मन्दिरके दर्शन करनेके लिए रामटेक पर्वतपर गये। वर्धमान सावजी दिगम्बर जैन थे। दर्शन करनेके पश्चात् महाराजने भोजन किया। किन्तु महाराजके आग्रह करनेपर भी सेठजीने भोजन नहीं किया। महाराजने भोजन न करनेका कारण पूछा तो सेठजीने उत्तर दिया—"महाराज' मैं जैन हूँ। मैं जिनेन्द्रदेवके दर्शन किये बिना भोजन नहीं करता हूँ, ऐसा मेरा नियम है।" सेठजीकी धर्मनिष्ठासे महाराज बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अपना गजराज देकर सेठजीसे कामठी जाकर जिनेन्द्र दर्शन कर आनेके लिए कहा। सेठजी बोले—"महाराज! यहाँ रामचन्द्रजीका मन्दिर है। रामचन्द्रजी जैनधर्मके प्रति बड़े आस्थावान् थे। उन्होंने यहाँ बहुतसे मन्दिर बनवाये थे, ऐसा हमारे शास्त्रोंमें लिखा है। इसलिए यहाँ आसपासमें जिनालय अवश्य होना चाहिए।" इसके लिए खोजबीन की गयी और रावटी लोगोंकी खोजके फलस्वरूप शीघ्र

---

१. तीर्थवन्दनसंग्रह, संपादक डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर, पृ. ९१-९२।

२. तीर्थवन्दनसंग्रह, पृ. ९७-९८।

ही झाड़ियोंके भीतर एक मनोज्ञ जिन-प्रतिमा प्राप्त हुई। सेठजीने भक्तिपूर्वक प्रतिमाके दर्शन किये। उन्होंने राजाज्ञा लेकर झाड़ियोंको साफ कराया और ध्वस्त मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया। इस घटनाके पश्चात् वहाँकी प्रसिद्धि बढ़ी और यह तीर्थ पुनः प्रकाशमें आया। शान्तिनाथकी वह मूर्ति जैन मन्दिरमें विराजमान है।

रामगिरिकी वास्तविक स्थिति

आजकल रामगिरि नामक कोई पर्वत नहीं मिलता। उससे मिलते-जुलते नाम मिलते हैं। जैन परम्परामें रामगिरिकी प्रसिद्धि रामचन्द्रजी द्वारा वहाँपर सहस्रों जिनालयोंके निर्माणके कारण रही है। महाकवि कालिदासके मेघदूत काव्यके कारण भी रामगिरिकी ख्याति बहुत रही है। किन्तु रामगिरि कहाँ है, इसके बारेमें विद्वानोंमें बहुत मतभेद हैं। कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि मध्यप्रदेशकी भूतपूर्व सरगुजा रियासतके अन्तर्गत रामगढ़ नामक पर्वत ही रामगिरि है। राम, सीता और लक्ष्मणने यहाँ वनवासके समय स्नान किया था, ऐसी परम्परागत जनश्रुति है। कहते हैं, यहाँ एक शिलापर रामचन्द्रजीके चरण चिन्ह अबतक बने हुए हैं। यहाँ भग्नावशेष भी प्रचुर मात्रामें मिलते हैं। इस पहाड़ीपर सीतावेंगा तथा जोगीमारा नामक गुफाओंमें ईसासे तीन सौ वर्ष पूर्वके खुदे हुए शिलालेख विद्यमान हैं। इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है कि यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है।

एक दूसरा मत है कि नागपुरका निकटवर्ती रामटेक ही रामगिरि है। यह स्थान भी बहुत प्राचीन है। यहाँ वाकाटक नरेश द्वितीय प्रवरसेनके समयका एक ताम्रपत्र मिला है। और इसी राज्यान्तर्गत विदर्भ देशके ऋद्धपुर या राधापुरमें मिले हुए ताम्रपत्रपर 'रामगिरिस्वामिनः पादमूलात्' ऐसा उल्लेख है। उसके पास ही वाकाटकोंकी नन्दिवर्धन राजधानी थी। द्वितीय चन्द्रगुप्तकी पुत्री तथा द्वितीय प्रवरसेन (वाकाटक वंशी) की माता प्रभावती गुप्त भगवान् रामचन्द्रकी पादुकाओंकी पूजाके लिए रामटेक जाती थीं, यह बात उसके ऋद्धपुर या राधापुरके ताम्रपत्रमें लिखी है।[1]

तीसरी मान्यता यह है कि आन्ध्रप्रदेशके विजगापट्टम जिलेमें विजयानगरम्के समीपका रामकोण्ड पर्वत ही रामगिरि होना चाहिए। वहाँ अनेक जैन-गुहा मन्दिरोंके अवशेष हैं। सम्भवतः यहींपर उग्रादित्य आचार्यने कल्याणकारक नामक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की थी। आचार्यने यह ग्रन्थ वेंगी नरेशके आधीन त्रिकलिंग प्रदेशके ऊँचे रामगिरिपर लिखा था, जो सम्भवतः यही हो सकता है।

इन तीनों स्थानोंमें-से रामटेक ही वास्तविक रामगिरि प्रतीत होता है। पद्मपुराण, पउमचरिउ और हरिवंशपुराणके उल्लेखोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। हरिवंशपुराणमें बताया है कि पाण्डव कोशल देशसे रामगिरि पहुँचे। यहाँ कोशलसे आशय दक्षिण कोशलसे है। वे दक्षिण कोशल (आधुनिक छत्तीसगढ़ आदि) से रामगिरि पहुँचे। पउमचरिउ और पद्मपुराणके अनुसार रामचन्द्रजीने रामगिरि (वंशगिरि) से दण्डकारण्यकी ओर जानेका विचार किया जो कर्णरवा (महानदी) नदीसे आगे फैला हुआ था। इस दृष्टिसे देखें तो रामटेक ही कोशल और दण्डकारण्य-के मध्यमें पड़ता है।

रामटेक दण्डकारण्यके उत्तरमें है। महाकवि भवभूतिके 'उत्तररामचरित'से भी इसकी पुष्टि होती है। हिन्दू अनुश्रुतिके अनुसार रामटेकपर वह स्थान अब भी है, जहाँ शूद्र शम्बूकने

१. कालिदास, महामहोपाध्याय डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी, पोपूलर प्रकाशन बम्बई, पृ. ११०-१११।

तप किया था और इस अपराधमें रामचन्द्रने उसका शिरश्छेद किया था किन्तु वह तत्काल शिवलिंगमें बदल गया था। आजकल वह लिंग धूम्रेश्वर लिंग कहलाता है। 'उत्तररामचरित'में वर्णन है कि दण्डकारण्यमें पहाड़ोंकी शृंखला थी और शम्बूककी झोपड़ीसे दक्षिणकी ओर गोदावरी-के किनारे जनस्थान तक जंगली जानवर फिरते थे।

इस प्रकार रामटेककी स्थिति पउमचरिउ और पद्मपुराणके वर्णनके अनुकूल बैठती है। विमलसूरिका काल ईसाकी प्रथम-द्वितीय शताब्दी माना जाता है। इस कालमें रामटेकको ही रामगिरि कहा जाता था। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयके कालमें भी यह रामगिरिके रूपमें प्रसिद्ध था तथा उस कालमें भी यह मान्यता प्रचलित थी कि राम लक्ष्मण और सीताके साथ यहाँ ठहरे थे। इसीलिए राजमाता प्रभावती गुप्त रामचन्द्रजीकी चरण-पादुकाओंकी वन्दना करनेके लिए यहाँ आती रहती थी, जैसा कि ऋद्धपुरके ताम्रलेखसे प्रकट होता है। कालिदासने भी वर्णन किया है कि रघुपतिकी पवित्र पादुका रामगिरिपर विराजमान थी। ऐसी स्थितिमें वर्तमान रामटेकको ही रामगिरि मानना समुचित प्रतीत होता है। उसके साथ परम्परागत मान्यताका भी सम्बल है। भट्टारकों एवं लेखकोंने भी रामटेकको ही तीर्थ मानकर वन्दना की है। ज्ञात प्रमाणोंके अनुसार इसी रामटेकको तीर्थ मानकर यात्री यात्राके लिए आते रहे हैं।

कालिदासके मेघदूतमें यक्षने मेघको जो भौगोलिक दिशा-निर्देश दिया है, उसमें यक्षने रामगिरिसे उत्तर दिशामें जानेपर पहले माल प्रदेश, फिर अमरकूट पर्वत (छिंदवाड़ा जिलेमें अमरवाड़ा गाँवके उत्तरमें स्थित सतपुड़ा पहाड़) और नर्मदा नदी मिलेगी, ऐसा कहा था। सरगुजाका रामगढ़ नर्मदा नदीसे ईशानकी ओर है, दक्षिणकी ओर नहीं। इस विचारसे तो रामटेक ही रामगिरि हो सकता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके आदेशपर राजकाजसे कालिदास भी सम्भवतः यहाँ कुछ दिन ठहरे थे और यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्य और एकान्त शान्तिसे आकृष्ट होकर उनकी कल्पना प्रस्फुटित हुई और मेघदूतकी रचना १२० श्लोकोंमें कर डाली। उन्होंने इस काव्यके प्रथम श्लोकमें ही 'स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु' कहकर रामगिरिको भी अपने काव्यके समान अमर कर दिया है।

क्षेत्र-दर्शन

पर्वतकी तलहटीमें तथा मुख्य सड़कसे ३ कि. मी. दूर एक कोटके अन्दर यह क्षेत्र अवस्थित है। बाहरी फाटकसे प्रवेश करनेपर मैदान मिलता है। इसी मैदानमें मानस्तम्भ बना हुआ है। इसके सामने पुनः प्रवेश-द्वार है। यहाँ क्षेत्रका कार्यालय और धर्मशाला बनी हुई है। क्षेत्र कार्यालयके सामने मन्दिरोंका प्रवेश-द्वार है। इसमें प्रवेश करनेपर नौ जिनालय बने हुए हैं। पहले क्षेत्रपर एक जैन गुरुकुल भी था, किन्तु वह परिस्थितियोंवश बन्द हो गया। मन्दिरोंका परिचय इस प्रकार है—

१. शान्तिनाथ मन्दिर—भगवान् शान्तिनाथकी १३ फुट ५ इंच ऊँची बादामी वर्णकी खड्गासन मूर्ति है। इसके सिरके पीछे भामण्डल और सिरके ऊपर छत्र हैं। इसके वक्षपर श्रीवत्स है। वर्ण स्कन्धचुम्बी हैं।

इसके दोनों पार्श्वोंमें भी भगवान् शान्तिनाथकी ५ फुट २ इंच ऊँची मूर्तियाँ हैं। चरण-चौकीपर हरिणका लांछन अंकित है। बड़ी मूर्तिपर लेख नहीं है। यह मूर्ति ११-१२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। अहार, थूबौनजी, बजरंगढ़ आदिकी शान्तिनाथ मूर्तियोंकी शृंखलामें इसे देखा जा सकता है। यहाँ दो क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

गर्भगृहके बाहर चार स्तम्भोंपर आधारित मण्डप है। उसके आगे सभामण्डप है। सभामण्डपमें १२ स्तम्भ हैं।

बड़ी मूर्तिके ऊपर सन् १९६५ में लेप किया गया था। तब उसकी पुनः प्रतिष्ठा की गयी थी। मूर्तिकी चरण-चौकी दबी हुई है। यह भूमिके अन्दर है। किन्तु वहाँ तक जानेका मार्ग है। यह मार्ग तल-प्रकोष्ठ बनाकर तैयार किया गया है। चरण-चौकीके ऊपर हरिणका लांछन है तथा हाथ जोड़े हुए खड़ी एक भक्त महिला अंकित है।

२. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी नौ फणावलियुक्त संवत् १७९० में प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। यह ४ फुट १ इंच ऊँची है।

दूसरी वेदीमें भगवान् महावीरकी १ फुट १० इंच ऊँची और संवत् १९६८ में प्रतिष्ठित पीतलकी पद्मासन प्रतिमा है।

तीसरी वेदीमें ३ फुट ९ इंच उत्तुंग और संवत् १९२५ में प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है।

३. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी संवत् १९०४ में प्रतिष्ठित और २ फुट ४ इंच उन्नत श्वेत पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर संवत् १७६९ में प्रतिष्ठित और २ फुट ४ इंच ऊँची आदिनाथकी श्यामवर्ण प्रतिमा है। दायीं ओर भी १ फुट ९ इंच ऊँची संवत् १९०४ में प्रतिष्ठित मुनिसुव्रतकी श्यामवर्ण प्रतिमा है।

इस वेदीके बायीं ओरकी वेदीमें मुनिसुव्रतनाथकी संवत् १८४८ की १ फुट ४ इंच उन्नत कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। इसके दोनों ओर धातुकी आदिनाथ और अजितनाथकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। दायीं ओरकी वेदीमें श्यामवर्ण नेमिनाथकी प्रतिमा विराजमान है। यह १ फुट ५ इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १७१० में हुई थी। इसके बायीं ओर महावीर और दायीं ओर आदिनाथकी धातु-प्रतिमाएँ हैं।

४. अजितनाथ मन्दिर—भगवान् अजितनाथकी ढाई फुट ऊँची श्वेत वर्णवाली संवत् १९२५ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा है।

इस वेदीके अतिरिक्त यहाँ ३ वेदियाँ और हैं। इनमें दायीं ओर वेदीपर संवत् १९०४ में प्रतिष्ठित और डेढ़ फुट ऊँची चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओरकी वेदीपर अरहनाथकी २ फुट ३ इंच ऊँची संवत् १८९९ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर मुनिसुव्रतनाथ और दायीं ओर पद्मप्रभकी श्वेतवर्ण प्रतिमाएँ हैं। मध्यवेदीपर ३ फुट २ इंच उन्नत पार्श्वनाथकी संवत् १९२५ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्णकी खड्गासन प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमें ३ पाषाणकी और १ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। आगे २४ चरण बने हैं।

५. सुपार्श्वनाथ मन्दिर—वेदीपर भगवान् पार्श्वनाथकी साढ़े नौ इंच ऊँची संवत् १९५२ में प्रतिष्ठित पद्मासन धातु-मूर्ति है। इसके बायीं ओर संवत् १९५२ में प्रतिष्ठित श्याम वर्ण आदिनाथ भगवान् हैं तथा दायीं ओर संवत् १९९५ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण चन्द्रप्रभ विराजमान हैं। यह वेदी अलग बनी है।

६. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी ३ फुट १० इंच उत्तुंग और संवत् १८८९ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर चन्द्रप्रभकी २ फुट १० इंचकी खड्गासन प्रतिमा है।

गर्भगृहके बायीं ओर पार्श्वनाथ पद्मासन मुद्रामें आसीन हैं। यह प्रतिमा श्वेत वर्णकी है

तथा १ फुट ११ इंच ऊँची है। इसके बायीं ओर श्याम वर्णके पार्श्वनाथ हैं। फण अधूरा है। दायीं ओर श्वेत वर्णके अरहनाथ हैं।

द्वारके दायीं ओर वेदीमें श्वेत वर्णके नेमिनाथ विराजमान हैं। इनकी प्रतिष्ठा संवत् १७६९ में हुई थी और इनकी अवगाहना १ फुट ९ इंच है। इसके दोनों पार्श्वोंमें श्वेत और कृष्ण वर्णके नेमिनाथ विराजमान हैं।

७. पार्श्वनाथ मन्दिर—पद्मासन मुद्रामें २ फुट ८ इंच ऊँचे श्वेत पाषाणके पार्श्वनाथ आसीन हैं। प्रतिष्ठा संवत् १९०२ में हुई थी। इसके बायीं ओर श्याम वर्ण नेमिनाथ और दायीं ओर पार्श्वनाथ हैं। इन मूर्तियोंपर भूलसे संवत् १९००२ उत्कीर्ण कर दिया गया है जो वस्तुतः १९०२ होना चाहिए।

गर्भगृहके बायीं ओर वेदीमें संवत् १९२६ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी चन्द्रप्रभ प्रतिमा है और दायीं ओरकी वेदीमें संवत् १८०२ में प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभकी श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। दोनोंकी अवगाहना क्रमशः १ फुट २ इंच और १ फुट १ इंच है।

८. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी १ फुट ४ इंच ऊँची संवत् १९४७ में प्रतिष्ठित श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमें ९ इंच अवगाहनावाले संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणके सुपार्श्वनाथ विराजमान हैं।

९. मेरुमन्दिर—इस मन्दिरकी गन्धकुटीमें चन्द्रप्रभ भगवान् विराजमान हैं। ये श्वेतवर्णके हैं, पद्मासन हैं और संवत् १७६१ में इनकी प्रतिष्ठा हुई है। इनकी अवगाहना १ फुट २ इंच है।

व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था नागपुरकी परवार समाजके आधीन है। नागपुरके परवार मन्दिर और इस क्षेत्रकी व्यवस्था एक ही प्रबन्धक समिति करती है।

धर्मशाला

यहाँ धर्मशालाओंमें कुल ६९ कमरे हैं। यात्रियोंकी सुविधाके लिए नल, बिजली और बरतनोंकी सुविधा उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त २५ गद्दे-तकिये और चादरोंकी व्यवस्था है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला कार्तिक सुदी १३ से १५ तक भरता है। इस अवसरपर जलयात्रा होती है।

दर्शनीय स्थल

रामटेक पर्वतके ऊपर महाकवि कालिदासका स्मारक बना हुआ है। यह एक गोलाकार हॉल है। इसमें कालिदासके नाटकोंके आधारपर कुछ दृश्य भित्तियोंपर चित्रांकित किये गये हैं। यहाँ जाने और यहाँसे उतरनेके लिए पक्का सोपान मार्ग बना हुआ है।

स्मारकके अतिरिक्त इस पर्वतपर हिन्दुओंके राम मन्दिर, जानकीकुण्ड, रामसागर आदि भी बने हुए हैं। यहाँकी एक दूसरी पहाड़ीपर नागार्जुनकी गुफा दर्शनीय है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
पो. रामटेक (जिला नागपुर) महाराष्ट्र

बाजार गाँवके जैन मन्दिरोंमें अमूल्य कला-निधि

बाजारगाँव नामक नगर नागपुरसे ३३.३ कि. मी. दूर नेशनल हाईवे नं. ६ के किनारे-पर अवस्थित है। यहाँ एक ही अहातेमें ७ जैन मन्दिर बने हुए हैं। ये नगरके बाहर अवस्थित हैं, किन्तु ये सड़कसे दिखाई पड़ते हैं। यहाँ नगरमें जैनोंका कोई घर नहीं है। इन मन्दिरोंकी व्यवस्था परवारपुरा जैन ट्रस्ट नागपुर करता है। ट्रस्टकी ओरसे मन्दिरोंकी पूजा-सेवाके लिए एक पुजारी रहता है। समुचित सार-सम्हाल न होनेके कारण मन्दिरोंकी दशा शोचनीय हो रही है।

यह असन्दिग्ध सत्य है कि भारतके जैन मन्दिरोंमें पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे अमूल्य कोष भरा पड़ा है। मन्दिरोंका शिल्प, स्थापत्य और कला, मूर्तियोंका शिल्प-वैभव तथा मन्दिरोंमें उपलब्ध प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रोंमें ज्ञान और चित्रकला अत्यन्त समृद्ध है। अतः कलाकी दृष्टि-से जैन समाज अत्यन्त सम्पन्न समाज है। अनेक मन्दिरों एवं गुहा-मन्दिरोंमें जैनाश्रित चित्रकला अपने समुन्नत रूपमें उपलब्ध है। किन्तु प्रायः इसकी अब तक उपेक्षा की जाती रही है। उसका कारण यह है कि जैन मन्दिरोंको जैन लोग केवल आराधना और श्रद्धाके केन्द्रके रूपमें देखनेके अभ्यस्त हैं। इसीलिए आज तक जैनोंने अपने आराधना केन्द्रोंमें सुरक्षित बहुमूल्य कला और पुरातत्त्वका समुचित मूल्यांकन करनेका कभी प्रयत्न नहीं किया। जैन कलाके दुर्लभ उपादान मन्दिर और मूर्तियाँ क्षत-विक्षत दशामें देशके सभी भागोंमें बिखरी पड़ी हैं। अनेक मन्दिरोंमें प्राचीन भित्तिचित्र बने हुए हैं, किन्तु उन्हें सँवारनेका प्रयत्न न करके उनके ऊपर सफेदी पोत दी गयी है, जिससे उन भित्ति-चित्रोंका सौन्दर्य लुप्त हो गया है। कई मन्दिरोंकी जंघा, रथिका और आमलकोंपर अत्यन्त समुन्नत कोटिकी जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, किन्तु चूना-सफेदी करके उनकी कलाको विकृत कर दिया गया है। कई मन्दिरोंमें भित्तियोंमें शासन देवताओंकी मूर्तियोंको सफेदी-चूने द्वारा विरूप कर दिया है।

बाजारगाँवके जैन मन्दिरोंमें दो वेदियों और दीवारोंमें भित्तिचित्र बने हुए हैं। इनमें तीर्थंकरोंके पंच कल्याणक या उनसे सम्बन्धित जीवनके दृश्य, शासनदेवता तथा लोक-जीवनसे सम्बन्धित दृश्य चित्रांकित हैं। जिन पुरातत्त्ववेत्ताओं और कलामर्मज्ञोंने इन भित्तिचित्रोंका अवलोकन किया है, वे इन चित्रोंकी समुन्नत कलासे अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। कई विद्वानोंने तो इन्हें विदर्भ प्रदेशके कला-कोषके बहुमूल्य रत्न कहा है। इन चित्रोंमें कलाके जिस विकसित रूपके दर्शन होते हैं, उसकी सभीने सराहना की है। इन चित्रोंका कलापक्ष और भावपक्ष दोनों ही दर्शनीय है। किन्तु इन भित्तिचित्रोंका पुनर्नवीकरण या जीर्णोद्धार न करके इनके ऊपर सफेदी पोत दी गयी है। यहाँके उपेक्षित मन्दिरोंकी कला धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। आशा है, इन मन्दिरोंके प्रबन्धक और समस्त जैन समाज जैन शिल्प और कलाके इन और ऐसे ही अन्य महत्त्वपूर्ण उपादानोंकी सुरक्षाकी ओर ध्यान देंगे।

मुक्तागिरि (मेंढागिरि)

क्षेत्रका नाम

मुक्तागिरि निर्वाणक्षेत्र अथवा सिद्धक्षेत्र है। ग्रन्थोंमें इस क्षेत्रके कई नाम मिलते हैं। संस्कृत ग्रन्थोंमें मेंढ्कगिरि नाम दिया गया है। संस्कृत निर्वाणभक्तिमें सिद्धक्षेत्रोंमें इसकी गणना करते हुए

'द्रोणीमति प्रबलकुण्डलमेढ्रके च' यह पद दिया गया है। 'बोधपाहुड़' की २७वीं गाथाकी श्रुतसागरी टीकामें भी इसका नाम मेंढ्रगिरि दिया है। प्राकृत निर्वाण-भक्तिमें भी मेंढागिरि नाम मिलता है। भट्टारक गुणकीर्तिने मराठी भाषाकी तीर्थवन्दनामें 'मेढगिरि आहूठ कोडि मुनि सिद्धि पावले त्या सिद्धासि नमस्कारू माझा' द्वारा मेंढगिरिके साढ़े तीन करोड़ सिद्धिप्राप्त मुनियोंको नमस्कार किया है। किन्तु ज्ञानसागर, सुमतिसागर, चिमणा पण्डित, सोमसेन, जयसागर आदिने भाषा ग्रन्थोंमें इस क्षेत्रका नाम मुक्तागिरि दिया है। इससे लगता है कि इस क्षेत्रका प्राचीन नाम मेंढ्रगिरि रहा होगा, बादमें इसे मुक्तागिरि कहने लगे।

इन नामोंके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुत प्रचलित है। प्राचीन कालमें एक मुनि मुक्तागिरि पर्वतके जलप्रपातके निकट बैठे तपस्या कर रहे थे। जलप्रपातके ऊपर एक मेंढ़ा चरता हुआ आया और पैर फिसल जानेसे मुनिके निकट आ गिरा। मुनिने मरणासन्न मेंढाको णमोकार मन्त्र सुनाया। वह शान्त भावोंसे मरकर देव हुआ। उस देवने इस पर्वतपर मोतियोंकी वर्षा की। वर्षा-स्थल ४०वें मन्दिरके निकट बताया जाता है। इसलिए उस मन्दिरको मेंढसगिरि कहते हैं। और मुक्ताओंकी वर्षा हुई थी, इसलिए इस क्षेत्रको मुक्तागिरि कहते हैं।

उक्त घटनाका संकेत मराठी भाषाके सुप्रसिद्ध कवि चिमणा पण्डितने 'तीर्थ-वन्दना' में इस प्रकार दिया है—'मेंढा उद्धरीला मुगता गिरीसी।' इनका समय १७वीं शताब्दीका उत्तरार्ध माना जाता है। इससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि आजसे ३०० वर्ष पूर्व भी उक्त किंवदन्ती प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त कवि राघव (१८वीं शताब्दी), कवीन्द्रसेवक (१९वीं शताब्दी) ने भी इस घटनाका उल्लेख किया है।

निर्वाण-क्षेत्र

मुक्तागिरि निर्वाण-क्षेत्र या सिद्ध-क्षेत्र है। यहाँसे साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं, जैसा कि निर्वाण-काण्डमें बताया है—

अच्चलपुरवरणयरे ईसाणभाए मेढगिरि सिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥

अर्थात् अचलपुर नगरकी ईशान दिशामें स्थित मेढ्रगिरिके शिखरसे साढ़े तीन करोड़ मुनियोंको मुक्ति प्राप्त हुई थी।

वर्तमानमें यह मुक्तागिरि या मेढागिरि कहलाता है और यह अचलपुर (ऐलिचपुर) के ईशान कोणमें १३ कि. मी. दूर है। निर्वाणकाण्डका अनुकरण करते हुए अनेक लेखकोंने इस क्षेत्रको निर्वाण-क्षेत्र स्वीकार किया है तथा उसके सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश डाला है। भट्टारक ज्ञानसागर, जो सोलहवीं शताब्दीके अन्त और सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुए थे, उन्होंने इस क्षेत्रके सम्बन्धमें लिखा है—

'मुक्तागिरि माहंत सिद्धक्षेत्र अतिसंतह।
चैत्यतणी दो पंक्ति पूज रचे गुणवंतह।
धमसाल गुणमाल मध्य जलधार वहंति।
यात्रा करवा काज पंच रात्रि निवसंति॥
विविध चैत्य देखि करी हर्ष घणो मन ऊपजे।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति क्रम क्रम शिवपुरि संचरे' ॥१४॥

इसमें भट्टारक ज्ञानसागरने बताया है कि सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरके ऊपर जिनालयोंकी दो पंक्तियाँ हैं। धर्मशालाएँ हैं। मध्यमें जल-प्रवाह है। वहाँ यात्राके निमित्त पाँच दिन तक ठहरते हैं।

ऐसा लगता है कि इन भट्टारकके कालमें मुक्तागिरिकी यात्रामें पाँच दिन तक ठहरनेका रिवाज रहा होगा।

ब्र. धवजी (ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध) काष्ठासंघके भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। उन्होंने हिन्दी-संस्कृत मिश्रित भाषामें मुक्तागिरि जयमाला लिखी है। उसमें उन्होंने बताया है कि, "वहाँ शिखरबद्ध मन्दिर बने हुए हैं। उनपर ध्वजाएँ फहरा रही हैं, घण्टानाद हो रहा है। देव, विद्याधर और मनुष्य घण्टानाद कर रहे हैं, कोई पूजन कर रहे हैं। स्त्रियाँ नृत्य विनोद कर रही हैं। यहाँ चतुर्विध संघ अपने-अपने काममें लगा हुआ है। देवगण आकाशसे पुष्प-वर्षा और जय-जयकार कर रहे हैं। यहाँ आकर भक्तोंकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।"

राघव कविने सिद्धक्षेत्र 'मुक्तागिरि आरती' मराठी भाषामें लिखी है। इसमें यहाँके मूलनायक पार्श्वनाथकी आरती की गयी है। इसमें बताया है—

'औठ कोडि मुनि मुक्ति पदासी सिद्ध जाले जान।
उद्धरिला तो मेढा गिरवर जाला पावन ॥'

अर्थात् यहाँसे साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्तिको गये। इस क्षेत्रके प्रभावसे मेढ़ाका उद्धार हो गया।

इस प्रकार सभीने इस क्षेत्रको निर्वाण-क्षेत्र स्वीकार किया है, किन्तु यहाँ किन प्रमुख और उल्लेखनीय मुनियोंको मुक्ति-लाभ हुआ, इसका उल्लेख कहीं देखनेमें नहीं आया।

अतिशय

इस क्षेत्रपर प्राचीनकालमें अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित होती रही हैं। यहाँके मन्दिरोंके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है—'एक गड़रिया इस पहाड़पर भेड़ें चराया करता था। उसके पास १००० भेड़-बकरी थीं। एक दिन शामको आधी भेड़ें चरकर आयीं, शेष नहीं आयीं। इसलिए गड़रिया उनकी खोजमें निकला। किन्तु वह बड़ी देर तक तो पहाड़ीपर चढ़ नहीं सका। जब बहुत प्रयत्न करनेपर वह चढ़ा तो उसने देखा कि भेड़-बकरियाँ एक मन्दिर-के चारों ओर चर रही हैं। उसने मन्दिरमें जाकर सोनेकी एक मूर्ति देखी। उस समय तक उस मन्दिरका पता किसीको नहीं था। जब जैनोंको इस मन्दिरका पता लगा तो उन्होंने यहाँ आना प्रारम्भ किया और इसे तीर्थ मानना शुरू कर दिया। इसके बाद और भी मन्दिर बनाये गये।'[1]

लोग कहते हैं कि जो यूरोपीयन अफसर मुक्तागिरि आता है, जिलेमें रहते हुए उसकी पदोन्नति बहुत जल्दी हो जाती है।[2]

ऐसा भी कहा जाता है कि पहाड़से कई बार रात्रिमें जय-जयकार और गायनकी मधुर ध्वनि धर्मशालामें रहनेवालोंको सुनाई पड़ती है। धर्मशालाके मध्यमें जो मन्दिर बना हुआ है, कई बार अर्धरात्रिमें घण्टोंकी आवाज सुनाई पड़ती है। इस प्रकारकी अनुश्रुतियाँ अन्य अनेक तीर्थोंके सम्बन्धमें भी प्रचलित हैं।

१. Central Provinces District Gazetteer, Betul District, Vol. A (Descriptive), edited by R.V. Russel I.C.S. 1907.

२. वही।

क्षेत्रकी प्राचीनता

यह क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन है। साहित्यिक साक्ष्य हमें कुन्दकुन्दाचार्य तक ले जाते हैं। प्राकृत निर्वाण-भक्तिमें, जो आचार्य कुन्दकुन्दने रची थी, इस क्षेत्रका उल्लेख है। किन्तु ताम्रलेख और इतिहाससे यह क्षेत्र इससे भी अधिक प्राचीन सिद्ध होता है। अचलापुरीमें प्राप्त ताम्रपटसे ज्ञात होता है कि इस पर्वतपर मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारने गुहा-मन्दिरका निर्माण कराया था। श्रेणिकका काल ढाई हजार वर्ष पूर्व है। वे भगवान् महावीरके समकालीन थे।

इसके पश्चात् ऐलिचपुर नरेश ऐल श्रीपालने इस क्षेत्रको पुन: प्रकाशमें लाकर इसकी प्रसिद्धि की। उसने मन्दिर और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा भी की।

इस पर्वतपर ५२ जिनालय हैं। ये अधिकांशत: वि. सं. १५४५ (सन् १४८८) से वि. सं. १९५० (सन् १८९३) के मध्य निर्मित हुए हैं।

क्षेत्रका स्वामित्व

यह क्षेत्र सम्पूर्णत: दिगम्बर जैन समाजका है। इसपर किसी भी अन्य सम्प्रदायका अधिकार नहीं है। पहले यहाँके जमींदारको मालगुजारी देनी पड़ती थी। सन् १९२८ में श्री नत्थुसा पासुसा अमरावतीने बीस हजार रुपये, श्री मोती संगई अंजन गाँवने दस हजार रुपये और श्री हीरालाल चम्पालाल ऐलिचपुरने पन्द्रह हजार रुपये देकर यहाँकी जमींदारी अपने नामोंसे खरीद ली। श्री नत्थुसा और श्री मोती संगईने अपना हक मुक्तागिरि क्षेत्रके नाम कर दिया। इसी प्रकार श्री हीरालाल चम्पालालने १९५० में अपने मालिकाना अधिकार क्षेत्रको दे दिये। तबसे क्षेत्रकी जमीन और पहाड़के ऊपर यहाँकी ट्रस्ट कमेटीका सम्पूर्ण अधिकार है।

इतिहासके आलोकमें

इतिहासमें मुक्तागिरिके सम्बन्धमें कोई विवरण नहीं आता, किन्तु जिस ऐल राजाने इस क्षेत्रको प्रसिद्धि दी, मूर्ति और मन्दिर बनवाये, उसके सम्बन्धमें इतिहास ग्रन्थोंमें विशेष जानकारी दी गयी है। ऐल जैन राजा था। उसके राज्यकी राजधानीका नाम ऐलिचपुर था, जो उसीके नामपर पड़ गया था। अमरावती जिला गजेटियरमें इस राजाके सम्बन्धमें इस प्रकार जानकारी दी गयी है।

"एक बार राजा ऐल अपनी धर्म-सभामें बैठा हुआ था। इस सभामें दूर-दूरसे विभिन्न धर्मोंके प्रतिनिधि भाग लेने आये हुए थे। राजाने वाद-विवादमें एक मुस्लिम फकीरको पराजित कर दिया। फकीरने अपनी पराजयसे क्षुब्ध होकर यह समाचार गजनीके तत्कालीन बादशाह रहमानके पास पहुँचा दिया। उस समय रहमानका निकाह हो रहा था और वह दूल्हेके वेषमें बैठा हुआ था। वह फौजें लेकर तत्काल चल दिया और ऐलिचपुरपर धावा बोल दिया। राजा ऐलको उसके अभियानका समाचार पहले ही मिल चुका था, अत: वह पहलेसे सावधान था। उसने बहुमूल्य हीरे, जवाहरात और जैन मन्दिरोंकी मूल्यवान् मूर्तियाँ राजधानीसे हटाकर मुक्तागिरि क्षेत्रकी गुआओंमें छिपा दीं। दोनों सेनाओं और दोनों वीरोंमें भयानक युद्ध हुआ। हजारों शत्रु मारे गये। अन्तमें लड़ते-लड़ते दोनों वीर भी वीरगतिको प्राप्त हुए।" रहमान शादी छोड़कर दूल्हाके वेषमें ही लड़ने आया था, इसीलिए उसका नाम दुला रहमान पड़ गया। जिस स्थानपर शत्रु सेना मारी गयी, उस स्थानका नाम गंज शहीद पड़ गया, जो ऐलिचपुरमें अब भी है। जहाँ ऐल श्रीपाल और अब्दुल रहमान मारे गये, वह स्थान बहरम है जो खरपीसे २ मील दूर है।

किन्तु तवारीख अगजदियाके अनुसार अब्दुल रहमान गजनीका बादशाह नहीं, गजनवी-का भानजा था। गजनवीने फौज देकर उसे विदर्भपर चढ़ाई करने भेजा था। जब उसका विवाह हो रहा था, तभी ऐल श्रीपाल राजाके आक्रमणकी खबर पाकर शादी छोड़कर दूल्हाके वेषमें ही युद्ध करने चला और युद्धमें मारा गया। यह घटना सन् १००१ की है।

इस राजाने कई स्थानोंपर जैन-मन्दिरों और गुहा-मन्दिरोंका निर्माण कराया था। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, मुक्तागिरि आदि क्षेत्रोंपर मन्दिरोंका निर्माण कराया, ऐलौरामें गुफाओंका निर्माण कराके अत्यन्त कलात्मक ढंगसे जिन-मूर्तियाँ उत्कीर्ण करायी थीं।

रहमानके पश्चात् अलाउद्दीन खिलजीने सन् १२९४ में ऐलिचपुरपर प्रबल आक्रमण किया और नगरपर अधिकार कर लिया।

मुक्तागिरिमें राजा ऐलने मूल्यवान् हीरे-जवाहरात और मूर्तियाँ कहाँ छिपाये थे, यह आज तक ज्ञात नहीं हो सका। मन्दिर क्रमांक २० पश्चिमी पहाड़ीपर है। यह अन्य मन्दिरोंकी अपेक्षा प्राचीन है। इसे पुराना मुक्तागिरि कहते हैं। सौ फुट ऊँचा जल-प्रपात इस मन्दिरके बिलकुल निकटसे ही गिरता है। इस मन्दिरके सभामण्डपके बीचमें एक पाषाणपर शतरंज बना हुआ है। सम्भवतः और स्थानोंपर भी ऐसे ही शतरंज बने हुए हैं। लोगोंका विश्वास है कि राजा ऐलके छिपाये हुए धनके संकेत चिह्नोंके रूपमें ये शतरंज बनाये गये होंगे।

भट्टारक पद्मनन्दीकी समाधि

विक्रम संवत् १८७६ में भट्टारक पद्मनन्दी यात्राके निमित्त यहाँ पधारे। यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्य और शान्तिसे आकर्षित होकर वे यहाँ कुछ दिन रहे और उन्होंने चक्रेश्वरी देवीकी आराधना की। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवीने वर माँगनेके लिए कहा। भट्टारकजी ने कहा, "मुझे आपका दर्शन आपके वास्तविक रूपमें चाहिए।" देवीने कहा—"तुम और कुछ माँग लो। जो माँगोगे, वह मिलेगा। मेरा दर्शन तुम सहन नहीं कर सकोगे। मेरा तेज असह्य है।" किन्तु भट्टारकजी अपनी जिदपर अड़े रहे। फलतः देवीको दर्शन देने पड़े और भट्टारकजीका वहीं स्वर्गवास हो गया। उनकी स्मृतिमें खरपी नामक ग्राममें उनकी समाधि और चरण-चिह्न बने हुए हैं। यहाँ मन्दिर और धर्मशाला भी हैं जो सड़कके किनारे ही हैं। खरपी गाँव अचलपुर और मुक्तागिरिके मध्यमें अवस्थित है।

क्षेत्र-दर्शन

पर्वतपर चढ़ने और उतरनेके अलग-अलग मार्ग हैं। पर्वतपर धर्मशालाके निकट नालेसे चढ़ाई प्रारम्भ होती है। १६-१७ सीढ़ियाँ चढ़नेपर एक ऊँचे स्थानपर शिखरबद्ध गुमटी बनी है। इसमें मुनि महेन्द्रसागरकी संवत् १९९७ की पादुका है। १३८ सीढ़ियाँ चढ़नेपर कुछ सपाट मार्ग, पश्चात् सीढ़ियाँ और पुनः सपाट मार्ग मिलता है।

यहाँके मन्दिरोंका विवरण इस प्रकार है—

१. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ चार स्तम्भोंपर आधारित मण्डपमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी ३ फीट उत्तुंग और संवत् १९६७ में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है। स्तम्भोंमें एक-एक पद्मासन मूर्ति उत्कीर्ण है।

मण्डपके पृष्ठ भागमें बायीं ओरकी वेदीमें देशी पाषाणकी पार्श्वनाथ मूर्ति विराजमान है। फण अधूरा बना है। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। मूर्ति सम्भवतः ७-८वीं शताब्दीकी है। दायीं ओर-की वेदीमें १ फुट ९ इंच ऊँची सर्वतोभद्रिका है।

२. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ ३ फीट ऊँचे पाषाण-फलकमें श्वेतवर्ण पार्श्वनाथ मूर्ति खड्गासन मुद्रामें अवस्थित है। परिकर परम्परागत है। एक दूसरी मूर्ति संवत् १९२० की इसी प्रकारकी है। इसमें केवल फण नहीं है। दायीं ओर दीवालमें एक प्राचीन पद्मासन मूर्ति है।

पृष्ठ भागमें बायीं वेदीपर २ फीट ३ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है तथा दायीं वेदीमें २ फीट ९ इंचवाली खड्गासन मूर्ति है। स्तम्भोंमें भी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरके शिखरमें भी मूर्ति है।

ये दोनों मन्दिर प्राचीन हैं।

३. उक्त मन्दिरके ऊपरी भागमें यह मन्दिर बना हुआ है। इसमें श्वेत पाषाणकी संवत् १९६७ में प्रतिष्ठित मूर्ति है। इसका लांछन स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता। यह १ फुट ३ इंच ऊँची है।

४. पार्श्वनाथ मन्दिर—थोड़ा ऊपर चलनेपर पूर्वोत्तर कोणमें पार्श्वनाथकी श्वेत वर्णकी संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित १ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है।

मन्दिर नं. ३-४ के सामने १९ सीढ़ियाँ चढ़कर फिर उतरना पड़ता है।

५. सुमतिनाथ मन्दिर—भगवान् सुमतिनाथकी १ फुट ७ इंच ऊँची श्वेतवर्णकी पद्मासन मूर्ति है। इसके ऊपर श्रीवत्स, लेख और लांछन नहीं है। यह मूर्ति १३-१४वीं शताब्दीकी अनुमानित की जाती है।

६. सभामण्डपमें दो स्तम्भोंके मध्य बनी हुई वेदीपर श्वेत वर्णकी ३ पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं जो क्रमश २ फीट ५ इंच, २ फीट २ इंच और १ फुट १० इंच अवगाहनाकी हैं। ये संवत् १६९० में भट्टारक धर्मचन्द्रने प्रतिष्ठित करायीं। बायीं ओरकी प्रतिमाके सिरपर पाषाण-छत्र है। कन्धोंपर लताका अंकन है। मध्य-मूर्तिकी चरण-चौकीपर अलंकरण है। वेदीके बगलमें क्षेत्रपाल हैं।

७. नेमिनाथ मन्दिर—यहाँ देशी श्याम पाषाणकी ३ पीट ११ इंच ऊँची नेमिनाथकी पद्मासन मूर्ति है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् ९०४ में हुई थी। वक्षपर श्रीवत्स नहीं है। कर्ण स्कन्धस्पर्शी हैं। केशोंकी तीन लड़ियाँ बनी हुई हैं। इस वेदीके पीछे ५ वेदियाँ खाली हैं।

८. पद्मप्रभ मन्दिर—पद्मप्रभ भगवान्की ५ फीट ९ इंच उत्तुंग श्याम वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। श्रीवत्स नहीं है। कान छोटे हैं। पृष्ठ भागमें दो वेदियाँ खाली पड़ी हैं।

९. थोड़ा आगे बढ़नेपर यह मन्दिर है। यह आदिनाथ मन्दिर कहलाता है। इसमें आदिनाथ भगवान्की १ फुट ८ इंच ऊँची संवत् १९१० में प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

इसके पृष्ठ भागमें जलप्रपात है जहाँ १०० फीट ऊपरसे जल गिरता है। यह दृश्य दर्शनीय है। प्रपातके बगलमें बायीं ओर गुहा-मन्दिर है। यही मेंढागिरि मन्दिर कहलाता है। इस जल-प्रपातके निकट इस गुहाके सम्मुख ही मेढ़ा गिरा था, जिसे एक मुनिराजने णमोकार मन्त्र सुनाया था और वह उसके प्रभावसे देव बना था। इसी घटनाकी स्मृतिस्वरूप इस पर्वतका नाम मेंढागिरि हो गया।

१०. मेंढागिरि मन्दिर—कहते हैं, इस गुहा-मन्दिरके सामने मण्डप बनाया गया था। किन्तु दूसरे दिन ही प्रातः वह मण्डप गिरा हुआ मिला। गुहा-मन्दिर पूर्वाभिमुखी है। इस मन्दिर-में प्रवेशके लिए तीन द्वार बने हुए हैं। इनमें दो द्वार बन्द हैं। इनके आगे पूर्वोक्त मण्डपके पाषाण बिखरे पड़े हैं। मध्य द्वारके ऊपर पाँच अर्हन्त मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मध्य मूर्तिके नीचे दो सिंह

पंजा मिलाये हुए बैठे हैं। मूर्तियोंके तीनों ओरके स्तम्भोंपर १-१ अर्हन्त-प्रतिमा है। दायीं ओरके द्वाराकारके ऊपर दो पद्मासन मूर्तियाँ बनी हैं। उससे नीचे दो गज भगवान्का अभिषेक करते दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार बायीं ओर भी अंकन है। मध्य दीवारके ऊपर खड्गासन मूर्ति है तथा दोनों द्वारोंके ऊपर पद्मासन मूर्तियाँ हैं। शिखरके स्थानपर गुफा बनी हुई है। कहते हैं, गुफामें-से बहिरम तक मार्ग जाता है। बहिरम परतवाड़ा-बैतूल रोडपर खरपीसे ३ कि. मी. दूर है। कहा जाता है, इसी स्थानपर ऐल श्रीपाल और अब्दुल रहमान परस्पर लड़ते हुए सन् १००१ में मारे गये थे।

यह मन्दिर सबसे प्राचीन है। विश्वास किया जाता है, इसका निर्माण ऐल श्रीपालने कराया था। मण्डपके फर्शपर चौपड़ बनी हुई है।

इस मन्दिरमें प्रवेश करनेपर मन्दिरके मध्यमें चार स्तम्भोंपर आधारित मण्डप बना हुआ है। उसके चारों ओर परिक्रमा-पथ बना है। सामने पश्चिमकी दीवारमें वेदी बनी हुई है। इसमें २ फुट ९ इंच आकारके चौकोर फलकमें एक पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है जो फलकसे पृथक् लगती है, किन्तु फलकमें ही उत्कीर्ण है। उसमें ऊपर-नीचे दो पद्मासन और दो खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इस वेदीके ऊपर तथा इधर-उधर पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसके बायीं और दायीं ओर दीवारपर अलग कोष्ठकोंमें १४-१४ मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

दक्षिण दीवारमें तीन कोष्ठक बने हुए हैं। पहले कोष्ठकमें एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। मध्य कोष्ठकमें २ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है तथा तीसरे कोष्ठकमें १४ मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

उत्तरकी दीवारमें दो कोष्ठक बने हुए हैं। इनमें पहले पैनलमें १४ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं तथा दूसरे कोष्ठकमें वेदीमें २ फुट ६ इंच उन्नत पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसके खम्भोंमें भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

इस प्रकार दीवार-मूर्तियोंकी कुल संख्या ७२ है जो तीन चौबीसी हैं। यह मन्दिर १६ फुट ६ इंच लम्बा और इतना ही चौड़ा है। इसका निर्माण-काल सम्भवतः १०वीं शताब्दी है।

इस मन्दिरके सामने पड़े हुए पाषाणों पर चारों ओर केशरकी बूँदें पड़ी हुई हैं। मन्दिर नं. ५ से ९ तक मन्दिरोंका एक ग्रुप है। इसके नीचे प्राचीन धर्मशाला बनी हुई है। मन्दिर नं. १० से ११वें मन्दिर तक जानेके लिए नालेके ऊपर बने हुए पुलपर-से जाना पड़ता है। यहाँका दृश्य अत्यन्त मनोहर है। नाला कलकल ध्वनि करता हुआ बहता है। उसके दोनों ओर सघन वृक्ष-राजि हैं।

मन्दिर नं. ११ से २६ तक मन्दिरोंका एक ग्रुप है। इसके आँगनमें प्राचीन कालमें एक मार्ग सुरंगके रूपमें बहिरम तक जाता था।

११. सुपार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् सुपार्श्वनाथकी २ फुट ४ इंच अवगाहनाकी संवत् १९७० में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित कृष्ण वर्ण पद्मासन मूर्ति है। चरण-चौकीपर स्वस्तिक चिह्न अंकित है। यह मन्दिर पश्चिमाभिमुखी है और अठकोण है।

१२. शान्तिनाथ मन्दिर—शान्तिनाथ भगवान्की बादामी वर्णकी १ फुट ३ इंच उन्नत वीर संवत् २४६३ में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है। इसके दोनों ओर १ फुट १ इंच ऊँचे श्वेत पाषाणमें संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

इनके अतिरिक्त यहाँ ८ मूर्तियाँ और चरणचिह्न हैं। इनमें बायीं ओरकी वेदीमें एक खड्गासन और ३ पद्मासन मूर्तियाँ हैं। इनमें एक फलकमें पंच बालयतिकी मूर्तियाँ हैं। इसी

प्रकार दायीं ओरकी वेदीमें ४ मूर्तियाँ हैं जिनमें १ फुटके एक फलकमें पंच बालयतिका अंकन है। यह मन्दिर पश्चिमाभिमुखी है। ये आठों मूर्तियाँ प्राचीन हैं।

१३. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी १ फुट ४ इंच ऊँची और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्वेवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। यहाँ चरणचिह्न भी हैं।

१४. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्णवाली पद्मासन मूर्ति है जो १ फुट ३ इंच ऊँची है। इसके वाम पार्श्वमें वीर संवत् २४६९ में प्रतिष्ठित १ फुट २ इंच उत्तुंग श्वेत पाषाणकी अजितनाथ-मूर्ति है।

१५. मन्दिर नं. १४ की बगलमें दायीं ओर एक मन्दरिया है। उसमें ३ फुट २ इंच ऊँची खड्गासन प्राचीन मूर्ति है। हाथ और घुटनोंसे नीचेका भाग खण्डित है।

१६. प्राचीन पद्मासन मूर्ति। अवगाहना २ फुट ६ इंच है। इधर-उधर चरण हैं।

१७. यहाँ मन्दिर नं. १६ के बगलसे जाना पड़ता है। इसमें पार्श्वनाथकी १ फुट ३ इंच ऊँची बादामी वर्णकी पद्मासन मूर्ति है। फण स्पष्ट नहीं है।

१८. आदिनाथ मन्दिर—इसमें २ फुट ४ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी पद्मासनस्थ आदिनाथ मूर्ति है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४९ में हुई थी। बायीं ओर ३ फुट २ इंच ऊँची श्यामवर्ण प्राचीन मूर्ति है तथा दायीं ओर ३ फुट १० इंच अवगाहनाकी प्राचीन खड्गासन मूर्ति है।

१९. वासुपूज्य मन्दिर—वासुपूज्य भगवान् की १ फुट ४ इंच ऊँची अर्ध-पद्मासन प्राचीन मूर्ति है। बायीं ओर दीवार-वेदीमें भूरे वर्णकी १ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति विराजमान है। एक स्थानपर चरण-चिह्न हैं।

२०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—यहाँ संवत् १५३७ में प्रतिष्ठित और १ फुट २ इंच ऊँची कृष्णवर्ण-वाली पद्मासन मूर्ति है।

२१. बाहुबली मन्दिर—बाहुबली स्वामीकी श्वेत पाषाणकी वीर संवत् २४६९ में प्रतिष्ठित ७ फुट २ इंच ऊँची खड्गासन मूर्ति है।

२२. पार्श्वनाथ मन्दिर—१ फुट ४ इंच ऊँची संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति है।

२३. मन्दिर नं. २२ की सीढ़ियोंकी बगलमें बायीं ओर एक मन्दरिया है जो केवल ३ फुट ५ इंच चौड़ी है। द्वार भी छोटा है। इसमें झुककर घुसते हैं। इसमें पार्श्वनाथकी एक फुट ऊँची, संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति है।

२४. महावीर मन्दिर—भगवान् महावीरकी बादामी वर्णकी पद्मासन मूर्ति है। वीर संवत् २५०० में प्रतिष्ठित हुई। इसकी अवगाहना २ फुट १० इंच है। बायीं ओर वेदीपर संवत् १९४८ में प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभ भगवान्की १ फुट ३ इंच ऊँची मूर्ति है। इसके बायीं ओर श्वेत पाषाण-फलकमें चतुर्मुखी पद्मावती देवी विराजमान हैं। इसके शीर्ष भागपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं तथा दोनों पार्श्वोंमें ४ पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। देवीके दोनों ओर चमरवाहक हैं। अधोभागमें भैरव हैं। दायीं ओर चरण बने हैं। मूलनायकके दायीं ओर वेदीपर भगवान् पार्श्वनाथकी संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित और १ फुट ३ इंच ऊँची मूर्ति है। इससे आगे पद्मावती देवीकी पाषाण-मूर्ति है। इस फलकमें ऊपर ३ तथा बगलमें दोनों ओर २-२ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। चमर-वाहकों और भैरवका भी अंकन है। इससे आगे चरण हैं।

२५. एक कृष्ण वर्णके ३ फुट ४ इंच ऊँचे फलकमें तीन खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण

हैं। इनके ऊपर छत्रोंकी संयोजना है। ऊपर दो गज सूँड़ोंमें कलश लिये हुए अभिषेक करते दीख पड़ते हैं।

२६. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह बड़ा या मुख्य मन्दिर कहलाता है। मन्दिरके मध्यमें मण्डप बना हुआ है। सामने वेदीपर भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण वर्ण ४ फुट ३ इंच उत्तुंग भव्य मूर्ति है। फलकमें मूर्तिके सिरपर छत्र है, दोनों ओर गज बने हुए हैं। दोनों पार्श्वोंमें ३-३ पद्मासन मूर्तियाँ हैं। माला हाथोंमें लिये हुए गन्धर्व और चमरेन्द्रोंकी पारम्परिक संयोजना है। मूर्तिका लेप कहीं-कहींसे छूट गया है। लेख नहीं है।

इसके आगे संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण मूर्ति है। पीछे दीवारमें २३ मूर्तियां हैं। बायीं और दायीं ओर दीवारमें दो वेदियोंमें ४-४ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं तथा मध्य दीवार-वेदीमें कृष्ण वर्णके सहस्रफण पार्श्वनाथ हैं। दो सर्प चरण-चौकीसे लम्बायमान होकर घुटनों तक अंकित हैं। दायीं ओर मध्य वेदीमें चन्द्रप्रभकी संवत् १६०२ की श्वेत वर्ण प्रतिमा है।

बायीं ओरकी तीन दीवार-वेदियोंमें क्रमशः प्राचीन मूर्ति, क्षेत्रपाल और २ मूर्तियाँ विराजमान हैं। दायीं ओरकी दीवार-वेदीमें संवत् १५४६ में प्रतिष्ठित गेरुआ वर्णकी पार्श्वनाथ मूर्ति है। एक अन्य आलेमें क्षेत्रपाल आसीन हैं।

मन्दिरके प्रवेश-द्वारके ऊपर पद्मासन अर्हन्त प्रतिमा बनी हुई है। द्वारके बायीं ओर श्वेत पाषाण-फलकपर संवत् १५४८ की प्रतिष्ठित पंच बालयतिकी प्रतिमा है तथा दायीं ओर अम्बिका देवीकी मूर्ति है।

२७. चन्द्रप्रभ मन्दिर—संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित २ फुट २ इंच ऊँची चन्द्रप्रभ भगवान्की श्वेतवर्ण मूर्ति है।

२८. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इस मन्दिरमें चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। अवगाहना १ फुट ६ इंच है तथा प्रतिष्ठा-काल संवत् १६९६ है।

२९. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी १ फुट २ इंच ऊँची और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है।

३०. ऋषभदेव मन्दिर—वीर संवत् २४६९ में प्रतिष्ठित और ३ फुट ६ इंच उन्नत ऋषभदेवकी श्वेत वर्ण मूर्ति है। बायीं ओर चबूतरेवाली वेदीमें १३ कृष्ण पाषाणकी तथा दायीं ओर ८ श्वेत और १ कृष्ण पाषाणकी मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक २७ से ३० तकका एक ग्रुप है। यहाँसे १०५ सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिर नं. ३१ मिलता है।

३१. यह एक गुमटी है। इसमें ३ चरण-चिह्न विराजमान हैं।

३२. इसमें विदेह क्षेत्रके २० तीर्थंकरोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं।

३३. इस कमरेमें ५ चरण-चिह्न बने हुए हैं।

३४. इस कमरेमें ५ चरण-चिह्न उत्कीर्ण हैं।

३५. इसमें भी ५ चरण-चिह्न अंकित हैं। यहाँ एक दालानमें १८ चरण-चिह्न बने हुए हैं।

क्रम संख्या ३१ से ३५ तक प्रपातके ऊपरी भागपर स्थित हैं। इनमें-से ३१ से ३३ तक जल-प्रपातके इस किनारेपर हैं तथा ३४ और ३५ जल-प्रपातके दूसरी ओर हैं। ये दोनों एकत्र हैं और उत्तराभिमुखी हैं। इन दोनों समूहोंके मध्य पर्वतमें-से आनेवाली जलकी कई धाराएँ इस स्थानपर एकत्र होकर जल-प्रपातके रूपमें १०० फुट नीचे गिरती हैं।

३६. सीढ़ियोंसे उतरकर पश्चिमाभिमुखी पार्श्वनाथ मन्दिर मिलता है। इसमें श्वेत पाषाणकी २ फुट १ इंच उन्नत संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ मूर्ति है।

३७. आदिनाथ मन्दिर—यह मन्दिर उत्तराभिमुखी है। इसमें संवत् १९९९ में प्रतिष्ठित भगवान् आदिनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी अवगाहना १ फुट १० इंच है।

३८. अजितनाथ मन्दिर—श्वेत पाषाणकी अजितनाथ मूर्ति विराजमान है। यह २ फुट ५ इंच ऊँची है। संवत् १९६८ में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी।

३९. आदिनाथ मन्दिर—१ फुट २ इंच ऊँची संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित आदिनाथ भगवान्की श्वेत पाषाण-प्रतिमा है।

४०. २ फुट २ इंच ऊँचे पाषाण-फलकमें प्राचीन खड्गासन मूर्ति है।

४१. आदिनाथ मन्दिर—१ फुट ३ इंच ऊँची आदिनाथकी श्वेतवर्ण मूर्ति है। चरण-चौकीपर लेख नहीं है।

इस मन्दिरके निकट प्राचीन धर्मशालाका एक तिवारा बना हुआ है जो अर्ध-दग्ध दशामें खड़ा है। इसमें कुछ खण्डित प्राचीन मूर्तियाँ संग्रहीत हैं।

४२. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभ भगवान् की २ फुट ६ इंच उन्नत और वीर संवत् २४६९ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन मूर्ति है।

४३. शीतलनाथ मन्दिर—भगवान् शीतलनाथकी संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्वेत पाषाण-की १ फुट १ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है।

४४. रत्नत्रय मन्दिर—इसमें कृष्णवर्णकी तीन प्राचीन खड्गासन मूर्तियाँ हैं जो सम्भवतः शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ की हैं। उनके सिरपर पगड़ीनुमा जटाजूट हैं। मध्यकी मूर्ति ४ फुट ४ इंच ऊँची है तथा दोनों पार्श्वोंकी मूर्तियोंकी अवगाहना ३ फुट ३ इंच है। यहाँ एक चरण-चिह्न भी है।

४५. रत्नत्रय मन्दिर—यह मन्दिर कलापूर्ण और प्राचीन है। यहाँ तीन वेदियाँ हैं। मध्य वेदीपर एक कृष्ण फलकमें तीर्थंकर आदिनाथकी खड्गासन मूर्ति है। उसके तीन ओर २३ तीर्थंकरोंकी पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दोनों ओर चतुर्भुजी दो देवियाँ हैं। यह फलक ४ फुट २ इंच है।

बायीं ओरकी वेदीपर ३ फुट ६ इंच ऊँचे फलकमें एक खड्गासन मूर्ति उत्कीर्ण है। फलक अलंकृत है। इसमें देव-देवियोंका भव्य अंकन है। दायीं ओरकी वेदीपर ३ फुट ऊँची पार्श्वनाथकी खड्गासन मूर्ति है। दोनों ओर यक्ष-यक्षी हैं। पृष्ठ भागमें सर्प-वलय बना है।

मन्दिरके आगे अर्धमण्डप बना हुआ है। इसके स्तम्भोंमें-से एक स्तम्भपर २० मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, दूसरे स्तम्भपर ४ मूर्तियाँ बनी हैं तथा जंजीरोंमें लटके हुए घण्टे अंकित हैं। तीसरे, चौथे स्तम्भमें ८-८ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हैं। इनमें भी अर्गलाश्रित घण्टोंका भव्य अंकन है। मण्डपके बाहर एक लेख भी उत्कीर्ण है किन्तु वह पढ़ा नहीं जा सका। इसकी छतमें कमलका भव्य अंकन है।

४६. आदिनाथ मन्दिर—मन्दिरके मध्यमें मण्डप बना हुआ है। उसमें वेदीपर भगवान् आदिनाथकी ३ फुट १ इंच अवगाहनावाली श्वेतवर्णकी पद्मासन मूर्ति है। इसका प्रतिष्ठाकाल संवत् १९६० है।

मण्डपके पृष्ठ भागमें दो वेदियां बनी हुई हैं। बायीं ओरकी वेदीपर एक प्राचीन मूर्ति विराजमान है। दायीं ओरकी वेदीपर पार्श्वनाथकी संवत् १५२२ में प्रतिष्ठित और २ फुट ४ इंच ऊँची श्यामवर्ण पद्मासन मूर्ति है। वेदीकी भित्तियोंपर २३ तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। तथा वाद्य, पताका, चमर आदि लिये कई मानव-मूर्तियोंका अंकन है। ये सम्भवतः देवगण हैं।

४७. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभ भगवान्की १ फुट १ इंच ऊँची और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है।

खुली जगहमें एक पाषाण-खण्डपर चरण बने हुए हैं।

४८. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी २ फुट ४ इंच उत्तुंग, संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है।

४९. भुंयारा मन्दिर—इस मन्दिरमें भोंयरा बना हुआ है। उसका मार्ग नवीन बनाया गया है। मोड़वाले मार्गसे भोंयरेमें पहुँचते हैं, जहाँ भगवान् शान्तिनाथ और कुन्थुनाथकी ६ फुट १० इंच उत्तुंग खड्गासन मूर्तियाँ विराजमान हैं।

यहाँसे प्राचीन सीढ़ियों द्वारा इस भोंयरेके ऊपरी भाग में पहुँचते हैं। वहाँ मन्दिरमें ३ फुट १० इंच ऊँचे फ्रेमनुमा श्वेत फलकमें मध्यमें पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है तथा शेष फ्रेममें २३ मूर्तियोंका अंकन है। भगवान्के दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र खड़े हैं।

इस प्रकार मन्दिर नं. ३६ से ४९ तक मन्दिरोंका एक समूह है। यहाँसे सीढ़ियोंसे उतरते हैं। मार्गमें अवशिष्ट ३ मन्दिर मिलते हैं।

५०. इस मन्दिरमें तीन कटनीवाले चबूतरेपर २ फुट ६ इंच ऊँचा चैत्यस्तम्भ है। इसमें चारों दिशाओंमें मूर्तियां बनी हैं। इस कक्षमें दो वेदियोंपर ३-३ मूर्तियाँ हैं।

५१. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभ भगवान्की १ फुट १ इंच अवगाहनावाली श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। यहाँ श्वेत चरणचिह्न भी हैं।

५२. महावीर मन्दिर—भगवान् महावीरकी देशी पाषाणकी ३ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। परिकरमें गज, मालाधारी देव, चमरेन्द्र और प्रतिष्ठाकारक दम्पती हैं।

यहाँसे २८ सीढ़ियाँ उतरकर दो छतरियोंमें मुनियोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं।

तलहटीके मन्दिर

धर्मशालाके बीचमें सीढ़ियाँ चढ़कर एक ही स्थानपर दो मन्दिर हैं—आदिनाथ मन्दिर और महावीर मन्दिर।

आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी ३ फुट ऊँची, संवत् १९४७ में प्रतिष्ठित श्वेत पद्मासन मूर्ति है। इसके दोनों पार्श्वोंमें नेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी कृष्णवर्ण मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इस मन्दिरमें पाषाणकी १२ और धातुकी १४ मूर्तियाँ हैं।

महावीर मन्दिर—पहले मन्दिरके बगलमें दूसरे कक्षमें भगवान् महावीरकी ४ फुट ४ इंच उन्नत वीर संवत् २४९४ में प्रतिष्ठित पद्मासन मुद्रामें श्वेत वर्णकी मूर्ति है। इस वेदीके सामने चबूतरेपर दो सिंह बैठे हैं जो सम्भवतः भगवान् महावीरके प्रतीक रूपमें बनाये गये हैं। इसी हॉलमें बाहुबली स्वामीकी ५ फुट ५ इंच उत्तुंग श्वेत वर्णकी खड्गासन मूर्ति एक अन्य वेदीमें विराजमान है।

बायीं ओर तीन दरकी एक वेदी है। उसमें भगवान् पार्श्वनाथ पद्मासन मुद्रामें विराजमान

हैं। मूर्तिका वर्ण श्वेत है। इसके अतिरिक्त इस वेदीमें पाषाणकी ७ और धातुकी १ मूर्तियाँ विराजमान हैं।

पीछेकी ओर दीवारमें ५ वेदियाँ हैं जिनमें क्रमशः २४ चरण, ३ श्वेत मूर्तियाँ, पार्श्वनाथ, ३ मूर्तियाँ और धातुकी पद्मावती मूर्ति विराजमान हैं।

दायीं ओर तीन दरकी वेदीमें पार्श्वनाथ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त इस वेदीमें पाषाणकी ६ और पीतलकी २ मूर्तियाँ हैं। दोनों मन्दिरोंके सामने विशाल सभामण्डप है।

धर्मशाला

यहाँ १३ धर्मशालाएँ हैं जिनमें १३० कमरे हैं। यहाँ दो कुएँ हैं, जिनमें हैण्ड-पम्प लगे हुए हैं। यात्रियोंके उपयोगके लिए क्षेत्रपर बर्तन भी हैं। अभी तक प्रयत्न करनेपर भी क्षेत्र तक बिजली नहीं आ पायी। धर्मशालाके पीछे पहाड़ी नाला बहता है। यहाँ कोई बस्ती और बाजार नहीं है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला कार्तिक शुक्ला १३ से १५ तक होता है।

सन् १९६९ में यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी, जिसमें बाहरसे ५ हजार व्यक्ति आये थे।

यह क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे अनुपम है। जलप्रपातने इस सौन्दर्यमें चार चाँद लगा दिये हैं। यातायातके साधनों और बिजलीके अभावमें भी यहाँ प्रतिदिन विशेषकर अवकाशके दिनोंमें सैकड़ों पर्यटक आते हैं। जो प्राकृतिक सुषमा और मनोरमता इस क्षेत्रपर बिखरी हुई है, वैसी भारतके अन्य किसी तीर्थपर परिलक्षित नहीं होती। यदि मध्यप्रदेश सरकार इधर ध्यान दे तो यह स्थान पर्यटन केन्द्रके रूपमें विकसित किया जा सकता है। किन्तु पर्यटन केन्द्र बनानेसे पूर्व मध्यप्रदेश सरकारको यह आश्वासन देना होगा कि क्षेत्रकी पवित्रता और क्षेत्रसे सम्बद्ध जैन समाजकी भावनाओंका पूर्णतः आदर किया जायेगा। हमें विश्वास है, सरकारकी ओरसे यह आश्वासन मिलनेपर जैन समाजको भी इस स्थानके विकासमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

मार्ग और अवस्थिति

श्री मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेशके बैतूल जिलेमें अवस्थित है। अमरावतीसे परतवाड़ा ५२ कि. मी. है और परतवाड़ा-बैतूल रोडपर परतवाड़ासे खरपी ६ कि. मी. और खरपीसे मुक्तागिरि ६ कि. मी. है। खरपीसे बायीं ओर एक सड़क क्षेत्र तक जाती है। खरपीसे ३ कि. मी. तकका भाग महाराष्ट्र प्रान्तमें है। तथा उससे आगे ३ कि. मी. क्षेत्र तकका भाग मध्यप्रदेशमें पड़ता है। परतवाड़ासे क्षेत्र तकके लिए टेम्पो, स्कूटर, ताँगे और साइकिल रिक्सा किरायेपर चले जाते हैं। मुर्तिजापुरसे अचलपुर तक रेलवे लाइन भी है। अचलपुरको ही परतवाड़ा कहते हैं।

यह विचित्रता है कि मुक्तागिरि क्षेत्र यद्यपि मध्यप्रदेशमें है, किन्तु पोस्टल पतेकी दृष्टिसे इसका जिला अमरावती (महाराष्ट्र) लिखा जाता है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि,
पो. करजगाँव (जिला अमरावती) महाराष्ट्र।

परिशिष्ट-१

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रके जैनतीर्थ :
संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रके जैनतीर्थ : संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग

तिजारा—श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा—तिजारा दिल्ली और अलवर-के मध्य अवस्थित है। यह दिल्लीसे ११२ कि. मी. एवं अलवरसे ५३ कि. मी. दूर है। दिल्ली, रिवाड़ी, अलवर, खैरथल, फीरोजपुर झिरका आदिसे यहाँके लिए सीधी बस-सेवा चालू है। खैर-थल यहाँका सबसे निकट रेलवे स्टेशन है, जहाँसे यह क्षेत्र २७ कि. मी. है। यह स्टेशन पश्चिमी रेलवेके रिवाड़ी और बाँदीकुई स्टेशनोंके मध्य अवस्थित है। यहाँपर दिनमें प्रत्येक ट्रेनपर क्षेत्रके लिए बस उपलब्ध होती है। दिल्लीसे खैरथल स्टेशन १३१ कि. मी. दूर है। क्षेत्रपर विशाल धर्मशाला है। पहले यह पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कहलाता था। किन्तु इसकी भारत व्यापी ख्याति दिनांक १६–८–१९५६ को भूगर्भसे उत्खननमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेत प्रतिमाके प्रकट होनेपर हुई और यह निरन्तर बढ़ती ही गयी। यहाँ आकर व्यन्तर-बाधा, नाना प्रकारके रोग और मानसिक व्याधियाँ दूर हो जाती हैं और मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, जनताकी ऐसी श्रद्धा है। इसलिए यहाँ प्रत्येक रविवारको विशेषतः माहके अन्तिम रविवारको दिल्ली आदि नगरोंसे हजारों भक्त दर्शनार्थ आते हैं।

जयपुर—खैरथलसे जयपुर रेल द्वारा १७७ कि. मी. है। यह एक दर्शनीय नगर है और गुलाबी शहरके नामसे देश-विदेशोंमें प्रसिद्ध है। नगरमें अनेक दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्म-शालाएँ हैं। मन्दिरोंमें पाटौदीका मन्दिर, लश्करका मन्दिर, संघीजीका मन्दिर, बड़े दीवानजीका मन्दिर, दारोगाजीका मन्दिर, ठोल्योंका मन्दिर, चौबीस महाराजका मन्दिर, महावीर मन्दिर कालाडेरा आदि बड़े मन्दिर हैं। यहीं विख्यात विद्वान् पं. टोडरमलजी, दौलतरामजी काशलीवाल, पं. सदासुखजी, पं. जयचन्द छावड़ा आदि हुए थे। पं. टोडरमलजी बधीचन्दजीके मन्दिरमें बैठकर शास्त्र लिखते थे और बड़े मन्दिरमें शास्त्र-प्रवचन किया करते थे। नगरसे लगभग ३ कि. मी. दूर श्री पार्श्वनाथ चूलगिरि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। यह एक सुरम्य पहाड़ीपर स्थित है। पहाड़ीपर जानेके लिए सोपान-मार्ग है। पहाड़ीपर विशाल मन्दिर बना हुआ है।

जयपुरके निकट आमेर और सांगानेरके मन्दिर भी दर्शनीय हैं।

पदमपुरा—घाटगेट (जयपुर) से श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पदमपुरा (बाड़ा) के लिए प्राइवेट बसें चलती हैं जो खानिया, गोनेर होती हुई जाती हैं। इस मार्गसे पदमपुरा २४ कि. मी. पड़ता है। भट्टारकजीकी नसिया (जयपुर) से सरकारी बसें चलती हैं जो सांगानेर, शिव-दासपुरा होती हुई जाती हैं। इस मार्गसे क्षेत्र ३२ कि. मी. पड़ता है। जयपुरसे सवाई माधोपुर जानेवाले रेलमार्गपर शिवदासपुरा-पदमपुरा स्टेशन है। वहाँसे क्षेत्र ६ कि. मी. दूर है। प्रत्येक ट्रेनपर क्षेत्रके लिए बस मिलती है। यह क्षेत्र पद्मप्रभ भगवान्‌की मूर्तिके अतिशयोंके कारण अतिशय क्षेत्र कहलाता है। तिजाराकी तरह यहाँ भी ऐसी मान्यता है कि यहाँ भूतबाधा और रोग दूर हो जाते हैं और मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यहाँका नवनिर्मित मन्दिर दर्शनीय है।

श्रीमहावीरजी—यह भारत भरमें प्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। यहाँ वर्ष-भरमें लाखों भक्तजन मनमें कामना सँजोये आते हैं। उनकी कामना-पूर्ति हो जाती है, श्रद्धालुओंका ऐसा विश्वास है। मूलनायक भगवान् महावीरकी कत्थई वर्णकी प्राचीन प्रतिमा है। यह अत्यन्त अतिशयसम्पन्न है। इस मूर्तिको एक भक्त ग्वालेने भूमिसे निकाला था। इस मन्दिरमें कुल ९ वेदियाँ हैं। मन्दिरके आगे मानस्तम्भ और चारों ओर धर्मशाला है जो कटला कहलाता है। इसके अतिरिक्त भी कई और विशाल धर्मशालाएँ हैं।

यहाँ मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त मुमुक्षु महिलाश्रम, आदर्श महिलाश्रम और शान्तिवीर नगरमें भी मन्दिर हैं। क्षेत्रपर चैत्रमें महावीर जयन्तीके अवसरपर मेला होता है। उस समय रथयात्रा भी होती है जिसमें हजारों मैना और गूजर और दिगम्बर जैन आते हैं।

चमत्कारजी—श्री महावीरजीसे सवाई माधोपुर रेल द्वारा जानेपर सवाई माधोपुर स्टेशन-से शहरको जानेवाली सड़कके किनारे ५ कि. मी. दूर आलनपुर गाँव है। उसमें चमत्कारजीका मन्दिर है। मुख्य वेदीपर आदिनाथ भगवान्‌की ६ इंच ऊँची स्फटिककी प्रतिमा है। इसीके अति-शयोंके कारण यह अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है। संवत् १८८९ में एक किसानके खेत जोतते समय यह प्रतिमा प्राप्त हुई थी। नगरमें ७ मन्दिर और १ नसिया है। मन्दिरके बाहर धर्मशाला है।

बिजौलिया—सवाई माधोपुरसे बूँदीरोड उतरकर वहाँसे बस द्वारा १० कि. मी. बिजौलिया नगर है। नगर से १ मील दूर यह क्षेत्र है। विशाल अहातेके भीतर मन्दिर और रेवती कुण्ड बने हुए हैं। मन्दिरमें मूलनायकके स्थानपर एक शिखराकार चतुर्विंशति फलक है। कुण्डमें स्नान करनेसे रोग दूर हो जाते हैं ऐसी अनुश्रुति है। कुण्डके निकट पहाड़ी चट्टानोंपर तीन शिलालेख उत्कीर्ण हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस क्षेत्रकी ख्याति वस्तुतः इन लेखोंके कारण है। नगरमें जैन धर्मशाला है।

केशोरायपाटन—बिजौलियासे बूँदी और वहाँसे केशोरायपाटन पहुँचते हैं। बसोंकी सुविधा है। नगरसे बाहर चम्बलके तटपर ऊँची चौकीपर जिनालय बना हुआ है। मन्दिरमें ऊपर छह तथा भूगर्भमें भी छोटी-बड़ी छह वेदियाँ हैं। मूलनायक भगवान् मुनि सुव्रतनाथकी कृष्णवर्ण साढ़े चार फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। यह प्रतिमा अत्यन्त भव्य और चमत्कारी है। अनेक भक्त-जनोंकी कामनाएँ यहाँ आकर पूरी हो जाती हैं। इस मन्दिरमें ७–८वीं शताब्दीकी कई मूर्तियाँ हैं। कहते हैं, इसी मन्दिरमें बैठकर ब्रह्मदेव मुनिने वृद्द्रव्यसंग्रहकी टीका लिखी थी।

चाँदखेड़ी—चम्बल नदी नाव द्वारा पार कर कोटाके लिए बस मिलती है। कोटासे खानपुरको बसें जाती हैं। खानपुर बारां-झालावाड़ रोडपर स्थित है। खानपुरसे ४ फर्लांग दूर चाँदखेड़ी क्षेत्र है। यह रुपली नदीके किनारे अवस्थित है। मन्दिरके भोंयरेमें मुख्य गर्भगृहमें हलके लाल पाषाणकी भगवान् आदिनाथकी सवा छह फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अनेक चमत्कारोंकी कहानियाँ प्रचलित हैं। भूमिगृहमें एक शिलाफलकमें महावीर स्वामीकी १२वीं शताब्दीकी अतिमनोज्ञ एक प्रतिमा है। मन्दिरके ऊपरी भागमें ५ वेदियाँ हैं। मन्दिरके बाहर धर्मशाला बनी हुई है।

झालरापाटन—खानपुरसे झालावाड़ और वहाँसे झालरापाटनको बसें जाती हैं। नगरमें भगवान् शान्तिनाथ क्षेत्रका मन्दिर है। इसमें भगवान् शान्तिनाथकी १२ फीट ऊँची भव्य खड्गासन प्रतिमा है। मन्दिरके तीन ओर १५ वेदियाँ बनी हुई हैं। इसके अतिरिक्त नगरमें

४ मन्दिर और हैं तथा झालरापाटन और झालावाड़के मध्य सड़कके किनारे नसिया बनी हुई है। इसमें कई प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

चित्तौड़गढ़—यह गढ़ शिल्पकला और स्वाधीनता हेतु लड़नेवाले वीरोंकी शूरताके लिए देश-भरमें प्रसिद्ध है। कहते हैं, इस किलेका निर्माण चित्रांगद मौर्यने कराया था और उसके नाम-पर ही यह चित्तौड़गढ़ कहलाया। यह भी कहा जाता है कि सीसौदिया नरेश अजयपालने ९वीं शताब्दीमें किसी गुहिलोत नरेश द्वारा बनाये हुए गढ़को ही बढ़ाकर उसे नया रूप प्रदान किया। इस दुर्गसे अनिन्द्य सुन्दरी पद्मिनी, कृष्णभक्त मीराबाई, अप्रतिम वीर राणा कुम्भ, प्रखर देशभक्त महाराणा प्रताप आदिके चरित जुड़े हुए हैं। दुर्गके भीतर पद्मिनीके महल, विजयस्तम्भ, फतह-प्रकाश महल, महाराणा कुम्भाके महल, मीराबाई मन्दिर, नौगजा पीरकी कब्र आदि दर्शनीय हैं। दुर्गमें कई दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिर बने हुए हैं। साह जीजा द्वारा बनाया हुआ आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर और जैन कीर्तिस्तम्भ शिल्प और स्थापत्यका बेजोड़ नमूना है। यह कीर्तिस्तम्भ सात मंजिलका है और ७५ फीट ऊँचा है। ऐसा स्तम्भ सारे भारतमें अन्यत्र नहीं मिलेगा। चित्तौड़ दिल्ली-उदयपुर रेलमार्गपर उदयपुरसे ११७ कि. मी. तथा अजमेरसे १८९ कि. मी. है।

बमोतर—चित्तौड़गढ़से छोटी सादड़ी होते हुए प्रतापगढ़को जानेवाली सड़कपर श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बमोतर नामक ग्राममें अवस्थित है। यह ग्राम प्रतापगढ़से उत्तरमें ५ कि. मी. दूर है। यहाँ शान्तिनाथ भगवान्‌की ५ फीट ऊँची कृष्णवर्णवाली पद्मासन प्रतिमा बड़ी अतिशयसम्पन्न है। यह प्रतिमा संवत् १९०२में प्रतिष्ठित हुई थी।

ऋषभदेव—उदयपुरसे सड़क मार्गसे ऋषभदेव (केशरियाजी) ६५ कि. मी. है। यह एक सुप्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। यहाँ भगवान् ऋषभदेवकी अत्यन्त चमत्कारी प्रतिमा है। इसके दर्शन करने और मनौती मनानेके लिए केवल दिगम्बर जैन ही नहीं, बल्कि श्वेताम्बर जैन, भील और हिन्दू भी बहुत बड़ी संख्यामें आते हैं। यहाँ सभी कार्य समयबद्ध और नियमानुसार होते हैं। प्रातः अभिषेकके समय प्रथम कलशकी बोली होती है। यहाँ सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी हैं। इस मन्दिरके चारों ओर ५२ देहरियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरमें काष्ठासंघी और मूलसंघी भट्टारकोंकी गद्दियाँ बनी हुई हैं। यहाँ जितने धार्मिक उत्सव होते हैं, सभी दिगम्बर आम्नायके अनुसार होते हैं। मन्दिरका मुख्य द्वार अत्यन्त विशाल एवं कलापूर्ण है। इस मन्दिरकी व्यवस्था राजस्थान सरकारका देवस्थान विभाग करता है। यात्रियोंके ठहरनेके लिए यहाँ कई धर्मशालाएँ हैं। यहाँ मन्दिरके निकट बाजारके पृष्ठभागमें भट्टारक यशकीर्ति भवनमें चैत्यालय है। मन्दिरसे लगभग एक फर्लांग दूर भट्टारक यशकीर्ति जैन गुरुकुल है। उसमें भी जिनालय है तथा यात्रियोंके ठहरने-की भी सुविधा है। गुरुकुलसे थोड़ी दूरपर पगल्याजी (चरण) बने हुए हैं। कहते हैं, यहींपर भगवान् ऋषभदेवकी मूर्ति भूगर्भसे प्रकट हुई थी।

नागफणी पार्श्वनाथ—यह अतिशय क्षेत्र है। मन्दिरके नीचे मेरवो नदी बहती है। ४७ सीढ़ियाँ चढ़कर पहाड़के ऊपर मन्दिर बना हुआ है। मन्दिरमें धरणेन्द्र ललितासनमें बैठे हैं। उनके शिरोभागपर सप्तफणमण्डित पार्श्वनाथ भगवान् विराजमान हैं। किंवदन्ती है कि एक भील वृद्धा स्त्रीको जंगलमें यह मूर्ति पड़ी हुई मिली। वह इसकी सेवा करने लगी। वह उस मूर्तिको अपने घर ले जाना चाहती थी। रात्रिमें उसे स्वप्न हुआ कि सरकण्डेकी गाड़ी बनाकर तू मुझे ले चल, किन्तु पीछे मत देखना। उसने सरकण्डेकी गाड़ी बनायी और मूर्तिको ले चली। पीछे बाजों-की ध्वनि होती आ रही थी। झरनेके पास आकर उसे सन्देह हुआ तो उस भक्त वृद्धाने पीछे

मुड़कर देखा। बस मूर्ति वहीं अचल हो गयी। मूर्ति चमत्कारी है। अनेक जैन और अजैन यहाँ मनौती मनाने आते हैं। ऋषभदेवसे बीछीवाड़ा तक बस-सर्विस है। वहाँसे १० कि. मी. अनगढ़ पहाड़ी सड़क है। इसमें लगभग ६ कि. मी. तक बस जाती है। शेष मार्ग मेरचो नदी तक पैदल पूरा करना पड़ता है। पास ही मोदर नामक भीलोंका गाँव है। चारों ओर पहाड़ और जंगल है। इस जंगलमें शेर भी रहता है। मन्दिरके बगलमें धर्मशाला बनी हुई है। यात्रियोंको बीछीवाड़ामें जैनोंसे मिलकर सवारीकी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

अन्देश्वर पार्श्वनाथ—यह स्थान जंगलमें है तथा कलिंजरा-कुशलगढ़के मध्यमें अवस्थित है। ऋषभदेवसे डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, कलिंजरा होकर इस अतिशय क्षेत्र तक पहुँचते हैं। यहाँ पार्श्वनाथ भगवान्‌के दो मन्दिर बने हुए हैं। बड़े मन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी १ फुट ९ इंच ऊँची मूलनायक प्रतिमा अतिशयपूर्ण है। स्वप्न द्वारा जानकर एक किसानने भूगर्भसे इसे निकाला था। यहाँ भी भक्तजन मनौती मनाने आते हैं। मन्दिरके बाहर धर्मशाला बनी हुई है।

आबू—पश्चिम रेलवेकी मोटर गेज रेलकी अहमदाबाद-दिल्ली लाइनपर आबू रोड स्टेशन है। आबू रोड स्टेशनसे २८ कि. मी. दूर माउण्ट आबू है। वहाँ दिलवाड़ामें दिगम्बर जैन आदिनाथ मन्दिर और धर्मशाला है। धर्मशालासे थोड़ी दूर विमलशाहका बनवाया हुआ विमलवसहि नामक श्वेताम्बर मन्दिर है, जिसके निर्माणमें उस समय अठारह करोड़ रुपये व्यय हुए थे। इसमें ५२ देहरियाँ हैं। इसके सामने श्री कुन्थुनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसके निकट लूणवसहि नामक दूसरा श्वेताम्बर मन्दिर है। इसका निर्माण मन्त्री वस्तुपाल और तेजपालने लगभग बारह करोड़ रुपये लगाकर कराया था। इसमें ४८ देहरियाँ हैं। ये दोनों मन्दिर संगमरमरके हैं और अपनी अद्‌भुत शिल्पकला और सौन्दर्यके लिए संसारमें विख्यात हैं। इन मन्दिरोंके स्तम्भों और छतोंकी कला दर्शनीय है। दिलवाड़ासे लगभग ६ कि. मी. आगे अचलगढ़ है। यहाँ आदिनाथ मन्दिरमें आदिनाथ भगवान्‌की अष्ट धातुकी मूर्ति १५४४ मन की कही जाती है।

तारंगा—आबू रोडसे पश्चिम रेलवेपर महसाना जंक्शन ११७ कि. मी. है और महसानासे तारंगा हिल स्टेशन ५७ कि. मी. है। स्टेशनके निकट दिगम्बर जैन धर्मशाला और मन्दिर है। स्टेशनसे तारंगा क्षेत्र ९ कि. मी. है। पक्की सड़क है। बस जाती है। तारंगा सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे वरदत्त, सागरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। यहाँ कोटिशिला और सिद्धशिला नामक दो छोटी पहाड़ियाँ हैं। दोनों पहाड़ियोंपर टोंकें हैं। दोनों ही पहाड़ियोंपर क्रमशः भगवान् नेमिनाथ और भगवान् मल्लिनाथकी संवत् १२९२ की प्रतिमाएँ हैं। तलहटीमें १४ मन्दिर बने हुए हैं। यहीं दिगम्बर जैन धर्मशाला है। यहाँसे लगभग एक मील दूर मोक्षवाटी नामक पहाड़ी है। विश्वास किया जाता है कि यहाँसे भी अनेक मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ था।

गिरनार—तारंगासे महसाना लौटकर महसानासे राजकोट २४६ कि. मी. रेल द्वारा जाना पड़ता है। राजकोटसे ट्रेन बदलकर जूनागढ़ जावें। जूनागढ़से गिरनार सड़कसे ५ कि. मी. है। यहाँ श्री बण्डीलाल दिगम्बर जैन कारखाना (धर्मशाला) है। धर्मशालाके अन्दर ही मानस्तम्भ और मन्दिर हैं जिसमें ९ वेदियाँ हैं। धर्मशालासे कुछ दूर चलनेपर सीढ़ियाँ मिलती हैं। पहली टोंक तक ४४०० सीढ़ियाँ हैं। पहली टोंकपर ४ दिगम्बर मन्दिर और दिगम्बर जैन धर्मशालाएँ हैं। निकट ही राजुल गुफा है। कहा जाता है कि यहीं बैठकर राजुलमतीने तपस्या की थी। गुफामें अँधेरा रहता है और बैठकर जाना पड़ता है। यहाँसे १०५ सीढ़ियाँ चलनेपर गोमुख गंगा (कुण्ड) मिलती है। कुण्डके दूसरी ओर दीवारमें चौबीस चरण बने हुए हैं। गोमुख गंगाके बगलसे सहस्राम्र वनको सीढ़ियाँ जाती हैं। इनकी संख्या १४९९ है। गोमुखसे आगे बढ़नेपर राखंगारका

किला और अनेक श्वेताम्बर मन्दिर मिलते हैं। पहली टोंकसे ९०० सीढ़ियाँ चढ़नेपर अनिरुद्धकुमार की टोंक मिलती है। इसके निकट अम्बा देवीका मन्दिर है। इसके ऊपर अब हिन्दुओंका अधिकार है। दूसरी टोंकसे ७०० सीढ़ियाँ चढ़नेपर शम्बुकुमारकी तीसरी टोंक मिलती है। इससे पाँचवीं टोंक तक २५०० सीढ़ियाँ हैं। चौथी टोंक प्रद्युम्नकुमारकी है। इसके लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं। अतः इसकी चढ़ाई कठिन है। पांचवीं टोंक भगवान् नेमिनाथकी है। यहाँ हिन्दू साधु बैठे रहते हैं।

कुल सीढ़ियोंकी संख्या ८५००+१४९९ कुल ९९९९ है। इस क्षेत्रसे भगवान् नेमिनाथ आदि मुक्त हुए थे, अतः यह सिद्धक्षेत्र है। सहस्राम्र वनको वापसीमें जाना चाहिए और सीढ़ियों द्वारा ही वहाँकी यात्रा करनी चाहिए। यहाँ डोलीका भाड़ा ५५ किलो तक ९५ रुपये तथा सहस्राम्र वनके ४० रुपये हैं। आगेका भाड़ा इस प्रकार है—

५५ किलोसे ८० किलो तक	१५५.००	सहस्राम्र वन	५०.००
८० ,, १०० ,,	२५०.००	,,	७०.००
बच्चे १ माहसे ५ वर्ष तक	१८.००	,,	४.००

जूनागढ़ शहरमें भी ऊपर कोटके पास दिगम्बर धर्मशाला और मन्दिर है।

सोनगढ़—जूनागढ़से सोनगढ़के लिए सीधी बस-सेवा है। सोनगढ़ श्री कानजी स्वामीके कारण तीर्थके समान बन गया है। स्वामीजी वर्षमें ९ माह यहाँ रहते हैं। यहाँका श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर दर्शनीय है। इसके निर्माणमें २५ लाख रुपया व्यय हुआ है। इसमें कुन्दकुन्दाचार्यके समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड ग्रन्थोंको ४'×२' के ४४८ पाटियोंपर उत्कीर्ण कराया गया है। इसके अतिरिक्त यहाँ सीमन्धर स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर, समवसरण मन्दिर, स्वाध्याय मन्दिर तथा विशाल मानस्तम्भ है। यहाँ ठहरनेके लिए दो धर्मशालाएँ और गेस्ट हाउस हैं।

पालीताणा—सोनगढ़से पालीताणा २२ कि. मी. है। बसें जाती हैं। भैरवपुरामें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। शहरमें एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। शहरसे शत्रुंजय तीर्थ ढाई मील है। तांगे जाते हैं। इस पहाड़पर श्वेताम्बरोंके ३५०० जैन मन्दिर हैं। उनके मध्यमें एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। यहांसे तीन पाण्डव और ८ करोड़ मुनि मुक्त हुए थे, अतः यह सिद्धक्षेत्र है।

घोघा—पालीताणासे भावनगर २९ कि. मी. है तथा भावनगरसे घोघा लगभग १४ कि. मी. है। बसें जाती हैं। यहाँ एक कम्पाउण्डमें दो मंजिले दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। नगर खम्भातकी खाड़ीके तटपर है। अतः समुद्रकी खारी हवाओंके कारण मूर्तियोंपर चित्तियाँ पड़ गयी हैं। एक श्वेत प्रतिमा अत्यन्त अतिशयसम्पन्न है। लांछन और लेख न होनेके कारण इसे चतुर्थकालकी कहा जाता है।

पावागढ़—भावनगरसे अहमदाबाद होते हुए बड़ौदा पहुँचकर वहाँसे बस द्वारा पावागढ़ जा सकते हैं। यह सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे लवणांकुश, मदनांकुश आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनि मुक्त हुए थे। बस स्टैण्डसे एक कि. मी. दूर दिगम्बर जैन धर्मशाला है। धर्मशालाके अन्दर एक जैन मन्दिर और मानस्तम्भ है तथा एक मन्दिर धर्मशालाके बाहर है। महावीर मन्दिरमें सम्भवनाथ भगवान्‌की एक प्रतिमा संवत् १२४५ की है।

धर्मशालासे क्षेत्र लगभग १० कि. मी. है। इसमें आधा मार्ग पक्की सड़कका है, शेष मार्ग कच्चा है। पहाड़पर ७ जिनालय बने हुए हैं। अनेक मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं।

अंकलेश्वर—बड़ौदासे रेल द्वारा अंकलेश्वर ७९ कि. मी. है। नगरके मध्यमें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। यहाँ चिन्तामणि पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, आदिनाथ और महावीर मन्दिर ये चार

मन्दिर हैं। चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा रामकुण्डमें-से निकली थी। कहते हैं, पार्श्वनाथ मन्दिरमें ही भगवत्पुष्पदन्त और भगवद्भूतबलिने धरसेनाचार्यसे सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन करनेके बाद प्रथम चातुर्मास किया था। इस मन्दिरमें एक मुनिकी प्राचीन प्रतिमा है जो धरसेनाचार्यकी कही जाती है। यहाँका मुख्य मन्दिर महावीर मन्दिर है। महावीर और आदिनाथ मन्दिर काष्ठासंघके हैं, पार्श्वनाथ मन्दिर मूलसंघका और नेमिनाथ मन्दिर नवग्रह संघका है।

सजोद—यह अतिशय क्षेत्र है। सजोद अंकलेश्वरसे पश्चिम में ८ कि. मी. दूर है। बसें जाती हैं। नगरके मध्यमें दिगम्बर जैन मन्दिर बना हुआ है। इसमें भूगर्भगृहमें भगवान् शीतलनाथकी अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा भी रामकुण्डसे प्राप्त हुई थी। प्रतिमा सातिशय है। नगरमें जैनोंका कोई घर नहीं है।

सूरत—अंकलेश्वरसे सूरत रेल द्वारा ५० कि. मी. है। शहरमें कई जिनालय हैं। शहरसे ३ कि. मी. दूर कतार गाँवमें विद्यानन्द क्षेत्र है जहाँ प्रसिद्ध भट्टारक विद्यानन्द तथा भट्टारकों और मुनियोंके ८२ चरण बने हुए हैं। एक मानस्तम्भ भी है। ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यहाँ धर्मशाला भी है।

महुआ—श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुआ सूरतसे सड़क मार्ग द्वारा ४४ कि. मी. दूर है और पूर्णा नदीके तटपर अवस्थित है। भूगर्भ-गृहमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण प्रतिमा विराजमान है। यह अत्यन्त अतिशयसम्पन्न है। यहाँ जैनोंके अतिरिक्त अनेक हिन्दू पूर्णा नदीमें स्नान करके गाजे-बाजेके साथ मनौती मनानेके लिए आते हैं और फल, नारियल तथा चाँदीकी वस्तुएँ चढ़ाते हैं। यहाँ एक मन्दिर चन्द्रप्रभ भगवान्का है जिसमें प्राचीन मन्दिरकी अनेक प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्दिरके सामने धर्मशाला है। इसमें प्राचीन दारुलेख सुरक्षित हैं जो दर्शनीय हैं।

बम्बई—सूरतसे बम्बई जाना चाहिए। बम्बईमें सी. पी. टैंकपर हीराबाग दिगम्बर जैन धर्मशाला है। उसीके निकट सुखानन्द दिगम्बर जैन धर्मशाला है। हीराबाग धर्मशालामें ही भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीका कार्यालय है। बम्बईमें भूलेश्वर, कालबादेवी रोड, गुलालबाड़ी, बोरीबलीमें भी दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। चौपाटीपर सेठ घासीराम पूनमचन्दका काँचका चैत्यालय तथा सेठ हीराचन्द गुमानजीके चैत्यालय भी दर्शनीय हैं। पोदनपुर (बोरीबली) में नेशनल पार्कमें तीन मूर्ति मन्दिरने क्षेत्रका रूप ले लिया है। यहाँ भगवान् आदिनाथकी ३१ फीटकी तथा भरत और बाहुबली की २८–२८ फीट ऊँची मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त २४ वेदियोंमें २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ विराजमान हैं।

गजपन्था—बम्बईसे नासिक आकर नासिकसे डिण्डोरी रोडपर ६ कि. मी. दूर म्हसरुल गाँव है। यहीं सड़कके किनारे दिगम्बर जैन धर्मशाला और मन्दिर है। धर्मशालासे लगभग १ मील दूर दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र गजपन्था है। यहाँ तलहटीमें एक मन्दिर है। लगभग ५०० सीढ़ियाँ चढ़कर पर्वतपर गुहामन्दिर तथा अन्य मन्दिर हैं। गुहामन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी १० फीट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। यहाँसे बलभद्र आदि ८ करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। ये गुफाएँ चामर लेनी कहलाती हैं।

नासिकमें १३८१ टकसाल लेन, दूधनाका त्र्यम्बक दरवाजामें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। नासिक रोड स्टेशनसे नासिक शहर ८ कि. मी. है।

अंजनेरी क्षेत्र—गजपन्थसे त्र्यम्बक रोडपर २७ कि. मी. दूर अंजनेरी क्षेत्र है। यहाँ पर्वतपर दो गुफाओंमें ६ मूर्तियाँ हैं। प्राचीन कालमें गाँवमें १४-१५ जैन मन्दिर थे, जो अब ध्वस्त अवस्थामें

पड़े हुए हैं। एक मन्दिरमें १२वीं शताब्दीका शिलालेख है। सड़कके किनारे एक शैडके नीचे ५ फीट ऊँची तीर्थंकर प्रतिमा रखी हुई है।

मांगीतुंगी—गजपन्थ (म्हसरुल) से नासिक ६ कि. मी., नासिकसे सटाणा ८८ कि. मी. और सटाणासे ताराबाद २७ कि. मी. बस द्वारा जाकर ताराबादसे क्षेत्रके लिए बैलगाड़ीसे ६ कि. मी. जाना पड़ता है। कच्ची सड़क है।

यह सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे रामचन्द्र, हनुमान्, सुग्रीव, सुडील, गव, गवाक्ष, नील, महानील आदि ९९ करोड़ मुनि मुक्त हुए थे। बलभद्रने अपने मृत अनुज नारायण कृष्णके शवका दाह करके यहीं मुनि-दीक्षा ली थी। मांगी और तुंगी एक पर्वतकी दो चोटियाँ हैं। पहाड़पर ऊपर जानेके लिए कुल २९६० सीढ़ियाँ हैं। ऊपर जाते हुए बायीं ओरको माँगी शिखरके लिए और दायीं ओर-को तुंगी शिखरके लिए मार्ग गया है। मार्गमें शुद्ध-बुद्धकी गुफाएँ, मांगी शिखरपर ९ गुफाएँ और तुंगी शिखरपर २ गुफाएँ बनी हुई हैं। इन गुफाओंको सँवार दिया गया है। इन गुफाओंमें और दीवारोंमें तीर्थंकरों, अर्हन्तों और मुनियोंकी ६०० मूर्तियाँ बनी हुई हैं। तलहटीमें ३ मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंके चारों ओर धर्मशाला बनी हुई है।

दहीगाँव—मांगीतुंगीसे सटाणा और वहाँसे मनमाड़ बस द्वारा चलकर वहाँसे रेल द्वारा पुणे (पूना) और पुणेसे लोणन्द या नीरा रेलद्वारा जाकर वहाँसे नातेपुत्ते बस द्वारा जाना चाहिए। नातेपुत्तेसे दहीगाँव बालचन्दनगर जानेवाली बससे जाना पड़ता है। नातेपुत्तेसे यह स्थान ६ कि. मी. है। यह क्षेत्र गाँवके मध्यमें है। यहाँ एक मन्दिरमें ऊपर नीचे १२ वेदियाँ हैं। मुख्य वेदीमें भगवान् महावीरकी साढ़े पाँच फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इसके पार्श्ववर्ती वेदीमें भगवान् महावीरकी प्रतिमा तथा ब्र. महतीसागरके चरण-चिह्न विराजमान हैं। कहते हैं, इन्हीं चरणोंके आगे भक्त लोग मनौतियाँ मनाते हैं और इन्हींके कारण यह स्थान अतिशय क्षेत्र कहलाता है।

मन्दिरके आगे एक विशाल मानस्तम्भ है। निकट ही एक जैन धर्मशाला है। इसमें जैन-गुरुकुल भी चल रहा है।

कुण्डल—यहाँसे लौटकर नातेपुत्ते होते हुए लोणन्द वापस लौटना पड़ता है। वहाँसे ट्रेन द्वारा किर्लोस्करबाड़ी १४६ कि. मी. जाकर वहाँसे बस द्वारा ५ कि. मी. कुण्डल जाते हैं। मन्दिर गाँवमें है। जैन धर्मशाला है। गाँवका मन्दिर कलिकुण्ड पार्श्वनाथ कहलाता है। इसमें संवत् ९६४ की पार्श्वनाथ भगवान्की पद्मासन प्रतिमा है। गाँवसे २ कि. मी. दूर पर्वतपर झरी पार्श्वनाथका मन्दिर है। यह गुहामन्दिर है। एक चबूतरेपर भगवान् पार्श्वनाथ विराजमान हैं। दायीं ओर पद्मावती देवीकी चतुर्भुजी पाषाण-प्रतिमा है। भगवान्के ऊपर तथा गुफामें निरन्तर पानी झड़ता रहता है। इस गुफामें बायीं ओर एक जल-कुण्ड बना हुआ है। इस पहाड़ीसे लगभग ४ कि. मी. दूर दूसरी पहाड़ीपर एक मण्डपमें चरण-चिह्न विराजमान है। इनके सम्बन्धमें अनुश्रुति है कि यहाँ भगवान् महावीरका समवसरण आया था। इससे कुछ आगे एक जिनालय है। इसमें सप्तफणी पार्श्वनाथ विराजमान हैं। ये गिरि पार्श्वनाथ कहलाते हैं।

बाहुबली—यहाँसे पुनः किर्लोस्करबाड़ी आकर वहाँसे रेल द्वारा हातकलंगड़े उतरना चाहिए। वहाँसे ६ कि. मी. बाहुबली क्षेत्र है। नियमित बस-सेवा है। सड़कके किनारे विशाल प्रवेश-द्वार बना हुआ है। उसमें प्रवेश करनेपर धर्मशालाएँ तथा गुरुकुल भवन बने हुए हैं। इन भवनोंके निकट ही जिनालयका मुख्य प्रवेश-द्वार है। प्रवेश करते ही सामने एक उन्नत चबूतरेपर बाहुबली स्वामीकी २८ फीट ऊँची श्वेत प्रतिमा खड़ी है। इसी परिसरमें अनेक मन्दिर और क्षेत्रोंकी प्रतिकृतियाँ बनी हुई हैं। इन मन्दिरोंके पृष्ठ भागसे पहाड़ीपर जानेके लिए सोपान-मार्ग

है। यहाँ ४ प्राचीन मन्दिर, मानस्तम्भ और मुनि बाहुबलीके चरण मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिरोंका पुनर्निर्माण हो रहा है। यहाँका बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम प्राचीन और आधुनिक शिक्षण पद्धतिका अपूर्व संगम है।

कोल्हापुर—बाहुबली क्षेत्रसे पुनः हातकलंगड़ा वापस आकर वहाँसे २१ कि. मी. रेल या बस द्वारा कोल्हापुर जा सकते हैं। यहाँ शाहूपुरीका जैन मन्दिर, गंगावेश डुआर्डका पार्श्वनाथ मानस्तम्भ जैन मन्दिर, नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, मंगलवार पेठके मन्दिर दर्शनीय हैं। गंगावेश मन्दिरमें १००० वर्ष प्राचीन शिलाहारवंशीय दो शिलालेख हैं। नेमिनाथ मन्दिरके सम्बन्धमें अनुश्रुति है कि यहींपर षट्खण्डागमका अन्तिम भाग लिखा गया था। यहाँपर भट्टारक लक्ष्मीसेन और भट्टारक जिनसेनके भट्टारकपीठ हैं। लक्ष्मीसेन मठ शुक्रवार पेठमें है। यहाँ एक पृथक् मण्डपमें आदिनाथ भगवान्की २८ फीट ऊँची खड्गासन प्रतिमा दर्शनीय है।

कुन्थलगिरि—कोल्हापुरसे मिरज होते हुए येडशी या कुर्डुवाड़ी स्टेशन पर उतरना पड़ता है। येडशोसे यह क्षेत्र सड़क-मार्गसे ४० कि. मी. तथा कुर्डुवाड़ीसे ५८ कि. मी. है। जो बसें भूम नामक स्थानको जाती हैं, वे सभी कुन्थलगिरिकी धर्मशालाके सामने रुकती हैं। जो भूम होकर नहीं जातीं, वे सरमगुण्डो (कुन्थलगिरि फाटा) उतारती हैं। वहाँसे कुन्थलगिरि ३ कि. मी. दूसरी बससे जाना पड़ता है। कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे कुलभूषण-देशभूषण नामक मुनिराज मुक्त हुए हैं। पहाड़के ऊपर पांच मन्दिर हैं तथा तलहटीमें भी पांच मन्दिर हैं। पहाड़के ऊपर वह स्थान भी दर्शनीय है जहाँ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने सल्लेखना द्वारा ३६ दिन बाद समाधिपूर्वक देहत्याग किया था।

यहाँ एक गुरुकुल भी है तथा विशाल धर्मशाला है।

उस्मानाबाद (धाराशिवगुफाएँ)—कुन्थलगिरिसे बस द्वारा ५२ कि. मी. उस्मानाबाद जाते हैं। यहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। इनमें एक मन्दिरमें धर्मशाला है। यहाँसे लगभग ५ कि. मी. दूर धाराशिवकी गुफाएँ हैं जिन्हें लयण कहते हैं। लगभग ३ कि. मी. तक ताँगा जा सकता है, शेष मार्ग पैदल चलना पड़ता है। पुजारी या किसी व्यक्तिको साथमें ले जाना चाहिए। यहाँ उत्तर और दक्षिणकी पहाड़ियोंपर ४–४ गुफाएँ बनी हुई हैं। ये सभी पुरातत्त्व विभागके आधीन हैं। उत्तरकी गुफाओं और उनकी मूर्तियोंकी दशा अपेक्षाकृत अच्छी है और विशाल हैं। गुफाओंके अन्दर कोठरियाँ बनी हुई हैं और जल टपकता रहता है। इनमें भगवान् पार्श्वनाथकी ६ फीट ६ इंच अवगाहनावाली अर्धपद्मासन प्रतिमाएँ हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें अलंकृत चमरेन्द्र हैं। जैन शास्त्रोंके अनुसार इनमें-से तीन गुफाओं और पार्श्वनाथ-मूर्तियोंका निर्माण करकण्डु नरेशने कराया था। किन्तु पुरातत्त्ववेत्ता इनका काल ५वीं से ८वीं शताब्दी मानते हैं।

तेर—उस्मानाबादसे तेर १९ कि. मी. है। बस जाती हैं। यहाँ गाँवके बाहर, वाटर वर्क्स-के सामने खेतोंके बीचमें जैन मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर सड़कसे लगभग २ फर्लांग दूर है। एक अहातेके भीतर दो मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें अनेक प्राचीन मूर्तियाँ और चरण विराजमान हैं। इस क्षेत्रके सम्बन्धमें एक अनुश्रुति प्रचलित है कि यहाँ भगवान् महावीरका समवसरण आया था। अहातेके बाहर एक प्राचीन मन्दिर, छतरी और बावड़ी बनी हुई है।

यहाँ धर्मशाला नहीं है, अतः उस्मानाबादमें ही ठहरना चाहिए।

शोलापुर—उस्मानाबादसे शोलापुरके लिए ६५ कि. मी. सीधी बस-सर्विस है। यहाँ दिगम्बर जैन श्राविकाश्रमके सामने सेठ नेमचन्द हीराचन्दजीकी विशाल एवं स्वच्छ जैन धर्मशाला है। इसके अतिरिक्त एक धर्मशाला शुक्रवार पेठमें तथा दूसरी धर्मशाला कासारि (चिन्तामणि

पार्श्वनाथ मन्दिर) में है। इस नगरमें कुल ८ दिगम्बर जैन मन्दिर हैं, जिनमें शुक्रवार पेठ में २, कासारि में १, श्राविकाश्रममें १, भुसारि में, चाट्टीगलीमें और उसके सामने सेठ सखारामजीका मन्दिर है। यह व्यापारिक केन्द्र है।

सावरगाँव—शोलापुरसे सूरतगाँव होते हुए सावरगांवके लिए सीधी केवल एक बस जाती है। सूरतगांवसे सावरगाँव ६ कि. मी. है। गाँवके मध्यमें श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। इस मन्दिरमें तीन वेदियां, खेलामण्डप, सभामण्डप और दो मानस्तम्भ हैं। पार्श्वनाथ भगवान्की मूर्ति अतिशयसम्पन्न है। मन्दिरमें कुछ कमरे यात्रियोंके लिए बने हुए हैं।

आष्टा—सावरगांवसे शोलापुर लौटकर वहांसे शोलापुर-हैदराबाद नेशनल हाई वे नं. ९ पर भोसलागांवसे दक्षिणकी ओर ५ कि. मी. आष्टागांव है। यह कासार-आष्टा कहलाता है। लगभग १०० वर्ष पहले यहाँ २०० कासार जैनोंके घर थे, अब तो थोड़े-से रह गये हैं। श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गाँवके भीतर है। मन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण-वर्णकी १॥ फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। यह मूलनायक हैं। भक्तजन इसके आगे मनौती मनाने आते हैं और मूर्तिका घीसे अभिषेक करते हैं। मन्दिरके प्रांगणमें ही दो बरामदे हैं जहाँ यात्री ठहर सकते हैं।

ऐलौरा—कासार आष्टासे नलदुर्ग होकर औरंगाबादके लिए बस-सेवा है। औरंगाबादसे ऐलौराकी विश्वप्रसिद्ध गुफाएँ २९ कि. मी. हैं। औरंगाबादसे ऐलौराके लिए बराबर बसें जाती रहती हैं। यात्रियोंके ठहरनेके लिए औरंगाबादके शाहगंज मुहल्लेमें श्री चन्द्रसागर दिगम्बर जैन धर्मशाला अधिक सुविधाजनक है। इसके निकट ही ऐलौरा जानेके लिए बस स्टैण्ड है। श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल ऐलौरामें भी यात्रियोंके ठहरनेकी व्यवस्था हो जाती है।

अनुश्रुतिके अनुसार ऐलाचार्य नामक एक जैनाचार्यके नामपर गाँवका नाम एलोर पड़ गया। गाँवके नामपर ही गुफाओंका नाम एलोराकी गुफाएँ कही जाती हैं। राष्ट्रकूट नरेशोंके कालमें यहाँ कैलाश आदि कलापूर्ण गुफाओंका निर्माण हुआ। यहाँ हिन्दू, बौद्ध और जैनोंकी कुल ३४ गुफाएँ हैं जिनमें ५ गुफाएँ नं. ३० से ३४ तक—जैनोंकी हैं। इनमें इन्द्रसभा, छोटा कैलाश, जगन्नाथ गुफा ये तीन गुफाएँ यहाँकी सर्वश्रेष्ठ गुफाओंमें मानी जाती हैं। जैन गुफाओंका निर्माण राष्ट्रकूट और ऐलवंशी नरेशोंने (७वीं से १०वीं शताब्दी तक) कराया था। इन गुफाओंमें रंग-बिरंगी चित्रकला, मूर्तिकला और शिल्प-सौन्दर्य देखने योग्य है। ये गुफाएँ दो-मंजिली हैं। इनमें अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जिनमें भगवान् पार्श्वनाथकी उपसर्गयुक्त तपस्यारत मूर्तियाँ, बाहुबलीकी कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ, धरणेन्द्र-पद्मावती, गोमेद-अम्बिका, मातंग-सिद्धायिनी, चक्रेश्वरी, ताण्डव नृत्य करते हुए इन्द्र, नृत्य मुद्रामें नीलांजना आदि ऐसी मूर्तियां हैं, जिनमें कलाका चरम उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। यहाँके कलाकारोंने अपनी छैनी-हथौड़ेसे कलाको धन्य कर दिया है। इन गुफाओंके पृष्ठभागमें भगवान् पार्श्वनाथका मन्दिर है। गुफा नं. ३० से यह लगभग दो फर्लांग है। सड़कसे इसके लिए अलग मार्ग भी है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी अर्धपद्मासन नौफणी मूर्ति है। इसकी अवगाहना १२ फीट है। यह १०वीं शताब्दीकी है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है।

गुरुकुलमें भी एक नवीन मन्दिर है।

दौलताबाद—औरंगाबाद और ऐलौराके मार्गमें सड़कके किनारे भिल्लम नामक जैन नरेश-का बनवाया हुआ एक विशाल किला है। इसमें अब भी अनेक जैन मूर्तियाँ हैं। इसी किलेको मुहम्मद तुगलक नामक बादशाहने भारतकी राजधानीका केन्द्र बनानेका निर्णय किया था। जैन मन्दिरको भारत सरकारने भारतमाताका मन्दिर बना दिया है।

औरंगाबाद (रजिया बेगमके मकबरे) से ३ कि. मी. दूर निपट निरंजन गुफाएँ हैं। इनमें से एक गुफामें भगवान् अरनाथकी साढ़े छह फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। अन्य गुफाओंमें जैन देवियोंकी मूर्तियाँ हैं।

पैठण—औरंगाबादसे पैठण गोदावरीके तटपर ५१ कि. मी. प्राचीन नगर है। यह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्षकी राजधानी था। अमोघवर्ष भगवान् जिनसेनाचार्यका सुयोग्य शिष्य था और जैन राजा था। इस नगरमें श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। मूलनायक भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी बालुकामय श्यामवर्ण प्रतिमा है। यह अत्यन्त मनोज्ञ और अतिशय सम्पन्न है। यह भूगर्भगृहमें विराजमान है। यहाँ अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति कामना-पूर्तिके लिए आते हैं। मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला है।

नवागढ़—पैठणसे पुनः औरंगाबाद लौटकर औरंगाबादसे दक्षिण मध्य रेलवेके मीरखोल स्टेशन (१९४ कि. मी.) पहुँचते हैं। स्टेशनसे नवागढ़ ५ कि. मी. है। क्षेत्रके मैनेजरको पूर्व सूचना देनेपर बैलगाड़ीका प्रबन्ध हो जाता है।

श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पहले पूर्णा नदीके तटपर उखलदमें था। एक बार बाढ़में मन्दिर बह गया, किन्तु मूर्तियाँ बच गयीं। तब वर्तमान स्थानपर नवीन मन्दिर बनाकर उसमें मूर्तियाँ विराजमान कर दीं। भगवान् नेमिनाथकी पौने चार फुट ऊँची अर्धपद्मासन प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है।

मन्दिरके कम्पाउण्डमें धर्मशाला बनी हुई है।

जिन्तूर—मीरखोल स्टेशनसे ट्रेन द्वारा परभणी (१६ कि. मी.) जाकर वहाँसे बस द्वारा ४२ कि. मी. जिन्तूर जाते हैं। पहले इस नगरका नाम जैनपुर था। हिजरी सन् ६३१ में सैदुल कादरी नामक मुस्लिम आक्रान्ताने इस नगरपर अधिकार करके नगरका नाम जिन्तूर रख दिया। उसने यहाँ अनेक जैन मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और कईको मसजिद बना दिया।

श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नगरसे दो मील दूर सह्याद्रि पर्वतपर अवस्थित है। यहाँ एक अहातेमें गुफामें अलग-अलग कक्षोंमें वेदियाँ बनी हुई हैं जिनमें विशाल तीर्थंकर प्रतिमाएँ विराजमान हैं। भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्ण मूलनायक प्रतिमा मनोज्ञ और अतिशय-सम्पन्न है। भगवान् पार्श्वनाथकी एक प्रतिमा एक जरा-से पाषाणके टुकड़ेपर टिकी हुई है। अतः इसे अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ कहते हैं।

इस अहातेके सामनेवाली पहाड़ीपर चन्द्रगुफा है। यहाँकी मूर्तियाँ मुस्लिम कालमें गाँवके मन्दिरमें भेज दी गयी थीं। नगरमें दो जैन मन्दिर हैं—साहूका मन्दिर और महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर। साहूके मन्दिरके बाहर धर्मशाला है।

शिरडशहापुर—श्री मल्लिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शिरडशहापुरके लिए जिन्तूरसे बस जाती है। यह जिन्तूरसे ४५ कि. मी. है। नगरके मध्य मन्दिर बना हुआ है। भगवान् मल्लिनाथकी अर्धपद्मासन श्यामवर्ण प्रतिमा एक पृथक् वेदीपर विराजमान है। यह अत्यन्त सौम्य और चमत्कारी है। एक दूसरी वेदीपर भगवान् शान्तिनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा भी अतिशयसम्पन्न कही जाती है।

असेगाँव—श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शिरडशहापुरसे २४ कि. मी. है। वसुमत तक बस जाती है। शेष ८ कि. मी. पैदल या बैलगाड़ीसे जाना पड़ता है। क्षेत्रपर पार्श्वनाथ भगवान्की चमत्कारी प्रतिमा है।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ—शिरडशहापुरसे चोंडी ८ कि. मी.। चोंडीसे वाशिम ११४ कि. मी.। वाशिमसे मालेगाँव २० कि. मी. तथा मालेगाँवसे सिरपुर गाँव १० कि. मी. है। बसोंकी व्यवस्था है। सिरपुर गाँवमें ही श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र है।

श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ क्षेत्र भारतका सुविख्यात क्षेत्र है। गाँवके बाहर श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पवली मन्दिर बना हुआ है। यही अन्तरिक्ष पार्श्वनाथका मूल मन्दिर है। इसे १००० वर्ष पूर्व ऐल श्रीपालने बनवाया था। कहते हैं, उस समय पार्श्वनाथकी प्रतिमा अन्तरिक्षमें इतनी ऊँची थी कि इसके नीचेसे एक घुड़सवार निकल जाता था। मुस्लिम कालमें वह मूर्ति यहाँसे हटाकर नगरके मन्दिरमें भूगर्भगृहमें विराजमान कर दी गयी थी। यहाँ तीन मन्दिर हैं। कई मूर्तियाँ ११-१२वीं शताब्दीकी लगती हैं। यहाँ एक कुआँ बना हुआ है। कहा जाता है, इसीके जलसे श्रीपाल नरेशका कुष्ठ रोग दूर हुआ था। अब भी इसके जलसे अनेक रोग दूर हो जाते हैं। इस मन्दिरमें जिन ईंटोंका प्रयोग किया गया है, वे जलमें तैरती हैं, ऐसा कहा-सुना जाता है।

नगरके मन्दिरमें दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंको पूजाका अधिकार है। उसके लिए समय निर्धारित है। नीचे भोंयरेमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्णवर्णकी अर्धपद्मासन ३ फीट ८ इंच ऊँची सप्तफणमण्डित प्रतिमा विराजमान है। यह अन्तरिक्षमें अधर ठहरी हुई है। केवल बायीं ओर थोड़ी-सी भूमिसे स्पर्श करती है।

इससे नीचेके भोंयरेमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। तीनों मंजिलोंमें सभी प्रतिमाएँ दिगम्बराम्नायकी हैं। तथा इस मन्दिरमें श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी, श्री वीरसेन स्वामी और श्री विशालकीर्ति इन तीन दिगम्बर भट्टारकोंकी गद्दियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरके बाहर सभामण्डपमें मूर्ति विराजमान है।

मन्दिरके निकट ही दिगम्बर जैनोंकी तीन धर्मशालाएँ हैं।

कारंजा– सिरपुरसे मालेगाँव (१० कि. मी.) लौटकर वहाँसे मगरुलपीर ६४ कि. मी., फिर वहाँसे कारंजा २० कि. मी. है। यह नगर भट्टारकोंका केन्द्र रहा है। यहाँ नगरमें श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सेनगण मन्दिर, श्री चन्द्रनाथ स्वामी काष्ठासंघ दिगम्बर जैन मन्दिर, श्री मूल संघ चन्द्रनाथ स्वामी बलात्कारगण दिगम्बर जैन मन्दिर, ये तीन प्रसिद्ध मन्दिर हैं। सेनगण मन्दिरमें ४०० वर्ष प्राचीन पंचकल्याणक चित्रावली अंकित है। यह कपड़ा ३ फीट २ इंच चौड़ा और ४१ फीट लम्बा है। यह चित्रकलाका अनुपम निदर्शन है। काष्ठासंघके मन्दिरमें लकड़ीका एक मण्डप बना हुआ है। यहाँ लकड़ीपर जो सूक्ष्म खुदाई की गयी है, वह बेजोड़ है। मूलसंघी मन्दिरमें हस्तलिखित ग्रन्थोंका अमूल्य भण्डार है। काष्ठासंघी मन्दिरमें पद्मावती देवी और पार्श्वनाथ भगवान् (भोंयरेमें स्थित) की मूर्तियाँ बड़ी अतिशयसम्पन्न हैं।

नगरके बाहर महावीर ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल है। यहाँ भी जिनालय है तथा संग्रहालय भी बना हुआ है। इसमें कई मूर्तियाँ अति प्राचीन और कलापूर्ण हैं। यात्रियोंको ठहरनेकी सुविधा भी यहीं है।

बाढौणा रामनाथ—कारंजासे बाढौणा २२ कि. मी. है। गाँवमें श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। इसमें भगवान् आदिनाथकी मूलनायक प्रतिमा सातिशय है। मन्दिरमें भोंयरा भी है। ठहरनेके लिए मन्दिरके अहातेमें बरामदा बना हुआ है।

भातकुली—बाढौणासे कारंजा वापस आकर वहाँसे अमरावती होते हुए भातकुली जाना पड़ता है। कारंजासे अमरावती ६७ कि. मी. और वहाँसे भातकुली १६ कि. मी. है। यहाँ गाँवमें

श्री आदिनाथ स्वामी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। इसमें आदिनाथ भगवान्‌की श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा अत्यन्त अतिशययुक्त है। यह प्रतिमा जमीनसे निकली थी। इसके निकलनेकी कहानी श्री महावीरजीकी कहानीकी तरह है। अब भी अभिषेकके लिए जो दूध आता है, उसमें यदि ग्वाला पानी मिला दे तो पशुके थनसे खून निकलने लगता है, ऐसी अनुश्रुति है। यहाँ मनौती मनाने अनेक लोग आते हैं। ठहरनेके लिए धर्मशाला बनी है।

मुक्तागिरि—भातकुलीसे अमरावती वापस आकर वहाँसे बस द्वारा परतवाड़ा (अचलगढ़) ५२ कि. मी. तथा परतवाड़ासे खरपी होकर मुक्तागिरि १३ कि. मी. है। परतवाड़ासे स्कूटर या रिक्शेसे ही क्षेत्र तक पहुँच सकते हैं। यद्यपि खरपी परतवाड़ासे बैतूल रोडपर ६ कि. मी. है और वहाँ तक बस मिलती है किन्तु ७ कि. मी. के लिए बस नहीं मिलती। ७ कि. मी. में-से ४ कि. मी. महाराष्ट्रमें है और ३ कि. मी. मध्यप्रदेशमें है।

यह क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्यसे अत्यन्त सम्पन्न है। ऊपर पर्वतपर बड़ी ऊँचाईसे जल-प्रपात होता है। कहते हैं, यह वही स्थान है, जहाँसे (शास्त्रानुसार) मेढ़ा मुनिके पास जा गिरा था। मुनिने उसे णमोकार मन्त्र सुनाया। मेढ़ा निर्मल परिणामोंसे मरकर स्वर्गमें देव बना। जहाँ मुनि ध्यानमें लीन थे, उस स्थानपर १००० वर्ष प्राचीन ऐलनरेश श्रीपाल द्वारा निर्मित गुहामन्दिर बना हुआ है। प्रपातके नालेके दोनों ओर ५३ जिनालय बने हुए हैं। जिनालयोंकी यह पंक्ति बड़ी भव्य लगती है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर (क्रमांक २६) यहाँका बड़ा मन्दिर कहलाता है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी सवा चार फीट ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा मूलनायक है। क्रमांक ४८ भुयारा मन्दिर है। इसमें शान्तिनाथ और कुन्थुनाथकी लगभग ७ फीटकी खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

तलहटीमें आदिनाथ और महावीर नामक दो मन्दिर हैं। मन्दिरोंके दोनों ओर धर्मशालाएँ हैं।

यह सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे साढ़े तीन कोटि मुनि मुक्त हुए हैं।

रामटेक—मुक्तागिरिसे परतवाड़ा—वहाँसे अमरावती आकर वहाँसे १८४ कि. मी. बस द्वारा अथवा अमरावतीसे बड़नेरा और वहाँसे नागपुर तक रेल द्वारा जाना पड़ता है। नागपुरमें इतवारी मुहल्लेमें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। नागपुरसे रामटेकके लिए बस और ट्रेन दोनों चलती हैं। दूरी ४८ कि. मी. है।

बस स्टैण्डसे लगभग २ कि. मी. दूर श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। एक अहातेके अन्दर १५ जिनालय बने हुए हैं। मुख्य मन्दिर शान्तिनाथ भगवान् का है। शान्तिनाथ भगवान्‌की बादामी वर्णकी १३ फीट ५ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। प्रतिमा बड़ी भव्य है। चरण-चौकी जमीनके अन्दर है।

यह रामटेक वही स्थान है, जहाँके सुरम्य वनोंका सन्दर्भ महाकवि कालिदासके प्रसिद्ध खण्ड काव्य 'मेघदूत'में मिलता है। सरकारने यहाँ पहाड़पर कालिदास-स्मारक भी बना दिया है।

□

चित्र

चित्र सूची

राजस्थान

१. श्री महावीरजी : मन्दिरका बाह्य दृश्य।
२. श्री महावीरजी : भगवान् महावीरकी मूलनायक प्रतिमा।
३. श्री महावीरजी : भगवान् शान्तिनाथकी २२ फुट १० इंच उत्तुंग मूर्ति।
४. चमत्कारजी : मन्दिरका बाह्य दृश्य।
५. चमत्कारजी : पुरानी वेदीपर विराजमान प्रतिमाएँ।
६. चाँदखेड़ी : तलघरेमें तीर्थंकर ऋषभदेवकी हलके लाल वर्णकी मूलनायक मूर्ति।
७. चाँदखेड़ी : भगवान् महावीरकी मनोज्ञ मूर्ति।
८. झालरापाटन : मन्दिरका बाह्य दृश्य।
९. झालरापाटन : भगवान् शान्तिनाथकी १२ फुट ऊँची मूर्ति।
१०. झालरापाटन : नसियामें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी प्राचीन मूर्ति।
११. जयपुर : कालाडेरा मन्दिरमें महावीर मूर्ति।
१२. जयपुर : कालाडेरा मन्दिरमें एक तीर्थंकर मूर्ति।
१३. पद्मपुरा : छतरीमें पद्मप्रभके चरण-चिह्न। यहीं-पर भूगर्भसे मूर्ति प्राप्त हुई थी।
१४. पद्मपुरा : पद्मप्रभकी सातिशय प्रतिमा।
१५. पद्मपुरा : पद्मप्रभ जिनालयका बाह्य दृश्य।
१६. अजमेर : सेठजीकी नसियामें अयोध्याजीकी दर्शनीय रचना।
१७. अजमेर : अढ़ाई दिनका झोपड़ा।
१८. अजमेर : अढ़ाई दिनके झोपड़ेकी खुदाईमें प्राप्त तीर्थंकर मूर्तियाँ, बड़ा धड़ामें स्थापित।
१९. केशोरायपाटन : भोंयरेमें श्री मुनिसुव्रतनाथकी मूलनायक मूर्ति।
२०. केशोरायपाटन : एक प्राचीन तीर्थंकर-मूर्ति, संवत् ६६४।
२१. बिजौलिया : मन्दिरके परिसरका दृश्य।
२२. चित्तौड़ : जैन मन्दिर और कीर्ति-स्तम्भ।
२३. सांगानेर : सिंघीजीका मन्दिर।
२४. अन्देश्वर पार्श्वनाथ : मुख्य जैन मन्दिरमें पार्श्वनाथकी सातिशय मूर्ति।
२५. बमोतर : मन्दिरके खेला-मण्डपमें विराजमान शान्तिनाथकी सातिशय मूर्ति।
२६. नागफणी पार्श्वनाथ : मौदरगाँवके निकट पहाड़-पर बने मन्दिरमें धरणेन्द्र मूर्ति।
२७. ऋषभदेव (केशरियाजी) : मुख्य मन्दिरके शिखरोंका मनोरम दृश्य।
२८. ऋषभदेव (केशरियाजी) : तीर्थंकर ऋषभदेव।
२९. आबू (दिलबाड़ा) : श्वेताम्बर मन्दिर-गुच्छक-के मध्य एकमात्र कुन्थुनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर।
३०. आबू (दिलबाड़ा) : दिगम्बर जैन धर्मशालामें मन्दिरकी वेदीका दृश्य।
३१. तिजारा : चन्द्रप्रभकी सातिशय मूर्ति।

गुजरात

३२. तारंगा : क्षेत्रका विहगावलोकन।
३३. तारंगा : क्षेत्रके सिद्धशिला पर्वतपर तीर्थंकर मल्लिनाथकी मूर्ति।
३४. गिरनार : गिरनार पर्वत—भगवान् नेमिनाथका निर्वाण-स्थल।
३५. गिरनार : प्रथम टोंकपर दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर।
३६. गिरनार : द्वितीय टोंक, मुनि शम्बुकुमारका निर्वाण-स्थल। चरणचिह्न।

३७. गिरनार : तलहटीमें दिगम्बर जैन-मन्दिरके आगे विशाल मानस्तम्भ ।
३८. सोनगढ़ : श्री महावीर-कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर ।
३९. शत्रुंजय : पाण्डव मन्दिर ।
४०. शत्रुंजय : क्षेत्रपर दिगम्बर जैन मन्दिरका भव्य शिखर ।
४१. घोघा : तीर्थंकर शान्तिनाथकी मूर्ति ।
४२. घोघा : पीतलका सहस्रकूट जिनालय ।
४३. पावागढ़ : पहाड़पर जैन मन्दिरोंका दृश्य ।
४४. पावागढ़ : पार्श्वनाथ मन्दिरकी रथिका और जंघाकी देवी मूर्तियाँ ।
४५. पावागढ़ : तलहटीके मुख्य मन्दिरमें धातु-चैत्यालय ।
४६. महुआ : विघ्नहर पार्श्वनाथ ।
४७. महुआ : दो शताब्दी पूर्वका दारुलेख ।
४८. सूरत : आर्यिकाकी प्राचीन मूर्ति ।
४९. अंकलेश्वर : चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिरमें साधु परमेष्ठी (सम्भवतः धरसेनाचार्य) ।
५०. अंकलेश्वर : भोंयरेमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कत्थई वर्ण मूर्ति, भूगर्भसे प्राप्त ।
५१. सजोद : भोंयरेमें तीर्थंकर शीतलनाथकी मूर्ति ।

महाराष्ट्र

५२. गजपन्था : पहाड़पर तीर्थंकर पार्श्वनाथकी १० फुट ४ इंच ऊँची मूर्ति ।
५३. गजपन्था : गुफामें कृष्ण वर्ण तीर्थंकर मूर्तियाँ ।
५४. मांगीतुंगी : पर्वत और प्रवेश-द्वार ।
५५. मांगीतुंगी (मांगी पर्वत) गुफा नं. ४ में साधुओंकी अति प्राचीन मूर्तियाँ ।
५६. मांगीतुंगी : (तुंगी पर्वत) रामचन्द्र गुफामें रामचन्द्र, हनुमान् और सुग्रीवकी ध्यानावस्थित मूर्तियाँ ।
५७. मांगीतुंगी : (तलहटीमें) पार्श्वनाथ मन्दिरका भव्य शिखर ।
५८. बोरिवली बम्बई : मध्यमें तीर्थंकर आदिनाथ तथा पार्श्वोंमें भरत और बाहुबलीकी मूर्तियाँ । ऊँचाई क्रमशः २९, ३१ और २९ फुट ।
५९. दहीगाँव : मुख्य वेदीपर मूलनायक महावीर ।
६०. दहीगाँव : एक शिलाफलकमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ।
६१-६२. कुण्डल : झरी पार्श्वनाथ और यक्षी पद्मावती ।
६३. कुण्डल : गिरि पार्श्वनाथ ।
६४. कुण्डल : कलिकुण्ड पार्श्वनाथ ।
६५. बाहुबली : बाहुबलीकी २८ फुट उत्तुंग मूर्ति तथा सामनेका भव्य दृश्य ।
६६. बाहुबली : समवसरण मन्दिर ।
६७. बाहुबली : तीर्थंकर ऋषभदेव ।
६८. कोल्हापुर : मंगलवार पेठके मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथ ।
६९. कुन्थलगिरि : क्षेत्रका विहगावलोकन ।
७०. धाराशिवकी गुफाएँ : गुफा नं. ३ में तीर्थंकर पार्श्वनाथकी ६ फुट २ इंच ऊँची अर्ध-पद्मासन मूर्ति । ५-६वीं शती ।
७१. धाराशिवकी गुफाएँ : गुफा नं. ३ में सरस्वतीकी ३ फुट ७ इंच ऊँची श्यामवर्ण प्राचीन मूर्ति ।
७२. तेर : तीर्थंकर पार्श्वनाथ ।
७३. तेर : ऋषभदेवकी मूलनायक प्रतिमा ।
७४. सावरगाँव : एक प्राचीन मानस्तम्भ ।
७५. कासार आष्टा : तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा ।
७६. एलौराकी गुफाएँ : पार्श्वनाथ मन्दिरमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी १६ फुट ऊँची नौ-फणावली-युक्त अर्ध-पद्मासन मूर्ति ।
७७. एलौराकी गुफाएँ : गुफा नं. ३२ का बाह्य दृश्य ।
७८. एलौराकी गुफाएँ : बाहुबली स्वामी । पार्श्वोंमें ब्राह्मी और सुन्दरी । बायीं ओर भरत चक्रवर्ती हाथ जोड़े हुए ।
७९. एलौराकी गुफाएँ : एक गुफामें सौधर्म इन्द्र नृत्य मुद्रामें ।
८०. औरंगाबादकी गुफाएँ : निपटनिरंजनकी गुफामें

तीर्थंकर नेमिनाथकी ६ फुट ८ इंच ऊँची एक प्राचीन मूर्ति ।

८१. पैठण : तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथकी सातिशय मूर्ति ।

८२. नवागढ़ : मूलनायक तीर्थंकर नेमिनाथ ।

८३. जिन्तूर : महावीर दिगम्बर जैन मन्दिरमें पार्श्वनाथकी अद्‌भुत मूर्तियाँ ।

८४. जिन्तूर : गिरि-गुहा-मन्दिरमें अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ ।

८५. जिन्तूर : साहू जैन मन्दिरमें पीतलके दो सहस्र-कूट चैत्यालय ।

८६. शिरडशहापुर : तीर्थंकर मल्लिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

८७. सिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ) : अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी सातिशय मूर्ति ।

८८. सिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ) : चिन्तामणि पार्श्वनाथ ।

८९. कारंजा : सेनगण मन्दिरमें सुपार्श्वनाथकी बालू मूर्ति, भूगर्भसे प्राप्त ।

९०. कारंजा : सेनगण मन्दिरमें एक कपड़ेपर सौधर्मेन्द्रका सहस्र सूँड़वाला ऐरावत हाथी ।

९१. कारंजा : काष्ठासंघ मन्दिरके दारु मण्डपका दृश्य ।

९२. कारंजा : काष्ठासंघ मन्दिरमें पद्मावती मूर्ति ।

९३. कारंजा : ब्रह्मचर्याश्रमके संग्रहालयमें अम्बिका-की प्राचीन मूर्ति ।

९४. कारंजा : ब्रह्मचर्याश्रमके संग्रहालयमें पंचपर-मेष्ठी फलक ।

९५. बाढ़ोणा रामनाथ : तीर्थंकर आदिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

९६. भातकुली : तीर्थंकर आदिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

९७. रामटेक : क्षेत्रका बाह्य दृश्य ।

९८. रामटेक : तीर्थंकर शान्तिनाथकी १३ फुट ९ इंच ऊँची मूलनायक प्रतिमा ।

९९. मुक्तागिरि : क्षेत्रके मन्दिरोंका एक दृश्य ।

□

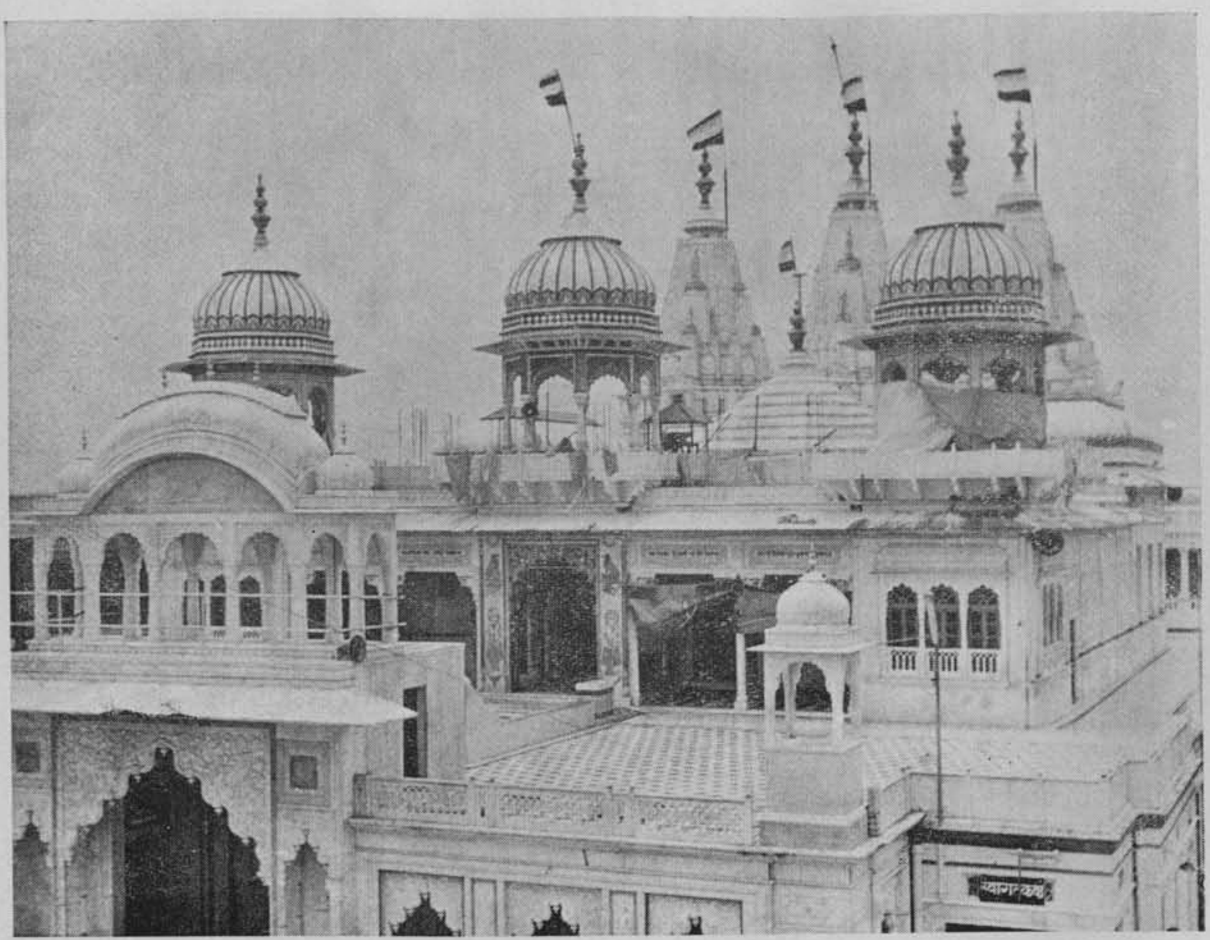

१. श्री महावीरजी : मन्दिरका बाह्य दृश्य

२. श्री महावीरजी : भगवान् महावीरकी मूलनायक प्रतिमा ।

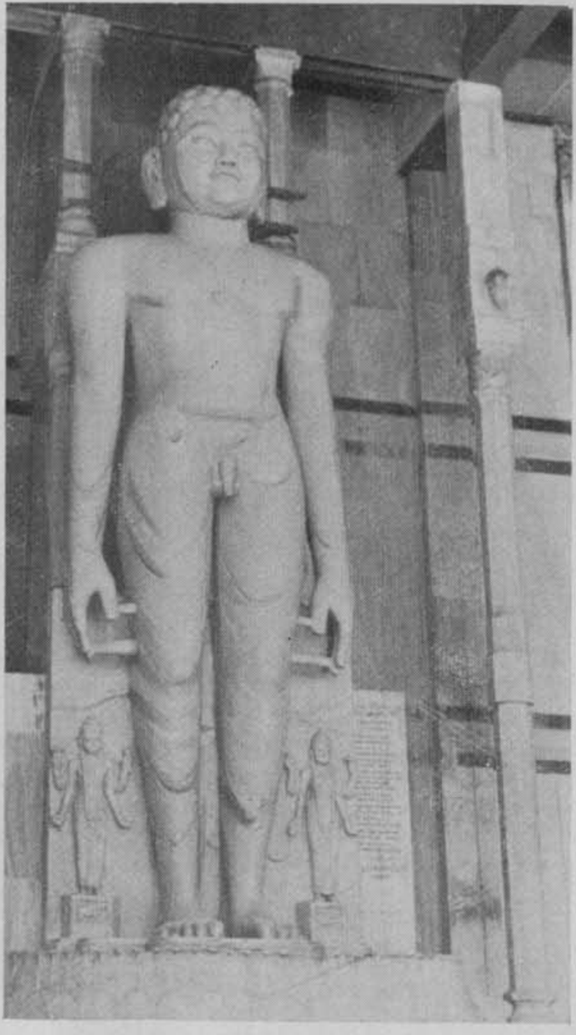

३. श्री महावीरजी : भगवान् शान्तिनाथकी २२ फुट १० इंच उत्तुंग मूर्ति ।

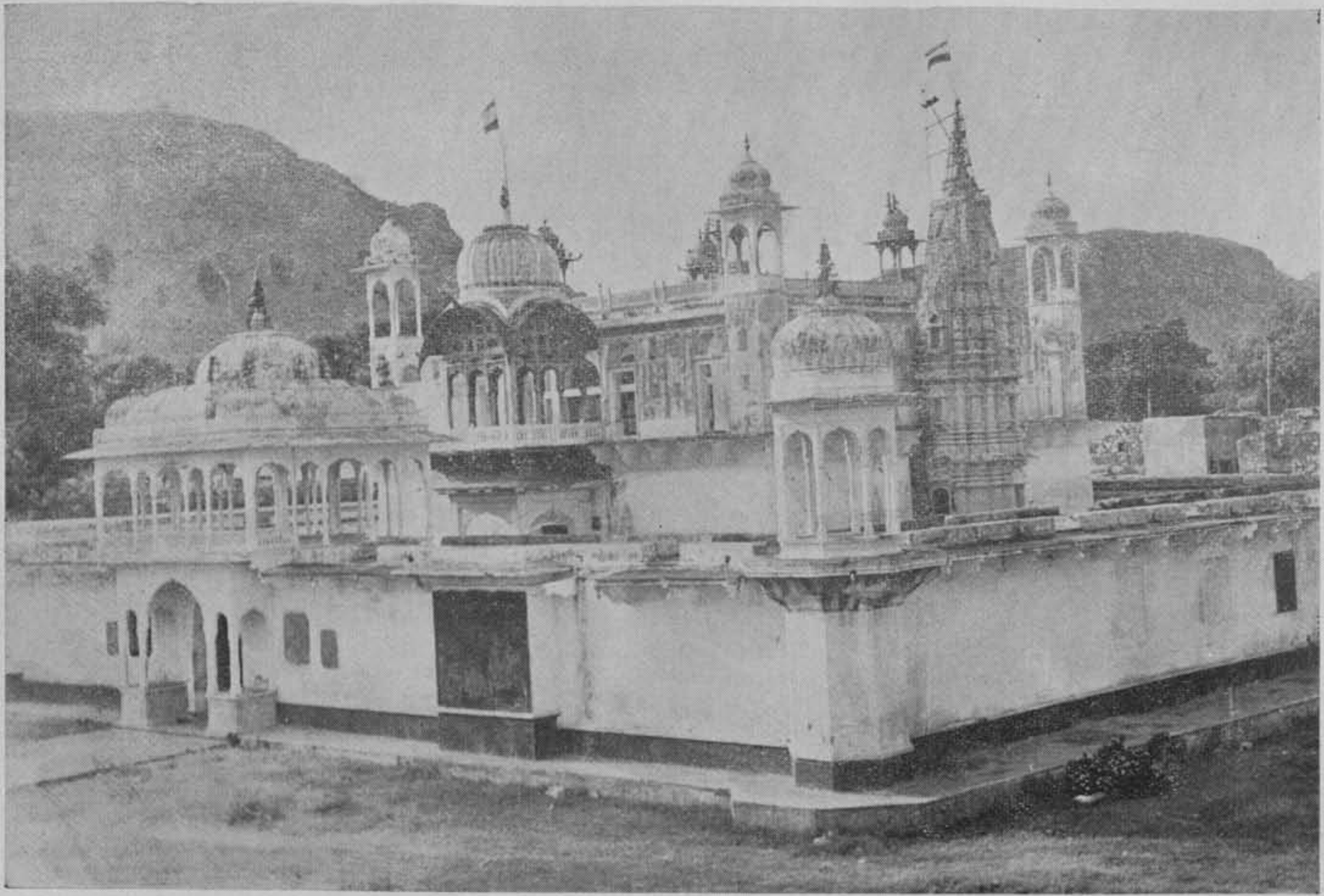

४. चमत्कारजी : मन्दिरका बाह्य दृश्य ।

५. चमत्कारजी : पुरानी वेदीपर विराजमान प्रतिमाएँ ।

६. चाँदखेड़ी : तलघरेमें तीर्थंकर ऋषभदेवकी हलके लाल'वर्णकी मूलनायक मूर्ति ।

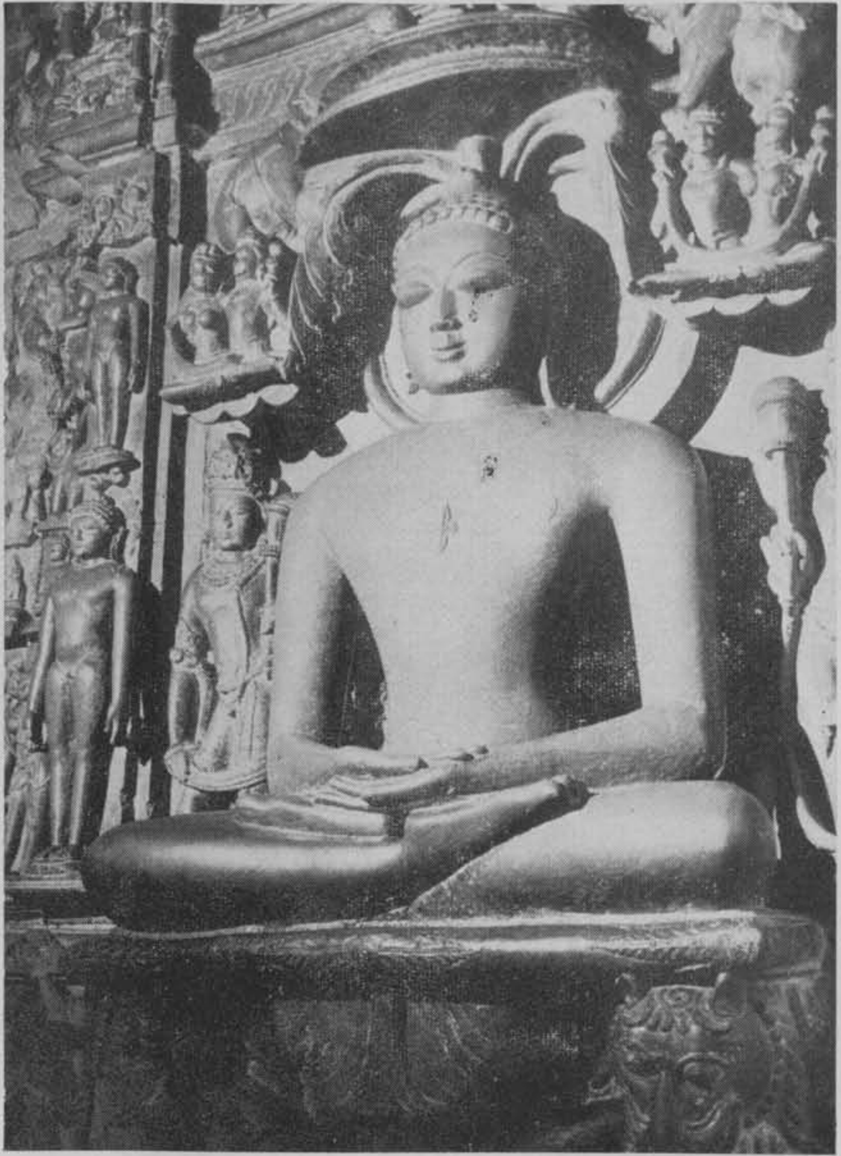

७. चाँदखेड़ी : भगवान् महावीरकी मनोज्ञ मूर्ति ।

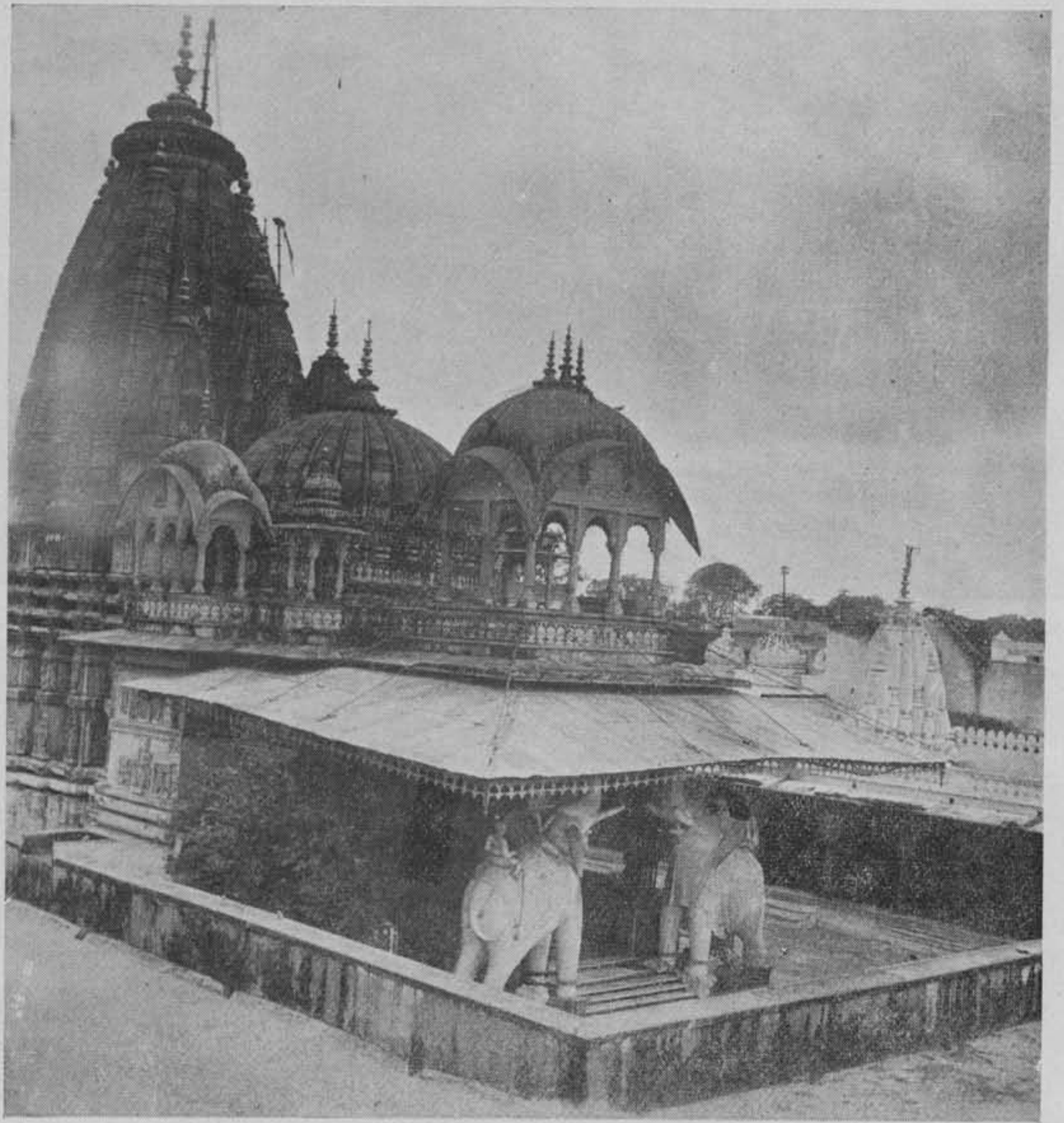

८. झालरापाटन : मन्दिरका बाह्य दृश्य ।

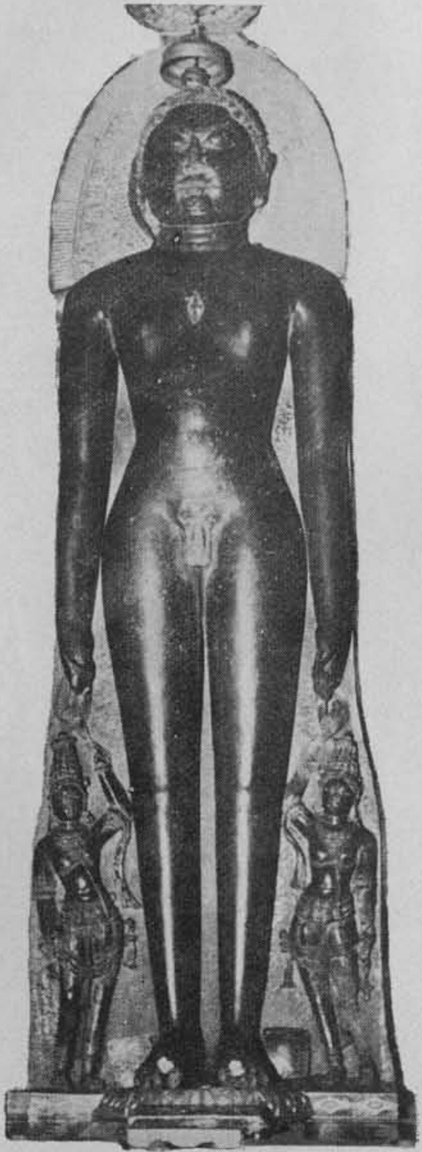

९. झालरापाटन : भगवान् शान्तिनाथकी
१२ फुट ऊँची मूर्ति ।

१०. झालरापाटन : नसियामें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी प्राचीन मूर्ति ।

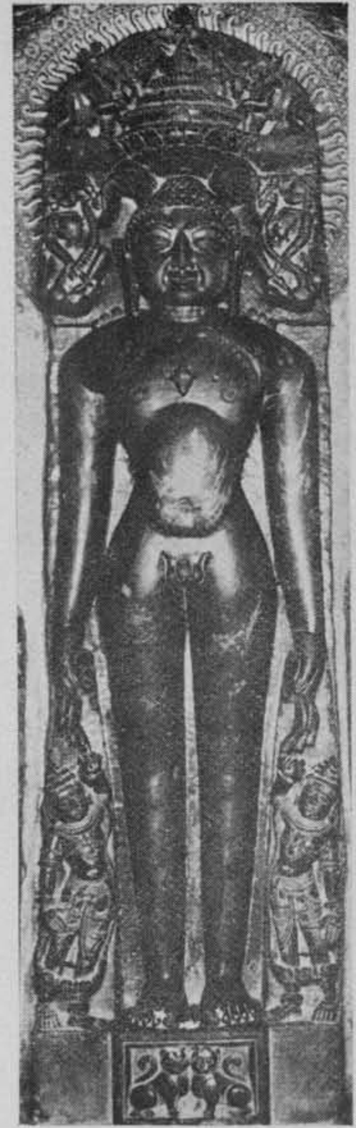

११. जयपुर : कालाडेरा मन्दिरमें महावीर मूर्ति ।

१२. जयपुर : कालाडेरा मन्दिरमें एक तीर्थंकर मूर्ति ।

१३. पद्मपुरा : छतरीमें पद्मप्रभके चरण-चिह्न । यहींपर भूगर्भसे मूर्ति प्राप्त हुई थी ।

१४. पद्मपुरा : पद्मप्रभकी सातिशय प्रतिमा ।

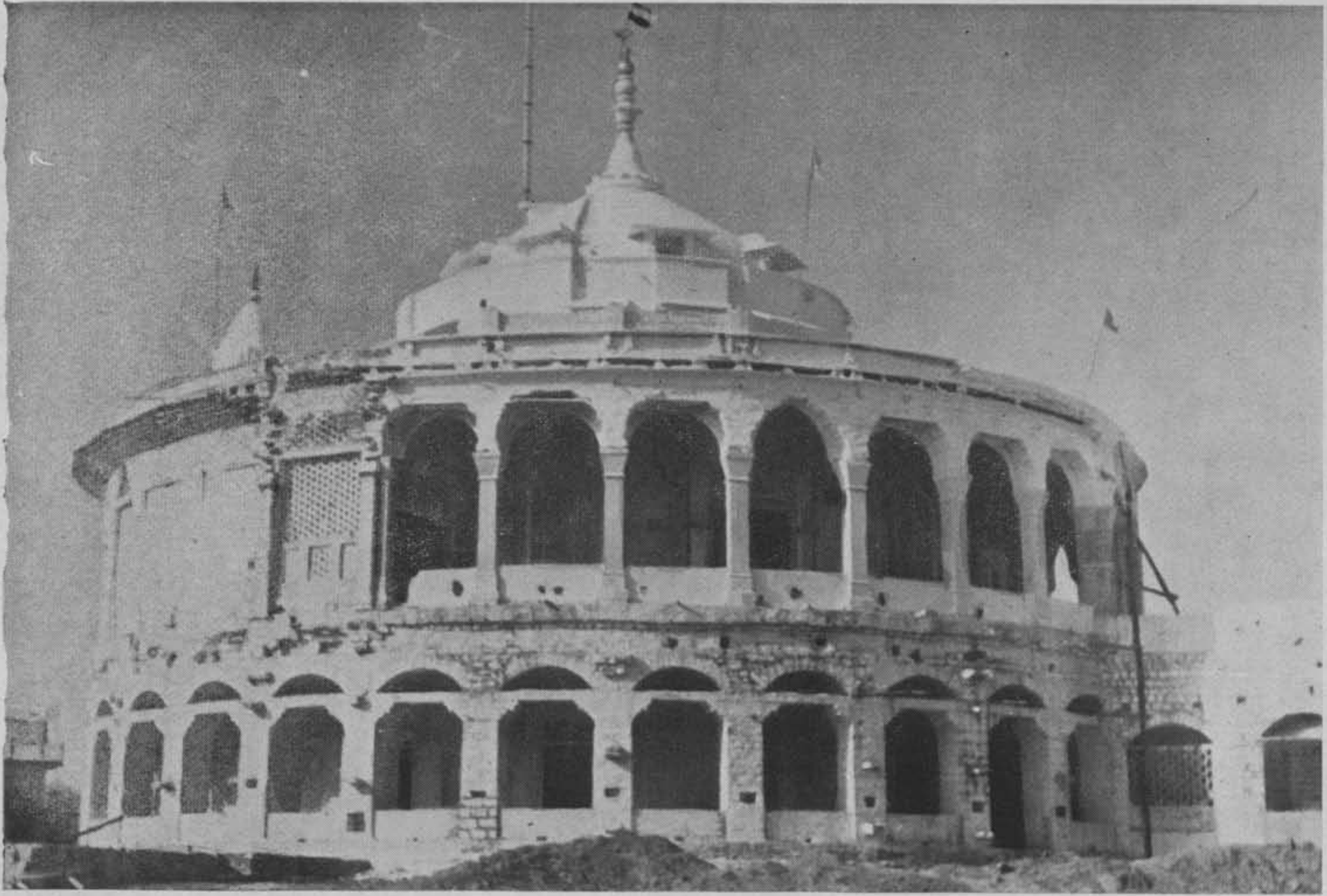

१५. पद्मपुरा : पद्मप्रभ जिनालयका बाह्य दृश्य ।

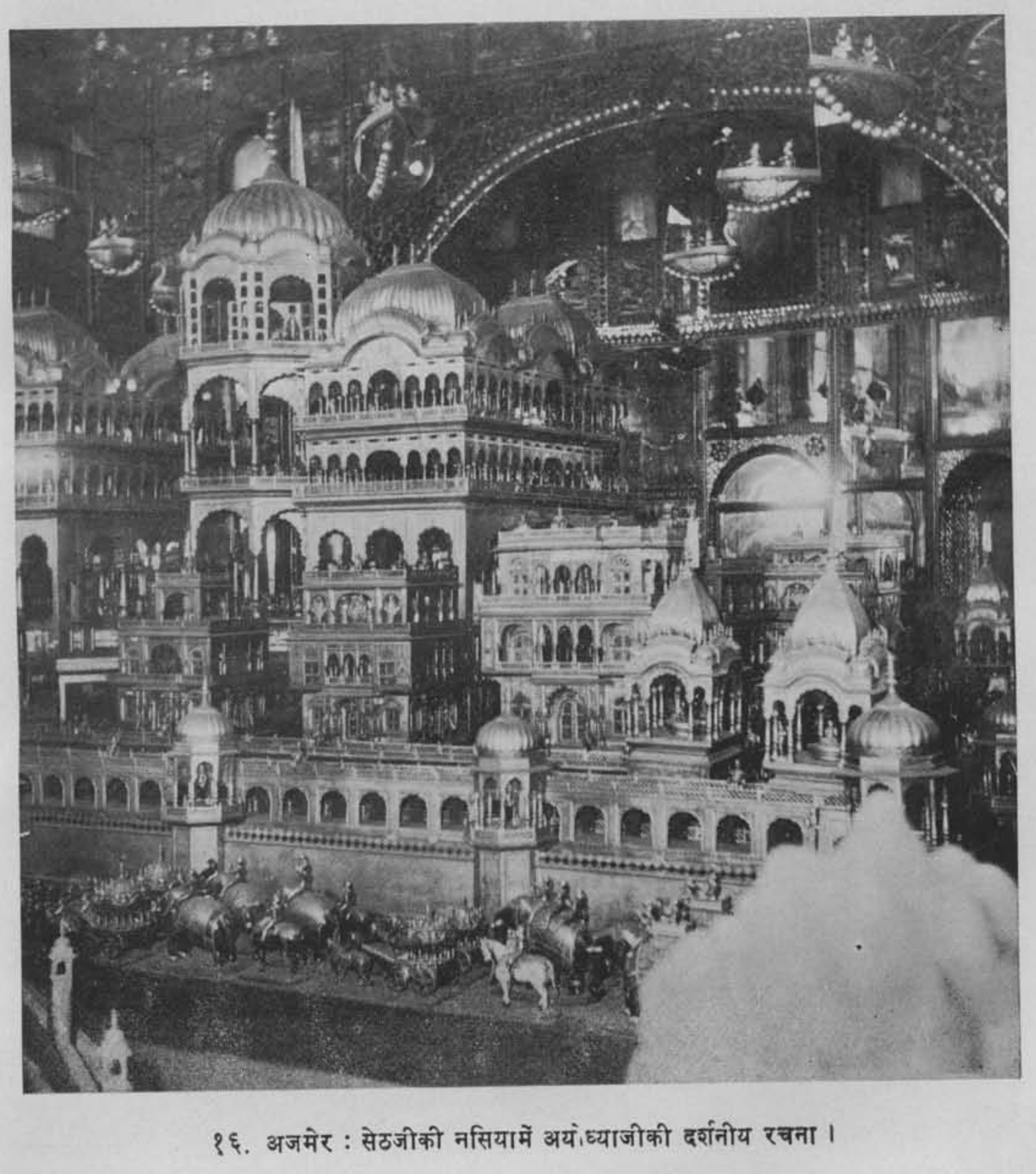

१६. अजमेर : सेठजीकी नसियामें अयोध्याजीकी दर्शनीय रचना ।

१७. अजमेर : अढ़ाई दिनका झोपड़ा ।

१८. अजमेर : अढ़ाई दिनके झोपड़ेकी खुदाईमें प्राप्त तीर्थंकर मूर्तियाँ, बड़ा घड़ामें स्थापित ।

१९. केशोरायपाटन : भोंयरेमें श्री मुनिसुव्रतनाथकी मूलनायक मूर्ति ।

२०. केशोरायपाटन : एक प्राचीन तीर्थंकर-मूर्ति, संवत् ६६४ ।

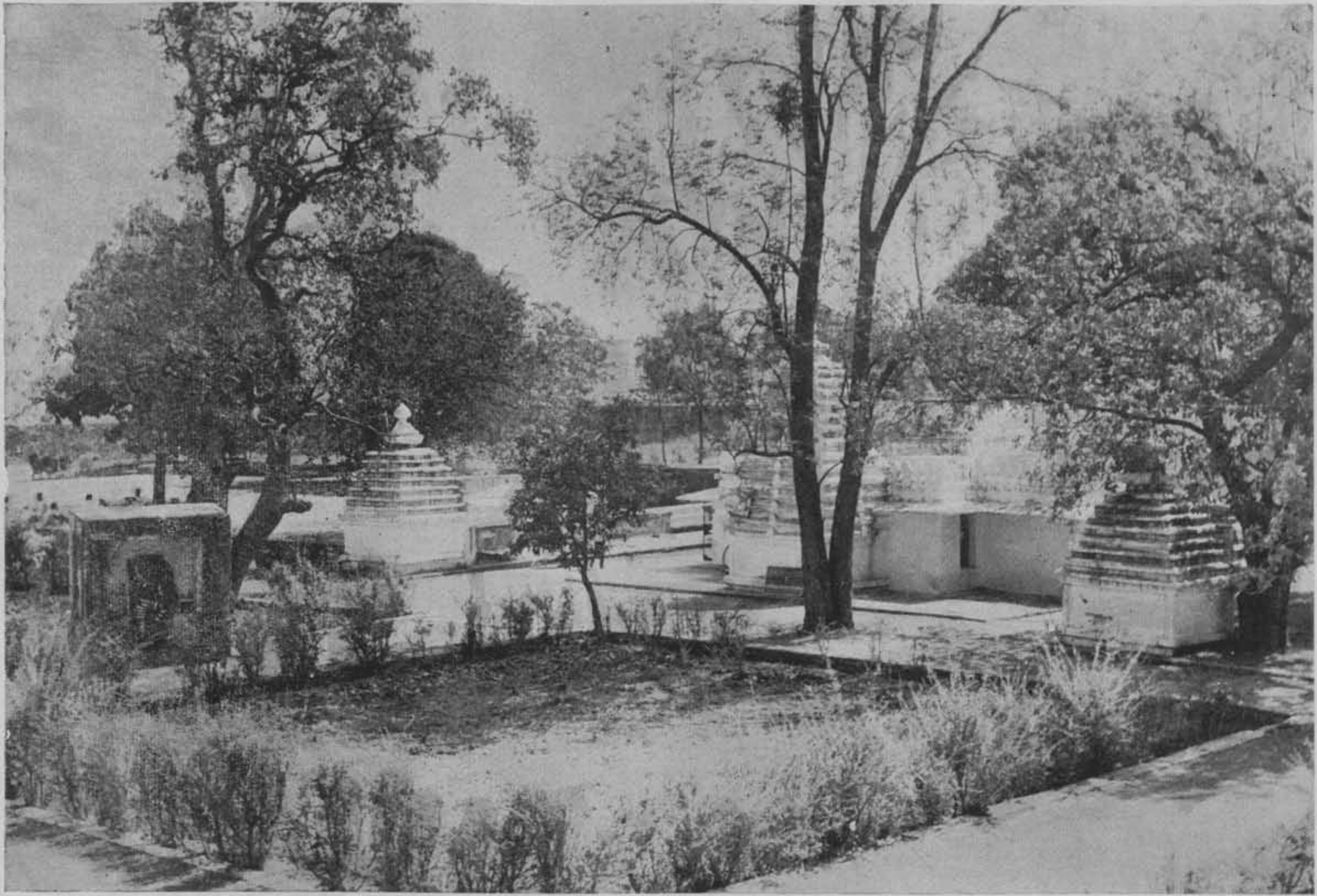

२१. बिजौलिया : मन्दिरके परिसरका दृश्य ।

२२. चित्तौड़ : जैन मन्दिर और कीर्ति-स्तम्भ।

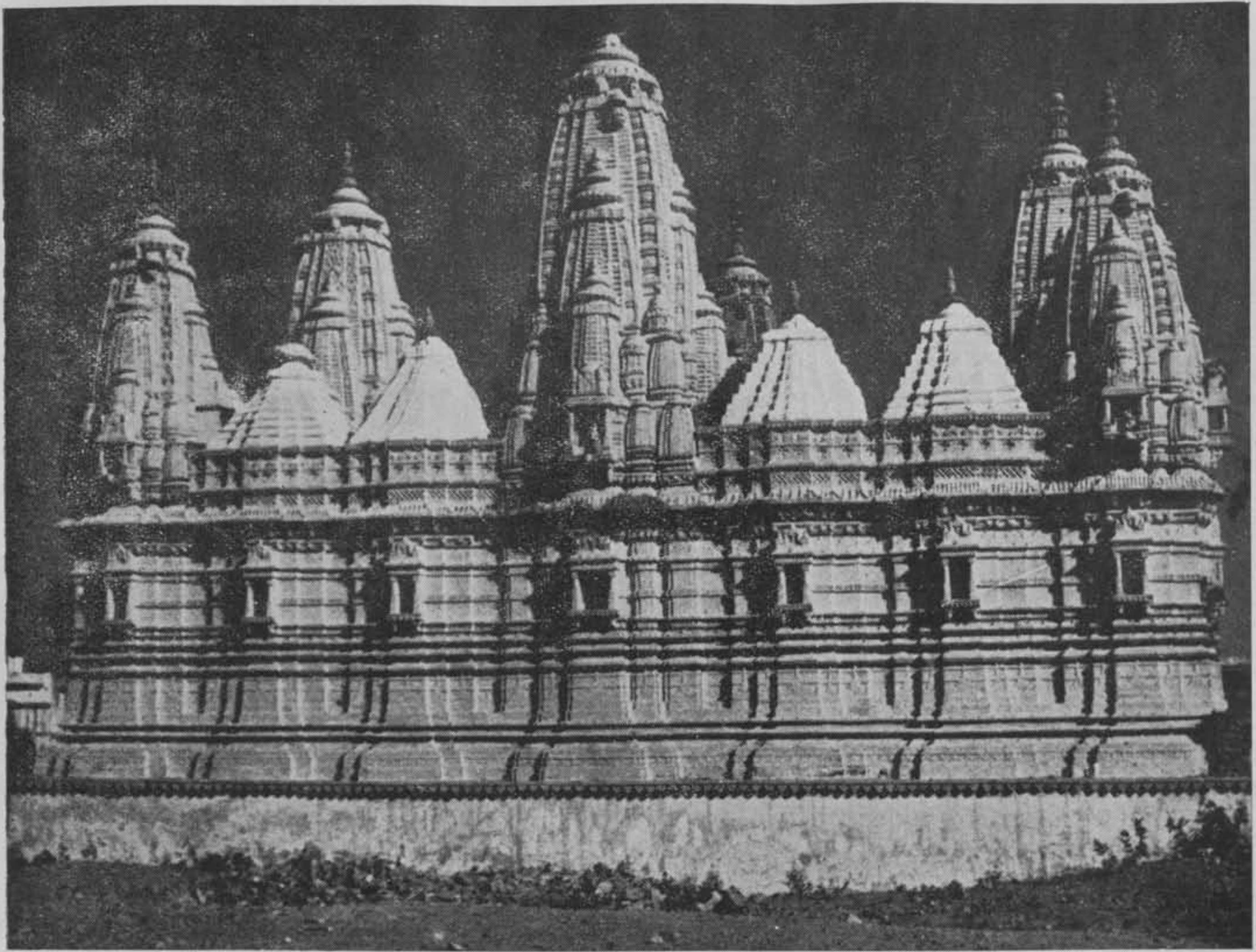

२३. सांगानेर : सिंघीजीका मन्दिर ।

२४. अन्देश्वर पार्श्वनाथ : मुख्य जैन मन्दिरमें पार्श्वनाथकी सातिशय मूर्ति ।

२५. बमोतर : मन्दिरके खेला मण्डपमें विराजमान शान्तिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

२६. नागफणी पार्श्वनाथ : मौदरगाँवके निकट पहाड़पर बने मन्दिरमें धरणेन्द्र मूर्ति ।

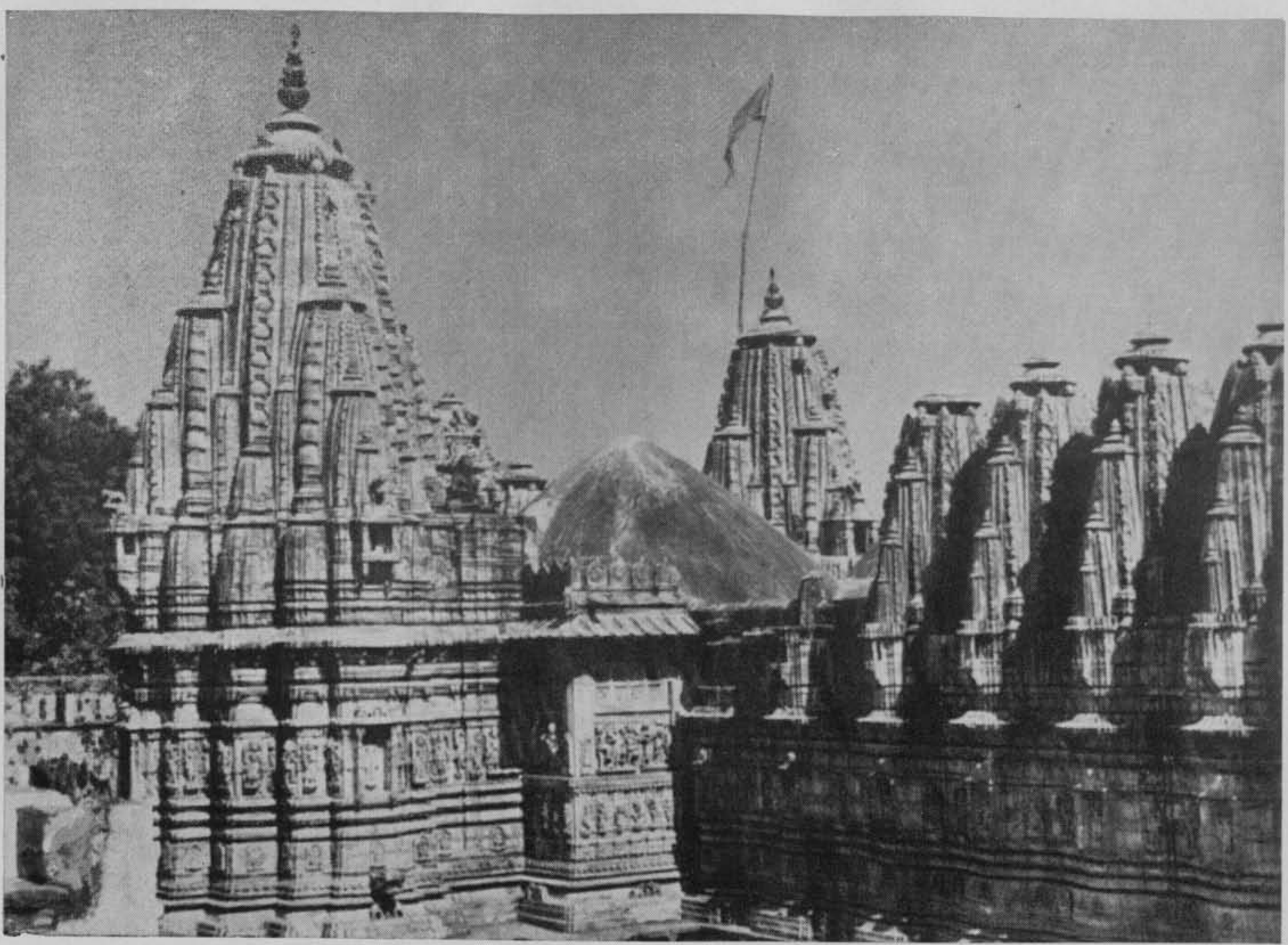

२७. ऋषभदेव (केशरियाजी) : मुख्य मन्दिरके शिखरोंका मनोरम दृश्य ।

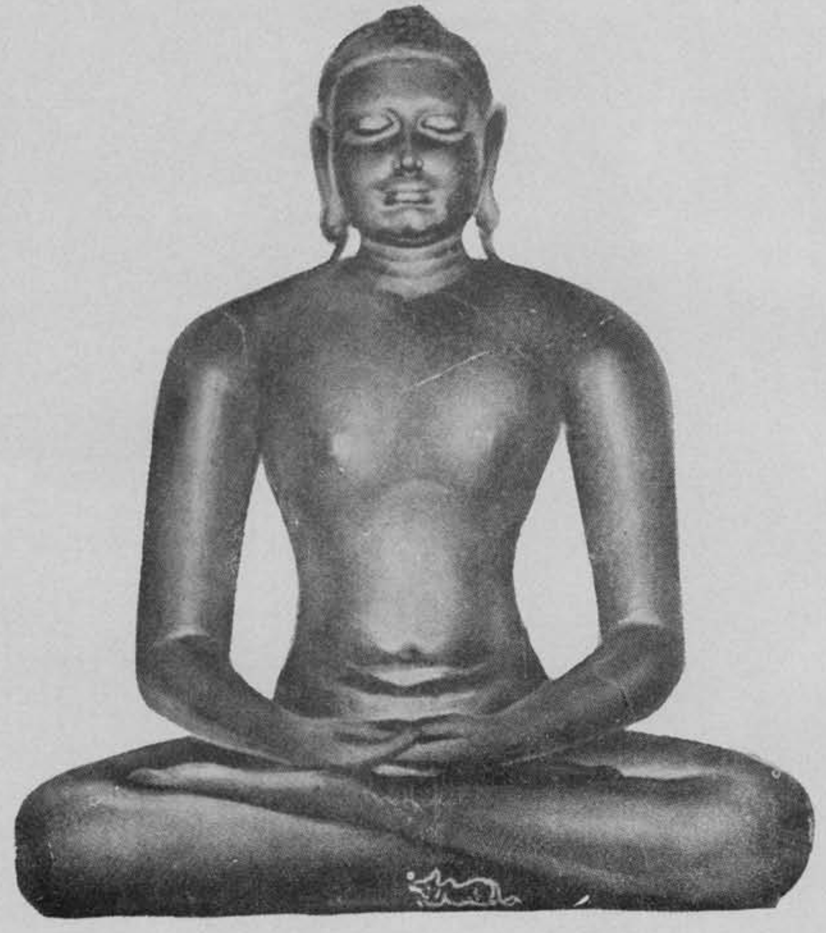

२८. ऋषभदेव (केशरियाजी) : तीर्थंकर ऋषभदेव ।

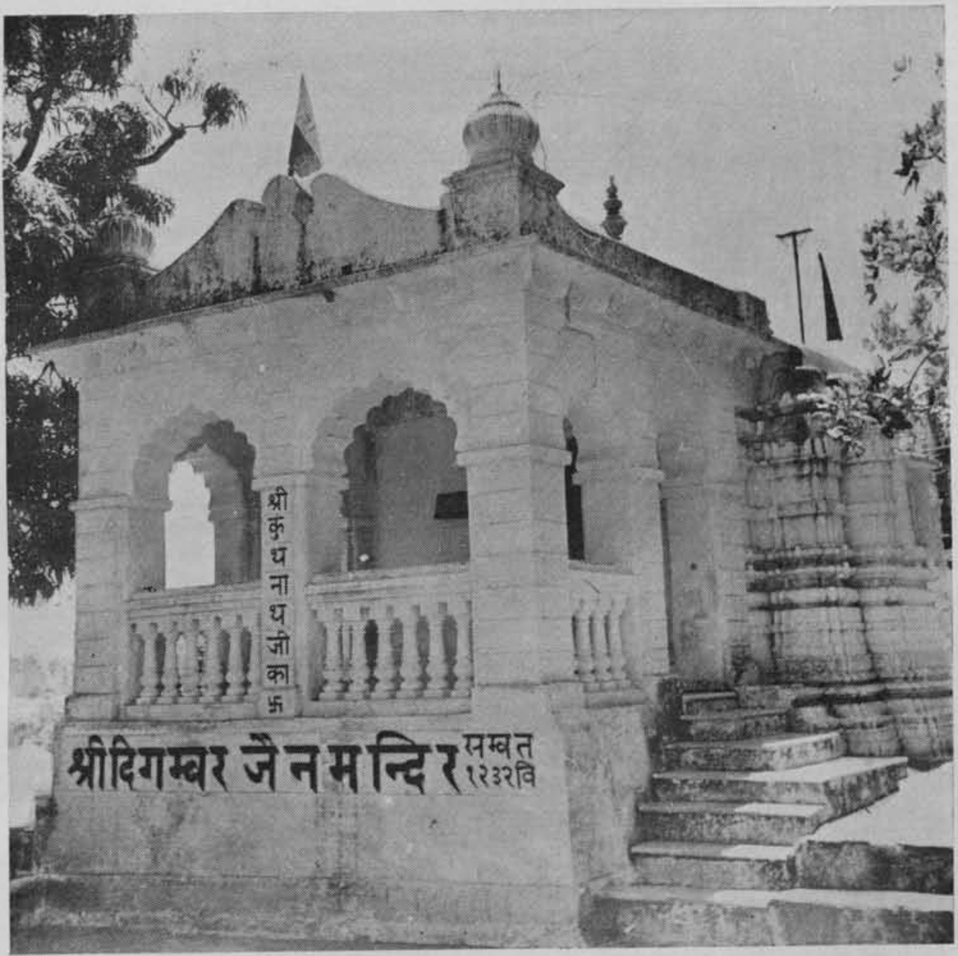

२९. आबू (दिलवाड़ा) : श्वेताम्बर मन्दिर-गुच्छकके मध्य एकमात्र कुन्थुनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर ।

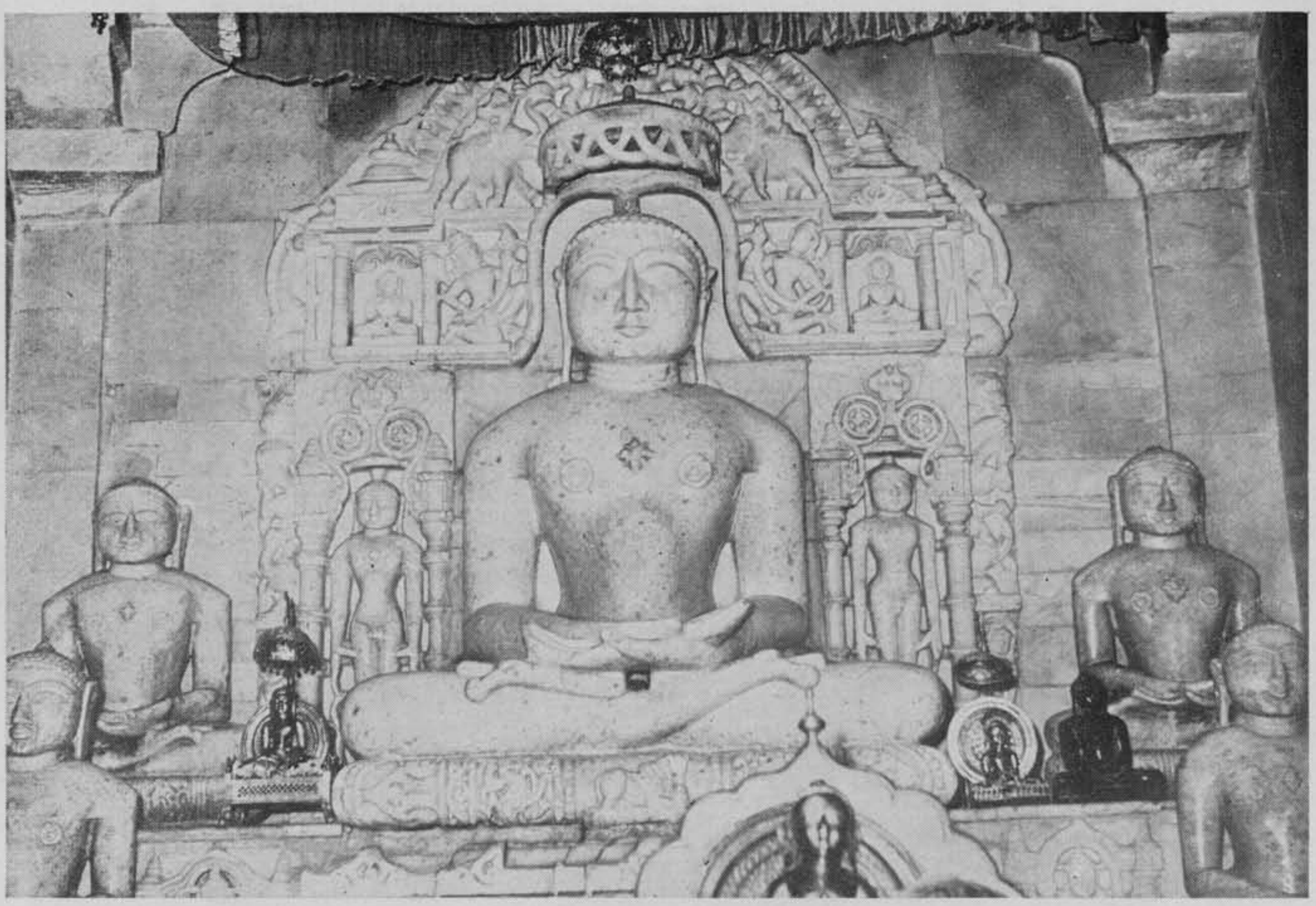

३०. आबू (दिलबाड़ा) : दिगम्बर जैन धर्मशालामें मन्दिरकी वेदीका दृश्य ।

३१. तिजारा : चन्द्रप्रभकी सातिशय मूर्ति ।

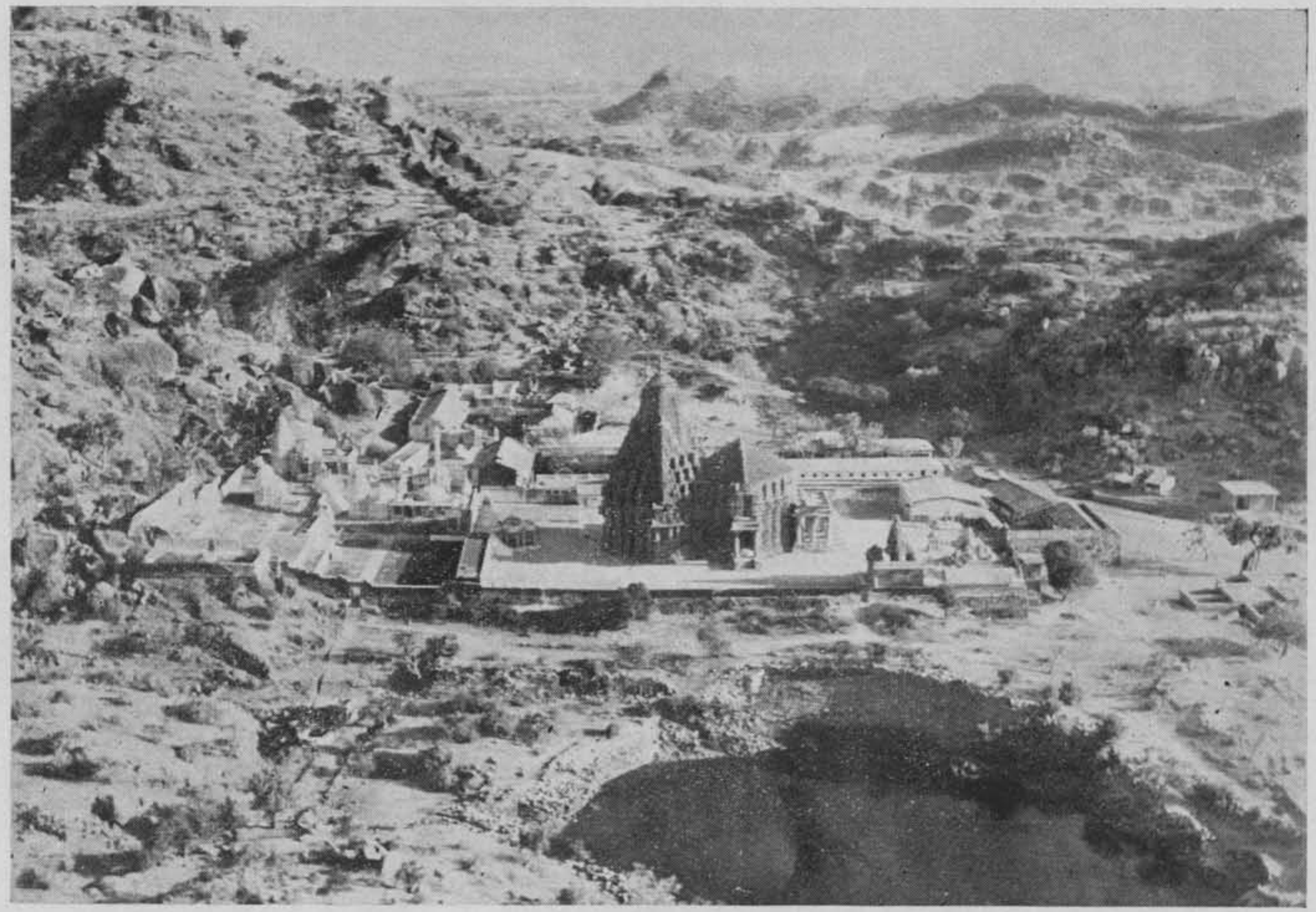

३२. तारंगा : क्षेत्रका विहगावलोकन ।

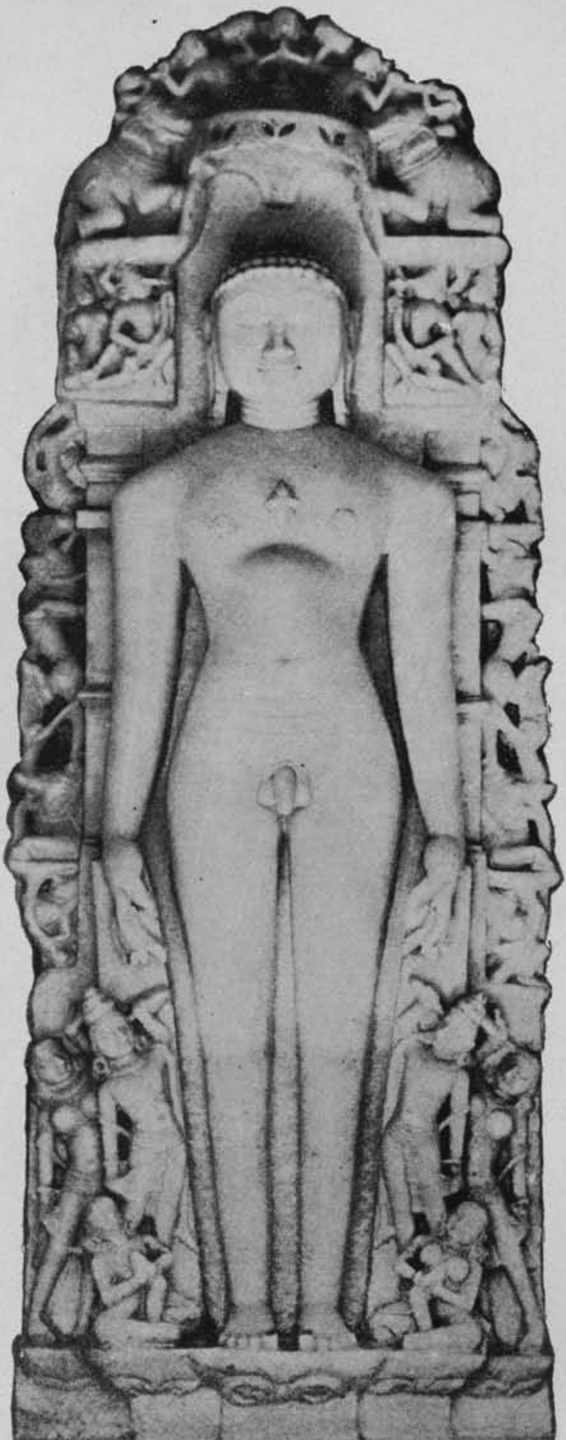

३३. तारंगा : क्षेत्रके सिद्धशिला पर्वतपर तीर्थंकर मल्लिनाथकी मूर्ति ।

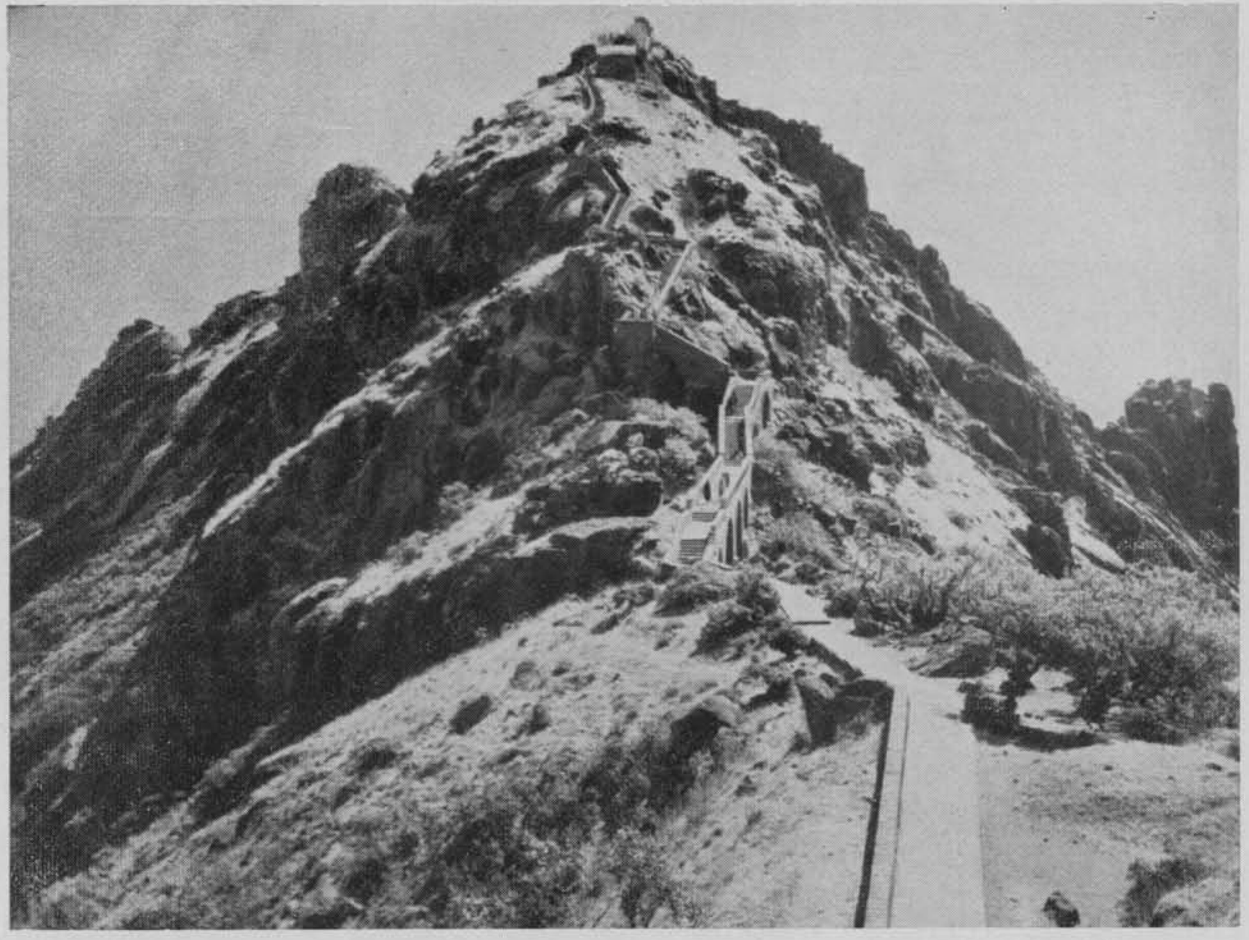

३४. गिरनार : गिरनार पर्वत—भगवान् नेमिनाथका निर्वाण-स्थल ।

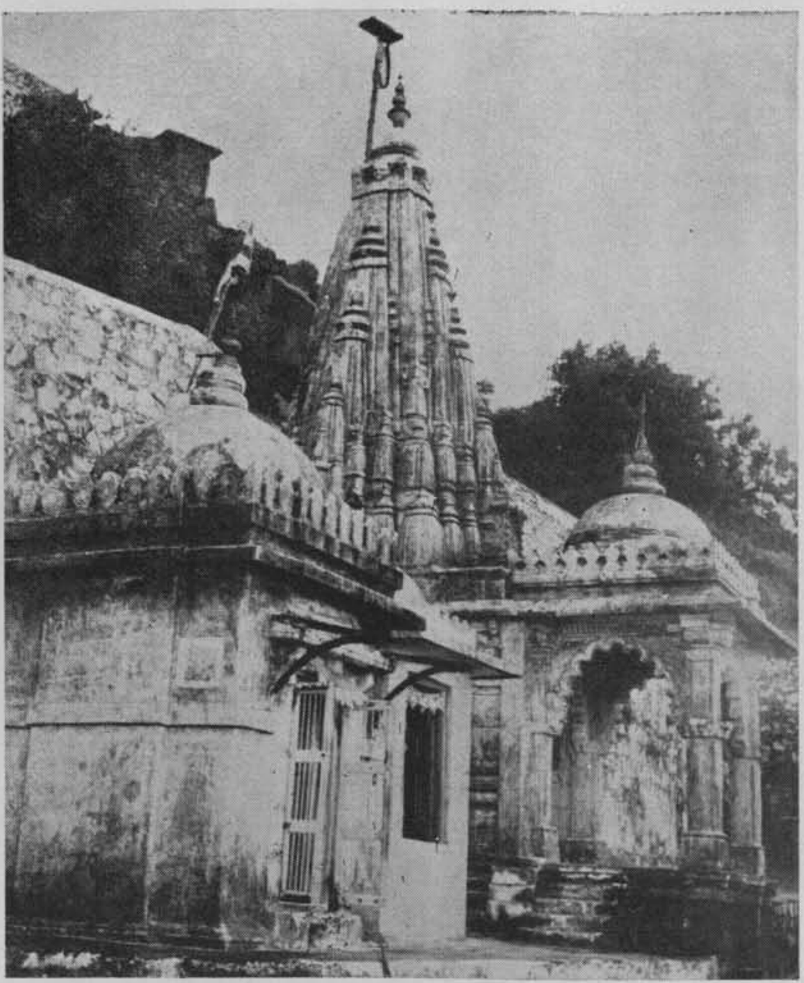

३५. गिरनार : प्रथम टोंकपर दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर।

३६. गिरनार : द्वितीय टोंक, मुनि शम्बुकुमारका निर्वाण-स्थल। चरण-चिह्न।

३७. गिरनार : तलहटीमें दिगम्बर जैन मन्दिरके आगे विशाल मानस्तम्भ ।

३८. सोनगढ़ : श्री महावीर-कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर ।

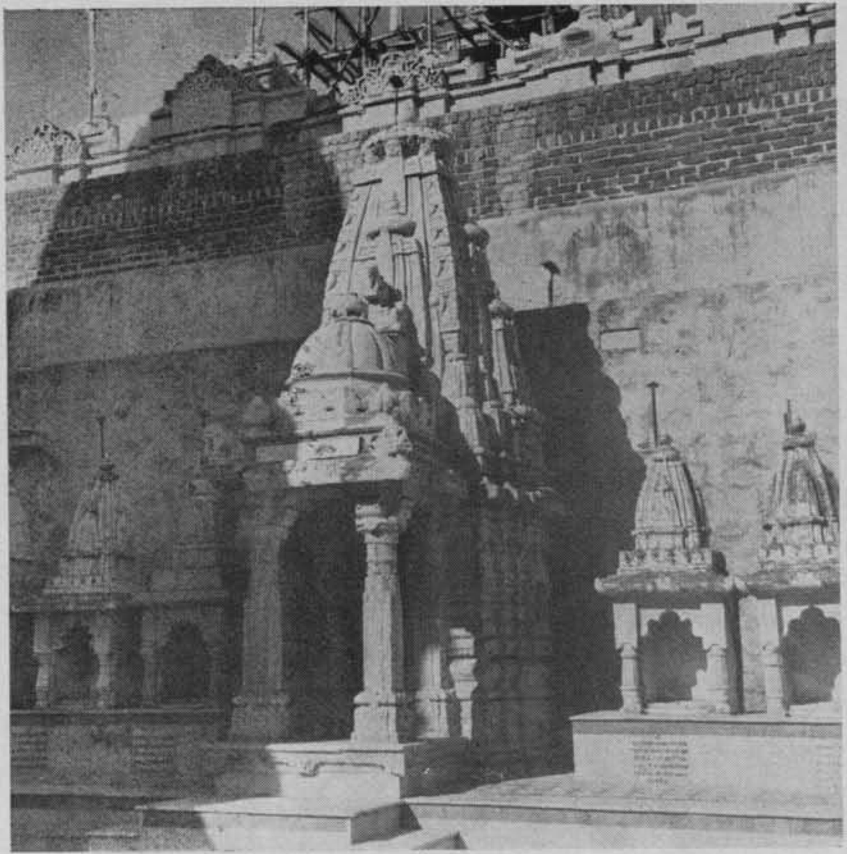

३९. शत्रुंजय : पाण्डव मन्दिर।

४०. शत्रुंजय : क्षेत्रपर दिगम्बर जैन मन्दिरका भव्य शिखर।

४१. घोघा : तीर्थंकर शान्तिनाथकी मूर्ति ।

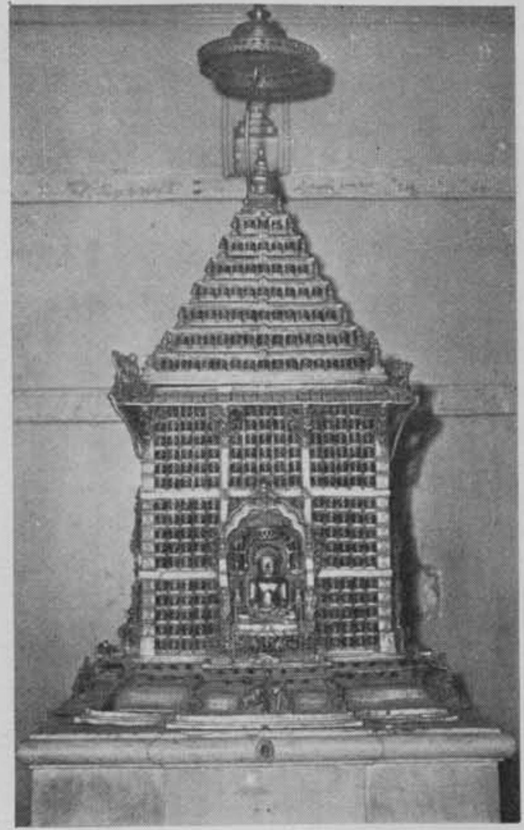

४२. घोघा : पीतलका सहस्रकूट जिनालय ।

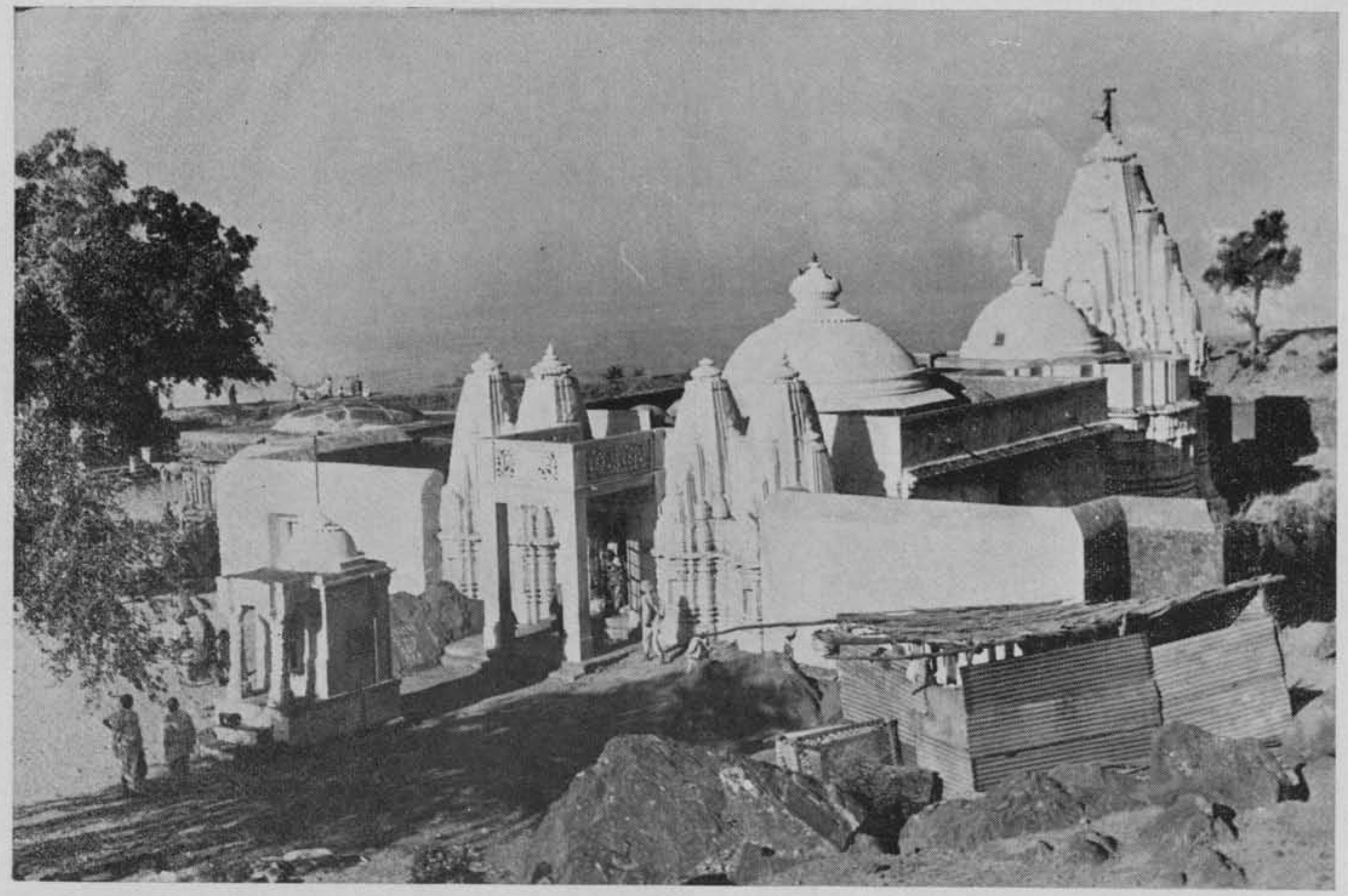

४३. पावागढ़ : पहाड़पर जैन मन्दिरोंका दृश्य ।

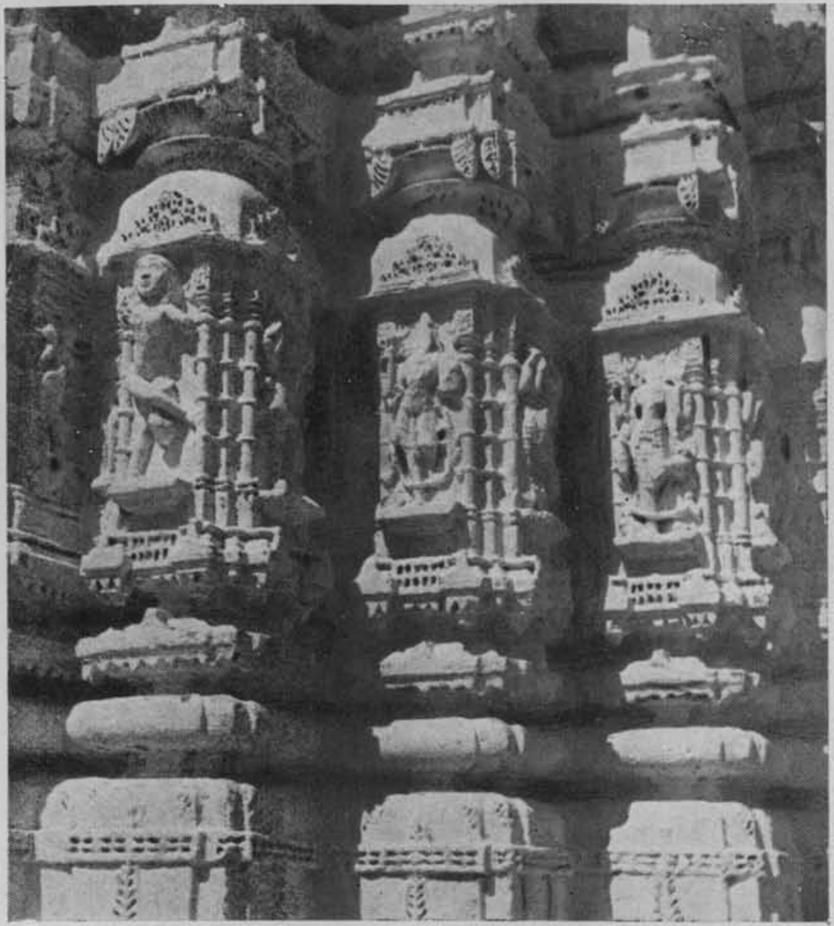

४४. पावागढ़ : पार्श्वनाथ मन्दिरकी रथिका और जंघाकी देवी मूर्तियाँ।

४५. पावागढ़ : तलहटीके मुख्य मन्दिरमें धातु-चैत्यालय।

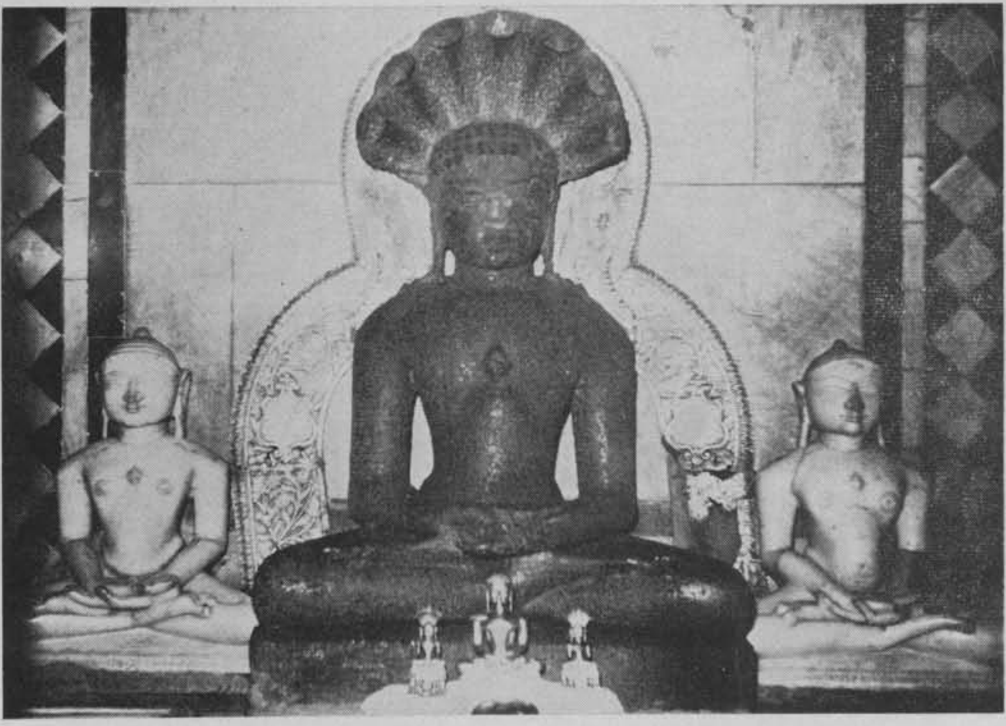

४६. महुआ : विघ्नहर पार्श्वनाथ ।

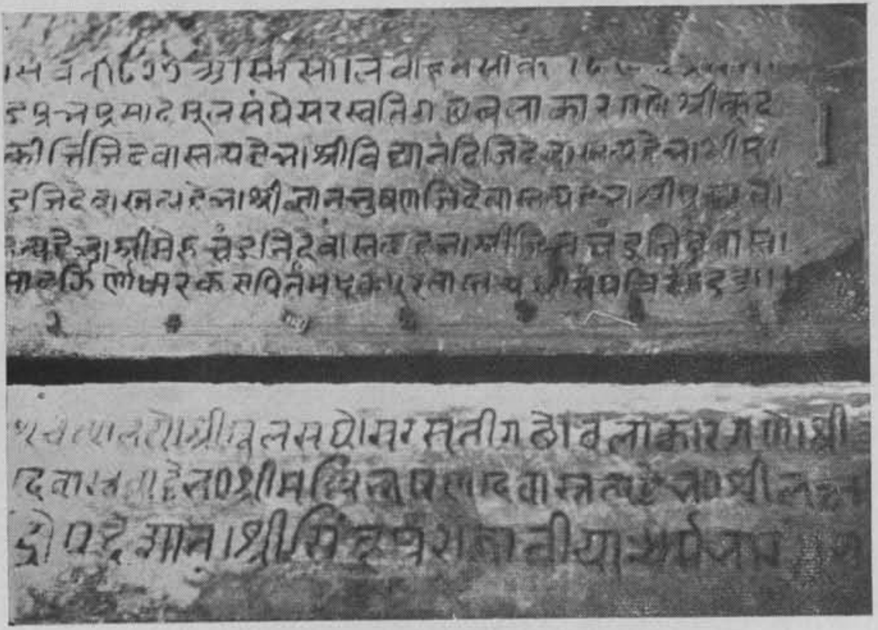

४७. महुआ : दो शताब्दी पूर्वका दारुलेख ।

४८. सूरत : आर्यिकाकी प्राचीन मूर्ति ।

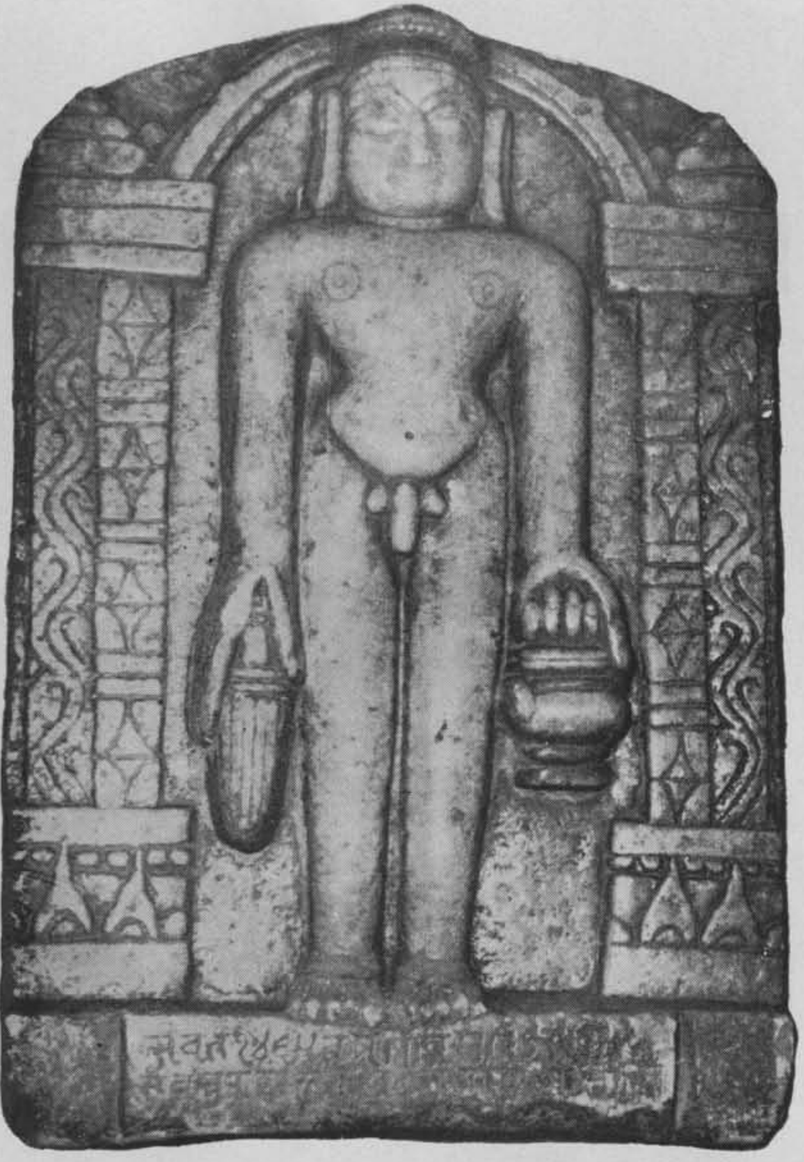

४९. अंकलेश्वर : चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिरमें साधु परमेष्ठी (सम्भवतः धरसेनाचार्य)

५०. अंकलेश्वर : भोंयरेमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कत्थई वर्ण मूर्ति, भूगर्भसे प्राप्त ।

५१. सजोद : भोंयरेमें तीर्थंकर शीतलनाथकी मूर्ति ।

५२. गजपन्था : पहाड़पर तीर्थंकर पार्श्वनाथकी १० फुट ४ इंच ऊँची मूर्ति ।

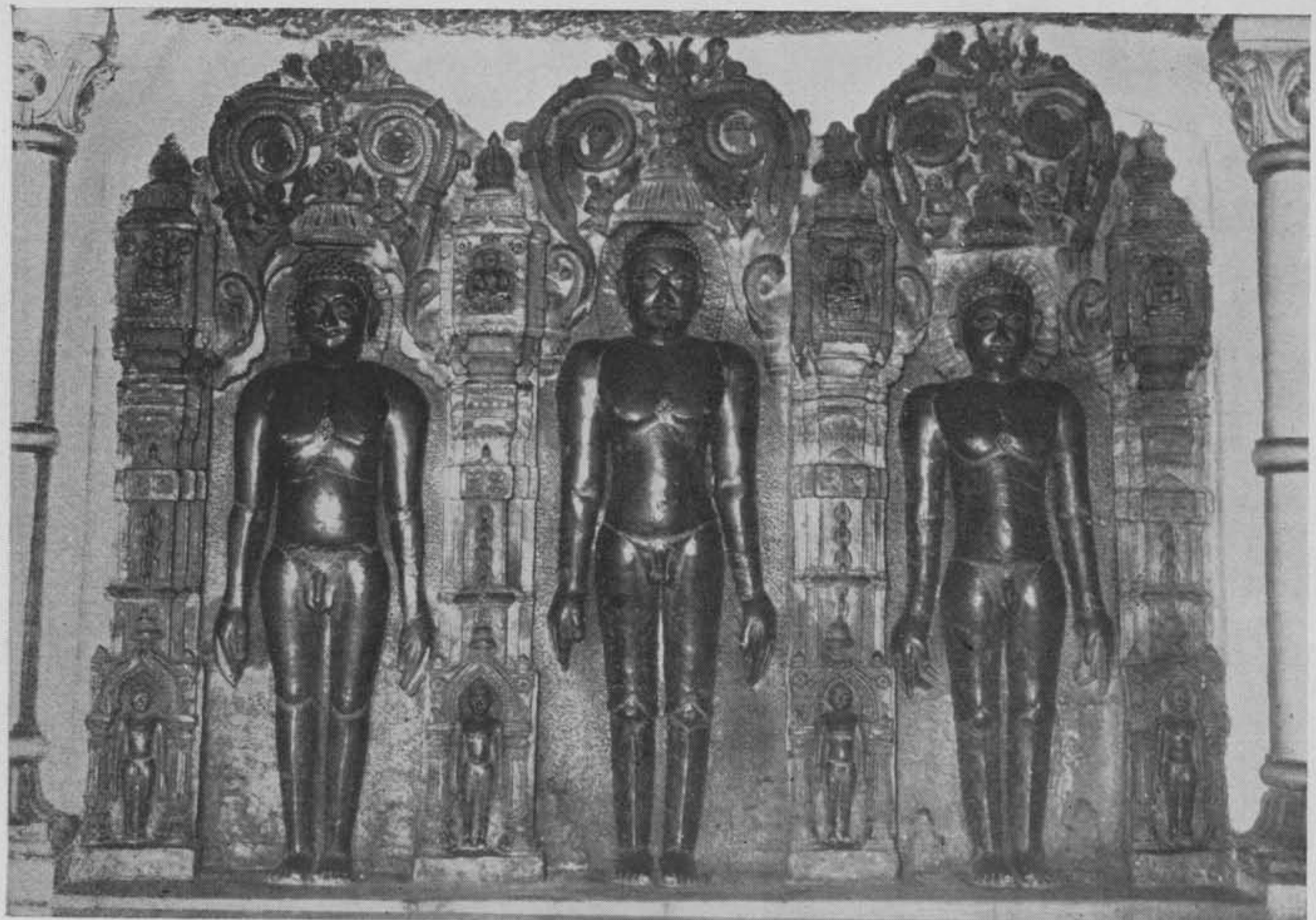

५३. गजपन्था : गुफामें कृष्ण वर्ण तीर्थंकर मूर्तियाँ ।

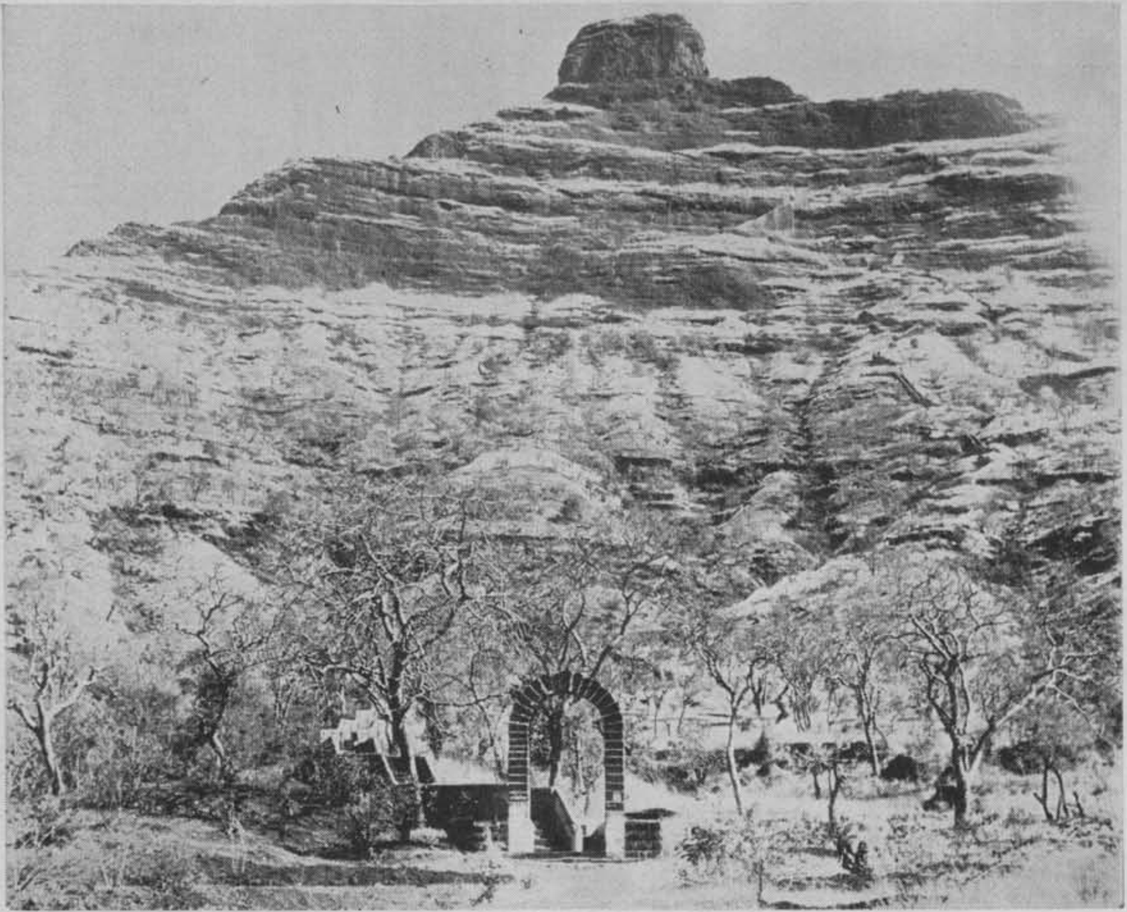

५४. मांगीतुंगी : पर्वत और प्रवेश-द्वार ।

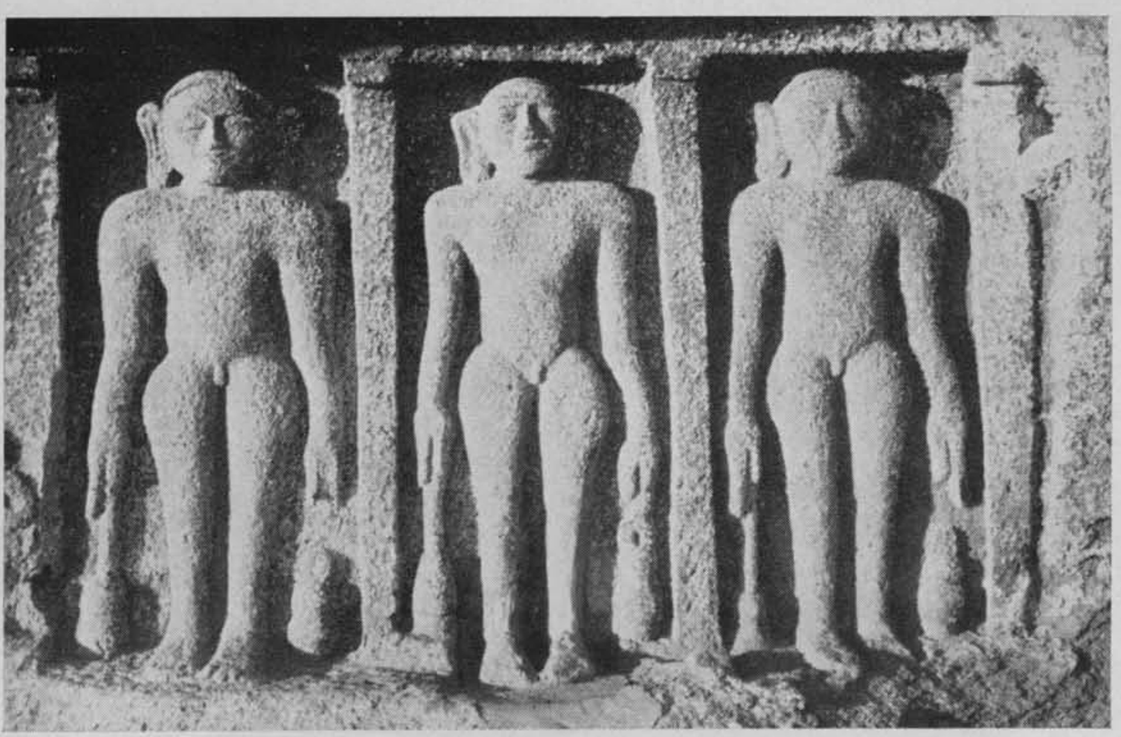

५५. मांगीतुंगी : (मांगी पर्वत) गुफा नं० ४ में साधुओंकी अति प्राचीन मूर्तियाँ ।

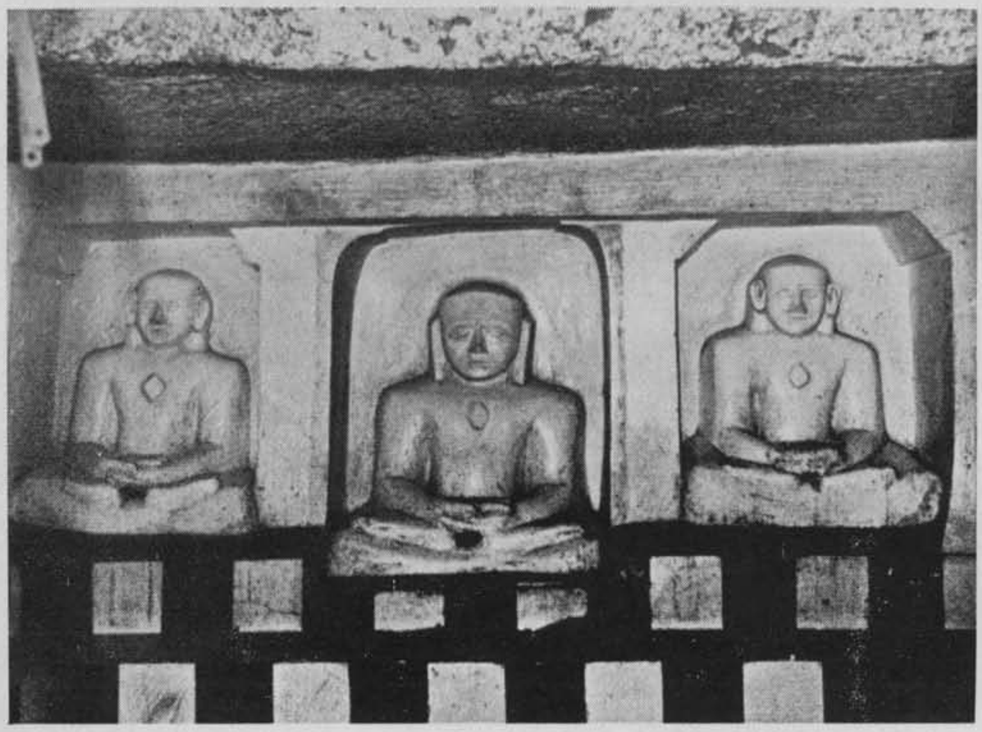

५६. मांगीतुंगी : (तुंगी पर्वत) रामचन्द्र गुफामें रामचन्द्र, हनुमान् और सुग्रीवकी ध्यानावस्थित मूर्तियाँ ।

५७ : मांगीतुंगी : (तलहटी में) पार्श्वनाथ मन्दिर का भव्य शिखर ।

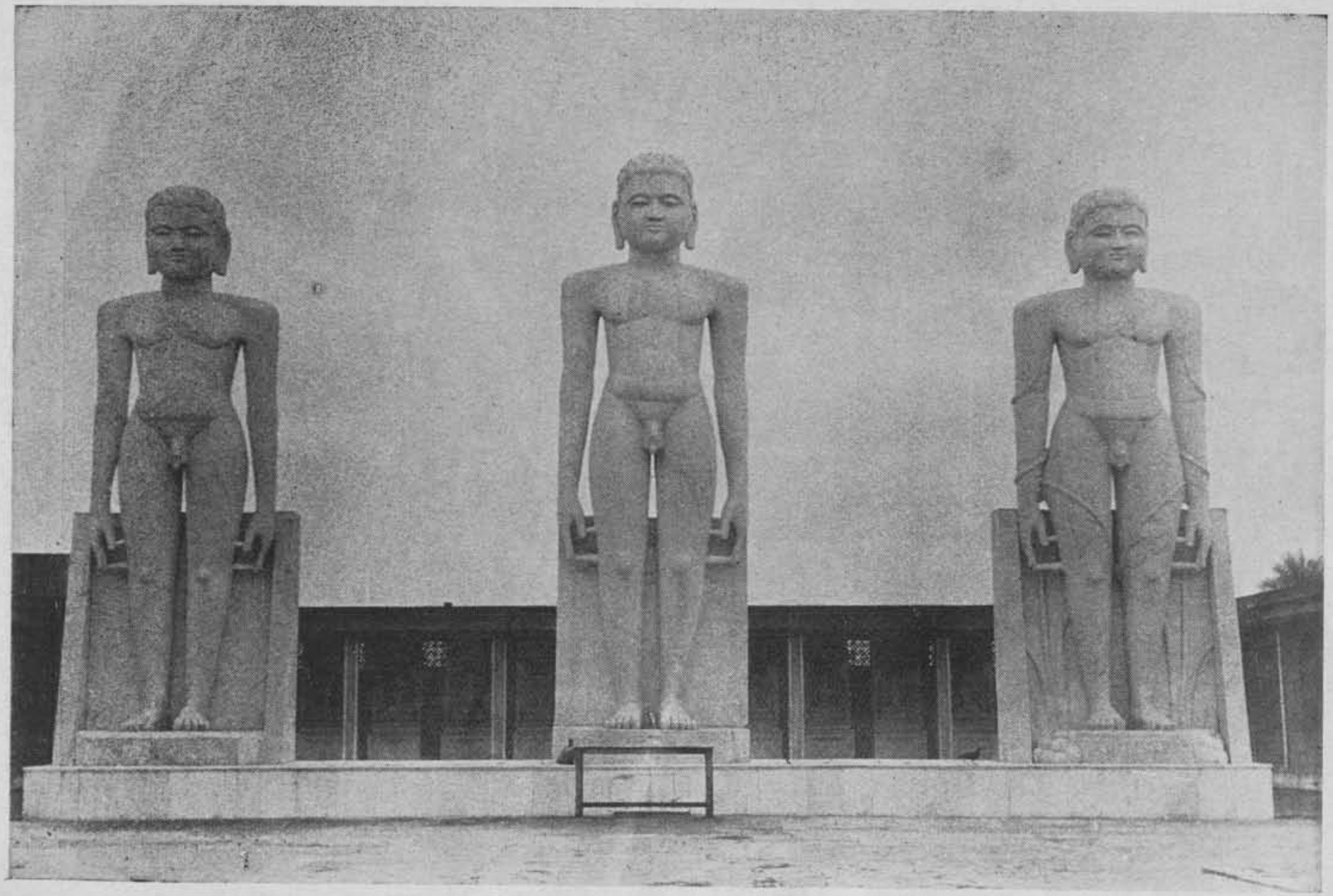

५८. बोरिवली बम्बई : मध्यमें तीर्थंकर आदिनाथ तथा पार्श्वोंमें भरत और बाहुबलीकी मूर्तियाँ ।
ऊँचाई क्रमशः २९, ३१ और २९ फुट ।

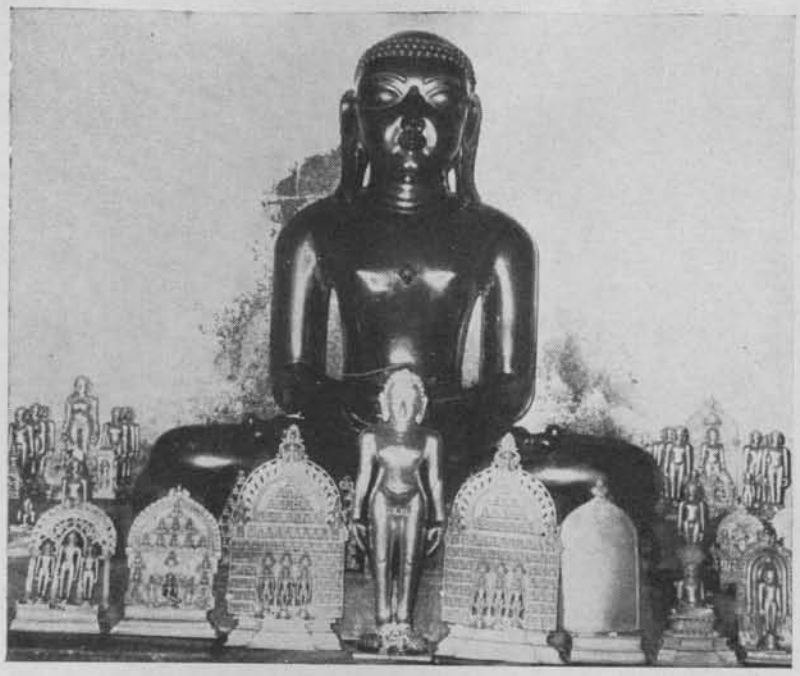

५९. दहीगाँव : मुख्य वेदीपर मूलनायक महावीर ।

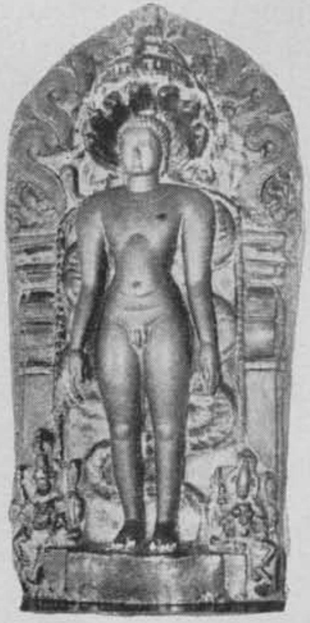

६०. दहीगाँव : एक शिलाफलकमें;
तीर्थंकर पार्श्वनाथ ।

६१–६२. कुण्डल : झड़ी पार्श्वनाथ और यक्षी पद्मावती ।

६३. कुण्डल : गिरि पार्श्वनाथ ।

६४. कुण्डल : कलिकुण्ड पार्श्वनाथ ।

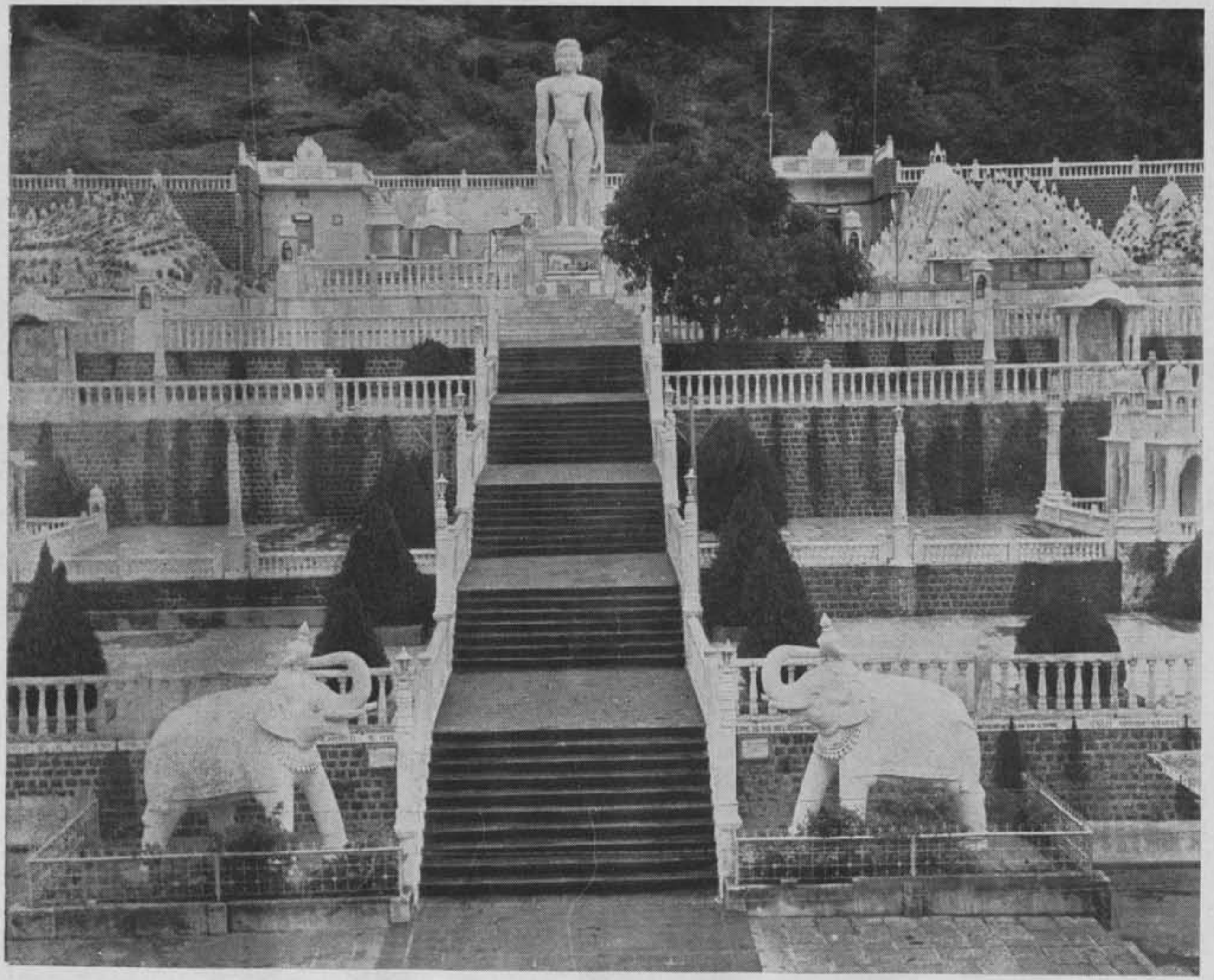

६५. बाहुबली : बाहुबलीकी २८ फुट उतुंग मूर्ति तथा सामने का भव्य दृश्य ।

६६. बाहुबली : समवसरण मन्दिर ।

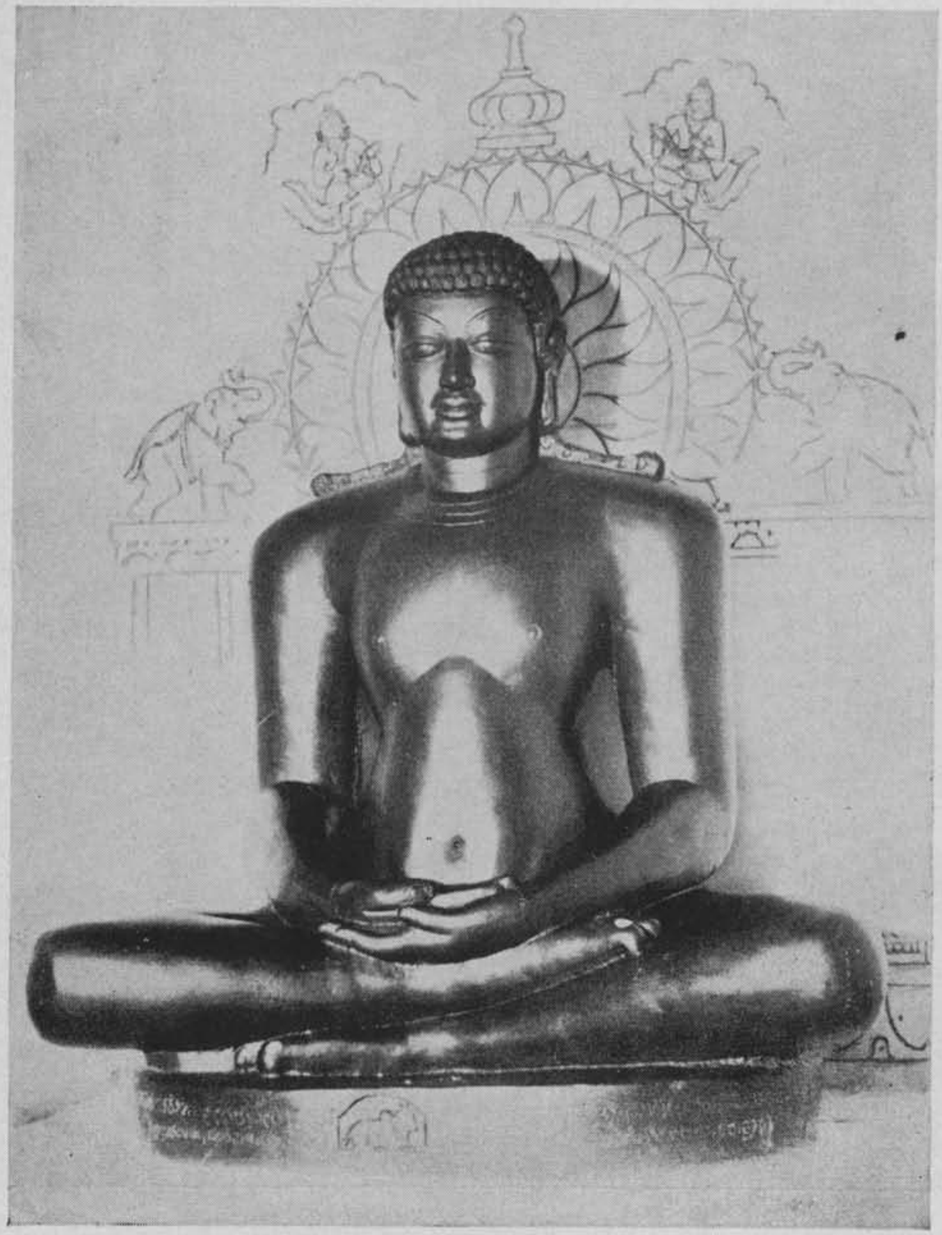

६७. बाहुबली : तीर्थंकर ऋषभदेव ।

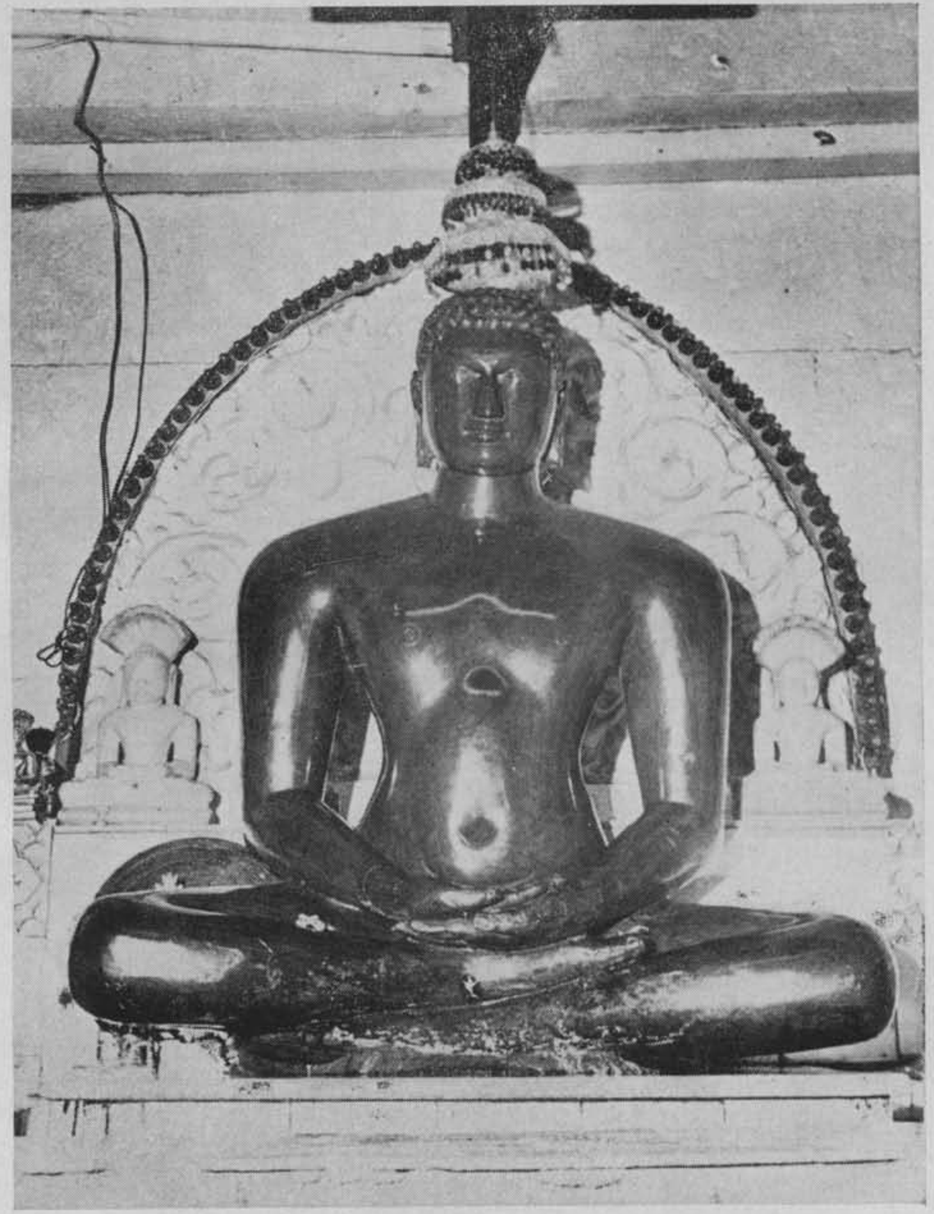

६८. कोल्हापुर : मंगलवार पैठके मन्दिरमें तीर्थङ्कर नेमिनाथ।

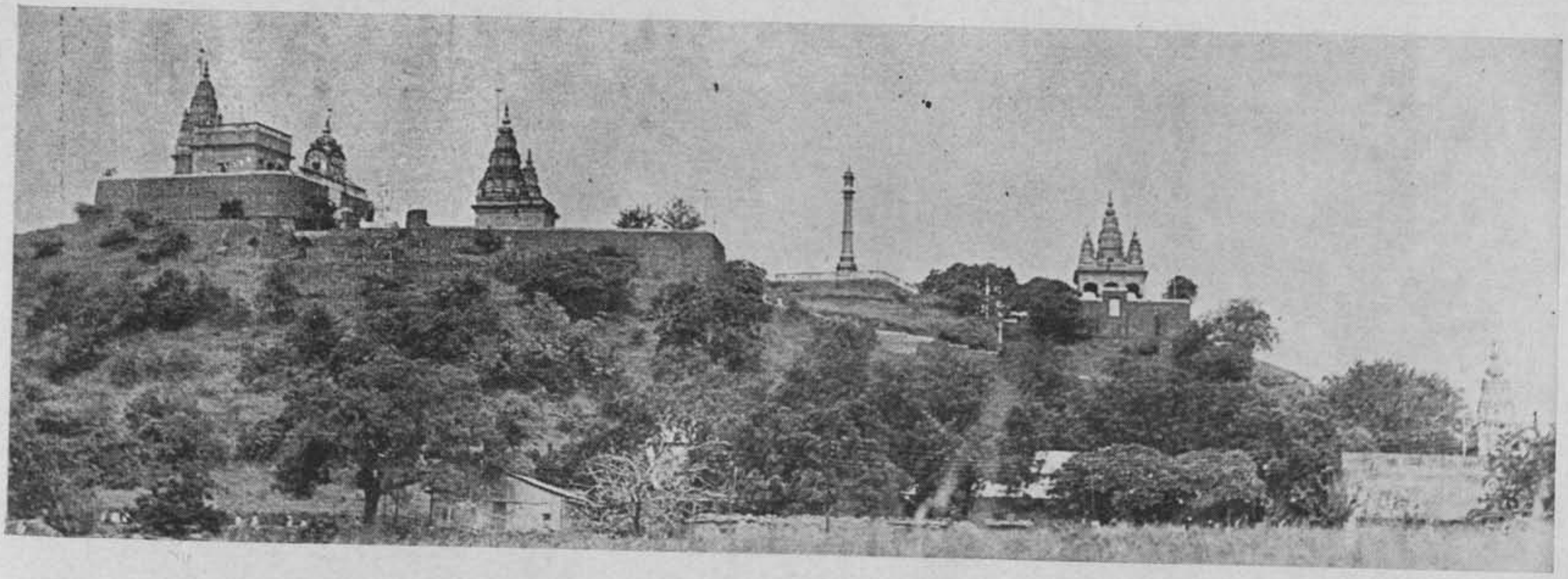

६९. कुन्थलगिरि : क्षेत्रका विहगावलोकन।

७०. धाराशिवकी गुफाएँ : गुफा नं० ३ में तीर्थंकर पार्श्वनाथकी ६ फुट ३ इंच ऊँची अर्धपद्मासन मूर्ति । ५–६वीं शती ।

७१. धाराशिवकी गुफाएँ : गुफा नं० ३ में सरस्वतीकी ३ फुट ७ इंच ऊँची श्यामवर्ण प्राचीन मूर्ति ।

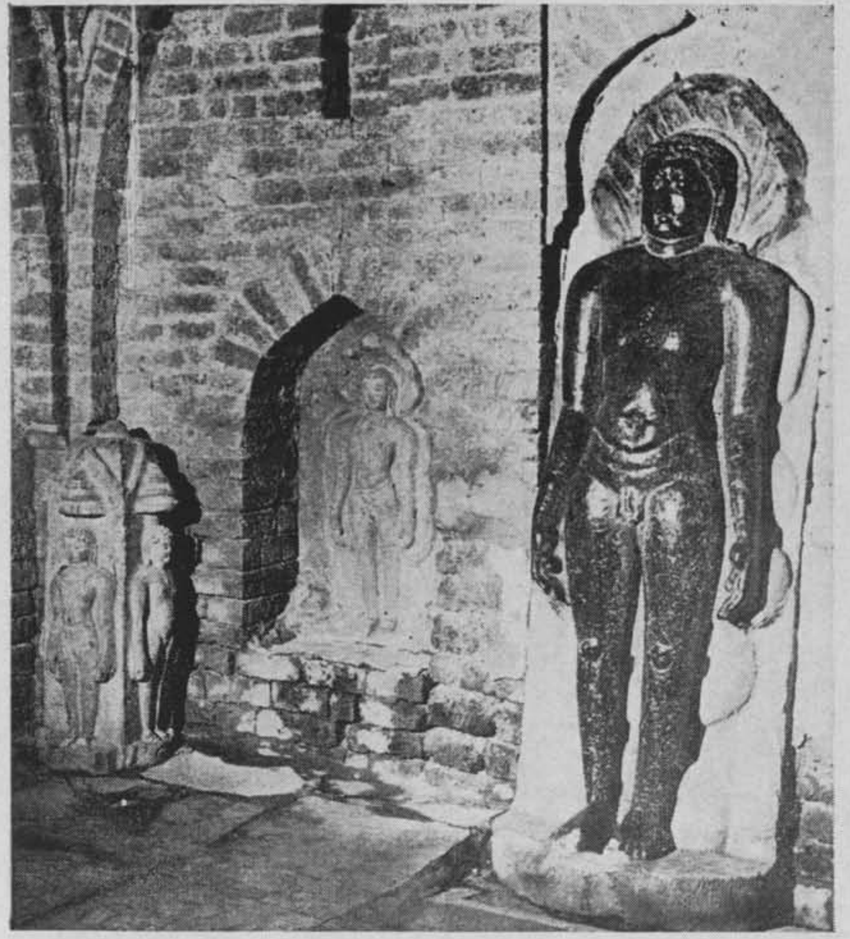

७२. तेर : तीर्थंकर पार्श्वनाथ ।

७३. तेर : ऋषभदेवकी मूलनायक प्रतिमा ।

७४. सावरगाँव : एक प्रचीन मानस्तम्भ।

७५. कासार आष्टा : तीर्थंकर पार्श्वनाथकी
मूलनायक प्रतिमा

७६. एलौराकी गुफाएँ : पार्श्वनाथ मन्दिरमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी १६ फुट ऊँची नौ फणावलीयुक्त अर्ध-पद्मासन मूर्ति ।

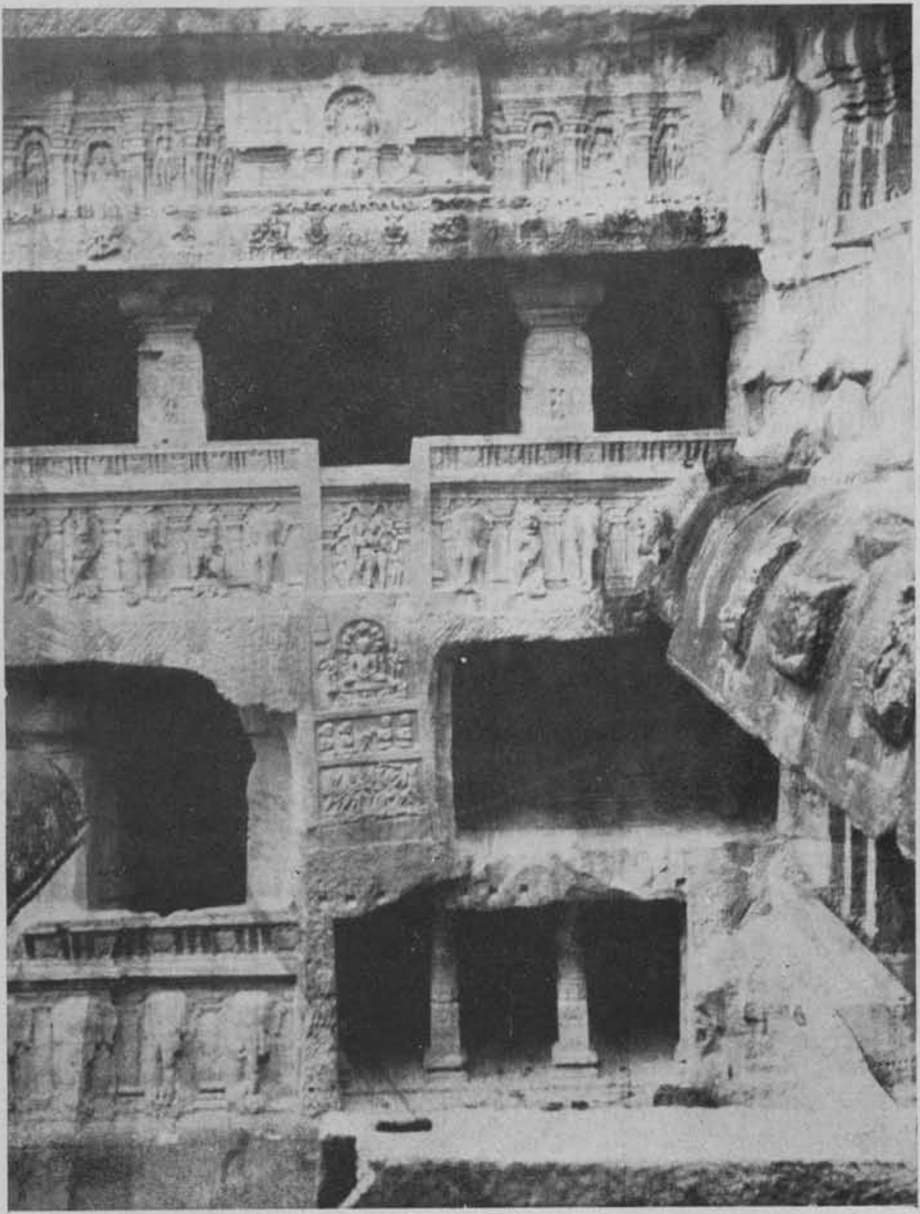

७७. एलौराकी गुफाएँ : गुफा नं० ३२ का बाह्य दृश्य ।

७८. एलौराकी गुफाएँ : बाहुबली स्वामी । पार्श्वोंमें ब्राह्मी और सुन्दरी । बायीं ओर भरत चक्रवर्ती हाथ जोड़े हुए ।

७९. एलौराकी गुफाएँ : एक गुफामें सौधर्म इन्द्र नृत्य-मुद्रामें ।

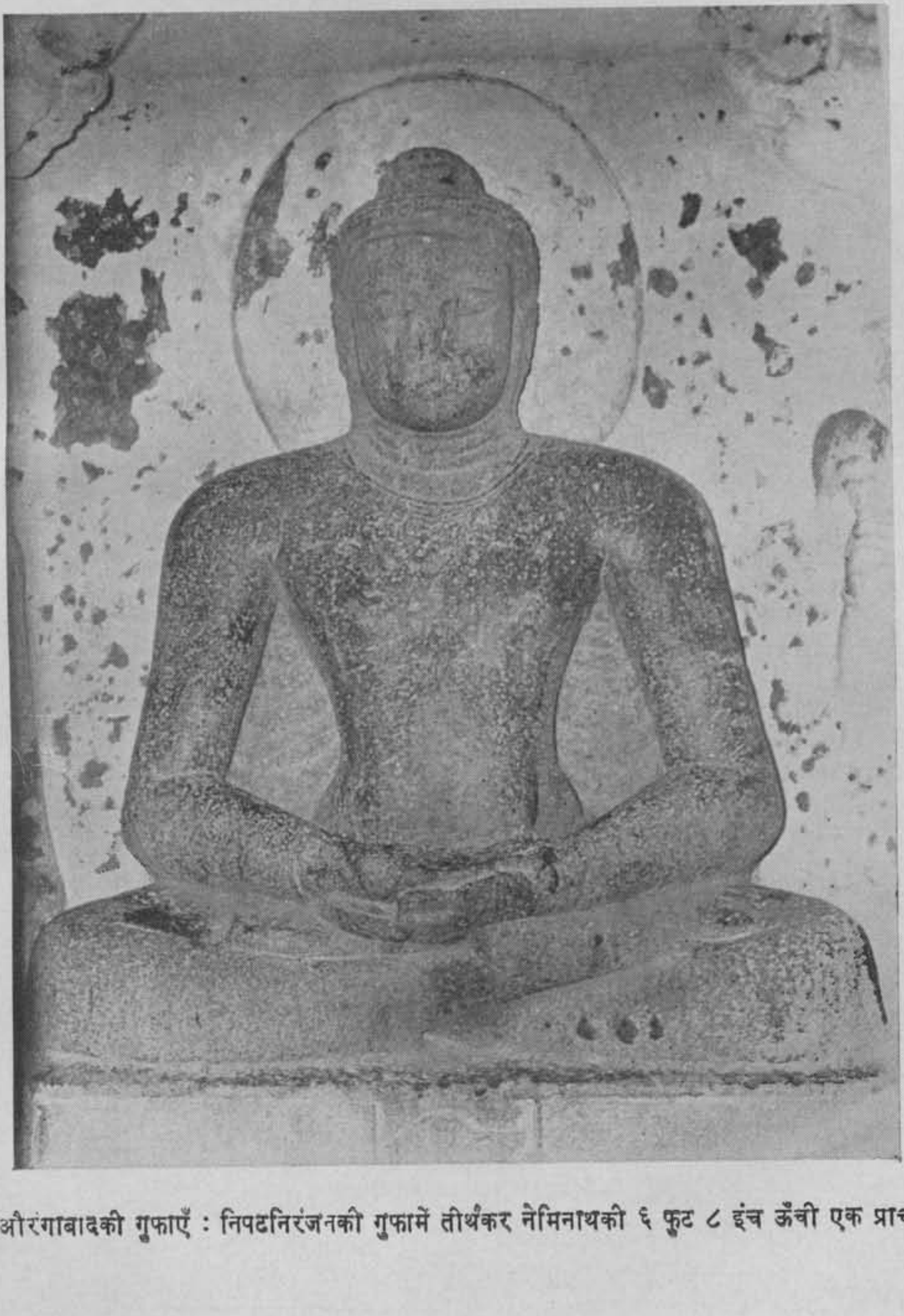

८०. औरंगाबादकी गुफाएँ : निपटनिरंजनकी गुफामें तीर्थंकर नेमिनाथकी ६ फुट ८ इंच ऊँची एक प्राचीन मूर्ति ।

८१. पैठण : तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथकी सातिशय मूर्ति ।

८२. नवागढ़ : मूलनायक तीर्थंकर नेमिनाथ ।

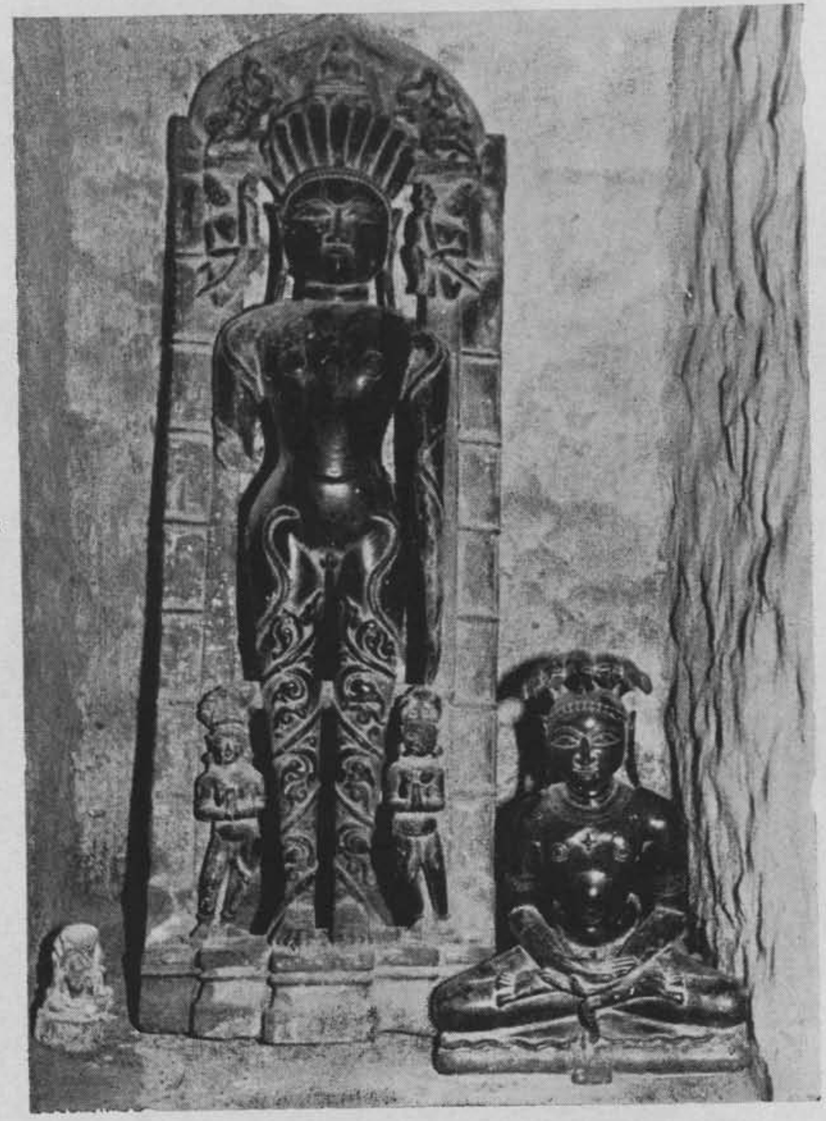

८३. जिंतूर : महावीर दिगम्बर जैन मन्दिरमें पार्श्वनाथकी अद्भुत मूर्तियाँ ।

८४. जिन्तूर : गिरि-गुहा-मन्दिरमें अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ ।

८५. [redacted]. शिरड शहापुर : तीर्थंकर मल्लिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

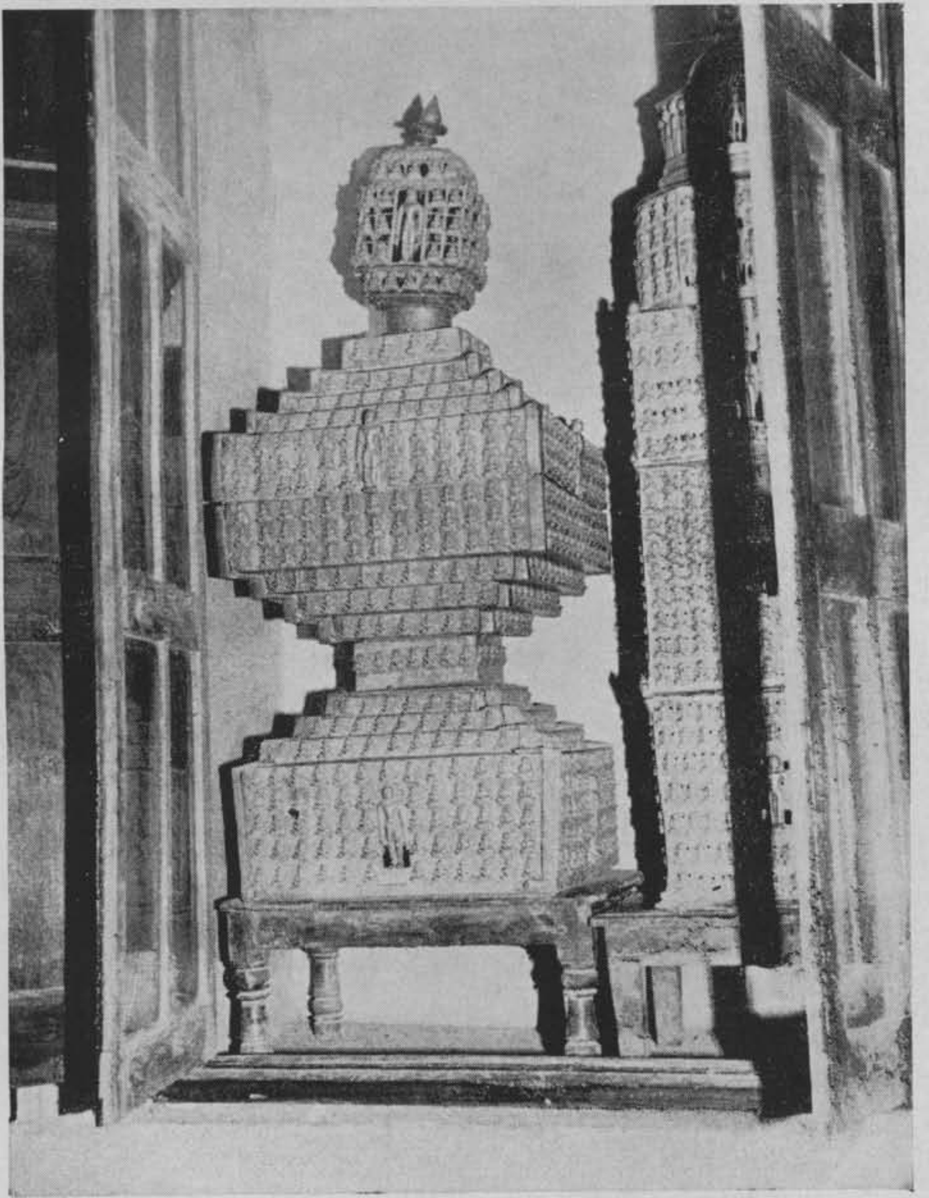

८६. [redacted]. जिन्तूर : साहू जैन मन्दिरमें पीतलके दो सहस्रकूट चैत्यालय ।

८७. सिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ) : अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी सातिशय मूर्ति ।

८८. सिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ) : चिन्तामणि पार्श्वनाथ ।

८९. कारंजा : सेनगण मन्दिरमें सुपार्श्वनाथकी बालू मूर्ति, भूगर्भ से प्राप्त ।

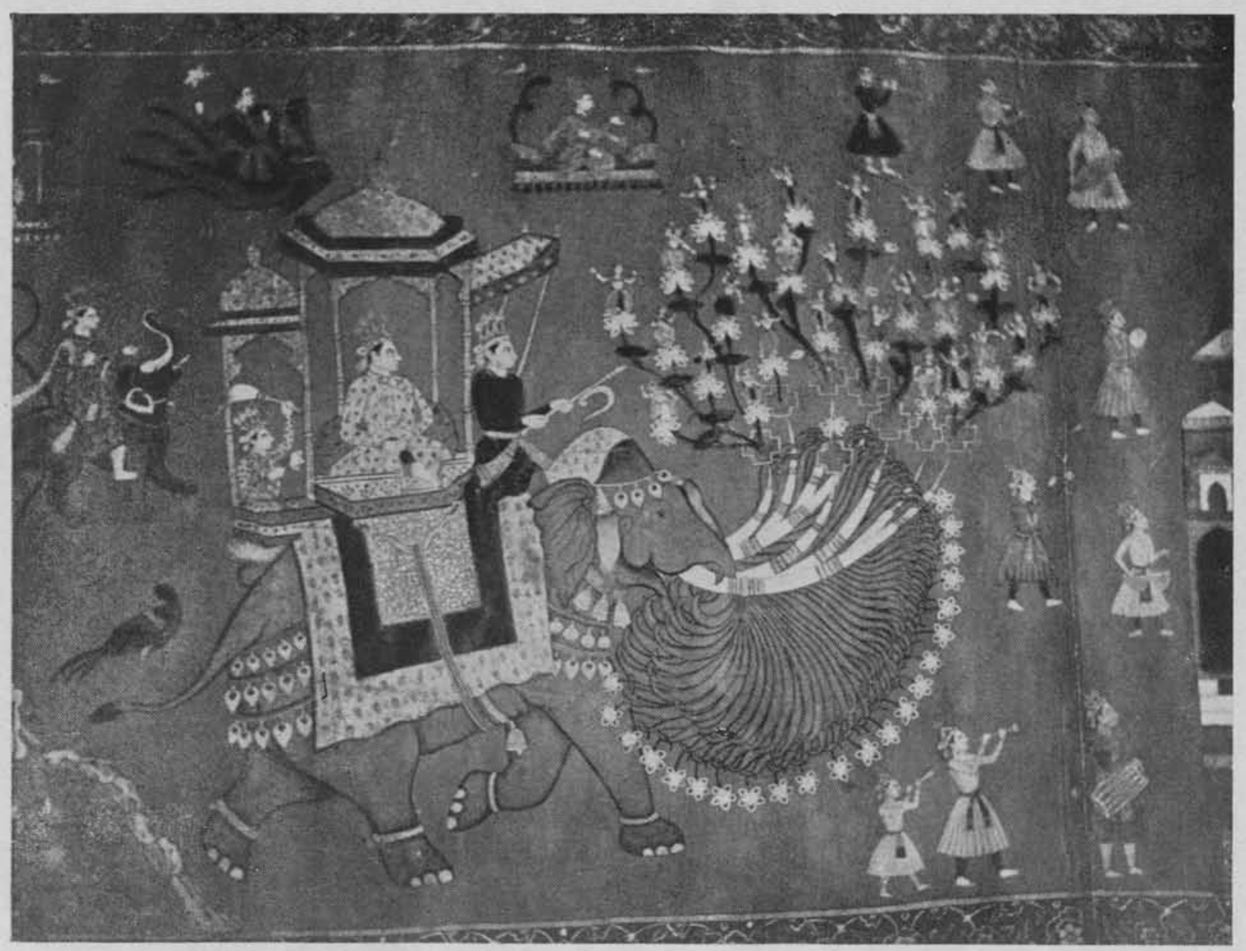

९०. कारंजा : सेनगण मन्दिरमें एक कपड़ेपर सौधर्मेन्द्रका सहस्र सूँड़वाला ऐरावत हाथी ।

९१. कारंजा : काष्ठासंघ मन्दिरके दारु मण्डपका दृश्य ।

९२. कारंजा : काष्ठासंघ मन्दिरमें पद्मावती मूर्ति ।

९३. कारंजा : ब्रह्मचर्याश्रमके संग्रहालयमें अम्बिकाकी प्राचीन मूर्ति ।

९४. कारंजा : ब्रह्मचर्याश्रमके संग्रहालयमें पंचपरमेष्ठी फलक ।

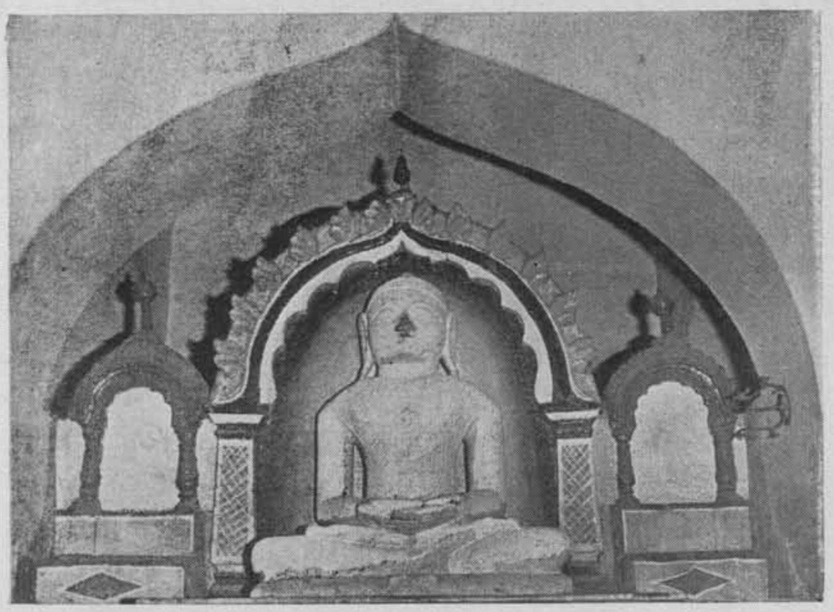

९५. वाढ़ौणा रामनाथ : तीर्थंकर आदिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

९६. भातकुली : तीर्थंकर आदिनाथकी सातिशय मूर्ति ।

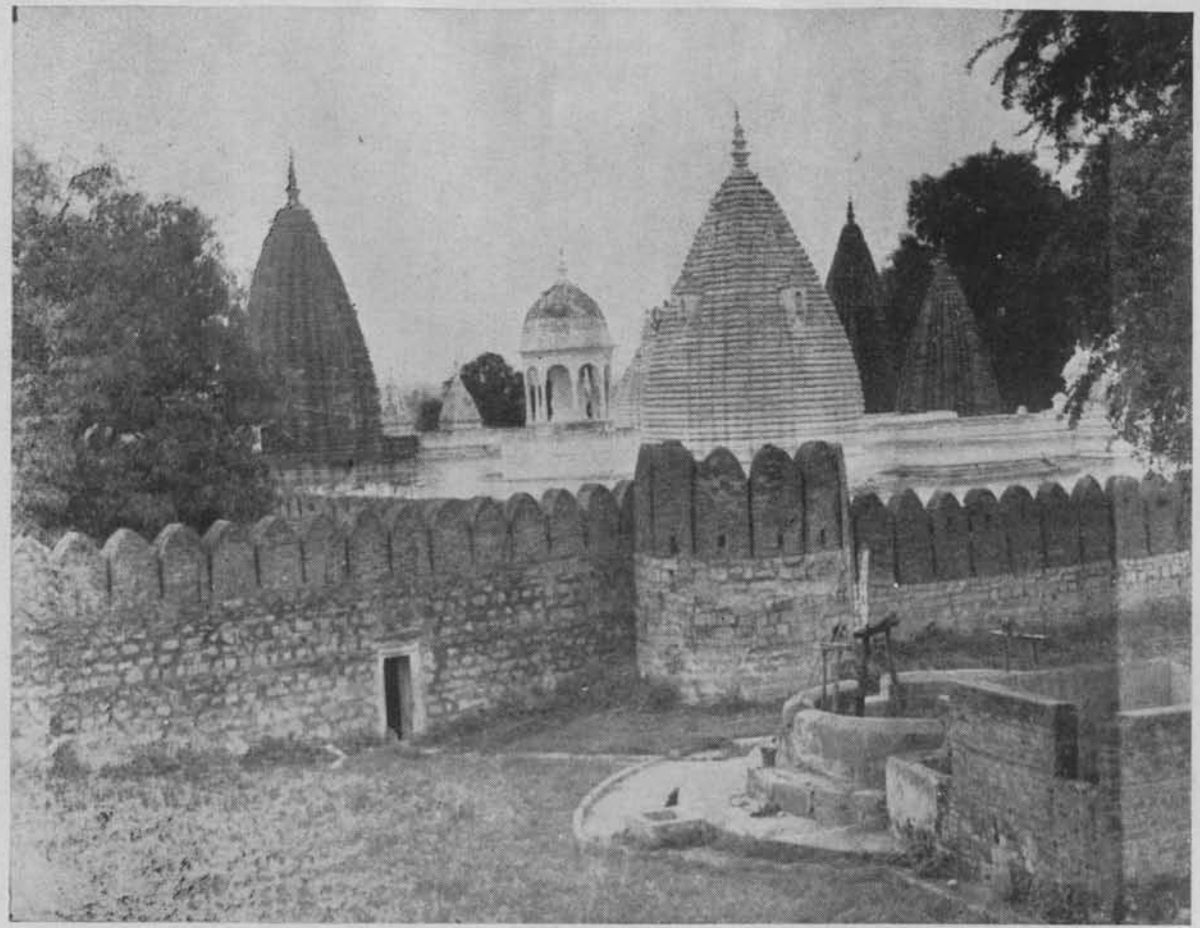

१७. रामटेक : क्षेत्रका बाह्य दृश्य ।

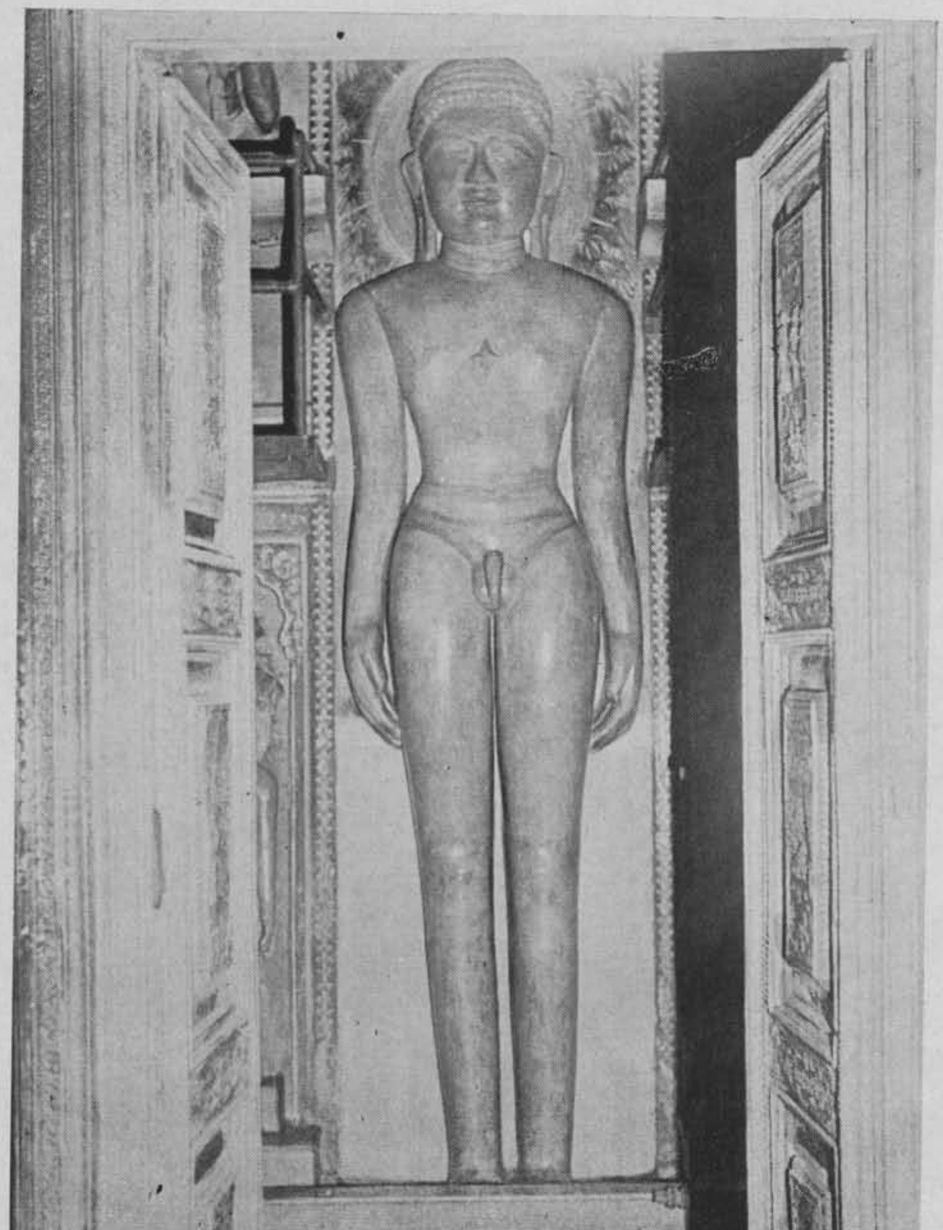

९८. रामटेक : तीर्थंकर शान्तिनाथकी १३ फुट ५ इंच ऊँची मूलनायक प्रतिमा।

९१. मुक्तागिरि : क्षेत्रके मन्दिरोंका एक दृश्य ।